GRAHASTH ASHRAM

BY

CHEEMAN LAL VAISHYA

ओ३म्

यत्रानुकूल्यं दम्पत्यो। त्रिवर्गस्तत्रवर्धते॥ ध. शा.

स्त्रीशिक्षा की सर्वोपयोगी पुस्तक

नारायणी-शिक्षा

* अर्थात् *

गृहस्थाश्रम

जिस में

वेदादि सत्यशास्त्रानुसार गृहस्थाश्रम के समस्त कर्त्तव्य कर्मों की व्याख्या है, कि जिस पर चलने से शारीरिक, सामाजिक और आत्मोन्नति

अर्थात्

धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की प्राप्ति होती है।

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता प्रियालापिनी सन्मित्रं सुधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापरा सेवकाः।

आतिथ्यं गुरुपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे साधोःसङ्गमुपासतेहि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

प्रकाशक

चिम्मनलाल वैश्य,

पूर्ण संख्या २६२००

बारहवीं बार ११००] सन् १९१८ [मूल्य केवल १।)

PRINTED BY

RAM PRASAD JAINI, at the Golbe Printing Works,

MEERUT.

ओ३म्

नारायणी-शिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रम का

द्वादश एडीशन।

ईश्वर को कोटानुकोट धन्यवाद देने के पश्चात् सर्व सज्जनों पर प्रकट हो कि इस पुस्तक का प्रथम एडीशन पाँच वर्ष के पूर्ण परिश्रम के पश्चात् सन् १८८१ ई० में प्रकाशित हुआ था, उस समय मुझ अल्पबुद्धि को निश्चय न था कि सर्व मान्य पुरुष और साधारण जन मेरी इस पुस्तक का इतना मान्य करेंगे कि जितना आप सज्जनों ने किया, जिस का मैं आप लोगों को धन्यवाद देता हूं और इस बारहवें एडीशन को आप की सेवा में भेंट करता हूं, आशा है कि आप इस को स्वीकार करेंगे और मेरे विशेष परिश्रम का परिचय देकर मेरे उत्साह को बढ़ावेंगे।

मेरी अब सर्व महाशयों से यही प्रार्थना है कि एक बार प्रेम-पूर्वक इस का अवश्य ही पाठ कर दोषों को दोषवत् त्याग गुणों का प्रचार करें, जिस से संसार का कल्याण हो, हे परमेश्वर! आप सर्व सामर्थ्यवान् हैं, आप मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कीजिये, आप तेजस्वरूप हैं, उसी में से कुछ हम भारत-वासियों को भी प्रदान कीजिये, हे परमात्मन्! आप ज्ञानमय हैं, उसमें से कुछ हम अज्ञानियों को भी प्रसाद दीजिये, क्योंकि—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणस्त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देव देव॥

हे जगदीश! आप माता हो, पिता हो, बन्धु हो, विद्या भी आप ही हो, जो कुछ हो सब आप हा हो, सब आप ही का राज्य है, इस लिये मन, काया, वचन, इन्द्रियां, बुद्धि, आत्मा, सब मैं आप के ही अर्पण करता हूं। प्रभो! आप ही भारत-सन्तान का उद्धार करने वाले हो, टुक इधर को भी दया-दृष्टि कर दीजिये जिस से हम सब ऐक्य और प्रेम के साथ सुधर्म में प्रवृत्त हो जावें जिस से भारत-भूमि स्वर्णमय दृष्टि आने लगे।

तिलहर
१ मार्च सन् १९१८

देश का शुभचिन्तक—
चिम्मनलाल वैश्य,
कासगञ्ज निवासी।

ओ३म्

मंगलाचरणम् ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳशान्तिः पृथिवीशान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्ति-
र्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्मशान्तिः सर्वꣳ शान्तिः
शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥

अर्थ (द्यौः शा०) हे सर्वशक्तिमन् ! आपकी शक्ति और कृपा से (द्यौः) जो सूर्यादि लोकों का प्रकाश और विज्ञान है वह सब दिन हमको सुखदायक हो, तथा जो आकाश में पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति बटादि वृक्ष, संसार के सब विद्वान्(ब्रह्म) जो वेद यह सब पदार्थ और इन से भिन्न भी जो जगत् में हैं वे सब हमको सब काल में सुख देनेवाले हों, तथा सम्पूर्ण पदार्थ हमारे अनुकूल रहें, जिससे हम लोग सुखपूर्वक रहैं, हे भगवन् ! सब भांतिसे हमको विद्या, बुद्धि, विज्ञान, आरोग्यता और सब उत्तम सहायता को अपनी कृपा से दीजिये और हम लोगों और सब जगत् को उत्तम गुण वा सुख के दान से बढ़ाइये ।

यतोयतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु ।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ॥

अर्थ—(यतोयतः) हे परमेश्वर ! आप जिस २ देश (जगत्) के रचने और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस २ देश से भय-रहित कीजिये अर्थात् किसी देश से हमको किञ्चित् भी भय न हो, (शन्नः कुरु०) वैसे ही सब दिशाओं में आपकी प्रजा और पशु आदि हैं उनसे भी हमको भय रहित करें, हम से उनको सुख हो और उनको भी हम से भय न हो, आपकी प्रजा में जो मनुष्य आदि हैं उन सबके लिये जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, पदार्थ हैं, वे आपकी अनुग्रह से हमको भी सब शीघ्र प्राप्त होवें ।

❋ पुस्तक बनाने का कारण ❋

ईश्वर के गुणानुवाद और धन्यवाद के पश्चात् निवेदन है कि सन् १८७१

ई० में श्रीपरमहंस परिव्राजकाचार्य **श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज** भ्रमण करते हुए **कासगंज ज़िला एटा** में विराजमान हुए और कई मास निवास कर समस्त नगर-निवासियों को अपने सत्य उपदेश और व्याख्यानों से कृतार्थ किया, प्यारे सज्जन पुरुषो ! उक्त महात्मा के अमृतरूपी मनोहर कथन का श्रवण कर मैं भी सन्मार्ग पर जा लगा और अपने गृह में सत्य उपदेश करने लगा, एक दिन गृहस्थाश्रम के विषय में समझा रहा था कि मेरी बहिन कि जिसका नाम **नारायणीदेवी** था, उसने कहा कि भाई ! कोई ऐसी पुस्तक देवनागरी में नहीं कि जिसमें गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यकर्मों की व्याख्या हो जिसको हम पढ़ तदनुकूल चल कर आनन्द भोगें, मैंने विचार किया तो उस समय कोई ऐसी पुस्तक न जान पड़ी. तब मैंने कहा कि यदि शरीर वर्त्तमान है तो शीघ्र समस्त गृहस्थियों के अर्थ ऐसी एक पुस्तक लिखूंगा ।

मान्यवरो ! मैंने परमेश्वर का नाम लेकर इसके लिखने का आरम्भ कर दिया, परन्तु समय से किसी का चारा नहीं कि इसी बीच मेरी प्यारी बहिन का स्वर्गवास हो गया, माता और चाची ने भी इस असार संसार को त्यागकर परलोक गमन किया, तदुपरान्त समय ने मुझ को और भी झोंके दिये जिसके कारण इस पुस्तक के मुद्रित होनेमें देर होगई । इस पुस्तक का नाम अपनी प्यारी बहिन के ही नाम "नारायणी" अर्थात् गृहस्थाश्रम रक्खा क्योंकि उसकी इच्छानुसार इस पुस्तक के रचने का आरम्भ किया था ।

प्यारे मित्रवर्गो ! यह वार्ता प्रत्यक्ष प्रकट है कि सब आश्रमों की जड़ गृहस्थाश्रम ही है, यही समस्त आश्रमों का आधार है. इसी से सब का निर्वाह होता है, इसी के सुधारने से सब का सुधार हो जाता है, वर्त्तमान समय में इस आश्रम के बिगड़ने ही के कारण सम्पूर्ण भारत का भारत हो गया, क्योंकि गृहस्थाश्रम का प्रबन्ध राजप्रबन्ध के सदृश है, जो राजा और मन्त्री के सुज्ञान होने पर बड़ी सावधानी और अग्रसोची होने से नियमानुकूल ठीक २ रह सकता है, यदि उसमें किञ्चित् असावधानी और चूक हो तो वह राज्य शीघ्र तितर बितर हो जाता है, और फिर उसका संभालना कठिन है, इसी भाँति गृहस्थी राज्य का राजा पुरुष और मन्त्री स्त्री है जिनके सुज्ञान होने से नाना भांति के सुख मिल सकते हैं । इस समय इन दोनों के अज्ञान होने के कारण देखिये क्या कुदशा हो गई जो प्रत्यक्ष प्रकट है, कुछ

वर्णन करने की आवश्यकता नहीं, सच तो यह है कि बिना गृहस्थाश्रम के सुधरे कदापि देशोन्नति नहीं हो सकती।

प्रियवरो! यह वह आश्रम है कि जिसमें बड़े २ कवि, गणितज्ञ, पराक्रमी, विचारशील, सत्योपदेष्टा, परोपकारादि गुणों से परिपूरित शिरोमणि हो गये हैं, जिनके वृत्तान्त महाभारत रामायणादि इतिहासों से विदित होते हैं, प्यारे मित्रवर्गो! इसी भूमि को पवित्र भूमि के नाम से पुकारते थे और समस्त पृथ्वी के निवासी भारतवासियों के गुण गाते थे और बड़े २ योग्य पुरुष इस के दर्शन कर अपना जन्म सुफल करते थे, इस लिये आओ प्यारे भाइयो! सब मिलकर इस आश्रम के सुधारने का उपाय करें, आओ प्रियवरो! हम सब मिलकर यथाशक्ति मनसा, वाचा, कर्मणा, अर्थात् तन मन और धन से सब का सच्चा उपकार करें, जिससे यह आश्रम यथा नाम तथा गुण हो जावे और हमारे तुम्हारे मान्यवर पुरुषों के यश में धब्बा न लगे, सच्चे परोपकारियों का यही धर्म है कि इस समय कमर बांध कर खड़े हो जावें और मैदान में कूद पड़ें। प्रिय भ्रातृवर्गो! क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि जिन पूर्वोक्त भारतवासियों ने इस भारत की उन्नति के अर्थ अपने प्राणों को समर्पण कर दिया पर आज उसकी कुदशा मेटने के विचार करने तक का हमको अवकाश नहीं मिलता! लाखों पर पानी डालते हैं परन्तु भारत अभागे के नाम कौड़ी देने में दम सूखता है क्या हम और आप अपने उन महर्षियों की सन्तान नहीं हैं कि जिन्होंने संसार के उपकारार्थ अपने प्रिय प्राणों को भी न्योछावर कर दिया था? क्या गुरू तेजसिंह का नाम स्मरण नहीं रहा? क्या स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की भी सुधि नहीं रही? यदि है तो आओ सब मिल कर इस भारत के रोगों की चिकित्सा करें।

प्यारे भ्रातृगणों! मेरी सामर्थ्य न थी जो इस कार्य को पूरा कर सकता, परन्तु परमेश्वर की कृपा और परोपकारी विद्वान् महात्माओं के सहाय से यह कार्य पूर्ण हो गया, इस लिये मुझको इस समय अत्यन्त प्रसन्नता है, आओ प्यारे भाई बहिनों! सब मिलकर उस पिता परमात्मा सर्वव्यापक से प्रार्थना करें कि हे पिता जी! अब हम पर ऐसी दया कीजिये कि हम आप की कृपा से सदा पुरुषार्थ को बढ़ा कर शुभकर्मों के करने में उद्यत रहें और किसी प्रकार का भय चित्त में न लावें।

ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

विषय-सूची ।

* ओ३म् *

गृहस्थाश्रम

स्वास्थ्य ।

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलः क्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनः स्वस्थं इत्यभिधीयते ॥

जिसके वातादिक दोष अग्नि रसादि धातु मल और क्रिया समान हों और जिसकी आत्मा और मन प्रसन्न हो उसको 'स्वस्थ' कहते हैं । जो दिन-चर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या के अनुसार कार्य करने से रहसकता है । यथा—

दिनचर्या निशाचर्यामृतुचर्या यथोदिताम् ।
आचरन्पुरुषः स्वस्थः सदातिष्ठति नान्यथा ॥

और आरोग्यता ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का कारण है । जैसाकि—

धर्मार्थ काममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम् ।

और भी कहा है कि-"काया राखे धर्म" अर्थात् धर्म तभी हो सकता है जब शरीर आरोग्य रहे क्योंकि बिना आरोग्यता के सांसारिक सुखों के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते फिर पारमार्थिक सुख क्योंकर प्राप्त हो सकता है, प्यारे सज्जनों ! इसही से मनुष्य का चित्त प्रसन्न रहता, बुद्धि तीव्र होती तथा मस्तक बलयुक्त बनारहताहै जिससे शारीरिक सामाजिक वा आत्मिक कार्यों को अच्छे प्रकार कर, सुखों को भोग मोक्षपद को प्राप्त करते हैं । इसलिये ऐसे उत्तम पदार्थ को खो देना मानों मनुष्य-जीवन के उद्देश्य का सत्यानाश करना है । इसके उपरांत जब उसमें अन्तर पड़ जाता है तो फिर उसका सुधार अत्यन्त कठिन हो जाता है ।

प्रातःकाल उठना, शौच, कसरत करना, स्नान, अञ्जन लगाना, वायु पानी और भोजन इनको रीत्यनुसार काम में लाना, मादक पदार्थों का सेवन न करना, स्वच्छ वस्त्र धारण करना, सोना, मकान रीत्यनुसार बनवाना, टीका लगवाना, वीर्य-रक्षा करना आदि बातों पर सदा ध्यान रखना आवश्यक है जिनका आगे हम संक्षेप से वर्णन करेंगे।

शरीर-रक्षा

परमेश्वर ने दिन काम करने और रात विश्राम के लिये बनाई, परंतु जो प्रातःकाल ब्रह्म मुहूर्त अर्थात् चार बजे उठते हैं उनका बल बुद्धि आयुकी वृद्धि होतीहै ऋगवेद मं० ३ अ० २ सूक्त ६ में भी ऐसी आज्ञा दीहै। स्मृति वा पुराणों तथा बड़े २ ज्ञानी और तत्ववेत्ता बुद्धिमान जनों ने अपने २ ग्रन्थों में इस विषय के लाभों के वर्णन करने में लेखनी को दौड़ाया है, परन्तु बिना जल्दी सोये प्रातःकाल चारबजे उठना कठिन है। यदि कोई उठा भी तो नाना प्रकार की हानियां होती हैं अर्थात् शरीर दुर्बल हो जाता, आलस्य जान पड़ता वा आंखों में जलन पड़ती है। इस लिये ९, १० बजे रात जाने पर सो रहना उचित है कि जिससे प्रातःकाल का उठना लाभदायक हो, क्योंकि प्राणीमात्र को ६ घंटे से कम सोने में मस्तक के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, आठ घंटे से अधिक सोने से शरीर में आलस्य वा भारीपन जान पड़ता तथा कार्य्यों का भी नाश होता है। प्रातःकाल वायु-सेवन करनेवाले मनुष्य हृष्ट पुष्ट दीर्घायु तथा चतुर होते हैं, उनकी बुद्धि ऐसी तीव्र हो जाती है कि कठिन से कठिन विषय को सहज में जान लेते हैं। इसी समय बस्ती के बाहर बागों की शोभा देखने में बड़ा आनन्द मिलता है क्योंकि पेड़ों से स्वच्छ प्राणप्रद वायु निकलता है जो बाहर जानेवालों की श्वांस के साथ भीतर जाता है जिसके प्रभाव से मन कली की भांति खिल जाता है और शरीर प्रफुल्लित हो जाता है। इसलिये प्यारे भ्रातृगण ! वा सुजन स्त्रियों ! प्रातःकाल जागने का अभ्यास करो और इस समय को लौकिक व पारलौकिक कार्यों में व्यय करो। देखो, प्रातःकाल चिड़ियां कैसी चुहचुहाती हैं, कोयल कू कू करती, मैना तोता

आदि सब उस सृजनहार परमेश्वर के स्मरण में चित्त लगाते और मनुष्यों को जगाते हैं, फिर कैसे शोक का स्थान है कि हम सबसे उत्तम होकर पक्षी पखेरुओं से भी निषिद्ध कार्य करें और उनके जगाने पर भी चैतन्य न हों। इन उपरोक्त लाभों के अतिरिक्त प्रातःकाल सूर्योदय से प्रथम शौचादि से निवृत्त होकर किञ्चित् जल पीने से बवासीर, संग्रहणी तथा उसी समय नाकसे पानी पीने से बुद्धि वा दृष्टि की वृद्धि होती और पीनसादि रोग जाते रहते हैं। यही समय योगाभ्यास वा ईश्वराराधन के लिये नियत है। जितने सुजन और ज्ञाता आज तक हुए वे सब प्रातःकाल ही उठते थे। कैसे पश्चात्ताप का स्थान है कि इन अकथनीय लाभों पर भी भारतवासी जन करवटें लेतेही लेते नौ बजा देते हैं कि जिस के कारण उन्हें नाना प्रकार के रोग घेरे रहते हैं। परन्तु जब चिल्ले के जाड़े हों तो पांच बजे के पीछे उठना योग्य है।

शौच—प्रातःकाल उठकर शौच जाना चाहिये, क्योंकि जो मनुष्य सूर्योदय के पीछे दिन चढे दिशा जाते हैं उनकी बुद्धि मलिन, मस्तक न्यूनबल तथा शरीर में नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं। बहुधा मनुष्य आलस्य आदि में फंसकर मलमूत्रादि के वेग को रोक लेते हैं, उससे मूत्र-कृच्छ्र, शिररोग, पेंडू पीठ आदि में दर्द होने लगता है। इसी प्रकार छींक, डकार, हिचकी, अपानवायु आदि को भी न रोकना चाहिये। पाख़ाने जाकर गदा इन्द्री को ताजे पानी से धोना योग्य है क्योंकि गर्म पानी से धोने से बवासीरादि रोग हो जाते हैं परन्तु बीमारी की दशा में वैद्य की सम्मति से कार्य करे। हाथ पैरों को मिट्टी से मल स्वच्छ और ठंढे जल से धो मुखादि को भी स्वच्छ कर कुल्ला करना उचित है, इससे मल, थकावट दूर होती है, आंखो में तरावट आती है और फिर मसूड़े बचाकर नीम, खैर, बड़, पाकड़, कीकर, बेल, गूलर, कदम्ब, चम्पा, अनार, हरसिंगार, मौलसिरी, इमली आदि कडुए चरपरे दूधवाले पेड़ों की हरी पतली डालियों की दातोन करना चाहिये। परन्तु गले, होंठ, जिह्वा वा दांतों में दर्द हो या मुंह में छाले पड़गये हों वा सूजन, सांस का रोग, खांसी, कै, अफ़रा, भोजन करने के पीछे हिचकी, बेहोशी, मचली रोग, शिरदर्द, थकावट, लकवा, दर्दकान, आंखों की बीमारी, नवीन बुख़ार, मुंह से खून जाता हो तो ऐसे समय में दातोन न करना चाहिये।

इसके उपरांत दांतों को स्वच्छ रखने के लिये नीचे लिखे मंजनों में से कोई एक बनाकर प्रतिदिन मंजन करना भी उचित है जिससे दांतों के सर्व रोगों का नाश हो जाता है और मुंह में सुगंधि आती है।

(१) सेंधानोन, सोंठ, भुनाजीरा बारीकपीसकर दांतों पर मले। अथवा

(२) मजीठ २ तोला, कोयला ढाक १ तोला, निमक १ रत्ती, माजू १ तोला, रूमीमस्तगी १ तोला, इनको बारीक पीसकर दांतों में लगावे।

(३) इलायची छोटी, त्रिफला, माजूफल, बड़ीहड़, कपूर, खैरसार, लोहे का बुरादा, अनार के छुकले, वंशलोचन, नीलाथोथा, मजीठ, रूमीमस्तगी, सुपारी जलीहुई, लोध, फिटकरी इन सबको बराबर लेकर चूर्ण कर लगावे अथवा बबूल के वृक्ष के बकले में आठवां भाग फटकरी भूनकर तथा सेंधा नमक वा सोलहवां भाग अकरकरा, लौंग मिलाकर प्रतिदिन मला करे।

❀ व्यायाम अर्थात् कसरत ❀

मनुष्य के शरीर की बनावट घड़ी या यन्त्रों के पुर्ज़ों के समान है। यदि घड़ी को असावधानी से पड़ी रहने दें, कभी न झाड़ें कूकें न उसके पुर्ज़ों को साफ़ करावें तो थोड़े ही दिनों में वह बहुमूल्य घड़ी निकम्मी हो जायगी और उसके सब पुर्ज़े बिगड़ जायंगे। जिस प्रयोजन के लिये वह बनाई गई कदापि सिद्ध न होगा। यही दशा मनुष्यके शरीर की है, जीवन भी लोहू की चाल पर निर्भर है। और कसरतही ऐसी वस्तु है जो लोहू की चाल को तेज बना देती है जिस प्रकार पानी किसी ऐसे वृक्ष को जो शीघ्र सूख जानेवाला है फिर हराभरा कर देता है, उसी प्रकार शारीरिक व्यायाम भी शरीर के किसी भाग को निकम्मा नहीं होने देता।

शारीरिक बल दृढ़ रखने के अर्थ कसरत अर्थात् व्यायाम की महती आवश्यकता है। मनुष्य के शरीर में लोहू की चाल उस नहर के पानी के समान है जो किसी बाग़ में हर पटरी में होकर निकलता हुआ संपूर्ण वृक्षों की जड़ों में पहुंच सारे बाग़ को सींचकर प्रफुल्लित करता है। प्यारे भाइयों! उस वाटिका में जितने हरे भरे वृक्ष रङ्गबिरङ्गे पुष्प अपनी छबि दिखलाते, नाना भांति के फल अपनी २ सुन्दरता से मन को हरतेहैं, यह सब उसी पानी की माया है। यदि उसकी नालियां न खोली जायंतो सम्पूर्ण वाटिका के पेड़ बेल बूटे मुर्झाजाते और फूलफल कुम्हला कर शुष्क होजाते हैं कि जिससे उस आनन्दयुक्त बाग़ में उदासी बरसने लगती है और मनुष्य

के नेत्रों को जो उनके देखने तथा विलोकन करने से तरावट वा सुख मिलता है उसके स्वप्नमें भी दर्शन नहीं होते। इसी के बल से प्राचीन भारतवासी पुरुष निरोग, सुडौल, बलवान् योधा होगये कि जिनकी कीर्ति आज तक गाई जाती है। क्या किसीने हनूमान, भीमसेन, अर्जुन, बालि आदि योधाओंका नाम नहीं सुना कि जिनकी ललकारसे शेर कोसों भागते थे। इसी कारण भारतवासियों ने समस्त भूमण्डल को अपने अधीन कर लिया था परन्तु वर्त्तमान समय में भारत में वीरशक्ति का नाम ही रहगया है! तदनन्तर इसके अभ्यास से अन्न शीघ्र पच जाता है, भूक अच्छे प्रकार से लगती है, सर्दी गर्मी सहन कर सकता है, वीर्य सम्पूर्ण शरीर में रम जाता है जिससे शरीर शोभायमान बलयुक्त हो जाता है। इसके उपरान्त बादीपन से जो मुटाई हो जाती है वह सब जाती रहती है। इसी भांति दुर्बल मनुष्य किसी क़दर मोटा हो जाता है। कसरती मनुष्य के शरीर में सदा उत्साह बना रहता है। वह निर्भय हो पहाड़, खोह, दुर्ग, जंगल, संग्रामादि स्थानोंमें बे खटके चलेजाते, अपनी मनोरथ सिद्धि को दिखलाते तथा गृहकार्यों को सुगमतासे कर लेतेहैं। चोर आदि को घरमें नहीं आने देते, सच तो यहहै कि चोर ऐसे मार्ग होकर नहीं निकलते। इसके उपरांन्त शीघ्र बुढ़ापा वा रोगादि भी नहीं होते, कुरूप मनुष्य भी अच्छे जान पड़ते हैं। परन्तु रक्त, पित्त, कफ़, स्वांस, खांसी शरीर में घाव होने, पेटभरे और स्त्रियों के संसर्ग से क्षीण, भ्रमार्त को व्यायाम न करना चाहिये, जैसा कि—

रक्त पित्ती कफः शोषी श्वासकास क्षतातुरः।
भुक्तवान् स्त्रीषु प्रक्षीणो भ्रमार्त्तश्च विवर्जयेत्॥

अति व्यायाम करने से तृषा, क्षय, स्वास, रक्त, पित्त, श्रम, ग्लानि, कास, ज्वर, छर्दि ये सब रोग होजाते हैं और जो मनुष्य दिन में सोते हैं और व्यायाम नहीं करते उनको अवश्य ही प्रमेह होजाताहै। इस लिये इन सब बातों को विचार अपनी२ सन्तानों से प्रति दिन व्यायाम कराना योग्य है जिससे भारत में फिरसे वीरशक्ति आजावे। कसरत करते समय देश, काल और शरीर के बल को भी देखना उचित है, नहीं तो विपरीत दशा में नाना रोग हो जाते हैं। कसरत करने के पीछे तुरन्त पानी न पीना चाहिये, हां एक घण्टे के पीछे कोई बलदायक भोजन करना आवश्यकहै, जैसे गायका दूध मिश्रीसंयुक्त वा कोई अन्य प्रकार के लड्डू जो देश, काल वा प्रकृति के अनुकूलहों। भारतके प्रसिद्ध वीररत्न मिस्टर राममूर्त्तिजी नायडू

का कथन है कि व्यायाम के पश्चात् १० बादाम की गिरी, ४ सफ़ेद इलायची १ माशा धनिया वा १ माशा सफ़ेद ज़ीरा और ५ कालीमिर्च घोट कर पिये। बादाम मिज़ाजके अनुकूल ५ या १० गिरी (मींगी) से आरम्भ करे और एक २ बादाम रोज़ बढ़ाता जाय यहां तक कि १०० बादाम तक पिये। लेकिन सर्दी के दिनों में यदि मिज़ाज सर्द हो तो मींगी को केवल मिश्री के साथ खावे।

❀ स्नान ❀

कसरत करने के पश्चात् पसीना सूख जाने पर स्नान करना चाहिये इससे गर्मी का रोग, हृदय का ताप, रुधिर का कोप, शरीरकी दुर्गन्धि दूर होकर कांति, तेज, बल, प्रकाश बढ़ता, क्षुधा अच्छे प्रकार लगती बुद्धि चैतन्य होती, सम्पूर्ण शरीर को आराम जान पड़ता, मार्ग के खेद को दूर कर आलस्य समीप नहीं आने देता। देखो यह बात तो सर्व जन जानते हैं कि शरीर के ऊपर सहस्त्रों छिद्र होते हैं, इन्हीं छिद्रों के द्वारा शरीरके भीतर का विकारी पानी और दुर्गन्धित वायु निकल कर उत्तम वायुका प्रवेश होता है। परन्तु जब ये छिद्र बन्द होजाते हैं तब उपरोक्त क्रिया भी नहीं होती। इसी कारण खाज, दाद, फोड़ा, फुंसी, आदि रोग होकर बहुत दुःख देते हैं यह भी स्मरण रहे कि तरुण वा आरोग्य पुरुषों को शीतल जल से तथा बूढ़े, और दुर्बल वा रोगी जनों को गुनगुने जल से स्नान करना चाहिये। शीतल जल से स्नान करने से रक्त पित्त के रोग दूर होतेहैं और गर्म पानी से वायु वा कफ़ के रोग तथा संधियोंके बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। शिर पर गरम पानी डालने से नेत्रों का प्रकाश कम होजाताहै, इस हेतु शीतल जल से स्नान करना चाहिये। स्नान करनेके पश्चात मोटे गाढे के अंगोछे से शरीर पोछना चाहिये जिससे किसी अंग में तरी न रहे। गर्भिणी स्त्री तैल लगा कर नहावे तथा नेत्र, मुख कर्ण अतिसार पीनस आदि रोगों से युक्त स्त्री पुरुष स्नान न करें।

❀ बालों का स्वच्छ करना ❀

इसके पश्चात् बालोंको कंघे आदिसे नित्य स्वच्छ करना चाहिये जिससे जुयें न हों। इसके उपरान्त इस देश वालोंको शिर पर अधिक बाल रखना लाभदायक नहीं क्योंकि यहां गर्मी अधिक रहतीहै। आठवें दिन बालोंको मुलतानी मिट्टी वा आंवले सरसों आदि से धोना अभीष्ट है।

अञ्जन—प्रतिदिन नेत्रों में लगाना चाहिये क्योंकि इससे खुजली पानी आना, दर्द, वायु, तथा धूप के विकार नष्ट होकर नेत्रोंका प्रकाश

सुन्दरतायुक्त होजाता है। सामान्यतया से सुरमा प्रातःकाल स्नानके पश्चात् तथा रात्रिको शयन करनेके समय, परन्तु दिनमें कोई ऐसा तेज़ अञ्जन न लगावे जिससे आंखोंसे पानी निकलने लगे, ऐसा होनेसे नेत्र सूर्य्यके बल को सहन नहीं कर सकते। वैद्यक ग्रन्थों में बहुत प्रकारके सुरमे बनाने की रीतियों का उल्लेख है परन्तु हम उनमेंसे एकही सरल रीति यहां लिखते हैं।

प्रथम सुरमेकी डलीको आगमें गरम कर, त्रिफलेके अर्कमें सात बार पुनः स्त्रीके दूध तथा गोमूत्र में पांच २ बार पृथक् २ बुझा कर महीन पीसकर रख लेना चाहिये। शिरसे स्नान करनेके पश्चात् वा नवीन ज्वरमें सुरमा लगानेका निषेध है। इन सबके अतिरिक्त दृष्टि-रक्षाके हितार्थ निम्न-लिखित बातों पर भी ध्यान रखना अभीष्ट है।

(१) शिरको ठंडा और पैरको गर्म रक्खे। (२) जहां यथेष्ट प्रकाश न हो वहां बारीक अक्षरों को न पढ़े। (३) नशों से बचना। (४) मुख और नेत्रों को नित्य शीतल जलसे अथवा चौथे आठवें दिन विशेष कर वसन्त ऋतुमें त्रिफलाके पानी से धोना। (५) प्रातःकाल बिना कुछ सूक्ष्म पदार्थ खाये आंखों पर बहुत बल न डालना। (६) पांचवें वा सातवें दिन रात का पलकों पर रसोत का लेपन करे। (७) कठिन धूप में बहुत न चले, अग्निकी आंच को बहुत देर तक न देखे, गर्म जल से नेत्रों को न धोवे, रूखा भोजन न करे। मिट्टी के तैलकी रोशनी में न पढ़े, अधिक परिश्रम न करे, अधिक मैथुन से बचता रहे।

वायु—पदार्थविद्यासे यह सिद्ध है कि जिस प्रकार पानीके बड़े बड़े समुद्र पृथ्वी पर हैं उसी प्रकार हवाके भी हैं। जिस भांति मछलियां पानीमें रहतीं और बिना उसके चन्द मिनटमें मर जाती हैं,इसी तरह हम भी हवा में रहते हैं और बिना उसके हमारा जीवन नहीं हो सकता क्योंकि बिना हवा के न आग जलती, न शब्द सुनाई पड़ता है न वर्षा आदि होती है। वायु निम्नलिखित वस्तुओं से बनी है—

(१) एक प्राणप्रद वायु अर्थात् जिसपर जीवधारियोंका जीवन निर्भर है, बिना उसके वस्तुयें नहीं जलतीं। यदि हवामें केवल प्राणप्रद वायु ही होता तो भी हम नहीं जी सकते क्योंकि यह इतनी तीक्ष्ण होती है कि

हम नहीं सह सकते। यह दोष दूर करने के लिये उस परब्रह्म परमेश्वर ने अनेक वस्तुयें मिलाई हैं।

(२) दूसरी नायटरोजन अर्थात् जीवान्तकवायु, इसका गुण प्राणप्रद वायु के बिलकुल विरुद्ध है न तो इसमें वस्तुयें जलती हैं न जीवधारियों का जीवन इसके आश्रित है, इसमें जलता हुआ दीपक बुझ जाता है, यह प्राणप्रद वायु की मददके लिये है, यह हवामें प्राणप्रद वायुसे चतुर्गुण होती है।

(३) तीसरी कारबोनिक एसिड गैस, यह भारी होती और बहुधा गहरे कुओंमें जमा रहती है, इसमें भी दीपक बुझ जाता है परन्तु वनस्पति इसके बिना ज़िन्दा नहीं रहतीं, इसका हवामें २५०० वां भाग रहता है कि जिससे किसी को हानि नहीं पहुंच सकती, वनस्पति इसे खींचती तथा बदले में प्राणप्रद वायु को निकालती है।

(४) चौथी वस्तु हवामें पानी की भाप है, यह वर्षा करती है। यदि यह हवामें न होती तो सूर्यकी गर्मीसे सब हवा गर्म होजाती तब श्वास द्वारा मनुष्योंके शरीर झुलस जाते, खूनमें अधिक हरारत उत्पन्न होती, वृक्ष मुरझा जाते। इन बुराइयोंको दूर करनेके निमित्त उस परब्रह्म परमेश्वरने इन सबको इस प्रकारसे मिलाया कि जीवधारियों को हानिकारक न हों।

जैसे नहाने धोनेसे शरीरके बाहर शुद्धता होती है, वैसे ही श्वास द्वारा भीतरकी शुद्धता होती है अर्थात् जब मनुष्य श्वास लेता है तो हवा अन्दर जातीहै और उसमें का प्राणप्रद वायु खूनमें मिलजाता है जो अशुद्ध खून को साफ़ करता तथा शेष भाग हवाकी गन्दगीको लेकर बाहर निकल जाता है उसमें बहुत कम और जो बाहर आता है उसमें सौगुना कारबोनिक एसिड गैस होता है। इसके अनुकूल कितनी गन्दगी श्वास द्वारा बाहर आती है लेकिन प्रति समय ही आभ्यन्तरिक स्नान होता रहता है इतना ही नहीं बल्कि जितनी हवा परमेश्वरीय नियमों से बिगड़ती है उतनी ही शुद्ध भी होती रहती है वायुके शुद्ध करनेके लिये परमेश्वरने नाना प्रकारके पुष्पादि सुगन्धित वस्तुओं को उत्पन्न किया है।

हमारे आपके मलमूत्र त्यागने, नहाने, आग जलानेसे जो वायु बिगड़ती है उसके शुद्ध करनेके लिये ऋषियोंने वेदानुकूल नित्यप्रति हवन करनेकी आज्ञा दी है उसी के अनुकूल परमधर्म समझ कर प्रतिदिन हवन करना योग्य है जिसके लाभ आगे वर्णन करेंगे।

पानी—प्रत्येक मनुष्य को ज्ञात है कि हवा की तरह आरोग्यता के लिये पानी की भी आवश्यकता है, बिना इसके किसी जीवधारी का जीवन नहीं रह सकता। मनुष्य के शरीर में पानी का भाग दो तिहाई से भी अधिक है अर्थात् जिसके शरीर का बोझ ७५ सेर हो उसमें ५६ सेर पानी है। यदि इतना न होता तो लोहू स्वच्छ न रहता तथा गाढ़ा पड़ जाता। जब गाढ़ा पड़ जाता तब उस का चलना बन्द हो जाता। जो पानी हम पीते हैं वह लोहू में मिलकर रगों में पहुँचता है। यदि आप ख़राब पानी पियेंगे तो प्रत्येक रग में हानि होती जायगी जिसका अन्तिम परिणाम आरोग्यता से हाथ धोना होगा। इसलिये मनुष्य मात्र को उत्तम जल पीना चाहिये। बासी पानी पीने से कफ़ उत्पन्न होता है और तृषा की शांति भी नहीं होती, अतः इसे भी व्यवहार में नहीं लाना चाहिये।

ख़राब जल गाय भैंस आदि पशु पक्षियोंको भी हानिकारक है अर्थात् उन के पेट में केचुए आदि हो जाते हैं, इसी लिये पशुओं को चौबच्चे, नालियों आदि का गन्दा पानी कभी न पिलाना चाहिये। गन्दे पानी में वस्त्रादि भी धुलाना योग्य नहीं है जो कि मनुष्यमात्र के पहनने ओढ़ने के काम में आते हैं। इन में से दुर्गन्धित परमाणु निकलते हैं जो कि आरोग्यता को हानिकारक होते हैं।

उत्तम पानी वह है जिसमें गन्ध न आता हो, मधुर तिक्तादि कोई रस जिसमें प्रकट न हो, तृषा-नाशक, स्वच्छ, शीतल, अच्छा, हल्का, हृदय को हितकारी हो। बरसाती पानी में क्वार के महीने का पानी अत्यन्त अच्छा और लाभदायक है और सुश्रुत में भी लिखा है कि ऐसा पानी पीने से थकावट, प्यास, जम्हाई जलनादि दूर होती तथा लोहू स्वच्छ होता और पाचनशक्ति बढ़ती है। परन्तु प्रत्येक मनुष्य को ऐसा पानी मिल नहीं सकता, हां धनाढ्य जन इसका प्रबन्ध कर सकते हैं कि क्वार के महीने में जब वर्षा हो तो ऊंचे पर कपड़ा तान नीचे से पानी लेकर सोने चांदी आदि के बर्त्तनों में रख छोड़ें। सामान्य जन कुएं, नदी, तालाब से पानी पीते हैं, परन्तु भारत देश में वर्त्तमान समय में ऐसी ऐसी रीतें प्रचलित हो गई हैं जिन से उन के पानी में गन्दगी उत्पन्न हो जाती है जिसके पीने से अनेक रोग हो जाते हैं।

❋ रोगकारक जल की पहिचान ❋

जो जल छूने में चिकना और गाढ़ा हो, किसी तरह का रंग या ऊपर

उसके कुछ तैल सा मालूम होता हो तथा जिसमें दुर्गन्धि आती हो या जो जल पीतल तांबा धातु डालने से काला पड़जाय वह ख़राब वा हानिकारक है। पानीको रात में उठकर न पीना चाहिये क्योंकि ऐसा करने से नज़ला हो जाता है और फल खा करके भी पानी न पिये, इससे खांसी आदि रोग हो जाते हैं

कुआ

कुयें बनवाने के समय नीचे लिखी बातों पर अवश्य ध्यान रखना योग्य है-(१) कुयें उथले न हों अर्थात् गहरे हों क्योंकि गहरे कुओं का पानी मीठा होता है। (२) कीचड़ या ढलाव के स्थान पर कुआ न बनवाना चाहिये। (३) निकास का तथा आस पास का पानी उसमें रिस रिसकर न जाने पावे। (४) कुओं के आस पास की मुड़ेल कई फुट चौड़ी होनी चाहिये। (५) कुओं पर लोहे वा लकड़ी की जाली होना आवश्यक है, कुओं के ऊपर कोई स्नान न करे, कपड़े न धोये और न कुओं के आस पास पाख़ाने हों, इन सब से पानी ख़राब हो जाता है। (६) पत्ते वा कूड़ा करकट भी न गिरने पावे। (७) स्वच्छ डोल वा रस्सी से पानी भरना चाहिये। कुओं का पानी दो प्रकार का होता है-एक खारी, दूसरा मीठा। खारी पानी पित्तकर्त्ता, कफ़नाशक, दीपक एवं हल्का तथा मीठा पानी त्रिदोषनाशक, हितकारी और हल्का होता है।

तालाब

(१) बहुधा जन तालाबों में स्नान, दातौन कुल्ला भी करते है, (२) अशुद्ध कपड़े उसमें धोते तथा उनका ख़राब पानी उस में निचोड़ देते हैं, (३) तालाबों के किनारे पर पाख़ाने जाते फिर उस में शौच करते हैं, (४) गाय भैंसादि पशुओं को स्नान कराते तथा कभी २ सुअर तक जाते हैं, (५) सन आदि सड़ने को डालते हैं, (६) जब गर्मियों में तालाब सूख जाते हैं तब उस के भीतर पाख़ाने जाते हैं, (७) तालाबों में बर्त्तन मांजते धोते हैं। अतएव मनुष्यों और पशुओं के लिये पृथक् २ तालाब होने आवश्यक हैं उनके किनारे पर हरे पेड़ों का होना भी आवश्यक है, परन्तु पत्ते भीतर न जाने पावें। तालाब का पानी बादी करता है, कषीला और पाक में कड़वा होता है।

नदियों का पानी

नदियों का जल बादी, रूक्ष और अग्निदीपक है, और जिन कारणों से तालाबों का पानी ख़राब होता है उन्हीं बातों से नदियों का भी पानी बिगड़

जाता है, अतः उन बातों से नदियों के पानी को बचावें तथा हैज़े से मरे हुए आदमी और बच्चों को नदी में न डालें, न उसके किनारे गाड़ें, मुर्दे जलाकर उनकी राख तथा हड्डियों को भी उस में न डालें इत्यादि बातों से नदियों के पानी को स्वच्छ रखना चाहिये। दलदल का पानी पीना योग्य नहीं, क्योंकि इसके पीने से बुख़ारादि रोग होजाते हैं। यदि संयोगवश कहीं ऐसा ही पानी पीने को मिले तो औटा और ठंडाकर पीवे। कुछ रीतियां पानी के स्वच्छ करने के लिये लिखते हैं, आवश्यकता पड़ने पर काम में लाना योग्य है।

(१) फिटकरी वा निर्मली को घिस कर डाले। (२) पानी को गर्म करने से भी दूषित परमाणुओं का नाश हो जाता है। (३) थोड़ी देर पानी को बर्त्तन में रखने से उसमें की तलछट बैठ जाती है। (४) बहुत प्रकार के छन्ने बनाये गये हैं। (५) बादाम की मिंगी को पीस कर डालने से भी पानी स्वच्छ होजाता है। (६) नदी के किनारे गड्ढा खोदने से पानी अच्छा मिल जाता है। (७) बहुधा कोयलों से भी पानी को स्वच्छ करते हैं। बहुधा स्टेशनों पर एक तिपाई पर पानी के तीन घड़े रक्खे होते हैं और जिनमें ऊपर के दो घड़ों की पेंदी में छेद होता है जिससे पानी टपक २ दूसरे में होता हुआ तीसरे घड़े में जाता है, उसमें सबसे ऊपरवाले घड़े में पानी और बीच के घड़े में कोयला और बालू रहती है। इस प्रकार जल को स्वच्छ कर लेना चाहिये।

प्रियवरों! कुछ ईश्वरीय नियम से भी पानी बिगड़ जाता है, जैसा बहुधा जानवरों का जो उसने उत्पन्न किये हैं मर कर सड़ना और बहुधा घासें जो उसमें पैदा होती हैं सड़ कर मिल जाती हैं। उनके दूर करने का उपाय भी ईश्वर ने करदिया है अर्थात् मछलियाँ उत्पन्न करदी हैं जो उसकी सम्पूर्ण गन्दगी को दूर कर देती हैं। उनको भी बहुधा लोग मार कर खाजाते हैं। शोक है उन मनुष्यों पर जो ईश्वरीय नियम को तोड़ कर संसार के लाभों को मेटते हैं। मछलियों के भक्षण करने की हानि को हम आगे दिखलावेंगे।

❀ पानी ठंडा करने के उपाय ❀

(१) पानी को ऐसे स्थान में रखना जहां वायु आती हो, (२) पानी को उछालना, (३) बालू में पानी के बर्त्तन को रखना, (४) लाठी में पानी के लोटे को बांध के घुमाना, (५) पंखा करना, (६) छींके पर रखना।

भोजन-विचार

प्यारे मित्रों ! अन्न के भोजनों से प्राणी बढ़ते हैं और इसी से सब दशाओं में भ्रमते हैं बिना इसके कुछ भी नहीं कर सकते, जैसा य० अ० १८ मं० ३४ में कहा है—

वाजः पुरस्तादुत मध्यतो नो वाजो देवान् हविषा वर्द्धयाति वाजो हि मा सर्ववीरं चकार सर्वा आशा वाजपतिर्भवेयम् ॥ ३४ ॥

इसलिये सदा बुद्धि, बल, आरोग्यता और आयु बढ़ानेवाली औषधियों के रसों का सेवन करना चाहिये और प्रमादकारी पदार्थों का कभी नहीं। जो ऐसा करते हैं वे इस जन्म और परजन्म में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करनेवाले होते हैं। जैसा य० अ० १९ मं० ७ में कहा है—

नानाहि वां देवहितꣳ सदस्कृतंमासꣳ सृक्षाथा परमेव्योमन। सुरा त्वामसि शुष्मिणी सोमएष मा माहिꣳसीः स्वांयोनिमाविशन्ति ॥ ७ ॥

ऐसे ही पदार्थों को भक्ष्य कहते हैं और जिस भोजन से मन, बुद्धि, शरीर एवं धातुओं में विषमता हो उसको अभक्ष्य कहते हैं। इसी कारण अभक्ष्य भोजन करने की आज्ञा शास्त्रकारों ने नहीं दी है।

देखो य० अ० २२ मं० २ में कहा है कि जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, औषधि, पवन, अन्न अर्थात् कसेरू, रतालू, अरवी, आलू और शकरकन्द आदि खाते पीते हैं वे निरोग होकर बुद्धि, बल, आरोग्यता और आयु को बढ़ाते हैं। इसी हेतु गीता के ८ अध्याय में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि जो जैसे भोजन करते हैं उनकी वैसी प्रकृति होती है, जैसा कि—

आयुः सत्व बलोरोग्य सुखप्रीति विवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिराः हृद्यश्चाहाराः सात्विकप्रियाः ॥१॥
कट्वम्ल लवणात्युष्ण तीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥२॥

यातयामं गतरसं पूतिपर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपिचामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ ३ ॥

अर्थात् अवस्था, चित्त की स्थिरता, वीर्य, उत्साह, बल आरोग्यता, आत्मिक सुख बढ़ाने वाला, रसवाला, कोमल, तर, चिरकाल तक ठहरने वाला, जिसके देखने से मन प्रसन्न हो, इस प्रकार के भोजन करने से सात्विक; अति चर्परा, खट्टा, नोन, गरम, तीक्ष्ण, रूखे, दाह करने वाले भोजन से राजसी; जिसको बने हुए बहुत काल हुआ हो, अति ठण्डा, सूखा, दुर्गन्धि आती हो, बासी, जूठा, अभक्ष्य भोजन करने से तमोगुणी भाव उत्पन्न होता है । इसी लिये छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है—

आहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौध्रुवास्मृतिः ।

कि जो मनुष्य शुद्ध आहार अर्थात् मद्यमांस आदि से रहित घृत, दुग्ध, चावल, गेहूं इत्यादि का भोजन करते हैं उनके अन्तःकरण की शुद्धि और बल, पुरुषार्थ, आरोग्यता तथा बुद्धि की प्राप्ति होती है ।

इसके उपरान्त निषिद्ध अन्न से विशूचिकादिक रोग होजाते हैं । भात के साथ सिरका, मूली के साथ दूध वा दही तथा दूध के साथ नींबू न खाना चाहिये क्योंकि इससे कफ़ तथा वायु के विकार होजाते हैं । दूध के साथ तैल के पदार्थ सेवन से कमल, खरबूज़ा के साथ दूध तथा आम के साथ शरबत न पीना चाहिये, वरन् खरबूज़ा के साथ शरबत और आम के साथ दूध पीना योग्य है । इसके उपरान्त भोजन करनेके पश्चात् भारी भोजन जैसे कचौरी, बड़े, मुंगौड़ा, चावल, चिरवा, न खाने चाहियें और क्षुधा होने पर भी इनका मात्रावत् अर्थात् शरीर के बल के अनुसार भोजन करना योग्य है ।

इस लिये मनुष्यों को विद्वानों के संग वा उत्तम शिक्षा से विद्या को प्राप्त होकर अच्छे प्रकार परीक्षा कर शुद्ध किये पदार्थों का भोजन करना चाहिये जो शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने वाले और रोगोंके नाश करने वाले हों, क्योंकि बिना विद्या और आरोग्यता के कोई भी मनुष्य निरन्तर कर्म करने को समर्थ नही हो सकता, इसलिए इसका सर्वदा ध्यान रखना अभीष्ट है । जैसा य० अ० ४ मं० १२ में कहा है—

भोजन सदा नियत समयपर करना उचितहै क्योंकि ऐसा करनेसे ही भोजन ठीक समय पर पचकर भूक को लगाता है । इसके अतिरिक्त उसको उत्तम प्रकार से छौंक कर सदा प्रातःकाल तथा दिन के मध्यभाग में होम

अर्थात् बलिवैश्वदेव करके जो नित्यप्रति भोजन करते हैं वे भाग्यशाली होकर सुख और निश्चय विजय को पाते हैं। जैसा ऋ० अ० ३, १ व ३१, मं० ३, अ० २ सू० २८ मं० ४ में कहा है—

माध्यंन्दिन॒ सव॑ने जातवेदः पुरो॒डाश॑मि॒ह क॑वे जुषस्व।
अग्ने॑ यह्वस्य॒ तव॑ भाग॒धेयं॒ न प्रमि॑नन्ति वि॒दथे॑षु धीराः॥५॥

इसलिये प्रतिदिन प्रातः १० बजे और सायंकाल ६ बजे का समय बहुत श्रेष्ठ है परन्तु मानसिक परिश्रम करने वाले विद्यार्थियों को १० बजे से प्रथम कसरत करने के पश्चात् और सायंकाल को शौचादिसे निश्चिन्त होकर बलदायक पदार्थों का स्वल्प भोजन करना चाहिये। भोजन करने के समय एक चौकी एक गज़ लम्बी, एक बालिश्त ऊंची, चारों ओर से गोल हो, उसी पर सम्पूर्ण पदार्थों को यथा योग्य रखकर परमेश्वर का धन्यवाद कर आनन्दपूर्वक भोजन करना चाहिये। क्योंकि झुककर भोजन करने में पेट दब जाने से पक्वाशय की धमनी निर्बल होजाती है जिससे भोजन ठीक समय पर नहीं पचता, इस लिये छाती उठाकर भोजन करना चाहिये और भोजन करने के समय में न अति विलम्ब न अति शीघ्रता करनी चाहिये वरन् यथावत् आनन्द से सदा भोजन कर युक्ति के साथ जठराग्नि को बढ़ा नित्य बल को बढ़ाते रहना उचित है।

इसके अतिरिक्त भोजन नाना प्रकार के करने चाहियें कि जिस से एक प्रकार की टेव न पड़जावे जो फिर बहुत प्रकार के क्लेश देता है। भोजनों के साथ हरे शाक का भी खाना अति श्रेष्ठ है, अधिक पानी पीने से पेट बढ़ जाता है तथा अग्नि मन्द होजाती है। हां भोजनों के मध्य में एक दो घूंट पानी पीना भला है क्योंकि इस से अग्नि तेज़ होती है, अन्त में पानी पीने से अंग पुष्ट होता है। भोजनों के उपरान्त एक घण्टे पीछे थोड़ा थोड़ा पानी पीने से अन्न शीघ्र पच जाता है। जल को तांबे या मिट्टी के बर्तन में छानकर पीना चाहिये, जैसा कि मनुजी ने अ० ६ श्लो० ४६ में कहा है—

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्र पूतं जलं पिबेत्।
सत्यपूतं वदेद्वाचं मनः पूतं समाचरेत्॥

किसी मनुष्य को दूसरेका जूठा भोजन न खाना चाहिये और न कोई जूठे मुंह किसी स्थान को जावे, न प्रातःकाल और सायंकाल के मध्य में भोजन करना चाहिये, न बारम्बार तथा अति भोजन करना योग्य है, जैसा कि मनुजी महाराज ने मनुस्मृति के अध्याय २ श्लोक ५६ में कहा है—

नोच्छिष्टं कस्यचिद्द्यान्नद्याच्चैव तथान्तरा।
नचैवात्यशनं कुर्य्यान्नचोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥

अर्थात् एक थाली वा पत्तल में अधिक मनुष्यों को भोजन करना योग्य नहीं है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव पृथक् पृथक् होता है, कोई चाहता है कि दाल भात को मिलाकर खाऊं, किसी की रुचि इसके विरुद्ध है इसी प्रकार अन्य जनों का अन्य स्वभाव होता है, तो इस दशा में अरुचि से भोजन करना पड़ता है, अरुचि के कारण अन्न अच्छे प्रकार नहीं पचता। बहुधा मनुष्य इसी हेतु से भूखे उठ बैठते और बहुतों को नानाप्रकार के रोग हो जाते हैं। इसके उपरांत प्रत्येक के हाथ बारम्बार मुंह में लगते हैं फिर भोजनों में, तो एक के रोग दूसरे में प्रवेश कर जाते हैं, इसी हेतु कोढ़ी को कोई अपने साथ भोजन नही कराता। इसके अतिरिक्त यदि कुटुम्ब के बीच अन्य कोई सम्बन्धी जो दूर देश में रहता है वह गुप्त रूप से शराब मांस भक्षण करता है वा व्यभिचार में लिप्त है तो एक साथ खाने पीने से अन्य मनुष्यों की पवित्रता पर भी धब्बा लगजाता है। इन सब के उपरांत जूठा भोजन करना महा पाप है क्योंकि इससे केवल शरीरिक रोग ही उत्पन्न नहीं होते वरन् बुद्धि को अशुद्धकर उसके सम्पूर्ण बल का नाश कर देता है। प्रत्यक्ष में देख लीजिये कि जो मनुष्य जूठा खाते हैं उनके मस्तक गन्दे होते हैं कि जिससे उनको सोच विचार करने का स्वभाव बिलकुल नहीं रहता। इसका कारण यह है कि जूठा भोजन करने में स्वच्छता नहीं, बस जहां स्वच्छता वा शुद्धता नहीं वहां शुद्ध बुद्धि का क्या कहना। सभ्यता शुद्ध बुद्धि का फल है, इसी कारण मनुजी आदि ऋषियों ने जूठा खाने का निषेध किया है। अतः आर्य्य पुरुषों का यही धर्म है कि चाहे अपना लड़का ही हो उसको भी जूठा भोजन न दें। बचपन से ही झूठ तथा जूठे भोजन से घृणा करना उचित है। हमारे बहुधा स्वदेशीय बन्धु जो धर्मशास्त्रों का अवलोकन नही करते, न कभी उनको सुनते हैं, वे अपने छोटे छोटे बच्चों को अपने साथ भोजन कराने वा उनका जूठा आप खाने तथा अपना पियाहुआ पानी उन्हें पिलाने में बड़ा

लाड़ समझते हैं। कैसे शोक का स्थान है कि महा निन्दित कर्म को लाड़ प्यार वा धर्मकार्य समझते, उनकी बुद्धि का नाश मार सर्वस्व का सत्यानाश कर देने पर भी परमहितैषी कहलाते हैं। हा शोक ! हा शोक !! हा शोक !!! इसके उपरांत इस देश में बहुधा मत ऐसे चल गये हैं जिनमें चेला चेलियों को गुरु का जूठा खाना धर्म का अंश माना है जिससे उनके जूठे टुकड़े बांटे जाते हैं वा गुरु का जूठा पानी अमृत के समान जान कर पान करते हैं। प्यारे सुजनों ! परीक्षा से जाना गया है कि ऐसे गुरु आत्मा और परमात्मा का नाम तक भी नहीं जानते, केवल धन इकट्ठा करना, विषय भोगादि में लगे रहना ही इन गुरुओं के परम धर्म हैं। फिर चेलों का क्या कहना इसलिये हे प्यारे सुजनों ! ऐसे पातकी गुरुओं से सदा बचना योग्य है।

इसके अतिरिक्त अति भोजन कभी न करना चाहिये क्योंकि उससे नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं, आलस्य सदा बना रहता है जिसके कारण सांसारिक वा पारमार्थिक कार्य्यों को अच्छे प्रकार नहीं कर सकते और संसार में ऐसे मनुष्यों की निन्दा होती है तथा सर्वजन पेटार्थी कहते हैं। जो मनुष्य सदा नियत समय पर पथ्याऽपथ्य अनुसार प्रमाण से भोजन करते हैं उनको 'मिताऽहारी' और 'मात्राप्रमाणी' कहते हैं। उन्हीं का शरीर सदा आरोग्य रहता है।

भोजन करने का स्थान पाकस्थान से प्रथक होना चाहिये, जो अच्छे प्रकार सफ़ेदी से पुता हुआ हो तथा वहां नाना प्रकार की सुगन्धित वा मनोहर अनोखी वस्तुयें रक्खी हों जिनसे नेत्रों को आनन्द तथा मन को हर्ष हो। वहां किसी प्रकार की मलिनता न हो तथा वायु भी अच्छे प्रकार से आती जाती हो। भोजन के समय माता, पिता, स्त्री, भाई मित्र, पाककर्त्ता, वैद्य के अतिरिक्त कोई न होना चाहिये, क्योंकि भोजन भजन एकान्त हीमें अच्छा है। भोजन करनेके समय में वार्त्तालाप करना अनुचित है, क्योंकि एक इन्द्रिय से एक समय में दो कार्य उत्तम नहीं हो सकते किन्तु दोनों अधूरे ही रह जाते हैं अतः एक समय में एक इन्द्रिय से एक ही काम लेना योग्य है। हां मित्रादि उत्तम तथा प्रसन्न करनेवाली कहानियों वा प्रीतिकारक बातों को सुनाते जावें तो श्रेष्ठबात है।

भोजन को अच्छे प्रकार चबाकर खावें, कच्चे फ़ल और बहुत तरकारी से परहेज़ रक्खें इसके अतिरिक्त हैज़ा के दिनों में खाने का खूब विचार

रक्खें। भोजन करने के पीछे सौ पग टहलने से अन्न पचता तथा आयु की वृद्धि होती है, इसके पीछे थोड़ी देर पलंग पर लेटने से अंग पुष्ट होता तथा खुर्राटे मारने से रोग होते हैं। इस स्थान पर यह भी स्मरण रहे कि दिन में भोजन करने के उपरान्त पलङ्ग पर बायें दायें करवट लेटना तथा शाम को भोजन करने के पश्चात् टहलना परम लाभदायक है।

खाने के पश्चात् बेंच, स्टूल, तिपाई, कुरसी आदि पर बैठने, नींद से सोने, आग के सम्मुख बैठने, धूप में चलने दौड़ने वा घोड़े की सवारी पर चढ़ने तथा कसरत आदि से नाना दोष उत्पन्न होते हैं, अतः भोजनों के पश्चात् एक घंटे वा अधिक समय तक ऐसे काम न करने चाहियें। इसके उपरान्त पाचन के अर्थ कोई चूर्ण वा शरबत न पीना चाहिये क्योंकि फिर टेव पड़ जाने पर बिना चूर्ण आदि के पाचन नहीं होता तथा आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त अत्यन्त पानी पीना, बिना पचे भोजन करना, बिना क्षुधा के खाना, भूख का मारना या आध सेर के स्थान पर एक सेर खाना अथवा अत्यन्त न्यून खाने इत्यादि कारणों से अजीर्ण वा मन्दाग्नि आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

इन्हीं कारणों से भूखा रहना अच्छा नहीं परन्तु अब वर्त्तमान समय में भूखे रहने वालों को ही व्रती कहते हैं तथा उनकी बड़ी प्रतिष्ठा होती है और वह भी अपने मनमें स्वर्ग जाने की आशा रखते हैं, परन्तु प्रिय भ्रातृगणों! यह महा मिथ्या है क्योंकि सत्शास्त्रों में बिना अजीर्ण के किसी दिन निराहार रहने की आज्ञा नहीं है। कहा है—"भूखे भजन न होइ गुपाला, यह लो कंठी यह लो माला।" इससे स्पष्ट है कि जब नियत समय पर अन्न नहीं मिलता तो सम्पूर्ण इन्द्रिय मन-सहित विकल हो जाती हैं अर्थात् मारे क्षुधा के उदासीनता छा जाती, हाथ पांव में शिथिलता आ जाती है, आंख निकली पड़तीं, प्यास के मारे कण्ठ सूखने लगता तथा एक एक पल वर्ष के समान बीतता है। भजन में मन की एकाग्रता की आवश्यकता है, क्या ऐसी दशा में मन आराम पा सकता है? फिर व्रत कैसा। तिस पर विशेषता यह है कि बालक, बूढ़े, दुर्बल, गर्भिणी आदि को भी यह व्रत कराये जाते हैं। शोक! महा शोक!! कि जिससे नाना प्रकार के क्लेश हों उसको धर्म का चिन्ह माना जाय सत्

शास्त्रों और परमेश्वर की आज्ञा का कुछ विचार न किया जाय। इसका नाम अंधेर नहीं है तो क्या है ?

इसके उपरान्त व्रत ऐसे भी हैं कि जिनमें बासी भोजन खाये जाते हैं जैसे 'देवी महारानी का बस्योरा'। क्या ही आश्चर्य का स्थान है कि हम श्रीकृष्णजी महाराज की आज्ञा पर तनिक भी ध्यान नहीं देते, उन्होंने गीता के १२ अध्याय के १० श्लोक में बासी भोजन करना मना किया है क्योंकि उससे तामसी भाव उत्पन्न होता है, अर्थात् बुद्धि मलिन होजाती है, आलस्य भरा रहता है। इसके अतिरिक्त बहुधा स्त्रियाँ अन्न छोड़देती हैं। हे प्यारी बहिनों ! इससे तुम्हारी बड़ी हानि हो जाती है, नाना रोग तुमको घेरे रहने के कारण सन्तानों को भी बड़े बड़े दुःख उठाने पड़ते हैं। प्रत्यक्ष देखो कि उन दिनों में तुम्हारी क्या दशा होजाती है। यही नहीं बहुधा स्त्रियां नमक छोड़ देती हैं और इसीको वे परम तप समझती हैं। यह भी उनकी बड़ी भूल है। क्योंकि यह स्वाद के कारण नहीं खायाजाता वरन् मनुष्य के रक्त के साथ बहुत सा भाग नमक का है, नमक के साथ भोजन पचता है, बिना इसके खाये बल का नाश होजाता है, अन्त में उनके शरीर में कीड़े पड़जाते हैं कि जिनसे उनको नाना क्लेश भोगने पड़ते हैं। बहुधा व्रतों में अन्न का निषेध किया है और व्रतों में सिंघाड़ा, पोस्ता, फाफड़ा, घुइयां, आलू आदि कुपथ्य भोजन किया जाता है कि जिससे स्वास्थ्य रहना अति कठिन है। गेहूं आदि दाल, भात, तरकारी सदा पथ्य हैं उनमें दोष बताना ही पाप की बात है। इन व्रतों के करने की आज्ञा सत् शास्त्रों में नहीं है, हां शुद्ध आचरण का नाम ही व्रत है जिसका वर्णन हम आगे करेंगे। इस कथन का तात्पर्य यह है कि जो अच्छे प्रकार संस्कार (शुद्ध) किये, रोग हरने एवं बुद्धिप्रदाता अन्न का भोजन कर सन्तानों को उत्पन्न करते हैं उनकी सन्तान विद्वज्जन प्रिय, दीर्घायु तथा सुशील होती है। ऐसा ही ऋग्वेद में कहा है। इसलिये सदा उपरोक्त बातों का ध्यान कर ऋतु अनुकूल भोजन करना अभीष्ट है, क्योंकि य० अ० १० मं० १४ में कहा है कि जो मनुष्य सब ऋतुओं के अनुकूल आहार विहार कर क्रिया योगाभ्यास और सत्संग का अच्छे प्रकार सेवन करते हैं वे सब ऋतुओं में सुख भोगते हैं। चरक ऋषि कहते हैं कि जो मनुष्य ऋतुओं के अनुकूल चेष्टा (दिनचर्या) व्यवहार और आहार के कर्त्तव्य में दक्ष है उसी परिमित-

भोजी मनुष्य का शारीरिक बल और कांति बढ़ती है और जो मितभोजी ऋतु विरुद्ध खान पान करते हैं उनके स्वास्थ्य में अन्तर पड़ जाता है। इस लिये अब हम ऋतु-भोजन लिखते हैं।

शरद् ऋतु के भोजन

मिश्री, गाय का दूध, घी, शक्कर, चावल दाल मूंग, इसके उपरांत और वस्तु जो ऋतु और स्वभाव के अनुसार हों। घी में कालीमिर्च और शक्कर डाल कर खाना चाहिये। नदी का पानी पीना उत्तम है। तैल की चीज़ें, आम की खटाई, लाल मिर्च, दिन में सोना, रात में जागना ये सब बातें इस ऋतु में न करनी चाहियें।

अधिक शरदी के भोजन

दूध, घी, उरद की दाल, चावल मुश्क केशर, शरीर में तैल लगाना, ऋतु के फल स्वभाव के अनुसार खाना, रुईके वा ऊनी कपड़े पहनना योग्य है और कसरत करना भी भला है।

वसन्त ऋतु का पथ्य

गेहूं, चावल, मूंग, शक्कर का भोग लगाना, शरबत पीना उत्तम है। प्रातःकाल सायंकाल वायु सेवन, कसरत करना, क़ै करना, जुलाब लेना इस मौसम में अच्छा है। खट्टा दही और चिकनी कड़ी वस्तुओं का खाना अच्छा नहीं।

ग्रीष्म ऋतु का पथ्य

गेहूं, चावल, मिश्री, दूध, शक्कर ठण्डा पानी, गुलाब केवड़ा ख़स मोतिया का इतर सूंघना, प्रातःकाल सफ़ेद हल्का सूती वस्त्र धारण करना और दस बजे से पांच बजे तक सूती ज़ीन वा गज़ी वा कोई मोटा कपड़ा पहनना, फिर पांच बजे के पश्चात् महीन वस्त्र धारण करना, दिन में तहख़ाने वा पटे हुए मकान में और रात को ओस में सोना उत्तम है। मुरब्बा आंवला, सेव का खाना, सुन्दर पुष्पों की माला धारण करना वा सूंघना, सफ़ेद चन्दन का लेप करना श्रेष्ठ है, परन्तु सिरका, खट्टी वस्तु, रात में परिश्रम तथा धूप में पर्यटन करना अच्छा नहीं।

वर्षा ऋतु

गेहूं, चावल, उरद का भोजन, दूध और कुएं का पानी पीना, शरीर पर मिट्टी लगा कर कसरत तथा घोड़े पर सवार होकर वायु-सेवन करना भला है, परन्तु धूपमें फिरना, पानी में भीगना, बहुत सोना, ठण्ढी वस्तुओं का अधिक सेवन करना, नदी, तालाब का पानी पीना भला नहीं।

चैतै गुड़ बैसाखै तेल, जेठै पन्थ अषाढ़ै बेल।
सावन दूध न भादों मही, क्वार करेला कातिक दही॥
अगहन जीरो पूसै धना, माहै मिश्री फागुन चना।
जो ये बारह देय बचाय, ता घर वैद्य कबहुं ना जाय॥

पान

भोजन करने के पश्चात् एक पान भी खाना योग्य है। यह मुंह की दुर्गन्धि को दूरकर और उसकी शोभा बढ़ाता है, जिह्वा और दांतों को स्वच्छ करता है, खाने में स्वादिष्ट, शौच को लानेवाला और बल को देनेवाला है। परन्तु इसके अधिक खाने से शरीर न्यूनबल और आंखों का प्रकाश कम हो जाता है एवं दांत और कान को भी हानिदायक है तथा पाचन शक्तिको भी कम करता है और इससे नासूर भी हो जाता है। भूख, नेत्र-पीड़ा, बेहोशी में भी पान न खाना चाहिये। इसको भारतवर्ष में नागरबेल भी कहते हैं। दूध पीने के पश्चात् शीघ्र ही पान न खाना चाहिये।

इसके उपरांत अब हम सवसाधारण के जानने के लिये अन्न, फल, शाकादि की कुछ व्याख्या करते हैं जिससे अधिक लाभ होने की आशा है।

गेहूं—वातनाशक, मधुर, शीतल, जीवनकर्त्ता तथा भारी होते हैं।

जौ—रूक्ष, शीतल, भारी, मिष्ट, वायुकारक, दृढ़ताकारी, बलकारी, कफज विकारों के नाश करनेवाले होते हैं।

तिल—कुछ कसीला, पित्तकर्त्ता, अग्नि बुद्धि को बढ़ानेवाला है, सब प्रकार के तिलों में काला तिल उत्तम है।

मटर—अत्यन्त वादी और वातकर्त्ता है।

मसूर—पाक में मधुर और मल को रोकती है।

उरद—पुष्टिकारक, अत्यन्त वातनाशक स्निग्ध, उष्ण, मधुर, गुरु, बलकर्त्ता और मलवर्द्धक है।

मूंग—मूंग की दाल का कषाय मधुर, रूक्ष, शीतवीर्य, कटु पाकी, कफ़ पित्तनाशक है।

मोठ—रस और पाक में मधुर, रूक्ष, शीतल तथा रक्त पित्त और ज्वर में हितकारी है।

चना—हल्का, शीतल मधुर, कषाय, रूक्ष कर्त्ता, कफ़ पित्त में हितकारक है।

कांगनी कोंदू नीवार शामक—अन्न शीतल, हल्का, वातकर्त्ता, कफ़ पित्त हर्त्ता है, जिसमें कांगनी टूटेको जोड़ती और धातुओंको पुष्ट करती है।

कुलथी—गरम, पाक में खट्टी, वीर्य पथरी श्वास पीनस तथा खांसी बवासीर कफ़ वात को नाशती और विशेषतः रक्त पित्त को देती है।

अरहर—कफ़ पित्त नाशक, वातकर्त्ता है।

सब प्रकार की बरी—क़ब्ज़ और बादी को बढ़ानेवाली होती हैं।

पकौड़ी—बगन अथवा और कोई शाक भर कर जो पकौड़ी बनाई जाती हैं वह वातकर्त्ता होती हैं।

चांवल—कई प्रकार के हैं शीत वीर्य रस, त्रिपाक में मधुर अल्प वातकारक मल को बांधनेवाला। **साठी का चांवल**—शीतल, स्निग्ध, भारी त्रिदोष नाशक दृढ़ताकारक होता है। **सफ़ेद साठी का चांवल**—गुणों में उत्कर्ष होता है और काला सफ़ेद साठी का चांवल उसकी अपेक्षा न्यून गुण वाला है।

सत्तू—वातकर्त्ता, रूक्ष, मल को बढ़ानेवाला, पुष्टिकारक, प्यास पित्त और कफ़ को दूर करता है। जो पानी में घोल कर पिया जाता है वह तत्काल बल करनेवाला, भेदी और वातनाशक होता है, जो सत्त चाटा जाता है वह मृदु होने के कारण शीघ्र ही पच जाता है।

खील—दीपन, कफ़ बलकर्त्ता, कसीली, मीठी, हल्की, प्यास और मल दूर करती है।

खील के सत्तू—प्यास दाह नाश करता है।

चिरवा—धान भिगो कर जो कूटे जाते हैं और फिर भाड़ में भूने जाते हैं उन्हें चिरवा कहते हैं। ये रक्त पित्त, दाह, ज्वर के नाश करनेवाले भारी, स्निग्ध और कफ़ वर्धक होते हैं।

धान—नवीन धान अभिष्यन्धी (भारी) होता है, एक बरस का पुराना धान हल्का, जो कम बढ़ा हो दाहकर्त्ता भारी विष्टम्भी और दृष्टि को बिगाड़ता है।

❀ साग [शाक] ❀

पालक का शाक—भारी और सर्द है।

गाजर—तीक्ष्ण है, पित्तवालों को हित नहीं करती।

ज़िमीकन्द—दीपन, रुचि में हित, कफ़ को नाशता और हल्का है, बवासीर के रोग में पथ्य है।

सरसों—त्रिदोषकर्त्ता और मल मूत्र को रोकनेवाला है।

चौलाई—कसीला होने से विष्ठा को नहीं फाड़ता, मूत्र को नहीं बढ़ाता, न कफ़कारी है, रस में स्वादु, पाक में मीठा, तृप्तिकर्त्ता, दूध बढ़ाने वाला और रुचिबर्द्धक है।

सेम—रूक्ष, कसीली, विषरोग शोफवीर्य कफ़ और दृष्टि का क्षय करने वाली, विदाही, कटुपाकी, दस्त करानेवाली और बादी और पित्त को बढ़ाती है।

पोई—पाक रस में मिष्ट, पुष्टिकारक, वात पित्त मद नाशक, दस्तावर, चिकना, बलकारक, कफकर्त्ता और ठंडा होता है।

कुलफा—शहत और दूध के साथ न खाय, क्योंकि इसके खाने से वर्ण, तेज, वीर्य का नाश तथा नपुंसकत्तादि कठिन रोग उत्पन्न होते हैं।

ककड़ी—स्वादु, भारी, विष्टम्भी शीतल है।

फूटघिया—मल भेदक, रूक्ष, शीतल, भारी है।

पेठा—मीठा, खट्टा, हल्का तथा मूत्र मल बहुत लाता है और सम्पूर्ण दोषों को दूर करता है।

कसेरू सिंघारा—भारी, विष्टम्भी, शीतल है।

मकोय—त्रिदोष नाशक, वृष्य, रसायन न अत्यन्त शीतल न अत्यन्त उष्ण है, कण्ठ को हित और कोढ़ को नाश करता है।

मेथी—पित्त-नाशक है।

बैंगन—कई प्रकार के होते हैं, गोल बैंगन को मारू लम्बे को वतिया कहते हैं। रंग भी दो प्रकार के हैं, काला और श्वेत।

गुड़—कफ़ बादी नाशक, चरपरा, रोचक, कड़वा, हल्का, दीपन है, पाक में तुनखरा, पित्तकर्त्ता है।

गोभी—कफ़ पित्त नाशक, शीतल, मिष्ट है।

मटर—कफ़ पित्तनाशक, वातकर्त्ता भारी, रस में कसीला, पाक में मधुर है।

काशीफल—पित्त नाशक, अधपका कफकर्त्ता, पका हुआ, हल्का, गरम तुनखरा, दीपन और वस्तिशोधक है।

करमकल्ला—दीपन, विष दोष नाशक कडुवा है।

करेला और नाड़ी का शाक—बगन के समान गुण करता है।

परवल के पत्ते और फल का शाक—कफ़ पित्त नाशक, गरम और चरपरा, बादी-रहित, कटुपाकी, पुष्टिकर्त्ता, रुचिबर्द्धक और पाचन होता है।

खीरा--कच्चा खीरा जिसका रंग नीला होता है वह पित्त का हरनेवाला है। पीले रंग का पका हुआ कफ़कर्त्ता, भारी, रस में कसीला, पाक में मधुर होता है।

पिड़ाले--कफकर्त्ता, बादी को कोप करानेवाले और भारी होते हैं।

ब्राह्मी--कसीली, पित्त में हितकारी, रस पाकमें स्वादु हल्की होती है।

शकरकन्द—भारी, कफ़ बादी करने वाली और पित्तनाशक है।

चने का शाक--पाक रस में मिष्ट, देर में पचने वाला है।

सैंजनी की फली—वात की नाशक है।

अदरक का शाक—कफ़, बातनाशक, स्वर को हितकारी, शूल को दूर करने वाला, स्वाद में कड़, वीर्य में उष्ण, रोचक, हृदय को हितकारी और बलकारक होता है।

मूली—छोटी मूली रस में कड़वी, चरपरी हृदय को प्रफुल्लित करनेवाली, रुचि को बढ़ानेवाली, जठराग्नि को प्रबल करनेवाली, सम्पूर्ण दोषों को दूर करनेवाली, हल्की और कण्ठ को हितकारी है।

बड़ी मली—भारी, मल को रोकनेवाली और तेज़ होती है। **कच्ची**—त्रिदोष करनेवाली है। **घी में भुनी**—पित्त को दूर करनेवाली कफ़ और वादी को जीतनेवाली है। **सूखी**—त्रिदोष को शमन करनेवाली और हल्की होती है।

आलू—सब प्रकार के आलू उष्ण, मधुर, भारी, रूखे, विष्टम्भी, दुर्ज रक्त पित्त को दूर करनेवाले हैं और मल मूत्र को गिराने वाले हैं।

भिण्डी—भारी, बलकारक, बात पित्त के रोगों को दूर करती है।

छोटी तोरई—चिकनी, आम कफ को बढ़ानेवाली, भारी, रक्त पित्त को जीतनेवाली है।

ख़रबूज़ा का शाक—मूत्र को लानेवाला, कोष्ठ को शुद्ध करता तथा बल वीर्य को बढ़ानेवाला, चिकना, स्वादु, शीतल, वात पित्त नाशक है यह मीठे ख़रबूज़े के गुण हैं।

टेणस—रुचिकारक, भेदी, पित्त कफ़ को दूर करनेवाले, शीतल, वातकारक, रूखे, मूत्रकारक, पथरी नाश करनेवाले हैं।

सेमर के फूल का शाक—कफ पित्त रक्त विकारों को दूर करता ग्राह्य, वातकारक, मधुर, कसैला, शीतल, भारी होता है और स्त्रियों के दुःसाध्य प्रदर रोग को दूर करता है।

अगस्त के फूल का शाक—स्वादु, कडु, तिक्त, कसैला, वात पित्त कफ को जीतने वाला, रतौंध दूर करनेवाला और पीनस का नाशक है।

केले की फली—चिकनी, मधुर, कसैली, भारी, शीतल, वात, रक्त, पित्त क्षयी रोग नाशक है।

सूखा शाक—मली के सिवाय और सब सूखे शाक विष्टम्भी, वात पित्तकर्त्ता हैं।

विशेष सूचना—कीड़ों का खाया हुआ, धूप या हवा से मारा हुआ, सूखा, पुराना, कुऋतु का, बिना घी तैल से पकाया हुआ, उबाल कर बिना निचोड़ा शाक न खाना चाहिये।

फल

सामान्य गुण—सम्पूर्ण फल सामान्य रीति से रस में खट्टे, पाक में भारी, वीर्य में उष्ण, पित्तकर्त्ता, बातनाशक और कफ को कठिनता से निकालते हैं।

अनार—कसीला, कुछ पित्तकर्त्ता, रुचिकर्त्ता हृदय को हितकारी, मल को रोकनेवाला होता है। अनार दो प्रकार का होता है-मीठा और खट्टा। मीठा अनार त्रिदोषनाशक है और खट्टा बादी कफ को दूर करता है।

आंवला—मीठापन लियेहुए खट्टा, चरपरा, कसैला, कड़ुवा दस्तावर नेत्रों को हितकारी, सम्पूर्ण दोषों का नाश करनेवाला और पुष्टिकारक है। खट्टा होने के कारण बादी को दूर करता है। मीठा ठण्डा होने से पित्तनाशक है। रूखा, कसैला होने से कफ को दूर करता है यह और फलों से गुणों में अधिक होता है।

बेर—झाड़ी बेर और गोला बेर ये दोनों कच्चे पित्त कफको नाशते हैं।

पक्का बेर—पित्त वात को दूर करता, चिकना, मीठा, दस्तावर है।

पुराना बेर—प्यास को कम करता, दीपन, हल्का है।

सौवीर—अर्थात् बड़ा बेर, चिकना मीठा और वात पित्त को जीतता है।

सेव—कसैला, मीठा, शीतल है।

कैथ—कच्चा कैथ बोली को बिगाड़ देता है, कफनाशक और बादी करता है।

पक्का कैथ—बादी को दूर करता, रस में मीठा खट्टा है और भारी है।

पक्का आम—रस में कसैला, मीठा, वातनाशक, भारी, कुछ पित्तकर्त्ता और वीर्य को बढ़ानेवाला है।

बड़हर—त्रिदोष, कबज़ियत करता, बीर्य का नाश करता है।

करौंदा—खट्टा, प्यास को मारनेबाला, रुचिकर्ता, पित्तनाशक है।

आड़ू—हृदय को हितकारी, मीठा, कसैला, खट्टा, मुख का शोधनेवाला, पित्त कफ को दूर करता, चिरपाकी, विष्टम्भी, शीतल है।

नारंगी—खट्टी मीठी, हृदय को हितकारी, भोजन में रुचि बढ़ानेवाली, वातनाशक और देर में पचनेवाली भारी है।

जंभीरा—प्यास, शूल, कफ को कठिनता से निकालने, वमन और श्वास का निवारण करनेवाली होती है। बादी, कब्ज़ियत को दूर करती है भारी और पित्त करती है।

बड़ी जंभीरी—खट्टी, रक्त पित्त करनेवाली है।

जामन—अत्यंत बादी, कफ पित्त को दूर करनेवाली होती है।

खिरनी—चिकनी, मीठी, कसैली, भारी होती है।

सीताफल—कसैला, मीठा, रूखा, कफ़ वादी को जीतता है।

मौलसिरा—मीठी, कसैली, चिकनी, दाँतों को दृढ़ करनेवाली और विशद है।

अंजीर—विष्टम्भी, स्निग्ध तृप्ति करनेवाला और भारी होता है।

फालसा—कच्चा अत्यन्त खट्टा कुछ मीठा, कसैला, हल्का पित्तकर्त्ता; पका हुआ मीठा और वात पित्त का रोकनेवाला ह।

ताड़फल—मिष्ट, भारी और पित्तनाशक है।

नारियल—भारी, चिकना, पित्तनाशक, स्वादु, शीतल, बल और मांस का बढ़ानेहारा, हृदय को हितकारी है।

केले का फल—बादी, कसैला कुछ ठंढा, रक्त पित्तनाशक, पुष्टिकर्त्ता, रुचिकारी, कफकर्त्ता और भारी होता है।

दाख—दस्तावर, बोली को सुधारनेवाली मधुर, चिकनी, शीतल होती है। रक्त पित्त, ज्वर, तृष्णा, श्वास, दाह और क्षयी को नाश करनेवाली है।

खजूर—चोट, क्षयी को दूर करता है, हृदय को हितकारी, शीतल, तृप्ति करनेवाला, भारी रस पाक में मधुर, रक्त पित्तनाशक होता है।

महुआ—महुआ का फल फूल वृहण, हृदय को अहित और भारी है, महुआ का फल वात पित्तनाशक है।

लिसोड़ा—भारी, कफकर्त्ता मधुर, शीतल है।

वायबिडंग—चरपरी, कुछ विषनाशक और कृमिनाशक है।

हड़—गरम, दस्तावर, बुद्धिदात्री, दोषनाशक सूजन, और कोढ़ को दूर करनेवाली, कसैली, दीपन, खट्टी, नेत्रों को हितकारी है।

बहेड़ा—हल्का, रूखा, गरम, स्वर को अहित, नेत्रों को हितकारक, स्वाद पाकी, कसैला कफ पित्त को जीतनेवाला है।

सुपारा—कफ पित्तनाशक, रूखी, मुख की क्लेदता और विरसता को दूर करनेवाली, कसैली, कछ २ मीठी आर कुछ दस्तावर भी होती है।

जावित्री, जायफल, लौंग—ये चरपरी, कड़वी, कफनाशक, हल्की, तृषानाशक, मुख का गीलापन और दुर्गन्ध को दूर करती हैं।

कपूर—चरपरा, सुगन्धयुक्त, शीतल, हल्का होता है, प्यास, मुख की विरसता अर्थात् ज़ायका दुरुस्त करने में उत्तम है।

चिरौंजी की मींगी—मीठी, पुष्टिकर्त्ता पित्त वातनाशक है।

बिजौरा, अमलतास का गूदा—स्वाद पाकी, अग्नि बलबर्द्धक, चिकना, पित्त बादी को मारनेवाला होता हैं।

विशेष सूचना—व्याधित, कीड़ों से खाया हुआ, जिसका पकने का समय बीत गया हो, अनुचित काल में उत्पन्न हुआ हो और अपक्व इन सब फलों को छोड़ दे अर्थात् न खाय।

❁ दूध के गुण ❁

गाय का दूध—स्निग्ध, भारी, रसायन, रक्त पित्त का दूर करनेवाला, शीतल, रस और पाक में मधुर, जीवन को हितकारी, वात पित्त-नाशक है।

बकरी का दूध—सब तरह से गाय के दूध के समान गुणकारी है विशेष कर शेष रोगवालों को बहुत हितकारी है, अग्नि सन्दीपन, हल्का संग्राह्य है, श्वांस खांसी रक्त पित्त का नाश करनेवाला है।

भैंस का दूध—अत्यन्त अभिष्यन्दी, मधुर और जठराग्नि को मन्द करनेवाला है।

समय समय का दूध—प्रायःप्रातःकालका दूध भारी; विष्टम्भी और शीतल होता है, और सायंकाल का दूध प्रातःकाल की अपेक्षा गुणकारी, बादी मारनेवाला, परिश्रम कोदूर करनेवाला और नेत्रों को हितकारी है।

सामान्य दूध—प्रायः कच्चा दूध भारी, औटा हुआ बहुत हल्का होता है, परन्तु स्त्री का दूध तो बिना औटा ही हितकारी है, इसको कदापि गर्म न करे।

वर्जित दूध—दुर्गन्धित, खट्टा, रङ्ग बिगड़ गया तथा स्वाद में अन्तर पड़ गया, नमकीन और जिसमें फट कर गांठ पड़ गई हो ऐसे दूध को न पीवे।

धारोष्ण दूध—थनों से निकला हुआ दूध गरम गरम पीने में गुण देता है।

❋ दही के गुण ❋

दही—रस में कसैला, स्निग्ध और गरम होता है, पीनस, विषमज्वर, अतीसार, अरुचि, मूत्र और कृशता इन रोगों को दूर करता, पुष्टिकारक और प्राणों को चैतन्य करता है।

दही के भेदगुण—दही चार प्रकार का होता है। यथा मीठा दही-बहुत अभिष्यन्दी, कफ और मेदा का बढ़ानेवाला, खट्टा दही-कफ और पित्त का करनेवाला है; अत्यन्त खट्टा-रुधिर को दूषित करके विकारों को उत्पन्न करता और मन्दजात दही-दाहकर्त्ता मल मूत्र को निकालनेवाला और त्रिदोशकारी है।

गाय का दही—चिकना, अग्नि-संदीपन, बल का बढ़नेवाला होता है; बादी को दूर करता, शुद्ध, निर्मल और रुचि को बढ़ानेवाला है।

बकरी का दही—कफ पित्त का नाशकर्त्ता, हल्का, बादी और क्षयी को दूर करनेवाला है, बवासीर, श्वांस, खांसी इनमें हितकारी है और अग्नि को बढ़ाता है।

दही की मलाई—भारी, बलकारक, वात तथा अग्निनाशक और कफ वीर्य को बढ़नेवाली है।

दही सेवन ऋतु-शरद, बसन्त और ग्रीष्म इन ऋतुओं में दहा न खाना चाहिये, हेमन्त, शिशिर और वर्षा में दही खाना अच्छा है।

मठा के गुण—मधुर, खट्टा, कसैला, हल्का, उष्ण वीर्य, अग्नि-सन्दीपन होता है, विष, सूजन, अतीसार, ग्रहणी, पाण्डुरोग, बवासीर तापतिल्ली, गुल्म, अरुचि, विषमज्वर, तृषा, वमन, कफ वात रोगों को दूर करता, पाक में मीठा होता, हृदय को हितकारी, मूत्रकृच्छ्र, स्नेह रोगों को शान्त करनेवाला है।

मठा देनेका निषेध—जिसके घाव हो गया हो उसको न पिलावे, गर्मी की ऋतु में दुबल मनुष्य को, मूर्छा, भ्रम, दाह और रक्त पित्तवाले को थोड़ा देवे।

मीठा मठा—कफ करता और पित्तनाशक है।

खट्टा मठा—बादी का नाशक और पित्तकर्त्ता है। वात व्याधि में खट्टा मठा सेंधा नमक डाल कर पीना चाहिये, पित्त व्याधि में मीठा मठा खांड डाल कर और कफ की अधिकता में सोंठ, मिरच, पीपल, सेंधा नमक डाल कर देना योग्य है।

॥ घी के गुण ॥

सामान्य घी—शीत, शीतवीर्य मृदुस्वाद, उन्माद, मृगी, शूल और वात पित्त का नाश करनेवाला, अग्नि सन्दीपन, स्मरणशक्ति, बुद्धि, कांति, स्वर, सुकुमारता, तेज और बल का बढ़ानेवाला है, आयु को हितकारी, पुष्टिकारक है; भारी नेत्रों को हितकारी, कफ बढ़ानेवाला होता है।

गऊका घी--विपाक में मधुर, शीतल, वात, पित्त, विष रोगों का नाशक, नेत्रों का हितकारी, अग्नि, बल बढ़ानेवाला है। सम्पूर्ण प्रकारों के घृतों में गऊ का घृत उत्तम है।

बकरी का घी--दीपन, नेत्रों को हितकारी, खांसी, श्वास, क्षयी रोगों में हितकारी और पाक में हल्का होता है।

भैंस का घी--वात पित्त और रक्त पित्त नाश करनेवाला, कफकर्त्ता और शीतल होता है।

पुराना घी--दस्तावर, त्रिदोषनाशक और उन्माद, उदर, मृगी, योनि-रोग और कान आंख शिर की पीड़ाओं को नाश करता है।

मक्खन--यह नवीन निकाला हुआ दीपन, हृदयप्रिय, ग्रहणी और अर्श रोगों को दूर करनेवाला है। प्रातःकाल मिश्री के साथ खाने से विशेष कर शिर नेत्र को लाभ देता है।

॥ मसाला ॥

सोंठ--अग्नि दीपन, वात कफनाशक, मधुरपाकी, हृदयप्रिय और रुचिवर्द्धक होती है।

पीपल--हरी कफ कर्त्ता और भारी, सूखी वात नाशक, कटु, उष्ण होती है।

मिरच--यह उष्ण नहीं होती, अग्निसन्दीपन और कफ वात को जीतनेवाली और बल को कम करनेवाली है।

हींग--कफ़ वात को दूर करनेवाली, अग्निसन्दीपन और शूलनाशक, पाचक और रोचक भी होती है।

अदरक--कफ़ वातनाशक, शूल को दूर करनेवाला, स्वाद में कटु, वीर्य में उष्ण, रोचक, हृदय को हितकारी है।

सफ़ेद जीरा और काला जीरा--ये दोनों प्रकार के जीरे पाक में कटु, रुचिबर्द्धक, पित्त अग्नि को बढ़ानेवाले, स्वाद में कटु, कफ और वात को मारनेवाले और सुगन्धित हैं।

कलौंजी--इसके गुण जीरे के गुण के समान हैं, यह भोजनों और शाकादि को बहुत सुगन्धित बनाती है।

हरा धनिया--स्वादिष्ट होता है, सुगन्धयुक्त और हृदय को भाता है।

सूखा धनिया--पाक में मधुर, प्यास और जलन का नाश करनेवाला है।

सेंधा निमक--रोचक, दीपक, हृदयप्रिय, नेत्र-हितकारी, त्रिदोष-नाशक, मधुर सब निमकों में उत्तम है।

समुद्री निमक--पाक में मधुर, कुछ उष्ण, जलन को दूर करनेवाला, शूलनाशक और अत्यन्त पित्तकर्त्ता नहीं होता।

काला निमक--पाक में हल्का, वीर्य में उष्ण और कटु होता है, यह गुल्म शूलको नाश करता, हृदयको हितकारी, सुगन्धित और रोचक होता है।

सांभर निमक--तीखा, अत्यन्त गर्म कटुपाकी, वातनाशक, हल्का, बहुत बारीक रोम कूपों में प्रवेश करनेवाला, मल को फाड़ने और मूत्र लानेवाला है।

खारी निमक--हल्का, तीक्ष्ण, उष्ण, कफ पित्त को कोप करने, सूक्ष्म चरपरा, कटु और क्षारयुक्त होता है।

❋ तैल के गुण ❋

तैल--गरम, तीक्ष्ण, पाक में मधुर, प्रसन्न करनेवाला, पुष्टिकारक,

त्वचा को चिकना करनेवाला, बुद्धि, मृदुता, मांस की स्थिरता, वर्ण और बल का बढ़ानेवाला, नेत्रों का हितकारी, मूत्र को रोकनेवाला, तीखा, रसमें कसीला, पाचक, बादी और कफ का नाश करनेवाला, कृमिरोग नाशक, योनि-रोग, सिर कान की पीड़ाओं को शांत करनेवाला, गर्भाशय का शोधक, टूटे हुए और जले हुए आदि के लिये परम हितकारी है।

अरण्डी का तैल—मधुर, त्वचा को हितकारी, योनि और शुक्र के दोषों का शोधनेवाला, उदर रोगों का नाश करनेवाला है।

अलसी का तैल—बादी का नाश करनेवाला, गरम, भारी, पित्त-कर्त्ता होता है।

सरसों का तैल—कृमिनाशक, खुजली, कोढ़ को दूर करनेवाला हल्का, बादी के रोगों को दूर करनेवाला और दीपन है। जो तैल फलों से बनाये जाते हैं उनमें फलों के ही अनुसार गुण होते हैं। सब प्रकार के तैल बादी को दूर करनेवाले होते हैं।

❋ अन्य पदार्थ ❋

गेहूं आदि के चून में जो दूध डाल कर पदार्थ बनाये जाते हैं वे उत्साहकर्त्ता, हृदयप्रिय, सुगन्धित, अदाही, पुष्टिकर्त्ता, दीपन और पित्त-नाशक होते हैं। उनमें से—

घेवर—बलकर्त्ता, हृदय को हितकारी, कफकर्त्ता, वात पित्तहर्त्ता, पुष्टि कारक, भारी और रुधिर मांस को बढ़ाता है।

गुड के पदार्थ—गुड़ से बनी हुई पूरी, लड्डू वात पित्तनाशक, वीर्य कफवर्द्धक भी हैं। गूंझा, पुआ, लड्डू, खुरमा अथवा बालूसाई, ये भारी हैं, लड्डू देर में पचता है।

तिलकुट—तिल और गुड़ कूट कर बनाया जाता है, यह कफकर्त्ता है।

पूरी—कफ, हितकर्त्ता और उष्ण वीर्य है। पिट्ठी से बने भोजन कफ पित्तकर्त्ता हैं।

मैदा के बने पदार्थ—वात पित्तनाशक और पुष्टिकर्त्ता हैं। इनमें से फेनी हृदय को हितकारी, पथ्यतम और हल्की होती है।

उरद की दाल से बने हुए पदार्थ—विष्टम्भी, पित्त शमनकर्त्ता, कफनाशक, मल को फाड़नेवाले वलकर्त्ता और भारी होते हैं।

खोये से बने पदार्थ—भारी और कुछ पित्त करनेवाले हैं।

घृत पक्क—घी में पकाये हुए पदार्थ हृदय को हितकारी, सुगन्ध युक्त पुष्टिकर्ता, हल्के, वात पित्तहरता, वलकारक, वर्ण और दृष्टि को प्रसन्न करते हैं।

तैल पक्क—तैल में पकाये हुए पदार्थ, भारी, कटुपाकी, उष्ण, वात और दृष्टि के कम करनेवाले, पित्त और त्वचा को बिगाड़ते हैं।

खीर—क़ब्ज़ करनेवाली, वलकर्त्ता, कफ करनेवाली, भारी होती है।

खिचड़ी—कफ, पित्त, करनेवाली, वलकर्ता और वातनाशिनी होती है।

शिखरण—पुष्टिकर्ता, वीर्यवर्द्धक, चिकनी, वलकारक और रोचक होती है। तीन प्रकार का जो पानक अर्थात् पना होता है वह मल और दोषों को निकालता है। गुड़ (खांड शक्कर गुड़ादि से बना हुआ) खट्टा, भारी और मूत्र को लाता है और जो खांड दाख और शर्करा इमली सोंठ मिरच पीपल आदि डाल कर बनाते हैं वह बहुत उत्तम होता है।

मांस खाने का निषेध

अथर्ववेद काण्ड ८ अध्याय ४ मन्त्र २२ में लिखा है—

य आम मांसमदन्ति पौरुषेञ्च ये क्रविः।
गर्भान् खादन्ति केशवास्तानितोनाशयामसि ॥

जो लोग कच्चे अथवा मनुष्य के बनाये (पकाये) हुए और जो अंडों को खाते हैं ऐसे दुष्टों का मैं नाश करता हूं। अथर्ववेद का० ६ अ० ७ सू० ११ मन्त्र १ में लिखा है कि मांस मदिरा और व्यभिचार से मन में भ्रम हो जाता है।

यथामांसं यथासुरा यथाक्षा अधिदेवने।
यथापुंसो वृषरायतास्त्रियां निहन्यतेममः।
एवाते अघ्न्येमनोधिवत्सो निहन्यताम् ॥

मनु० अ० ७ श्लोक ५० में लिखा है कि नशा पीना, जुआ खेलना, आखेट, व्यभिचार ये चारों काम से उत्पन्न होते हैं जो बड़े दुःख के कारण हैं।

पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत्कष्टतमविद्यांच्चतुष्ककामजेगणे ॥ ५० ॥

ऋग्वेद अ० २ अ० ३ वर्ग ६ म० १ अ० २२ सू० १६२ मं० १२ में लिखा है कि जो लोग अन्न और जल को शुद्ध कर उनका बनाना और भोजन करना जानते हैं वे उद्यमी होते हैं और यजुर्वेद अ० ३५ मं० ३६ में लिखा है कि जो मनुष्य घोड़े आदि उपकारी पशुओं और उत्तम पक्षियों का मांस खावें उनको सबको राजा अवश्य यथायोग्य दण्ड देवे। इसी प्रकार यजुर्वेद अ० २५ मं० ३७ में भी आज्ञा है कि जैसे विद्वान मनुष्य मांसाहारियों को निवृत्त कर घोड़े आदि पशुओं की वृद्धि और उनकी रक्षा करते हैं उसी भाँति तुम भी करो। यजुर्वेद अ० ३ मं० ३७ में लिखा है कि हे मनुष्यों! तुम लोग पशुओं को मत मारो, मैंने उनको तुम्हारी रक्षा केलिये बनाया है अर्थात् यजमान को पशुओं की पालना तथा रक्षा करनी उचित है।

यजमानस्य पशून् पाहि।

यजुर्वेद अ० ३६ मं० १८ में लिखा है कि मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को भले प्रकार देखूं और यजुर्वेद अ० १३ मं० ५१ में लिखा है कि मनुष्यों को उचित है कि बकरी मोर आदि श्रेष्ठ पशु पक्षियों को न मारें किन्तु उनकी रक्षा कर उपकार लें। यजुर्वेद अ० १३ मन्त्र ५० में लिखा है कि हे राजन्! जिन भेड़ आदि के रोम और त्वचा मनुष्यों के सुख के लिये होते हैं और जो ऊंट भार उठाते हैं और मनुष्यों को सुख देते हैं उनको जो दुष्ट जन मारना चाहें उनको संसार का दुखदाई समझ अच्छे प्रकार दण्ड देना चाहिये और यजुर्वेद अ० १३ मं० ४६ में लिखा है कि हे राजपुरुषों! तुम लोगों को चाहिये कि जिन बैल आदि पशुओं के प्रभाव से खेती आदि के कार्य्य होते हैं और जिन गऊ आदि से घी दूध आदि उत्तम पदार्थ होते हैं और जिनसे सब प्रजा की रक्षा होती है उनको कभी मत मारो। जो मनुष्य इन उपकारी पशुओं को मारें उनको राजा आदि न्यायाधीश अत्यन्त दण्ड देवें। यजुर्वेद अ० १३ मं० ४८ में लिखा है कि एक खुरवाले घोड़े आदि और उपकारी वन के पशुओं को जिनसे

जगत्का उपकार होता है सदैव पालन पोषण करें परन्तु हानिकारक पशुओं को मारें और यजुर्वेद अ० १३ मं० ४७ में भी उपरोक्त प्रकार की आज्ञा है, केवल इतनी विशेषता है कि जिन जङ्गली पशुओं से गाँव के पशु, खेती और मनुष्यों की हानि हो उनको राजपुरुष मारें अथवा बन्धन में डाल दें।

इसके अतिरिक्त का० ४ वर्ग ३६ मं० ७ वा ८ और का० ५ वर्ग २६ मन्त्र १० वा १२ में मांस खानेवालों को राक्षस, पिशाच, दुष्ट वर्णन किया है और यजुर्वेद अध्याय ३४ मं० १५ में लिखा है—

न तद्रक्षांꣳसिनपिशाचास्तरन्ति, देवानामोजः प्रथमजꣳ ह्येतत्।

(रक्षांसि)—अन्यान् प्रपीड्य स्वात्मानमनये रक्षन्ति ते । (पिशाचाः) ये प्राणिनां प्रेषितं रुधिरादिकमात्रामदन्ति भक्षयन्ति ते हिंसका म्लेच्छाचारिणो दुष्टाः। अर्थात् वे राक्षस हैं जो औरों को दुःख देकर अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं और पिशाच वे हैं जो पशु पक्षियों के मांस आदि खाते और म्लेच्छ दुष्टाचारी होते हैं। इसी लिये कणाद मुनि ने वै० ६ अहिन० १ सूत्र ६ में लिखा है कि आत्मज्ञान दुष्ट भोजन में नही होता। यथा—

तद्दुष्टभोजने न विद्यते।

और अ० ६ अहिन० सू० ७ में लिखा है कि दुष्ट भोजन वह है जिसमें हिंसा हो। (दुष्टं हिंसायाम्) और अ० ६ अहि० २ सू० ८ में लिखा है कि हिंसा-रहित भोजन में दोष नहीं—

तद्दुष्टेन विद्यते।

अ० ६ अहिन० १ सू० १० में लिखा है कि हिंसा-रहित भोजनों से ही उत्तम कामों में प्रवृत्ति होती है।

पुनर्विशिष्टे प्रवृत्तिः।

इसी के अनुकूल मनु ने अ० १० श्लोक ६३ में अहिंसा सत्य, चोरी का त्याग, शौच, इन्द्रियों का रोकना यह संक्षेप से चारों वर्णों का साधारण धर्म कहा है—

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रह ।
एतंसामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः ॥

महामुनि पतञ्जलि जी ने योगशास्त्र पा० २ सू० ३० में अहिंसा सत्यास्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह ये पांच यम वर्णन किये है ।

तत्राहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।

इस पर व्यास जी ने भाष्य करते हुए लिखा है कि सब प्रकार से, सब काल में, सर्व प्राणियों से विरोध के त्याग को अहिंसा कहते हैं । यह अहिंसा सत्य आदि शेष नियमों का मूल है । इसके सिद्ध होने से सब सिद्ध होते हैं । इस भाष्य के ऊपर भोजदेवराज ऋषि अपनी वृत्ति में कहते हैं कि किसी प्राणी के प्राण का वियोग करना हिंसा कहाती है जो सब अनर्थों का कारण है, इसके न करने ही को अहिंसा कहते हैं. इस लिये यह सब प्रकार से त्यागने योग्य है । समाधि प्राप्त करने में पहिला साधन यम है और यम का पहिला लक्षण अहिंसा है, इससे प्रत्यक्ष प्रकट है कि मांसाहारी ईश्वर-प्राप्ति की जड़ काटते हैं और योग २ सू० ३१ में लिखा है कि जाति, देश, काल और समय के विचार से हिंसा चार प्रकार की होती है । इस लिये सब जीवों को, सर्व देशों में, प्रति समय सब दिशाओं में अहिंसा धर्म का पालन करना चाहिये । इसके अतिरिक्त मनु ने कहा है—

अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्य प्रभवाणि च ।

वैद्यक विद्या के शिरोमणि महर्षि धन्वन्वरिजी का ऐसा ही मत है कि अमेध्य पदार्थों का कभी सेवन न करना चाहिये, जो पदार्थ बुद्धि को बिगाड़ते हैं उनका नाम अमेध्य है । क्योंकि ऐसी वस्तुओं के खान पान से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जिससे 'आध्यात्मिक' 'आधिभौतिक' और 'आधिदैविक' ये तीनों प्रकार की तापें घेरे रहती हैं और सुख के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होवे । इसी कारण मनु जी ने स्पष्ट लिख दिया है—

'वर्ज्जयेन्मधु मांसं च'—अर्थात् शराब और मांस आदि हानिकारक पदार्थों को भक्षण न करना चाहिये ।

अहिंस्यात् सर्वभूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः ।

प्राचीन भारतखण्डीय मनुष्यों ने सर्व भूतों अर्थात् जीवधारियों को कि जिनसे देश का उपकार होता है जैसे गाय, भैंस, बकरी, घोड़ा, हाथी इत्यादि की रक्षा का नाम तीर्थ माना है।

इसी प्रकार चाणक्य मुनि ने ८ अध्याय के १३ वें श्लोक में लिखा है-

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात्परं सुखम्।
न तृष्णायाः परोव्याधिर्न च धर्मो दयासमः॥ १३॥

अर्थात् दया से बढ़कर कोई धर्म नहीं है, फिर भला मांस खानेवालों को यह बड़ा धर्म मिल सकता है? कदापि नहीं। जैसा कि कहा है-

गृहधन्धे कुतो विद्या भार्यालुब्धे कुतः शुचिः।
लोभलुब्धे कुतो लाभो मांसाहारी कुतो दया॥

इसी कारण तो कहा है कि 'बिना दया सन्त क़साई' महाभारत के अनुशासन पर्व अ० ११६ के १८ श्लोक में लिखा है कि 'अहिंसा परमो यज्ञः' अहिंसा परम यज्ञ है अर्थात् हिंसा न करने से देश का बड़ा उपकार होता है और यज्ञ से भी देश की भलाई होती है परन्तु अहिंसा यज्ञ का मूल है क्योंकि हिंसा होगी तो घृत आदि पदार्थों की न्यूनता होगी तो फिर भला यज्ञ किस प्रकार से होंगे जैसा कि वर्त्तमान समय में भारत के प्रधान नगरों में रुपये का आध सेर घृत बिकता है। अतः श्रेष्ठ यज्ञ अहिंसा है। पूर्व मीमांसा में भी लिखा है—'अहिंसा परमो धर्मः' महाभारत में लिखा है—

सर्वहिंसा निवृत्तिश्च नरः सर्व सहाश्चये।
सर्वस्याश्रयभूताश्च ते नरः स्वर्गगामिनः॥

और भी महाभारत के श्लोक ५७०२ में लिखा है-

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापराः।
अभयं सर्वभूतानि ददति स नुशुश्रमम्॥

इसी विषय में मनुस्मृति के अध्याय ५ श्लोक ४६, ४८, ५१ और ५५ को विचारिये।

यो बंधनवधक्लेशान् प्राणिनां न चिकीर्षति।

स सर्वस्य हितप्रेप्सुः सुखमत्यन्तमश्नुते ॥

जो मनुष्य किसी जीव के बध तथा बन्धन का क्लेश देने की इच्छा नहीं करता वही अति सुख को पाता है।

नाकृत्वा प्राणिनां हिंसा मांसमुत्पद्यते क्वचित्।
न च प्राणिवधः स्वर्ग्यस्तस्मान्मांसंविवर्जयत् ॥

प्राणियों की हिंसा के बिना मांस उत्पन्न नहीं होता और प्राणियों का बध स्वर्ग का हेतु नहीं, इसलिये मांस न खाना चाहिये। इस कथन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि हिंसा करना महा पाप है, फिर न जाने भारत-वासियों ने कौन से प्रमाण से मांस खाना स्वीकार किया है? बहुधा जन यह भी कहते हैं कि जीव-हत्या का दोष मारनेवालों पर होता है खानेवालों को क्या? इसके लिये उनको मनुजी महाराज के अध्याय ४ श्लोक ५१ को देखना योग्य है—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ॥

'अनुमन्ता अर्थात् जिसकी सलाह से मारा जावे, 'विशसिता जो पशु के अंग को शस्त्र से जुदा करे, और मारने, मांस को मोल लेने, मांस का बेचने, मांस का बनाने, परोसने, भोजन करनेवाले, ये आठों घात करनेवाले ही कहाते हैं। परन्तु अब विचार करने का स्थान है कि यदि सब जन मांस खाना छोड़ दें जैसा कि पहले इस देश में था तो क्यों क़साई लोग पशुओं को मारें? क्योंकि जिस पदार्थ की बिक्री अधिक होती है उसीको बेचने-वाले लाते हैं, इसलिए पशुओं के मारे जाने में खानेवाले ही मुख्य पापी हैं, शेष उसकी सहायता करने से दोष-भागी हैं।

प्यारे भाइयो! यदि वेद, स्मृति वा प्राचीन ग्रन्थ तथा अगले ऋषि मुनि और राजा प्रजा के खान पान पर आप दृष्टि डालें तो स्पष्ट प्रकट होता है कि उस समय मांस खाना प्रचलित न था क्योंकि पशुओं की रक्षा से ही देश का उपकार होता है, सो प्रत्यक्ष प्रकट है कि पूर्व समय में भारत ही भारत हो रहा था जिसका अब सत्यानाश हो गया है!

तदनन्तर मांस खाना स्वाभाविक प्रकृति के प्रतिकूल भी है क्योंकि (१)

जितने मांसाहरी जानवर हैं उनके शरीर से पसीना नहीं निकलता है, (२) मांसाहारी जीव चाब चाब कर नहीं खाते, परन्तु मनुष्य अन्न और वनस्पति खानेवाले पशुओं की तरह चाब चाब कर खाते हैं, (३) सर रावर्ट होम इत्यादि (जो इल्म नबातात के आलिम थे) लिखते हैं कि मनुष्य के दांत और उनकी अँतड़ियाँ वा सम्पूर्ण शरीर की बनावट और स्वभाव से प्रकट होता है कि वह मांसाहारियों की भांति उत्पन्न नहीं हुआ, (४) जो जन्तु मांसाहारी होते हैं वे रात में शिकार करते हैं, परन्तु मनुष्य या वे पशु जो मांसाहारी नहीं हैं पानी को घूंट बांध कर पीते हैं, (५) मनुष्य की भांति वनस्पति खानेवाले जीवों के मुंह में जितना अधिक थूक रहता है उतना मांस खानेवाले जीवों के नहीं रहता ।

पाठकवर्गो! उक्त प्रमाणों से स्पष्ट प्रकट है कि मनुष्य जो सर्व प्राणी मात्र में उत्तम है उसको मांसभक्षी नहीं बनाया, वरन् वह अपनी स्वाभाविक प्रकृति को छोड़ मांसाहारी बन गया, हा शोक! हा शोक !! हा शोक !!! गाय, भैंस, घोड़ी, बकरी आदि जो मनुष्य से अत्यन्त निकृष्ट हैं वे तो अपने स्वाभाविक नियम पर चले जाते हैं, यदि कोई परीक्षा के अर्थ इन पशुओं के सम्मुख मांस का टुकड़ा डाल दे तो वे कदापि नहीं खाते परन्तु मनुष्य का यह हाल ! क्या पशुओं से भी निकृष्ट कर्म नहीं है ?

बहुधा मांसभक्षी यह कहते हैं कि इससे शरीर में बल रहता है और शरीर का पुष्ट रखना भी योग्य है, इसके उत्तर में विचारना चाहिये कि जब अन्य अन्य पदार्थों के खाने पीने से अधिक पुष्ट और निरोग रह सकते हैं तो फिर भला इस हत्यारूपी कर्म को कि जिससे सर्वनाश हो गया करना महा मिथ्या और पाप की बात नहीं है ? इसके उपरान्त जो पुष्टता वा आरोग्यता आदि शुभ गुण अनाज, शाकपात, फल, फूल के खानेवालों में पाये जाते हैं वे इन मांसाहारियों में दर्शन मात्र को भी नहीं मिलते, क्योंकि वे स्वाभाविक और शारीरिक बनावट से मांसाहारी नहीं हैं ।

इसके उपरान्त हमारे प्राचीन पुरुष कि जिनके वृत्तान्त महाभारत रामायण इत्यादि इतिहासों में सुने जाते हैं क्या वे हम तुम से किसी बात में कम थे ? नहीं ! नहीं !! और जो कार्य उन्होंने किये इन मांसाहारियों से कदापि नहीं होंगे, क्या यह प्रत्यक्ष प्रकट नहीं है ? हां कठोरता, निर्दयता, आलस्य, प्रमाद, रोग, व्यर्थव्यय इत्यादि दुर्गुण फैल गये कि जिनके

कारण कौड़ी के तीन तीन हो रहे हैं और ज़रा ज़रा से मनुष्यों से भय खाकर दुम दबाकर घरों में स्त्रियों की भांति छिपते हैं और पुष्टता का दावा करते हैं। एकसमय वह था कि जिसके रहते रहते सब के छक्के छूटते थे, सब यहां आकर शिर नवाते थे यथा नाना प्रकार की विद्याओं में उन्नति थी जिनके वर्त्तमान समय में चिह्न तक दृष्टि नहीं आते, रोगों के मारे प्रतिदिन प्रत्येक गृह में दुन्द पड़ा रहता है क्या इसीका नाम पुष्टता है? प्यारे भाइयों! मांस-भक्षण से कोढ़, पथरी, अजीर्ण, पेचिश, गंज आदि रोग हो जाते हैं और मांस खानेवालों का मांस बुढ़ापे में अधिक ढीला पड़ जाता है तथा वायु के विकार भी शीघ्र असर करते हैं, उनके मुंह से दुर्गन्धि भी अधिक आती है, फिर भला बल का क्या कहना!

इसके अतिरिक्त मांस में केवल १०० में ३६ भाग वह सत्ता रहती है कि जिससे मनुष्य पुष्ट होता है, शेष ६४ भाग पानी, परन्तु अनाज में ८० से ६० फ़ी सैकड़े वह सत्ता (ताक़त) होती है, और सिवाय इसके मनुष्य की स्वाभाविक उष्णता (हरारत गरीज़ी) के लिये जिस उष्ण वस्तु की आवश्यकता है जिसको कार्बोनिशस कहते हैं वह मारे हुए पशु के मांस में वनस्पति की अपेक्षा बहुत कम है और जिस वस्तु से हड्डियां बढतीं वा पुष्ट होती हैं वह भी वनस्पति में अधिक होती है, फिर क्या कारण कि मिथ्या पशु मार कर देश का सत्यानाश मार देवें और तनिक भी विचार न करें?

इसके उपरान्त मस्तक-शक्ति के देखने से प्रकाश होता है कि मांस का आहार मनुष्य के लिये उपयुक्त नहीं है, क्योंकि संसार में प्रायः जितने बड़े बड़े विद्वान् और अनुभवी पुरुष हुए कि जिन्होंने अपनी बुद्धि-बल से अनेकान् नवीन विद्याओं में योग्यता प्राप्त की है वे या तो सारी अवस्था में अथवा आयु के एक बड़े भाग में मांस-त्यागी हुए हैं। जैसे मनु, पाणिनि, कात्यायन, पतञ्जलि, गौतम, कालिदास, धन्वन्तरि, अर्जुन, भास्कराचार्य, श्रीकृष्ण, व्यास, युधिष्ठिर, भीष्मपितामह, रामचन्द्र इत्यादि और अन्य देशों में प्लेटो, अफलातूं, प्लेटामार्क, डायोजनीज़ तथा सेन्टजेमस आदि (जो रूम के फ़िलासफ़रों में सब से बड़ा फ़िलासर था) मांस-त्यागी निश्चय किए गए हैं, इसी प्रकार और भी मनुष्य हुए हैं।

इसके सिवाय मांसाहारी जीवों से मांस न खानेवाले बलवान् होते हैं।

जैसा कि सिंह मांस खाता है उसके समक्ष गैंडा जो कि मांस नहीं खाता सिंह को धर दबाता है, एवं अरना भैंसा जो मांस नहीं खाता बड़ा बलवान होता है। इसी प्रकार मांसाहारी काबुली लोगों से इस देश के चौबे जो मांस नहीं खाते, बलबान् होते हैं। इस समय जो ४० करोड़ बौद्ध मतवाले हिन्दुस्तान, चीन, जापान में रहते हैं जो मांस खाने का नाम भी नहीं लेते, वे इन मांसाहारियों से बल, पौरुष, बुद्धि, आयु आदि कौन सी बात में कम हैं वरन् अधिक हैं।

इसी भाँति अन्यत्र देशों में जो मनुष्य मांस नहीं खाते कि जिनको 'वेज़ीटेरियन' कहते हैं उन लोगों की समस्त आयु इस बात का प्रमाण है कि उनको मांसाहारियों की अपेक्षा शारीरिक रोग बहुत कम होते हैं। इन लोगों में बहुत व्यक्ति ऐसे भी पाये जाते हैं कि बुढ़ापे तक में कठिनता से कभी एक दिन के लिये भी कोई रोगी हुआ हो।

इंगलेंड और अमेरिका के 'वेज़ीटेरियन' लोगों में आज तक एक में से कोई भी पुरुष विशूचिका (हैज़ा) के रोगों में ग्रसित नहीं हुआ। प्यारे सज्जनो! इस पवित्र भारत देश में प्राचीन काल में हैज़ा एक अचम्भे की सी बात थी। इस रोग के न फैलने का यही कारण था कि एतद्देश निवासी मांस-भक्षण से बड़ा परहेज़ रखते थे। देखो स्पार्टा के रहनेवाले जो दुनियां की समस्त जातियों के इतिहास में धैर्य, साहस, उद्योग, बल, वीरता और हृष्ट पुष्टता के विचार से अनुपम थे, मांस-भक्षण नहीं करते थे। जिन दिनों ग्रीस (यूनान) और रूम (इटली की राजधानी) की समरविजयिता का झण्डा फहराता था उस समय उन विजयनी सेनाओं के लोग मांसाहारी न थे, किन्तु जब से उन्होंने मांस खाने का आरम्भ किया तभी से उनकी अवनति का बीजारोपण हुआ, यद्यपि उनकी अवनति के कई कारण और भी थे इसमें कुछ सन्देह नहीं। ग्रीस के साधारण अखाड़ों में नाना प्रकार के शारीरिक बल फुरती के अनेक दांव पेंच और करतब दिखाये जाते थे, जबतक ये लोग मांसाहारी न थे अपने उक्तकर्त्तव्यों में एक शक्ति विशेष रखते थे किन्तु जब से ये मांस के व्यसनी हुए क्रमशः अचेत और पराक्रम-हीन हो गये, जिससे उनके शिर का मुकुट गिर गया। इस के अतिरिक्त जो लोग मांस नहीं खाते वे मांसाहारियों की अपेक्षा साधारणतः शरीर में गुरु (वज़नी) होते हैं और उनके पुट्ठे बहुत पुष्ट

और बली होते हैं और वे कठिन काम करने में नहीं घबराते। प्रोफेसर फाइरिस ने इस विषय में जो अनुभव किया है उस का सार यह है कि—"अंगरेज़ों की अपेक्षा जो अतीव मांस-भक्षी हैं उनके भाई स्काटलैण्डवाले जो मांस का कम और बनस्पति का अधिक आहार करते हैं शरीर की उँचाई, बोझ और बल में अधिक उत्तम हैं। स्काटलैण्ड के निवासियों से आयरलैंड के वासी जो रोटी, दाल तथा आलू से निर्वाह करते हैं कई दर्जे श्रेष्ठता रखते हैं।" डाक्टर लेम्ज़ भी अपने अनुभव से इसी बात की पुष्टि करते हैं। उनका विचार है कि—"लापलैंड के रहनेवाले जो सिर्फ़ मांस खाकर जीते हैं पस्ते क़द होते हैं और उन्हीं के आगे फिनलैंड बासी जो ठीक उसी भांति के पवन पानी में रहते और जो अधिक बनस्पति खाते हैं, ऊंचे होते हैं।"

अब उपरोक्त लेख से बल के अर्थ मांस खाने की भी आवश्यकता नहीं है वरन् उससे बल की न्यूनता होती और आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है, इसी कारण प्राचीन समय में भारत में क्या वरन् समस्त देशों में मांस खाना प्रचलित न था। हाँ जब से वेद-धर्म को त्याग कर और, और पुस्तकों को धर्म-पुस्तक समझने लगे वा किसी किसी ने वेद की स्मृतियों के अर्थ अपने स्वार्थ के बना लिये, उसी समय से मांस खाने का प्रचार हुआ। पश्चात् उसके हेल मेल के कारण प्रति दिन इस अभक्ष्य की अधिकता होती गई, यहां तक कि इस समय कोई जाति नहीं बची है। वरन् हमारे पूजनीय पुरुषों में से ब्राह्मण और विशेष कर कान्यकुब्ज महाशय यह कहते हैं कि पशु का मांस यज्ञ में चढ़ाकर खाने में कुछ दोष नहीं है! इसी कारण उनके चेले और वे निर्भय होकर मांस भक्षण करते हैं और उस पशु को स्वर्ग में पहुंचाने का दावा करते हैं।

प्यारे भाइयों! जब मैं वेद स्मृति आदि के प्रमाणों से पूर्व ही अहिंसा को धर्म की जड़ सिद्ध कर चुका हूं तो भला यज्ञ में पशु को काट कर चढ़ाने की आज्ञा वेद में कैसे हो सकती है? केवल अपने स्वाद पर संसार का नाश मार रहे हैं। सज्जनों! तनिक तो विचारो, यदि हवन में काट कर चढ़ाने से पशु स्वर्ग में पहुंच जाता है तो फिर बुड्ढे माता पिता, भाई बन्धु आदि को हवन में चढ़ा कर स्वर्ग क्यों नहीं पहुंचा देते? वे क्यों स्वर्ग में जाने के अर्थ नाना भांति के संयम-नियम करते हैं और अनेक जन्म में

स्वर्ग, पाते हैं, भला आप उनको क्यों कष्ट देते हो? परन्तु यह सब मिथ्या बातें हैं और इन मांसाहारियों ने कल्पित अर्थ कर मांस खाने का चसका डाल दिया और अनेकान् सूत्र श्लोक नवीन बनाकर अनेक ग्रन्थों से पच्ची कर दिये जिसके कारण हिंसायुक्त यज्ञ होने लगे। देखिये—

यज्ञार्थ पशवः सृष्टाः स्वयमेवस्वयंभुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञेवधोऽवधः ॥१॥

ब्रह्माजी ने किसी की आज्ञा न पाके स्वयं यज्ञ के लिये पशुओं को बनाया है इस यज्ञ के शोभार्थ, अतएव यज्ञ में पशु वध करना हिंसा करना नहीं है।

प्राणस्यान्नमिदंसर्वं प्रजापतिरकल्पयत्।
स्थावरंजंगमं चैव सर्वं प्राणस्य भोजनम् ॥

प्रजापति ब्रह्माजी ने इस संसार में जो कुछ बनाया है वह सब प्राणों का अन्न है ऐसा कहा है, स्थावर अचर और जंगम चर दोनों प्रकार के प्राण का अर्थात् जठराग्नि का भोजन है।

यज्ञायजग्निधमांसस्तेत्येषदैवोविधि स्मृतः।

यज्ञ करने में मांस का खाना यह उत्तम विधि है।

नियुक्तस्तुयथान्यायं योमांसंनात्तिमानवः।
सप्रेत्यपशुतांयाति संभावनेकविंशतिम् ॥

जो मनुष्य नियुक्त में यज्ञ के मांस को नहीं खाता है (सप्रेत्य) वह मर के २१ बार पशु योनि में रहता है।

मन्त्रैस्तुसंकृतानद्याश्वतांविधिमास्थितः।

मन्त्रों से सफ़ा किये मांसको खावे सनातन विधि का आश्रम लेकर।

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।

मांस के खाने में और मद्य शराब के पीने में एवम् मैथुन में कोई दोष नहीं हैं, क्योंकि यह मनुष्यों का स्वभाव है।

अग्नीषोमीयं पशुमालेत् सात्रामरायां सुरांपिवेत् ।

सोम यज्ञों में अग्नीसाम देवतावाले पशु बध करें, सौत्रमएय यज्ञ में मद्य पीवे, इसी प्रकार मांसाहारियों ने (राष्ट्रंवा अश्वमेधः अन्नर्थ-हि गोः अग्निर्वा अश्वः आज्यं मेधः) इनके अर्थ भी घोड़े गाय आदि पशु मारकर होम करना बता दिया और भारत को हिंसक बनाकर अहिंसा धर्म का लोप कर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों अमूल्य पदार्थों को खो दिया । अब उपरोक्त वाक्यों के सत्य अर्थों को श्रवण कीजिये । देखो जब राजा न्याय धर्म से प्रजापालन करे तथा विद्या आदि देकर पश्चात् अग्नि में घी आदि से हवन करे तो उसको 'अश्वमेध' कहते हैं । अन्न, इन्द्रियाँ किरण पृथ्वी को पवित्र रखना 'गोमेध' कहाता है, गो नाम पशु का है, मेधा नाम विद्वान् का है । धन उपार्जन के अर्थ विद्वान् को योग्य है कि गौ आदि उपकारी पशुओं की रक्षा करे, उसी का नाम 'गोमेध' है । इसके उपरांत अब यज्ञ शब्द विचार कीजिये, देखिये निघण्टु में यज्ञ के निम्नलिखित पर्यायवाची शब्द लिखे हैं—

यज्ञः वेनः अध्वयः मेधः विद्दथः नार्यः सवनम् ।
होत्रा दृष्टि देवतात् मुखः विष्णः छान्दुः ।
प्रजापतिः धर्मः इति पंचदश यज्ञ नामानि ।

इन सब शब्दों को व्याकरणानुसार साधन करने से किसी शब्द के अर्थ हिंसा के सिद्ध नहीं होते, इस कारण यज्ञ में हिंसाकरना महापाप है ।

इसीलिए य० अ० २३ मं० १७ में स्पष्ट आज्ञा है कि हे मनुष्यो ! सब यज्ञों में अग्नि आदि को ही पशु जानों, किन्तु प्राणी इन यज्ञों में मारने योग्य नहीं, न होमने योग्य है, जो ऐसे जानकर सुगन्धित आदि अच्छे २ पदार्थों को भली भांति बना आग में होम करनेहारे होते हैं वे पवन और सूर्य्य को प्राप्त होकर वर्षा के द्वारा वहां से छूटकर ओषधि, प्राण शरीर और बुद्धि को क्रम से प्राप्त होकर सब प्राणियों को आनन्द देते हैं । इस यज्ञ-कर्म के करनेवाले पुण्य की बहुताई से परमात्मा को प्राप्त होकर सत्कार युक्त होते हैं, जैसे—

अग्निः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्नग्निः ।
स ते लोको भविष्यति तं जेष्यासि पिबैता अपः ॥

वायुः पशुरासीत्तेनायजन्त स एते लोकमजयद्यस्मिन्वायुः।
स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः ॥
सूर्यः पशुरासीत्तेनायजन्त स एतं लोकमजयद्यस्मिन्त्सूर्यः।
स ते लोको भविष्यति तं जेष्यसि पिबैता अपः ॥१७॥

और भी लिखा है कि 'गावो घृतस्यमातरः' अर्थात् घृत की माता गौ है, क्योंकि गौ के समान घृत अन्य किसी पशु का नहीं होता, और मनुजी ने अ० ४ श्लोक २३ में प्राण-निरोध का नाम यज्ञ लिखा है तथा वेद में पंचयज्ञ नित्य करने की आज्ञा है अर्थात् बलिवैश्वदेवादि करके भोजन करना चाहिये। वहां पर भी कहा है—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमाणां च शनकैर्निर्वपेद्भुवि ॥

कुत्तों, कंगालों, कुष्टी आदि रोगियों, काक आदि पक्षियों और चींटी आदि कृमियों के लिये छः भाग अलग अलग बांटकर देना और सदा उन को प्रसन्न करना उचित है। हा शोक! इन स्वार्थियां पर कि जिन्होंने उलटे अर्थ कर सत्यानाश मार दिया क्योंकि भोजनों के समय पर कुत्ते, चींटी आदि की रक्षा करने की शिक्षा जब वेद ने की है फिर भला गाय आदि पशु मारना किस प्रकार सिद्ध हो सकता है? कदापि नहीं।

❁ मछलियां और झींगा खाना ❁

उपरोक्त दोनों जीवों को परम पिता परमेश्वर ने पानी को शुद्ध रखने के लिये उत्पन्न किया है उनको भी खाना आरम्भ कर दिया। ये दोनों अत्यन्त छोटे एवं इनका मांस भी गर्म, तिस पर तैल आदि गर्म वस्तुओं से ही बनाते हैं जिनके खानेसे ही सम्प्रति धातुक्षीणता तथा गंजादि रोग बहुतायत से हो रहे हैं। इसलिये इनका भी त्याग करना उचित है।

शिकार-खेलना

बहुधा मनुष्यों का यह कथन है कि जब मांस भक्षण करने की मनाई है तो शिकार खेलना भी अनुचित है। इसका उत्तर यह है कि प्रथम तो

शिकार खेलना राजा का काम है, वह उन जानवरों का शिकार करे जिन से प्रजा को नाना प्रकार के कठिन दुःख होते हैं जैसे—शेर, भेड़िया आदि। क्योंकि राजा का मुख्य धर्म प्रजा की रक्षा करने का है, अतः राजा ऐसे पशुओं के शिकार करने में दोष-भागी नहीं होता। जैसे जो कोई जन मनुष्यों को दुःख देते हैं उनको दण्ड देना राजा का मुख्य कर्म है कि जिससे सब प्रजाको आनन्द हो, इसी भांति उन पशुओं के शिकार करने से बनवासियों तथा बटोहियों वा दीन पशुओं को सुख होता है, खेती की रक्षा होती है। परन्तु मांस उनका कोई नहीं खाता था वरन् पृथ्वी में गड़वा दिया जाता था, हां जो राजा प्रजा में से सर्व-हितैषी पशुओं का शिकार कर मांस खाते हैं वे महापापी होते हैं। जैसे कि मनुजी ने अपनी स्मृति के अध्याय ५ श्लोक ५२ में लिखा है—

स्वमांसंपरमांसेन योवर्द्धायितुमिच्छति।
अनभ्यर्च्यपितॄन्देवांस्ततोऽन्योनास्त्यपुण्यकृत्॥

अर्थात् जो मनुष्य अन्य के मांस से अपना मांस बढ़ाने की इच्छा करता है उस से अधिक कोई पापी नहीं। बहुधा लोग रामचन्द्र महाराज की गणना मांस खानेवालों में करते हैं, यह उनका कहना अत्यन्त ही मिथ्या है। क्योंकि महात्मा रामचन्द्र अपने धर्म की रक्षा करने और प्रजा के पालने, वेद वेदाङ्ग के तत्वों के जाननेवाले, धर्मज्ञ और सत्यप्रतिज्ञ, सब जीवों की रक्षा करनेवाले, महा तेजस्वी, परम साधु, प्रसन्न चित्त, महान् पण्डित, परम श्रेष्ठ और आर्य्य पुरुष थे, जो बालकाण्ड सर्ग १ श्लोक १२, १३, १४, १५ वा १६ से विदित है। इस के उपरान्त अयोध्या काण्ड सर्ग २० श्लोक ३० से प्रकट होता है कि जब श्रीरामचन्द्रजी महाराज वन-यात्रा जाने के लिये तय्यार हुए तब वह अपनी माता कौशिल्या के पास मिलने गए, उस समय उन्होंने कहा कि हे माता! मैं १४ वर्ष तक वन में जाकर मुनियों की भांति कन्द मूल और फलों से अपना जीवन व्यतीत करता रहूंगा। इसके उपरान्त कौशिल्या जी की प्रार्थना और रामचन्द्र जी का सीता को समझाना के पाठ करने से अच्छे प्रकार प्रकट होता है कि वह मांसाहारी न थे, देखो अयोध्या काण्ड सर्ग २५। इसके उपरान्त जब श्रीरामचन्द्र जी भरद्वाज ऋषि से मिले हैं वहां भी रस, अन्न

फल आदि का भोजन किया है देखो अयोध्याकाण्ड सर्ग ५४ श्लोक ११ से १८ तक। इसके उपरांत भरतने जब कौशिल्याजी से शपथ की है वहां पर लिखा है कि यदि रामचन्द्र मेरी सम्मति से वनको गये हों तो वह दोष मुझको लगे जो मद्य, मांस, विष इत्यादि निषिद्ध वस्तुओं को बेचकर कुटुम्ब के पालन करनेवालोंको होताहै। देखो अयोध्याकाण्ड सर्ग ७६ श्लोक ३८ और जब श्रीरामचन्द्रजी दण्डकारण्य में गये तो वहां के ऋषि मुनियों ने स्वस्तिवाचन उत्तम स्वरसे पढ़े और कन्द मूल पुष्पादि उनको दिये फिर अयोध्याकांड सर्ग ४, १०६ श्लोक ३ वा ४ जहां अयोध्या का वर्णन है वहां क़साइयों की दूकानों का नाम भी नहीं और न उन के शिर काटने का कहीं कथन है। इससे भी स्पष्ट प्रकट होताहै कि उस समय आर्यपुरुष मांसाहारी न थे। इसी कारण उस समय अयोध्या स्वर्गभूमि दृष्टि आती थी परन्तु तौ भी अनेकान् पुरुष यह कहते हैं कि रामचन्द्र जी ने हिरन का शिकार किया था। प्यारे मित्रो! शिकार खेलना राजा और राजकर्मचारियोंका धर्म है जैसा कि हम इससे प्रथम वर्णन कर चुके हैं। इसी कारण रामचन्द्र ने भरत से भी कहा है कि पशुओं से मनुष्य और खेती की रक्षा करते रहना। कोई कोई यह भी कहते हैं कि रामचन्द्र मृग मारने के लिये गये थे, नहीं, नहीं मुख्य बात यह है कि मारीच रावण के कहने से हिरन बन कर सीता के आगे गया जिसको देख सीता का मन ललचाया और उसने रामचन्द्र को पकड़ने के वास्ते भेजा, फिर लक्ष्मण जी भी गये। रामायण आरण्यकांड सर्ग ४७ श्लोक २२ वा २३ में रामचन्द्र का वचन यह है कि—

इदंहिरक्षोमृगसंनिकाशं प्रलोभमादूरमनुप्रयातम्।
हतंकथंचिन्महताश्रमेण स राक्षसोभून्म्रियमाणएव ॥२२॥
मनश्चमे दीनमिहाप्रहृष्टं चक्षुश्चसव्यं कुरते विकारम्।
असंशयं लक्ष्मणनास्ति सीताहृतामृतावापथिवर्ततेवा॥२३॥

यह मृगरूप राक्षस हम को ललचाय बहुत दूर चला गया, बड़े परिश्रम से हमने उसको मारा और मरने के समय वह राक्षस होगया। इसी विषय में हितोपदेश के कर्ता विष्णुशर्मा जी कहते हैं कि सोने का हिरन होना असम्भव है परन्तु फिर भी रामचन्द्रजी लालच में आगये।

असम्भवं हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभेमृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपिपुंसां मलिनी भवन्ति॥

फिर आप ही स्वयं विचार करें कि जब वह राक्षस हो गया तो फिर उनका मांस खाना कहां रहा। इसके उपरांत यदि किसी स्थान पर मांस का खाना रामचन्द्रजी के सिर पर लगाया गया है वह सब वाममार्गियों की करतूत है। देखिये वाल्मीकि रामायण आरण्यकांड सर्ग १० श्लोक ६ में स्पष्ट लिखा है कि मांस खाना राक्षसों का काम है—

भक्ष्यन्तेराक्षसैर्भीमैर्नरमांसोपजीविभिः।
ते भक्ष्यमाणा मुनयोदण्डकारण्यवासिनः॥

इसी कारण यजु० अ० २३ मं० २१ में परमेश्वर ने राजा को आज्ञा दी है कि हे शक्तिमान् राजन्! जो स्त्रियों के बीच प्राणियों का मांस खाने वाला व्यभिचारी पुरुष वा पुरुषों के बीच उक्त प्रकार की व्यभिचारिणी स्त्री वर्त्तमान हो, उस पुरुष और उस स्त्रीको बांधकर ऊपरको पग और नीचे को सिर करके ताड़नाकर और अपनी प्रजाके मध्य उत्तम सुख को धारण कर अपने प्रकट न्याय को भली भांति प्रकाश करें

इस लिये, आप अभक्ष्य भोजनको त्याग सदा वेदानुकूल दूध, फल, घी, जल, गेहूं, चावल, चने, उरद इत्यादि उत्तम उत्तम पदार्थों का भोजन कीजिये जैसी कि अथर्व काण्ड १२ मन्त्र १० में आज्ञा है—

पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशुश्च।

नशों का वर्णन

प्रिय सज्जन पुरुषों! वर्त्तमान समय में नशों का ऐसा बाज़ार गर्म हो रहा है कि कोई विरले ही माई के लाल होंगे जो इनके फन्दों से बचे हों वरन् बड़े बड़े महन्त, महात्मा, साधु, पण्डित मुनियों की प्रशंसा अज्ञानी लोग इन्हीं नशोंके कारण करते हैं, जिसके कारण भारत चौपट हो गया।

शराब पीने का निषेध

प्यारे सुजनो! मनुष्य का शरीर एक एंजिन के समान है। इसको

नियमानुसार यथावत् रीति से चलाने का सदा ही यत्न करना चाहिये परन्तु कैसे शोक की बात है कि हम सब छोटी छोटी कलों और घड़ियों के यथावत् रखने के लिये तो पूरी रक्षा करें परन्तु अपने अनमोल शरीर रूपी एंजिन कि जिसका बनाना मनुष्य के बल और बुद्धि से बाहर है उसको जान बूझ कर ऐसी बुराइयों में डाल कर सत्यानाश मार अपनी सन्तानों की भी रेड़ मार दें।

शराब एक प्रकार का विष है जिसको 'अलकोहल' कहते हैं। मदिरा मेदे में जाकर जलन पैदा करती है कि जिससे पाचन नहीं होता तथा अंग में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं। तत्पश्चात् आमाशय से भोजनों का बहुत सा भाग रगों के द्वारा कलेजे में पहुंचता है, तब कलेजा उन भोजनों के रस को पचाकर पित्त उत्पन्न करता है तथा लोहू बनाता है। परन्तु शराब के पीने से उसके बारीक पुर्ज़े थोड़े ही काल में निकम्मे हो जाते हैं तथा कलेजा सुकड़कर बहुत छोटा होकर सूख जाताहै और मनुष्य जलोदर आदि रोगों में फँसकर नाना दुःखों को सहन कर अपनी प्यारी जान से हाथ धो बैठते हैं। इसका प्रभाव मस्तक पर भी होताहै जो शरीर का भूषण है कि जिससे ठीक ठीक रहने ही से साँसारिक वा पारमार्थिक कार्य्य अच्छे प्रकार से हो सकते हैं। शराब के पीने से मस्तक में लोहू जमा हो जाता है जिससे लकवा या सक्ता आदि भयानक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। मुख्य प्रयोजन इस कथन का यह है कि शराबी शरीर रूपी वृक्ष के धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थों का नाश मार अपनी सन्तान की दुर्गति कर जाता है क्योंकि आरोग्यता तो नाम को भी नहीं रहती बहुधा पीते पीते पागल हो जाते हैं, रक्त विकार के रोग उनको सदा घेरे ही रहते हैं और जो जो रोग इसके पीने से उत्पन्न होते हैं वे भी असाध्य ही होते हैं। इसी कारण धर्मशास्त्र में इसका निषेध किया है तथा इसके पीनेवालों की गणना महा पापियों में की है। अतः जैसा कि मनुस्मृति के अध्याय ११ श्लोक ५४ में लिखा है—

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वंगनागमः।
महान्ति पातकन्याहुः संसर्गश्चापितैः सह ॥

अर्थात् ब्रह्महत्या, शराब पीना, चोरी करना, गुरु की स्त्री से विषय

करना और ऐसे काम के करनेवालों के साथमें मेलमिलाप अर्थात् मित्रता करना, ये पांच महापातक हैं। और भी उसी अ० के ९३श्लोक में लिखाहै—

सुरावै मलमन्नानां पामा च मलमुच्यते ।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वश्यश्च न सुरांपिवेत् ॥

अर्थात् अन्न के मल को शराब कहते हैं और मल त्याग करने योग्य है, इसलिये प्रत्येक को शराब न पीना चाहिये।

प्रिय सज्जनो! यदि आपको अपनी शारीरिक उन्नति वा धन प्राप्त करने तथा उसकी रक्षा का ध्यान है वा धर्मपालन करना वा नाना आपत्तियों से बचने तथा देश, जाति को आनन्द मङ्गल में देखने की अभिलाषा है तो सदा इस ज़हरीले पानीसे आप बचिये और औरोंको बचाइये।

❁ अफ़ीम खाना ❁

(१) अफीम खाने से बुद्धि कम होजाती तथा मस्तक में खुश्की बढ़ जाती है। (२) मनुष्य न्यून बल तथा सुस्त होजाता है। (३) मुख का प्रकाश कम होजाता है। (४) मंह पर स्याही आजाती है। (५) मांस सूख जाता तथा खाल मुरझा जाती है। (६) वीर्य्य का बल निर्बल हो जाता है। (७) घण्टों पिनकी में पड़े रहते, रात्रि को नींद नहीं आती, प्रातःकाल सोते हैं। (८) दोपहर को शौचालय में घण्टों बैठे रहते हैं। (९) समय पर अफ़यून खाने को न मिले तो आंखों में जलन पड़ती तथा हाथ पांव ऐंठते हैं। (१०) जाड़े के दिनों में पानी से डर लगता है कि जिससे स्नान तक नहीं करते, शरीरमें दुर्गन्ध आने लगती है। (११) रङ्ग पीला पड़ जाता है खांसी आदि रोग होजाते हैं।

❁ तमाकू ❁

वैद्यक ग्रन्थों के देखने से स्पष्ट प्रकट होता है कि तमाकू संखिया से भी अधिक नशेदार बूटी है, अर्थात् किसी वनस्पति में इससे अधिक नशा नहीं है। डाक्टर टेलर साहिब का कथन है कि जो मनुष्य तमाकू के कारखानों में काम करते हैं उनके शरीर में नाना प्र . ार के रोग हो जाते हैं। इसी प्रकार बहुधा डाक्टरों ने साबित किया है कि इसके धुएं में ज़हर हाता है अर्थात् इसका धुआं भी शरीरकी आरोग्यता को हानिकारक है अर्थात् जो

मनुष्य तमाकू पीते हैं उनका जी मचलाने लगता, कै होने लगती, हिचकी उत्पन्न होजाती, दम कठिनता से लिया जाता है और नाड़ी की चाल धीमी पड़ जाती है। परन्तु जब मनुष्य को इसका अभ्यास हो जाता है तब ये सब बातें कम होजाती हैं।

डाक्टर स्मिथ का वचन है कि तमाकूके पीने से दिलकी चाल पहिले तेज़ फिर धीरे२ कम होजाती है। वैद्यक से स्पष्ट प्रकट है कि तमाकू बहुत ही ज़हरीली (विषैली) वस्तु है, क्योंकि इसमें नेकोशिया कारबोनिक एसिड, मेगनेशिया इत्यादि वस्तुएं मिली रहती हैं। २४ घंटे में एक पुराना तमाखू पीने या खाने वाला, जितना सेवन करसकता है उतना नेकोशिया एकसाथ खा लेने से तत्काल मृत्यु होसकती है। अतः इसका सेवन दिलको निर्बल कर देता है कि जिससे खांसी, दमा, तिल्ली का चिर रोग तथा भयानक क्षय, मन्दाग्नि, शिर का शूल, नेत्रों में कम प्रकाश का होना तथा अन्य स्नायु सम्बन्धी रोग एवं और भी अन्य नाना प्रकार के रोगों के उत्पन्न होने से आरोग्यता में अन्तर पड़ जाता है। इसके अतिरिक्त स्त्रियां पुरुषोंसे स्वभावसिद्ध दुर्बल होती हैं अतः उनको पुरुषों से अधिक स्नायु सम्बन्धी रोगों से दुःख भोगना होता है। अब बुद्धि से विचारिये कि मुसलमान तथा ईसाई आदि से तो बड़ा परहेज़, परन्तु वाहरे तमाकू कि जिसकी प्रीति में धर्म कर्म की कुछ भी सुध नहीं। देखो मुसलमान तमाकू बनाने वाले अपने बर्त्तनों में से ही अपने घड़ों का पानी डालते हैं वही सब मज़े से पीते हैं। इसके अतिरिक्त एकही चिलमको हिन्दू मुसलमान ईसाई आदि सब पीते हैं कि जिसके प्रभाव से आपसमें अबख़रात अदलबदल होते हैं, तो अब कहिये कि हिन्दू तथा मुसलमान ईसाईयों में क्या अन्तर रहा? क्या इसीका नाम शौच वा पवित्रता है? इस हेतु स्कूल, कालिज तथा देशी पाठशालाओं के हेडमास्टरों को भी उचित है कि वे कभी हुक्के व सिगरेट को न पियें कि जिनकी देखादेखी विद्यार्थीगण भी पीने लग जाते हैं। इसके अतिरिक्त तमाकू आदि पीने की आज्ञा किसी सत् शास्त्र में भी नहीं पाई जाती, देखिये ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि—

प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वे वर्णाश्रमे नराः।
तमालं भक्षितं येन सगच्छन्नरकार्णवे॥

अर्थात् इस घोर कलियुग में जो तमाकू खाता अथवा पीता है वह नरक को जाता है। देखिये पद्मपुराण में भी लिखा है—

धूम्रपानरतं विप्रं दानं कुरवन्ति ये नरः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः॥

अर्थात् जो मनुष्य तम्बाकू पीनेवाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है और ब्राह्मण ग्राम के सुअर का जन्म लेता है।

परन्तु हुक्का पीने और खानेवाले उसकी तथा अन्य नशों की नाना प्रकार से बड़ाई करते हैं जिसको सुन सुनकर अन्य जन भी खाने और पीने लग जाते हैं।

हुका—हुक्का हरि को लाड़िलो, राखै सब को मान।
भरी सभा में यों फिरे, ज्यों गोपिन में कान॥
तमालपत्र—कृष्ण चले बैकुण्ठ को, राधा पकड़ी बांह।
यहां तमाकू खायलो, वहां तमाकू नांह॥
भंग—भंग कहैं सो बावरे, विजया कहैं सो कूर।
इसका नाम कमलापती, रहै नैन भरपूर॥

भंग पीने से भी मस्तक में घुमनी आती, सिर दर्द उत्पन्न हो जाता, बुद्धि विपरीति होजाती है, चुल्लू भर पीकर निर्बुद्धियों की सी बातें करने लग जाता है।

❀ गांजा ❀

जिसने न पी गांजे की कली। उस लड़के से लड़की भली॥

इससे मुखड़े की शोभा जाती रहती है, खांसी उत्पन्न हो जाती है, चस पीने से 'दम' हो जाता है जो दम के साथही साथ जाता है। चण्डू से सैकड़ों घर उजाड़ हो गये, मुंह पर हवाई उड़ती हैं, पग पग पर घुमनी आती है, निर्बलता अधिक हो जाती है, पानी से भय प्रतीत होता है इसलिये सदा मैले कुचैले रहते हैं, कभी कभी मार्ग में गिर भी पड़ते हैं, मदक से भी शरीर की रगें नीली पड़ जाती हैं। इसकी चाह में घण्टों इधर उधर मारे मारे

फिरते हैं। प्रिय सज्जन पुरुषों और योग्य स्त्रियों! इन उपरोक्त हानियों के अतिरिक्त जितना इन नशों के पीने का अभ्यास होजाता है उतनी ही उस की रुचि अधिक बढ़ती जाती है और रुपये और समय का नाश होता है। इसलिये प्रत्येक प्रकार के नशों का त्यागन करना योग्य है।

वस्त्र

वस्त्र सदा देशकाल के अनुसार पहिनने चाहियें, परन्तु सम्प्रति तो जो जी में आता है पहनते हैं। देखिये, देशकाल के विपरीत काला कपड़ा अधिक पहना जाता है तिस पर तुर्रा यह है कि ग्रीष्म ऋतु में काला कपड़ा पहनते हैं मानो अपने दुःखों को आप बुलाते हैं। प्रिय भ्राताओ! उष्ण वस्तु में गर्मी अधिक घुस जाती है और ठहरती भी अधिक काल तक है, इसी हेतु रस रक्त वीर्य में अधिक गर्मी पहुंचती है जिसके कारण स्वच्छ भोजन खाने पर भी धातुक्षीण, रक्तविकारादि रोग घेरे रहते हैं। इस समय बहुत कम भारत में ऐसे पुरुष निकलेंगे कि जिनको धातु की किसी प्रकार की बीमारी न हो, नहीं तो जिधर जाइये उधर यही रोग फैला हुआ है। अतः अपने प्राचीन पुरुषों के सदृश पीताम्बर आदि भांतिभांति के वस्त्र देशानुसार ऋतु के अनुकूल धारण कीजिये। देखो, आपके सर्व ग्रन्थोंमें नीलाम्बर का निषेध किया है, क्या आपने सुश्रुत का पाठ नहीं सुना?

हाय! क्या समय आया है कि जिसमें सर्व काम बुद्धि और वैद्यक वा धर्मशास्त्र के प्रतिकूल होती हैं। देखो, बहुधा जन बहुमूल्य वस्त्र धारण करते हैं परन्तु उनकी स्वच्छतापर ध्यान नहीं रखते, इस कारण उनकी शरीर की स्वच्छता से भी कुछ लाभ नहीं होता, अतः कपड़े कैसे ही अधिक मूल्य वा न्यून दामों के क्यों न हों अवश्यमेव आठवें दिन बदलते रहना योग्य है, जिसमें स्वच्छता का लाभ हो, क्योंकि मलिन कपड़े से दुर्गंध निकलती है जिससे आरोग्यता में हानि होती और अन्य जन ऐसे पुरुषों से घृणा करते हैं उनकी सर्व सज्जनों में निन्दा होती है निर्मल वस्त्रों के धारण से कान्ति, यश और आयु बढ़ती है, दरिद्रता का नाश होता है, चित्त में हर्ष रहता है, श्रीमानों की सभा में जाने योग्य होता है, इसके, अतिरिक्त अति सुर्ख और भीगे कपड़ों को न पहरना चाहिये।

इन सब बातों के उपरान्त अपने देशीय वस्त्रों को सब काम में लाना योग्य है जिससे यहाँ के शिल्पमें उन्नति हो और यहांका रुपया भी बाहर को न जावे। हमारे भारत देश में बडे बड़े उत्तम और दृढ़ वस्त्र बनते हैं, यदि सम्पूर्ण देश भाइयों की इस ओर दृष्टि हो जावे तो फिर देखिये भारत में कैसा धन बढ़ता है, जो सर्व सुखों की जड़ है।

सायंकाल

शाम के चार वा पांच बजे अपने अपने कार्य्यों से निवृत्त हो अथवा जिस प्रकार से जिसको सुभीता हो नगर से बाहर बाग़ बग़ीचों में जावें तथा शौचादि से निवृत्त हो परमेश्वर का ध्यान करें, पुनः अपने अपने कार्य्यों में यथायोग्य प्रवृत्त हों।

सोना

भाग्यशील वे मनुष्य हैं जो दिनभर अपने कार्य्योंमें व्यतीत कर रात को सोते हैं, उनको गहरी नींदके पश्चात् जागने पर बड़ा आनंद आता है, परंतु यह सब लाभ उन मनुष्यों को नहीं होता। जो दिनमें सोकर अपने समय को व्यर्थ खोते हैं वे रात भर करवटें लेते झपकी की दशा में लेटे रहते हैं, तो भी प्रातःकाल सुस्ती तथा काहिली जान पड़ती है बारंबार जम्हा-इयाँ आती हैं। इसलिये निरोग्यता चाहनेवाले मनुष्यों को दिनमें कदापि न सोना चाहिये, क्योंकि दिनमें सोने वा रात्रिके जागरण करनेसे खाँसी तप अंगमें पीड़ा तथा सिर भारी हो जाता है, पाचन शक्ति कम होजाती है। हाँ गर्मी के दिनों में एक घण्टा सो रहना अच्छा है परंतु यह भी स्मरण रहे कि ८ घंटे से अधिक और ६ घंटे से कम कदापि न सोना चाहिये, क्योंकि विपरीत दशा में रोग होजाते हैं, लेकिन बच्चों और बूढ़ों के लिये यह नियम नहीं वरन् उनकी जितनी इच्छा हो सोवे। सोने का बैठका या कमरा तथा स्थान में रोशनदान खिड़की वायु आने के लिये अवश्य लगाना चाहिये। कमरे को जाड़े के दिनों में गुलाबी, वर्षामें श्वेत तथा गर्मीमें हरे रङ्गसे रङ्गवाना उचित है। चारपाई साढ़े तीन हाथ लम्बी, ढाई हाथ चौड़ी, एक हाथ ऊँची होनी चाहिये। पर यह भी स्मरण रहे कि एक स्थान पर अधिक मनुष्य न सोवें क्योंकि उनके श्वांस लेने से हवा

बिगड़कर रोग उत्पन्न कर देती है। इसलिये प्रत्येकके लिए ४८वर्ग फ़ीट जगह होनी आवश्यक है। चारपाई लम्बी चौड़ी हो बहुत छोटी और बड़ी में लाभ नहीं होता। खटमल आदि भी न हों, बिछौनेके अर्थ तोषक वा गद्दा, गर्मियों में ग़लीचा वा दरी आदि हो, दो एक तकियों का होना आवश्यक है। चारपाई शिरकी ओर ऊँची तथा पैरकी ओर नीची होनी चाहिये। सोने के स्थान में कोई पशु भी न बाँधना चाहिये, क्योंकि हवा बिगड़ जाती है। गर्मी के दिनों में शरीर को ढांककर सोना चाहिये परंतु भीगे कपड़े पहिन कर या पैरोंको पानी में डुबो कर या बिल्कुल नङ्गा हो कर सोना न चाहिये। जाड़े के दिनों में लिहाफ़ ओढ़कर सोना चाहिये परंतु लिहाफ़ में मुंह छिपाकर या किसी मर्द या औरत के साथ एक ही बिस्तर पर एक ही लिहाफ़ के भीतर न सोना चाहिये। इसके उपरान्त मकान के भीतर कोयला वा लकड़ी जलाकर और दर्वाज़ा बन्द करके सोना बहुत बुरा है, क्योंकि 'कारबोनिकगेस' मनुष्य के श्वासों के साथ शरीर में आकर प्राण हर लेता है। इसलिये इस छोटी सी बातकी ओर हमारे देश भाइयोंका ध्यान होना बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि समाचार पत्रों के पढ़ने से जाना जाता है कि जो मनुष्य इस बात का विचार नहीं रखते वे अवश्य ही मर जाते हैं। कई एक स्थानों में ऐसा हो चुका है। इसलिये इस बातको सदा स्मरण रखना चाहिये।

यदि आग को भीतर रखनेकी ऐसी आवश्यकता है तो बाहरसे खूब जलाकर और सुर्ख करके मकान के भीतर रखना योग्य है। मिट्टी का चिराग़ जलता छोड़ कर बन्द मकान में सोने से भी ऐसे ही रोग हो जाते हैं, इसलिये सोने से पहिले चिराग़को ज़रूर ठण्डा करदेना चाहिये। इस कथन का मुख्य प्रयोजन यह है कि इन उपरोक्त बातों को स्मरण रखकर सांसारिक कार्यों और नाना भांति की चिन्ताओं को त्यागनकर बिस्तर पर लेटे उस समय करवटका विचार अच्छे प्रकार से रक्खे क्योंकि करवटका असर नींद पर बहुत पड़ता है जैसा कि बे आराम और तङ्ग करवट से नींद रुकजाती है, अतः अच्छे प्रकार करवट लें, क्योंकि तन्दुरुस्त मनुष्य के लिये पींठके बल लेटना हानिदायक होता है और जब दिल निर्बल होता है या किसी दिमाग़ी रोगों में या रगों की निर्बलता में इस प्रकार लेटने में खून सिरके पिछली तरफ़ को रुजू होजाता है तो भयानक

स्वप्न दीख पड़ते हैं। इसके उपरान्त जिन मनुष्यों की छाती तंग होती है या किसी रोग से पीठ के बल सो नहीं सकते, प्रायः नींद में ज़ोर २ से खुर्राटे के शब्द करते हैं। उसका कारण भी करवट पर न सोना है, क्योंकि उनका नरम तालू और कौआ ज़बान पर लटक पड़ता है पुनः ज़बान पीछे को हट कर हवा की नाली का रास्ता कुछ बन्द कर देती है, साथ ही घुर्राटों का शब्द निकलना शुरू हो जाता है। इसलिये उचित है कि करवट पर सोये, विशेष कर दाहिनी करवट पर सोना योग्य है, क्योंकि जो मनुष्य के शरीर की बनावट अच्छे प्रकार से जानते हैं वे इस बात को समझते हैं कि दाहिनी करवट सोने से भोजन मेदे के भीतर से सुगमता के साथ अंतड़ियों में चले जाते हैं, विपरीति दशा में भोजन मेदे से दूसरी ओर पड़ा रहता है। इसके उपरान्त बाईं करवट सोने से कलब भी दब जाता है, अतः प्रथम दाहिने करवट सोना योग्य है। जब थक जाय तो दूसरी करवट बदल ले, बहुधा जन सोते से उठ जल पीकर तत्काल सो जाते हैं, यह भी योग्य नहीं क्योंकि यह जल शरीर की आरोग्यता को हरता है। प्रकट हो कि पलंग या चारपाई पर सोने से त्रिदोष का नाश, पृथ्वी पर सोने से दोष की वृद्धि, तथा काष्ठ पर सोने से वायु का कोप होता है।

इसके अतिरिक्त सोने में दक्षिण की ओर पांव न करना चाहिये क्योंकि मनुष्य के भेजे में एक शक्ति है जिसको अंगरेज़ी में 'मैगनेट' तथा अरबी में 'कुव्वत जाज़बा' कहते हैं। उस शक्ति का धड़कनेवाला भाग अधिकतर मनुष्य की चोटी की ओर होता है। जब उसका सिर उत्तर की ओर होता है तब उसकी गति नियुक्त संख्या से बढ़ जाती है। देखो ध्रुव यन्त्र को जिसको अँगरेज़ी में 'कम्पास' और उर्दू में 'कुतुबनुमा' कहते हैं। लोहे में इस शक्ति का अधिक भाग होता है अतः वह सुई जो कुतुबनुमा में लगाई जाती है सदा हिला करती है। उसका एक सिरा सदा उत्तर की ओर रहता है क्योंकि उस शक्ति का यही स्वभाव है। बस जब कि मनुष्य दक्षिण की ओर पांव करके सोवेगा और देहगति का कम्प भेजे में न पहुंचेगा और भेजा स्थिर होगा तो वह शक्ति (मैगनेट) जो भेजे में है अपना ज़ोर करेगी और धड़कने लगेगी और समस्त रात्रि नियुक्त संख्या से, जो दूसरी ओर रहने से कम धड़कती है, अधिकतर धड़केगी, जिससे कुछ न कुछ हानि भेजे में होगी। यदि कोई मनुष्य सदा दक्षिण की ओर

पांव करके सोये और उसके भेजे का मैगनेट उत्तर की ओर रहे तो निः संदेह एक वर्ष में उसका भेजा डामाडोल हो जायगा वा शिर में दर्द व्याप जायगा और सन्देह नहीं कि कुछ समय पश्चात् पागल हो जाय।

—:※:—

नगर, गाँव, मकान

वर्त्तमान समय में नगर और गांव की बनावट उत्तम रीति पर नहीं है, प्राचीन समय में जितना लम्बा चौड़ा नगर वा गांव होता था उसके आस पास उतना ही लम्बा चौड़ा जंगल छोड़ा जाता था।

प्यारे पाठकगणों! विचार कर देखो तो नगर से आठगुणी पृथ्वी जंगल के लिये रहती थी। यही कारण था कि जिस प्रकार से प्रत्येक नगर के न्यारे न्यारे नाम होते हैं इसी भांति प्रत्येक नगर के नीचे जो जंगल होते थे उनके जुदे जुदे नाम होते थे। यही कारण था कि श्रीरामचन्द्रजी महाराज एक वन से उठ दूसरे वन और वहां से उठ तीसरे वन, और इसी प्रकार बराबर वनों ही वन में ठहरते हुए चले गये। पाठकगणों को ज्ञात हो कि हमारे देश के राजाओं को इतने ही वनों से सन्तोष नही था जिनका हमने वर्णन किया है, प्रत्येक प्रान्त में पहाड़ों के निकट नदियों के किनारे किनारे बड़े बड़े वन होते थे जिन वनों में ऋषि गण निवास किया करते थे और वाणप्रस्थवाले महात्मा लोग उन्हीं जंगलों में रह धर्मोपार्जन करते थे जिनका विद्या की उन्नति करना प्रति दिन का काम था। इन सब के अतिरिक्त जंगलों के होने से नगर वा ग्रामवालों को भी अति उत्तम पवन मिलता था जिससे वे सदा हट्टे कट्टे रहकर नाना प्रकार के उद्यम कर अनेकान् प्रकार के सुखों को भोगते थे। तदन्तर जंगलों में गौवों का पालन अच्छे प्रकार होता था, दूध घी की अधिकता रहती थी। इन्हीं गौवों का गोबर खेतों के लिये उत्तम खाद था, ईन्धन की अधिकता का यही कारण था एवं अधिक वृष्टिका-हेतु यह वनही थे, इस लिये जंगलों का अधिक होना अभीष्ट है।

सज्जनो! नगर की रचना और वनों के न होने से नाना प्रकार की हानि हो रही है तिस पर तुर्रा यह है कि वर्त्तमान समय में हमारे और आपके गृह अर्थात् निवासस्थान भी विपरीत दशा पर बनाये जाते हैं कि जिससे

उत्तम वायु के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते। क्योंकि मकानों का निकट होना, कुर्सी आदि नीची, सहन का नाम भी नहीं। इसके उपरांत अत्यंत छोटे तिस पर भी भोजन बनाने और सोने, उठने बैठने का काम एक ही स्थानसे लिया जाता है, पाखाना और कुयें भी निकट होते हैं। देखिये य० अ० २२ मं० ३६ में लिखा है कि बड़े बड़े तथा बहुत दर्वाज़े वाले घरमें निवास करने से अवस्था, पवित्रता, बल और निरोग्यता बढ़ती है।

मकान बनाने की रीति

(१) घर की कुर्सी ऊंची हो, उसके आगे सहन होना योग्य है। (२) नगर के मार्ग खुले रहें। (३) एक घर से दूसरा घर कुछ अन्तर पर होना चाहिये। (४) मकान सम चौरस, उसके द्वार चारों ओर की वायु को अच्छे प्रकार से स्वीकार करते हों, उसके जोड़ और चुनाई दृढ़ हों। (५) उसमें एक कमरा स्त्रियों और दूसरा मनुष्योंके लिये हो। (६) रसोई बनाने और भोजन पाने के स्थान अलग अलग हों, शेष स्थान ऐसे हों कि जिनमें नाना प्रकारके पदार्थ रक्खे रहें। एक स्थान मनुष्योंके मिलाप के लिये हो जिसको इस समय में बैठका कहते हैं और एक अग्निहोत्र का स्थान हो और पास की भूमि सदा शुद्ध बनाये रहें। यदि बाग़ बग़ीचा हो तो अति उत्तम है। प्रत्येक कमरे की छत ऊँची पाटनी चाहिये। मकान में रोशनदान भी अवश्य रखने योग्य हैं। किसी ओर से ऐसी आड़ न हो कि जिसमें सूर्य का प्रकाश न आसके। कुयें पक्के उत्तम हों। पाख़ाने का स्थान कुयें से पृथक् और पशुशाला भी अलग हो।

(१) बहुत से मनुष्यों का एक स्थान पर रहना। (२) घर के निकट मुर्दोंका गाड़ना वा जलाना वा अधूरा जलाकर छोड़ना वा घूरेका इकट्ठा रखना। (३) मुर्दों वा मरे हुए पशुओं का आस पास सड़ना। (४) दुर्गन्धित वस्तुओं और पाख़ानों के मैले के उठाने का उत्तम उपाय न करना। (५) घर का आँगन बाहर की धरती से नीचे में होना। (६) छतों पर पाख़ाना जाना। (७) आंगन ऐसा न हो जिसमें पानी

भरा रहे या उसके आस पास पानी इकट्ठा रहे। (८) चमार, रङ्गसाज़, छीपी, क़साई आदि के घर निकट न होने चाहियें।

प्यारी बहिनों! मकानों की बनावट ठीक न होनेसे आस पास बाग़ों वा फुलवाड़ियों का होना अत्यंत कठिन हो गया है जिसके कारण गृही जनों को उत्तम वायु नहीं मिलती। परन्तु जीवधारियों को उत्तम वायुकी वैसी ही आवश्यकता है जैसे मछलियोंको पानी की, अतएव उत्तम वायु ही हमारे जीवन का मूल है। अन्न को त्याग कर एक दो दिन जी भी सकते हैं लेकिन बिना वायु के पलमात्र जीना कठिन है और अशुद्ध वायु के सेवन से नाना रोग होजाते हैं। वर्त्तमान समय में हमारे गृहों में छोटे छोटे हरे पौदे और फुलवाड़ी के दर्शन तक नहीं होते। हे युवतियों! यह हरे पौदे नाना भाँतिके पुष्पोंसे सुशोभित केवल नेत्रोंको तरावट ही नहीं देते वरन् हमारे अपान प्राण के लिये भी बड़े गुणदायक हैं, क्योंकि यह पौदे यथाशक्ति अशुद्ध पवन को खैंच लेते हैं, उसके बदले कलियां और पुष्प स्वच्छ पवन का हमें दान देते हैं, उनकी कोमल पत्तियां चित्त को हरती हैं। हमारी समझ में स्त्री पुरुषों, पुत्र पुत्रियों आदि के मनोरञ्जन और चित्त-विलास के अर्थ गृह में छोटी २ क्यारियां बनाने, हरे २ पौदों को जल से सींचने और नये २ पत्ते और नरम २ कोपलों तथा शोभायमान पुष्पों के दर्शन से अधिक कोई काम नहीं। इनके पालन पोषण के अर्थ किसी बातकी चिन्ता नहीं करनी पड़ती क्योंकि उनका आधार और जीवन मूल निर्मल जल है, कभी कभी गुड़ाई करनी पड़ती है सो दोनों कार्य्यों को छोटेसे छोटा बच्चा कर सकता है।

प्यारी बहिनों! प्रतिदिन अग्निकुण्डसे होमके समय सुगन्धित पदार्थों का धुआँ हमारी इस छोटी सी पुष्पावली के हरे २ पत्तों और रमणीक फूलों को चूमता हुआ शनैः २ श्वास लेकर आघ्राण करने में किस आर्य्य को प्यारा न लगेगा? किसको उसकी अभिलाषा न होगी? और पुष्पावली से होमका योग अवलोकन कर किसको आनन्द न होगा? अन्य देश के निवासी अपने गृहों में बेल बूटे कैसी रुचिके साथ रखते हैं और आप पानी देते अथवा देख भाल करते हैं कि जिसके कारण प्रत्येक गृह फूलों का उपवन दृष्टि आता है। इस बातकी साक्षीके लिये बङ्गदेश पर दृष्टि डालिये

तो स्पष्ट प्रकट होता है कि वहां कोई घर ऐसा न होगा कि जहां हरे हरे खजूर और नारियल के वृक्ष तथा केले के स्तम्भ न लहलहाते हों। यदि हमारे तुम्हारे घरों में सहन नहीं तो मिट्टी के गमलों से काम लेना चाहिये और बांस की खपच्चों पर बेलों को चढ़ाकर अपना कार्य्य पूर्ण कर सकती हैं। इसके उपरान्त विशेष वृक्ष और बेलों से विशेष लाभ भी होते हैं, कैसा ही छोटा मकान क्यों न हो उसमें तुलसी का वृक्ष अवश्य होना चाहिये, क्योंकि एक प्रकार का ताप जो दुर्गन्धित वायु से उत्पन्न होता है वह इससे नाश हो जाता है कि जिससे पड़ोसियों को भी लाभ होता है।

प्यारी बहिनों! अब इस मुख्य प्रयोजन को न जानकर स्त्रियां तुलसी शलिग्राम का विवाह करती हैं, क्या यह अज्ञानता का कारण नहीं है? प्राचीन समय में स्त्री वा पुरुष दोनों वाटिकाओं में वायु-सेवन के लिये भ्रमण करते थे, इस समय में निर्लज्जता का दोष उनपर लगाया जाता है। इसके उपरान्त भूत चुड़ैल के भय से भी स्त्रियां बागों में भ्रमण करने के लिये उद्यत नहीं होतीं, परन्तु कैसे शोक का स्थान है कि वे अपने प्राचीन ग्रंथों, इतिहासों पर ध्यान नहीं देतीं। देखिये वाल्मीकीय रामायण में अयोध्याकाण्ड के सर्ग ६० श्लोक ३२ में लिखा है कि जब सुमन्तजी राम लक्ष्मण सीताजी को छोड़कर घर लौट आये तो कौशल्याजी ने पूछा कि सीताजी की क्या दशा है? तब सुमन्तजी ने उत्तर दिया कि आप कुछ चिन्ता न करें, सीताजी आनन्द से महाराज रामचन्द्र जी के साथ वास कर रही हैं, जैसे निर्भय होकर यहां सीताजी फुलवाड़ी में घूमा करती थीं, उसी प्रकार वहां भी निर्जन वन में घूमा करती हैं।

इसके अनन्तर शकुन्तलानाटक में लिखा है कि शकुन्तला एक वाटिका को अपने हाथों से सींचती थी और हरी हरी लता वा पत्तियों तथा पुष्पों की तरावट देखने के निमित्त सखियों समेत वायु-सेवन के हेतु जाया करती थी इसलिये प्यारी बहिनों! तुम भी सीता आदि की इस उत्तम चाल को ग्रहण कर अपने पति के साथ वायु सेवनार्थ जाया करो। यदि किसी कारण से ऐसा समय न हो तो अपने ही गृह में अवश्यमेव बेलबूटे, छोटी छोटी क्यारियां बांधकर रखलो और प्रतिदिन उनको सींचा करो।

———

इन मन्त्रों का जप और इनके अर्थों का विचार मन में करते हुए न्यून से न्यून तीन प्राणायाम करें, जिसका प्रकार पीछे सन्ध्याविधि में लिख आये हैं ॥

अघमर्षणमंत्राः

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ ५ ॥

ऋग्० ८।८।४८। १

पदा०—(ऋतम्) वेद (च) और (सत्यम्) कार्य्यरूप प्रकृति (अभि, इद्धात्, तपसः) सब ओर से प्रकाशमान, ज्ञानस्वरूप परमात्मा से (अध्य-जायत) उत्पन्न हुए (ततः) उसी प्रभु से (रात्री) रात्रि (अजायत) उत्पन्न हुई (ततः) उसी परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से (समुद्रः, अर्णवः) मेघ-मण्डल तथा समुद्र उत्पन्न हुआ ॥

ओं० समुद्रादर्णवादधि सम्बत्सरो अजायत ।
अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ ६ ॥

ऋग्० ८।८।४८।२

पदा०—(समुद्रात्, अर्णवात् , अधि) उस मेघमण्डल तथा समुद्र के पश्चात् (सम्बत्सरो, अजायत) सम्बत्सर=वर्ष उत्पन्न हुआ (विश्वस्य मिषतः) इस क्रियात्मक जगत् को (वशी) वश में रखने वाले प्रभु ने (अहोरात्राणि) दिन और रात को (विदधत्) बनाया ॥

ओं० सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्चपृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः ॥ ७ ॥

ऋग्० ८।८।४८।३

पदा०—(धाता) सबके धारण पोषण करने वाले परमात्मा ने (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य्य तथा चन्द्रमा को (यथा पूर्वम्) पहले जैसे (अक-ल्पयत्) बनाये (दिवम्) द्युलोक (पृथिवीं) पृथिवी लोक (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष लोक (अथो) और (स्वः) अन्य प्रकाशमान तथा प्रकाशरहित लोकलोकन्तरों को भी बनाया=रचा ॥

पूर्वोक्त तीनों अघमर्षण मन्त्रों का भावार्थ यह है कि सृष्टि की आदि में सदा जगत् को धारण करने वाले ईश्वर के सामर्थ्य और सहज स्वभाव से जगत् उत्पन्न होता, तत्पश्चात् अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा ऋगादि चार

वेदों का प्रकाश हुआ करता है और फिर प्रलय भी उसी ईश्वर के सामर्थ्य से होती है, उसी परमपिता सर्वान्तर्यामी परमात्मा की आज्ञापालन करने से पापों का क्षय होकर सुख की प्राप्ति होती है, इसी से इनका नाम "अघमर्षण" मंत्र है अर्थात् "अघ" नाम पापों से "मर्षण" मुक्त कर परमात्मा में श्रद्धा भक्ति उत्पन्न कराने वाले मंत्रों को "अघमर्षण" मंत्र कहते हैं ॥

बार २ सृष्टि उत्पन्न करने में ईश्वर का तात्पर्य्य जीवों के पाप पुण्य का फल भुगाना है जो उसके स्वभाव से ही सदा होता रहता है, जैसाकि "स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" इत्यादि वाक्यों में वर्णन किया है कि यह सब उसके स्वभाव से ही सदा होता रहता है, उसको किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती ॥

स्मरण रहे कि परमेश्वर अपनी अन्तर्यामिता से सब के पाप पुण्य यथावत् देखता हुआ उनका फल ठीक२ न्यायपूर्वक देता है, इसलिये हमें उचित है कि हम मन, वाणि तथा कर्म से कभी भी कोई पाप न करें ॥

अब निम्नलिखित ६ परिक्रमा मंत्रों में परमात्मा को सब दिशाओं में उपस्थित मानकर यह प्रार्थना कीगई है कि हे परमपिता परमात्मन्! आप हमारी सब ओर से रक्षा करें, जैसाकि :—

मनसापरिक्रमामन्त्राः

ओं प्राचीदिगग्निरधिपतिरसितोरक्षिताऽऽदित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः ॥ ८ ॥ अथर्व० ३।६।२७।१

पदा०—(प्राचीदिक्) पूर्वदिशा अथवा जिस ओर अपना मुख हो उस ओर (अग्निः) ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ परमात्मा (अधिपतिः) जो सब जगत् का स्वामी (असितः) बन्धनरहित (रक्षिता) हमारी रक्षा करने वाला है (आदित्या, इषवः) जिसके बाण सूर्य्य की किरण समान हैं (तेभ्यः, नमः, अधिपतिभ्यः) उन सब गुणों के अधिपति परमपिता परमात्मा को हम लोग बारंबार नमस्कार करते हैं (रक्षितृभ्यः, नमः, इषुभ्यः, नमः, एभ्यः, अस्तु) जो ईश्वर के गुण जगत् की रक्षा करने वाले और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं उनको हमारा नमस्कार हो (यः, अस्मान्, द्वेष्टि) जो प्राणी हमसे द्वेष करते हैं अथवा (यम्, वयम् द्विष्मः) जिन धार्मिकों से

व्योपार आदि को खोते हैं, सम्पूर्ण गृह निवासियों को दुःख सहन करने पड़ते हैं, अतः हे सुजन स्त्रियो ! जिस मलिनता के कारण तुम्हारे घरों में प्रतिदिन बीमारी बनी रहती है, उसे कभी भूलकर भी न आने दो। सदैव ही जिस स्वच्छता से बल बुद्धि आयु आदि सुख मिलते हैं, उसे गृहों में रखने का यत्न करो। प्रातःकाल सूर्योदय से प्रथम ही गृह के सब दर्वाज़ों और खिड़कियों को खोल देना चाहिये जिससे रात का दुर्गन्धित वायु निकल कर प्रातःकाल का जीवन मूल वायु आ जावे।

क्षौर

क्षौर बनवाने से प्रकाश और शोभा जान पड़ती है, दरिद्रता का नाश होकर आरोग्यता बनी रहती है, क्योंकि सिर तथा मुख के बाल बन जाने से छिद्र खुल जाते जिसमे खराब परमाणु निकलते रहते तथा उत्तम वायु जाता रहता है। अतः कदापि एक पैसे का लोभ न करे वरन् समस्त कार्यों को छोड़ इस काम को आठवें दिन अवश्य करना योग्य है।

बहुधा हमारे भाई इङ्गलैंडियों की भांति सम्पूर्ण सिर पर बाल रखाते हैं परन्तु यह नहीं सोचते कि वह सर्द देश के रहनेवाले हैं, उनके लिये यह रीति उत्तम है। एतद्देशवालों के लिये श्रेष्ठ नहीं क्योंकि यह देश गर्म है, यदि ऐसा हो तो सिर के बीच में तालू थोड़ा सा खुलवा देना अच्छा है।

उबटन—उबटन लगाने से धातु तथा लोहू की वृद्धि होती है, शरीर की त्वचा नरम, मुख पर कान्ति तथा दृष्टि में तीव्रता होती है, विशेष तात्पर्य यह है कि इस काम से शरीर की शोभा बढ़ती है।

तैल—प्रतिदिन सम्पूर्ण शरीर में तैल लगाने से शरीर पुष्ट होता है, बल की वृद्धि होती, सुख मिलता, नींद आती, चमड़े की रंगत कोमल हो जाती, वायु कफ तथा श्रम खेद नाश हो जाता है। विशेष कर कान और तलवे में अधिक तैल लगाना उचित है, इससे बाल कोमल, घने, काले तथा पुष्ट होते हैं, सिर का दर्द जाता है। कान में तैल डालने से कान के समस्त रोग जाते हैं।

दर्पण–के देखने से मंगल होता और शोभा बढ़ती है। बार बार देखना योग्य नहीं है।

जूता–पहननेसे पांवोंको बहुत आराम मिलता है अर्थात् कांटा आदि नहीं लगता। अशुद्ध वस्तुओं के लगने से पांव बच जाता है कि जिससे बड़े बड़े दुःख होते हैं।

छाता–लगानेसे नेत्रों को आनन्द उत्साह सुख मिलता है, सिरकी रक्षा होती है, ग्रीष्म में धूपसे, वर्षा में पानी से, सर्दी में शीतसे बचाताहै कि जिससे ज्वरादि रोग नहीं होने पाते।

छड़ी–इससे हाथकी शोभा होती है, कुत्ता बिल्ली आदिसे बचाती है, भयका नाश होता है।

पगड़ी–पहनने से शोभा, बालों की रक्षा, तथा कफ़ का नाश हो जाता है, परन्तु थोड़ी देर तक हल्की पगड़ी सिर पर रखनी चाहिये, देर तक धारण करने से पित्त वा नेत्र-रोग हो जाते हैं।

गन्धमाला–सुगन्धित पुष्पों की माला आदि धारण करनेसे पुष्टता, सुगन्धता, आयु बल की वृद्धि होती है, मन प्रसन्न रहता है।

खड़ाऊं–भोजन के पहिले या पीछे खड़ाऊँ पहनने स काम, आयु वा नेत्र को हित होता है, परन्तु अधिक पहनने से दृष्टि को हानि होती है।

लालटैन–मनुष्य को उचित है यदि अँधियारी रातमें कहीं जाना हो तो लालटैन अवश्य ले ले, क्योंकि मार्ग में सर्पादि जन्तुओं अथवा शत्रुओं का भय नहीं होता।

* द्रष्टव्य स्थानीय *

मेरा निवेदन ।

सभ्य सज्जनो और देवियो ! पहिले एडीशन में गर्भाधान के विषय का वर्णन यहां पर था, परन्तु इस पुस्तक को बहुशः पुत्र पुत्रियां भी पढ़ती हैं और ब्रह्मचर्यावस्था में ऐसे विषयों पर दृष्टि डालना अनुचित है अतएव इस बार मैंने सुविज्ञ पण्डितों वा सुयोग्य मित्रों के अनुरोध से उक्त विषय को निकाल कर इस ग्रन्थ को आबाल वृद्ध वनिताओं के उपयोगी बना दिया है। लेकिन गर्भाधान एवं उत्तम सन्तान उत्पन्न करने की विधि, गर्भवती का नौ मास का आहार विहार, आसन्न प्रसवा के लक्षण और उसकी रक्षा के उपाय, प्रसव के पश्चात् के उपयोगी कार्य्य, स्तन रोग एवं उसकी चिकित्सा, नवजात बालक को होने वाले साध्य असाध्य रोगों की चिकित्सा, बालक को पुष्ट रखने एवं सुविज्ञ बनाने की रीति का यथेष्ट रीत्यानुसार वर्णन मैंने गर्भाधान-विधि नामक पुस्तक में पृथक् किया है। अतएव उपरोक्त विषयको देखनेवाले सज्जन पुरुष और सुयोग्य देवियां 'गर्भाधान-विधि' को मँगाकर देखें। जो अबतक ग्यारह बार छप चुकी है मूल्य भी स्वल्प =) मात्र है।

निवेदक—

चिम्मनलाल वैश्य, तिलहर।

कुमार और किशोर अवस्था

जब बालक के दूध के दांत निकल आवें वा बालक बोलने लगे तब सुन्दर वाणी से बड़े छोटे मान्य आदि के सम्भाषण करने, बैठने उठने की रीति आदि की शिक्षा देनी चाहिये जिससे उनका सर्वत्र मान्य होता रहे और वे वृथा लड़ाई झगड़ा न करने पावें तथा मिट्टी धूल के खेलादि से भी बर्जित रहें। उनको सदा प्रातःकाल उठाना, पाखाना पेशाब कराना, मुंह हाथ धोना आदि भी बतलाया जावे।

प्रकट हो कि सन्तान जगत्कर्त्ता परमेश्वर की एक उत्तम धरोहर है जिसके उत्तरदाता माता पिता हैं, और यह ऐसी धरोहर है कि जिसमें विद्या आदि गुणों के सीखने की स्वाभाविक प्रकृति है, परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि सन्तान को हमारे पढ़ाने लिखाने की कुछ आवश्यकता नहीं। देखिये रेल के इञ्जिन में चलने फिरने, बोझ ले जाने की स्वाभाविक प्रकृति है पर जब तक उसकी कलों को घुमाया न जायगा तब तक वह बिलकुल निकम्मा निठल्ला रहेगा, इसी प्रकार जब तक माता पिता स्वसन्तानों को भली भांति शिक्षा न करेंगे तब तक उनकी स्वभाविक प्रकृति निष्प्रयोजन तथा निष्फल है। इसके उपरान्त सन्तान अति ही प्यारी वस्तु है कि जिससे बढ़ कर इस संसार में कोई पदार्थ नहीं, फिर भला कैसे शोक का स्थान है कि ऐसी अमूल्य सन्तानको विद्यारूपी रत्न से शोभित न करें जिसके कारण उनको नाना प्रकारके क्लेश भोगने पड़ें तथा माता पिताके नाम पर भी धब्बा आवे। अतः माता पिता को चाहिये कि जब सन्तान ५ वर्ष की होजावे तब प्रथम देवनागरी का अभ्यास करावें फिर अन्य देशीय भाषाओं को भी सिखावें। परन्तु प्रथम अन्य देशीय भाषा न सिखलाना चाहिये, क्योंकि अपनी मातृभाषा का निरादर करना अत्यन्त मूर्खता की बात है। इसके प्रथम सीखने से अन्य भाषाओं का सीखना अत्यन्त सुगम हो जाता है। आज इस प्रथा के न रहने से देशभाषा की प्रतिष्ठा प्रतिदिन कम होती जाती है, दूसरी भाषा के शब्द प्रत्येक स्थानों पर बोलने की प्रकृति हो जाती है, मातृ भाषा के शब्दों के बोलने में लज्जा आती है जैसा कि बहुधा देशी भ्रातगण नमस्ते, नमस्कार वा रामराम आदि के स्थान में सलाम, बन्दगी, तसलीमात, गुडमार्निंग बोलना अपनी प्रतिष्ठा का कारण समझते हैं तथा अपनी सन्तानों

को भी ऐसा ही सिखलाते हैं । इसी प्रकार विद्या-आरम्भ संस्कार का नाम मकतब होना या बिस्मिल्लाह होना बोलते हैं ! जिसकी देखा देखी हमारे पत्रापांडे भी बड़े हर्ष के साथ कहते हैं कि आज हमारे यजमान के लड़के की बिस्मिल्लाह है। धन्य है इनकी बुद्धि को कि फ़ारसी में अलिफ़ के नाम लट्ठा तक नहीं जानते परन्तु खुशामद तथा योग्यता जतलाने के अर्थ बिना फ़ारसी बोले कल नहीं पड़ती। इसी कारण हमारी मातृभाषा संस्कृत विद्या का भारत से लोप होगया और हमारी सन्तानों को उक्त विद्या की उत्तमता का निश्चय नहीं रहा कि जिससे धर्म में भी नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो गये हैं। अतएव प्रियसभ्य महोदयो ! सबसे पहले अपने लाभ और मातृ भाषा की प्रतिष्ठा और उद्धार के लिये स्वसन्तानों को संस्कृत विद्या का पढ़ाना योग्य है, फिर अन्य देशीय भाषा पढ़ाना चाहिये। देखो अंगरेज़ प्रथम अंग्रेज़ी, और मुसलमान अरबी, फ़ारसी पढ़ा फिर अन्य विद्याओं को सिखाते हैं, किन्तु हमारे देशीय बन्धुगण विपरीत अर्थात् प्रथम अपनी घरकी विद्या को जो सब विद्याओं में शिरोमणि है, त्यागकर अन्य विद्याओं को सिखाते हैं कि जिससे उनको ओ३म् के स्थान पर बिस्मिल्लाह रहमान् उल्लरहीम ' तथा ईश्वर के स्थान पर खुदा, गाड इत्यादि कहने का स्वभाव पड़जाता है । इसके अनन्तर संस्कृत अथवा देवनागरी के न जाननेसे अपने धर्म को भी पानी दे देते हैं अर्थात् बहुधा मुसलमान वा ईसाई हो हो जाते हैं, तथा जो इधर उधर के जाने से बचे रहते हैं उनके आचरण वेद आदि सत्यशास्त्रों के विरुद्ध रहते हैं ।

प्यारे बन्धुगण ! संस्कृत विद्या की ओर ध्यान दो जो सब विद्याओंका कोष है । यह विद्या सृष्टि के आरम्भ से प्रचलित हुई । इसीमें समस्त भूमण्डलके अर्थ परमेश्वर ने सकल विद्याओं का उपदेश किया। इसी कारण इसमें प्रत्येक विद्या यथावत् रूप से पाई जाती है। इसका न्यायशास्त्र समस्त देशों के न्यायशास्त्र से बढ़कर है वैद्यकशास्त्र भी अद्वितीय है देखो यूनानवालों ने इस विद्या को अपनी भाषा में उल्टा कर कैसा नाम पाया, व्याकरण ऐसा उत्तम है कि जिसकी प्रशंसा सम्पूर्ण जगत् के विद्वान् करते है । इसी प्रकार ज्योतिष, खगोल, गान, शिल्प,, तत्वविद्या आत्मविद्या आदि इसमें ऐसी ऐसी हैं कि जिनके परावार का वर्णन कोई नहीं कर सकता । सच तो यह है कि इस विद्या के शिरोमणि होने में बहुधा विद्वानों

के वचन पाये जाते हैं, जो इसी सृष्टि के सृजनहार परमेश्वर का प्रतिपादन करते हैं, उसी भांति सम्पूर्ण ज्ञानी महात्मा विद्वान् योग्य इस विद्या की उत्तमता, लालित्य तथा श्रेष्ठता योग्यता का दम भरते हैं तथा इसी विद्या को सम्पूर्ण विद्याओं का कोष बतलाते हैं।

अन्य देशीय लोग भी इस समय इसकी बड़ी प्रतिष्ठा करते हैं। देखिये जर्मन में कैसी चर्चा है कि जहाँ वेदों के खण्ड प्रत्येक के पास रहते हैं, ऐसे ही इङ्गलैंड में मोक्षमूलर इसी विद्या में अद्वितीय प्रसिद्ध होगये। निदान जितनी विद्यायें इस समय अन्य भाषाओं में दीख पड़ती हैं सब इसी से उन्था हुई हैं। डाक्टर हण्टर ने अपने इतिहास में लिखा है कि यह सब भाषाओं की माँ है अर्थात् सब भाषा इसी से उत्पन्न हुई हैं। शोक का स्थान है कि हमारे स्वदेशीय भाई उसके पठन पाठन की ओर किञ्चित् ध्यान नहीं देते फिर बेचारी देवनागरी को कौन पूछता है जैसा कि पण्डित गङ्गाराम जी बरेली निवासी ने एक सवैया में कहा है—

जग जाहिर काव्य शिरोमणिसे अब हिन्दके मानी विलाय गये।
यश आगरी नागरीके बिरवा सुख सींचतही मुरझाय गये॥
नागरी धीरज कैसे धरे विधना बुध बाल भुलाय गये।
गुण ग्राहक भारतवासिन के ऋषिराज जू हाय हिराय गये॥

परन्तु प्यारे मित्रों! अब गवर्नमेंट ने आपकी और हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये दर्वाज़ा खोल दिया है, इस लिये उनको धन्यवाद देते हुए तन मन धन से नागरी-भाषा की उन्नति में लग जाओ और संस्कृत पाठशालायें खोल दो।

❋ उर्दू की मीमांसा ❋

उर्दू भाषा में एक बड़ी हानि यह है कि जैसा उसमें लिखा जाता है वैसा पढ़ा नहीं जाता, किन्तु लिखा कुछ जाता है और पढ़ा कुछ जाता है और नाम, गांव, ठांव तो कभी ठीक किसी से पढ़े ही नहीं जाते। भला कोई निरा उर्दू जाननेवाला ऐसा मनुष्य भी है जो संस्कृत और अँगरेज़ी शब्द उर्दू अक्षरों में लिखे हुए ठीक ठीक पढ़दे तथा उच्चारण करदे? कोई भी नहीं, एक भी नहीं। परन्तु देवनागरी में जैसा लिखाजाता है वैसाही

पढ़ा जाता है अर्थात् लिखने पढ़ने में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता। इसका कारण यह है कि देवनागरी अक्षरों में १६ स्वर होते हैं और उर्दू अक्षरों में केवल तीन स्वर हैं जो १६ स्वर का काम देते हैं, इस कारण एक २ स्वर का कई कई प्रकार से उच्चारण होता है। उर्दू की लिखावट विन्दुओं पर है परन्तु सरकारी अदालतों में और मुन्शी लोग विन्दु लगाते ही नहीं, इस कारण जालभी खूब बनता है, व्योपारियों को भी बड़ी हानि पहुंचती है। इसके उपरान्त बहुत से अक्षर एकही प्रकार के होते हैं, उनके उच्चारण भी एकसे ही होते हैं। जिस प्रकार उर्दू में स्वर थोड़े हैं उसी प्रकार व्यंजन भी बहुत थोड़े हैं। इसके अतिरिक्त दो दो तीन तीन अक्षर मिलकर एक अक्षर बनता है जिससे नाना प्रकार की हानि होती है। देखिये, इस विषय में देवनागरी प्रचारिणीसभा मेरठके मन्त्री पण्डित गौरीदत्तजी कैसा लिखते हैं—

उर्दू छल से लूटे खावे, ढोल बजा के जाल बनावे।
उर्दू में यों बनता जाल, लिखो माल और करदो ताल ॥
उर्दू ख़त में लिखा था ताऊ, मुन्शी जी ने पढ़दिया नाऊ।
उर्दू का मुन्शी है भोला, लिखता भूला पढ़ता झोला ॥
रील रेल उर्दू में एक, एक लेख है ठीक और ठेक।
उर्दू ऐसी भोली भाली, मँगाई नाली अरु आई ताली ॥
उर्दू मुन्शी नुक्ते भूला, लिखा था पूला पढ़ा उसे लूला।
उर्दू में नहीं नुक्ते देते' अटकल पच्चू हैं पढ़ लेते ॥
ज़ेर पेश कोई नहीं देते, किश्ती को कुश्ती पढ़ लेते।
उर्दू के यह देखो खेल, मँगाया नील आया तेल ॥
उर्दू लिख मँगवाई पाली, मुन्शी जी पढ़ते हैं बाली।
उर्दू ख़त हमने पढ़वाया, घुरका को घरका बतलाया ॥
मुन्शी जी ने रिशवत खाई, छुरी लिखी थी छड़ी सुनाई।
उर्दू ख़त में लिखा "सितार", वहां मुन्शी ने पढ़ा 'सुनार, ॥
नागरी में जब लिखा सितार, सितार ही लेकर आया यार।
नुक्तों से होती है चाल, उर्दू में यों बनता जाल ॥
उर्दू हरफ़ों में है ऐब, उर्दू पढ़ा न जाने ग़ैब।
स्वाद सीन से हरफ़ बनाए, एक आवाज़ है तीन बताए ॥

ज़ोय ज़्वाद और ज़े और ज़ाल, चार हरफ़ों की एक ही चाल ॥
ते तोय की एक अवाज़, हमें बताओ इसका राज़ ।
लाम अलिफ़ क्यों वृथा बनाया, मीम अलिफ़ क्यों नहीं दिखलाया ॥
तीन स्वरों से लेवें काम, अलिफ़ वाव ये जिनका नाम ।
नागरी अक्षर उर्दू बोली, ठीक बराबर कांटे तोली ॥
उर्दू बोली नागरी अक्षर, इसका नाम है नागरी दफ़्तर ।
वोही उर्दू वोही हिन्दी, अक्षर भेद से दोनों ज़िन्दी ॥
उर्दू हिन्दी कुछ नहीं भेद, उर्दू अक्षर दे हैं खेद ।
हमने माना उर्दू दफ़्तर, उर्दू बोली नागरी अक्षर ॥
अँग्रेज़ी राज और उर्दू जारी, जिसके हरफ़ करें हैं ख़्वारी ।
उर्दू दफ़्तर यहां चलाया, अँग्रेज़ों ने धोखा खाया ॥
उर्दू मुन्शी मुन्शी भारी, एक नुक्ते से मारे कटारी ।
ज़ेर ज़बर से करदे खून, एक शोशे से बदले जून ॥
उर्दू मुन्शी हाथ में खप्पर, फिकवादो देख, फुकवा दिये छप्पर ।
जब साहब ने उसे बुलाया, तब उर्दू का दोष बताया ॥
रुक्के में था पित का रोग, पढ़ कर तप उसे दे दिया भोग ।
जब उसने वह खाई दवाई, हुई बीमारी और सवाई ॥
ख़त में लिखा बहली आवे, उर्दू मुन्शी भेली बतावे ।
पैर पूजो ख़त लिखवाया, पीर पूजो पढ़ के सुनाया ।
कहो उर्दू मुन्शी कैसी कही, 'भी' लिखा था पढ़ दिया 'बही' ।
क्यों मुन्शी जी क्या है सही, 'घी' पढ़ो या तुम 'दही' ॥
'अजमेर गया' ख़त में लिखवाया, मकतूबइलह ने ख़त पढ़वाया ।
'आज मर गया' पढ़के सुनाया, सारे घर को खूब रुलाया ॥
उर्दू ख़त में लिखा था बाबू, गुक़ता देकर पढ़ दिया याबू ।
लाठी लेकर बाबू आया, तब उर्दू का दोष बताया ॥
बैल मंगाए ख़त लिखवाया, बेल मंगाई पढ़ के सुनाया ।
पत्थर मारा निकली जान, उसी आन हो गया चालान ।
पेश मुक़दमा हुआ जब, मुन्शी पढ़दिया थप्पर तब ।
मुन्शी अपना काम बनाया, मारनवाला साफ़ छुड़ाया ॥

इसके उपरान्त उर्दू और फ़ारसी में बहुधा किताबें इश्क़बाज़ी और माशूक़ के ख़तों खाल की प्रशंसा में, और बहुत सी नाचने गाने में और बहुधा दुराचार और व्यभिचारियोंके क़िस्से कहानियोंमें और अनेक तावीज़ गण्डे मन्त्र मारण मोहन वशीकरण उच्चाटनमें हैं, जैसा लज़्ज़त इश्क़, फ़रदे इश्क़, बहार इश्क़, मसनवी ज़ुलेखा, मसनवी ग़नीमत, बहार दानिश, इन्दर-सभा, मदारीलाल और अमानत, फ़िसाने अजायब, नैरंगतिलस्म, इन्द्रजाल, नक्शसुलेमानी, लज़्ज़तुलनिशां तथा सब दीवानात अथवा वासोख़्त, बारह-मासे इत्यादि पुस्तकें हैं, जिनमें से बहुधा तो मियाँजी शौक़िया पढ़ाते हैं। ज़ुलेखा, ग़नीमत, बहारदानिश का तो क्या कहना, ये तो मक़तबोंमें तालीम का कोर्स है कि जिनके पढ़नेसे अपने आप उन बालकों तथा नवयुवकोंमें दुराचार अथवा व्यभिचारादि अवगुण उत्पन्न होजाते हैं, इस पर तुर्रा यह है कि मियांजी ऐसी ऐसी किताबों के हर मिसरे और फ़िक़रे को बड़े हास्य भाव से समझाते हैं, मानों इश्क़ की सूरत दिल पर नक्श कर देते हैं कि जिसका यह फल प्रत्यक्ष होरहाहै कि सम्पूर्ण भारतवर्षके नौजवानोंमें बालकों के साथ कुचेष्टा, रण्डीबाज़ी, शराबख़ोरी, गोश्तख़ोरी स्त्रियोंके समान बदन शृङ्गार करना, नाज़ो-अदा से चलना, बदन का फड़कना, नाक भौंहों से कटाक्ष करना, नाचना गाना आदि अवगुण और दुर्व्यसन उत्पन्न होगये हैं कि जिनसे भारत का सत्यानाश होगया और हो रहा है।

इसलिये प्यारे सज्जन पुरुषों! अपने बालकोंको देवनागरी अच्छेप्रकार से पढ़ाओ, परन्तु इन्द्रजाल, इन्द्रसभा, बारहमासे आदि जो बुद्धिबल धर्मनाशक पुस्तकें भाषामें भी होगई हैं न दिखलानी चाहियें, वरन् ऐसी ऐसी ख़राब पुस्तकों के अवगुण सुना देना योग्य है कि जिससे उनकी रुचि स्वयं ऐसी अनुचित पुस्तकों के देखने की न हो फिर यदि उर्दू सिखलाना ही हो तो करीमा, ख़ालक़बारी, आमदनामा, दस्तूरसिबियां, मस्दरफ़युज, गुलिस्तां, बोस्तां आदि पढ़ाना योग्य है।

हे देश के शुभचिन्तको, लेखको! अब कृपाकर आगेको ऐसी पुस्तकों का बनाना छोड़दो कि जिससे देश का देश साफ़ हुआ जाता है, जिसका पाप आपके सिर चढ़ता है और जिसके प्रभावसे आप को जन्मजन्तान्तर में नाना क्लेश भोगने पड़ेंगे। अतएव यदि आपको अपना नाम चिरायु करना है तो पूर्वोक्त ऋषि, मुनि, महात्मादि सत्पुरुषों की भांति देशोपकारक

विषयोंमें अपनी लेखनीको दौड़ाइये जैसाकि इस समयमें भी बहुधा सुजन ग्रन्थ रचकर प्रचार कररहे हैं । इसके अतिरिक्त पादरी अर्थात् मिशनस्कूलोंमें भी बालक या बालिकाओंको शिक्षाके निमित्त न भेजना चाहिये क्योंकि वे उनके धर्म कर्म ईसा को खुदा का बेटा मान उसके वसीले से स्वर्ग का जाना, उसका कुआरी कन्या से पैदा होना और शूली देने के तीन दिन पीछे क़बर से उठकर सातवें दिन आसमान पर जाना, गुनहगारका ईसा पर विश्वास लाने हीसे गुनाहोंसे निजात पाना, मुर्दे को मोज़िज़ों से जिलाना, आंखें देना इत्यादि ऐसी महा अनर्थ और मिथ्या बातों को नित्यप्रति सुनातेहैं । हमारे प्राचीन सत्यग्रन्थों अथवा महात्माओंमें अनेकान दूषण बताते हैं, जैसाकि वेद को ५००० वा ६००० वर्ष का बना हुआ कहना, उसको ईश्वरकृत न मानना, व्यभिचार शराब का पीना, हिंसा करना इत्यादि बातें वेद में बतलाते हैं । इसके उपरान्त राम कृष्ण आदि महापुरुषों और महात्माओंकी नानाभांतिसे रामपरीक्षा, कृष्णपरीक्षा धर्मतुला मुक्ति आदि अनेक पुस्तकों में खिल्ली उड़ाते हैं । ऐसे विषयों में सैकड़ों किताबें छपवाकर प्रकाशित की भी हैं और हर रविवार को बालकों को स्कूलों में बुलाकर नाना भाँति के भजन गाकर सुनाते हैं, बाजे बजाते तथा उनको किताबें देते हैं अन्तको दुआ में शामिल करलेते हैं, जिसको सण्डे स्कूल कहते हैं । क्योंकि क्रिश्चियनों के मतानुसार परमेश्वर के छः दिन में सब संसार के पदार्थों को रचा और सातवें दिन विश्राम किया अर्थात् थकावट को दूर किया । यही कारण है कि ईसाई उसदिन आराम करते और दुआ मांगते हैं। तत्पश्चात् ख्रीष्ट मत को सब मतों से श्रेष्ठ बतलाते हैं, प्रत्येक प्रकार से उन्हीं आचारों को उन बालक और बालिकाओं में प्रवेश करने का उपाय करते हैं ।

प्यारे पाठकगण ! अब विचारिये कि इन बातों का भारत पर कैसा असर हुआ है कि जिससे हज़ारों हमारे तुम्हारे भाई ईसाई होगये, क्योंकि सत्संग का अवश्य ही प्रभाव होता है, यथा—

दोहा—संगत ही गुण ऊपजे, संगत ही गुणजाय ।
बांस फांस औ मीसरी, एकै भाव विकाय ॥

बहुधा पादरी स्कूलों में या अन्यत्र देशी मिसें गाना गाती तथा अंग्रेज़ी बाजा बजाती हैं, ऐसे स्थानों पर बहुत भीड़ इकट्ठा होजाती है, उन में से

कोई २ उनकी मीठी आवाज़ सुनकर ऐसे मोहित हो जाते हैं कि प्रतिदिन ईसाइयों के पास आते जाते तथा उनकी बातचीत सुनते हैं, तब वे लोग नाना प्रकार के भरोसा देते हैं। इधर हमारे भाई बिल्कुल बेसुध रहते हैं, उधर वह सब प्रकारसे मुड़जाते अर्थात् कृष्टान होजाते हैं और मिस के साथ हाथ में हाथ मिलाये हुए गली और बाज़ारों में घूमते अथवा होटल में डबलरोटी बिसकुट खाते मानो दूसरे पादरी बन जाते हैं।

बहुधा ग़रीब लड़कों को जिनको शाम तक रोटी मुशकिलसे मिलती हैं उनका वज़ीफ़ा मिशन में करदेते हैं कि जिससे वे लड़के मदरसे के समय के अतिरिक्त भी पादरी साहेब के बंगले पर आते जाते हैं। तब उनको समय २ पर थोड़े २ उपदेश तथा नौकरी आदि का लालच दिखलाते जाते हैं कि जिसके कारण वह कृष्टान होजाते हैं।

प्यारे सुजनों! जो बालक उनके फन्दे से बच जाते हैं उनके मन डामाडोल होजाते हैं, वे अपने वैदिकधर्म को तुच्छ जानने लगते तथा सन्ध्यादि का नाम भी नहीं लेते, यज्ञोपवीत को मिथ्या तथा वेदों को मनुष्य कृत मानने के अनन्तर मांसादि खाने में अति प्रसन्न होते हैं।

इसके अतिरिक्त बड़े २ नगरों में ईसाई मेमें स्त्रियों में पढ़ाने तथा मोज़े, गुलूबन्द आदि बनाना सिखलाने के अर्थ प्रतिष्ठित २ गृहस्थों के घरों में जाती हैं और वहाँ जाकर अपना दिली मतलब सिद्ध करनेके निमित्त नानाप्रकार के जाल फैलाती हैं। विशेषकर विधवाओं के चित्तों को हरती हैं जिसका अन्तिम फल यह होता है कि ये ईसाई बनकर उनका साथ देती हैं। इसलिये हे सुजनों! इन सब बातोंको हानिकारक समझ यथार्थ रीति से इनका परित्याग करना चाहिये।। इसके उपरान्त सन्तानों को ऐसी ऐसी बातें सुनाते रहो कि जिससे वे किसी धूर्त्त की बातों में नफंसजावें।

❁ आभूषण पहिनाना ❁

सन्तानोंको चांदी सोनेके आभूषण न पहिनाने चाहिये, वरन् उनकी आत्माको विद्यादि गुणों से भूषित कराना योग्य है कि जिससे उनको समस्त आयु नानाप्रकार के सुख चैन आनन्द मिलते रहें। तत्पश्चात् इन आभूषणों के धारण करनेसे अभिमानादि दोष उत्पन्न होजातेहैं कि जिससे

बालक गुण ग्रहण करनेमें मन नहीं लगाते कि जिसके कारण समस्त आयु नाना प्रकारके क्लेश भोगने पड़ते हैं। इसके उपरान्त लालची मनुष्य बहुधा बालकों को मार डालते हैं जिसके कारण अनेक घरानोंके दीपक बुझ जाते हैं, उस समय अपनी प्यारी सन्तानोंके लिये हाथ मलते अथवा कर्म ठोकते रहजाते हैं, यह सब बातें प्रत्यक्षमें देखते हुए भी दुःख सहते हैं। परंतु शोक तो इस बातका है कि बिना आभूषण पहनाने के कल नहीं पड़ती हालाँ कि हमारी गवर्नमेंट नाना भाँतिसे शिक्षा करती है, परन्तु हमारे देशभाइयों के मन में शेख़ी या भूत ऐसा प्रविष्ट हुआ है कि इन सब बातों के क्लेश होने परभी नहीं मानते। अतएव प्यारे सज्जनों! इस बुरी रीतिको शीघ्र दूर कर दो। कुछ साहूकारी या बड़प्पन दो चार दस बीस पचास रुपये के आभूषण धारण करने से ही नहीं होती, फिर कौन सा लाभ आभूषणोंके धारण करनेमें है? इन सबके अतिरिक्त कलाई तथा पिंडलियाँ बलयुक्त नहीं रहतीं, अर्थात् पतली पड़जाती हैं जो शोभाको भी कम कर देती हैं। उपरोक्त हानियोंके कारण अन्य देशी लोग अपने बालकों को सोने चाँदीके आभूषणोंसे भूषित नहीं करते, क्या वे सब कङ्गाल हैं? अथवा उनको पेट भर रोटी नहीं मिलती? देखलो यही अंग्रेज़ जो हज़ारोंकी तनख़्वाह पाते तथा हज़ारों ही ख़र्च करते हैं, परन्तु भूषणों का नाम तक नहीं लेते, हाँ अपनी सन्तानों को विद्या आदि सद्गुणों से अच्छे प्रकार भूषित करते हैं कि जिसके कारण वे नाना प्रकारके सुखोंको भोगते हैं, अतः ये सब बातें जानकर सोने चांदीके आभूषणों का धारण कराना त्यागकर उन पर मुख्य प्रेम अर्थात् उनको विद्या आदि गुणों से भूषित कीजिये कि जिससे इस लोक और परलोक दोनों में आनन्द प्राप्त हों।

❁ जुआ खेलना ❁

जुआ या लाल, मुर्ग़ा आदिका दांव लगाकर तथा शतरंज, गंजीफ़ा, चौसर आदिका खेल भी भला नहीं, क्योंकि जुआकी हार और जीत दोनों प्यारी होती है। जब मनुष्य जीतता है तो लालचमें आकर खेलता ही रहता है, यदि हार गया तो जीतने की आशा पर घरबारको भी खो बैठता है। देखो पूर्वकाल में भी जुआ अर्थात् ताश पत्ते आदि खेलने ही के कारण राजा नल और दमयन्ती को वनवास हुआ और जुए ने ही युधिष्ठिरादि पाण्डवोंको बारह वर्ष बनमें अकेला फिराया, सब चैन आरामको छुड़ाया,

जब इस पर भी न रहा गया तब अन्तको युद्ध हुआ जिसके कारण भारती का सत्यानाश हो गया। जुआरियों की दशा तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि उनकी क्या २ दुर्दशा होरही है, तिस पर जुआरी की बात पर कोई भरोसा नहीं करता, जब उनकी हार होती है तो एक रुपयेका माल दो आने में देकर नङ्गे बन जाते हैं कि जिसके कारण भूखों मरने लगते हैं, नव चोरी आदि दुष्कर्म करते हैं कि जिसके कारण कारागार भोगते हैं, बदमाशी का तमग़ा मिलता तथा बाप दादे का नाम डूबता है।

अतएव हे पुत्रो! ऐसे कर्मों को तुम कदापि न करो। हमारे देशमें इस बुरे कर्म को दिवाली के दिन सब स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकायें विना रोक टोक के अच्छे प्रकार करते हैं। वाह! शोक है इन भारतवासियों को कि ऐसे बुरे कर्मको त्योहारके दिन करते हैं कि जिससे यह बुरा कर्म पीढ़ी दरपीढ़ी चला जाता है और एक दिन सब जुआरी बनजाते हैं। कहतेहैं कि "कौरव पांडव" खेले थे, हाय! क्या ही आश्चर्यकी बातहै कि उन पांडव और कौरव के अन्तिम फल पर दृष्टि नहीं डालते कि जिसको मैंने ऊपर वर्णन किया। अतःप्यारे गृहस्थियों! यह बुरे कर्म कदापि न करो और सदा अपनी सन्तान को भी शिक्षा करते रहो, इस विषयमें मनुजी ने लिखा है—

द्यूत कर्म वा समाह्वय इनको राजा अपने राज्यमें न होने दे, क्योंकि यह दोनों दोष राज्य का नाश करने वाले हैं।

प्राणरहित पासा आदि से दांव लगा के क्रीड़ा करना 'द्यूत' कहाता है, प्राण सहित मेढ़ा, भैंसा, घोड़ा, लाल, मुर्गा आदिसे दांव लगाकर क्रीड़ा करना 'समाह्वय' कहाता है।

बड़ा बैर करनेवाला द्यूत है, अतः बुद्धिमान् पुरुष हंसी के अर्थ भी इसका सेवन न करे, इसके सिवाय शतरंज, चौसर, गंजीफा आदिमें समय व्यर्थ जाता है, जो अमूल्य है। इसी समय में हम अनेकान लाभकारी पुस्तकें, समाचार पत्र, पत्रिकायें पढ़कर लाभ उठासकते हैं जैसा कि अन्य देशी जन उठाते हैं।

❋ पशु और पक्षी पालन ❋

य० अ० २४ मंत्र १३में उपदेश है कि बैल, गाय, ऊँट आदि पशुओं से गृहस्थ लोग समस्त कार्य सिद्ध करें और मन्त्र १४ में आज्ञा है कि खेती

करनेवाले मनुष्य पशुओं से बहुत कार्य सिद्ध करें, इस हेतु विद्वानों ने पशुओं की पालना आदि के जो मार्ग कहे हैं उनको जान कार्य करना अभीष्ट है। जैसा वेद में कहा है। देखो य० अ० १४ मंत्र १७। इसीप्रकार पक्षियों के स्वभाविक गुणों को जान जो कार्य लेते हैं वह बहुश्रुत के समान होते हैं जैसा य० अ० २४ मंत्र २४ में कहा है। इसके अतिरिक्त उलटे कार्य्य करने से नाना भाँति की हानि होती है जैसी वर्त्तमान दशा में हमारे देश में होरही है। कबूतरों को पाल कर प्रति दिन उड़ाते ही उड़ाते आप उड़ जाते हैं और मेढ़ों और बटेरों को लड़ाते ही लड़ाते आप लड़ कर समाप्त हो जाते हैं। प्यारे मित्रों! वेद में इनके पालन से विचित्र विचित्र गुण प्राप्त करने की आज्ञायें हैं, वह अविद्या के कारण सब आपने नष्टकरदी। देखिये मं० २५ में आज्ञा है कि जो मनुष्य अपने २ समय के अनुकूल क्रीड़ा करनेवाले पक्षियों के स्वभाव को जान कर अपने स्वभाव को वैसा करते हैं वे बहुत जाननेवाले होते हैं और य० अ० २४ मं० १३ में कहाहै जो पशुओं से यथावत् उपकार लेते हैं वे समर्थ होते हैं। इसलिये वेदोक्त आज्ञाओं को जान उनसे अनेकान् प्रकार के कार्य सिद्ध कीजिये।

इसके उपरान्त मिथ्या खेल और तमाशों से सन्तान को बचाते रहिये क्योंकि मोहचंग बजाने से एक तरफ के मूँछ के बाल उड़ जाते हैं और पतंग उड़ाने से लड़कों के चोट आती तथा गिर भी जाते हैं और कभी कभी लड़ाई भी हो जाती है। इसी भांति चकई, लेटुआ आदि के फिराने को भी जानना चाहिये।

॥ ब्रह्मचर्य्य ॥

❋ वीर्य्यरक्षा और विद्याध्ययन का समय ❋

प्रिय सज्जन पुरुषों! "ब्रह्मणेवेदादि विद्यायै चर्यत इति ब्रह्मचर्यम्" अर्थात् ब्रह्म वेदविद्या को कहते हैं और उसके सीखने के लिये जो व्रत किया जाता है उसको 'ब्रह्मचर्य' तथा उस व्रत के पूर्ण करने वाले को 'ब्रह्मचारी' कहते हैं।

यजुर्वेद अ० ११ मं० ३५ में लिखा है कि विद्वान मनुष्य को योग्य है कि संसार में दो कार्य निरन्तर करें प्रथम ब्रह्मचर्य और जितेन्द्रियता

आदि की शिक्षा से शरीर को रोग-रहित बल से युक्त पूर्ण अवस्था वाला, दूसरे विद्या तथा क्रिया की कुशलता से आत्मा का बल अच्छे प्रकार से साधें कि जिससे सब काल में आनन्द भोगें।

ऋग्वेद अ० २। अ० ७। व० ८। मं० २। अ० ३। सू० २७। मं० १० में लिखा है कि बिना ब्रह्मचर्य धारण किये कदापि पूर्ण आयु वाले नहीं होते।

इसके अतिरिक्त य० अ० २१ मं० २० में लिखा है कि जैसे प्रसिद्ध अग्नि बिजली, पेट का अग्नि, बड़वानल ये चार और प्राण, इन्द्रिय तथा गाय आदि पशु सब जगत् की पुष्टि करते हैं वैसे ही मनुष्यों को ब्रह्मचर्य आदि से अपना और दूसरों का बल बढ़ाना चाहिये।

त्वष्टा तुरीयो अद्भुत इन्द्राग्नी पुष्टिवर्धना।
द्विपदा छन्द इन्द्रियमुक्षा गौर्न वयो दधुः॥

और य० अ० २८ मं० ४८ में कहा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य, औषधि पथ्य और सुन्दर नियमों के सेवन से शरीर की रक्षा करें तो उनके शरीर दृढ़ होते हैं और जिस प्रकार शरीरों का पृथ्वी आदि का घर है उसी भांति जीव का यह शरीर घर है। जैसा—

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु॥

इसके उपरान्त चार आश्रम चार प्रयोजनों के लिये परमात्मा ने नियत किये हैं। उनमें सब से प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम विद्या और शिक्षा के ग्रहणार्थ है। द्वितीय गृहस्थाश्रम जो धन के संचय और सन्तान के हेतु। और तृतीय वानप्रस्थ तप के अनुष्ठान और चौथा आश्रम संन्यास लेकर वेदादि विद्या और धर्म के नित्य प्रकाश करने के लिये है। ऐसा ही य० अ० १२ मं० १८ में कहा है। इस हेतु चारों आश्रमों के यथावत् होने के निमित्त ब्रह्मचर्य आश्रम का पूर्णरूप से पालन करना योग्य है।

अथर्ववेद का० ११ अनु० ३ वा १५ में लिखा है कि सब जीवों के प्राणों की रक्षा करने वाला मुख्य ब्रह्मचर्य व्रत है, इसीसे दुःखों की निवृत्ति होती है।

पृथक् सर्वे प्रजापत्याः प्राणानात्मसु बिभ्रति ।
तान्त्सर्वान्ब्रह्मरक्षति ब्रह्मचारिण्य भृतम् ॥

ऐसा ही शतपथ का० ११ प्र० ३ ब्रा० क० २ में व्यास जी ने कहा है, कपिलमुनि का वाक्य है कि इसी के बल से मनुष्य ऋषिलोक को जाता है, सनत्सुजात् का वचन है कि ब्रह्मचर्य व्रत धारण करनेवालों को मोक्ष प्राप्त होती है, ऐसा ही मनुजी महाराज ने भी कहा है । प्रश्नोपनिषद् में लिखा है कि जो मनुष्य बाल्यावस्था से ब्रह्मचारी रहकर तपस्या करता है उसको इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान हो जाता है, ऐसे ही श्रीकृष्ण महाराज ने गीता के ५ अध्याय के २८ श्लोक में लिखा है कि जो मनुष्य मन बुद्धि से जितेन्द्रिय होते हैं वही जीवन्मुक्त हैं । महाभारत में ऊर्ध्वरेता बाल ब्रह्मचारी भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर महाराज से कहा है कि इस संसार में उत्पन्न होने से मरणतक जो ब्रह्मचारी रहता है उसके लिये कोई उत्तम बात ऐसी नहीं जिस को वह प्राप्त न कर सके ।

इसी के कारण अनगणित ऋषि और मुनियों ने आनंदस्वरूप परमात्मा के सच्चे ज्ञान को प्राप्त कर मुक्ति के सुखों को पाया और इसी के बल से ब्रह्मचारी को सब लोकों की गति हो जाती है, अथर्ववेद काण्ड ११ सूत्र ५ में लिखा है कि औषधि वनस्पति, पक्षी और बिना पंखवाले ग्राम और जंगल के पशु, पार्थिव और आकाश के पदार्थ और जीव जन्तु ब्रह्मचारी रह कर बली और दीर्घजीवी होते हैं ।

शुकदेवजी ने राजा जनक से कहा है कि जिसने ब्रह्मचर्य में चित्त की शुद्धि की है उसी को अन्य आश्रमों में आनन्द मिलता है । छान्दोग्य-उपनिषद् में लिखा है कि जिस कर्म को कर्मकाण्डी लोग यज्ञ कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है । जिस को इष्टि कहते हैं वह भी ब्रह्मचर्यही है । जो वेदोक्त कर्मों को करना चाहे वह भी ब्रह्मचर्य है । मौन भी इसको कहते हैं । पातञ्जलि जी योग सूत्र में लिखते हैं कि ब्रह्मचर्य से वीर्य्य लाभ होता है—

ब्रह्मचर्य्यप्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः ।

मान्यवरो ! इसी ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य देवता तथा मुनि होते हैं, यही शरीर का उत्तम तप है । यही अकाल मृत्यु को जीतता है । इसी कारण

श्रीकृष्ण महाराज ने सँजय से कहा है कि इन्द्र ने देवताओं में उत्तम होने के अर्थ ब्रह्मचर्य व्रत किया था। देखो गौतमस्मृति में लिखा है कि बिना ब्रह्मचर्य के आयु, तेज, बल, वीर्य, बुद्धि, श्रीधनादि का नाश हो जाता है, जैसाकि—

आयुस्तेजो बलं वीर्यं प्रज्ञा श्रीश्च महायशः।
पुण्यं च मत्प्रियत्वं च हन्यतेऽब्रह्मचर्यया॥

अमृतसिद्ध नामक ग्रन्थ में लिखा है कि जो ब्रह्मचारी नहीं है उसकी कभी सिद्धि नहीं होती, वह सदा जन्म-मरणादि क्लेशों को भोगता रहता है—

असिद्धं तं विजानीय यान्न स्वब्रह्मचारिणम्।
जरा मरणसंकीर्णं सर्वक्लेशसमाश्रयम्॥

इनके उपरान्त यह भी लिखा है कि जिस पुरुष के इन्द्रियद्वारा वीर्य चलायमान रहता है उसका चित्त भी सदा चलायमान रहता है।

चरक से प्रकट होता है कि पूर्व ऋषिगण इसी रसायन का सेवन कर अपनी आयु को बढ़ाते थे। इसीलिए उन ऋषियों ने वेदानुकूल मनुष्य मात्र के लिये यही उपदेश किया कि यदि तुमको आयु बढ़ाना है तो इसी ब्रह्मचर्य का सेवन करो जैसाकि चर० चि० अ० १ पाद १ में लिखा है।

इसी का नाम अमृत है जिसको भीष्मपितामहजी ने यथार्थ पान कर असन्तान होते हुए भी पितामह कहलाये, और आज तक उनका नाम चला जाता है इसी को अमर कहते हैं। अतएव प्रियवरो! पूर्ण आयु तथा कल्याणदाता, निरोगता प्रदान करनेवाला, मन को प्रफुल्लित रखनेवाला, सब पुण्यों में उत्तम ब्रह्मचर्य ही है, जैसा कि चरक में लिखा है—

पुण्यतमायुः प्रकर्षकरं जराव्याधिप्रशमनम्।
ऊर्जस्करममृतं शिवं शरण्यमुदात्तं मतः।
श्रोतुमर्हथो पधारयितुं प्रकाशयित्तुं च।
प्रज्ञानुग्रहामार्यं ब्रह्मचर्य्यम्।

सच पूछो तो शरीर में सब खेल धातु अर्थात् वीर्य्यरूपी राजा के हैं। जब इसकी उपरोक्त प्रकार से रक्षा नहीं होती तो फिर भला किस प्रकार शरीररूपी वृक्ष में धर्म अर्थ काम मोक्षादि फल लग सकते हैं? कदापि नहीं,

जिसप्रकार सेनाका राजा भाग जाता है तब उसकी सब प्रकार से दुर्दशा होती है, उसीभाँति नाक, कान, हाथ, पाँव, नेत्र, त्वचा मूत्रेन्द्रिय, मलेन्द्रिय, जीभ, वाणी इन दश रिसालों की शरीररूपी सेना से जब वीर्यरूपी राजा निकलजाता है तो यह सब रिसाले जिधर जिसकी इच्छा होतीहै चलेजाते हैं। अर्थात् नाक, कान, नेत्र, अपना कार्य करनेके योग्य नहीं रहते फिरभला बल, पौरुष, पराक्रम, धैर्य, ज्ञान आदि सुख मिलसक्ते हैं ? कदापि नही।

वर्त्तमान् समयमें ब्रह्मचारी के माता पिता आचार्य कुछ सुध नही लेते वरन् नाम तक भी नहीं जानते कि ब्रह्मचारी किसको कहते हैं और न वह उनके लाभोंको यथावत् जानते हैं क्योंकि वे आप भी ब्रह्मचारी नहीं बने न सत्यशास्त्रों का पठन किया, न उनको वर्त्तमान् समय के नाम मात्र के आचार्यों ने समझाया, वरन् उक्त तीनों न्यून अवस्थामें विवाह होनाही उत्तम जानते हैं। वे कहते हैं कि आज हमारे ललुआ के मुनुआ होजावे तो हमारे नेत्रों को आनन्द मिले और चैन आवे. वेद पढ़ाकर हमको फ़क़ीर थोड़ा ही बनाना है। इसीकारण यज्ञोपवीत के समय वेदारम्भ का नाम ही रहगया है। जब हमारे देशके माता पिता आचार्यों की यह दशा होगई तब ही तो भारत रसातल को चलागया, इसमें आश्चर्य क्या ? यहां न कोई वेद पूछता है न शास्त्र। फिर क्या है, देखलो क्या था क्या होगया। मुख्य कारण ब्रह्मचारी होकर विद्या पढ़ना ही है, क्योंकि वीर्य शरीर में पकने से उत्साह, उत्साह से विद्या, विद्या से ज्ञान, ज्ञान से धर्म धर्म पर चलने से सर्वप्रकार के यथावत् सुख मिलते हैं। वही पदार्थ विद्या में उन्नति कर सकता है, वही सब आनन्द तथा परमानन्द अर्थात् मोक्ष सुखको पाताहै, क्योंकि बिना ब्रह्मचर्य सेवन के काया और विद्या दोनों का नाश हो जाता है, फिर सुख कैसा ?

हे सुजनों ! जिसके शिर पर काम सवार होजाता है, वह तृण से भी हल्का होजाता है, राजपाट खोता तथा प्रतिष्ठा और मान को धूल में मिला कर संसार में अपकीर्त्ति पाता है, परलोक में भी दण्डभागी होता है, वन वन फिरता है, नदी नाले लांघता है। इसी काम ने सीता के हरने पर लंकापति रावण और तारा के अपहरण करने से बाली तथा द्रौपदी को ग्रहण करने की इच्छा में कीचक जो राजा विराट् का साला था मारा गया।

लंकेश्वरोजनकजाहरणेनवालीतारापहारकृतयाप्यथकीचकाख्यः। पाञ्चालिकाग्रहणतोनिधनंजगाम तच्चेतसापि परदाररतिं न कांक्षेत् ॥

इसके उपरान्त राजा पुरुरवा उर्वशी अप्सरा के साथ निरन्तर रमण करने की चिन्ता में क्षय होगया। इसलिये जीवनरक्षा के हेतु पराई स्त्री के साथ रमण करने की कभी इच्छा न करे।

उर्वशीसुरतचिन्तया ययौ संक्षयं किल पुरुरवानृपः।
रक्षणायनिजजीवितस्य तत्संभजेत्परवधू न कामतः ॥

प्यारे सज्जन पुरुषो ! भारतवासियों ने भी इसके फन्दे में फंस कर सर्वस्व देदिया। प्राचीन इतिहासों के अवलोकन से स्पष्ट प्रकट है कि पूर्व समय में भारतवासी जन अपनी योग्यता तथा निपुणता में समस्त भूमण्डल में अद्वितीय तथा अपूर्व गिने जाते थे।

यही भारत जो वर्त्तमान समय में अविद्या के समुद्र में डूबा हुआ है, प्राचीन समयमें विद्याके प्रकाश से सूर्य्य के समान दीप्तमान होरहा था। यहांकी विद्यारूपी नदीने देश देशान्तरों को सींचकर हरा भरा कर रक्खा था। यहांतक कि मिश्र यूनान के प्राचीन निवासी जो गणित वैद्यक ज्योतिष आदि विद्याओं के उत्पन्नकर्त्ता समझे जाते हैं, उन आर्य्यों के शिष्य थे कि जिनसे प्रथम इस संसार में किसी दूसरी जातिकी उत्पत्ति इतिहासों से प्रकट नहीं होती। उनकी संस्कृत विद्याकी लालित्य और मधुरता प्रकट है, व्याकरण की अपूर्वता विदित है, शिल्प तथा पदार्थविद्या में उस समय जो उन्नति थी उसका वर्णन करना कठिन है, विश्वकर्मा के बनाये हुए पुष्पकविमान कि जिसपर श्रीरामचन्द्र जी लङ्का से अयोध्या को आकाश मार्ग होकर आये थे कि जिनके सम्मुख रेलादि का बनाना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। इन्हीं महात्माओंने सूत कातनेका चरखा, कोल्हू, हल इत्यादि, मयदैत्य ने राजा युधिष्ठिर के यहां सुधर्मा नामा ऐसी अपूर्वसभा बनाई थी कि जिसमें जल के स्थान पर थल तथा थल की जगह जल जान पड़ता था। तत्पश्चात् इस भूमि के गुणियों ने सूक्ष्मदर्शक, दूरदर्शक यन्त्र, धर्म घड़ियां, जेबी घड़ियां तथा कलों के द्वारा बोलने वाले पक्षी

आदि अद्भुत अथवा अनोखे यन्त्रकला बनाये थे। वैद्यकशास्त्र को अश्विनी-कुमार वा धन्वन्तरि ने मनुष्यों के सुखचैन तथा आरोग्य रहने के लिये बनाया था कि जिसमें निघण्टु, निदान वा चिकित्सा का ऐसा वर्णन किया कि जिनको पढ़ कर यूनानवालों ने नाम पाया, इस विद्या में चरक, सुश्रुत, वाग्भट्टादि आचार्य्यों ने भी बड़े बड़े अपूर्व ग्रन्थ रचे। ज्योतिषविद्या भी ऐसी है कि जिसकी समता दृष्टि नहीं आती, ज्योतिष में आकाश वा पृथ्वी विषयक दो प्रकार का ज्ञान है, आकाश विषय में वह ज्ञान है कि जिसमें ग्रह नक्षत्रादिकों का प्रमाण, चाल, ग्रहण होने के कारण आदि का वर्णन है, पृथ्वी विषयक ज्ञान में पृथ्वी, पहाड़, नदी आदि का वृत्तान्त विदित होता है, ज्योतिष में गणित मुख्य है जो समस्त विद्याओं में उप-योगी है, जिसको 'पिताभट्ट' तथा 'भास्कराचार्य, ने निकाला है। मीमांसा शास्त्र को जैमिन ने, वैशेषिक को कणादमुनि ने, योग को पतञ्जलि ने, सांख्य को कपिलदेव तथा वेदान्त को व्यासजी ने निर्माण किया था, जिनमें से आत्मविद्या के जाननेवाले योगी जन दूर दूर से बातें करते थे, नाना प्रकार की शक्ति रखते थे, क्योंकि योग ही के द्वारा वह मन की वृत्तियों को अपने अधीन कर लेते थे। गान विद्या में भी पूरी योग्यता रखते थे इन्होंने ही आठ राग चौंसठ रागनियां निकाली थीं जिनके ताल स्वर न्यारे न्यारे थे, यही कारण है कि इनके गान में जो रस आता है वह किसी देश के गान में नहीं आता है। ऐसे ही युद्धविद्या में बड़ी विज्ञता रखते थे, जो सालून, दलगन इत्यादि शास्त्रों से लड़ते थे, तदुपरान्त वह विषभरी वायु से अरिसेनाओं को लपेट कर पवन में भयंकर शब्द उत्पन्न करके उनको विध्वंस कर डालते थे और आकाश में डरावनी सूरत बना कर शत्रुओं को भयभीत करते थे। सच तो यह है कि इस भूमि में पाणिनि कात्यायन, पतञ्जलि, यास्क, गौतम आदि तत्ववेत्ता, कालिदास भवभूति बाणादि कविशिरोमणि, धन्वन्तरि आदि आयुर्वेदचिकित्सक। अर्जुन, भीम धनुर्विद्या में। गान विद्या में गन्धर्वसेन नारदादिक। गणितज्ञों में भास्कराचार्य्य। योगीश्वरों में श्रीकृष्ण। उपदेशकों में व्यासजी सरीखे। सत्य बोलने में युधिष्ठिर महाराज धर्मात्मा क्षत्रिय। जितेन्द्रियों में भीष्म-पितामह। सुविज्ञ गुरु द्रोणाचार्य। निर्लोभ दानियों में कर्ण। विचार-

शीलों में विदुर महाराज । पिता के आज्ञाकारी सर्वण । रामचन्द्र : धर्म-पालनमें राजा हरिश्चन्द्र, वाक्य पूरा करनेमें राजा बलि । इसीप्रकार स्त्रियों में सीता, अनुसुइया, द्रौपदी, दमयन्ती, गार्गी इत्यादि धुरन्धर पूर्णगुणवान्, विद्वान् और अनेक मार्ग के दिखलानेवाले सच्चे भक्त इस भारत भूमि में होगये हैं । परन्तु हे सभ्य सज्जनों ! यह सब हम तुमने मैथुन में खोदिया, क्योंकि जैसा हमने वीर्य का नाश मारा वैसाही हमारा नाश मारा गया । विचार की बात है कि जिस वीर्य के निकालने के आनन्द में हाड़ों की माला बन जाते हैं, भला उसके डाटने के आनन्दों का कौन वर्णन कर-सकता है । अतः अब इसके यथार्थ गुणों को जान अपने अपने पुत्र पुत्रियों को यथावत् ब्रह्मचर्य्य रहने के अर्थ तन मन धन से उनकी रक्षा कर विद्या पढ़ाओ, आप भी ऋतुगामी होने की टेव डालो कि जिससे उनको भी रुचि हो, सदा उनको वीर्य के डाटने तथा विद्या के पढ़ने के लाभ सुनाते रहो, कभी कभी भीम, कर्ण, हनुमान, अंगदादि बली पुरुषों के चित्र दिखाते रहो, उनको प्रति दिन सत्यशास्त्रों में से यहां की विद्या तथा गुण आदि के व्याख्यान भी सुनाते रहो कि हे ब्रह्मचारी ! तेरी सकल कामना अथवा मनोरथ अखंड ब्रह्मचर्य्य सेवन तथा विद्याध्ययन से ही पूर्ण होंगे । इससे हे पुत्र पुत्रियो ! तुम इस तप को मनसा, वाचा, कर्मणा से पूर्ण कर विद्या ग्रहण करो जिस से तुम्हारा नाम, यश, कीर्त्ति, बुद्धि, पराक्रम तेज बल आदि की प्रशंसा हो, तुम नाना प्रकार के आनन्द प्राप्त करो, तुम्हारे देश कुल कुटुम्ब का नाम हो, इस तप के पूरा करने के अर्थ निम्नलिखित आज्ञाओं का यथावत् पालन करो ।

❁ ब्रह्मचारियों को शिक्षा ❁

हे ब्रह्मचारी ! तुम उबटन तथा सुगन्धित पदर्थों को शरीर में न लगाओ पुष्पों की माला तथा शरीर की शोभा देनेवाले तिलक छापादि को धारण मत करो । नाचने गाने की ओर ध्यान न दो । मनुष्यों के समूह में गाने या सुनने का स्वभाव न डालो क्योंकि ऐसे विद्यार्थियों का चित्त पठन पाठन में नहीं लगता । इसलिये धर्मशास्त्र के कर्त्ताओं ने जन गोष्ठी का निषेध किया है और परीक्षा से भी जाना गया है कि गप्पी जप्पी विद्यार्थियों

को निद्रा नहीं आती, अतः तुम इधर किञ्चित् ध्यान न दो। रात्रि में अकेला सोवे, सर्व प्रकार से वीर्य्य की रक्षा करता रहे, क्योंकि इस समयकी रक्षा करने से मरण तक कोई रोग प्रबल नहीं होता। कहा भी है कि 'जो बिन्दु को मारेगा, वह ज़िन्द को पछाड़ेगा' अतः स्त्री का ध्यान, उसकी वार्त्ता, स्पर्श, दर्शन, आलिंगन, एकान्त वास, समागम इन आठ प्रकारके विषयों को छोड़ देना चाहिये, जैसा कि कहा गया है—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च॥
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः।
न ध्यातव्यं न वक्तव्यं न कर्त्तव्यं कदाचन॥
एतैः सर्वैर्विनिर्मुक्तो यतिर्भवति ते नरः।

इन सब से बचने का उपाय यही है कि विषयों की बातों को न सुने, न ऐसे मनुष्यों के पास बैठे, न ऐसे स्थानों में जावे जहां स्त्रियों के झुण्ड आते जाते हों, न कभी उनकी कथा कहानियों को सुने। यदि स्त्री सम्मुख आ जावे तो आप अपनी दृष्टि नीचे कर ले, न कभी किसी सुन्दर स्त्री का हृदयमें स्मरण करे, न कभी स्त्रियोंके चित्र अर्थात् तसवीर को देखे, यथा—

न संभाषयेत्स्त्रियं काञ्चित् पूर्वदृष्टां चनस्मरत्।
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येत् लिखितामपि॥

क्या आपने महात्मा लक्ष्मण जी का वृत्तान्त नहीं सुना जो प्रति समय सीता जी के साथ रहते और इन आठों प्रकार के मैथुनों को त्यागे हुए यथार्थ ब्रह्मचारी बने हुए थे। ऋष्यमूक पर्वत पर जब सुग्रीवने सीता के आभूषण और वस्त्र लाकर दिये और लक्ष्मण जी से कहा कि आप इनको देखिये, उसके उत्तर में लक्ष्मणजी ने कहा कि मैं कुण्डलों को नहीं जानता क्योंकि मैंने कभी दृष्टि भर कर सीता जी के मुंह की ओर नहीं देखा और न मैं बाजूबन्दों को जानता हूं, हां इन बिछुओं को मैं अच्छे प्रकार से जानता हूं क्योंकि मैं प्रतिदिन उनके चरणों को छूता था।

देखिये ऐसा ही वाल्मीकि रामायण में लिखा है—

भूषणं नैव जानामि नैव जानामि कुण्डलम् ।
नूपुराण्येव जानामि नित्यं पादाभिवन्दतात् ॥

क्या हमारा आज ऐसा पवित्र विचार है । क्या हमको ऐसे उच्च भाव का ध्यान है । क्या हम ब्रह्मचारी बनने की इच्छा रखते हैं । क्या पराई स्त्री को माताके समान देखते और व्यभिचारिणी स्त्रियों की प्रतिष्ठा भंग करने का उपाय करते हैं । जैसाकि महाराज लक्ष्मण ने दुष्ट शूर्पणखाकी प्रतिष्ठा भंग की ? कदापि नहीं २ । यदि संसार की भलाई और अपना सुधार करना है तो लक्ष्मण महाराज के समान ब्रह्मचारी बनो और यह न हो सके तो हम उपरोक्त बातोंसे पृथक् रहना तो अवश्य ही सीखें।

वर्त्तमान समय में बहुधा सेठ साहूकारों के कमरोंमें स्त्रियोंकी तसवीरें टंगी रहती हैं इससे भी सन्तानों को उपरोक्त हानियां होती हैं, इस लिये पुरुषों के कमरों में स्त्रियोंके चित्रोंको न टांगना चाहिये वरन् ब्रह्मचारियों महात्मा संन्यासियों, योगी महाराजों प्रबन्धकर्त्ताओं, धर्म पर बलिदान होने वालों के चित्र रहने उचित हैं, उसी भांति स्त्रियोंके कमरोंमें सुयोग्य स्त्रियों के चित्रों का टांगना उचित है ।

इसके अतिरिक्त आलस्यादि को त्याग सन्ध्योपासनादि पंचकर्मों को सदा करते रहो और अति खट्टी इमली आदि, तीखी लाल मिरच इत्यादि कसैला चार तथा रेचक जमालगोटा आदि पदार्थों को न खाओ, नित्य आहार विहारयुक्त रहकर विद्या ग्रहण करना ही अपना अभीष्ट समझो । जब तक विद्या पूर्ण न हो तब तक ब्रह्मचर्य को खण्डित न करो, आचार्य की सेवा तथा टहल नम्रतापूर्वक सदा करते रहो, उनके उपदेशके अनुसार सदा अपने आचरण को सुन्दर बनाये रहो । क्रोध, ईर्षा, द्वेष आदि को त्याग सत्य सम्भाषण इत्यादि उत्तम गुणों को धारण करो । तदुपरांत अपने अमूल्य समय को व्यर्थ खोना अभीष्ट नहीं क्योंकि वह लाखों की ढेरी करने पर भी फिर हाथ नहीं आता जैसा कि कहा है—

" गया वक्त फिर हाथ आता नहीं ।"

इसके उपरान्त सुस्त बैठे रहना तथा कुछ काम न करना निर्बुद्धिता

ही नहीं वरन् उसके मनके दोषों को भी प्रकट करता है और बेढंगेपन से समय को काटने से अनेकान् बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं क्योंकि ऐसे आलसी जन जो कुछ कार्य नहीं करते थोड़े ही दिनों के पश्चात् निकम्मे हो जाते हैं। इसलिये प्रत्येक को उचित है कि बुद्धिमानी के साथ समय को शुभ कार्यों में व्यतीत करे कि जिससे किसी प्रकार की हानि न हो, अपने समस्त कार्य्य नियत समय पर करना योग्य है। शरीर की आरोग्यता और मन बहलाने के अर्थ समय नियत कर लेना चाहिये। प्रत्येक मिथ्या खेल तमाशे तथा गप्प शप्प न मारने के अर्थ जैसी पूर्वजों ने शिक्षा की है उसी प्रकार तुम भी समय को व्यतीत करो न कि वर्त्तमान की भाँति मिथ्या थोथे धन्धे में व्यय करो। उत्सवों और खुशियों में तो समय की कुछ भी प्रतिष्ठा नहीं होती, जहां तहां नशे खेल कूद वा तबले सारंगी, रंडी या लौंडेके नाच या नकीमूठ या और कोई ऊटपटांग काम में व्यय किया जाता है कि जिनके नेशे साल भर बने रहते हैं।

मान्यवरो! यह वार्त्ता सम्पूर्ण जन जानते हैं कि मनुष्य जैसी संगति में रहता है, वैसा ही हो जाता है, ऐसा ही हितोपदेश और भर्तृहरिशतक में कहा है कि जल की बूंद पत्ते लोहे पर पड़ती है तो उसका चिन्ह भी नहीं रहता और वही बूंद कमल के पत्ते पर पड़ कर मोती सी दीखती है और स्वाति योग से सीपी में पड़कर मोती हो जाती है, अतः समस्त ग्रन्थों में उत्तम जनों की संगति करने की आज्ञा है। देखिये यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ३८ में लिखा है कि—

अग्न आयुंᳬषिपवसआसुवोर्जमिषं च नः। आरे वाधस्व दुच्छुनाम॥

पितादि को योग्य है कि अपनी सन्तानों को दुष्टो के संग से पृथक् रख श्रेष्ठों के सत्संग में प्रवृत्त कराके धार्मिक तथा चिरञ्जीवी करें जिससे वे वृद्धावस्था में भी अप्रियाचरण कभी न करें, शुक्रनीति अध्याय १ में लिखा है कि उत्तम जनों के सत्संग से सुख वा अर्थ की प्राप्ति होती है। विदुरनीति में विदुरजी ने धृतराष्ट्र को उपदेश किया है कि मनुष्यों को सदा उत्तम पुरुषों का ही सत्संग करना चाहिये, प्रयोजन सिद्ध करने के

अर्थ मध्यम पुरुषों के पास भी चले जाव परन्तु कल्याण की इच्छा रखने-वाले पुरुष नीच का संग कदापि न करें, क्योंकि मनुष्य नीचों की संगति से नीच हो जाते तथा उनकी बुद्धि सब नष्ट हो जाती है, जिससे उनकी उन्नति कभी नहीं होती और प्रशंसा का नाश हो जाता है और उनका गौरव भी जाता रहता है। उद्योग पर्व अध्याय १० में भी सज्जनों की संगति करने की आज्ञा दी है भर्तृहरि जी ने कहाहै कि वन तथा पर्वतों पर रहना अच्छा, पर मूर्ख के साथ इन्द्र भवन में रहना अच्छा नहीं। महात्मा शुक्र वा चाणक्य ने अपनी नीतियों में वर्णन किया है कि काले सर्प का संग अच्छा है परन्तु दुर्जन का नहीं, हितोपदेश में लिखा है कि खल कभी सीधा नहीं होता चाहे उसकी नित्य सेवा करो, जैसे कुत्ते की पूंछ चिकनाने वा मलने से सीधी नहीं होती इसके उपरान्त खल धनवानों को अपने प्रयोजन के लिये दुराचारी कर डालते हैं, इसी कारण विष्णुशर्मा ने कहा है प्राण त्यागना अच्छा, पर नीचों के पास जाना अच्छा नहीं है; यथा—

वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः

मान्यवरो! मनुष्य जन्मका उत्तम फल विना सत्संग के नहीं मिलता इसी से उसका अन्तःकरण शुद्ध होता है, धर्म अर्थ काम मोक्ष भी सत्संग से ही प्राप्त होते हैं, याथार्थ में सत्संग ऐसी ही औषधि है जिससे मनुष्य तीनों तापों से छूटकर आनन्द धाम को पाते हैं। भर्तृहरि तथा चाणक्य ने लिखा है चन्द्रमा की शीतलता प्रसिद्ध है परन्तु सज्जन-सत्संग इनसे भी अधिक शान्ति का देनेवाला है, अर्थात् इनसे सांसारिक अथवा पारलौकिक सर्व प्रकार के आनन्द प्राप्त होते हैं।

चन्दनं शीतलं लोके चंदनादपि चन्द्रमा।
चंदनाच्चन्द्रमसश्चैव शीतला साधुसंगतिः॥
साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूताहि साधवः।

ऐसीही सज्जनों के सत्संग के अनेकान गुण हैं, देखो उत्तम पुरुषों के सत्संग से मूर्ख, कुमार्गी, ज्ञानी महात्मा होजाते हैं, जिसके उदाहरण वर्त्तमान में भी अनेक दृष्टिगम होते हैं और प्राचीन के तो इतिहासोंके कालम भरे

हुए हैं। शान्तिपर्व में महात्मा भीष्मने तथा विदुरनीति में विदुरजीने कहा है कि जिसमें क्षमा, धृति, अहिंसा, इन्द्रियनिग्रह, धीरज, स्थिरता, सन्तोष, दया, शीतलता, कृतज्ञता इत्यादि गुण हों वही श्रेष्ट है, ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कन्द ३ अध्याय २५ श्लोक २० में कहा है, तथा भर्तृहरिजी ने भी कहा है कि जिस प्रकार सूर्य कमल को, चन्द्रमा कुमुदिनी को खिलाता है, मेघ बिना मांगे पानी देते हैं उसी भांति श्रेष्ट जन बिना कहे उपकार करते हैं। शांति पर्व अध्याय १०३ में बृहस्पति ने इन्द्र से कहा है कि जो परोक्ष में दोषों को कहे उसको दुष्ट जानना चाहिये, श्रीरामचन्द्रने भरतसे तथा विदुरजीने विदुरनीति में कहा है कि जिसमें सहन, विद्या, त्याग, दान, वचन की रक्षा नहीं वही दुष्ट है।

प्रिय सज्जन पुरुषो ! उपरोक्त कथनसे प्रत्यक्ष प्रकट होगया कि मनुष्य का कल्याण सत्पुरुषों के ही सत्संग करने से हो सकता है, परन्तु वर्त्तमान काल में उन पुरुषों का सत्संग किया जाता है जिनमें न विद्या न तप न ज्ञान न शील न गुण न धर्म, ऐसे ही मनुष्य गुरु अध्यापक वा आचार्य नियत किये जाते हैं, मित्रता की भी पदवी उनको दीजाती है कि जिनको भर्तृहरि जी ने पशु के समान माना है, यथा—

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।
ते मृत्युलोके भुविभार भूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

इस मृगतृष्णा के समान संसार को क्षण में नष्ट होनेवाला जान धर्म वा सुख के लिये सज्जनों का सत्संग करो क्योंकि प्राणी मात्र की प्रतिष्ठा गुणों से होता है न कि ऊँचे आसन पर बैठने से। क्या कोठे के ऊपरके भाग में स्थित कौआ गरुड़ होजाता है? कदापि नहीं। इसके उपरान्त उन्हीं की सदा विजय, राज्य, श्री, प्रतिष्ठा, बड़ी अवस्था, बल, विद्या होती है जो अपने अधिष्ठाता सत्यवादी सज्जनों की शिक्षा में स्थित रहते हैं। जैसा य० अ० २६ मं० ४६ में उपदेश है—

स्वादुषꣳसदः पितरोवयोधा-कृच्छ्रे श्रितः शक्तिवन्तोगभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसहाः ॥

इसलिये परमपिता परमात्मा की आज्ञा तथा सदाचार के अनुकूल

सज्जनों की संगति करो जिससे तुमको धन धान्य दीर्घायु आदि सुख मिल सकते हैं।

हे प्यारे सुजनों! और ब्रह्मचारियो! इस प्रकार की संगति करनेसे मनुष्य का हृदय कमल की भांति प्रफुल्लित होजाता है, अज्ञानान्धकार इस प्रकार भाग जाते हैं जैसे सिंह की गर्ज सुनकर पशु पक्षी पलायमान हो जातेहैं, अतः तुमभी इस समय को पूर्व भारतवासियों की भांति नाना कला कौशल सीखने, उपदेश सुनने, समाचारपत्र तथा अनेकान् प्रकार की पुस्तकें पढ़ने आदि सुसंगति में व्यय करो कि जिसके प्रभाव से उपरोक्त गुण तुम में भी आजावें। देखिये वर्त्तमान समय में अंगरेज़ बहादुर समय की कैसी प्रतिष्ठा करते हैं। प्रत्येक मनुष्य एक घड़ी पास रखकर उसके अनुकूल नियत समयों पर उत्तम २ कार्य कर आनन्द उड़ाते तथा सुसंगति हा में अपनी २ आयु को व्यतीत करते हैं, जिसके प्रभाव से वे कैसे जितेन्द्रिय विद्वान हो रहे हैं, इनका एक पल मात्र भी निरर्थक नहीं जाता।

यदि तुमको आरोग्य रहने, दीर्घायु होने, विद्वान् बनने अथवा सुख से रहने की इच्छा हो तो तुम इस उपरोक्त लेख पर पूरा पूरा ध्यान दो। जब तक तुम्हारा मन से ध्यान न होगा तब तक माता पिता की शिक्षा यथावत् उपकार न कर सकेगी। क्योंकि यदि तुम्हारा विवाह भी माता पिता ने २५ वर्ष से प्रथम न किया, परञ्च तुमने वीर्य को अन्य क्रियाओं के द्वारा स्खलित कर दिया तो क्या पूर्ण लाभ हो सकता है? कदापि नहीं, अतः तुमको ही पूर्णतया ध्यान देना अभीष्ट है।

बहुधा बालक बालापन से दुष्टों की सङ्गति में पड़ कर नाना भांति से वीर्य का नाश मार देते हैं जिससे थोड़े ही दिनों में उनकी सूरत पीली होजाती है, आंखों में वह प्रकाश नहीं रहता, मांस ढीला पड़ जाता है, मन उदास रहता तथा स्मरणशक्ति न्यून होजाती है इसके उपरान्त प्रमेह, बवासीर आदि रोग होजाते हैं जिनसे जन्म भर के आनन्द पर पानी पड़ जाता है। जैसा कि किसी कविने कहा है—

हे प्रिय भ्रात सुनो मम बात तो वीर्य खोय कहा तुम लहियो।
धन सञ्चय देख घमण्ड करो तेहि चार दिना में खोय गमइयो॥

रोग प्रमेह प्रचण्ड दवागिनि सोन शरीर में दाग लगइयो ।
देत फिरो धन वैद्य हकीमन ऐसो कहाँ फिर वीरज पइयो ॥

ऐसा ही किसी महात्मा ने कहा है—

शुक्रं तस्माद्विशेषेण रक्षेन्नारोग्यमिच्छता ।
धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलकारणम् ॥
चित्तायत्तं नृणां शुक्रं शुक्रायत च जीवितम् ।
तस्माच्छुक्रं मनश्चैव रक्षणीयं प्रयत्नतः ॥

अतएव प्यारे सुजनों ! यदि आपको इस बूढ़े आर्यावर्तके सुधारनेका ध्यान है तो अपने पुत्रों को इस रसायन का सेवन कराइये फिर देखिये कैसा आनन्द आता है । हे परमात्मन् ! हम सब भारतवासियों को दुःख भोगते बहुत दिन होगये, अब आप हमको साहसका दान दीजिये जिससे हम सब इस उत्तम अमृत का पान कर कृतकृत्य हों ।

विद्या

❋ विद्या की महिमा और आवश्यकता ❋

प्रकट हो कि सन्तानों को उत्तम विद्या शिक्षा गुण कर्म स्वभाव आदि आभूषणों को धारण कराना माता पिता आचार्य तथा सम्बन्धियों का काम है, क्योंकि इन्हीं आभूषणों से मनुष्य का आत्मा भूषित होता है । इसलिये वे नर और नारी धन्य हैं जिनका मन विद्याके विलास में तत्पर रहता सुन्दर शीतल स्वभाव तथा सत्य भाषणादि नियम पालने में तत्पर और अभिमान, अपवित्रता से रहित अन्य मलिनताके नाशक सत्योपदेश विद्या दानादि सुभूषित वेद-विहित कर्मों से सांसारिक पुरुषों के दुःखों को दूर कर परोपकार करने में लगे रहते हैं । यथा—

विद्याविलास मनसो धृतशीलशिक्षाः ।
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः ॥

संसार दुःखदलनेन सुभूषिताये ।
धन्या नरा विहितकर्मपरोपकाराः ॥

इसके उपरान्त पशु और मनुष्यों में आहार, निद्रा, भय, मैथुन ये सब एक समान हैं, केवल मनुष्यों में ज्ञान ही एक ऐसा पदार्थ है जो पशुओं में नहीं। जैसा कि—

आहारनिद्राभयमैथुनानि सामान्य चैतानि नृणां पशूनाम् ।
ज्ञानं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः ॥

इसके उपरान्त सोने चांदी के आभूषणों को शरीर में लादने से ज्ञान प्राप्त नहीं होता वरन् अभिमानादि दोष उत्पन्न हो विषयरूपी जालमें फँस आत्मा और शरीर दोनों का नाश मार देते हैं जिससे भारत का पटरा होगया। अतः मैं इस स्थान पर आपको विद्याकी महिमा संक्षेपसे सुनाता हूं कि विद्या क्या पदार्थ है तथा उससे क्या क्या आनन्द प्राप्त होते हैं। और पूर्व समय में उसकी स्थिति क्या थी ?

देखो यजुर्वेद अध्याय ४० मं० ३४ में लिखा है कि जिससे मनुष्यों को सुख आनन्द मिलता है, उसीको विद्या कहते हैं 'विद्यायाऽमृतमश्नुते'। श्वेताश्वेतरोपनिषद् में लिखा है जिसका नाश न हो उसको विद्या कहते हैं। पातञ्जलि योग सूत्र पाद २ में लिखा है—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।

जिससे अनित्य को नित्य तथा नित्य को अनित्य, अशुद्ध को शुद्ध तथा शुद्ध को अशुद्ध, दुःख को सुख तथा सुख को दुःख, अनात्मा को आत्मा तथा आत्मा को अनात्मा अर्थात् जिससे विपरीत ज्ञान हो उसको अविद्या कहते हैं।

यथार्थ पदार्थं नजानातिभ्रमादन्यस्मिन्नन्यन्निश्चिनोति-साऽविद्या ।

वैशेषिक में लिखा है कि अविद्या से विपरीत वस्तुको विद्या कहते हैं। जैसा कि—"अविद्या च विद्या लिंगम्"।

प्रियवरो ! सत्य सम्भाषणादि तप तथा विद्या से ही मनुष्यों का कल्याण होता है क्योंकि जैसे सत्यादि नियम करने से मनुष्य सर्व पापों

से छूट जाना है वैसे ही विद्या से सर्व सुखों की प्राप्ति होती है, अतः प्राचीन समय में तप की उन्नति तथा शरीर की पवित्रता के अर्थ ऋषियों ब्राह्मणों तथा गृहस्थों ने विद्या को अच्छे प्रकार पढ़ा था। जैसा कि मनुजी ने मनुस्मृति के अध्याय ६ श्लोक ३० में लिखा है—

तपो विद्या च विप्रस्य निःश्रेयस्करं परम्।
तपसा किल्विषं हंति विद्यायाऽमृतमश्नुते॥
ऋषिभिर्ब्राह्मणैश्चैव गृहस्थैरेवसेविता।
विद्या तपो विवृद्ध्यर्थं शरीरस्य च शुद्धये॥

भर्तृहरिजी ने कहा है कि विद्या मनुष्य की अतुल कीर्त्ति का हेतु तथा छिपा हुआ धन है, विद्या सुख की देनेवाली तथा दूसरों को वश में करने वाली है, यही सब में उत्तम गिनी जाती तथा विदेश में निर्वाह कराती है, यही राजाओं में सम्मान तथा प्रतिष्ठा पाने के योग्य बनाती है।

चाणक्यनीति में लिखा है कि श्रेष्ठ रूप, उत्तम अवस्था तथा उत्तम कुल में जन्म होने पर भी मनुष्य बिना विद्या के सुगन्ध रहित ढाँक के फूल के समान शोभा नहीं देता, यथा—

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गंधा इव किंशुकाः॥

किसी महात्मा ने कहा है कि वेद का जानने वाला यदि दरिद्री हो तो भी उस मूर्ख से जो बहुत रत्नों से संयुक्त हो श्रेष्ठ है। उत्तम नेत्रवाली स्त्री फटे वस्त्र पहिरने पर भी उस नेत्रहीन स्त्री से जो नाना प्रकार के सुवर्ण के आभूषण धारण किये हो शोभायमान होती है, यथा—

वरं दरिद्री यदि वेदपारगा न चापि मूर्खो बहुरत्नसंयुतः।
सुलोचना जीर्णपटोऽपि शोभते न नेत्रहीना कनकैरलंकृता॥

और मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक ३५ में लिखा है कि धन, बन्धु, अवस्था, उत्तम कर्म विद्या ये पांच मान्य के स्थान हैं, परन्तु विशेषकर विद्वान् की प्रतिष्ठा करना कहा है।

वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यदुत्तरम् ॥

भविष्य पुराण में लिखा है कि विद्या कामधेनु के समान फल देने वाली है, यह एक प्रकार का गुप्त धन है। भोजप्रबन्ध में लिखा है कि विद्या माता से अधिक समस्त आयु लालन पालन करती है, और माता केवल न्यून अधिक अवस्था ही में। इसी प्रकार पिता बालक को ऐसा उपदेश देता है जिससे उसका हित हो, परन्तु विद्यारूपी पिता सम्पूर्ण आयु उपदेश करता है। जिस प्रकार पतिव्रता स्त्री अपने पति को सब प्रकारके दुःखों से बचाकर सुखी रखती है उसी भांति विद्या सर्वप्रकार के क्लेशों से बचाकर सुख देती तथा जगत् में कीर्ति को फैला मोक्षमार्ग बताती है।

हितोपदेश में विष्णुशर्मा ने विद्या को अक्षय धन कहा है, विदुरजी महाराज ने तृप्ति का मूल कारण विद्या ही को कहा है, चाणक्यजी का वचन है कि विद्या से सर्वत्र पूजा होती है, कुल तथा धन से नहीं। इसके पश्चात् विद्या से नम्रता, नम्रता से योग्यता, योग्यता से धन, धन से धर्म, धर्म से सुख प्राप्त होता है। यथा—

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्म्मं ततः सुखम् ॥

महाभारत शान्तिपर्व में पितामह ने कहा है "नास्ति विद्यासमं चक्षुः" विद्या के समान संसार में कोई नेत्र नहीं। शुक्रनीति में लिखा है कि विद्या रूपी धन सब धनों से श्रेष्ठ है क्योंकि यह देने से न्यून नहीं होती किन्तु अधिकता को प्राप्त होती है। इसके उपरान्त जो विद्याका भले प्रकार उपयोग करते हैं वे ही धनवान् होते हैं जैसा य० अ० २१ मं० ४६ में कहा है। केनोपनिषद्द में लिखा है कि 'विद्याया विन्दतेऽमृतम्' अर्थात् विद्या ही से आनन्द की प्राप्ति तथा सब पदार्थों की वृद्धि होती है, ऐसा ही चरकमें लिखा है "विद्या वृहंणानाम्"। प्रिय सज्जन पुरुषो! अब तो आपको विद्या की महिमा प्रगट होगई होगी। यह वह पदार्थ है कि जिसका प्रकाश शरीर के साथ रहता है और जिसकी रोशनी सूर्य के समान वरन् उससे भी अधिक

समस्त देशों में फैल जाती है। यह वह अस्त्र है कि जिसपर शान रखने की आवश्यकता नहीं होती। किसी २ विद्वान् ने १४ विद्या तथा उनकी ६४ कलायें लिखी हैं, परन्तु बहुधा गुणी जन अनेक विद्या बतलाते हैं, जिनके प्रभाव से यहाँ तथा परलोक में आनन्द प्राप्त करते हैं, इसी के बल से सत्पुरुषों के नाम युगानुयुग तक लिये जाते हैं, देखो विश्वकर्मा अथवा मय दैत्य जिन्होंने शिल्प विद्या को प्रकाश किया, अश्विनीकुमार तथा धन्वतरि ने वैद्यक, पितामह ने ज्योतिष, जैमिनि ने मीमांसा, कणाद ने वैशेषिक, गौतम ने तर्क, पातञ्जलि ने योग, कपिल ने सांख्य, व्यासजी ने वेदान्तको प्रगट किया कि जिनको मरे बहुत काल हो चुका परन्तु इनके नाम आज तक प्रशंसा के साथ लिये जाते हैं और जो कोई इनको पढ़ते हैं वे विद्वान् हो जाते हैं, जिनकी सर्वत्र प्रतिष्ठा और राज्यसम्मान से भी अधिक मान्य होता है, जैसा चाणक्य मुनि ने नीति में लिखा है—

विद्वत्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

इसके उपरान्त जिन राजाओं ने विद्वानों का आदर सत्कार किया उनके राज्य में भी आनन्द रहा और उनके नाम भी आज तक चले आते हैं, भला ऐसा कौन मनुष्य है कि जिसने विक्रम तथा राजाभोज का नाम न सुना हो अथवा उनकी प्रशंसा न करता हो।

उसके उपरान्त विद्या सकल आपदाओं को टालती है और विद्यारूपी धनको चोर चुरा नहीं सकता, भाई बन्धु सहोदर बाँट नहीं सकते, अग्नि भी उसे जला नहीं सकती, मनुष्य को विपत्ति तथा दरिद्रता की दशा में विद्या ही पूरा साथ देती है जब कि भाई, बन्धु, स्त्री, मित्र उसको त्याग देते हैं। सच पूछो तो विद्या अनमोल रत्न है, अतः जो मनुष्य अपनी प्यारी सन्तान को विद्या नहीं पढ़ाते वे मानों उसका सत्यानाश मार देते हैं क्योंकि विना विद्या के वह ईश्वर को नहीं जानता, जैसा शेख़ शादी ने कहा है कि "बेइल्म नातवां ख़ुदारासनाख़्त।"

य० अ० ३४ मं० ५१ में लिखा है जो प्रथम अवस्था में बड़े धर्मयुक्त

ब्रह्मचर्य से पूरी विद्या पढ़ते हैं नके न कोई चोर न दायभागी और न उनको भार होता है और मन्त्र ५२ में कहा है एक ओर सैंकड़ों सेना और दूसरी ओर एक विद्या ही विजय देनेवाली होती है। और ५३ मन्त्र में कहा है कि जिस भाँति पृथ्वी मेघ और परमेश्वर सबकी रक्षा करते हैं वैसेही विद्या और विद्वान् लोग सबको पालते हैं।

प्यारे सभ्य महोदयो यह वह बाग़ नहीं है जिसको पतझड़ सता सके, यह वह दर्पण नहीं कि जिसको ज़ंग चट कर जाय, यह वह प्रकाश नहीं कि सूर्य के उदय होते ही छिप जाय, वरन् विद्या वह अंजन है कि जिसके लगाते ही कपाट के नेत्र खुल जाते हैं, यह वह जड़ाऊ आभूषण है जिसके शृंगार के देखने की अभिलाषा 'जी' को भी होती है, यह वह अमृतरूपी जल है कि जिसे पानकर मनुष्य मनुष्यता के पद को पहुंच अमर होजाता है, यह वहबल है कि जिस बलसे सिंहसर्प से दुष्ट जीव अधीन होकर रहते हैं, मुख्य तो यह है कि संसाररूपी सागर में विद्यारूपी नाव ही पार पहुंचाती है। क्योंकि मूर्ख संसार में आपत्ति का घर बनजाता, सदा अप्रतिष्ठित रहता, चिन्तारूपी ज्वाला में शरीर को लकड़ी की भाँति जलाता रहता है इसके उपरान्त बुद्धिमान् उसकी संगत से दूर भागते तथा उसको बुरी दृष्टि से देखते हैं, मूर्ख को न यहाँ किसी प्रकार का सुख मिलता है, न परलोक अतः इस संसार में स्त्री पुरुषको योग्य है कि विद्या को अवश्य ही ग्रहण करें। ऐसा ही मनु महाराज ने कहा हैकि–"पाँचवें वा आठवें वर्ष पुत्र पुत्रियों को घर में न रक्खें, अर्थात् विद्या उपार्जन के अर्थ पाठशालाओं और गुरुकुलों में भेज देवें, जो न भेजेंगे वह दण्डनीय होंगे।" परन्तु आज पंचायती दण्ड का नाम न रहा इसी कारण से अविद्या का राज्य हो गया, राज दण्डतो किसी भाँति मौजूद भी है, क्योंकि जब तक पास नहीं होता तब तक सब धान बावन पसेरी गिने जाते हैं अर्थात् किसी प्रकार की प्रतिष्ठा नहीं होती, नौकरी नही मिलती, यदि यह भी न होता तो भारतवासी जन काला अक्षर भैंस के समान जानते, अतः यह भी धन्य है।

पहले की नाईं दण्ड के न होने से धर्म सम्बन्धी शिक्षा जाती रही जिस

का प्रभाव यह हुआ कि यदि किसी से धर्म विषय में कुछ पूंछा जावे तो अण्ड बण्ड ऊटपटांग उत्तर देते हैं जिसके कारण हज़ारों मनुष्य धर्म से विमुख हो काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्षा, अहंकारमें फंस भारत सन्तान का नाश मार रहे हैं कि जिसके कारण राज्य, धन, मानादि सबही जाते रहे, अतः पूर्ण जितेन्द्रिय होकर पुत्र पुत्रियों को विद्याध्ययन कराना चाहिये, क्योंकि विना जितेन्द्रियता के बल का नाश हो जाता है, अतः जो स्त्री पुरुष विना पूर्ण विद्या के विवाह कर देते हैं, वे मानों अपने हाथसे हलाहल पिलाकर जीते हुए होनहार सन्तानोंको मृतकके समान बना देते हैं।

❀ गुरु अर्थात् आचार्य ❀

प्रिय सज्जन पुरुषो! जब विद्या एक अमूल्य रत्न है तो यह परम आवश्यक हुआ कि उसकी शिक्षा देने वाले यथावत् विद्वान् तथा धार्मिक हों यदि ऐसे न होंगे तो विद्यार्थी बिगड़ जावेंगे और कुछ लाभ न होगा क्योंकि वेदादि सत्य ग्रन्थोंमें ऐसे ही गुरु आचार्य से विद्या सीखने की आज्ञा पाई जाती है। य० अ० मन्त्र १४ में लिखा है—

वाचं ते शुन्धामि प्राणन्ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि।
श्रोत्रन्ते शुन्धामि नाभिस्ते शुन्धामि मेढ्रन्ते शुन्धामि॥
पायुन्ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि।

गुरु तथा उनकी स्त्रियों को योग्य है कि कुमार तथा कुमारियों को वेद और उसके अंगों की शिक्षा देकर देह इन्द्रियां अंतःकरण मन की शुद्धि और शरीर की पुष्टि आदि उत्तम गुणों में प्रवेश करावें। शुक्रनीति अध्याय १ में लिखा है-'शास्त्राय गुरु संयोगः' अर्थात् विद्या पढ़ने के लिये गुरु किये जाते हैं, ऐसा ही उपनिषदों में लिखा है—

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञाध्ययनदानमिति प्रथमस्तप एव।
द्वितीयो ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी तृतीयोऽत्यन्तमात्मा॥
नमाचार्यकुले अवसादयत्सर्व एते पुण्यलोका भवन्ति।
ब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति। छान्दोग्योपनिषद अ० खं० २३॥

धर्म के तीन स्कन्ध अर्थात् अंश हैं—एक यज्ञ अर्थात् पदार्थों की संगति करण (क्रिया कौशल विद्वानों का सत्कार अग्निहोत्रादि), दूसरा ब्रह्मचर्यव्रत को धारण करके आचार्य के समीप निवास करना, तृतीय क्लेशों को सहन करके बहुत काल तक सर्वविद्यासम्पन्न होना । श्रीमद्भागवत पञ्चम स्कन्द के अध्याय ५ में लिखा है कि वह गुरु ही नहीं जो मृत्यु से बचने का उपाय न बतावे ।

गुरुर्नसस्यात्स्वजनो न सस्यात् पितानसस्याज्जननीनसस्यात् ।
दैवं न तत्स्यान्नपतिश्च सस्यान्न मोचयेद्यस्समुपैतमृत्युम् ॥

इस कथन से प्रकट होता है कि आत्मिक ज्ञान के लिये गुरु किये जाते हैं क्योंकि विना उसके मृत्यु के क्लेश से कोई नहीं बचा सकता । पद्मपुराण तृतीय सर्गखण्ड अध्याय ५२ में लिखा है कि ज्ञान वा सबका साधन भी गुरु है गुरु से परे विचित्र भूषण कोई नहीं । लिङ्गपुराण अध्याय ८६ श्लोक १०१ में लिखा है कि गुरुकी ही कृपासे निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है । यथा–इत्यं प्रसन्नं विज्ञानं गुरुसम्पर्कजंध्रुवम् ॥

शुक्रनीति में लिखा है कि–'शिक्षणो गुरुः' अर्थात् शिक्षा पाने के अर्थ गुरु किये जाते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्द ११ अ० ६ में दत्तात्रेय ने कहा है कि भ्रम की निवृत्ति के लिये गुरु किये जाते हैं। शङ्खस्मृति अ० ३ श्लोक २ में लिखा है कि गुरु वही है जो वेदों को पढ़ावे, ऐसा ही लिंग-पुराण अ० २६ में लिखा है कि श्रद्धा पूर्वक गुरु से वेद पढ़े, फिर विचार करे और धर्मों को जाने । हारीतस्मृति अ० ३ प्र० १ में लिखा है—

उपनीतो माणवको वसेत गुरुकुलेषु च ।

शिष्य जनेऊ कराकर गुरु के पास जाकर रहे । ऐसा ही संवर्तस्मृति अ० १ श्लोक ५ वा व्यासस्मृति अ० १ श्लोक २३ में भी लिखा है—

उपनीतो द्विजो नित्यं गुरवे हितमाचरेत् । संवर्त० ।
उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः । व्यास० ।

उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापयेद्द्विजः ।
सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥मनु०॥

आचार्य शिष्यों को उपनयन कराकर वेदादि विद्याओं को पढ़ावे तथा सदाचार भी सिखलावे । श्रीमद्भागवत स्कन्द ११ अ० ११ । १७ में कहा है ।

द्वितीयं प्राप्यनुपूर्वाञ्जनमोपनयनद्विजवसन् ।
गुरुकुले दांतो ब्रह्मा धीयतत्वाऽहुतः ॥

जावालऋषि तथा यास्कमुनि का भी यही सिद्धान्त है, विष्णुपुराण वा लिंगपुराण में भी लिखा है, जनक महाराज ने कहा है कि गुरु के उपदेश बिना ज्ञान और ज्ञान बिना मोक्ष नहीं होती, इससे गुरु द्वारा ज्ञान प्राप्त करना ही मुख्य प्रयोजन है। गीता के अध्याय ४ श्लोक ३४ में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है कि मुक्ति की रीति तत्त्वज्ञान जानने वाले गुरु के द्वारा प्राप्त होसकती है । व्यासस्मृति अध्याय १ श्लोक १४ में लिखा है कि गुरु तीनों वर्णों के ब्रह्मचारियों को होम कराकर गायत्री का उपदेश कर वेद पढ़ावे—

पुण्येऽन्हि गुर्वनुज्ञातः कृतमंत्राहुतिः क्रियः ।
स्मृत्वोंकारं च गायत्रीमारंभेद्वेदमादितः ॥

मार्कण्डेयपुराण अध्याय २८ में मन्दालसा ने अपने पुत्र से कहा कि यज्ञोपवीत के पश्चात् ब्रह्मचारी गुरु के समीप जाकर विद्याध्ययन करे एक वा दो या चारों वेद पढ़कर गुरुदक्षिणा दे गृहमें जानेकी इच्छा करे और अनुशासन पर्व अध्याय ५६ में लिखा है कि गुरु की सेवा से विद्या प्राप्त होती है और शुक्रनीति अध्याय १ श्लोक ८० में लिखा है कि गुरु वह है जो विद्याभ्यासादि कराके शिष्य का सुधार करे, यथा—

हितोपदेष्टा शिष्यस्य सुविद्याध्यापकोः गुरुः ॥

इसके अतिरिक्त प्राचीन काल में भी गुरुकुल में जाकर ब्रह्मचर्यव्रत धारण कर विद्याध्ययन करते थे । देखो ब्रह्माजी ने अग्नि वायु आदि ऋषियों से वेदों का अध्यन किया था तथा ब्रह्मा जी के निकट जाकर

देव मनुष्य तथा असुरों ने विद्याऽभ्यास किया था। भृगुजी ने अपने पिता वरुण के समीप, पिप्पलादि ऋषि का पुत्र अङ्गिरा और सनत्कुमार दोनों ने अथर्व ऋषि के पास, सनत्कुमार के पास नारद जी महाराज ने, उद्दालक ऋषि के निकट याज्ञवल्क्यजी ने तथा याज्ञवल्क्यजी के समीप रहकर मधुकजी ने, मधुकजी से चूल ने, महात्मा परशुरामजी ने कश्यपजी महाराज के समीप, ऐसे ही द्रोणाचार्यने अग्निवेश मुनिके पास जाकर ब्रह्मचर्य सहित गुरु-सेवा कर विद्या पढ़ी थी। सुमन्त, वैशम्पायन, जैमिन तथा पैल को व्यासजी ने पढ़ाया था, ब्रह्मा ने प्रजापति को, प्रजापति ने मनुको, मनु ने प्रजाको पढ़ाया था, राजा जनक ने पंचशिख नामक महात्मा तथा याज्ञवल्क्य जी से पढ़ा था, वशिष्ठजी महाराज ने राजा दशरथ और रामचन्द्रजी को पढ़ाया था, विश्वामित्रसे भी श्रीरामचन्द्रजी ने पढ़ा था श्रीकृष्ण महाराज ने उज्जैन नगर में निवास कर सन्दीपन नाम पण्डित से पठन किया था, इसी भाँति पंजाब के राजा द्रुपद ने अग्निवेश ऋषि के पास निवास कर पढ़ा था, भीष्मपितामह ने द्रोणाचार्य की परीक्षा लेकर कौरव और पाण्डवों को पढ़ाया था तथा गुरुकुल में रहने के लिये उन्होंने सब प्रकार का प्रबन्ध किया था, इसी भांति सर्वत्र आर्य-शिरोमणों ने गुरुकुल में रह कर विद्याध्ययन किया था।

प्रिय सज्जन पुरुषो! उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि गुरु ज्ञान के अर्थ किये जाते थे, ज्ञान पूर्ण विद्वान् वा ज्ञानियों से प्राप्त होता है, अतः प्राचीन काल में विद्वानों के समीप रहकर अध्ययन करते थे, वेदों में भी अग्नि और सूर्य के समान विद्वानों से विद्या पढ़नेकी आज्ञा है, यथा—

अग्निर्ज्योतिषा ज्योतिष्मान् रुक्मो वर्चसान्।
सहस्रदा असि सहस्रायत्वा ॥ ४० ॥

अर्थात् पूर्ण विद्वानको ही गुरु करना चाहिये, देखिये लिंगपुराण उत्तरार्द्ध अध्याय २० में लिखा है कि गुरु मान्य पूज्य और गुरु साक्षात् सदाशिव है, परन्तु वह गुरु शास्त्रवेत्ता, तपस्वी, बुद्धिमान्, लोकप्रिय, लोकाचार का जाननेवाला, तत्ववेत्ता, मोक्ष देनेमें समर्थ हो, अन्य गुण सम्पन्न और सब विधानों में कुशल भी हो, आत्मज्ञान से हीन तो निष्फल है क्योंकि

जिसको आत्मिक ज्ञान न हो तो वह क्योंकर शिष्य पर अनुग्रह करसकता है, अर्थात् ज्ञानी गुरु आप शुद्ध है तथा शिष्यों को भी शुद्ध कर सकता है, आत्मज्ञान से हीन गुरु केवल पशु है, इस कारण तत्ववेत्ता आप मुक्त है तथा शिष्यों को भी मुक्ति देसकता है, अज्ञानी गुरु मूर्ख शिष्य का उद्धार किसी प्रकार नहीं करसकता है जैसेकि एक शिला दूसरी शिलाको नदीके पार नहीं कर सकती। श्रीमद्भागवत् स्कन्द ११ अध्याय ३ श्लोक २१ में लिखा है—

तस्मादगुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम्।
शाब्दे परीचे विष्णाहं ब्रह्मण्युपशयाश्रयम्॥

अतः जो पुरुष वेद के अर्थ का ज्ञाता और शिष्य के सन्देहों को अच्छे प्रकार से दूर करनेवाला जिसको परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान तथा जो शान्ति प्रकृति हो उसको गुरु करना चाहिये। देवी भागवत स्कन्ध ११ अध्याय ६ में लिखा है कि जो गुरु उपदेश नहीं करता वह बड़ा निर्दयी है और उसकी सब विद्या नष्ट हो जाती है। जैसा—

तस्यविद्या निष्टास्यान्निर्घृणः सगुरुः खलु।

इसके उपरान्त गुरु शब्द के अर्थ अन्धकार के दूर करने वाले के हैं अर्थात् जो अज्ञान का नाश करे उसको गुरु कहते हैं।

शुक्रनीति अध्याय ४ में लिखा है कि जो मनुष्य मन्त्र और अनुष्ठान में सम्पन्न वेदवित, कर्म में तत्पर, जितेन्द्रिय हो, लोभ मोह से रहित वेद के व्याकरण आदि छः अंगों और धनुर्विद्या तथा धर्म का जाननेवाला जिसके क्रोध के भय से राजा भी धर्मनीति में तत्पर हो वही पुरोहित वा आचार्य होने के योग्य है, यथा—

मंत्रानुष्ठान संपन्नस्त्रैविद्यः कर्म तत्परः।
जितेन्द्रियो जितक्रोधो लोभ मोह विवर्जितः॥
षडंगवित्सांगधनुर्वेद विद्यार्थं धर्मवित्।
यत्कोप भीत्या राजापि धर्मनीतिरतो भवेत्॥
नीतिशास्त्रान्यूहादि कुशलस्तु पुरोहितः
सैवाचार्यः पुरोधायः शापानुग्रह यो क्षमाः॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय १६ में लिखा है कि मन वच कर्म से गुरु की सेवा करे तो शास्त्र की प्राप्ति होती है अर्थात् शास्त्र की प्राप्ति के अर्थ गुरु किया जाता है । प्रिय सज्जन पुरुषो ! शास्त्रों में विद्याध्ययन तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये गुरु करने की आज्ञा पाई जाती है परन्तु वर्तमान समय में इसके विपरीत मूर्ख, अज्ञानी, नाना प्रकार के कुकर्मियों को गुरु करते चले जाते है। मान्यवरो ! सनातनधर्म में ऐसे गुरुओं के समीप जाने की भी आज्ञा नहीं, किन्तु त्यागने तथा दण्ड देने के लेख पाये जाते हैं। देखिये विदुर जी महाराज ने कहा है कि विना शिक्षा करनेवाले गुरु तथा मूर्ख पुरोहित से मनुष्य मात्र को कुछ सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये यथा—

षड़िमान पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तारमाचार्यं पनधीयानमृत्विजम् ॥

चाणक्य ने राजनीति में लिखा है कि 'विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्' अर्थात् विद्याहीन गुरु को छोड़ देना चाहिये । इसके अतिरिक्त शुक्रनीति अध्याय ४ श्लोक ६३ में स्पष्ट कहा है कि जिसने सम्पूर्ण विद्या पढ़ी हो वह सबका गुरु होता है, जो पढ़ा हुआ न हो वह जाति से नहीं होता । जैसा—

योधीतविद्यः सकलः ससर्वेषां गुरुर्भवेत् ।
न च जात्या नाधीतो योगुरुर्भवितुमर्हति ॥

इसके उपरान्त अयोध्याकाण्ड सर्ग २० श्लोक १३ में लिखा है कि राजा को योग्य है जो गुरु कार्य वा अकार्य को न जाने, कुमार्ग में चले, कामादि में फँस निन्दित कर्म करने लगे तो उसको भी दण्ड देवे ।

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य कार्यं भवति शासनम् ॥

ऐसा ही शुक्रनीति अध्याय ४ श्लोक ४७ में लिखा है। इसलिये विद्याहीन कुमार्गी गुरु की प्रथा को जिसका वर्त्तमान में अत्यन्त प्रचार हो रहा है उठा दीजिये, क्योंकि मनुष्य जन्म सत्विद्या तथा उत्तम सत्संग से ही सफल होता है, वह इन मूर्ख गुरुओं से किस प्रकार प्राप्त होसकता है, क्योंकि अन्धा अन्धे को कभी मार्ग पर नहीं ले जा सकता ।

देखो य० अ० मं० २६ मं० २७ में कहा–है जो जन स्वयं पवित्र बुद्धिमान् वेद शास्त्र के वेत्ता नहीं होते वे दूसरों को भी विद्वान् और पवित्र नहीं कर सकते–

नराशꣳसस्य महिमानमेषा मुपस्तोषामयजयतस्य यज्ञैः ।
ये शुक्रतव शुचयो धियन्धा स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥

पाठकगणों! प्राचीन काल में गुरुकुल में रह कर विद्या पढ़ने की दृढ़ आज्ञा थी तथा राज्यादि प्रबन्ध भी ऐसा ही था। देखो मनुस्मृति अध्याय ८ श्लोक २७ में लिखा है, जिस बालक के माता पिता का बाल्यावस्था में देहान्त हो जाय तो राजा को उचित है कि जब तक वह विद्याध्ययन करके अपने घर को न आवे तब तक वह उसकी सम्पत्ति की रक्षा करे, यथा—

बालदायादिकं रिक्थं तावद्राजानुपालयेत् ।
यावत्सस्यात्समावृत्तो यावच्चातीत शैशवः ॥

इन सब प्रमाणों के अतिरिक्त मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक २, ४। याज्ञवल्क्य अध्याय १ श्लोक ५१। विष्णुस्मृति अध्याय १ श्लोक २५। संवर्त० अध्याय १ श्लोक ३४। शंख० अध्याय ३ श्लोक १५। व्यास० अध्याय१ श्लोक ४२। दक्ष० अध्याय १ श्लोक ७, ८ तथा हारीतस्मृति अध्याय ३ श्लोक १२ और मार्कंडेय पुराण अध्याय २८ श्लोक १४, १५। विष्णु-पुराण अध्याय ३ श्लोक ६ तथा श्रीमद्भागवत स्कन्द ११ श्लोक ३८ में स्पष्ट प्रगट है कि ब्रह्मचारी गुरु के यहां से एक वा दो या चार वेदों को समाप्त कर उनकी आज्ञा से समावर्त्तन संस्कार कर विवाह करे।

प्यारे मित्रो! इस संसार में वही जन अपने जन्म को सफल कर सकते हैं जो मानव शरीर धारण कर विद्या, अच्छी शिक्षा, उत्तम स्वभाव, धर्म योगाभ्यास और विज्ञान का सम्यग् ग्रहण करके मुक्तिसुख के लिये प्रयत्न करते हैं। जैसा य० अ० ३५ मं० २२ में कहा है—

अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः ।
असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ॥

एवं इस सुख की प्राप्ति के अर्थ परमात्मा ने ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ संन्यास ये चार आश्रम नियत किये, जिनके यथावत् पालन करने से सुख

मिलता है, परन्तु आज मूर्ख गुरुओं ने ब्रह्मचर्य आश्रम का ही नाश मार दिया फिर सुख कैसा? प्यारे सज्जनो एवं सुयोग्य बहिनो! प्राचीन काल में शिक्षक अर्थात् गुरुजन शिष्यों को धर्म, राजनीति की शिक्षा तथा पापों से बचा कर कल्याणरूपी कर्मों के आचरण सिखलाते थे। देखिये य० अ० १६ मं० २ में लिखा है—

यातेरुद्र शिवा तनूरघोरा पापकाशिनी।
तयानस्तन्वाशंत मया गिरिशंताभिचाकशीहि॥

मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १७० में मनु महाराज ने स्पष्ट आज्ञा दी है कि गुरुजन यज्ञोपवीत कराकर सन्ध्योपासन की शिक्षा दें, आचार भी सिखलावें, यथा—

उपनीयः गुरुशिष्यं शिशयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासनमेव च॥

ऐसाही हारीतस्मृति अध्याय ३ के ५ श्लोक तथा व्याससमृति अध्याय १ के २४ श्लोक और शंखस्मृति अध्याय ३ श्लोक १ में और भविष्यपुराण अध्याय ३ और अग्निपुराण अ० १५३ श्लोक १३ में लिखा है—

वर्त्तमान समय के सामान्य उपाध्याय सांसारिक विद्या के पढ़ानेवाले लोभ के वश हो पुत्रों को डंडे लेकर गवाते और नचाते हैं, ढोलक मंजीरादि भी बजवाते हैं। शोक है उन भैया जू पर! जो शास्त्र और बुद्धि के विपरीत शिक्षा देते हैं, तुर्रा यह है कि उनके माता पितादि इससे प्रसन्न हो उपाध्यायजी को दक्षिणा देते हैं, क्या माता पिता और आचार्य पुत्र को नाचना गाना सिखानेवाले नहीं हुए? क्या लज्जा को भी तिलांजुली नहीं दे दी है?

प्रिय सज्जन पुरुषों! उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट हो रहा है कि प्राचीनकाल में वेदानुकूल गुरुजन यज्ञोपवीत के पश्चात् विद्याध्ययन कराकर नानाप्रकार के शुभगुणों की शिक्षा करते थे, ऐसाही अन्य ग्रन्थों में भी उपदेश दिया है, परन्तु वर्त्तमानकाल में इस सनातन रीति का भी ऐसा लोप मारा गया है कि देश चौपट हो गया, क्योंकि अब मूर्ख गुरु किये जाते हैं जो यज्ञोपवीत के स्थान पर कंठ में कंठी बंधाते हैं, गायत्री के स्थान पर

क्षत्रिय वैश्यों को कपोलकल्पित मंत्रका उपदेश करते हैं। अतएव मान्यवरो! यदि आपको धर्म पर प्रेम है, उसके नामपर अपना धन तथा समय व्यय करते हो तो अब आप कृपाकर मेरे इस निवेदन को स्वीकारकर प्रथम मेरे लिखित प्रमाण अपनी अपनी पुस्तकों में अवलोकन कीजिये, यदि ये सब वचन आपकी पुस्तकों में मिल जावें तो फिर इनको कुपढ़ गुरुओं की कण्ठी बांधने आदि की शिक्षा (जिस के लिये न कोई वैदिक आज्ञा न स्मृतिकारों ने उसकी पुष्टता की, न कभी प्राचीन पुरुषों ने धारण की, न सद्गुरु ऐसी लीला रचतेथे) को न मान कर सनातन पुरुषों की भांति वैदिकाज्ञानुसार यज्ञोपवीत को धारण कर गायत्री मन्त्र से परमात्मा की उपासना कीजिये और कराइये जिसके विषयमें हम आगे संस्कारोंमें लिखेंगे।

स्त्री-शिक्षा

प्यारे सुजनो! देश और धर्म की उन्नति स्त्रियों पर बहुत कुछ निर्भर है, जिस घर की स्त्रियां सुशिक्षिता नहीं वह घर दुःख का स्थान, जिस परिवारमें स्त्रियोंको उत्तम शिक्षा नहीं मिली वह परिवार संग्रामभूमि, जिस देश की स्त्रियां विद्या से शून्य हैं वही सुविचार, आचार और सर्व प्रकार की उन्नतियोंसे रहित हैं। जब सितार के एक तार टूटजाने से उत्तम राग नहीं निकलता तो फिर क्योंकर गृहस्थाश्रमरूपी सितारके स्त्री रूपी आधे तार टूटे हुये होनेपर मर्यादारूपी राग ठीक ठीक निकल सक्ता है कदापि नहीं! जैसे मूर्ख राजा अपनी प्रजा का नाश मार देता है, अज्ञ सेनापति अपनी सेनाका वध करादेता है और मूर्ख सारथी घोड़े समेत रथकोचकनाचूर करदेता है ठीक उसी भांति अनपढ़ माता अपनी सन्तानोंके शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक उन्नतियोंका सर्वनाश करनेवाली होतीहै इसके अनन्तर विद्वान् के संग से विद्या में रुचि, मूर्ख के संगसे उस में अरुचि बढ़ती है, इसी प्रकार साधु का संग हममें साधुपन तथा व्यभिचारीका संग व्यभिचारीपन उत्पन्न करता है, प्रबन्धकर्त्ताओं के साथ रहने से प्रबन्ध करने का ढंग उत्पन्न होता है। देखो, भला जिस माता के संग हमारा इतना गूढ़ सम्बन्ध है क्या उसका स्वभाव हमारे लिये तारनेवाला या डुबानेवाला न

होगा ? देखिये, वैशेषिक में कहा है (कारण गुण पूर्वकं कार्य्यगुणः) अर्थात् कारण के गुण कार्य में आते हैं, इसकी पुष्टि वैद्यवर धन्वन्तरिजी ने भी सुश्रुत में की है 'कारणानुरूपं कार्यमिति' जब माता अनपढ़ी और कुढंगी होती है तो उसकी सन्तान भी फूहड़ होती है, क्योंकि जो जो रंग ढंग सन्तानें अपनी माता पिता आदि का देखती वा सुनती हैं वही स्वयं करने वा कहने लग जाती हैं। जैसा कि--

नवमृत्स्नां समादाय कुरुते यथामतिः ।
तथैव माता वालंच भावयेच्च यथारुचिः ॥

इसी लिये यह भी कहा है। कि—

यावन्न साक्षरा माता तावत्तद्वालवालिका ।
निरक्षराहि तिष्ठन्ति विनोपाय्यसहस्रकैः ॥

जैसे कुम्हार नवीन मिट्टी को लेकर मनमाना बासन बनाता है और चित्रकारी करता है उसी भांति माता स्व सन्तान को भली बुरी शिक्षा देकर योग्य वा अयोग्य बना सकती है। इसी हेतु महाभारत अनुशासनपर्व अध्याय १० में कहा है कि 'नास्ति मातृसमो गुरुः' अर्थात् माता के समान सन्तान का कोई गुरु नहीं। और मनुजी ने भी अपनी स्मृति में लिखा है कि—

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतंपिता ।
सहस्रन्तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते ॥

उपाध्याय से दश गुणा आचार्य और आचार्य से सौ गुणा पिता, पिता से हज़ार गुणा माता का गौरव है, इस हिसाब से उपाध्याय से जननी में दशलाख गुरुओं की शक्ति है। शतपथ में भी प्रथम मातृमान् पुनः पितृमान् तदनन्तर आचार्यमान् कहा है, इसके उपरान्त यजुर्वेद अध्याय १४ मन्त्र १ में लिखा है कि विदुषी पढ़ने वाली स्त्रियों को योग्य है कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्य्य अवस्था में गृहस्थाश्रम तथा धर्म की शिक्षा देकर उनको श्रेष्ठ करें यथा--

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणा अश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥

अथर्व का० ११ प्रपाठक २४० मन्त्र १८ में लिखा है कि जिस प्रकार पुत्र ब्रह्मचर्य्य धारण करते हैं उसी भाँति पुत्री भी ब्रह्मचर्य्य धारण कर तरुण अवस्था में अपने समान पति को प्राप्त हों-यथा—

ब्रह्मचर्य्येण कन्या युवानं विंदते पतिम्।

श्रौत सूत्रों में लिखा है कि स्त्री का पुरुषों के समान ब्रह्मचर्य्य होना चाहिये। य० अ० १३ मं० ५२ में कहा है कि सब मनुष्यों और स्त्रियों को वेद पढ़ा, जगत् के वायु आदि पदार्थों की विद्या में निपुण कर कार्य साधन सहायता लेना योग्य है।

जिस भांति अध्यापक, उपदेशक और अतिथि लोग बालकों को उत्तम शिक्षा कर उनके दोषों को दूर कर विद्याको प्राप्त करावें उसी भांति स्त्री भी कन्याओं को उत्तम आचरण कर वैद्यक शास्त्र की रीति से शरीर के अङ्गों की अच्छे प्रकार परीक्षा कर औषध देवे। य० अ० १६ मन्त्र १५ में लिखा है कि कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य का सेवन कर व्याकरण धर्म विद्या और कार्य विद्या सीखकर शरीर को आरोग्य रक्खें।

सोमस्य रूपं क्रीतस्य परिश्रुतपरिषिच्यते।

अश्विभ्यां दुग्धं भेषजमिन्द्रायैन्द्रꣳसरस्वत्या॥

और य० अ० १२ मं० ३४ में आज्ञा है कि जिस प्रकार पुरुष ईश्वर की सृष्टि के कामों के निमित्तों को जानकर विद्वान हो शास्त्रों का उपदेश करते हैं उसी भाँति स्त्रियां सृष्टि क्रम के निमित्तों को जान वेदार्थसार का उपदेश करें।

ध्रुवासि धारुणे तो जज्ञे प्रथमेभ्यो योनिभ्यो अधिजातवेदः।
सगायत्र्या त्रिष्टुभाऽनुष्टुभा च देवेभ्योहव्य वहप्रजातुन॥

य० अ० १७ मं० ४५ में परमेश्वर सभापति को आज्ञा देते हैं कि जिस प्रकार पुरुषों को युद्ध विद्या की शिक्षा करतेहो उसी भांति स्त्रियों को भी उक्त विद्या की शिक्षा कराओ कि जिससे वह पुरुषों की भांति युद्ध करने में समर्थ हों।

अवसृष्टा परा पत सरव्ये ब्रह्म सꣳशिते।
गच्छामित्रान् प्रपद्यस्व मामीषाकंचनोच्छिषः॥

य० अ० २६ मं० ५० में आज्ञा है कि जिस भांति राजा और राज पुरुष विमानादि रथ घोड़ों के चलाने तथा युद्ध व्यवहारों को जाने उसी भांति उनकी स्त्रियां भी जानें।

आ जंघन्ति सान्वेषां जघना २। उपजिघ्नते।
अश्वजनि प्रचेत् सोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥

इसके अतिरिक्त जिस भांति राजनीति और विद्या को राजा पढ़ा हो उसी भांति रानी भी पढ़ी हो, वह दोनों अर्थात् स्त्री स्त्रियों का और पुरुष पुरुषों का न्याय किया करें, जैसा य० अ० १३ मं० १६ में कहा है—

ध्रुवासि धरुणास्तृता विश्वकर्मणा। मा त्वा समुद्र।
उदवाधीन्मा सुपर्णो अव्यथमाना पृथिवी दृंह ॥

क्योंकि पुरुषों के सम्मुख स्त्रियां भय और लज्जा से यथावत् बोल वा पढ़ नहीं सकतीं, जैसा य० अ० १० मं० २६ में कहा है—

स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद।

इसके उपरान्त मनु में लिखा है कि स्त्रियों की गवाही स्त्रियां ही दें। "स्त्रीणां साक्ष्यं स्त्रियः कुर्युः" और य० अ० २० मं० ६२ में लिखा है कि सन्तान अपनी माता से प्रार्थना करे कि हे सरस्वती! बहुत विद्या से युक्त तू हमारी (पाहि) रक्षा कर और य० अ० २६ मं० ४१ में लिखा है कि विदुषी माता अपने पुत्रों को अच्छे प्रकार पुष्ट करती है जैसा कि—"मातेव पुत्रविभृतामुपास्ये।" य० अ० १० मं० ६ में कहा है कि सन्तान का सुधार जबही होता है जब कि विद्वान् माता से प्रसिद्ध पदार्थों के विद्वान् की प्राप्ति होती है। य० अ० ८ मं० ४३ में जो स्त्रियां पण्डिता स्त्रियों से शिक्षा पाती हैं वही अपने पतियों को सदुपदेश द्वारा कुकर्म से बचा सकती हैं, और अ० १७ मंत्र २४ में कहा है कि जिस घर में धार्मिका विद्यावती प्रशंसायुक्त स्त्रियां होती हैं वहां दुष्ट कर्म नहीं होते। ऋग्वेद अ० ३। अ०८। व० ३ मं० ४। अ० ५। सं० ५२ मं० ७ में कहा है कि जो स्त्री विद्या विनय को जानती है वही पति को प्रसन्न कर सकती है। य० अ० ३७ मं० १२ में कहा है कि सुलक्षणा पत्नी सब प्रकार से पति को सुख देती है। ऋग्वेद अ० १। अ० ४। व० ५। मं० १ अ० ६। सू० ४८। मं० १४ में

कहा है कि जिस प्रकार उषा अपने प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करती है वैसे ही विद्यावती स्त्रियाँ विश्व को सुभूषित कर देती हैं।

अब आप इन वचनों को विचारिये और बतलाइये कि क्या विनय आदि लक्षण बिना विद्या और उत्तम शिक्षा के आसकते हैं? कदापि नहीं। इसके सिवाय गृह प्रबन्ध स्त्रियों के अधीन होता है, क्या यह प्रबन्ध बिना उत्तम बुद्धि के उत्तम प्रकार से चल सकता है? नहीं २, इसीलिये य० अ० २० मं० ८६ में लिखा है कि कन्याओं को चाहिये कि ब्रह्मचर्य से विद्या और सुशिक्षा को ग्रहण करके अपनी बुद्धि को बढ़ावें।

ऋग्वेद अ० २। अ० ५। व० २३। मं०२ अ० १। सू० ३ मं०८ में लिखा है कि एक माता दूसरी पढ़ानेवाली और तीसरी उपदेश करने वाली स्त्रियों के समीप रहने और सेवन करने से बुद्धि विद्या नित्य बढ़ती है।

सरस्वतीसाधयन्ती धि इन्नइला देवीभारतीविश्वमूर्तिः।
तिस्रो देवीः स्वधया वर्हिरदेमच्छिद्रंपान्तु शरणं निषद्या॥

क्योंकि य० अ० ३७ मं० ४ में कहा है कि हे मनुष्यों! जबतक स्त्रियाँ विदुषी अर्थात् विद्यावती नहीं होतीं तबतक उत्तम शिक्षा भी नहीं बढ़ती।

देव्यो वम्र्यो भूतस्य प्रथमजा मखस्यवोऽद्य शिरोराध्यासं।
देवयजने पृथिव्याः। मखाय त्वा मखस्य त्वा शीर्ष्णे॥

इसी हेतु ऋग्वेद अ० २। अ० ७। व० १४। मं० ३। अ० ३। सू० ३१। मं० ५ में कहा है कि जिस भांति पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़के सब पदार्थों के गुण कर्म स्वभावों को जानकर विद्वान् होते हैं उसी भांति स्त्रियाँ भी हों। क्योंकि सुशिक्षित पशु भी उत्तम कार्य सिद्ध कर लेते हैं तो फिर क्या विद्या की शिक्षा से युक्त पुरुष और स्त्री सब उत्तम कार्य सिद्ध नहीं कर सकते?

इस लिये य० अ० १२ मं० ५३ में कहा है कि माता पिता और पढ़नेहारी विद्यावती स्त्रियों को योग्य है कि कन्याओं को अच्छे प्रकार बुद्धिमती करें।

चिदसी तया देवतयांगिरस्वद ध्रुवासीद।

परिचिदसि तया देवतयांगिरस्वद् ध्रुवासीद ॥

शतपथ में भी स्त्रियों को वेदाधिकार अर्थात् वेद पढ़ने की आज्ञा है।

अथ वेदेपत्नी विसूंस्यति इत्यारम्भ यजुषा ।

चिकीर्षे ते नैव कुर्यात इत्यन्तं द्रष्टव्यम् ॥

यम ऋषि ने कहा है कि पहले समय में स्त्रियां यज्ञोपवीत धारण कर वेदाध्ययन तथा गायत्री का जप यह सब कार्य पुरुषों के समान करती थीं।

पुराकल्पेषु नारीणां व्रतबन्धनमिष्यते ।

अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवाचनं तथा ॥

इसके उपरान्त गर्भाधान संस्कार में-"ओं आदित्यं गर्भं" "सूर्यो नो दिवस्पातु", 'जोषा सवितर्यस्य', 'चक्षुर्नोदेव', 'चक्षुर्नोधेहि, 'सुसंदृशंत्वा, आदि मन्त्र और सीमन्तोन्नयन, निष्क्रमण, अन्नप्राशन तथा चूड़ाकर्म में "ओं वादसूत्वं" "ओं यददश्चन्द्रमसि,, "त्वमन्न पतिरन्नादो वर्धमानो भूयः,, 'ओं त्वं जीव शरदः शतं वर्धमानः, इन मन्त्रों के उच्चारण करनेकी आवश्यकता पड़ती है, तथा विवाह संस्कार में बहुधा स्थानों पर मन्त्र बोलनेका काम पड़ता है, तथा प्रतिज्ञा वेदमन्त्रों से करनी होती है।

इसके उपरान्त शिवजी महाराज पार्वतीजी को समझाते हैं कि विद्या पढ़ने से स्त्रियों को बहुमूल्य रत्न हाथ लगते हैं क्योंकि इसी के बल से वे पति की सेवा तथा ईश्वरकी आज्ञा पालन कर सकती हैं। वात्स्यायन ऋषि के बनाये हुये त्रिवर्ण शास्त्र के सूत्रों में जो विद्यासमुच्चय नाम तीसरे अध्याय के दूसरे सूत्र में लिखा है कि स्त्री युवा अवस्था से पहिले विद्या को पढ़ें। स्कन्द पुराण में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, अत्यन्त चाण्डाल आदि सब मनुष्यों की मुक्ति विद्या से होती है, यथा-

स्त्रियोवा यदिवाशूद्रो ब्राह्मणः क्षत्रियः परे।

मुक्तिं च विद्यया प्रायुरिहभोगं तपासह ॥

बाबा नानक माता को आदि गुरु कहते थे, वेद तो पुकार कर कहरहे हैं कि बिना माता की शिक्षा के सन्तान कभी सुयोग्य नहीं हो सकती।

इसलिये आप "स्त्री शूद्रो नाधीयतामिति श्रुतेः" इस बनावटी श्रुतिको हृदय से निकाल स्त्रियों को पुरुषों के समान विद्याध्ययन कराइये—क्योंकि दोनों के समान अधिकार हैं। जीवकी जाति नहीं, जिस प्रकार के शरीरमें जाता है वैसा ही उसका नाम हो जाता है। इसी कारण उसको पुरुष स्त्री और नपुंसक कुछ नहीं कह सकते, जैसा श्वेताश्वेत उपनिषद्द के अध्याय ५ श्लोक १० में लिखा है—

नैवस्त्री नपुमानेष नचैवाऽपुंनपुंसकः।
यद्यच्छरीरमास्तेतेनतेनसमुच्यते ॥

हां कर्मानुसार स्त्री पुरुष आदि योनियोंमें जीव जाता है और शरीर को पाता है, य० अ० ११ मं० ५५ में स्त्री को कोमल स्वभाववाली और इसी अध्याय० के ५० मंत्र में स्त्री को जल की उपमा दी है जो कोमल द्रव्य है। मंत्र ५६में लिखाहै कि वह आदर सत्कारके योग्य है। इसीभांति अध्याय १३ मंत्र १६ में पतिको अग्निसे उपमा दी है और उसीको स्त्री की रक्षा करनेवाला कहा है। महर्षि पतंजलिने अपने महाभाष्य नाम ग्रंथ में लिखा है कि जिसके कड़े रोंगटे हों वह पुरुष और जिसके कोमल स्तन हों वह स्त्री प्रत्येक इनमें से अपने जीवनके समान उद्देश्य अर्थात् धर्म, अर्थ काम और मोक्ष के समान अधिकारी हैं। इसी भांति ब्रह्मचर्य,गृहस्थ,वानप्रस्थ,संन्यास इन चारों आश्रमोंमें स्त्री अपने स्त्रीपनकी पूर्ण उन्नति करती हुई मोक्ष को प्राप्त कर सकती है। प्यारे मित्रों! जब स्त्री को ब्रह्मचर्य आश्रम करने की आज्ञा है तो विद्या पढ़ना उसका मुख्य धर्म है। इसके उपरांत ज्ञान,कर्म,उपासना और विज्ञान जिनकी सिद्धिके लिये चारों आश्रम हैं, इनके प्राप्त करने का प्रत्येक को समान अधिकार है क्योंकि दोनों के जीवन उद्देश्य मुक्ति प्राप्त करना है, उसके साधन दोनों के समान हैं। देखो य०अ०११मं०६२में पतिको स्त्री का मित्र कहा है। भला आप ही बतलाइये बिना तुल्य गुण कर्म स्वभाव के कभी मित्रता निभ सकती है? कदापि नहीं, इसके अतिरिक्त अध्याय ६ मं०३४ में स्त्रीको देवी और धन कमाने और अन्य कार्यों में पतिकी सहायता करनेवाली बतलाया है,क्या वह बिना विद्याके कभी देवी होसकती है? और मूर्खा होनेपर धन कमाने और अन्य कार्योंमें क्या सहायता कर सकती है? अध्याय १२ मं०५४ में स्त्री को मोक्ष प्राप्त करने की आज्ञा है। अ० ११ मं० ४८ में व्याकरण पढ़नेका

उपदेश है। अ० १३ मं० १६ में राजनीति की शिक्षा देने की शिक्षा है। ऋग्वेद अ०२। अ०१। व० १४ मं० ३ अ० ३। सू० ३१ मं०५ में लिखा है कि पुरुषों की भांति पदार्थ विद्या से पदार्थों के गुण कर्म और स्वभावोंको जान, पदार्थ विद्या में विद्वान् होने, अ० १३ मं० ३४ मे वेद के अर्थों को जान, उपदेशक बन उपदेश करने की आज्ञा है और अध्याय १२ मं० ५३में पूर्ण विदुषी बनने का उपदेश है। अ० ८ मं० १२ में भोजनादि भोगों को समान रीति से भोगने की शिक्षा है। अ० ११ मं० ५० में स्त्री को क्षत्रियों के गुण धारण करने और वीर नारी बनने तथा य० अ० ११ मं० ४४ में उत्तम सन्तानों के उत्पन्न करने, अ० २० मं० ५६ में वैद्यक विद्या सीखने, अ० १७ मं० ४५ में युद्धमें जाने और युद्ध करने, अ० १३ मं० १६ में स्त्रियों को स्त्रियों के न्याय और अ० ११ मं ६९ में अपनी उन्नति करते हुये पति की उन्नति करने में सहायक होने तथा अ० २० मं० ८६ में सुशिक्षा ग्रहण करके बुद्धि बढ़ाने की आज्ञा है। इसके उपरान्त जब स्त्री विवाह करना चाहे तब ग० अ० ११, ३८, ८७, १२ के मं० ७१, २, ७०, ११, ६२ के लेखानुसार अपनेसे अधिक बल, विद्या, धर्माचरण, तथा, धनवान् एक ही स्त्री का चाहने वाला और जिसका पिता ब्रह्मचारी, नाना पदार्थ संयुक्त शुद्ध स्वभाव वाला हो, ऐसे गुणों से संयुक्त वर को स्वीकार करे परन्तु चोरी आदि दुष्कर्म करने वाले के सम्बन्धी को कभी अपना पति न बनावे।

अब आप ही विचार कीजिये कि विना विद्याके वह क्योंकर अपने पति की परीक्षा करसकती है, तदनन्तर विवाहमें स्त्री पतिसे जो प्रतिज्ञा कराती है वह विना ज्ञानके क्योंकर पूर्ण कर सकती है। इसी लेखके अनुसार प्राचीन कालमें स्त्रियों को वेदानुकूल शिक्षा होती थी, उस समय पुरुषों के समान स्त्रियां कार्य करती थीं। देखो महर्षि पञ्चाशिख बालब्रह्मचारी और संन्यासी थे तो इधर गार्गीदेवी बालब्रह्मचारिणी, इधर राजा जनक योगविद्यामें प्रवीण और प्रसिद्ध थे तो उधर बालब्रह्मचारिणी सुलभा इसी विद्या में अद्वितीय थी, जिसने राजा जनक से योग्य पुरुष को चक्कर में डाल उस विद्या की अनेक आश्चर्ययुक्त सूक्ष्म क्रियायें राजाको बतलाई थीं और वह इतनी विद्या पढ़ी थी कि उस समय उसने अपने समान वर न मिलनेके कारण ब्रह्मचर्य आश्रम से संन्यास धारण किया था।

इधर याज्ञवल्क्य महर्षि ब्रह्मवादी थे, तो उधर मैत्री देवी ब्रह्मवादिनी थीं। इधर श्रीराम, अर्जुन आदि स्त्रीव्रत करनेवाले थे तो उधर सीता, द्रौपदी, दमयन्ती इत्यादि पातिव्रत के पालनेवाली उपस्थित थीं। इधर राजा दशरथ, कर्ण, अर्जुन और भीमसेनादि संग्राम भूमि में शत्रुओं के मान हरानेवाले थे तो उधर कैकेई, दुर्गावती, राजा जयचन्द की रानी और ताराबाई, कूर्मदेवी इत्यादि शूरवीरा थीं। जिन्होंने शत्रुओं के साथ लड़कर अपने पतियों की सहायता की और पद्मावतीकी बुद्धिमत्ता तो प्रकटही हैकि उसने अपने पति को बन्दीगृहसे निकाल अपने धर्म की किस योग्यता से रक्षा की। इधर पिता की आज्ञा पूर्ण करने के लिये रामचन्द्र महाराजने चौदह वर्ष बनोवास में व्यतीत किये तो उधर श्रीराम के साथ सीता और पाण्डवों के साथ द्रौपदी, नल के साथ दमयन्ती इत्यादि ने नाना प्रकार के कष्ट सहन किये वरन् इससे भी अधिक कृष्णाकुमारी ने अपने पिताकी प्रतिष्ठा रहने के लिये उनके भेजे हुये विष के प्याले को पीकर अपना बलिदान कर दिया।

दान करने में यदि राजा हरिश्चन्द्र ने कष्ट उठाया तो उधर उसकी रानी ने उसका साथ देने में कोई न्यूनता नहीं की। यदि राजा नल ने अपनी भूल से राज पाट खोया तो उसकी रानी ने ऐसे समय में पतिको नहीं त्यागा वरन् राजा के त्यागने पर अपनी बुद्धिमानी से राजा को खोज पति-स्नेह का पूर्ण उदाहरण दिखलाया। शकुन्तला ने अपने पति के त्यागने पर कैसा सारगर्भित निवेदन किया था। यदि इधर बहुत से राजा प्रजापालक और धर्मात्मा हुए तो उधर भी अहिल्याबाई, रानी स्वर्णमयी इत्यादि धर्म करनेवाली और प्रबन्धकारिणी उपस्थित थीं। यदि महात्मा अत्रि, वशिष्ठ, जरुत्कार इत्यादि वानप्रस्थ आश्रम में थे तो उधर देवी अनुसुइया, अरुन्धती और जरुत्कार मुनि की स्त्री भी उनके साथ इसी आश्रम में उपस्थित थी। इधर महात्मा बुद्ध सन्यास आश्रम में थे तो उनकी रानी वसुन्धरा भी संन्यासिनी थी। जिस प्रकार समय२ पर श्रीराम, कृष्ण युधिष्ठिर इत्यादि उपदेश करते थे उसी भांति स्त्रियां भी अपने पति पुत्र और अन्य स्त्री और पुरुषों को सदोपदेश करती थीं। देखो मन्दोदरी ने सीताहरण करने पर रावण को बड़ी उत्तम रीतिसे शिक्षा तथा रामचन्द्रजी से संग्राम न करने के विषय में अनेक युक्तियों से निवेदन किया। कौशिल्या ने सीता, सुमित्राजी ने लक्ष्मण, तारा ने बालि को नाना भांति के उपदेश

किये थे। इसके उपरान्त कुन्ती ने अपने पुत्रों को शूरवीरता का कैसा ध्यान दिलाया था और मन्दालसा ने अपने पुत्रों को ब्रह्मज्ञान की कैसी शिक्षा दी थी। राजा गोपीचन्द का योगी होना उनकी माता का उन्हें उपदेश करना ही था। द्रौपदीजी ने सत्यभामा को पातिव्रत की शिक्षा की थी। गंगादेवी और गुरु गोविंदसिंहजी की स्त्रियों को देखिये जिन्होंने अपनी अपनी सन्तानों को जितेन्द्रिय बना उनमें कैसे कैसे उच्च भाव उत्पन्न किये थे, जिसके कारण उन्होंने धर्म के अर्थ अपने तन मन धन को लगाकर संसार की काया पलटने के लिये बिजली का काम किया। इसके अतिरिक्त स्त्रियां ऋषों से शास्त्रार्थ भी करती थीं, देखिये जनक के साथ सुलभा और याज्ञवल्क्य के साथ गार्गी ने शास्त्रार्थ किया था और शास्त्रार्थकी मध्यस्था भी स्त्रियांही होती थीं। जैसे शङ्कर और मण्डनके शास्त्रार्थ की मध्यस्था विद्याधरी हुई थी जिसने अपने पति के परास्त होने पर शङ्कर स्वामी से महात्मा को किस युक्तिसे परास्त कर अपने कार्य को सिद्ध किया। जिस प्रकार वेदों की श्रुतियों के द्रष्टा बहुत से ऋषि हुए वैसे ही ऋग्वेद मं० १ अनु० २३ सू० १७९ की मन्त्रद्रष्टा लोपामुद्रा देवी और मं० ८ अनु० ६ सू० ९१ की अलोपादेवी हुई। तथा शिवा और विदुला ने भी वेदों को बड़ी योग्यता से पढ़ा। विद्योत्तमा की विद्याका प्रभाव संसारमें हो ही रहा है कि उसने अपने मूर्ख पति को कवि कालिदास बना दिया कि जिसकी कविता के सामने आज बडे बड़े कवियोंके छक्के छूटते हैं। रानी मन्दोदरी ने अपने पति को हिंसासे बचाने के लिये शतरञ्जका खेल निकाला था, विद्याधरी के उपदेशसे राजा भोज ने अपने राज्य में स्त्रीशिक्षा का प्रचार कराया, राजा पृथु की रानी शिक्षा पर दश लाख रुपया व्यय करती और आप ही परीक्षा लिया करती थी।

जिस भांति गानविद्या में गांधर्वसेन नारद आदि होगये उसी भांति मृगनयनी और रानी रूपवती इत्यादि ने इस विद्या में नाम पाया था। जिस भांति वैदिक धर्म की उन्नतिके लिये शंकर स्वामी ने अपना सर्वस्व लगाया था तद्वत् काशी के राजा की पुत्री ने वैदिक धर्म की मर्यादा को जाते हुए देखकर अपनी अटारी पर से कुमारिल भट्ट से प्रार्थना की थी। इतने ही नहीं किंतु खोजने पर ऐसे अनेक उदाहरण दिये जासकते हैं।

अब मैं आपको संक्षेप से प्राचीन समय की विद्वान् विदुषी स्त्रियों के जीवन सुनाता हूं। इन्हें पढ़कर मन में विचार कीजिये कि पूर्व समय में भारत जननी कैसी योग्यता रखती थीं और अब क्या कुदशा हो रही है।

प्राचीन समय की योग्य स्त्रियों के संक्षेप जीवन

विदुषी स्त्रियों के जीवन

गार्गी देवी—यह महर्षि याज्ञवल्क्य जी की पत्नी थी। जो संस्कृत वि[illegible] में निपुण होने के कारण उक्त महात्मा की द्वितीय पत्नी के साथ वर्त्तमान की स्त्रियों के समान डाह करती हुई प्रेम प्यार से रहती थी।

काशी के राजाकी एक कन्या—जब भारतवर्ष में बौद्ध मत फैला और काशी के राजा भी शिखा सूत्र त्याग बौद्ध होगये थे तब इस कन्या ने जिसके मनमें वैदिकधर्म का प्रकाश होरहा था, अपनी अटारी पर से एक मनुष्य को शिखा सूत्र धारण किये हुए देखकर कहा—

'किं करोमि क्वगच्छामि को वेदानुद्धरिष्यति ?,

अर्थात् 'क्या करूं कहां जाऊं कौन वेदों का उद्धार करेगा ?' यह सुन कुमारिल भट्टाचार्य्य जी ने जो उस समय महलों के नीचे जारहे थे, उसकी पुकार सुनकर उत्तर में कहा कि—

'मा चिन्तयवरारोहे ! भाट्टचार्य्योऽस्ति भूतले।'

'ऐ धार्मिका कन्या ! तू इतनी चिन्ता मत कर, अभी भट्टाचार्य्य वेदों के उद्धारार्थ उपस्थित है।' प्यारी बहिनों ! इस राज्यकन्याकी ओर ध्यान दो कि कितना धर्मभाव और वेदों का गौरव उसके हृदय में था, आज तुम वेदों के नाम सुनने और पढ़ने के योग्य ही न रहीं ?

रूपवती—यह रूपवती और विदुषी स्त्री थी, जो गान विद्या में विशेष योग्यता रखती थी।

देवहूती—यह मनु महाराज की पुत्री थी। विवाह होने पर अपने माता पिता के शीशमहलादि को छोड़ अपने सुयोग्य विद्वान् पति के साथ वनको गई और विद्या में पूर्ण योग्यता प्राप्त की जिसके एक कपिल नाम पुत्र हुआ एवं उसकी शिक्षा का फल स्वरूप ही—महात्मा कपिल ने

सांख्यशास्त्र को निर्माण किया जिसके विचारसे बड़े २ बुद्धिमान् आनन्द उठाते हैं, क्या यह स्त्री-शिक्षा का फल नहीं है ?

महात्मा पातञ्जलिकी स्त्री—महा विदुषी और शास्त्रार्थ में प्रवीण थी जो अपने पति के साथ रहकर परमात्मा के ध्यान में मग्न रहती और आनन्दपूर्वक अपनी आयु को व्यतीत करती थी।

लक्ष्मी देवी—यह व्याकरण और अनुवाद में बड़ी चतुर थी, इसने मिताक्षरास्मृति की टीका की जो बल्लभ भट्ट के नाम से आज प्रसिद्ध है।

❋ गान विद्या में प्रवीण ❋

मृगनयनी—यह गुजरात के राजा की पुत्री ग्वालियर के राजा की रूप और सुन्दरता में अद्वितीय पत्नी थी जो गानविद्या में योग्यता रखती तथा विशेष कर संकीर्ण राग को अद्भुत प्रकार से गा राजा को प्रसन्न करती रहती थी।

मीराबाई—यह मिरता के राठौर की जो मारवाड़ देश में सब से उच्च वंश माना जाता है पुत्री और चित्तौर के महाराज कुम्भ की रानी, अत्यन्त रूपवती, गुणवती और कवीश्वरा थी, जिसकी परम ललित और मधुर कविता गीतगोविन्द राजा और उनकी रानी को अति प्रिय थी। भाषा की कविता में बाई भी भाषा के कवीश्वर जय ब्रजी से कुछ कम न थी किन्तु उसके बनाये हुये भक्ति रस प्रकाशित करनेवाले भजन आज तक वैष्णवों के मन्दिरों में गाये जाते हैं, उसे सांसारिक विषयों से वैराग्य था।

बीबी रत्नकुंवरि—इसने पद्य में प्रेमरत्न रचा था।

मायावती—यह वेद मन्त्रोंके अर्थों की व्याख्या भले प्रकार से करती थी, इस लिये वेदों के प्रचार और विद्या की उन्नति के लिये अपने पति को समझाया करती थी।

सत्यभामा—इसने विद्या में पूर्ण योग्यता प्राप्त की थी, और इसी योग्यता के बल से धर्म विषयों पर व्याख्यान तथा पातिव्रत धर्म का उपदेश करती थी। एक बार पातिव्रतधर्म के विषय में महारानी द्रौपदी से भी सम्भाषण हुआ था।

रानी रति—इसने श्रीकृष्ण महाराज की रानी पद्मिनी को पढ़ाया था।

लीलावती—यह राजा भोज की विदुषीपत्नी थी। आपको विद्यासे बड़ा प्रेम था, अतएव अपने राज्यमें पुत्रीशिक्षा का प्रबन्ध अत्युत्तम किया था। एक समय जब कि राजा भोज लीलावती सहित बैठे हुए थे एक पाठशाला की अध्यापिका ने निम्नलिखित वचन उन दोनों से कहा—

अयेबालेलीलावतिकुरुमतिम्भोजनृपतेः।
त्वमप्येवंदैनन्दिनमुभययोरञ्जनविधौ॥
सुविद्यासल्लक्ष्म्योस्त्यजतिनयथापाणियुगलम्।
ययोरकादक्षंपरमपियराहस्तमनिशम्॥

अर्थ—हे लीलावती और हे राजभोज! तुम दोनों प्रीतिपूर्वक अपने दोनों हाथोंसे दोनों लक्ष्मियों को ऐसा बढ़ाओ कि दाहिने हाथको विद्या लक्ष्मी और बाएंको धन लक्ष्मी कभी छोड़नेको मन न करे। औरभी कहाहै—

द्वयोसहायेननरान्स्वनीवृत्तिस्त्रियश्चनित्यंकुरुतं धनाढ्यान्।
विद्यावतीचापि यथासमीयुरमीतथामूरुभयत्रसौख्यम्॥

फिर आप दोनों ही इन दोनों लक्ष्मियोंसे स्त्री पुरुषोंको अच्छीतरह सम्पन्न कीजिये जिससे वे दोनों लोकों में सुखी हों।

द्रौपदी—यह बड़ी पण्डिता और पतिव्रता थी, जैसा महाभारत वन-पर्व अध्याय २७ में लिखा है। इसी के बल से इसने बड़े २ दुःखों को सहन किया, बारह वर्ष तक अपने पति के साथ वन में रही। संग्राम में पुत्रों के मारे जाने पर अस्वस्थामा को नहीं मारने दिया।

रुक्मिणी—यह श्री कृष्ण महाराज की स्त्री थीं, इन्होंने कई बार उनको पत्र लिखेथे जो भागवत से प्रकट हैं।

मन्दालसा—यह बड़ी विदुषी और ज्ञानवती स्त्री थी, क्योंकि इसने अपने पुत्र को ब्रह्मज्ञान की शिक्षा दी थी, इससे आप स्वयं जानसकते हैं कि समयानुकूल उन्होंने शिक्षा पाकर इतना ज्ञान प्राप्तकरलिया था कि जिस से उन्होंने उनको उपदेश किया था-यह संसार स्वप्नमात्र है, तुम मोह निद्रा आदि को त्याग परमात्मा को जानों जो इस जगत् का मुख्यकर्त्ता है *

अरुन्धती—जो वसिष्ठमुनि की पुत्री थी, जिसका पढ़ा लिखाहोना पोथी अरुन्धती से प्रकट है।

* इनका जीवन विस्तारपूर्वक प्रथक् छपा है। मूल्य ≡)

कौशल्या—यह राजादशरथ जीकी धर्मपत्नी और महात्मा रामचन्द्र जी की माता थीं। जब श्रीरामचन्द्रजी वन जाने के लिये मातासे मिलने और आज्ञा लेने के लिये उन के समीप गये थे उस समय उक्त माता जी रेशमी वस्त्र धारण किये परमानन्दके साथ नित्यव्रत में लगी हुई मन्त्र पढ़ पढ़ कर अग्नि में आहुति देरही थीं जैसा कि अयोध्याकाण्ड सर्ग२० श्लोक१४ में लिखा है—

सा क्षौमवसनाहृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निंजुहोतिस्म तदा मंत्रवत्कृतमङ्गला॥

इसके उपरान्त इन्होंने नीतिशास्त्र भी बनाया था। क्या यह विना विद्या के सम्भव है?

सीता—यह राजा जनक की पुत्री और महात्मा रामचन्द्रजी की धर्मपत्नी थीं, बनावास के समय में शीशमहलों के सुखोंको छोड़ पतिव्रतधर्म के यथावत् पालन करने के लिये पति के समझाने पर भी उन के साथ गई थीं। जब इनको लङ्का का राजा रावण हर लेगया तो उस समय बड़े धैर्य के साथ उसको नानाभांति की शिक्षा देकर अपने पतिव्रतधर्म की रक्षा की। यह बड़ी बुद्धिमती और सुयोग्य थीं, नित्यकर्म करने एवं सासुओं की सेवा में बड़ी प्रीति रखती थी।

❀ वेदवती ❀

वेदवती कुशध्वज सुकुमारी। परम पण्डिता आज्ञाकारी॥ १॥
ऋषिकन्या तपस्विन भारी। धर्म अधर्म को परखनहारी॥ २॥
करि हिमवान शिखर पर वासा। हवन यज्ञ करे सायं प्राता॥ ३॥
ता मे घोर व्रत यह धारा। ब्रह्मचर्य्य रक्खूं जीवन सारा॥ ४॥
ब्रह्मचर्य अखण्डित हेतू। यप और नियमका बांधा सेतू॥ ५॥
वेदवती की जो थी शाला। लंका का आया वां भूपाला॥ ६॥
राक्षस अधम काम वसीभूता। देख के ऐसी कन्या स्वरूपा॥ ७॥
मन में विचार क्यों सुकुमारी। ऐसी करती तपस्या भारी॥ ८॥
ऐसी युवती क्यों वन माहीं। वास कर क्यां कष्ट उठाई॥ ९॥
बोला सम्मुख ऐ सुकुमारी। किसकी कन्या किसकीनारी॥ १०॥
क्यों यह घोर व्रत है धारा। रूप अपने को काहे बिगारा॥ ११॥
वेदवती उसे जान अतिथी। बोली वाणी मुख से मीठी॥ १२॥

मैं कुशध्वज की हूं सुकुमारी। ब्रह्मचर्य व्रतशीला धारी ॥ १३ ॥
सुनके वचन यूं रावण बोला। रूप ऐसा क्यों खोये अनमोला ॥ १४ ॥
चल तू साथ मेरे वन रानी। भोग विलास करो मनमानी ॥ १५ ॥
मैं पटरानी तुम्हें बनाऊँ। षटरस स्वाद तुम्हें खिलाऊँ ॥ १६ ॥
लाखों होंगी तेरी दासी। काहे प्रिया तू रहे बनवासी ॥ १७ ॥
वेदवती क्यों कष्ट उठाओ। चढ़ो विमान पै लंका धाओ ॥ १८ ॥
वेदवती सुन वचन यूं बोली। क्रोध बस ज्यों सर्पनि घोली ॥ १९ ॥
तप प्रभाव से मैंने जाना। तू है राक्षस रावण राना ॥ २० ॥
पाप हृदय में तेरे समाया। काल तेरा अब निकट है आया ॥ २१ ॥
मैं ब्रह्मचर्य अखंडित पालूं। भोग विलास सभी तुच्छ मानूं ॥ २२ ॥
अधम पापी मत छेड़ो मुझको। श्राप से दूंगी जला मैं तुझको ॥ २३ ॥
सुनके रावण बात विचारी। यूँ नहीं माने बात हमारी ॥ २४ ॥
भुजा के बल से मैं ले जाऊँ। चढ़ विमान पय लंका धाऊँ ॥ २५ ॥
ऐसा विचार कर नीचे उतारा। वेदवती को केशों खैंचा ॥ २६ ॥
कन्या तपस्विन ने बल धारा। बड़े वेग से दिया झटकारा ॥ २७ ॥
अपने केश यूँ उसने छुड़ाये। वचन बाण यूँ फिर बरसाये ॥ २८ ॥
राक्षस अधम पिशाच मलीना। घोर पाप तूने है कीना ॥ २९ ॥
व्रत यह मेरा था अय पापी। छूऊँगी न पर अंग कदापी ॥ ३० ॥
व्रत यह मेरा तूने तोड़ा। मैं न जीऊँगी काल भी थोड़ा ॥ ३१ ॥
यज्ञकुण्ड की अग्नी मांही। निश्चित् हो अब देह जलाई ॥ ३२ ॥
प्राप्त यज्ञ के जो फल मुझको। तिन प्रभाव से श्रापूँ तुझको ॥ ३३ ॥
मृत्यु कारण हुआ तू मेरा। स्त्री कारण वध हो तेरा ॥ ३४ ॥
यह कह वेदवती सुकुमारी। तुरत ही देह भस्म कर डारी ॥ ३५ ॥

रेणुका—यह धर्मशास्त्र को अच्छे प्रकार जानती थी, इस लिये अपने समय में बड़ी चतुर स्त्रियों में गिनी जाती थी।

उत्तरा—यह राजा विराट की पुत्री थी। इसने पूर्ण योग्यता प्राप्त की थी जो महाभारत से प्रकट है।

❀ विदुषी और शिक्षिता ❀

विद्योत्तमा—यह बड़ी विदुषी विख्यात स्त्री थी, जिसने अपने विद्या

के प्रभाव से बड़े बड़े पंडितों को परास्त करदिया था और उसने यहभी प्रण किया था कि जब मेरे समान विद्वान् मिलेगा तब मैं अपना विवाह करूँगी, क्योंकि वह वेदों की आज्ञा को विद्या के प्रभाव से जानती थी की विद्वान् के साथही से विद्वान् को सुख मिलता है न कि मूर्खके संग से। इधर जब पंडितों का बल उसकी विद्या के सम्मुख न चला तब सबने सम्मति की कि इसका विवाह एक मूर्ख से करादेना चाहिये, जिससे इसको अपनी विद्या के अभिमान के बदले में महा मूर्ख पति मिलजावे। इतने में उन पंडितोंने एक बकरियां चरानेवाले मनुष्य को ढूंढ उससे कहा कि हम अभी तेरा विवाह एक उत्तम विदुषी स्त्री से कराये देते हैं, परन्तु तू मौन रहना कुछ बोलना नहीं और जो तुझे कहना हो संकेतसे कहना। वह विवाहका नाम सुनतेही प्रसन्न होगया, तब वे सब कपटी पंडित उस मूर्खको विद्योत्तमा के निकट लेगए और उससे कहा कि एक योग्य मौनी पंडित आये हैं जो तुम से संकेत से शास्त्रार्थ करेंगे और यदि वह तुम्हारे दो तीन प्रश्नों का भी उत्तर सन्तोषजनक दे दें तो तुमको उनके साथ विवाह करना होगा। जब दोनों को इस प्रकार स्वीकार करालिया तब एक स्थान पर शास्त्रार्थ हुआ, वहां विद्योत्तमा ने प्रथम एक अँगुली उठाई कि जिससे उसका प्रयोजन यह था कि आत्मा एक है, तब उस मूर्ख ने यह समझा कि यह कहती है, मैं तेरी एक आंख फोड़दूँगी, तो उसने दो उँगलियां उठा दीं कि मैं तेरी दोनों फोड़दूँगा। परन्तु उस विदुषी स्त्री ने यह समझा कि यह कहता है कि एक जीवात्मा और एक परमात्मा है। फिर उसने पांच उँगली उठाईं जिससे उसका प्रयोजन यह था कि तुम्हारी पांचों इन्द्रियां तुम्हारे अधीन हैं? उस मूर्ख ने यह समझा कि यह कहती है कि मैं तेरे थप्पड़ मारूँगी इसलिये उसने मुट्ठी बांध कर उसकी ओर संकेत किया कि मैं तेरे मुक्का मारूँगा, जिससे वह यह समझी कि यह कहता है कि मैंने सब इन्द्रियों को अपनी मुट्ठी में करलिया है। जब उसकी इस प्रकार कपट से परीक्षा कराई गई और विद्योत्तमा उसको पंडित समझ गई तो प्रतिज्ञा के अनुसार दोनों का विवाह होगया। परन्तु जब रात्रि को पंडिता ने सम्भाषण किया तो वह महा मूर्ख प्रतीत हुआ जिसको जान उन पंडितों का कपट समझ विद्या के प्रभाव से धैर्य को धारण कर परमेश्वर के भरोसे पर उसको शिक्षा देना आरम्भ किया, जिसका अन्तिम फल यह हुआ कि वह बड़ा विद्वान् होगया जिसका नाम कविकालिदास आजतक भारत आदि देशों में प्रसिद्ध है तथा

जिनकी रचित पुस्तकें रघुवंश, मेघदूत, शकुन्तलानाटक इत्यादि आज तक भारतवर्ष में प्रसिद्ध हैं।

प्यारी बहिनो! विचारो, कि विद्या का कैसा प्रभाव है कि विद्योत्तमा ने अपने मूर्ख पति को पण्डित बनाकर आप सुख उठाया और संसार में उसका नाम प्रकाशित कर दिया।

मन्दोदरी—यह तमाल देश के राजा की बेटी थी, जिसका विवाह लंका के राजा रावण के साथ हुआ था, जिसको सरनद्वीप कहते हैं। यह बड़ी सुन्दर और बुद्धिमती स्त्री थी, जो रावण के यहाँ पटरानी करके प्रसिद्ध थी, जिससे कई बलवान् पुत्र उत्पन्न हुए थे। जब रावण अयोध्या के राजा रामचन्द्र की रानी सीताको वन से हर ले गया तब मन्दोदरी ने उस को लौटाने के विषय में कईबार समझाया जिससे उसका पढ़ा लिखा होना प्रतीत होता है। इसके उपरान्त इस विदुषी रानीने अपने पतिको अधिक लड़ाका देखकर उसके चित्तको हटाने के लिये शतरंज का खेल निकाला जो इस समय सम्पूर्ण देशों में प्रचलित है। देखिये मनुष्य-हिंसासे बचाने के लिये कैसा उत्तम उपाय सोचा, क्या बिना विद्या और बुद्धि के ऐसी चतुरता का कार्य कोई कर सकती है? कदापि नहीं।

कुन्ती—इसके नाम को इतिहास के पढ़ने वाले अच्छे प्रकार से जानते हैं। यह मथुरा के राजा शूर की बेटी थी, और इसका चन्द्रवंश के राजा पाण्डु के साथ विवाह हुआ था।

एक समय कोई स्त्री अपने सम्पूर्ण आभूषण आदि पहनकर कुन्तीके पास आई और कहा कि तू भी अपने आभूषण मुझको दिखा। उसने अपने पुत्रों को सम्मुख खड़ा कर कहा कि इन आभूषणों के उपरान्त मेरे पास कोई आभूषण नहीं है। इनसे मेरी बड़ी प्रतिष्ठा है *

इसके पश्चात् जब श्रीकृष्ण विराटनगर से कुरु पाण्डवों की संधिकराने के लिये हस्तिनापुर आये तब कुन्ती ने पुत्रों के लिये यह संदेशा भेजा था, ऐ बेटो! समय को अपने हाथसे न जाने देना, तुमको योग्य है कि अपने पिता के राज्य के लेने के लिये युद्ध करने में किंचित् विलम्ब न करना

* हमारे यहां पांचों पांडवों तथा युधिष्ठिर दुर्योधनादि के विस्तार युक्त जीवन तैय्यार हैं, मूल्य भी बहुत ही थोड़ा है, मँगा कर देखिये।

चाहिये, शत्रु का प्रतिष्ठा और सेना के बल की कुछ शङ्का मन में न करनी चाहिये, तुम शीघ्र अपना राज्य उनसे लेलो क्योंकि तुम क्षत्रियहो। व्योपार करने वा खेत बोने और भीख मांगने के लिये तुम उत्पन्न नहीं हुए हो, शस्त्र बांधना और मरना मारना तुम्हारा कार्य है—अप्रतिष्ठा के साथ जाने से मरना हज़ार गुणा अच्छा है। तुम सांसारिक पुरुषों पर प्रकट कर दो कि वीरवती कुन्ती हमारी माता है। इन शत्रुओं के कारणही जो २ दुःख तुम्हारे घराने को हुए हैं वह कथन के योग्य नहीं हैं। जब मैं यह सोचती हूं कि तुम्हारी कोमलाङ्गी पत्नी द्रौपदी के बाल पकड़ कर किस प्रकार घसीटा तो सब दुःख इस अप्रतिष्टा के सम्मुख न्यून जान पड़ते हैं, यदि तुम ने इसका पलटा कौरवों से न लिया तो संसार में तुम्हारा जीना वृथा है तुमको योग्य था कि जिस दिन यह अप्रतिष्ठा हुई थी, उसी दिन उसका पलटा लेते या उसी स्थानपर मरकर ढेर होजाते। अब वह समय चलागया अब शीघ्रता करो। प्यारी बहिनों! विचारो, क्या कोई बिना विद्यावती होनेपर ऐसी सच्ची शूरवीरताकी शिक्षा करसकतीहै? उसकी इस शिक्षाका यही फल हुआ कि कौरवोंका सत्यानाश हुआ, युधिष्ठिरराजा हुए। कुन्ती ने राजसूययज्ञकिया। जब उसकी सबआशाएं पूर्ण होगईं तब वह धृतराष्ट्र और गान्धारीके साथ गङ्गाकिनारे तपस्या करने चलीगई जहां आयुके दिन पूरे होने पर वन में आग लग जाने से परलोक-यात्रा की।

विदूला—यह एक राजकन्या थी जिसने अनेकशास्त्र पढ़े थे, जब इसका पुत्र सिन्धुराज से परास्त हो उत्साह और उद्योग-रहित होगया, उस समय उसको इस प्रकार शिक्षा की कि तू मेरा पुत्र नहीं है जो पुरुषार्थ रहित होगया, यदि तू कल्याण चाहता है तो फिरसे पुरुषार्थ कर और कायर पुरुषों की भांति जो थोड़ीसी वित्ति से सन्तुष्ट हो जाते हैं, ऐसा न कर। देख कुत्ते की भांति नीच वृत्ति अवलम्बन करके मरना अच्छा नहीं। अरे जीने की आशा को त्याग कर आकाश में उड़ने वाले बाज पक्षी की भांति शत्रुओं के ऊपर गिरकर लोकमें विख्यात हो, क्योंकि इसप्रकारके जीने से संग्राम में लड़ कर मरना सौगुणा अच्छा है। देखो दान, तपस्या, सत्य, विद्या और धन के उपार्जन करने में जिसका यश पृथ्वी पर विख्यात नहीं वह माता का पुत्र कहलाने योग्य नहीं है। अंत को माता के वचनों से प्रोत्साहित हो पुत्र ने पुनः युद्ध कर विजय की लाभ की।

गान्धारी—इसने महाभारत होने से प्रथम दुर्योधन को समझाया था कि तू वृद्धों के वचनों तथा पिता और मेरी बात को न मान कर ऐश्वर्य जीवन और सुख की आशा को छोड़कर शत्रुओं के हाथ से मारे जाने का यत्न कर रहा है। हे मूर्ख! तू क्यों अत्यन्त लोभवश होकर योग्य पुरुषों की उत्तम सम्मति को नहीं मानता, देख अन्त को बारम्बार पश्चात्ताप कर प्राणों का त्याग करेगा। इस लिये श्रीकृष्ण इत्यादि महान् पुरुषों की इच्छानुसार कार्य कर आनन्द को भोग। परन्तु दुर्योधन ने न माना जिसका उसे उचित फल भी मिला।

सुमित्रा—यह महाराज दशरथ की द्वितीय स्त्री थी, इसने अपने पुत्र धर्मात्मा लक्ष्मण को श्रीरामचन्द्र के साथ वन में जाने के लिये निम्नलिखित शिक्षा की थी, जिससे उसका विदुषी होना प्रकट है—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छतात! यथासुखम्॥

हे तात! तुम रामचन्द्रजी को दशरथ और सीता को मेरे समान और वन को अयोध्या सरिस जानते हुए सुखपूर्वक जाओ और उनकी सेवा कर यथार्थ धर्म का पालन करो जो कि तुम्हारा कर्त्तव्य है। इन्होंने धर्म-नीति को भी निर्माण किया था।

तारा—यह तामिल देश के राजा की पुत्री थी, जिसका विवाह बालि के साथ हुआ था। यह अत्यन्त सुशीला और योग्य स्त्री थी। इसने अपने को पति को रामचन्द्र के अधीन रहने के अर्थ बहुत समझाया था, परन्तु जब उसने न माना और वह संग्राम के लिये चला तब मन्त्र जाननेवाली तारा ने विजय की इच्छा से 'स्वस्तिवाचनादि' मंगल पाठ पढ़ा था। जैसा कि किष्किन्धाकाण्ड सर्ग १६ श्लोक १२ में लिखा है—

ततःस्वस्त्ययनं कृत्वा मन्त्रविद्धिजयैषिणी।
अन्तःपुरं सहस्त्रीभिः प्रतिष्ठा शोकमोहिता॥

और जब बालि मारा गया और वह अपनी सखियों के साथ बालि के शव पर गई तब उसने निम्नलिखित वाक्य कहते हुए शोक प्रकट किया जिसको सुन वज्र के समान हृदय भी पीड़ित होता था—

नाना विधि विलाप कर तारा। छूटे केश न देह सँभारा
पुनि पुनि तासु शीश उरधरई। बदन विलोकि हृदय महँ हतई
मैं पति तुम्हें बहुत समझावा। कालविवश कछु मनहिंनआवा
अङ्गद कहँ कछु कहननपायहु। बीचहि सुरपुर प्राण पठायहु

इस प्रकार जब तारा रुदन करने लगी तब श्रीरामचन्द्र ने उसको उपदेश किया—

क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंच-रचित यह अधम शरीरा
प्रकट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य तुम केहिलगिरोवा

इसको सुन वह कुछ शान्त हुई तब राम ने कहा कि अब बालि की क्रिया करो, फिर अङ्गद का राज्य देख शान्त हो आनन्द करो, इस पर तारा ने हनुमान् से कहा कि एक ओर अङ्गद के समान सौ पुत्र हों और एक ओर मारे हुये वीर बालि के अङ्गों का लिपटाना हो तो भी पुत्रों के सुख से मृतक पति के अङ्गों का लिपटाना श्रेष्ठ है। कहिये क्या बिना ज्ञान के पातिव्रत धर्म की महिमा कोई कर सकता है? कदापि नहीं।

विद्याधरी—यह पूर्ण विदुषी विख्यात पण्डिता काशी के निवासी प्रसिद्ध पंडित मण्डन मिश्र को ब्याही थी। विद्याधरी तथा मंडन मिश्र की विद्या की कीर्त्ति संसार में चहुं ओर फैली हुई थी। प्रयाग में इनकी विद्या का प्रभाव सुन स्वामी शंकराचार्य्य शास्त्रार्थ के निमित्त इलाहाबाद से काशी को चले। चलते चलते जब काशी के नगर में पहुंचे तब मंडन मिश्र का घर न जानने के कारण कुएँ पर पानी भरती हुई कहारियों से मंडन मिश्र का घर पूछा। तब कहारियों ने निम्नलिखित श्लोक से उत्तर दिया—

प्रत्यक्षशब्दान्तविधिः प्रभेदैः नानाशुका यत्र गिरं वदन्ति।
द्वारेतुनीडान्तरसन्निरुद्धा अवेहि तन्मण्डनमिश्रधामा॥

हे दण्डी! जिसके द्वार पर दो चिड़ियां पींजरे में बैठी हुई जीव और ब्रह्म के विषय में वार्तालाप कर रही हैं, वह प्रत्यक्ष घर मंडन मिश्र का जानों। शङ्कर इस बात को सुन चकित हो मन में विचार करते हुए

कि जहां की कहारी इतनी पढ़ी है तो मण्डन मिश्र क्यों न बड़े विद्वान् होंगे। तोभी यह सोचकर कि डरना भला नहीं, परमात्मा का भरोसा रख उनके गृह पर पहुंचे। मंडन मिश्र उस समय ब्राह्मणों को भोजन करा रहेथे, इन को भी सत्कार पूर्वक गृह में लिया और भोजन करा तथा कुशल पूछकर कहाकि आप कैसे आये हैं ? शङ्कराचार्य ने उत्तर में कहा कि मैं आप से शास्त्रार्थ करनेके लिये आया हूं। मण्डन ने कहा कि हमारे और आप के बीच में मध्यस्थ कौन रहेगा ? शङ्करने उत्तर दिया कि विद्याधरी (जिसका द्वितीय नाम उभयभारती था) मध्यस्थ रहे। जब नियम निर्णय होचुके तब शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। जब मण्डन मिश्र हारगये तब विद्याधरी ने न्याय पूर्वक कहाकि "कविर्दण्डी, कविर्दण्डी कविर्दण्डी न संशयः" अर्थात् स्वामी शङ्कराचार्य की विजय में संशय नहीं, परन्तु हे दंडी मेरे पति को आपने सवस्त नहीं जीता क्योंकि अभी उनकी अर्द्धांगिनी मैं बैठी हूं जब तक आप मुझको भी अपना शिष्य न बना लेंगे तब तक विजयपत्र नहीं पा सकते, अर्थात् मुझको भी शिष्या बनाइये, जैसा—

अपितुत्वयाद्यनसमग्रजितः प्रथिताग्रणीर्मम पतिर्यदहम् ।
वपुरर्द्धमस्यनजितं मतिमन् अपिमांविजित्यकुरुशिष्यमिमम् ॥

तब शङ्कराचार्य ने उत्तर दिया कि महा यशस्वी स्त्रियों से शास्त्रार्थ नहीं करते। दंडी जी का यह बचन सुन विद्याधरी बोली--

यदिवादिवादकलहोत्सुकतां प्रतिपद्यते हृदयमित्यवले ।
तदसांप्रतंनहिमहायशयो महलाजनेन कथयन्तिकथाम् ॥

अर्थात् जो अपने पक्ष को खण्डन करे उसका उत्तर अवश्य देना चाहिये, और जो आप यह कहते हैं कि स्त्रियों के साथ पुरुष शास्त्रार्थ नहीं करते तो सुनिये--

स्वमतं प्रभेतुमिहयो यतते संवधुजनोस्तु यदि वास्तित्वतरः ।
यतितव्यमेव खलु तस्य जये निजपक्षरक्षणपरैर्भगवन् ॥
अतएवगार्ग्यभिधयाकलहंसयायाज्ञवल्क्यमुनिराड्करोत् ।
जनकस्तथासुलभयाऽबलया किमभी भवन्तिनयशोनिधयः ॥

कि क्या आप नहीं जानते कि गार्गी ने याज्ञवल्क्य से और जनक ने सुलभा के साथ शास्त्रार्थ किया और अन्त को हारजाने पर भी क्या याज्ञवल्क्य और जनक का संसार में अपयश है ? नहीं ३। शङ्कराचार्यजी इस का कुछ उत्तर न दे शास्त्रार्थ करनेपर उद्यत हुए। प्यारी बहिनों! सुयोग भाइयो! फिर क्या था दोनों का बड़े समारोह से १७ दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। शास्त्रार्थ भी कैसा ? अर्थात् वेद और शास्त्रों के प्रमाण सहित तथा बुद्धि और तर्क से एक एक शब्द को सिद्ध किया जाता था, जैसा कि कवि ने कहा है—

अथसा कथाप्रवृतेस्म तयोरुभयोः परस्पर जयोत्सुकयोः।
मतिचातुरी रचितशब्दभरी श्रुतिविस्मय कृतविचक्षणयोः ॥

पाठको! अन्तिम दिवस उभयभारती ने प्रश्न किया कि बतलाइये काम की भीतरी और बाहरी कितनी कला हैं ? जिसका उत्तर उन्होंने दिया कि मैं ने ब्रह्मचर्याश्रम से ही संन्यास लेलिया है इसलिये मैं नहीं जानता अर्थात् शंकराचार्यको बुद्धि और तर्क द्वारा हरा अपने पति की प्रतिष्ठा को रक्खा। क्या कोई स्त्री बिना विद्या के ऐसी बुद्धिमता की बात निकाल अपने पति की प्रतिष्ठा को रख सकती है ?

❋ स्त्रियों में बुद्धिमती ❋

पद्मावती—रानी पद्मावती के रूप गुण और बुद्धि की तीव्रता और पतिव्रतधर्म पर प्राण दे देने की प्रशंसा बहुधा कवियोंने की है। यह राना हमीरसिंह चौहान सिंहलद्वीप की पुत्री थी। अत्यन्त सुन्दर होने के कारण इसका नाम पद्मावती रक्खा गया और लक्ष्मणसिंह के चाचा भीमसिंहको व्याही गई थी। अलाउद्दीन ने इसके रूपपर मोहित हो १२७२ में चित्तौर पर चढ़ाई की। जब कोई उपाय अपनी अभिलाषा की पूर्ति का न देखा तो राजा से विनयपूर्वक कहला भेजा कि यदि आप मुझे उस परम सुन्दरीके दर्शन मात्र करादें तो मैं सन्तोष कर दिल्ली चला जाऊं। राजा ने स्वीकार कर लियाक्योंकि उससमय परदाका रिवाज़ नथा, बादशाह राजपूतोंके सत्यऔर धर्म पर भरोसा कर थोड़े मनुष्यों को साथ लेकर गढ़ के भीतर गया और रानी के दर्शन कर अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर लौटते समय बहुत

कुछ निवेदन किया कि मेरे कारण आपको इतना क्लेश हुआ अब आप क्षमा कीजिये, हमारी आपकी मित्रता आगे को बनी रहेगी। राजाने मनमें सोचा कि बादशाह हमारे ऊपर विश्वास कर गढ़ में अकेला चला आया है, इस लिये हमको उचित नहीं कि हम इसके वचन पर विश्वास न करें, उसको पहुंचानेकेलिये क़िलेकेबाहर तक वे बादशाह के साथ चलेगये, परन्तु बादशाह के मनमें कुछ छल था। बातोंही बातों में राजाको अपने लश्कर तक ले आया और उसको क़ैद करलिया और निर्लज्ज होकर राजासे स्पष्ट कह दिया कि जब तक आप रानी को हमको न देदेंगे तब तक हम तुम्हें न छोड़ेंगे।

जब इस समाचारको रानीने सुना तो उसने तुरन्त अपने चचा और भाई आदिको सम्मति करनेके लिये बुलाया और कहा कि कौन सा उपाय ऐसा कियाजावे कि जिससे राजा छूटकर यहां आजावें और मेरी प्रतिष्ठा में बट्टा न लगे। सबकी यह सम्मति ठहरी कि आप शाह के साथ जाने का बहाना करके राजाको उस विश्वासघातीसे छुड़ा लावें। रानीने बादशाह से कहला भेजा कि मैं अपनी सब सखी सहेलियोंके साथ आपके पास आती हूं। बादशाह ने प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लश्कर में सिपाहियों को आज्ञा दी कि रानी पद्मावती आती है, कोई मनुष्य किसी प्रकार का उपद्रव न करे वा किसी स्त्री का परदा न खोले और उसकी सहेलियों के लिये सात सौ डोलियां तैयार की गईं, जिनमें प्रत्येकके भीतर एक एक शस्त्रधारी रणधीर क्षत्रिय और बाहर छः छः डोली के कहारों के भेष में, बादशाह के लश्कर में पहुंचे। वहां एक तम्बू के भीतर डोलियां उतार दीगईं। रानी ने राना से भेंट करनेके लिये शाह से आध घंटेका अवकाश मांगा। रानीकी विनती पर उसको करुणा आई कि एकबार तो उसे और अपने पति से मिलने की आज्ञा देदेना चाहिये नहीं तो फिर कहां मिलना होगा, अब वह दूसरे की स्त्री हुई जाती है। बादशाह फूले नहीं समातेथे कि अब तो ऐसी रूपवती स्त्री हमारे हाथ आगई। इसी आशामें मग्न बैठाहुआ घड़ीके मिनटोंको देख रहा था कि कब आधघण्टाहो कि परमसुन्दरी हमारे सम्मुख आवे। इधर कुछ और ही कौतुक हुआ अर्थात् राजा और रानी शीघ्रगामी घोड़ों पर सवार होकर चित्तौड़को चलेगये और ७०० सिपाहियोंने कपट रूप त्याग कर शाहके लश्करको मारकर भगा दिया और बादशाह दिल्ली को लौट आया। परन्तु बादशाह मारे लज्जाके प्रतिदिन इसी उपायमें डूबा रहता कि

किस प्रकार चित्तौड़ हाथ आये और यह मेरी लज्जा संसारसे जाय। सन् १३०३ में फिर बड़ी धूम धाम से चढ़ाई की। बादशाह के सिपाही प्राणों का दांव लगाकर धावा करते थे, जब राजपूतोंने देखा कि टीड़ी दल के सम्मुख हमारा बल पौरुष कुछ काम न देगा, अप्रतिष्ठा से कुत्तेकी मौत मरना अच्छा नहीं। क्षत्रियों की शोभा इसी में है कि तलवार की धार से रणभूमि में मारे जावें। इसलिये ऐ सुदतियो! आओ तुम सब इस दहकती अग्निमें प्रवेश करो हम सब कल स्वर्ग में मिलेंगे। निदान सब की सब जिस में सुकुमार पद्मावती भी, थी, जलकर भस्म होगईं। फिर क्षत्रियों ने केसरिया वस्त्र पहिनकर क़िलेका फाटक खोलदिया और सबके सब लड़ कर कट मरे। बादशाह पद्मावतीके मिलनेकी आशामें चूर होरहा था, ज्योंही वह क़िलेके भीतर गया त्योंही रानीके कोमल शरीरसे धुवां उठते देख हाथ मार रह गया और निराशहोकर क्रोधमें आ जो कुछ स्त्री पुरुष उस क़िले में बचे थे सबको भेड़ बकरी के समान काट डाला। हवेलियां और सुन्दर स्थान जो बने थे उन को तुड़वा डाला, केवल उस रङ्ग महलको पद्मावती के आदरार्थ छोड़दिया जिसमें वह निवास करती थी।

प्यारी बहिनो! उक्त रानी ने प्रथम युक्तिसे अपने पतिको बन्दी से छुड़ाया और अपने पतिव्रतधर्म की रक्षा की जिस से उस का आज तक यश गाया जाता है; क्या बिना विद्या और धार्मिकशिक्षा के ऐसे योग्य कार्य को कोई करसकता है? कदापि नहीं। इसलिये पद्मावती की भांति विपत्ति के समय धैर्य और साहसी बनने के लिये विद्या पढ़ो जब ही तुम पातिव्रतधर्म का पालन कर सकती हो।

❋ सभ्यतायुक्त वार्तालाप करनेवाली एक सभ्य स्त्री ❋

एक नगर में एक विद्वान् पंडित और उनकी विदुषी स्त्री रहती थी। दोनोंमें परस्पर बड़ा प्रेमथा। पति स्त्री से प्रसन्न स्त्री पति से। एक दिन पंडितजी के एक मित्र विदेश से आये। भोजनादि पाने पर मित्र ने भोजनों की प्रशंसा कर कहाकि आपकी स्त्री बड़ी योग्य है। पंडितजी ने पूछा कि आपने उसकी योग्यता किसप्रकारसे जानी? मित्रने कहा गृह में स्वच्छता और वस्त्रादि सब स्वच्छ, भोजन अति रुचिकारक आदि उनकी बोल चाल से जाना जाता है। पंडितजीने कहा कि हम को तो इस स्त्री के पीछे संसार में परमानन्द है, महाशय यह बड़ी गुणवती और बुद्धिमती है। मैं अभी आप

को इसकी योग्यता और सभ्यता का पूर्ण परिचय दिखलाता हूं। इतना कह पंडितजी ने पंडितानी को बुला कर कहा कि मैं अपने मित्र के साथ परदेश जाना चाहता हूं, तुम्हारी क्या सम्मति है? स्त्री ने निम्नलिखित श्लोक पढ़ कर कहा कि---

माथाहीत्यपमंगलं व्रजपुनः स्नेहेन हीनं वचः,
तिष्ठेति प्रभुता यथा रुचि कुरुष्वैषाप्युदासीनता।
नोजीवामि विनात्वयेति वचसा सम्भाव्यतेचानवा,
तन्मांशिक्षयमित्रयत्समुचितं गन्तुंत्वयि प्रस्थिते॥

रोकहिं जो तौ अमंगल होय, औ प्रेम नसै जो कहैं पिय जाइये।
जो कहैं जाहु न तौ प्रभुता, जो कछू न कहैं तो सनेह नसाइये॥
जो हरिचन्द्र कहैं तुमरे बिन जीहैं न तौ यह क्यों पतिआइये।
तासों पयान समै तुमरे, हम का कहैं, ? आप हमें समझाइये॥

यह सुन मित्र ने पंडित और पंडितानी जी को धन्यवाद दे कहा महाराज शिक्षा का यही फल है, विद्या से ही सभ्यता आती है, विद्या कामधेनु गाय है, जो कोई विचार पूर्वक इसको दुहता है वही अमृत अर्थात् आनन्द को पाता है।

॥ सभ्यता से पिता से प्रार्थना करनेवाली शूरवीर स्त्री ॥

संयोगिता—यह कन्नौज के राजा जयचन्द्र की परम सुन्दरी गुणवती पुत्री थी। पृथ्वीराज और जयचन्द्र में ईर्षाद्वेष चला आता था। राजा पृथ्वीराज ने अश्वमेध यज्ञ किया। जयचन्द्र को ईर्षा उत्पन्न हुई और उसने राजसूय यज्ञ करनेकी तैयारी की। यज्ञशाला उत्तम प्रकार से सजाई गई जहां भारतवर्ष के सम्पूर्ण राजे महाराजे एकत्रित थे, केवल पृथ्वीराज ही ईर्षा के कारण नहीं आये। राजाने उनकी निन्दा करने के अर्थ पृथ्वीराजकी मूर्त्ति बनाकर ड्योढ़ी पर खड़ी करादी। यज्ञ समाप्ति पर राजा ने अपनी बेटी का स्वयंवर भी किया। जिस समय राजकन्या जयमाला ले यज्ञमंडल में आई और जिस शूरवीर गुणी पृथ्वीराज को मनमें चुना था, उसेनदेखकरअपनेपिता की अप्रसन्नता और द्वेष का कुछ विचार न कर सब सभाके सम्मुख पृथ्वीराज

की मूर्ति के गले में जयमाला डालदी। तब पिता ने क्रोधित हो कहाकि तूने मेरे शत्रु के गले में जयमाला डालदी। उस समय संयोग्यता ने नम्रतासे कहा कि हे पिता! आप क्रोध न कीजिये क्योंकि आपने मुझको स्वयंवर की आज्ञा दी थी, इसलिये जिसको मेरे मन ने स्वीकार किया उसके ही जय-माला डाल दी। हाँ आपने यह क्यों नहीं कहदिया तुम मेरी आज्ञा से अमुक राजा से विवाह कर लो। इसलिये अब आप अपने वचनानुसार क्षत्रिय वंश की प्रतिष्ठा को सदा नियत रहने के लिये निर्वाह कीजिये। सभा और पिता इस वचन को सुन मन में शान्त होगये परन्तु ईर्षा की अग्नि ने फिर भी उसको शान्ति न दी और राजा ने कहा मैं जीते जी प्रसन्नता पूर्वक विवाह नहीं करूँगा। जब पृथ्वीराज ने यह समाचार सुने तब वह एकदिन अचानक चुनेहुये सवार और प्रधानगण साथ ले सबके देखते देखते राजमहलों से उसे लेकर चलेआये, साथही ५ दिन तक बड़ा युद्धहुआ अन्त को रानी समेत वह दिल्ली पहुंचगया। रानी के प्रेममें राजा ऐसे डूबगयेकि एक वर्ष व्यतीत होते न जानपड़ा, इतनेमें राजदूतों ने समाचार दिया कि महाराज यवनोंकी सेना चढ़ी आती है उस समय रानी ने अपना भेष बदलकर राजासे कहाकि उठिये यह समय भोगविलास का नहीं है, आप क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय का धर्म प्रजा की रक्षा है, इसलिये अस्त्र शस्त्र संभारिये, संग्रामकी तैय्यारी कीजिये। क्षत्रिय वंश ने अपनी मान प्रतिष्ठा के निमित्त अपने प्राणों को दे डाला है उसका नाम इतिहास में संग्राम में विजय पाने या रण में मरने से होता है। आपके साथ मैं भी स्वर्ग को चली जाऊंगी। यह सुन पृथ्वीराज ने कमर बांधी परन्तु शोक कि उसके बहुत से सुभट और वीर योधा कन्नौज में काम आ चुके थे तो भी उसने सेना के चलने की आज्ञा दी और अन्त को राजा अपनी माता आदि से मिलने गये। जब वह रानीसे मिले, दोनों को अति प्रेम के कारण टकटकी लग गई प्यारी के हाथ से सुवर्ण के कटोरे में जलपान कर सेना के डंकों का शब्द सुन चल दिये। जब पीछे की सेना संयोग्यता को सौंप कर गया तो सती को व्याप गया कि राजा का अब दर्शन होना दुर्लभ है। इतने में राजा पकड़ा गया और गले पर छुरा फेर कर मारा गया। शहाबुद्दीन गोरी ने रानी को बहुत कुछ सम-झाया परन्तु उस सती ने एक न माना और सती धर्म की रक्षा के लिये वह उसी समय पति के साथ भस्म होगई।

॥❀॥ विनय युक्त पति से सम्भाषण करनेवाली ॥❀॥

शकुन्तला—यह महात्मा कण्व की पुत्री थी। राजा दुष्यन्तने इससे गान्धर्व विवाह किया था। चलते समय अँगूठी देकर वह अपने राज्यको चला आया, फिर उसको नहीं बुलाया। वहां शकुन्तला के भरत नाम पुत्र उत्पन्न हुआ। जब यह पुत्र तीन वर्ष का हुआ तब उक्त महात्मा की आज्ञानुसार उसके चेले उसको लेकर राजा के पास गये। परन्तु शोककि राजा ने उस को नहीं जाना। तब शकुन्तला ने कहाकि महाराज प्राण पुरुष अर्थात् परमेश्वर को साक्षी देकर जब आपने विवाह किया था, अब आप भूलते हैं। हे स्वामिन्! जो गृह-कार्य्यों में दक्ष, जिन्होंने पुत्र का प्रसव किया तथा जो पतिव्रता है वही भार्या है, मनुष्यों का स्त्री आधा अँग है, भार्या सब से बढ़कर साथी है, भार्या ही इनतीनों वर्गों की जड़ है, भार्या ही संसार के पार करनेका कारण है, जिनके भार्या है वही गृहवासी हैं, उत्तम भाषण करनेवाली भार्या एकान्त में सम्मति देनेवाली है, वही मित्र के समान है, धर्म कर्म में हितैषी पिता के समान है, पीड़ा की दशा में स्नेहवती, मातृवती और रूखे मार्ग में पथिक पति का विश्राम का स्थल है, इसके उपरान्त जिसके भार्या होती है उसी का लोग विश्वास करते हैं, सच तो यह हैकि चतुर भार्या ही पति को सांसारिक नरकों अर्थात् दुःखों से छुड़ाती है, इसलिये अति क्रोधित होनेपर भी पति को पत्नी का अप्रिय कार्य न करना चाहिये। क्योंकि रीति, प्रीति और धर्म सबही भार्या के हाथ में हैं, स्त्रियां आत्मा की सनातन पवित्र क्षेत्र हैं। ऋषियों को भी ऐसी शक्ति नहीं है कि स्त्री के बिना प्रजा रचें। देखिये सैकड़ों कूपों की प्रतिष्ठा से एक तालाब की प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है। सहस्रों तालाबों से एक यज्ञ और सैकड़ों यज्ञों से एक पुत्र और सहस्रों पुत्रों से एक सत्यनिष्ठ श्रेष्ठ है। सर्व वेदों का पठन, सब तीर्थों में स्नान एक सत्य के समान होता है, सत्यके समान धर्म नहीं, असत्य से अधिक कुछ नहीं, मिथ्या से बढ़कर कोई पाप नहीं आपने मुझ से जो नियम किया उसका उल्लंघन न कीजिये। इसके पीछे राजा को होश आया और शकुन्तला को पहचाना, फिर दोनों ने आनन्द से आयु व्यतीत की। भरत इस देश का राजा हुआ जिस के नाम से यह देश भारतवर्ष प्रख्यात हुआ।

॥❋॥ पिताकी प्रतिष्ठा के लिये बलिदान करनेवाली ॥❋॥

कृष्णाकुमारी—यह उदयपुर के राजा की पुत्री थी जिसका जन्म सन् १८७२ में हुआ था। यह अत्यन्त रूपवती और सुन्दर थी इसकी मन्द चाल और मृदुभाषण ऐसा मनोहर था जिससे उस देश के लोग उसको राजस्थान का कमल कहते थे। इसका विवाह जोधपुर के महाराज के साथ ठहरा था जो विवाह होने से प्रथम ही परलोकवासी हो गये, तब उसके विवाह की बातचीत जयपुर के महाराजा के साथ होनी आरम्भ हुई और कुछ काल में टीका भी होगया, इनमें द्वितीय जोधपुराधीश ने जो उन मृतक महाराज के पीछे गद्दी पर बैठे, कहला भेजा कि प्रथम इसकी शादी महाराजा जोधपुर से नियत हुई थी इस कारण इसका पाणिग्रहण हमारे साथ होना चाहिये। इस प्रकार दोनों राजे बरने के लिये वहां पहुंचे और राजा को धमकाने भी लगे कि यदि कन्या हमको न दोगे तो हम तुम्हारे राज्यको विध्वंस कर डालेंगे। राना का वंश और पदवी सब राजाओं से अधिक मानी जाती थी परन्तु उस समय वह इतना बल न रखता था कि दोनों से अथवा एक से लड़ परास्त करता। दोनों राजा इधर उधर के लुटेरों की सेना इकट्ठी करने लगे और सेनाओं ने उदयपुर में लूटमार मचादी। राजा हैरान था कि क्या करें। अन्तको अमीरउद्दीन ने सम्मतिदी कि आप इस पुत्रीही को क्यों न थक् करदें जो यह सब बखेड़े जातेरहें। राजा इस घोर हत्या करने और निष्पापिन के मारनेको उद्यत न हुआ, परन्तु इन दोनों राजाओं के मारे बेकल था। वह अमीरउद्दीन उपरोक्त सम्मति ही देता था जिसको राजा ने फिर स्वीकार कर लिया। परन्तु इस भयंकर पाप करनेके लियेकोई वधिक नहीं मिलता था, अन्तको सब लोग राजाके एक सम्बन्धी की ओर संकेत करने लगे कि यह इस कार्य्यको कर उदयपुर की प्रतिष्ठा को रक्खेंगे। वह क्षत्रिय इन कायरों के इस घोर विचारको सुनते ही कांप उठा और ऊँचे स्वर से राज-सभा में कहने लगा। धिक्कारहै! उस पुरुषको जो मुझ से उस निर्दोष कन्या के बधके लिये कहे, खाक पड़े उस सम्बन्धपर जो इस अत्याचार के करनेपर शेष रहे तब राजाका एक भाई इस कार्य्य के लिये बुलाया गया कि उदयपुर की लज्जा इसी में रहती हैकि तुम इसका बधकर आओ। तब वह बड़ा कठिनाई से बरछी मारने पर राज़ी हुआ, जब वह महलों में पहुंचा जहां वह परम सुन्दरी, नवयौवना कन्या, (जो साक्षात् लक्ष्मी के समान थी)

बैठी हुई देखी। उसकी भोली आकृति देख वधिक का पाषाण हृदयकमल के समान कोमल होगया और उसका हाथ उस निरपराधिनी कन्यापर न उठसका और घबराहट के कारण उसके हाथ से बरछी गिरपड़ी परन्तु यह सब भेद कृष्णाकुमारी और उसकी माता पर प्रकट होगया और वह मनुष्य अपनी दुष्टता पर लज्जित होता हुआ लौटगया। माता स्नेहवश अपनी निरपराधिनी कन्या के मारनेवाले को अनेक दुर्वचन कहने लगी और शोकग्रस्त हो ऊँचे स्वर से रुदन करनेलगी, परन्तु वह विद्यावती वीर कन्या अपने पिता, वंश, प्रजा और देश के हित के लिये अपने जीवनका आप बलिदान करने को उद्यत होगई। इधर बरछी के बदले विष देने का विचार हुआ। तब एक राजसेवक ने रोते रोते राजा की आज्ञा से विष का प्याला लाकर कृष्णाकुमारी के हाथ में दिया। उस परम धैर्य्यवती गुणवती कन्या ने चित्त को दृढ़ करके पिता की आज्ञा उनकी आयु, धन, सम्पत्ति की रक्षा और वृद्धि के अर्थ परमेश्वर से प्रार्थना करती हुई शिर झुका कर पीलिया और मृत्यु के भय से उसके नेत्रों से एक आंसूतक न निकला। जब माता प्रेमवश होकर दुःख से पीड़ित हो हत्यारे लोगों को दुर्वचन कहती तो वह शीलवती पुत्री अपनी दुःखी माता को यों समझाती थी, ऐ मेरी प्यारी माता! तुम मेरे लिये इतना क्यों शोक करती हो? क्या यह अच्छा नहीं है कि मैं इस प्रकार के दुःखों से जीवन भर के लिये छुटकारा पा जाऊँ? मुझे मरने का किंचित् भय नहीं, क्योंकि उत्पन्न होने के समय से ही काल मेरी आंखों के सम्मुख नाच रहा है।

पिताजी की यह महती कृपा थी कि उन्होंने मुझको इतने दिनों तक जीता रहने दिया। इतने में जब राजा ने देखा कि विष का कुछ प्रभाव नहीं हुआ तब दूसरा प्याला उसके हाथ में दिलवाया। उस सुन्दरी ने उसको भी पी लिया, जब उससे भी कुछ न हुआ तब तो राजा ने तीसरी बार तीक्ष्ण विष भरकर पुत्री को दिलाया, उस समय कृष्णाकुमारी ने हँस और धैर्य को यथावत् धारण कर और यह कहकर कि मेरा जीव ऐसा निर्लज्ज होगया है, झट उसको भी पी लिया जिसके नशे में ऐसी चूर हो-कर सोगई कि प्यारी कृष्णाकुमारी फिर इस संसार में न जागी।

जब उदयपुर में यह शोकमय समाचार धीरे धीरे फैल गये तब कोई कृष्णाकुमारी के लिये रोते थे और राना को धिक्कारते थे, शत्रु भी इस

अपार कौतुक को सुन अत्यन्त दुःखित होकर अपने अपने निज भवन को लौट गये, अभागिनी माता ने अन्न और जल को छोड़ थोड़े ही दिनों में अपने प्राण को भी खो दिया।

प्यारी बहिनों! क्या कोई ऐसी सुकमारी कन्या आपके देश में अब उपस्थित है जो पिता की प्रतिष्ठा, देश के युद्ध और प्रजा की हानि का ध्यान कर प्राण देने को उद्यत हो। धन्य है! कृष्णाकुमारी, तुम्हारा यह बलिदान अब भी पाषाण हृदय को रुलानेवाला है।

❋ शूरवीर स्त्रियां ❋

राजपूताने में रायगढ़ नाम छोटी सी राजधानी है, वहां के ठाकुर की एक सुन्दर कन्या थी जिसको मुसलमान हरना चाहते थे, इस कारण बड़ी भारी सेना लेकर चढ़ाई की, जब वहां की राजपूत स्त्रियों ने देखा कि यह सब हार जायगे, तो अपने देश की प्रतिष्ठा बचाने के लिये सब एकत्र हुईं और कमेटी की। उसमें यह निश्चय किया कि खान पान शस्त्र आदि सामान के लिये आभूषण उतार उतार कर सब ने लगा दिये।

फिर युवा लड़ने के लिये उद्यत हुईं। वृद्धाओं ने रोटी आदि बनाकर पहुंचाने का काम और बालाओं ने जल ले जाने का भार अपने ऊपर लिया, फिर क्या था सब मुसलमान भाग गये और शूरवीर स्त्रियों की सहायता से धर्म और धनादि सब बच गया।

बुद्धिमती और युद्ध करने वाली—

कर्म्मदेवी—यह समरसिंह चित्तौड़ के राजा की वीर रानी थीं। जब इनका पति पृथ्वीराज की सहायता करने में मारा गया और दिल्ली कन्नौज पर विजय पाने के पश्चात् शहाबुद्दीन ने उसके सहायकों को दबाने के अर्थ अपने नायब कुतबुद्दीन को चित्तौड़ पर भेजा और जब वह उसके निकट पहुंचा तो उसकी रानी से कहला भेजा कि गढ़ की ताली हमारे पास भेज दो और तुम हमारे अधीन होजाओ, यह सुन रानी ने प्रतिउत्तर में समाचार भेजा कि शूरवीर ऐसे कायरों के समाचार नहीं भेजते, क्या मैं अपने होते अपने पति की प्रतिष्ठा में धब्बा आने दूंगी। यह सुन वह बढ़ा और युद्ध का बाजा बजा, जिसको सुन रानी अपनी थोड़ीसी सेना ले और आप

घोड़े पर सवार हो हाथ में भाला लेकर संग्रामभूमि में आकर बड़े प्रभावशाली शब्दोंमें अपनी सेनाके मनुष्योंको ललकारा—"जिसको अपने प्राण प्रिय हों, जो अपनी सन्तान पर मोहित हों वे अभी भाग कर चले जावें और जिनको यह निश्चय होगया हो कि संग्राम में लड़ना हमारा धर्म है और शरीर अनित्य है जो एक दिन अवश्य ही जावेगा वह मेरा साथ दें। क्योंकि यह समय पुरुषोंको स्त्री बननेका नहीं है। यदि तुम प्राणों को न्योछावर करने को उद्यत हो जावोंगे तो स्मरण रक्खो कि तुम इस संग्राम में विजय पाओगे" इस शूरवीरा स्त्री के इन शब्दों ने सिपाहियों के हृदय पर बड़ाही प्रभाव किया कि राजपूत एक साथ नदी की भाँति उमड़पड़े और आन की आन में शत्रु की सेनाको छिन्न भिन्न करदिया और जब कमदेवी के विजय समाचार अन्य और पास के राजाओं को पहुंचे, इधर उधर से सेना आगई, फिर क्या था फिर तो कुतुबुद्दीन को अपने प्राणों की रक्षा के निमित्त रणभूमि से भागना पड़ा और उक्त शूरवीरा स्त्री ने संग्राम में विजय प्राप्त की और जब तक वह जीवित रही शत्रुओंने कभी फिर उधरको मुंह नहीं किया। देखिये स्त्रियां ऐसी ऐसी शूरवीरता के कार्य करती थीं।

ताराबाई—यह रायसूरसेन बिजनौर वाले की पुत्रीथी, जो राजपूताने में एक छोटेसे राज्य का राजा था। जिसको तेरहवीं शताब्दी में अलाउद्दीन ने हरा दिया। इसलिये रायसूरसेन अपने राज्यसे निकल टोंक जाति से थोड़ा टोंक और बनारस नदी के किनारे की धरती को छीन वहां बसने लगा। अपने पिता को राज्यक्षीण होने से दुखित और मलिनदेख अपने पूर्व वंश का ऐश्वर्य और व्योरा सुन ताराबाई स्त्रियोंके व्यसन, वस्त्र और आभूषणों को त्याग घोड़े की सवारी पर धनुष विद्या सीखने लगी कि मैं ही किसी काल में अपने पौरुष बल से पिता के छीनेहुए राज्य को अफ़ग़ानों से छीनलूंगी, ऐसा दृढ़ विचार रखतीहुई वह शीघ्र ही धनुर्विद्या में ऐसी प्रवीणा होगई कि दौड़ते हुए शीघ्रगामी घोड़े पर सवार होते हुए ऐसी फुर्ती और सफाई से बाण को चलाती कि बाण ठीक निशाने पर लगता। तब अपने पिताकालेकर अफ़ग़ानों पर चढ़ाई की, परन्तु शत्रुओं का बल बहुत था, इसकारण सबके सब लौटआये। राना रायमल के तीसरे बेटे जयमल ने इस के साथ विवाह करने का संदेशा भेजा, उसने उत्तर में कहला भेजा कि मैं उसके साथ विवाह करूंगी जो मेरे पिता के राज्य को

अफ़ग़ानों से छीन उनको देदेवे। जयमल ने प्रतिज्ञा कर मोहर्रम के दिनों में ताराबाई को साथ ले अफ़ग़ानों पर चढ़ाई की। अफ़ग़ानी उस समय ताज़ियों के निकालने में लगे हुए थे। बाई अस्त्र शस्त्र खैंचे हुए सब से पहिले आगे बढ़ भीड़ में घुस सर्दार को मारकर बड़ी फुर्ती से लश्कर में लौट आई और फिर दोनों ने मिलकर अफ़ग़ानों को परास्त करदिया॥

कूर्मदेवी—यह राना सोमरसी चित्तौड़गढ़वाले की रानी थी, पति के संग्राम में मारे जाने पर इसने धैर्य धारणकर पुत्र के सामर्थवान् होने तक अपने राजकार्य को बड़ी बुद्धिमानी से चलाया और जब कुतुबुद्दीन ऐबक ने इसके राज्य पर चढ़ाई की तो कूर्मदेवी ने संग्राम में लड़ बादशाह को घायल कर अपने राज्य की रक्षा की।

दुर्गावती—यह गढ़मण्डल के गोंड राजा की रानी थी, अपने पति के परलोक गमन पर पुत्रों के असमर्थवान होने के कारण राज कार्य करती थी। इसने मुसलमानों के साथ १५०० हाथी और ७००० सवार तथा प्यादों की बहुत बड़ी सेना द्वारा घोर संग्राम किया। दोबार विजय प्राप्त की। तीसरी बार के संग्राम में वह अपनी सेना के निर्बल और आप घायल होजाने से आत्महत्या कर मरगई, उस राज्य के पहाड़ों के बीच में इसकी समाधि अब तक उपस्थित है।

❀ राजप्रबन्धकर्त्री ❀

अहिल्याबाई—यह सन् १७३५ में उत्पन्न हुई थी, जिस के माता पिता सेंधिया के कुलमें से थे। शरीरका रंग सांवला परन्तु एक दिव्यदैवी तेज उसके मुखड़ेको दीप्तमान कररहा था। यह अत्यन्त भोले स्वभाव की थी। प्रति समय उसके चित्तमें उदारता और दया की लहरें मारती रहती थीं। इसके उत्तम गुणोंके कारण अनेकानकवियों ने उसके जीवनचरित्रों को लिखा है। इसने विद्या पढ़ने में अधिक अभ्यास किया था। यह बड़े धर्म से नित्य स्वाध्याय किया करती थी जिसका विवाह मल्हाररावके पुत्र खांडेराव के साथ हुआ था, जिससे मालीराव नामक पुत्र और मच्छाबाई नाम पुत्री उत्पन्न होनेके पीछेही खांडेरावका परलोकहोगया अर्थात् अहिल्या बाई १८ वर्ष की अवस्था में विधवा होगई। उस समय उसने रङ्गीनवस्त्र पह-

रना छोड़दिया और बिना कनारेका श्वेत धोती और एक मालाके अतिरिक्त कोई आभूषण शरीरपर धारण न करती थी। इन्द्रियों के सुख भोग के लिये उसके यहां सब पदार्थ उपस्थित थे, परन्तु वह मनको सांसारिक विषयों में प्रवृत्त नहीं करती थी और सदा उनसे वैराग्य होनेके लिये मन को ज्ञानद्वारा रोकनेका अभ्यास करती थी। जब रानीके पति का देवलोक होगया तब उसका बेटा गद्दी पर बैठा जो नौ महीने के भीतरही परलोक को सिधारगया और पुत्री अन्यसे व्याहीगई थी। गङ्गाधर यशवन्त मन्त्रीका विचार था कि वह उस कुलके किसी पुत्र को गोद लेकर गद्दी पर बिठा दे, उसने उस ..ा स्वीकार न किया। तब मुख्य मन्त्रीने राघोजी को जो मुख्य सेनापति और पेशवा का चाचा था मिलालिया, तब अहिल्याबाई ने कहला भेजा कि मेरे साथ झगड़ा करने से उत्तम फल न निकलेगा और राघोजीको युद्धके लिये उद्यत देख कर अहिल्या ने भी रण में संग्राम करने की सब तैयारी की। अपना हाथी कसवाकर अस्त्र शस्त्र सम्हालकर उसपर सवार हो बैठी, इधर सेंधिया और पेशवा ने कहला भेजा कि हम अहिल्या के विरुद्ध युद्ध में कुछ सहायता न देंगे और पेशवाजी ने भी राघोजी को मनाकर दिया। अन्तको अहिल्या सन् १७६६ में गद्दीपर बैठी। प्रथम दिन कोष में जो धन था उस को पुण्यके लिये संकल्प कर दिया और तुकाजी हुल्करको सेनापति नियत किया और उनको ऐसे काय करनेको दिये जो आप स्त्री होने के कारण नहींकर सकती थी। गंगाधरजी ने इतना द्वेष किया था तिसपर भी रानी ने क्षमा देकर दीवानी के कामपर नियतकर दिया, बाई तुकाजी को पुत्र के समान और वह माता के समान समझ बिना उसकी आज्ञा के कोई काम न करता था। मरने पर उसका पुत्र उसी अधिकार पर नियत किया गया, रानीके मनमें सदा यही अभिलाषा रहतीथी किप्रत्येक प्रकार से प्रजा सुखी रहे, यह सब कार्य शीलपूर्वक करतीथी, उसको अपनी प्रजा और सेनाकी राजभक्ति पर ऐसा विश्वासथा कि कहती थी मुझको किसी बाहरी शत्रुसे कुछ भय नहीं। उसकी प्रजा बराबर सुख चैन में रही, इस का कारण केवल यही था कि वह सब प्रकार मनुष्यों से यथोचित व्यवहार और वर्ताव करने के साथ अत्यन्त धर्म्मपूर्वक कार्य्य करती थी।

देशीय राज्यों में बहुधा कामदारों की बदलीके समय कुछ झगड़ाहुआ करता है, परन्तु बाईके राज्यमें ऐसी पदवियों की बदली बहुत ही कम

होती थी दूसरे उसको कोष में धन एकत्र करने का बड़ा शौक़ न था परन्तु प्रजा के सुख चैन का पूर्ण ध्यान रहता था।

बाई के प्रतिनिधि पूना, हैदराबाद, श्रीरंगपट्टन, नागपुर और लखनऊ आदि में रहते थे। पूना के व्योपारी महाजनों और ज़मीदारों की उन्नति देख कर वह बड़ी प्रसन्न होती थी। गोड़ों ने इसके राज्य में लूट मार करना छोड़ दिया था इसलिये बाई ने उनको सभ्यता के गुण सिखलाने का बहुत यत्न किया था।

अहिल्याबाई के समय में राना उदयपुर के सिवाय किसी ने चढ़ाई नहीं की, रानी ऐसी वीरता से लड़ी कि रानाजी को मेल करनेके लिये प्रार्थना करनी पड़ी, रानी की प्रशंसा इसी बात की रही कि उसने इस भांति प्रबन्ध किया कि किसी भांति का लड़ाई झगड़ा न हुआ।

उसका लेनदेन अनेक देश देशान्तरों के राजाओं से रहता था। इसने कितनेही गढ़कोट बनवाये थे, अनेक धर्मशालाओं में मन्दिर पक्के कुएँ बनवा दिये थे, बड़े२ तीर्थों में सदाव्रत बिठा दिये थे। 'इन्दौर' छपरा के बाई ओर इन्होंनेही बसाया। वह प्रातःकालसे एक घन्टा प्रथम उठकर नित्य नियम पूर्वकपूजा पाठकर नियत समय तक हरिकथा श्रवणकरती और फिर सुपात्रों को दान भोजन कराकर आप भोजन करती। वह कभी मांस न खाती। फिर कुछ काल आरामकर राजसभा में विराजमानहो सायंकाल तक राजकाज के धन्धोंको करती। वह अच्छेप्रकार प्रजाका न्याय करती थी, प्रत्येक मनुष्य स्त्री जाकर अपना वृत्तान्त कह सकते थे। उसका सिद्धान्त था कि मुझे ईश्वर के सम्मुख सब कर्मों का लेखा देना होगा, इसलिये वह सब कार्य ईश्वर का भय रख विचारपूर्वक करती थी ऐसे स्त्री पुरुष संसार में बहुतही न्यून दृष्टि आते हैं जैसीकि अहिल्याबाई थी, जिसको सत्य और असत्यका बड़ाही विचार था। सभा विसर्जन कर बाई फिर कुछ काल तक पूजा करती और भोजनके पीछे नौ बजेसे ग्यारह बजे तक कार्य करती। इसके उपरान्त सभा विसर्जन करने के पीछे शयन करने को जाती।

त्योहारों पर बड़े २ उत्तम पदार्थ बनवाकर उनको प्रेमपूर्वक आप दीन और कङ्गालों को खिलाती। ग्रीष्मऋतुमें जब कि मालवेमें जल सूखजाता था तब वह पियाऊ लगवाकर पानी पिलाने का प्रबन्ध करती, शरद

ऋतु में दीन दुखियों को वस्त्र बांटती थी, सच तो यह है कि बाई परोपकार में अपने राज्य का कोष व्यय कर देती थी।

अहिल्याबाई को वृद्धावस्था में बड़े बड़े कठिन दुःख झेलने पड़े। उस का एकलौता बेटा पागल होकर मरगया। उसकी दूसरी सन्तान एक पुत्री थी जो माताके समान गुणवती और सुशीला थी। दैवयोगसे उसके पति का देहान्त छोटी अवस्था में होगया। वह मृतक के साथ उस समय की रीत्यानुसार जलने को उपस्थित होगई। बाई ने बहुत विलाप कर उसको समझाया कि बेटी इस संसार में मेरा कोई नहीं। इस वृद्धावस्थामें केवल तू ही एक सहारा है, जब तूभी न रहेगी तो मैं किसका आधार करके जीवन व्यतीत करूँगी? भला इस वृद्धावस्था में मेरे दुःख दर्द को कौन पूछेगा? इसलिये मेरे इस कहनेको बेटी मान जा। बेटी का स्नेहभी माता में अधिक था, तो भी उसने अपने विकराल विचार को परिवर्त्तन नहीं किया और मातासे कहा हे प्रिय माता! तुम अब वृद्धा हो गई हो, तुम्हारे जीवन के दिन अब इस संसार में बहुतही थोड़े रहगये हैं और मेरे प्राणप्यार पति और पुत्र परलोक सिधार गये। जब तुम भी न रहोगी तो फिर यह कठिन पहाड़ किस प्रकार से कटेगा? इसके उपरान्त उस समय ऐसी प्रतिष्ठा और आदर सहित विदा होने का भी अवसर न मिलेगा। अन्त को जब अहिल्या ने यह जाना कि यह न मानेगी, तो सती होने की आज्ञा दे दी। बाईके साथ साथ पैदल गई जहां पर दो ब्राह्मण उसके हाथ थामे खड़े रहे। पुत्री देखते देखते अग्नि में बैठकर भस्म होगई। उस समय माता का हृदय फटा जाता था। अहिल्या बड़ी शान्तस्वभाव होने पर भी पुत्रीस्नेह से पीड़ित हो चिल्ला चिल्ला कर रो रो बेहोश होगई। इतनेमें पुत्री राखकी ढेरी होगई, ब्राह्मण उसको सचेत कर नर्मदा पर लेगये, जहां स्नान करा महलों में लिवालाये, तहां तीनदिन बिना अन्न जल के इसी दुःख में व्यतीत किये।

इस बाई का देवलोक सन् १७१५ ई० में ६० वर्ष की अवस्था में हुआ। उसकी उत्तम नीति, धर्मपालन, चित्त की दृढ़ता, बुद्धिमानी, ब्रह्मचर्य सेवन और प्रजापालन के सिद्धान्त उसके कार्यों से विदित हैं, कुछ हमारे कहने की आवश्यकता नहीं है। इन सबके उपरान्त उसमें एक बड़ा गुण यह भी था कि उसको अपनी झूंठी प्रशंसा से घृणा थी। एक बार एक विद्वान् पंडित उसकी स्तुति में एक ग्रन्थ बना कर लाया, उसको बाई

ने ध्यान पूर्वक सुन अन्त को उससे कहा कि मैं एक अधम पापिनी स्त्री हूं कदापि इस प्रशंसा के योग्य नहीं हूं और तुरन्त पंडित का यथोचित सत्कार कर उस ग्रंथ को नर्मदा में डुबो देने की आज्ञा की। धन्य है!

इनके विषय में मलकम साहब लिखते हैं कि "बाई जी बड़ी गम्भीर, सदाचारिणी, सांसारिक विषय भोगों से उदासीन, अपने धर्म की पक्की होने पर भी अन्य मतवालों को तुच्छ नहीं जानती थी, वरन सबको नित्या-नुसार अपने अपने कार्य बे रोक टोक करने देती थी। सदा प्रजा के पालन और सबकी आत्माओं को सन्तोष दिलाने के अतिरिक्त और कोई चिन्ता ही न रखती थी। उसकी विनय से भरी वाणी सबको प्रिय लगती थी। ईश्वर के भय का उसके चित्त पर बड़ा ही प्रभाव था। हमारी समझ में यह धर्मानुरागिणी राजाओं में परम शिरोमणी रानी हो गई है जिसका निर्मल यश और कीर्ति सदा संसार में बनी रहेगी।"

बैजाबाई—यह मरहठे सरदार दीवान श्रीजीराव घटके की पुत्री थी और इसका विवाह दौलतराव सेंधिया से हुआ था। यह अत्यन्त सुन्दर, रूप-वती तथा गुणवती थी। अपने पति के मरजाने के पश्चात् अपने एक कुटुम्बीय के पुत्र सुगतराव को गद्दी पर बिठलाने का विचार किया, परन्तु उसकी अवस्थ ११ वर्ष की थी, इस कारण उसको राज काज सम्हालने के योग्य न देख उसकी पूर्णावस्था तक स्वयं राज्य का प्रबन्ध किया। इसके रूप की प्रशंसा फैनींपारक साहब की मेम ने बहुत कुछ की है।

रानी चन्दा—बहुत से मनुष्य अभी राजपूताने में होंगे जिन्होंने इस-को देखा है, क्योंकि रानी को मरे थोड़े ही दिन हुए हैं। यह अत्यन्त रूपवती, बलवती और छोटी रानी महाराज रणजीतसिंह की थी। इसकी छोटी अवस्था में ही महाराजा परलोकवासी होगये, केवल एक पुत्र दो वर्ष का छोड़ा जो सितम्बर सन् १८४३ में ५ वर्ष की अवस्था में सिंहासन पर बिठायागया। इसके संग्राम में मारे जाने पर रानीने राज काज सँभाला।

वैदिक रीति से गर्भाधान धारण कर उत्तम सन्तान पैदा ❋ करनेवाली-गंगादेवी ❋

यह भीष्मपितामह की माता थी, जो विद्या आदि गुणों में निपुण पातिव्रत धर्म की मूर्ति थी। सन्तान उत्पन्न करनेके विषय में अत्यन्त चतुरता

रखती थी। देखिये इनके सुयोग्य पुत्र महात्मा भीष्मपितामह जी असन्तान होनेपर भी पितामह कहलाते थे। जिन्होंने महाभारत में सबसे अधिक संग्राम किया, फिर रणभूमि में तीरोंकी शय्यापर लेटेहुए ब्रह्मके बिचारमें लवलीन थे श्रीकृष्ण महाराज ने युधिष्ठर से कहा कि संग्राम भूमिको शीघ्र चलो क्योंकि धर्म के सूर्य आदित्य ब्रह्मचारी पञ्चतत्व को प्राप्त होने वाले हैं। फिर धर्म के तत्व का उपदेश मिलना कठिन हो जावेगा। यह विचार कर वहांगये श्रीकृष्ण महाराज की प्रार्थना पर जोर धर्मोपदेश उन्होंने किया, क्या कोई अजितेन्द्रिय ऐसा उपदेशकर सकता है, जो भारत में शांतिपर्व के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके सुनने और विचार करने से उस उर्द्धरेता बाल-ब्रह्मचारीकी विद्या और ब्रह्मचर्य के प्रभावका प्रकाश होता है। मार्ग में युधिष्ठर महाराज ने योगिराज श्रीकृष्ण से पूछाकि पितामह के बड़े ज्ञानी और धार्मिक होने का क्या कारण है? उस समय श्रीकृष्ण महाराज ने कहा कि इसका हेतु इनकी माता का पूर्ण ब्रह्मचर्य धारण कर वैदिक रीति से गर्भाधान संस्कार करने का है जैसा कि--

यं गंगा गर्भविधिना धारयामास सुव्रता।

क्या वर्त्तमान में अशिक्षिता स्त्रियां ऐसी धार्मिक सन्तानें उत्पन्न कर सकती हैं? क्या वह ब्रह्मचर्य के माहात्म्यको जानती हैं? गर्भाधान एवं संस्कारों को यथोचित्त कर ऐसे उत्तम फलोंको प्राप्तकर सकती हैं? कदापि नहीं। धन्य है माता गंगा को, जिसने सांसारिक मिथ्या सुखों को त्याग कर ब्रह्मचर्यव्रत को धारणकर वैदिक विधि से गर्भाधान कर महात्मा भीष्मपितामह से सुयोग्य सन्तान को उत्पन्नकर संसार में अपने और अपने पुत्र के नाम को अमर किया।

प्यारी बहिनो! अब विद्या के न होने से गर्भाधानादि संस्कारों की जो कुगति होरही है उसको तुम प्रत्यक्ष देख रहीहो। इसलिये गर्भाधान संस्कारादि धर्मशिक्षा ठीक करनेके लिये सब मिलकर पुत्रियोंको शिक्षा कराओ जिससे भारत में शूरवीर जितेन्द्रियादि गुणयुक्त सन्तान उत्पन्न हों।

सन्तान में वीररस प्रवेशकर धार्मिक बलिदान बनानेवाली—

गुरुगोविन्दसिंहजी की स्त्री—गुरु गोविन्दसिंह की स्त्री अपने दो पुत्रों समेत संग्राम से पृथकहो रसोइया के साथ चलदी। मार्ग में एक स्थान

पर ठहरेथे कि उसके बटुवे में जो मुहरें आदि थीं जाती रहीं। माताजीने उस ब्राह्मण से कहाकि यहां तो तुम्हारे सिवाय कोई नहीं आया। देखो आपत्ति में आपत्ति आती है, भला राज्य गया, स्वामी, से विछोह हुआ अब मार्ग का तोषा भी जातारहा। ब्राह्मण देवता कि जिन्होंने बहुत कालतक गुरुजी का माल खाकर अपना पालन पोषण किया था और लोभ में आकर माता जीका भी माल उड़ाया था, कुछ ध्यान न कर पापी मनसे माताजी से कहा कि तुम मुझको चोर बनातीहो। यह मेरे छिपानेका फल देतीहो। अब मैं बादशाहको सूचना देता हूं तब तुम्हारी चोरीका वृत्तान्त तुमको विदितहो जायगा। माता उसकी बिनती करने लगी, परन्तु वह पाषाण हृदय कब मानता है। उसने बादशाहको खबरदी। इतने में माताजी तो निकल गईं, परन्तु उनके दोनों पुत्र शाही दरबारमें पकड़ेगये। बादशाह ने उनसे कहा कि तुम दोनों मुसल्मान होजाओ, तुमको हम बड़ी पदवीदेंगे। जब उन दोनों ने इन्कार किया। बादशाह ने कहा तुम अब भी सोच लो और मुसल्मान होजाओ वरना दीवार में चुनवा दिये जाओगे।

वह धार्मिक पुत्र जिन्होंने माता के गर्भमे ही धार्मिक शिक्षा पाई थी, क्योंकि गर्भकी दशा में माता घोर विकराल युद्धमें अपने पति के साथ रही थी, जिसने वीरताका यथावत् फोटो उनके कोमल हृदयोंपर पूर्णरीति से खींच दिया था, दीवार में चुना जाना स्वीकार किया। बादशाह और वज़ीरों ने बहुत भांति समझाया, लालचदिया, भय भी दिखलाया, परन्तु वह जो अपने दो बड़े भाइयों का धर्मपर बलिदान होना सुनचुके थे, कब धर्मको त्याग सांसारिक पदार्थों में फँसनेवाले थे। अन्तको दीवार में चुने गये। सहस्रों मनुष्य इस कौतुक को देख रहे थे। अनेक मनुष्य आंखों से आँसुओं की धारा बहाते थे। जब दोनों दीवार में चुन दिये गये और यह भयानक समाचार माता पिताको पहुंचे जो पृथक् २ स्थानों पर थे तो माता जी ने तो तुरन्त मिठाई बंटाई और कहा कि मैं आज कोखवती हुई। क्योंकि वह यह समझती थी कि यदि पुत्र हो तो धर्मात्मा हो, नहीं तो बाँझ रहना भला चाहे एक ही क्यों न हो योग्य पुत्र एक ही अयोग्य सैकड़ों से श्रेष्ठ है। एक चन्द्रमा सम्पूर्ण अन्धकार को दूर कर देता है और सहस्रों तारों से कुछ नहीं होता।

एकोपि गुणवान्पुत्रो निर्गुणानां शतादरः।

एकश्चन्द्रस्तमोहन्ति न च तारा सहस्रशः ॥

और पिता ने उसको सुनकर नक्कारे बजवाये और कहा कि आज गोविन्दसिंह यथार्थमें पुत्रवाला हुआ। प्रिय सज्जन पुरुषों ! सुजनस्त्रियों, जिसकी माता तो मिठाई बटवाये और पिता नक्कारे बजवाये फिर क्यों कर उसके पुत्र धर्मवीर न हों ?

❋ मैत्रेयीजी का गृहस्थाश्रम से वानप्रस्थ में जाना ❋

इनका विवाह याज्ञवल्क्य ऋषि से हुआ था उपनिषदोंमें इसका वृत्तांत इसप्रकार लिखा है कि महात्मा जी ने जब संसार के छोड़ने का विचार किया तो प्रथम मैत्रेयी जी से कहा कि यदि तुम्हारी आज्ञा हो तो मेरा विचार वानप्रस्थ आश्रममें जानेका है और मेरा जितना धनादि पदार्थ है उसको तुम दोनों बाँट लेना। तब मैत्रेयीजीने उत्तरमें निवेदन किया कि यदि आप मुझको सम्पूर्ण पृथ्वी रुपये और मुहरोंसे पूरित करके दें तो क्या मैं इनको ग्रहणकर अमर होजाऊंगी ? तब याज्ञवल्क्य जी ने कहा कि धन सम्पत्तिसे कोई अमर नहीं होसकता, हां धनसे तुम अपना जीवन सुखपूर्वक व्यतीत कर सकती हो। तब मैत्रेयी जीने कहा कि ऐसा धन मुझको नहीं चाहिये, हां मुझे उस सम्पत्तिको दीजिये जिसके लिये आप हम दोनों को छोड़कर प्रसन्नतापूर्वक वनजाने को उद्यत हुए हो। ऋषि मैत्रेयी के इन वचनों को सुन अत्यन्त चकित हो उसको सम्मुख बिठा कर इसप्रकार मुक्तिका मार्ग समझानेलगे कि मनुष्य जब सांसारिक नाशवान् पदार्थों को मन से त्याग, केवल अद्वितीय परमेश्वर में ध्यान लगाता है तब उसको यथार्थ कल्याण अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है जिसके लिये ज्ञान की परम आवश्यकता है जो ब्रह्मविद्या से मिलता है। जब मैत्रेयी जी को यह विदित होगया तब अपने पति के साथ वानप्रस्थको धारण कर मुक्ति की प्राप्ति के अर्थ वन को चली गईं।

अनुसुइया—यह महात्मा अत्रि मुनि की स्त्री थीं जो अपने पति के साथ वनमें रहती थीं। जब सीता रामचन्द्र महाराज के साथ वन को गई थीं उस समय इन्होंने सीताको पातिव्रतधर्म का उपदेश किया था— "शील रहित कामी, क्रोधी, निर्धन, क्रूर आदि अपगुणों से युक्त भी आर्य स्वभाव स्त्री पतिको ही देवता जानती है। हे सीता ! हमारे विचार में पति से अधिक

कोई बन्धु स्त्रियों का नहीं, क्योंकि अन्य भाई बन्धु सर्वत्र सुख नहीं दे सकते, यह शक्ति केवल पति ही में है जो तपस्या की भांति सर्वत्र सुखदे सकता है। जो स्त्रियां काम के वशीभूत होरही हैं वे अपने पति की आप स्वामिनी बनी हैं, उन दुष्टा स्त्रियों को गुण दोष नहीं जान पड़ते कि हम को क्या करना चाहिये, ऐसी कामिनियों का संसार में अपयश और पर लोक में नरक होता है और जो तुम्हारे समान पातिव्रत के गुणों से भरी पुरी हैं और परलोक की गतिको जानती हैं वे पुण्यवती की भांति स्वर्ग में वास करती हैं, वे ही पति-सेवा को सबसे प्रधान कर्म्म समझ प्रति समय समयानुकूल पति की ही पूजा करती रहती हैं और छल-रहित सब प्रकार से पतिदेव की सेवा कर यश को प्राप्त करती हैं।"

❋ यशोधरा का सन्यास धारण करना ❋

यह महात्मा गौतम की स्त्री थी। जब गौतम ने घर छोड़कर संन्यास धारण किया तो वह घरसे बिना बात चीत के ही चलेगये थे। यशोधरा सोती थी। उसकी आयु १७ वर्ष की थी। एक दो दिन तो किसी को ज्ञात न हुआ जब फिर पता लगा तो उससमय घर और राज्यमें रोना पड़गया। पिता पुत्रके वियोग में मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, परन्तु यशोधरा ने धैर्य को न छोड़ा। समाचार पाते ही उसने सांसारिक सुख त्याग दिये, भूषणादि सब बांट दिये, पठन पाठन ध्यान और भक्तिमें समयको व्यतीत करने लगी। आठ वर्ष के पीछे जब गौतम प्रचार करते हुए अपने नगर कपिलावस्ती में आये और पिता को समाचार मिला तो वह वहांगया तब प्रथम उसको साधु वेषमें देखकर हंसा और फिर रोया। हंस तो इसलिये कि उसका पुत्र पवित्रता के प्रचार से जगत्का उद्धार कररहा है, रोने का यह कारण था कि राजकुमारने संन्यास धारणकरलियाहै। कुछदेरबात चीतके पीछे राजाने गौतमसे कहा कि राजमन्दिरको चलो और एक समय का भोजन वहीं खाओ। बुद्ध स्वीकार कर दूसरे दिन साथियों समेत राजमन्दिर में गया। सब सम्बन्धी उसको मिलने और दर्शनार्थ वहांआये परन्तु यशोधरा न आई। तब बुद्ध के पिता ने कहला भेजा कि तुम भी पतिका दर्शन करजाओ।तब यशोधरा ने उत्तरमेंकहला भेजाकि धर्मशास्त्र में लिखा है पति स्त्रियों का सत्कार करें, यदि मेरे पति के मन में मेरे लिये आदर है तो स्वयं वह मेरे मिलने के लिये आवेंगे, मैं नहीं जाऊंगी। बुद्ध

को जब यशोधरा के उत्तर का पता लगा तब वह उसी काल अपनी पत्नीके भवन को पधारा। यशोधरा बैठी हुई थी, शिरके बाल मुँडेहुए थे, बुद्धको देखते ही उसका मन भरआया और रुदन करने लगी। फिर यह समझा कि उसका पति अब संन्यासी बन गया है, उसके साथ अब पति और पत्नी भाव नहीं रहसकता। तब उसने धैर्य को धारण कर श्रद्धा के साथ बुद्धके चरणों पर शीश धर कर मन को ठण्डा किया। उस समय बुद्ध के सप्तु भी पास खड़े थे। बुद्ध से बोले कि हे पुत्र! तुम नहीं जानते कि इसका तुम्हारे साथ कितना प्रेम है। ज्योंही इसने सुना कि तुमने शिर छुड़वा लिया इसने भी वैसा ही किया। जब इनसे सुना कि तुमने सुगन्धित पदार्थ और रेशमी वस्त्र त्याग दिये तो इसने भी भूषणादि दान कर दिये जब इसको यह खबर मिलीकि तुमने सोने चांदीके पात्र त्यागदिये, तो यह भी उसी काल से पत्तल में खानेलगी। तब बुद्ध ने यशोधरा को उपदेश कियाकि ऐ धर्मात्मा यशोधरा! मैंने जो धर्मलाभ किया है, यह तुम्हारे ही धर्मभाव का फल है। तुम्हारी आत्मा पवित्र है, धर्म प्रचार से संसार का कल्याण करो। यह सुन उसने भी संन्यास ले लिया और जीवन भर उपदेश करती रही।

❋ उदार ❋

कासिम बाजार की महाराणी स्वर्णमयी।

इनका जन्म सन् १८२७ अर्थात् १२३४ फ़सली में बर्दवान के ज़िले भटाकोल नामी ग्राम में हुआ तथा १८३८ में राजाकृष्णनाथ रायबहादुर के साथ आपका विवाह हुआ था। जब १८४४ में इनके पति आत्मघात कर मरगये तब आपने बड़ी धैर्यता से राज्यकार्य किया अन्य गुणों के उपरान्त एक गुण इनमें बहुत बड़ा यह था कि जितना धन आपके पास आताथा उसमें से क़रीब क़रीब आधे के और बहुत सा अपनेस्वकोषमें से लेकर दीनों को देती थीं, देवालय बनवातीं, यात्रियोंकी थकावट मिटाने के लिये बावड़ी सहित स्वच्छ तथा मीठे ठंडे जल के कुएं और धूप आंधी मेह इत्यादि आपत्तियां में शरण लेने के लिये धर्मशालाएं बनवातीं। जब कभी देश में अकाल पड़ता तब पूर्ण रीति से सहायता करती थीं। अर्थात् उनके पुण्यजनक सुन्दर कामोंको देखकर सरकारने १० अगस्त सन् १८७२ में उन्हें महारानी की पदवी प्रदान की और १३ अक्टूबर को

कासिम बाज़ार राजबाड़ी में दरबार करके ई. डब्ल. मोलोनी साहब कमिश्नर राजशाही ने अपने हाथ से सनद दी। सरकार ने इन श्रीमती के दिव्य गुणों की प्रतिष्ठा यहां ही तक नहीं की, वरन् १२ मार्च सन् १८७५ को साधारण नियमों के विरुद्ध महारानी को लिखा कि जिस कुटुम्बीय पुत्र को आप गोद लेंगी वह महाराज कहा जायगा। अपनी परमोदारता में वह इँगलेंड देश की मिस बरडिट कोव्टस् के समान कही जाती हैं। सन् १८७० के अकाल पीड़तों की सहायता करने पर सरकार ने उनकी यह प्रतिष्ठा की। जनवरी सन् १८७८ में (Crown of India) भारतवर्ष की मुकुट पदवी से भूषित करने के लिये बङ्गाल देश में यही योग्य चुनी गईं। पीकाक साहब कमिश्नर ने क़ासिम बाज़ार में दरबार करके राजराजेश्वरी का आज्ञापत्र और तमग़ा महारानी को दिया।

❋ वर्त्तमान समय की देवियां ❋

माईपार्वती—यह जैनमत की आचार्या हैं। जिनकी विद्या, आचार व्यवहार ऐसा है जिससे सब ही को उन्हें प्रणाम करना चाहिये। यह बालब्रह्मचारिणी देवी ऐसे उत्तम व्याख्यान देती हैं कि भारतवर्ष में ऐसे व्याख्यान देनेवाले दो ही चार पुरुष हों तो हों। इससमय इनकी अवस्था ४५ वर्ष की होगी परन्तु मुखड़े पर तेज, आंखों में प्रकाश, वाणी में रस झलकता है, यह उनके बालब्रह्मचारिणी होने का कारण है।

श्रीमती हरदेवी—यह स्वर्गवासी राय कन्हैयालाल की पुत्री तथा ला० रोशनलाल बैरिष्टर की धर्मपत्नी हैं, जिन्होंने योरुप देश की यात्रा भी की है। मातृभाषा की पण्डिता होने के अतिरिक्त अंग्रेज़ी उर्दू भी जानती हैं। इन्होंने बहुतसी पुस्तकें रची हैं। भारतभगिनी मासिक पत्रिका नौ वर्ष आप के ही उद्योग से प्रकाशित हुई थी, जिस से इस देशवासिनी भगिनियों को बहुत लाभ पहुंचता रहा, तथा इनका स्त्रियों में विद्या फैलाने का उद्योग तो जगत्में विख्यातहीहै।

माता काहनदेवी—यह लाला देवराज की माता हैं, इनमें धर्मभाव, सहनशीलता, सत्यव्रता, मधुरवाणी और गृहस्थी को मर्यादा पूर्वक चलाने इत्यादि के ऐसे गुण हैं जिनकी सबही प्रशंसा करते हैं। कन्यामहाविद्यालय जालन्धरमें जो कुछ उन्नति होरहीहै उसका विशेष कारण इन्हीं का उत्साह है। आश्रमवासिनी कन्याओं से आप पुत्रीवत् प्रेम रखती हैं जहां

कोई बीमार हुई माता जी वहां पहुंच तुरन्त उसकी रक्षा सब प्रकार से करने में लग जाती हैं।

श्रीमती परमेश्वरी देवी—यह रोपड़ आर्यसमाज के मन्त्री लाला सोमनाथ जी की सत्यवादिनी धर्मप्रिया सुशीला पत्नी हैं, जो चुपचाप अपने उत्तम आचारों से देश का उपकार कर रही हैं। आपका वैदिकधर्म से सत्य प्रेम है। उत्सव के समय आप उत्तम २ भोजन बनवा कर आये हुए आर्यभाइयों की सेवा करती हैं।

महाराजा नाभा की कन्या—यह पुत्री ब्रह्मचारिणी बन विद्या पढ़रही है। महाराजा का विचार यथार्थ ब्रह्मचर्य आश्रम समाप्त होने पर गृहस्थाश्रम में ले जाने का है। धन्य है!

रामप्रिय विलास—यह प्रतापगढ़ाधीश की बड़ी रानी जिनका नाम रघुराजकुमारी है, जो रामप्रिय के नाम से प्रसिद्ध हैं, इनका जैसा नाम है वैसेही गुण हैं और अन्य गुणों के साथ विद्यारूपी गुण अद्भुत है। प्राचीन काल में मीराबाई, चन्द्रमुखी, प्रेममुखी इत्यादि कन्यायें भक्तिपक्ष में भाषा में कविता कर यश लूट गई हैं और वर्त्तमान समय में बूंदी की चन्द्रकला तथा रीवां की राजकुमारी की छटा फहरा रही है। परन्तु तिस पर भी हमको रानी रामप्रिया की भक्तिरस भरी हिन्दी कविता देख बड़ा ही आनन्द आता है।

श्रीमती माई भगवतीजी—यह हरियाना नगर के कुलीन और प्रसिद्ध नगर में पैदा हुई हैं। इनका सारा समय परमेश्वर की भक्ति, परोपकार और स्त्रियों को सुशिक्षा देने में व्यतीत होता है। इनकी सहनशीलता, गम्भीरता अनुपम है। श्रीमती माईजी आर्यधर्म के सिद्धान्त को केवल जानती ही नहीं, किन्तु पालन भी करती और नित्यकर्म में तत्पर है। इनके बनाये हुए भजन सदैव केलिये जीवित रहेंगे। यह भजन भिन्न भावों से भरे हुए संस्कारोंपर गाने योग्य बड़े मीठे और बड़े सुन्दर हैं। माईजी ने देशाटन करके स्त्री जाति के उद्धारार्थ बहुत से व्याख्यान भी दिये हैं। हरियाना में अपने खर्च से कन्या पाठशाला चलाई थी और इस पाठशाला केलिये अपने ही खर्च से मकान भी बनवा दिया है। श्रीमतीजी ने अपना सब पदार्थ पाठशाला के अर्पणकर दिया है और जालंधर कन्या

महाविद्यालय के साथ उनको बड़ा प्रेम था, उनकी इच्छा थी कि आयु पर्यन्त विद्यालय की सेवा करें। इन सबके उपरान्त नूरजहां, महारानी विक्टोरिया क़ैसरहिन्द, लेडी डफरन, बेगम भूपाल जिनकी विद्या और योग्यता के यश चहुंओर फैल रहे हैं, और अब इस देश में भी थोड़े काल से पुत्रीशिक्षाकी चर्चा होरही है। देखिये उपरोक्त स्त्रियां के उपरान्त जानकीबाई जो संस्कृत में व्याकरणादि में पूर्ण योग्यता रखती थीं। श्रीमती हेमन्त कुमारीजो प्रसिद्ध पं० नवीनचन्द्रराय की दुहिता और सुगृहिणी की सम्पादिका थीं, चन्द्रकलाबाई जिसने समस्यापूर्तिका कई बार पारितोषिक पाया। श्रीमती भाग्यवती देवी जो वनिताहितैषी की सम्पादिका थीं और प्रेमदेवी जिन्होंने डाक्टरी में पास किया है। श्रीमती जगन्नाथ आपने एफ. आर. सी. पी. ई. की उपाधि प्राप्त की है। और सन् १८८९ में जो बम्बई में जातिसभा हुई थी, उसमें श्रीमती कादम्बिनी गांगोली बी. ए. और श्रीमती त्रयम्बक कनोरत्न प्रतिनिधि बनकर गई थीं। इसके अतिरिक्त रुपानियां की रानी एक प्रख्यात लेखिका हैं। पुर्तगाल की रानी एम० डी० पास हैं और चिकित्साविद्या में बड़ा निपुणता रखती हैं। इङ्गलैंण्ड के महाराजाकी रानी प्रसिद्ध गायिका हैं, जिन्हांने संगीतमें डाक्टर की उपाधि पाई है और श्याम देश के राजा के यहां बहुधा स्त्रियां सिपाही का काम करती हैं। इसके उपरान्त इँगलैण्ड देश में बहुधा स्त्रियां एम० ए० और बी०ए० हैं, जो पुरुषों के समान कार्य करती हैं। जैसे मेडम ब्लेवेट्स्की मिस एनीबीसेन्ट, मिस्ट्रस ए०पी० स्नैट इत्यादि। अमरीका और जापान में बहुत सी स्त्रियां डाक्टरी आदि पदवियों पर काम करती हैं और पुरुषों की भांति वेतन पाती हैं।

सच तो यह है कि प्राचीन काल में जब कि पुरुषों के समान स्त्रियों का अधिकार था, उस समय में स्त्रियाँ सब गुणों में निपुण होती थीं और उन्हीं गुणों में से विशेष गुणों के कारण उनके नाम भी अबतक प्रसिद्ध चले आते हैं। जैसा धन संचय करनेके कारण लक्ष्मी, विद्योपार्जन से देवी या सरस्वती और गृह दक्षता में चतुर होने से गृहलक्षिणी इत्यादि कहलाती थीं। परन्तु अब वर्त्तमान में स्त्री-शिक्षा के न होने से सौंदर्य्य, शील, लज्जा, धर्म, स्वच्छता, साधुता, सहनशीलता, मधुरभाषण, पतिसेवा, पतिप्रेम यह सब जातेरहे। लक्ष्मी और देवी उनका नाम ही न रहा। सन्तान भी गुणरहित

उत्पन्न होनेलगी। शान्ति स्वप्न में भी दिखाई नहीं देती। आदर सत्कार गौरव मान यह सब भूल गई। इस पुरुष के जोड़े स्त्री का जो घर का आधार है अर्थात् विना स्त्री के घरही नहीं होता और घर विना सुयोग्य स्त्री के स्वर्ग नहीं बन सकता, इसी हेतु समानाधिकार जान बुद्धि से विचार वेद की आज्ञानुसार पुत्री-शिक्षा का यथावत् प्रबन्ध कराइये जब ही देश का सौभाग्य और अभ्युदय होगा।

प्रिय सज्जन पुरुषो! वर्त्तमान समय में प्रत्येक गृह में (१) संचय (२) आयव्यय का हिसाब (३) गृहकार्यों में दक्ष होना, (४) स्वच्छता (५) गर्भाधान (६) शिशुपालन (७) पति आदि की सेवा करना (८) शिशु शिक्षा (९) एकता का बीज बोना (१०) नम्रतापूर्वक प्रिय भाषण करना (११) आपत्ति के समय में धीरज धर प्रबन्ध करना इत्यादि जो कार्य करने पड़ते हैं क्या वे यथावत् होते हैं? क्या मूर्ख स्त्रियां प्राचीन रीत्यनुसार किसी कार्य को कर सकती हैं? कदापि नहीं।

देखिये (१) संचय की तो यह दशा है कि फूटी कौड़ी पास न निकलेगी, यदि मियां दस पैदा करके दें तो बीबी बारह में आग लगादेती हैं, सो भी निकम्मे तथा निठल्ले कार्यों में। (२) आयव्यय का हिसाब किताब कौन करे जब उनको दसतक की गिनती ही नहीं आती, अक्षरका स्वरूप ही नहीं जानतीं। (३) गृह कार्यों में चातुर्य होना यह तो भली भाँति प्रकट है कि न तो वह पाक विद्या को जानती हैं न शिल्प को, भोजनोंकी कुदशा के कारण नित्य प्रति गृह में रोग ही बने रहते हैं, निर्बलता ही दृष्टि आती है, क्योंकि वह पथ्याऽपथ्य को नहीं जानतीं, न व्यञ्जनों के बनाने की रीतों से भली भांति जानकार होती हैं। (४) स्वच्छता—वह इस जीवनमूल पदार्थ से तो अत्यन्त ही अज्ञान हैं। इस विषय में तो उनको कुछ भी नहीं आता, क्योंकि शरीर की आरोग्यता बिना स्वच्छता के नहीं होसकती। वह सदा मैले कुचैले रहना, मलिन कपड़े पहिनना भला जानती हैं, हां सोने चांदी के आभूषणों का लादनाही इनको आता है। (५) गर्भाधानके विधान की वह कुछ पर्वाह नहीं करतीं, परन्तु इन असमयकी घटनाओं का फल यह होता है कि अल्पकाल में ही दोनों हाड़की माला बनजाते हैं तथा आयु और बल की समाप्ति होजाती है। इसके उपरान्त लाखों गर्भपात होते हैं, सैंकड़ों स्त्री पुरुष सन्तान के अर्थ शिर ठोकते रहजाते हैं, यदि सन्तान होने के

उपाय कियेजाते हैं तो यह कि धुना, जुलाहे, कोरी, माली, धीमर, काछी आदि मूर्ख भूत, भैरव, मियां शेखसद्दो को पुजवाते, उतारे उतरवाते, गंडा तावीज़ करते, गोली चूरण खिलाते हैं कि जिनके कारण उनके रोग असाध्य होजाते हैं। फिर बहुधा स्त्रियाँ पुत्रादि कामना के अर्थ हट्टे कट्टे सण्डे मुसण्डे नामके साधू वैरागियों के पास जो गांवोंके समीप मढ़ी बनाकर रहते हैं, दर्शनोंके बहाने आती जाती हैं, फिर उनसे व्यभिचार भी कराती हैं कि जिससे और भी अपयश होता अर्थात् दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। (६) शिशुपालन प्रथम तो गर्भाधान ही ने उनको सर्व सुख देरक्खे हैं कि जिसके कारण न बल रहता न उत्साह, तिस पर बुढ़ापे की लकड़ी, नेत्रों का प्रकाश, घर के दीपक सैंकड़ों बुझजाते हैं। इसका कारण अज्ञानता वा असावधानी है, क्योंकि उनको दूध आदि खिलाने पिलाने नहलाने का कुछ भी ज्ञान नहीं होता, वरन् आपभी बिना विचारे भोजनादि करती रहती हैं, कि जिससे बच्चों को अफरा, जमोघा, सूखा आदि रोग होजाते हैं, अन्त को वह यमपुर चलेजाते हैं। इन सबके उपरान्त टीका लगवाने से उनको महा चिढ़ है, जिससे बहुधा बच्चे (मोतीझाड़े की बीमारी) के भेट होजाते हैं। फिर माता पिता का इस दुःख में भी शिर हिलने लगता है, इन असावधानियों के कारण स्त्रियों को बुख़ार, प्रसूत आदि ऐसे रोग होजाते हैं कि जिनके कारण जन्मभर रोती रहती हैं, वैद्य की दवा करानेमें तो पत्थर पड़ते हैं पर गण्डा तावीज़ के अर्थ चुपचाप धन लुटाती रहती हैं। सच तो यह है कि जो बालक इन विपत्तियों से बचभी जाते हैं उनके बल न्यून होजाते हैं। क्योंकि प्रथम तो बीजही निर्बल होता है, तिसपर न्यून अवस्थाही से विवाहरूपी बेड़ी डाल दी जाती है। (७) पति आदि की सेवा की यह दशा है कि जहां बहूजी ने हाथ सँभाला, पति के कान भरने शुरू किये, आप भी सास ससुर, देवर, जिठानी आदि से तनिक तनिक बात पर ऐसा झुंझलाती हैं कि मानों किसी को कारूं का ख़ज़ाना देदिया है, वा भूमण्डल का राज्य इन्हीं के आधीन है, वा यह सब इनकी ज़र ख़रीद हैं, नित्य प्रति देवासुर संग्राम मचा रहता है, परस्पर ताली बजा बजा कर ऐसी लड़तीं कि खाना हराम करदेती हैं, अन्त को एक चूल्हे के दो कराकर भी प्रीतमप्यारे से प्रसन्न नहीं होतीं, वरन् माता पिता भाई इत्यादि के साथ ऐसी शत्रुता करादेती है कि एक दूसरे का मुंह तक भी देखना पसन्द नहीं करता। (८) शिशु शिक्षा का क्या कहना है, उनको तो विद्यादि कुछ आती ही

नहीं जो वह शिक्षा दें हां नाना भांतिके अवगुणों के (हउआ, लूलू) अंकुर उन बालकोंके हृदयमें जमा देती है कि जिनसे वह डरपोक आदि दुर्गुणों से युक्त हो जीवन पर्य्यन्त बड़ी २ हानियां उठाते हैं। (९) एकताका बीज-वाहजी वाह जहां सब कार्य फूटसे ही हों वहां एकताका क्या काम ? बहुधा स्त्रियां अपने सुयोग्य पति की जो उनकी सबप्रकार से सुध लेता है किञ्चित् बात पर पगड़ी उतारने को तत्पर होजाती हैं तथा ऐसे कटु वचन सुनाती हैं कि जिनसे उसको सात पीढ़ी तक की याद आती है। शरीर क्रोध में भस्म होजाता है, जब एक गृह में एकता नहीं रहती फिर भला अन्यत्र एकता क्योंकर रहेगी। (१०) नम्रता पूर्वक प्रिय भाषण करना-अजी साहब, इस रोग ने तो भारत का और भी नाश कर दिया, क्योंकि नम्रता का तो नाम ही नहीं जानती अपनी अपनी ऐंठ में डेढ़ चावल की जुदी ही खिचड़ी पकाते हैं, कोई किसी को नहीं गिनता। घर में बहू जी को अपना ही घमण्ड है, सास जिठानी अपने अपने नशे में चूर सब ऊट पटांग ही हांकती रहती हैं। (११) आपत्ति के समय धीरज धरना-क्या खूब, जब आराम तथा सुख से ही गृहरूपी राज्य का प्रबन्ध नहीं कर सकतीं तो भला आपत्ति में उनका क्या ठीक। यहां तो तनक तनकसी बातों पर बुद्धिमारी जाती है, हका बका होकर सारे दिन रोती हैं, सब अड़ोसी पड़ोसी तथा सम्बन्धी उसके हितू बन अपना अपना मतलब बनाते हैं।

इन सब के उपरान्त जब कभी पति आदि परदेश चले जाते हैं, तब वह घूँघटवाली स्त्रियां चिट्ठी पढ़ाने के अर्थ अन्य पुरुषों को बुलातीं या उनके पास आप जाती हैं तो सम्पूर्ण भेद खुल जाते हैं, तिस पर भी बहुधा बातें लज्जा के कारण लिखने से रहजाती हैं और इसके अतिरिक्त ऐसी स्त्रियों के फिर और भी गुल खिलते हैं जिनके तमाशे हम तुम देखते हैं। भला बताओ तो सही, मेले आदि में यह मूर्खा स्त्रियां क्या क्या लीलाएं रचतीं तथा आभूषणों के अर्थ गृहोंमें किस प्रकार दुन्द मचातीं कि पृथिवी को उठा लेती हैं। चाहे एक आने रुपये का सूद दो, चोरी आदि कैसा ही दूषित कर्म करो, परन्तु उनको छम छम अवश्य ही कराओ, चाहे रोटी मिले या न मिले, परन्तु उनके वस्त्र क़ीमती हों।

इसके उपरान्त मूर्खा होने के कारण विधवाओं की दशा कैसी शोचनीय हो रही है कि जिसके कहनेमें लाज आती है। इन सब बातोंके अतिरिक्त हम लोगों में मुसलमानों का कोई पानी नहीं पीता, परन्तु जब कभी बच्चे बीमार हो जाते या गर्भिणी स्त्री को किसी प्रकार की बाधा हो जाती है तो उसी समय गृह की स्त्रियां उन रोगोंकी औषधियां नहीं करतीं वरन् थोड़ा पानी मसजिद में भेज मुल्ला से पढ़वाकर मंगवाती हैं, तथा जूठा पानी पीती और पिलाती हैं। २-जीवहिंसा करना हम सब के यहां महा पाप माना गया है, परन्तु वह स्त्रियां कालीदेवी पर बकरा, मसानी पर घेंटा, मीरा पर कलेजी तथा होली दिवाली की रात को अनेक कौतुक करती हैं, क्या यह महापाप की बात नहीं है। ३-बालकों के बुरे नाम रक्खे जाते हैं जिससे बड़े होने पर उनको लाज आने के कारण नाम पलटने पड़ते हैं। बालकों में झूठ बोलने की बान डालने वाली भी स्त्रियां ही हैं, क्योंकि वह उनको सिखलाने के समय कहतीं कि लल्ला चीजी कौआ ले गयो, या यों कहतीं कि-लेजारे कौआ! लेजारी चिड़िया लेजा! ऐसा कहकर चीज़ को छिपा देतीं फिर देजारे कौआ देजा, ऐसा कहकर वस्तु को दिखलाती हैं।

मान्यवरो! ऐसे ही वार्त्तालाप से तरुणाई में भी मिथ्या बोलने को बुरा नहीं समझते। इन्हींके कारणों से माता की बातका विश्वास नहीं रहता।

४-जो प्रतिदिन गृह के भीतर रहकर लज्जावती कहलातीं, वही विवाह आदि में मन खोलकर सब के सम्मुख अच्छे प्रकार अपशब्दों सहित सीठनों को गा अपने को कृतार्थ मानती हैं। ६-बहुधा रीतें ऐसी प्रचलित करदी गई हैं कि जिनसे सभ्य मण्डली के सम्मुख लज्जा आती है यथा चाक, कुआ, चौराहा, धुरा, बांबी, बरगद, कबर, कूकर आदि पूजना, मियां मदार की ज़ारत को जाना, शेख़सद्दो पर चादर चढ़ाना।

यदि आप प्राचीन काल की भांति श्रीकृष्ण से योगीराज, व्यास से उपदेशक, युधिष्ठिर से सत्यवादी, भीष्मपितामह से जितेन्द्रिय, द्रोणाचार्य

से गुरु, कर्ण से दानी, विदुर से विचारशील, रामचन्द्र से आज्ञाकारी, भास्कराचार्य से गणितज्ञ, अर्जुन, भीम से योधा, लक्ष्मण भरतसे भाई इत्यादि धार्मिक गुणों से परिपूर्ण सन्तान उत्पन्न करना चाहते हो तो महाशयो! कुन्ती, अनुसूइया, गार्गी, मन्दालसा कौशिल्या, देवहूती, शिवा, सुलभा सत्यरूपा आदि की भांति स्त्रियों को वेदादि सत्य विद्याओं से भूषित करो, क्योंकि देव तथा देवियों के ही समागम से देवी देवता उत्पन्न होसकते हैं) अन्यथा देव और राक्षस तथा राक्षस देवी के संयोग से कभी पूर्ण सुयोग्य सन्तान उत्पन्न नहीं हो सकती। प्राचीन काल में स्त्री-शिक्षा के प्रभाव से आनन्द रूपी अमृत की वर्षा होती थी, यही भूमि विद्वान् रूपी बहुमूल्य रत्नों को उगलती थी।

अयि! देश के सुधारने वालो! हे सन्तान पर दया करने वालो! हे देवताओं के रक्त से उत्पन्न होने वालो! हे ऋषि सन्तानो! स्त्रीशिक्षा के न होने से नाना प्रकार के दुःखरूपी तप्तकुण्ड में पड़े हुए भुनरहे हो। आओ, इस भारतरूपी डूबती नैय्या को स्त्री-शिक्षारूपी बल्ली से पार कर, भारत जननी के दुखड़ों को मेट यश के पात्र बनिये। प्यारे सज्जनों! अब मैं इस विषय को समाप्त करता हूं परन्तु इतनी और प्रार्थना है कि इनकी शिक्षा विदुषी स्त्रियों से ही कराइये जिससे विद्या की वृद्धि हो। जैसा य० अ० २० मं० ८५ में कहा है—

चोदयत्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञंदधेसरस्वती।

वैसेही ऋग्वेद अ० २ अ० ३ व० २२ मंत्र १ अ० २२ सू० १६ में कहा है कि जो स्त्री समस्त सांगोपांग वेदों को पढ़ के पढ़ाती है, वही सबकी उन्नति करती है। इस लिये कृपा करके शीघ्र पुरुषों से शिक्षा कराने की प्रणाली को भारत से उठा दीजिये और पाठशाला का स्थान जनसमुदाय से पृथक् और उसकी दीवारें इतनी ऊँची हों कि कोई जन उचक कर भी न देख सके और पड़ोस में वेश्या का वास तथा नगर से बहुत मिलान न हो और स्थान रमणीक, पवित्र, शुद्ध जल वायू वाला हो। इस विषय में मनु जी ने अ० ४ श्लोक १०७,

१०८ में लिखा है कि धर्म्म की अतिशय इच्छावालों को नगर, ग्राम, दुर्गन्धित युक्त स्थान, पर न पढ़ें। जहां मुर्दे पड़े हों अथवा गड़ते हों ऐसे भूमि में और पापी कपटी के समीप होते हुए तथा भीड़ भार में अनध्याय अर्थात् पठन पाठन न करना चाहिये ॥

नित्यानध्याय एवस्याद् ग्रामेषु नगरेषु च। धर्मणैः पुण्यकामानां पूतिगन्धे च सर्वदा ॥ अन्तर्गतशवे ग्रामे वृषलस्य च सन्निधौ। अनध्यायो रुद्यमाने समवाये जनस्य च ॥

औशनस्मृति में कहा है कि पवित्र वा एकान्त जगह में ब्रह्मचर्य रख कर पढ़ें, परन्तु पुत्रियां ब्रह्मचर्याश्रम में भिक्षा न मांगें, उनके घर वाले भोजनादि का स्वयं प्रबन्ध कर देवें, हां उनको ब्रह्मचर्य से अवश्य रहना चाहिये यथा (अधीप तशुचौदेशे ब्रह्मचारी समाहितः। अ० ३)

प्यारे मित्रो और सुयोग्य बहिनो ! पुत्री-शिक्षा का प्रबन्ध कर गृहस्थी के कार्यों से थोड़ा २ समय निकाल कर यदि आप भी विद्या का अभ्यास करने लगें तो बड़ा ही आनन्द हो और तुम्हारी सन्तानें भी तुमको देखकर विद्या पढ़ने में अधिक परिश्रम करने लगें और तुम स्वयं भी उनके पढ़ने लिखने की परीक्षा कर सको जैसाकि इँगलैंडीय स्त्रियां सन्तानों के पढ़ाने में कररही हैं। परन्तु शोक है कि हमारे देश को अनपढ़ स्त्रियाँ यह कह कर कि कहीं बूढ़े तोते भी पढ़ते हैं पृथक् हो जाती हैं यदि वह विद्यावती होतीतो कदापि ऐसा न कहतीं। जयदेव की स्त्री पद्मावती ने व्याह के पश्चात् काव्य पढ़ा था। अहिल्याबाई ने ३० वर्ष के उपरान्त विद्या पढ़ राज काज का भार लिया था। लोलिम्बराज वैद्य की स्त्री रत्नकला ने युवा अवस्था में काव्य और वैद्यक पढ़ा था। इसलिये तुम भी इस संसार में धर्म और अधर्म जानने के लिये विद्या को पढ़ो और फिर सदा धर्मात्मा बन विद्या दान में रत हो। जैसा किसी कवि ने कहा है--

धर्माधर्मौ न जानाति लोकोयं विद्यया विना।
तस्मात्सदैव धर्मात्मा विद्यादान रतो भवेत् ॥

विवाह

विवाह अर्थात् शादी

प्यारे सुजनों ! इस समय हमारे देश में बुखार, चेचक, हैजादि रोगों की बहुतायत है कि जिनसे भारत की कुदशा होरही है, तिस पर भी एक अन्य महान् रोग फैला हुआ है कि जिसमूजी के फन्दे से कोई भारतवासी छुटकारा नहीं पाता। जहां वह रोग सिर पर चढ़ा फिर थोड़े ही दिनों में ऐसा थोथा करदेता है जिस प्रकार सत निकाल लेने पर गेहूं निकम्मा हो जाता है। विचर शक्ति नाम को नहीं रहती, उत्साह तथा साहस के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, सच पूछो तो जैसे बुखार के रहने से तिल्ली आदि बीमारियां होजाती हैं उससे भी अधिक इस रोग के होनेसे प्रमेह, अफरा, दमा, खांसी आदि रोग उत्पन्न होकर शरीर की चमक दमक नष्ट होजाती है। यह आलसी और क्रोधी बनाकर बुद्धि भ्रष्ट करदेता है, मानों इसी असाध्य रोग ने भारत के चारों कोने चौपट कर उसे सभ्य से असभ्य, राजा से फ़क़ीर, दीर्घायु से अल्पायु बना दिया। भाइयो, कहां तक गिनावें सब प्रकार के सुख तथा वैभव को इसने छीन लिया।

बहुधा हमारे पाठकगण इस बात को सुनकर अपने मनमें विचार करने लगे होंगे कि यह महान् रोग कौन बला है, अथवा वे उसका नाम सुनने के लिये विकल होंगे। हे सज्जनों ! इस महान् रोग को तो सब जानते हैं क्योंकि प्रति दिन आप ही के घरों में उसका निवास है। कौन ऐसा भारतवर्षीय जन है जो वर्त्तमान् समय में उससे न सताया गया हो, किसने उसके पापड़ों को न बेला हो, कौन उसके दुःखों से घायल होकर न तड़पता हो। यह वह मीठी मार है कि जिसके लगते ही अपने आप सर्व सुखों की पूर्ण आहुति दे मियां मिट्ठू बन जाते हैं। इसी का नाम जादू है। क्योंकि कहा है—

क्या लुत्फ़ जो ग़ैर परदा खोले। जादू वही जो सिरपै चढ़के बोले॥

इसपर भी तुर्रा यह है कि जब यह बीमारी जिस गृह में प्रवेश करती है तो दो तीन चार छः मास से अपनी आमद की ख़बर सुनाती है, जब निकट दिन आते हैं तब सब गृह को पूर्णरूप से स्वच्छ कराती, कपड़े लत्ते

सुथरे पहनाती है, गृहमें मंगलाचरण होते हैं, इधर उधरसे भाईबन्धु आते हैं। जिस रातको उस महारोग की आमद होती है सम्पूर्ण नगर में कोलाहल मच जाता है और उस गृह में तो वह उछाह होता है कि जिसका पारावार नहीं, दर्वाज़ों पर नौबत भड़ती, रण्डियां नाच नाच कर मुबारकबादें देतीं, धूल गोले चलते तथा पण्डित जन मन्त्र उच्चारण करते हैं फिर सब मिल कर उस महारोग को कि जिसके सिर 'मोर' होता है चपेट देते हैं। प्रातः होते ही सब स्थानों में मनादी हो जाती है।

अब तो यह महान् रोग प्रत्यक्ष प्रकट होगया। कहिये किस धूमधाम से आता, क्या क्या खेल खिलाता, कैसे कैसे नाच नचाता, सबको बेहोश कर देता है। सच पूछो तो इस रोग का ऐसे गाजे बाजे से दख़ल होता है कि जिस में किसी प्रकार की रोक टोक नहीं होती, वरन् सब मिलकर आप उस महारोग को बुलाते हैं कि जिसका नाम "न्यून अवस्था का विवाह" है।

अब ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि जो जो हानियें भारतवर्ष में हुईं उनका मूल कारण यही बाल्यावस्था का विवाह है। इसलिये अब हम वेदादि सत्य शास्त्रों के प्रमाणों से सृष्टिक्रम और प्रचलित रीतों से अच्छे प्रकार सिद्ध कर दिखाते हैं कि विवाह का समय क्या था और वह किस प्रयोजन के लिये किया जाता था? मान्यवरो! जब हम प्राचीन ग्रन्थों पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्ट प्रकट होता है कि विवाह का मुख्य प्रयोजन सन्तान उत्पन्न करना है। जैसा कि अथर्व का० ५ अनु० ५ वा २५ और मनुस्मृति अ० ८ श्लोक ९६ में लिखा है—

प्रजायत्वानयमसि॥ अथर्व०। प्रजानार्थंस्त्रियासृष्टाः। मनु०।

इसलिये मनुष्यों को अपनी संतानों का विवाह उस समय करना अभीष्ट है जब कि वह उसके योग्य हों। इसके उपरान्त चरक में १६ वर्ष की स्त्री के साथ समागम करने की आज्ञा है अर्थात् यही समय विवाह करने का है और इससे प्रथम यह महात्मा 'विषय, करने की आज्ञा ही नहीं देते और यह शिक्षा करते हैं कि जो स्त्री पुरुष इससे न्यून अवस्था में समागम करते हैं उनका प्रथम तो गर्भ ही नहीं रहता, यदि रहा भी तो पूरे दिनों तक नहीं ठहरता अर्थात् गर्भपात होजाता है, कदाचित् ठहर भी गया तो होने पर

मृत्यु के मुंह में जाता है, यदि मृत्यु से बच भी गया तो दुर्बल इन्द्रिय हो अल्पायु में परमधाम को चला जाता है। जैसा कि—

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पंचविंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान्गर्भं कुक्षिस्थः सविपद्यते ॥
जातो वा न चिरंजीवेज्जीवेदवा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

ऋग्वेद मं० ३ सू० ८ मं० ४ में लिखा है—

युवा सुवासाः परिवीति आगात्स उश्रेयान्भवति जायमानः ॥
तं धीरास कवयो उन्नयति स्वाध्यो ३ मनसा देवयन्तः ॥

जो मनुष्य तरुण होकर विद्याध्ययन कर अच्छे प्रकार सुन्दर आचरणों पर चलकर विवाह करता है वह विद्वान् तथा महात्मा पुरुषों में पूजनीय होता है। ऋग्वेद मं० ३ सू० ५५ में लिखा है—

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः शवर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः ।
नव्या नव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥

अर्थात् तरुण पुत्री पूर्ण विदुषी होकर सुन्दर विद्यावाले जवान पुरुष से विवाह करे, अन्यथा न्यून आयु में कदापि पुरुष का ध्यान न करे। और ऋग्वेद मं० १ सू० १७९ में लिखा है—

तुर्वीरहं शरदाः शश्रमाणा दोषावस्तोरुषसो जरयन्ती ।
मिनातिश्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः ॥

अर्थात् तरुण पुत्रको तरुण पुत्री के साथ विवाह करने से सुसन्तान उत्पन्न होती और दोनों पूर्ण आयु को पहुंचते हैं, इसलिये मनुष्यों को ऐसा ही करना चाहिये। मनुजी महाराज ने अ० ३ श्लोक २ में लिखा है कि जिस मनुष्य ने विधिपूर्वक तीनों वेद अथवा दो वेद वा एक वेद पढ़ लिया है और ब्रह्मचर्य नियम खण्डित नहीं किया उसको योग्य है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।

अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥

और अध्याय ३ श्लोक ४ में लिखा है कि शिष्य को उचित है कि गुरु से आज्ञा लेकर स्नान और विधिपूर्वक समावर्त्तन व्रतको पूर्ण कर उसके उपरांत अपने वर्ण की स्त्री से जिसके लक्षण अच्छे हों विवाह करे। यथा—

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधिः।
उद्वहेतद्विजोभार्या सवर्णा लक्षणान्विताम् ॥

ऐसा ही याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १ श्लोक ११ में लिखा है—

गुरुवेतु वरं दत्वा स्नायीय तदनुज्ञया।
वेदं व्रतानि वापारं नीत्वा ह्युभयमेव वा ॥

विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक २५ में, संवर्त्तस्मृति अ० १ श्लोक ३४, शंखस्मृति अ० ३ श्लोक १५, व्यासस्मृति अ० १ श्लोक ४२, दक्षस्मृति अ० १ श्लोक ६-७ और हारीतस्मृति अ० १ श्लोक १२, मार्कंडेयपुराण अ० २८ श्लोक १४-१५, देवीभागवत स्कन्द १ अ० १८ श्लोक १६ में भी उपरोक्त आज्ञा है। पद्मपुराण ३ स्वर्ग ६ खण्ड अध्याय १६ श्लोक १५१ में लिखा है कि प्रथम ब्रह्मचर्य आश्रम को पालन कर, विवाह कर सन्तान उत्पन्न करे। ऐसा ही य० अ० १२ मन्त्र ५४ में कहा है कि माता पिता आचार्य सन्तानों को धर्मयुक्त शिक्षा दें जिससे सन्तान बुरे व्यसनों को त्याग समावर्त्तन संस्कार के पीछे स्वयम्वर में विवाह कर पुरुषार्थ के साथ आनन्द भोगें।

लोकं पृण छिद्रं पृणाथो सीद ध्रुवा त्वम्।
इन्द्राग्नी त्वा वृहस्पतिरस्मिन योनावसीषदन् ॥

प्रिय सज्जन पुरुषों! शास्त्रानुकूल समावर्त्तन का अधिक समय ४८ वर्ष और न्यून से न्यून २५ वर्ष का है। जैसा आपस्तम्ब धर्मशास्त्र प्र० २ पं० ११ खं० ३० में लिखा है।

तथा व्रतेनाष्टचत्वाशत् परिमाणिणेन।

छान्दोग्योपनिषद्द में लिखा है कि ब्रह्मचर्य्य तीन प्रकार का होताहै। पहिला यह है कि जो अपने वीर्य को २४ वर्ष तक स्खलित नहीं होनेदेते, उनके शरीर में प्राण बलवान् होकर शुभगुणों के वास करानेवाले होते हैं उसी को कनिष्ट ब्रह्मचर्य कहते हैं। दूसरा ३६ वर्ष तक जो अपने वीर्य्य को गिराने नहीं देता उसके प्राण इन्द्रियां अन्तःकरण और आत्मा बलयुक्त होकर श्रेष्ठ होजाते हैं, उसको मध्यम ब्रह्मचर्य्य कहते हैं। तीसरा ४८ वर्ष तक जो अपने वीर्य्य को रोकता है उसके प्राण अनुकूल होकर सब विद्याओं को ग्रहण करते हैं उसको उत्तम ब्रह्मचर्य्य कहते हैं।

पाठकगणों! इन सब प्रमाणों से स्पष्ट प्रगट होगया कि न्यून ब्रह्मचर्यमें पुरुषकी आयु २५ वर्ष तथा स्त्री की १६ वर्ष नियत थी, ऐसेही मध्यम ३६ तथा उत्तम ४८ वर्ष यही विद्याध्ययन का समय नियतकिया गया था।

शरीर वा आत्मा बलिष्ट होजाने के पश्चात् विवाह का समय नियत किया गया था, अर्थात् समावर्त्तन के पश्चात् गुरुकुल से गुरु की आज्ञा ले विवाह होते थे। मान्यवरो! यदि आप अपनी सन्तानोंको सुखपूर्वक देखा चाहते हो तो सब से प्रथम वेदानुकूल ऋषियों की इस आज्ञा को प्रचलित कीजिये। यही आपके पुरुषों की सनातन रीति है, जिसके अनुसार प्राचीन काल में वेदानुसार तुल्य गुण कर्म स्वभाव से संयुक्त स्त्री पुरुष स्वयम्बर में विवाह कर आनन्द भोगते थे। जैसा कि य० अ०१५ मं० ८ में लिखाहै—

प्रतिपदसि प्रतिपदे त्वानुपदस्यनुपदे त्वा संपदसि सम्पदे त्वा तेजोऽसि तेजसेत्वा॥

महाभारत आदि पर्व अध्याय २२१ में श्रीकृष्ण महाराज ने बलभद्र जी से कहा है कि जो पुरुष अपनी कन्या का विवाह बिना उसकी इच्छा के करते हैं। वे कन्यादान नहीं करते वरन् अपनी कन्या को पशुवत् बेंचते हैं, वे वेद तथा सदाचार के विरुद्ध हैं। इस लिये उक्त योगीश्वर आज्ञा देते हैं कि विवाह स्वयम्बर की रीति से होना चाहिये। यथा—

प्रदानमपि कन्यायाः पशुवत्कोनुमन्यते।
विक्रियं चाप्यपत्यस्य कः कुर्य्यात् पुरुषोभुवि॥

और ऐसा ही मनुस्मृति अध्याय ९ श्लो० ९० में लिखा है—

त्रीणि वर्षाण्युदीक्षेत कुमार्यृतुमती सती ।
ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद्विन्देत सदृशम्पतिम् ॥

महाभारत अनुशासन पर्व अ० ४४ श्लो०१६, १७ में भी लिखा है—
तीन वर्ष तक ऋतुवती होने के पश्चात् कन्या वरकी इच्छा करे, तीन वर्ष उपरान्त अपने समान पति को प्राप्त होनेपर कन्या आप विवाह करे ।

देखो वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ११८ में—

पतिसंयोगसलभं वयो दृष्ट्वा तु मे पिता ।

अर्थात् सीता जी ने अत्रिऋषि की स्त्री अनुसुइया से कहा है कि पति के सहवास योग्य जब मेरी अवस्था हुई, उस समय राजा जनक ने यह प्रण कर स्वयम्बर रचा था कि जो कोई धनुष को तोड़ेगा उसके साथ सीता का विवाह होगा, जिसके लिये अनेक राजा महाराजा एकत्र हुए, परन्तु महाराजा रामचन्द्र ने धनुष को तोड़ा, मैंने जयमाला डाली, फिर रामचन्द्रजी के साथ वैदिक रीत्यनुसार विवाह हुआ । इसी प्रकार राजा द्रुपद ने अपनी पुत्री का विवाह मछली भेदने पर नियत किया था, जिस को अर्जुन ने भेद कर विवाह किया । राजा नल का दमयन्ती, अज का इन्दुमती के साथ स्वयंवर की रीति से विवाह हुआ था, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी ने पूर्ण अवस्था में अपनी इच्छा से राजा ययाति से विवाह किया था ।

देखिये महाभारत आदि पर्व अध्याय १२ में कुन्ती के स्वयंवर का वर्णन इस प्रकार से लिखा है कि उस रूपवती, पूर्ण युवा, समस्त गृहकार्यों और गुणों से युक्त कुन्ती से बहुत से राजा महाराजाओं ने विवाह करना पसन्द किया, परन्तु उस महारानी ने पाण्डु को उत्तम समझ स्वयं अपना पति स्वीकार किया । इसके अतिरिक्त अनेक दृष्टान्त महाभारत में पाये जाते हैं ।

अब आप स्वयं विचार करसकते हैं कि उस समय महारानी कुन्ती की क्या अवस्था होगी ? उन्होंने बड़े बड़े राजाओंका त्यागकर पाण्डुसे विवाह किया । श्रीमहाराणी सीताजी की क्या आयु होगी जब उन्होंने अनुसुइया से कहा कि मैं विवाह योग्य हुई ? रुक्मणी की क्या अवस्था थी जब कि उन्होंने श्रीकृष्ण महाराज को पत्र लिखा था ? अब स्पष्ट प्रकट हो गया

कि उस समय इन सबकी अवस्था युवा होगी और विद्या में भी योग्यता रखती होंगी, क्योंकि ऐसी परीक्षा विद्या के बिना नहीं हो सकती।

इसी भांति श्रीकृष्ण की फूफी गान्धारी जो महाराज धृतराष्ट्र की स्त्री थी, लोपामुद्रा जो अगस्त महर्षि की पत्नी थी, अरुन्धती जो बड़ी पतिव्रता श्रीमहर्षि वसिष्ठजी की पत्नी थी, मैत्रेयी, गार्गी आदि बड़ी बड़ी पंडिताओं के दृष्टान्तों से विदित होता है कि इनके विवाह पूर्ण अवस्था ही में हुए थे।

इसके अनन्तर विवाह होने से मनुष्य गृहस्थ होजाते हैं जिनको प्रत्येक प्रकार की वस्तुओं की आवश्यकता होती है, वह सब धन से प्राप्त होती हैं, धन विद्या आदि उत्तम गुणों से मिलता है, इसी कारण प्राचीन काल में विद्याध्ययन के पश्चात् विवाह होता था। स्मृतिकारों ने भी यही आज्ञा दी है कि प्रथम आयु के चौथाई भाग में गुरुकुल में रहकर विद्या पढ़े, दूसरे भाग में विवाह कर गृह बास करे। मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १ में लिखा है—

चतुर्थमायुषो भाग मुषित्वाद्यं गुरौद्विजः।
द्वितीयमायुषो भागे कृतदारो गृहे वसेत्॥

क्योंकि बिना विद्या और जितेन्द्रियता—पुरुषार्थ के गृहस्थाश्रमरूपी यज्ञ पूर्ण नहीं हो सकता, इसलिये य० अ० १२ मं० १८ में स्पष्ट कहा है कि ब्रह्मचर्य, उत्तम शिक्षा, विद्या, शरीर और आत्माके बल, आरोग्यता, पुरुषार्थ ऐश्वय, सज्जनों का संग, आलस्य का त्याग, यम नियम आदि सामग्रीको संचय कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना अभीष्ट है।

इसके अतिरिक्त वैद्यक पर ध्यान दीजिये जिसमें शरीर के आरोग्य रखने के नियम हैं। सुश्रुत शास्त्र अ० १० में स्पष्ट कहा है कि पच्चीस वर्ष के पुरुष का १६ वर्ष की कन्या से विवाह होना चाहिये, उनसे उत्पन्न हुई सन्तान ही माता पिताकी सेवा तथा धार्मिक काम करनेवाली होतीहै, यथा—

अथास्मै पञ्चविंशति वर्षाय षोडशवर्षां पत्नीमावहेत्।
पित्र्यधर्मार्थकामप्रजा माप्स्यतीति॥

चरक में लिखा है—

शुक्रन्तु क्षयते तस्य ततः प्राप्नोति संक्षयम्।
घोरां व्याधिमवाप्नोति मरणं वा समृच्छति॥

जिस मनुष्य का वीर्य नाश हो जाता है उसके शरीर का भी नाश हो जाता है, तथा वह घोर दुःखों में पड़ मृत्यु की इच्छा करता है।

यदि हम अन्य देशोंकी जातियों की ओर दृष्टि डालते ह तो वही अपने पुराने पुरुषों की रीति (जो वेद आदि सत्यशास्त्रों की है कि जिसको बुद्धि भी स्वीकार करती है) प्रचलित पाते हैं। देखलो भारत ही में मुसलमानों में तरुणाई पर शादी होती है, अङ्गरेज़ भी इसी प्रथा पर चलते हैं, जिसमें उनके डील डौल, गुण, विद्या, साहस आदि देखने में आते हैं। देखिये स्वर्गीया श्रीमती महारानी क़ैसरहिन्द ने १८ वर्ष तक यथावत् ब्रह्मचर्य सेवन किया जिससे श्रीमती की आकृति उत्तम, आंखें नीली, नाक स्वच्छ अत्यंत उत्तम, मुखड़े की छवि मोहिनी, दांत अच्छे सुन्दर साफ कि जिनके देखने से अरोग्यता वा स्वभाव की उत्तमता स्पष्टरूप से प्रकट होती थी। आपने फ़ारसी, जर्मनी, लेटिन आदि भाषायें सीखीं और गणित भूगोल के अनन्तर गान तथा शिल्पविद्या में भी आपको पूर्णयोग्यता थी। राज्यशासन वा प्रजापालन की रीतें अच्छे प्रकार जानती थीं। परमित व्यय तथा परमित व्यय करनेके हानि लाभों से खूब जानकार थीं, इन सब गुणों के अतिरिक्त उन के चित्त में दया, परोपकार, साहस, गम्भीरता, मधुर बचन आदि सभीगुण विद्यमान थे। श्रीमती ने श्रीयुत युवराज अलबर्ट को आप पसन्द कर विवाह किया था कि जो उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त वैद्यक, न्याय, मीमांसादि के पूरे विद्वान और अच्छे प्रकार देशाटन किये हुए श्रेष्ठ घराने के थे। ब्याह के समय श्रीयुत की आयु२५ वर्ष की थी, तब ही तो पति पत्नी में वह प्रेम रहा कि जिसका हम वर्णन नहीं कर सकते।

इसके उपरान्त आस्ट्रेलिया में १४ वर्ष का पुरुष और १२ वर्ष की स्त्री, इटली और रूम तथा प्रुषिया में पुरुष १८ का स्त्री १६ की। युनान, स्पेन, स्विटज़र, पुर्तगाल में १४ वर्ष का पुरुष और १२ की स्त्री से विवाह होता है। जर्मनी के प्राचीन निवासी २५ वर्ष तक विवाह नहीं करते थे, इसी कारण उनकी सन्तान बलवान, सुडौल और योधा होती थी।

हियनसांग चीन देश के एक भ्रमणकर्त्ता ने भारतवर्ष के विषय में लिखा है कि यहांके निवासी व्याकरण, शिल्प, चिकित्सा, अध्यात्म विद्या, धर्म और ब्रह्मविद्या को अच्छे प्रकार से जानते और चारों वेदों को ही

प्रमाण मानते थे और पुरुष ३० वर्ष तक विद्या उपार्जन करने के लिये ब्रह्मचर्य्यव्रत को धारण करते थे।

यजुर्वेद अध्याय ४ मन्त्र २ में रुद्र शब्द आया है, जिसके अर्थ ४४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य रहने के हैं। और इसी वेदमन्त्र में लिखा है कि तरुण पुत्री रुद्र ब्रह्मचारी से विवाह करनेसे प्रथम माता, पिता भ्राता, मित्रसे सम्मति करे जिससे स्वयंवर में किसी प्रकार का धोखा न खाय। यजुर्वेद अध्याय ४ मन्त्र २१ में वसु, रुद्र, आदित्य में तीन प्रकार के ब्रह्मचारियों का वर्णन किया है अर्थात् २४ वा ४४ वा ४८ वर्ष, इससे विदित होता है कि इतनी आयु के पश्चात् विवाह करना चाहिये। यजुर्वेद अध्याय ११ मन्त्र ५८ में वसु, रुद्र, आदित्य और वैश्वानर ब्रह्मचारियों के ब्रह्मचर्य्य के वर्षों की गणना, गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप छन्दों के द्वारा बतलाई गई है। गायत्री २४ अक्षर, त्रिष्टुप् ४४, जगती ४८, अनुष्टुप ३२ अक्षर का छन्द होता है, इसलिये वसु रुद्र, आदित्य, वैश्वानर वह ब्रह्मचारी होते हैं जो २४, ४४, ४८, ३२ वर्ष ब्रह्मचर्य्य धारण करें।

इसी भांति यजुर्वेद अध्याय ११ मन्त्र ६१ में ब्रह्मचारिणी स्त्रियों की जनयः, ग्ना, वरुत्री, धिषणाः, अदिति ये पांच श्रेणी बतलाई गई हैं। (जनयः) अर्थात् शुभ गुणों से प्रसिद्ध, (ग्ना) वेद वाणी को जाननेवाली, (वरुणी) विद्या ग्रहण के लिये स्वीकर करने योग्य, (धिषणाः) जिसका वाक्य और बुद्धि प्रशंसा के योग्य हो, (अदिति) अखण्ड विद्या पढ़ानेहारी।

अब इससे यह भी प्रकट होता है कि आदित्य के योग्य अदितिः, रुद्र के धिषणाः, वैश्वानर के वरुत्री, वसु के ग्ना या जनयः समझना चाहिये।

यजुर्वेद अध्याय ८ मन्त्र १ में उपदेश है कि ४८ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण किये हुए आदित्य ब्रह्मचारी और युवती २४ वर्ष ब्रह्मचर्य धारण किये हुये कन्या को स्वयंवर में विवाह करना चाहिये।

यजुर्वेद अध्याय १५ मंत्र ३ (चतुश्चत्वारिंशत) अर्थात् ४४ वर्ष तक ब्रह्मचर्य धारण करनेवाला पुरुष सम्पूर्ण सोलह कलाओं से पूर्ण होता है।

अथर्वकांड ११ अनुवाक ३ मंत्र ६ में स्पष्ट आज्ञा है कि पुरुष को पूर्ण तरुण अवस्था तक ब्रह्मचर्य रखना चाहिये और ऐसा ही ब्रह्मचारी गृहस्थी में सुगमता से सुख प्राप्त कर सकता है।

ऋग्वेद मं० १० सूत्र ८५ मंत्र २५ "इमां त्वामिन्द्र मीढा,, में मीढ़ इन्द्र ये दो शब्द ऐसे हैं जिनसे स्पष्ट प्रकट होता है कि विवाह करनेवाले में वीर्य-सेवन की सामर्थ्य और धनाढ्य हो और वीर्य-सेवन की सामर्थ्य पुरुष में २५ वर्ष से आरम्भ होती और ४० वर्ष के पश्चात् तक पूर्ण उन्नतिको प्राप्त होती है, इसलिये २५ वर्ष की आयु से लेकर ४४ वा ४८ वर्ष तक विवाह का समय है। इसी भांति यदि हम यह विचार करें कि मनुष्य किस अवस्था में धन प्राप्त करने के योग्य होता है तो यह भी स्पष्ट प्रकट है कि २५ वर्ष तक साधारण विद्या पढ़ किसी व्योपार को आरम्भ करे तो १० या १५ वर्ष में धनवान् होसकता है अर्थात् ३५ या ४० वर्ष की उम्र में धनाढ्य होजाता है। इसलिये इससे प्रकट होता है कि २५ वर्ष से पहिले पुरुष को विवाह न करना चाहिये।

डाक्टर जानसन साहब लिखते हैं कि विवाह के समय स्त्री और पुरुषों की अवस्था में न्यून से न्यून ७ वर्ष का अन्तर होना चाहिये। प्राचीन ऋषियों का सिद्धान्त यह है कि स्त्री से पुरुष की आयु न्यून से न्यून ड्योढ़ी अधिक से अधिक दुगुनी होनी चाहिये। इसी ओर पश्चिमीय डाक्टर भी आरहे हैं। हर एक डाक्टर की यह सम्मति तो अवश्य होगई है कि स्त्री की आयु पुरुष से कम होनी चाहिये। डाक्टर कोन साहब लिखते हैं कि मनुष्य के शरीर में बहुत सी हड्डियां ऐसी हैं जो २५ वर्ष से प्रथम दृढ़ नहीं होतीं।

यजुर्वेद अध्याय १५ मंत्र ११ में लिखा है कि जैसे विद्वान् लोग वायु के साथ वर्त्तमान सूर्य को और सूर्य वायु की विद्या को जानने वाले विद्वान् का आश्रय करके इस विद्या को जनावें, वैसे स्त्री-पुरुष ब्रह्मचर्यके साथ विद्वान् होकर दूसरों को पढ़ावें और मूल मंत्र में प्रश्न का उत्तर (कि स्त्री न्यून से न्यून कितने वर्ष ब्रह्मचर्य धारण करे) दियागया है। अर्थात् मन्त्र में कहा है कि कन्या 'पंचदशः, अर्थात् १५ संख्या को पूर्ण करने-वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करे।

यजुर्वेद अध्याय १५ मन्त्र १२ और अध्याय १ मन्त्र १३ में कन्याओं के लिये दो प्रकार की अवधि दर्शाई गई है। इसके उपरान्त वेदमन्त्रों में शिक्षा है कि लड़का और लड़की का विवाह ब्रह्मचर्य को पूरा करने के पश्चात् योग्य समय पर होना चाहिये, इसलिये इन मंत्रों से प्रकट हो गया

है कि कन्याओं का विवाह सप्तदश (सत्रह) और एकविंशत (इक्कीस) और पंचदश (पन्द्रह) वर्ष ब्रह्मचर्य पूरा होने के पश्चात् होना चाहिये।

इस लिये यजुर्वेद अध्याय १५ के मन्त्रों से स्पष्ट प्रकट हो गया कि विवाह करनेवाले पुरुष की आयु विवाह करनेवाली स्त्री से ड्योढ़ी, पौन या दूनी होनी चाहिये, ऋग्वेद मं० २ सू० ३५ मं० ४ में लिखा है—

तपस्मेरायुवतयो युवानं मर्मृज्यमानः परियन्त्यापः।

अर्थात् जो उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत से अत्यन्त (युवतयः) बीस वर्ष से २४ वर्षवाली हैं, वे कन्यायें जैसे जल या नदी, समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे (अस्मेराः) इम प्राप्त होनेवाली अपने २ पसन्द, अपने से डड्योढ़ी वा दुगुनी आयुवाले (तपः) उस ब्रह्मचर्य और विद्या से परिपूर्ण शुभलक्षण युक्त (युवानम्) जवान पति को (परियन्ति) प्राप्त होती हैं। इस मंत्र में पूरी तरुण अवस्थावाली कन्या को ड्योढ़ी, दुगुनी आयुवाले वर से विवाह करने की आज्ञा है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम रीति पर कुछ ध्यान न देकर लड़के लड़कियों के विवाह ८ तथा १० वर्ष में करना उत्तम समझते और कहते हैं—

अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्यकन्या तत ऊर्द्ध रजस्वला॥
माताचैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यांति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥

कन्या की आठ वर्ष में गौरी, नव वर्ष में रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या तदुपरान्त रजस्वला संज्ञा हो जाती है। यदि इस समय लड़की का विवाह न हो तो माता पिता बड़ा भाई नरक को जाते हैं।

मान्यवरो! ये श्लोक माननीय नहीं हैं क्योंकि लड़की का रजस्वला होना ईश्वरीय नियम है, आरोग्यता अथवा युवा अवस्था आरम्भ होनेका चिन्ह है, फिर इसमें माता, पिता, बड़े भाई काक्या दोष जो पापी गिनें जावें?

देखिये महाभारत अनुशा०पर्व अ० २० में लिखा है "कौमारं ब्रह्मचर्य्यं मे कन्यैवास्मि न संशयः" अर्थात् जब तक लड़की का विवाह नहीं होता

तब तक निःसन्देह वह कन्या रहती है। आगे शल्यपर्व अ० ५२ में "ऋतु स्नानातु यः शुद्धा सा कन्येत्यभिधीयते" यानी जो ऋतु स्नान से शुद्ध हो चुकी है उसका नाम कन्या है पुन —

देखिये दमयन्ती का विवाह नल के साथ युवती होनेपर हुआ था। देखो महाभारत वनपर्व नलोपाख्यान अ० ५३ श्लोक १६, १७, ।

तस्याः समीपे तु नलं प्रशंसुः कूतूहलात् ।
नैषधस्य समीपेतु दमयन्ती पुनः पुनः ॥ १६ ॥
तयोर्दृष्टः कामोऽभूत श्रुण्वतोः सततं गुणान् ।
अन्योन्यं प्रति कौन्तेय सव्यवर्धत हृच्छयः ॥ १७ ॥

मनुष्य दमयन्ती के समीप नल और नल के पास दमयन्ती की पुनः पुनः प्रशंसा करते थे, जिस कुतूहल से उन दोनों को एक दूसरे के गुण सुन २ कर कामदेव जो अदृष्ट हृदय में रहता है, उत्पन्न हुआ और बढ़ा।

अब आप विचार लें क्या रजोदर्शन से प्रथम कामोत्पत्ति और वृद्धि होसकती है? कदापि नहीं, इससे प्रगट हुआ कि इनका विवाह रजस्वलाहोने पर हुआ महाभारत वनपर्वान्तर्गत तीर्थयात्रा पर्व में लोपामुद्रा की कथा है। जिसमें विवाह के पूर्व से उसके यौवन की चर्चा स्पष्ट शब्दों में है—

यौवनस्थामपि च तां शीलाचारसमन्विताम् ।
न वव्रे पुरुषः कश्चिद्भयास्तस्य महात्मनः ॥ २८ ॥
वैभर्ति तु यथायुक्तां युवतीं प्रेक्ष्य वै पिता ।
मनसा चिंतयामास कस्मै दद्यामिमां सुताम् ॥ ३० ॥

शीलाचार युक्त लोपामुद्रा को यौवन अवस्था में भी कोई पुरुष उस महात्मा (पिता) के भय से नहीं वरता था, तब पुत्री को इस प्रकार की युवती देखकर पिता को चिन्ता हुई कि इसका विवाह किससे करूं और युवती १६ से ऊपर होती है, इससे भी रजस्वला होना प्रकट है।

हनुमान्नाटक में सीता स्वयंवर के विषय में लिखा है—

कपोल जानक्यः करिकलभदन्तद्युतिमुषिस्मरस्मेरं गंडोडमरपुलकं वक्त्रकमलम् । मुहुः पश्यं शृण्वन् रजनिचरसेना कलकलं, जटाजूट ग्रंथिंरचयमि रघूणां परिवडः ॥

सीता के कपोल पर हाथी के बच्चे (बोते) के दांत की चमक को चुरानेवाले काम जानते ईर्षद्धास को बारम्बार देखने और मुखरूपी कमल को गण्डस्थली के पुलकावली के परागयुक्त देखते हुए तथा राक्षसों की सेना के कलकल शब्दों को सुनते, रघुवर रामचन्द्र जी ने जटाजूट की गांठ बांधी, इससे भी यही प्रतीत होता है कि सीता विवाह से पूर्व युवती थीं ।

श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध उत्तरार्ध अ० ५२ में रुक्मिणी की अवस्था विवाह से पूर्व युवा थी जैसा कि—

"व्यजतस्तनी कुंतलशंकितेक्षणाम्,,

कलकत्ता एशियाटिक सुसाइटी के सुप्रसिद्ध सभासद पं० सत्यव्रत कन्याविवाह काल में अपने 'उषा' नाम पत्रिका ज्येष्ठ शाके १८१३ में लिखते हैं कि रजोदर्शन होने पर ही कन्या का विवाह वेद और स्मृतियों से सिद्ध होता है, और पुराने व्यवहारों के देखनेसे भी प्रकट होता है कि बिना रजोवती हुए विवाह नहीं होता था, और न कहीं रजोवती कन्याके दान वा पाणिग्रहण करने में वेद या स्मृतियों में दोष बतलाया है ।

अब आप विचारिये वेद क्या आज्ञा देता है ? शास्त्रकार क्या कहते हैं? सदाचार क्या बतला रहा है ? यदि शीघ्रबोध का कथन ठीक माना जावे तो फिर सृष्टि के आरम्भ से लेकर जनकादि राजा तथा प्रजा सबही नरकगामी हुए होंगे । परन्तु वेद के सम्मुख यह सब गप्पें हैं । इसलिये इन गप्पोंके माननेवाले ही नरकगामी हो सकते हैं न कि वे । अन्य समय में भी बहुधा क़ौमों तथा कान्यकुब्ज मण्डली अथवा निर्धनों के विवाह लड़की के रजस्वला होने के पश्चात् होते हैं, क्या ये नरक को जाते हैं ? कदापि नहीं ।

उपरोक्त श्लोकों का केवल यह अभिप्राय जान पड़ताहै कि जब मुसलमान हमारी कन्याओं को छीनते थे तो उनके धर्म बचाने के अर्थ बनाये गये होंगे, ताकि कन्याओं का विवाह न्यून अवस्था में होजावे, क्योंकि मुसलमानों की धर्म पुस्तकानुसार ब्याही कन्याओं का छीनना अधर्म माना गया है ।

साम्यवरो ! यदि यही बात है तो भी आप इस रीति को छोड़ कर वेदानुसार चलिये, क्योंकि इस समय आपकी धर्म-परिपाटी में कोई बाधा नहीं डाल सकता ।

वर्त्तमान समय के डाक्टर लोग पुकार पुकार कर कहते हैं कि ऐसे ब्याहों से कुछ लाभ नहीं । देखिये डाक्टर डियूडवी स्मिथ साहब साबिक प्रिंसिपिल मेडिकल कालिज कलकत्ता का वचन है कि न्यून अवस्था के विवाह की रीति अत्यन्त अनुचित है, क्योंकि इससे शारीरिक तथा आत्मिक बल जाता रहता है, मन की उमग चली जाती है, फिर सामाजिक बल कैसा ?

डाक्टर नीलमनि कृष्ण बोस का वचन है कि शारीरिक बल के नष्ट होने के जितने कारण हैं उन सबमें महान् न्यून अवस्था का विवाह जानों । यही मस्तक के बल की उन्नति का रोकनेवाला है ।

मिसेस पी. जी. फिफसिन लेडी डाक्टर मुम्बई का कथन है कि हिन्दुओं की स्त्रियों में रुधिर विकार तथा चर्मदूषणादि बीमारियां अधिक होने का कारण बाल्यविवाह ही है, क्योंकि सन्तान शीघ्र उत्पन्न होती हैं, फिर उनको दूध पिलाना पड़ता है, जब कि उनकी रगें दृढ़ नहीं होतीं, जिससे माता दुर्बल होकर नाना प्रकार के रोगों में फंस जाती है ।

डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार एम. डी. का वचन है कि बाल्यावस्था का ब्याह अत्यन्त बुरा है, इससे जीवन की उन्नति की बहार लुट जाती तथा शारीरिक उन्नति का द्वार बंद होजाता है । उक्त डाक्टर साहब ने सभा के बीच में यह भी वर्णन किया था कि मैं तीस वर्ष की परीक्षा से कहसकता हूं कि २५ फ़ी सदी स्त्री बाल्यावस्था के ब्याह के हेतु मरती हैं तथा २५ फ़ीसदी मनुष्य इसीसे ऐसे होजाते हैं कि जिनको सदा रोग घेरे रहते हैं ।

अब आप विवाह शब्द के अर्थों का विचार कीजिये तो स्पष्ट प्रकट होता है कि 'वि' विशेष कर 'वाह' के अर्थ जोड़े अर्थात् विवाह के अर्थ विशेष मेल और अटूट सम्बन्ध के हैं । और यह विशेष मेल समागम से होता है । इस लिये विवाह का मुख्य प्रयोजन समागम या गर्भाधान क्रिया का है, जो वेदानुकूल २५ और सोलह वर्ष से प्रथम होही नहीं सकता । इसके उपरान्त निम्निलिखित प्रतिज्ञाओं को क्या न्यूनावस्था में समझ कर पालन कर सकते हैं ?

❀ प्रतिज्ञायें ❀

हे प्रिय ! (भग) ऐश्वर्य युक्त, मैं (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत) ग्रहण करता हूं तथा (सविता) धर्मयुक्त मार्ग में प्रेरक मैं तेरे (हस्तम्) हाथ को (अग्रभीत) ग्रहण कर चुका हूं, (त्वम्) तू (धर्मणा) धर्म से मेरी पत्नी भार्या (असि) है और (अहम्) मैं धर्म से (तव) तेरी (गृहपति) गृहपति हूं। अपने दोनों मिल के घर के कामों को सिद्ध करें और जो दोनों का अप्रियाचरण व्यभिचार है उसको कभी न करें, जिससे घर के सब काम सिद्ध, उत्तम सन्तान, ऐश्वर्य और सुख की बढ़ती सदा होती रहे। हे अनघे ! (बृहस्पतिः) सब जगत् के पालन करनेवाले परमात्मा ने, जिस (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदात्) दिया है, (इयम्) यही तू जगत् भर में मेरी (पौष्या) पोषण करनेके योग्य पत्नी (अस्तु) हो, हे (प्रजावति) ! तू (मया, पत्या) मुझ पति के साथ (शतम्) सौ (शरदः) शरद ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त (शं, जीव) सुखपूर्वक जीवन धारणकर। हे वधू ! (ते) तेरे (हृदयम्) अन्तःकरण और आपको (मम) मेरे व्रते) कर्म के अनुकूल (दधामि) धारण करता हूं, (मम) मेरे (चित्तमनु) चित्त के अनुकूल (ते) तेरा (चित्तम्) चित्त सदा (अस्तु) रहे, (मम) मेरी (वाचम्) वाणी को तू (एकमनाः) एकाग्र चित्त से (जुषस्व) सेवन किया कर, (प्रजापतिः) प्रजा का पालन करनेवाला परमात्मा (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मेरे लिये (युनक्तु) करे।

हे वरानने ! जैसे मैं (सौभागत्वाय) ऐश्वर्य सुसन्तानादि सौभाग्य की बढ़ती के लिये (ते) तेरे (हस्तम्) हाथ को (गृभ्णामि) ग्रहण करता हूं, तू (मया) मुझ (पत्या) पति के साथ (जरदष्टिः) जरावस्था को सुखपूर्वक प्राप्त (आसः) हो, तथा हे वीर ! मैं सौभाग्य की वृद्धि के लिये आपके हस्त को ग्रहण करती हूं, आप मुझ पत्नी के साथ वृद्धावस्था पर्यंत प्रसन्न और अनुकूल रहिये। आपको मैं और मुझको आप, आजसे पति पत्नी भाव करके प्राप्त हुए हैं। (भगः) सकल ऐश्वर्य युक्त (अर्यमा) न्यायकारी (सविता) सब जगत की उत्पत्ति का कर्त्ता (पुरन्धिः) बहुत प्रकार के जगत् का धर्ता परमात्मा और (देवाः) ये सब सभामण्डप में बैठे हुए विद्वान् लोग (गार्हपत्या) गृहस्थाश्रम कर्म के अनुष्ठान के लिये (त्वा) तुझ को (मह्यम्) मुझे (अदुः) देते हैं। आज से मैं आपके

और आप मेरे साथ बिक चुके हैं, कभी एक दूसरे का अप्रियाचरण न करेंगे।

हे भद्र वीर! परमेश्वर की कृपा से आप मुझे प्राप्त हुए, सो मेरे लिये आप के बिना इस जगत् में दूसरा पति अर्थात् स्वामी, पालन करनेहारा, सेव्य, इष्टदेव कोई नहीं है, न मैं आप के अतिरिक्त दूसरे किसी को मानूंगी। जैसे आप मेरे सिवाय दूसरी किसी स्त्री से प्रीति न करेंगे वैसे मैं भी किसी दूसरे पुरुष के साथ पतिभाव से न वार्त्ता करूंगी। आप मेरे साथ सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से प्राण धारण कीजिये।

हे शुभानने! जैसे (बृहस्पते) इस परमात्मा की सृष्टि में और उसकी तथा (कवानाम्) आप्त विद्वानों की (प्रशिषा) शिक्षा से दंपति होते हैं, (त्वष्टा) जैसे बिजली सब को व्याप्त हो रही है वैसे तू मेरी प्रसन्नता के लिये (वासः) सुन्दर वस्त्र (शुभे) और आभूषण तथा (कम) मुझ से सुख को प्राप्त हो, इस मेरी और तेरी इच्छा को परमात्मा (व्यदधातु) सिद्ध करे। जैसे (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करनेहारा परमात्मा (च) और (भगः) पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त (प्रजया) उत्तम प्रजा से (इमाम्) इस तुझ (नारीम्) मुझ नर स्त्री को (परिधत्ताम्) आच्छादित शोभायुक्त करे, वैसे मैं (तेन) इन सब से (सूर्यामिव) सूर्य की किरण के समान तुझको वस्त्र और भूषण आदि से सुशोभित सदा रक्खूंगा, तथा हे प्रिय! आप को इसी प्रकार सूर्य के समान सुशोभित आनन्द अनुकूल प्रियाचरण के (प्रजया) ऐश्वर्य वस्त्राभूषण आदि से सदा आनन्दित रक्खूंगी।

हे मेरे सम्बन्धी लोगो! जैसे (इन्द्राग्नी) बिजली और प्रसिद्ध अग्नि (द्यावा) पृथिवी सूर्य और भूमि (मातरिश्वा) अन्तरिक्षस्थ वायु (मित्रावरुणा) प्राण और उदान तथा (भगः) ऐश्वर्य (अश्विना) सद्वैद्य और सत्योपदेशक (उभा) दोनों (बृहस्पतिः) श्रेष्ठ न्यायकारी बड़ी प्रजा का पालन करनेहारा राजा (मरुतः) सभ्य मनुष्य (ब्रह्म) सबसे बड़ा परमात्मा और (सोमः) चन्द्रमा तथा सोमलतादि ओषधि गण सब प्रजा की वृद्धि और पालन करते हैं, वैसे (इमांनारीम्) इस मेरी स्त्री को (प्रजया) प्रजा से बढ़ाया करते हैं वैसे तुम भी (वर्धयन्तु) बढ़ाया करो, जैसे मैं इस स्त्री को प्रजा आदि से सदा बढ़ाया करूंगा वैसे स्त्री भी प्रतिज्ञा करे कि मैं भी इस अपने पति को सदा आनन्द ऐश्वर्य और प्रजा से बढ़ाया करूँगी।

जैसे ये दोनों मिल के प्रजा को बढ़ाया करते हैं वैसे तू और मैं मिलके गृहस्थाश्रम के अभ्युदय को बढ़ाया करें।

हे कल्याणक्रोड़े ! जैसे (मनसा) मन से (कुलायम्) कुल की वृद्धि को (पश्यन्) देखता हुआ (अहम्) मैं (अस्याः) इसतेरे (रूपम्) रूप को (विश्यामि) प्रीति से प्राप्त और इसमें प्रेम द्वारा व्याप्त होता हूं, वैसे यह तू मेरी वधू (मयि) मुझ में प्रेम से व्याप्त होके अनुकूल व्यवहार को (वेदत्) प्राप्त होवे। जैसे मैं (मनसा) मन से भी इस तुझ वधू के साथ (स्तेयम्) चोरी को (उद्मुच्ये) छोड़ देता हूं और किसी उत्तम पदार्थ का चोरी से (नाश्नि) भोग नहीं करता हूं, (स्वयम्) आप (अन्थानः) पुरुषार्थ से शिथिल होकर भी वरुणस्थ उत्कृष्ट व्यवहार में विघ्नरूप दुर्व्यसनी पुरुष के (पाशान्) बन्धनों को दूर करता रहूं वैसे (इत्) ही यह वधू भी किया करे, इसी प्रकार वधू भी स्वीकार करे कि मैं भी इसी प्रकार आप से वार्त्ता करूंगी।

हे वधू ! जैसे (अहम्) मैं (अमः) ज्ञानवान् ज्ञानपूर्वक तेरा ग्रहण करनेवाला (अस्मि) होता हूं, वैसे (सा) सो (त्वम्) तू भी ज्ञानपूर्वक मेरा ग्रहण करनेहारी (असि) है। जैसे (अहम्) मैं अपने पूरण प्रेम से तुझ को (असः) ग्रहण करता हूं वैसे (सा) सो मैंने ग्रहण की हुई (त्वम्) तू मुझको भी ग्रहण करती है। (अहम्) मैं (साम) सामवेद के तुल्य प्रशंसित (अस्मि) हूं, हे वधू ! तू (ऋक्) ऋग्वेद के तुल्य प्रशंसित है। (त्वम्) तू पृथिवी के समान गर्भादि गृहस्थाश्रम के व्यवहारों को धारण करनेहारी है और मैं (द्यौ) वर्षा करनेहारे सूर्य के समान हूं. वह तू और मैं (तावेव) दोनों ही (विवहावहै) प्रसन्नतापूर्वक विवाह करें, (सह) साथ मिलकर (रेतः) वीर्य्य को (दधावहै) धारण करें, (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (प्रजयावहै) उत्पन्न करें, (बहून्) बहुत (पुत्रान्) पुत्रों को (विन्दावहै) प्राप्त होवें, (ते) वे पुत्र (जरदष्टयः) जरा अवस्था के अन्त तक जीवनमुक्त (सन्तु) रहें, (संप्रियौ) अच्छे प्रकार एक दूसरे से प्रसन्न (रोचिष्णू) दूसरे में रुचियुक्त (सुमनस्यमानौ) अच्छे प्रकार विचार करते हुए (शतम्) सौ (शरदः) शरद ऋतु अर्थात् शत वर्ष पर्यन्त एक दूसरे को प्रेम की दृष्टि से (पश्येम) देखते रहें, (शतंशरदः) सौ वर्ष पर्यन्त आनन्द से (जीवेम) जीते रहें और (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त प्रिय वचनों को (शृणुयाम) सुनते रहें।

मित्रो! यह आपको संक्षेप से मैंने प्रतिज्ञायें बतलाई हैं, इनके अतिरिक्त वेदोक्त और भी प्रतिज्ञायें करनी होती हैं कहिये, इनका पालन न्यूनावस्था में क्या होसकता है? वर्त्तमान समय में राज क़ानून भी १८ वर्ष से प्रथम की लिखा पढ़ी को नहीं मानता, फिर विवाह और प्रतिज्ञायें कैसी? प्यारे भाइयों! अभीतक तक गाय घोड़ा इत्यादि पशुओं पर जब तक कि वे पूर्ण नहीं हो जाते बैल घोड़ा आदि नहीं छुड़वाते कि जिससे उनकी सन्तान निकम्मी न हो जावे, फिर मैं नहीं जानता कि स्त्री पुरुषों में जो संसार के जीवों में सर्वोत्तम हैं यह सुविचार जो गाय घोड़ी इत्यादि पशुओं के साथ किया जाता है क्यों छोड़ दिया गया? क्या ये उन पशुओं से भी गये हैं?

पाठकगणों! जिस समय जिस वस्तु की मन को इच्छा होती है उसी समय उसके मिलने से परम सुख होता है, बिना समय के वस्तु मिलने से कुछ उत्साह औरउमंग नहीं होती, न किसी प्रकार का आनन्द आता है। जिस प्रकार भूख के समय में सूखी रोटी भी अच्छी जान पड़ती है उसी प्रकार बिना भूख के मोहनभोग को भी जी नहीं चाहता। छोटे २ पुत्र पुत्रियों का उस दशा में जब कि उनको काम-अग्नि नहीं सताती और न उन का मन उधर को जाता है, शादी करने से क्या लाभ होता है? कुछ भी नहीं।

हे सुजनों! इन उपरोक्त बुराइयों के सिवाय एक और बहुत बड़ी हानि होती है कि जिसके कारण भारत में हाहाकार मचरहा है और जिससे उसके निर्मल यश में धब्बा लग रहा है, वह बुरी बला विधवाओं का जत्था है कि जिनकी आहें भारत के घाव पर और भी नोन छिड़क रही हैं। भारत का कौन सा ऐसा घर है जहां विधवाओं के दर्शन नहीं होते, उस पर भी वे विधवायें कैसी जिनके दूध के दांत तक नहीं गिरे? न उनको अपने बिवाह की कुछ सुध, न वे यह जानती हैं कि हमारी चूड़ियां क्योंकर फूटीं? फिर जब वे तरुणाहोती हैं तब कामानल प्रबल होनेपर उनका नियोग भी नहीं होता, फिर हजारों में से पाँच सुन्दर आचरणवाली होती हैं नहीं तो नाना लीलायें रचती हैं, जिन बातों से हमारी लाज की पगड़ी सिर से गिर जाती है, क्या उस समय हमारी मूँछे मुंह पर शोभा देती हैं? हमारी जवानी का नशा एकदम में उतर जाता है, आराम पर भी छार पड़ जाती है, सच पूछोतो माता पिता इस जलती हुई चिता को अपनी छाती पर देख २ कर हाड़ों का सांचा

बन जाते हैं इन सब क्लेशों का कारण न्यून अवस्था का विवाह ही है। क्योंकि भारत में विधवाओं की संख्या इतनी है कि जितनी अन्य किसी देश में नहीं पाई जाती, क्योंकि अन्यत्र न्यून अवस्था में विवाह नहीं होता। इसी हेतु से प्राचीन काल में उनकी गणना बहुत न्यून थी। इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं, देखो जब किसी खेत में गेहूं आदि अन्न बोते हैं तो जमने के पीछे दश पांच दिन में बहुत से मरजाते हैं, एक महीने के पीछे बहुत कम, दो चार महीने के पीछे न्यून मरते हैं। इसी प्रकार जन्म से पांच वर्षतक जितने बालक मरते हैं उतने अधिक दश वर्ष पर नहीं, दश वर्ष से १५ तक उससे भी बहुत कम, क्योंकि न्यून अवस्था में सूखा, जमोघा, दांत तथा शीतलादि रोग मार डालते हैं, जब किसी पेड़ की जड़ मज़बूत हो जाती है तो वह बड़ी बड़ी आंधियों से बचजाता है, इसीभांति बालपन में नाना भांति के रोग होकर मृत्युकारक होजाते हैं, जिस प्रकार १५ या २५ वर्ष में नहीं होते, यदि हों तो भी सौ में पांच।

अब इस ऊपर के वर्णन से प्रत्यक्ष प्रकट है कि यदि न्यून अवस्था का विवाह भारत से उठादिया जावे तो किस क़दर विधवाओं का जत्था कम होजावे, तथा यह सब उपद्रव जाते रहें ! इन पांच का विवाह २५ वर्ष के लड़के के साथ हो तो अवश्य उन ५ में से तीन के बाल बच्चे भी दो तीन वर्ष में होजावेंगे, यदि ऐसी दशा में पति का मरण भी होजावे तो स्त्री उन बच्चों की आशा पर उनके लालन पालन में अपनी आयु को व्यतीत करती रहेगी, पस इस हिसाब से १०० में दो विधवायें ऐसी रह जवेंगी कि जिनका कुछ अन्य प्रबन्ध करने की आवश्यकता होगी।

इसलिये आप सबसे श्रेष्ठ स्वयम्बर विवाह की रीति को प्रचलित कीजिये जो सबके सुखों की देनेवाली है। मनु महाराजने जो आठ प्रकार के विवाह लिखे हैं वह गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार संसार के मनुष्यों को आठ भागों में विभाजित किया है। वेदों में भी ऋषि, देव, साध्य, मनुष्य, असुर, दस्यु, राक्षस और पिशाच ये आठ नाम आये हैं। जिनमें ऋषि, देव, साध्य इनको ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के नाम से पुकारा है और मनुष्य का शब्द शूद्र तक लिया है और असुर के अर्थ कुटिल नीति वा कपटी और दस्युके अर्थ मर्यादा-रहित पुरुष और राक्षस वह जो अन्य की हानि कर अपनी ही रक्षा करते हैं और पिशाच वह माने हैं जो जीवधारियों की हिंसा कर अपना जीवन करते हैं और जिनके आचरण निन्दनीय और घृणायुक्त होते हैं।

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्रजापति, असुर, गन्धर्व, राक्षस और पिशाच ये आठ विवाहों के नाम हैं, जिनमें से प्रथम के चार उत्तम बतलाये हैं और इन्हीं से उत्पन्न सन्तान को योग्य कहा है और शेष चार विवाहों को निन्दित, क्योंकि उनसे उत्पन्न सन्तान निन्दित कर्म करनेवाली, मिथ्यावादी, वेद धर्म की द्वेषी, नीच स्वभाव वाली होती है, इसलिये उपरोक्त चारों के नाम के विवाह ही वैदिक विवाह होसकते हैं, क्योंकि वैदिक विवाह की व्याख्या में पाणिग्रहण प्रतिज्ञा (फेरे) और सप्तपदी आदि की सब विधि उपस्थित है।

पाणिग्रहण के मन्त्रों में [१] सौभाग्य अर्थात् उत्तम सन्तान ऐश्वर्य का प्राप्त करना, [२] दम्पतिव्रत अर्थात् पुरुष एक ही विवाहिता स्त्री से और स्त्री एक ही विवाहित पुरुष से अपना सम्बन्ध रक्खे. [३] दीर्घ सम्बन्ध अर्थात् आयु पर्यन्त का सम्बन्ध [४] परस्पर प्रसन्नता और समान जानना, [५] परमात्मा को साक्षी जान प्रतिज्ञा करना, [६] देवा अर्थात् सभामण्डल में बैठे हुए विद्वान् लोग साक्षी हों जिनमें मित्र पितादि गुरु इत्यादि के बोधन करनेवाला शब्द देवा से होता है जिनके सन्मुख प्रतिज्ञा की जाती है।

प्रतिज्ञा मन्त्रों में प्रथमवर वधू ज्ञानपूर्वक अर्थात् होस हवास सहित उपरोक्त बातों पर सदा चलने के लिये सभा में मण्डप के चारों ओर बैठे हुए मनुष्यों के सम्मुख घूम घूम कर करते हैं जिससे उसको सब मनुष्य सुन लें। और ये मन्त्र चार प्रकार के हैं और चार बार घूम घूम कर किये जाते हैं। इसलिये भाषा में इस प्रतिज्ञा को फेरे कहते हैं।

सप्तपदी—सप्त के अर्थ सात और पदी के अर्थ उद्देश्य के हैं और वे सात उद्देश्य सप्तपदी के उन सातों मन्त्रों से विज्ञान, आरोग्य, बल, धन, सुख, यश, सन्तान, ऋतुगमन और ऋतुचर्या की रीति पर चलना मित्रता से रहना है। इसलिये हम उपरोक्त चारों विवाहों को स्वयम्बर विवाह कह सकते हैं जिनका मुख्य उद्देश्य सन्तान उत्पत्ति और सभा के सम्मुख प्रतिज्ञा द्वारा पूर्ण आयु तक मित्रवत् रहने और सुसन्तान उत्पन्न करने का है। पुराणों के देखने से भी प्रगट होता है कि बहुधा स्त्रियों ने उत्तम उत्तम गुणों से भूषित पुरुषों से विवाह करने का प्रण किया था।

१) देखो पद्मपुराण द्वितीय भूमिखंड अ० ७६ में विशाला ने कहा है कि मेरा वही पति हो सकता है जो ब्राह्मण्य वेदत्व का जाननेवाला तीनों लोकों में विख्यात विक्रम इन सब गुणों से युक्त वा तीनों लोकोंमें पूजित हो। (२) देवीभागवत स्कन्ध २ अ० १७ में लिखा है कि शिशुकला ने सुदर्शन जी के सर्व गुण श्रवण कर उनके साथ विवाह करने की प्रतिज्ञा की थी और अन्त को उसी के साथ उसके पिता ने वेद रीति से विवाह किया। (३) रुक्मिणी जी ने श्रीकृष्ण महाराज के गुणों को सुनकर अपने पति बनाने की इच्छा उन पर पत्र द्वारा प्रकट की थी। (४) सुलभा जो पूर्ण विद्यावती और ब्रह्मचारिणी थी, जब उसको यथायोग्य वर नहीं मिला तो उसने संन्यास का धारण किया था।

इस लिये यदि इस समय आप स्वयम्बर विवाह नहीं कर सकते तो वेदोक्त विधि मिलाकर तो अवश्य ही कार्य करना प्रचलित कीजिये, जिस से देश का कल्याण हो, इसलिये अब हम वेदोक्तविधि मिलाने की रीति लिखते हैं।

१—जब स्त्री पुरुष विवाह करने की इच्छा करें तब ब्रह्मचर्य और विद्या से स्त्री पुरुषों के धर्माचरण को जानकर ही विवाह करें। जैसा—य० अ० ३८ मं० २ में कहा है—

इड एह्यदित एहिसरस्वत्येहि असावेह्यसावेह्यसावेही।

२—य० अ० ११ मं० ७१ में लिखा है कि कन्याओं को चाहिये कि अपने से अधिक बल विद्या वाले वा बराबर के पति को स्वीकार करें किन्तु छोटे वा न्यून विद्यावाले को नहीं।

परस्या अधि संवतोऽवरां २ ॥ अभ्यान्तर ॥
यत्राहमास्म तां २ अव ॥ ७१ ॥

य० अ० ११ मं० ७० में कहा है कि कन्याओं को उचित है कि जिस वर का पिता ब्रह्मचर्य से बलवान् हो और पुरुषार्थ से बहुत अन्नादि पदार्थों को इकट्ठा कर सके उस शुद्धस्वभाव से युक्त पुरुषके साथ विवाह करके निरन्तर सुख भोगो। और य० अ० १२ मं० ६२ में कहा है—

हे स्त्रियो! तुमको चाहिये कि पुरुषार्थ-रहित चोरों के सम्बन्धीय

पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो, आप्त पुरुषों की नीति के तुल्य पुरुषों को ग्रहण करो।

असुन्वन्तमयजमानमिच्छेस्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य।
अन्यमस्मदिच्छसात इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु॥

य० अ० ८ मं० १ में उपदेश है कि विवाह की कामना करनेवाली युवती स्त्री को उचित है कि जो छल कपट आदि आचरणों से रहित, प्रकाश करने और एक ही को चाहने वाला, जितेन्द्रिय, सब प्रकार का उद्योगी, धार्मिक, विद्वान् हो उसी के साथ विवाह कर आनन्द में रहे।

इसलिये हे स्त्री जनों! तुम उसी पुरुष के साथ विवाह करो जिसका घर सब ऋतुओं में सुख देनेवाला है और आप वीर्यवान् हो फिर उसको सब प्रकार से सुख देती रहो, जैसा य० अ० ८ मं० ८ में कहा है—

उपयामगृहीतोऽसि सुशर्म्मासिसुप्रतिष्ठानो बृहदुक्षाय नमः।
विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्य एष ते योनिर्विश्वेभ्यस्त्वा देवेभ्यः॥

मनु महाराज ने अ० ३ में कहा है कि (१) लड़के की आयु २४ तथा लड़की की १६ वर्ष की हो, (२) ऊँचाई में लड़की लड़के के कन्धे के बराबर अथवा कुछ कम हो परन्तु ऊंची न हो, (३) दोनों के शरीर सम, हृष्ट पुष्ट हों और दोनों विद्वान् हों।

❋ पुत्र पुत्री के गुण ❋

(१) जिसके शरीर में कोई बीमारी न हो, [२] जिसके शरीर में दुर्गन्धि न आती हो, [३] जिसके शरीर पर बड़े बड़े बाल न हों और न लोमरहित हो. [४] बहुत बकवाद करने वाली न हो, [५] जिसका शरीर टेढ़ा न हो, अंगहीन भी न हो, [६] शरीर कोमल हो, [७] जिसकी मधुर वाणी हो, [८] जिसका वर्ण पीला न हो, [९] भूरे नेत्रवाली न हो, [१०] जिसका नाम वेदानुकूल हो, [११] जिसकी चाल हंस वा हथिनी के तुल्य हो। हारीतस्मृति अ० ४ श्लोक १, २, ३, ४ तथा संवर्त्तस्मृति अ० ५ श्लोक १ में भी उपरोक्त आज्ञा है। पद्मपुराण स्वर्ग तृतीय खण्ड में लिखा है कि नीचे लिखी बातोंको देखकर कन्या देनीचाहिये, अर्थात् (१) अति

निकट, [२] अत्यंत दूर, [३] बड़े धनवान् को, [४] अति दीन को, [५] अति दुष्ट स्वभाव, [६] कुलहीन, [७] मूर्ख, [८] अति वृद्ध, [९] रोगी, [१०] एक ग्रामवासी, [११] अति क्रोधी, [१२] असंतुष्ट को कन्या न देवे। विष्णुपुराण अंश तीन अध्याय १० में लिखा है कि ब्रह्मचारी ऐसी स्त्री से विवाह न करे, (१) बहुत बाल न हों, (२) बालरहित, (३) अंगहीन, (४) अधिकांगी, (५) जन्मरोगिणी, (६) रोगिणी; [७] दुराचारिणी, [८] दुष्ट बचन बोलनेवाली, [९] जिसके माता पिता कोढ़ी हों, [१०] पुरुषाकृति वाली, (११) पीले नाखून वाली, [१२] मोटे हाथ पैरवाली, (१३) न बहुत छोटे न बहुत बड़े डील की हो, (१४) न करालमुखी हो और (१५) न वह माता पक्ष की हो। इनको छोड़ उत्तम गुणों से युक्त कन्या से विवाह करे परन्तु स्त्री की अवस्था सदा पति से थोड़ी हो। शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ३६ में लिखा है कि भूरे वर्ण, नेत्र और अंगहीन, रोगिणी, दुष्ट स्वभाव वा लोमरहित तथा बहुत बालोंवाली, अधिकांगी, पीले वर्णवाली, टेढ़ी नाकवाली, बहुत पतली, बड़ी लम्बी, विषम, उन्नत, इन्द्रलुप्त रोगवाली कन्याओंसे विवाह न करना चाहिये।

प्यारे सुजनों! इन बातों का विचार करना अभीष्ट है क्योंकि उत्तम कुल वृक्षके तुल्य है, सम्पतिवालों के सदृश पुत्र मूलवत् जानों जो पुरुष अपनी पत्नियों को सदा सुखी रखना चाहें वह सुख तत्व को बिचार कर विवाह करें। वही लोग पेड़ पत्तों को नहीं देख सकते हैं जो मूलपर ध्यान नहीं देते जो मेरी समझ में उसका देखना मुख्य है। क्योंकि जो मूल दृढ़ होगी तो वह बड़े २ प्रचण्ड वायु के झकोरों से वृक्षको न गिरने देगी। यदि मूल ही निर्बल हुआ तो थोड़े ही झटके में उखड़ कर गिर पड़ेगा। इसी प्रकार जो पुत्र सपूत वा सुलक्षण होगा तो धन तथा कुल की प्रतिदिन उन्नति करेगा और सर्व प्रकार से अपने बाप दादे के नाम तथा यश को फैलावेगा तथा नाना भांति से सुख आनन्द देगा, यथा—

एकेनापि सुपुत्रेण पवित्रगुणशालिना।
सुरभिः क्रियते गोत्रश्चन्दनेनेव काननम्॥

एक ही सपूत, गुणवान् उत्तम आचरणवाले पुत्र से सम्पूर्ण कुल शोभित और प्रख्यात होजाता है, जैसे चन्दन के एक ही पेड़ से बन का बन सुगन्धित रहता है। जो कपूत अर्थात् कुलक्षण हुआ तो वह अपने तन मन धन मान बड़ाई आदि को धूल में मिलावेगा, इस लिये धन कुल आदि की अपेक्षा लड़के के गुण कर्म शील आदि का मिलाना अत्यन्त उचित है, क्योंकि धन बादल की छाया के समान, प्रतिष्ठा पतंग के रङ्ग के सदृश और कुल केवल नामके लिये है, इस कारण मूल पर सदा ध्यान करने से परमसुख मिल सकता है, अन्यथा कदापि नहीं। किसी ने सच कहा है—

एक साधे सब सधें सब साधे सब जाय।
जो तू सेवे मूल को, फूले फले अघाय॥

अतः वर कन्या के उपरोक्तगुण मिलाकर विवाह करना चाहिये, जिससे उन दोनों की प्रकृति सदा एकसी रहे जो सुख का मूल है, जैसा किसी कवि ने कहा है—

प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिल से न मिलाय।
दूध दही से जमत है कांजी से फटि जाय॥

इस कारण इन उपरोक्त बातों को मिलाकर यह भी देख लीजिये कि लड़का जुआरी, शराबी, रण्डीबाज़, चोर आदि न हो, अर्थात् पढ़ा लिखा सुकर्मी सुधर्मी हो, उससे परस्पर विवाह करना चाहिये, नहीं तो कदापि सुख नहीं होगा।

शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी पर किंचित् ध्यान न देकर केवल वर्ग, गण, राशि और नाड़ी आदि का कुम्भ मीन इत्यादि से मिलानकर अनमेल मेल मिलाकर भारत का सत्यानाश कर रहे हैं। इसप्रकार के मिलान की आज्ञा सत्य शास्त्रों में नहीं पाई जाती और न पूर्व पुरुषा इस परिपाटी पर चलते थे। यदि किसी को दावा हो तो श्रुति के प्रमाण से सिद्ध करके दिखलाये या यही बतलाये कि श्रीराम का सीता, अर्जुन का द्रोपदी इत्यादि के विवाह क्या इसी प्रकार के मिलान मिला कर हुए थे? देखिये यदि वर्त्तमान परिपाटी के अनुसार ही मिला कर उनके विवाहबहुए थे तो—

नाड़ी दोष—आदि नाड़ी वरं हन्ति मध्यनाड़ी च कन्यकाम् ।
अन्तनाड़ी द्वयोर्मृत्युः नाड़ी दोषं त्यजेद्बुधः ॥

यह श्लोक शीघ्रबोध के प्रथम प्रकरण में लिखा है, अर्थ यह है कि यदि वर कन्या दोनों की आदि नाड़ी हो तो वर की मृत्यु हो, दोनों की मध्य नाड़ी हो तो कन्या की मृत्यु हो, अन्त नाड़ी हो तो दोनों की मृत्यु हो ।

द्रौपदी की अन्त नाड़ी और अर्जुन की भी अन्त नाड़ी थी, इसी प्रकार वशिष्ठ और अरुंधती दोनों की अन्त नाड़ी थीं, परन्तु उनमें किसी तरह का क्लेश न हुआ ।

वर्ग दोष—शीघ्रबोध प्रकरण १ श्लोक २२ के अनुसार अर्जुन का गरुड़ वर्ग है, (अवर्गोगरुड़ोज्ञेयः) और द्रौपदी का सर्प वर्ग है । सर्पाख्यः स्यात्तवर्गोपि० २३ । और सर्प तथा गरुड़ का प्रत्यक्ष वैर है । फिर इनमें प्रीति क्यों थी ?

गणदोष—श्रीरामचन्द्र का जन्म पुष्य नक्षत्र का है, यह सब जानते हैं । रामचन्द्रजी की कुण्डली अबतक लिखी जाती है, उसमें भी कर्कराशि ही मानी है । वाल्मीकीय रामायण का भी यह सिद्धान्त है । इससे शीघ्रबोध प्रकरण १ श्लो २५—

अश्विनीमृगरेवत्यो हस्तः पुष्यपुनर्वसु ।
अनुराधा श्रुतिः स्वातिः कथ्यते देवतागणैः ॥

इसके अनुसार देवता गण हुआ । और सीता का यदि पुकारते नाम से शतभिखा नक्षत्र पाते तो राक्षस गण होगा । यथा—

कृत्तिका च मघाश्लेखा विशाखाशततारका ।
चित्रा ज्येष्ठा धनिष्ठा च मूलं रक्षोगणाः स्मृताः ॥२७॥

फल—स्वगणपरमाप्रीतिर्मध्यमादेवमर्त्ययोः ।
मर्त्यराक्षसयोर्वैरं कलहो देवराक्षसोः ॥ २८ ॥

देव राक्षस में कलह रहना चाहिये । फिर सीता राम में कैसी प्रीति थी और रावण जिसका गण नाम से सीता से मिलता था और साक्षात् जाति भी राक्षस थी, फिर उससे प्रीति क्यों न हुई ? क्योंकि रावण के

नाम से चित्र नक्षत्र पाया जाता है। श्रीकृष्णचन्द्र का रोहिणी नक्षत्र का जन्म सब ही जानते हैं।

तिस्रः पूर्वाश्चोत्तराश्च तिस्रोप्याद्री च रोहिणी।
भरणी च मनुष्याख्यो गणश्च कथितो बुधैः॥ २८॥

इसके अनुसार श्रीकृष्णचन्द्र का गण 'मनुष्य' पाया जाता है और राधा का गण 'राक्षस' होता है। इन दोनों में भी वैर रहना चाहिये। फिर इनमें प्रीति क्यों थी? वा राधाकृष्ण की कथा सत्य नहीं है?

❋ राशिमेलनम् ❋

इसी तरह पूर्वकाल में राशि भी नही मिलाते थे। देखो शीघ्रबोध पृष्ठ१ में—

षष्ठे स्त्री पुंसयोर्वैरं मृत्युः स्यादष्टमे ध्रुवम्।
द्विद्वादशे च दारिद्र्यं नवमं पञ्चमे कलिः॥ २९॥

अर्थ—स्त्री की राशि से पुरुष की राशि वा पुरुष की राशि से स्त्री की राशि छठी हो तो वैर हो। आठवीं हो तो मृत्यु हो। २, १२ हो तो दरिद्र ९, ५ हो तो कलह हो।

अब विचारिये कि रामचन्द्र की जन्म राशि कर्क सिद्ध ही है। सीता की कुम्भ राशि प्रसिद्ध ही है। इस में कर्क से कुम्भ ८ वां होता है और कुम्भ से कर्क ६ ठा है, यह विवाह क्यों हुआ? फल भी प्रसिद्ध है।

इसलिये इस मिथ्या मिलान को छोड़ वेदोक्त विधि से विधि मिलाकर विवाह करने का यत्न कीजिये तबही आनन्द मिलसकता है, अन्यथा नही।

इसके उपरान्त वर्त्तमान समय में वर खोजने का कार्य नाई बारी इत्यादि से कराया जाता है, जो बुद्धि के विपरीत है। मित्रो! सौ दो सौ रुपये का कार्य्य आप स्वयं करते हैं, फिर भला यह काम लड़का लड़की के जीवन भर के सुख का साधन है, फिर निर्बुद्धि मनुष्य लोभ में आकर क्या क्या अनुचित कार्य्य नहीं कर बठता? देखो—

इसी लोभ में आकार औरंगज़ेब ने अपने पिता भ्राताओं को मार डाला, लोभ के ही कारण आज कल भ्राता भ्राताओं में नहीं बनती, फिर भला उनका क्या कहना जो दिन रात धन की लालसा में लगे रहते हैं। चाहे

लड़का काला कबरा आदि क्यों न हो, जहां लड़के के बाप ने उनकी मुट्ठी गर्म करनेका प्रण कियाया खूब आवभगत से लिया कि वे लड़कीवाले से आकर लड़का तथा कुल की बहुत प्रशंसा करते अर्थात् सम्बन्ध कराही देते हैं। यदि लड़केवाले ने सुध न ली तो लड़का उत्तम होनेपर भी बहुत अप्रशंसा करते हैं, जिसके कारण पति पत्नियों में प्रेम नहीं रहता ! इन्हीं कुप्रबन्धों के कारण बहुधा जन नाना प्रकार के कुचाली होगये तथा जिन्होंने बहुतेरी बालिकाओं को जीते जी रंडापे का स्वाद चखा दिया।

नाई बारी आदि के दुखड़े का तो रोना था ही, परन्तु महान् शोक का स्थान है कि माता पितादि भी न पुत्र को देखें न पुत्री को, यदि आंखें खोलकर देखते हैं तो कितना रुपया पास है, क्या २ माल टाल है। पुत्र पुत्री चोर ज्वारी क्यों न हों, चाहे समस्त धन को दो ही दिन में उड़ा दें, लड़की अपने फूहरपने से गृह को पति के अर्थ जेलखाना भले ही बानाये, परन्तु इसकी उन्हें कुछ चिन्ता नहीं।

उपरोक्त कथन से प्रकट है कि विवाह पुत्र के साथ नहीं वरन् धनके साथ करते हैं, जब कोई बुराई प्रकट होती है तो कहते हैं कि क्या करें हमारे यहाँ तो सदा से ऐसा ही होता आया है। प्रिय महाशयो ! नहीं नहीं देखिये, हमारे ऋषि पुकार पुकार कहते हैं—

कामभारणात्तिष्ठेद् ग्रहे कन्यतुर्मत्यपि।
नचैवेनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित् ॥

चाहे पुत्र पुत्री मरण पर्यन्त कुमारे रहें, परन्तु असदृश अर्थात् परस्पर विरुद्ध गुण कर्म स्वभाव का विवाह न करें।

विष्णु-मृति अध्याय १ श्लोक २ में लिखा है कि उत्तम कुल में उत्पन्न हुई सजातीय सुलक्षणा स्त्री से शास्त्रोक्त विधिवत् ब्याह करे।

अनेनेव विधानेन कुर्याद्दारापरिग्रहम्।
कुले महति सम्भूतां सवर्णां लक्षणान्वितां ॥

इस स्थान पर यह भी स्मरण रहे कि कुलों की उत्तमता जाति वा धनादि से नहीं होती, वरन् मनुष्यों के कर्म, शील, गुण, इन्द्रियों के दमन अथवा नम्रता आदि से होती हैं। शुक्रनीति में लिखा है—

कर्म शीलगुणः पूज्यास्तथा जाति कुले नहि ।
सात्माना न कुले नैव श्रेष्ठत्वं प्रतिपद्यते ॥

इसी कारण हमारे परमपूज्य विदुरजी महाराज ने लिखा है कि वही कुल श्रेष्ठ है जिसके मनुष्य वेदों को पढ़कर यज्ञ दानादि श्रेष्ठ कर्म वेदानुसार करते हैं। जहां माता पितादि दुःख नहीं पाते, झूंठ नहीं बोलते, धर्म भ्रष्ट नहीं करते तथा जिसमें सुकर्म न होते हों वह कुल बहुत धन होने पर भी नीच तथा त्यागने योग्य है। जैसा—

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानः पुण्या विवाहाः सततंचान्नदानम् ।
येष्वेवैते सप्तगुणाभवन्ति सम्यग्वृतास्तानि महाकुलानि ॥
येषां व्रतं न व्यथते न योनिश्चत्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम् ।
येकीर्त्तिमिच्छंतिकुले विशिष्ठां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि॥

मनु अ० श्लोक ६४ में लिखा है कि खोटे विवाहों, कर्म के छोड़ने, वेद के न पढ़ने और ब्राह्मणों की सेवा न करने से कुल नीचपन को प्राप्त हो जाते हैं।

कुविवाहैः क्रिया लोपैर्वेदानध्ययनेन च ।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्रह्मणातिक्रमेण च ॥

इसलिये अ० ३ के श्लोक १ वा २ में लिखा है कि जिन कुलों में (१ क्रिया कर्म वेदानुकूल न होते हों, (२) जो सत्पुरुषों से तथा (३) वेदाध्ययन से रहित हों (४) मनुष्यों के शरीर पर बड़े २ बाल हों, (५) जिन कुलों में बवासीर, (६) धातुक्षीण, (७) मृगी, (८) दमा, (९) खांसी (१०) कोढ़ादि असाध्य रोग हों, ऐसे कुलों को—धन, धान्य, गाय, अश्व, हाथी आदि राज्य तथा श्री से सम्पन्न हों तौ भी—त्याग देना चाहिये। जैसा कि—

हीन क्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् ।
सत्वामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्टिकुलानि च ॥
महान्त्यपि समृद्धानि गोऽजाविधन धान्यतः ।
स्त्रीसम्बन्धे दशैतानि कुलानि परिवर्जयेत ॥

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ३६ में ऐसा ही लिखा है।

मान्यवरो! महात्मा मनु आदि ऋषि पुत्र पुत्री का विधि विज्ञान की इस प्रकार आज्ञा देते हैं कि पिता की सातपीढ़ी सगोत्र पिताके गोत्र तथा ऊपर कहे दश कुलों को त्याग हंस हस्तिनी के समान गमन करनेवाली, सूक्ष्म लोभ, उत्तम केश तथा कोमल दांत, सुन्दर शरीर जिसकाहो ऐसी पत्री से पुत्र का विवाह करे, इसी भांति पुत्र के भी समान गुण कर्म शुभ लक्षण देखकर पुत्री का विवाह करे।

प्यारे मित्र और सुजन स्त्रियो! प्राचीनकाल में उपरोक्त भांति स्त्री पुरुष विवाह करते थे. उसी समय गृहस्थाश्रम स्वर्गधाम की शोभा दिखलाते थे, देखो ऋग्वेद अ० ३। अ० ५। व० २। मं० ४ अ० १। सू० ५। मं ७ में कहा है कि जो कन्या अपने समान वर और जो ब्रह्मचारी अपने तुल्य कन्या से विवाह करते हैं वे अन्तरिक्ष के मध्य में ईश्वर से स्थापित सूर्य और चन्द्रमा नक्षत्रों के तुल्य शोभित होते हैं।

तमिन्नये ३ व समना समानमभि कृत्वा पुनती धीति रश्याः।
ससस्य चर्मन्नधि चारु पृश्नेरग्रे रूप आरुपितं जबारु॥

य० अ० ३ मं० ३७ में कहा है कि जो स्त्री पुरुष विद्या अच्छी शिक्षा से युक्त अपनी इच्छा से एक दूसरे को पसन्द कर विवाह करते हैं, वह उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर सदा प्रसन्न रहते हैं।

इस कथन का मुख्य तात्पर्य यह है कि इन उपरोक्त गुणों में, जिस स्त्री से जिस पुरुष का और पुरुष से स्त्री को अधिक आनन्द मिले, उन्हीं का परस्पर विवाह करना चाहिये।

प्यारे मित्रो! प्राचीनकाल में जब इस प्रकार विधि मिला कर विवाह होतेथे. तबही रूपवान, पराक्रमी, धनवान, गुणवान, यशवान पुष्कल भोगवाली. धर्मात्मा और १०० वर्षकी आयुवाली सन्तान उत्पन्नहोती थी।

इसके उपरान्त बहुधा जातियों में विवाह ठेके पर होता है अर्थात् पहिले क़रार होजाता है कि कितने रुपये ख़र्च करने पड़ेंगे। हमारी समझ में इसमें भी सर्वथा हानि है, क्योंकि कहीं कहीं उतना धन न होनेके कारण उत्तम और सुयोग्य जोड़े में अन्तर आजाता और लालच में आकर बेजोड़

जोड़ा मिलाया जाता है कि जिससे उपरोक्त हानि होती है । कभी २ लड़कीवाला लड़के के अर्थ क़र्ज़ ले उसको राज़ी करता है कि जिसकी बदौलत सूद वा असल में गृह वस्तु बेचकर फक्कड़ बन जाता है। भला, क्या वह हमारा देशीय सम्बन्धी नहीं है ? यदि है तो क्या उसकी कुदशा होने में हमारी नहीं होती । भला, अब उसको दुःख तथा उसके बाल बच्चों को तकलीफ होने में क्या हमको कुछ भी लाज नहीं आती । यदि आती है तो इस बुरी रीति को तुरन्त त्याग देना चाहिये ।

उपरोक्त बुराइयों के अतिरिक्त निम्नलिखित बातों का भी ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है कि जिससे दोनों ओर किसी प्रकार का क्लेश न हो, मन न बिगड़े, जैसा कि इस समय हमारे देश में हो रहा है, जिस के कारण भी भारत की प्रतिष्ठारूपी पताका छिन्न भिन्न होगई तथा हम नीम वहशी कहलाने लगे ।

❋ बरात में बहुत भीड़ भाड़ ले जाना ❋

प्रथम विचार करना चाहिये कि बरात ठाट बाट से ले जाने में दोनों तरफ़ क्लेश होता है तथा प्रबन्ध और और आदर सत्कार भी अच्छेप्रकार नहीं होपाता और धन भी ज्यादा ख़र्च होता है । अतएव थोड़े मनुष्य बरात में लेजाना श्रेष्ठ है। ऐसा करनेसे धनभी व्यर्थ खर्च नहींहोता और आनेवाले बराती जन प्रसन्न रहते हैं और अधिक भीड़ लेजानेपर अच्छे प्रकार आदर सत्कार न होने पर साथी जन यही कहते हैं कि फलानेकी बरात में गये थे, वहां खाने पीने का कुछ भी प्रबन्ध न था, सब भूखोंके मारे मरते थे, दाना घास भी समय पर न मिलता था, इधर लाला लेजाने के समय तो बड़ी सीप साप करते थे, परन्तु वहां दुम दबाये जनवासेही में बैठेरहे ।

❋ बखेर ❋

बखेर करना सब प्रकारसे हानिदायक है, क्योंकि लालच बुरीबलाहै, बखेर का नाम सुनकर दूर दूर के भंगी आदि के साथ लूले, लंगड़े, अपाहज, कंगले, दुर्बल भी इकट्ठे होते हैं, इधर नगर निवासी छोटे बड़े जन अटारियों तथा बाज़ारों में ठट्ठ के ठट्ठ लग जाते हैं । बखेर करनेवाले वहांपर मुट्ठियां अधिक मारते हैं, जहां स्त्रियों तथा मनुष्यों के समूह अधिक होते हैं । मुट्ठीके चलतेही हज़ारों स्त्री पुरुष बाल बच्चे तले ऊपर गिरते हैं कि जिससे

अवश्य ही दश बीस के चोट आती तथा एक आध अधमरे भी हो जाते हैं। अन्धे, लंगड़े, लूले आदि की अत्यंत कुगति होती है और ऐसा कुहराम पड़ता है कि कोई किसी की नहीं सुनता। इधर ऊपर से मुट्ठी धड़ाधड़ चली आती है, किसी की नाक कान में लगता है वह वैसा ही रह जाता है लुचे गुंडे स्त्रियों की ऐसी कुदशा देख उनकी नथ आदि में हाथ मार कर भागते हैं कि जिससे नाक भी फट जाती है। समधी के दरवाज़े पर तो झुंड के झुंड लग जाते हैं, जब वहां रुपयों की मुट्ठी चलती है उस समय लूटनेवालों को बेहोशी हो जाती है। जो वहाँ दुर्दशा होती है वह देखनेही से जानी जाती है। भला बताइये तो, इस बखेर में क्या लाभ, कि जिसमें ऐसे ऐसे कौतुक हों तथा धन भी व्यर्थ जावे? जितना रुपया फेंका जाता है, उस में से आधे से अधिक मिट्टी आदि में चला जाता है, बाक़ी एक तिहाई हट्टे कट्टे भंगियों को मिलता, शेष रहा सो सामान्य जनों को। लूले लँगड़े अपाहिजों के हाथ कुछभी नहीं आता, वरन् उनका काम तमाम हो जाता है, अनेकों के चोट आ जाती, किसी की पहुंची, छल्ला, नथनी, खडुये, अँगूठी आदि जाते रहते। इस सूरत में लानेवाले लालाजी की कुछ लोग प्रशंसा भी करते हों; पर बहुधा वे जन कि जिनके चोट आ जाती या जिनकी कोई चीज़ जाती रहती है, वह सब लालाजी के नाम को रोते हैं। जिन मनुष्यों को कुछ नहीं मिलता वह कहते हैं "बखेर का नाम था, कहीं कहीं पैसे फेंकते थे, ऐसे फेंकने से क्या होता है?"

❀ बाग़ बहारी अर्थात् फूलटट्टी ❀

फूल टट्टी की वर्त्तमान समय में वह चर्चा है कि रङ्गीन काग़ज़ और और अबरक के फूलों के स्थानपर (जो वहभी फ़जूलख़र्ची में कम न थे) हुंडी, नोट, चांदी सोने की कटोरियां, बादाम रुपये अशर्फ़ियों तक के तख़्तों में लगानेकी नौबत आ पहुंची। यों तो सब अपने रुपये और माल की रक्षा करते हैं, परन्तु हमारे देशी भाई आंखों के सामने खड़े होकर खुशीसे लुटवा देते हैं। कुछ लाभ नहीं उठाते, हां यह अवश्यमेव सुनने में आता है कि फलाने लाला या साहूकारकी बरातमें फूल टट्टी अच्छी थी, हरचन्द बचाई गई पर न बची, लड़कीवालेके द्वार तक न पहुंचने पाई कि फूल टट्टी लुटगई। अब विचार करने का स्थान है कि विवाह के कार्यकी प्रसन्नता के पहिले लूटने की अशुभ वाणी मुँह से निकलना कि 'अमुक

की फूलपट्टी लुट गई' कैसा बुरा है । इसके सिवाय इसमें लट्ठ भी चल जाते हैं, टोपी तथा हिम्मामे उतर जाते हैं तब वह फूल हाथ आते हैं, मानों लूटनेवालों की इज्जत जानेपर कुछ मिलता है, बहुधा मजिस्ट्रेट तक नौबत पहुंचती है । प्यारे भाइयों सच पूछो तो आरम्भ हीं में ग़मी का सामान हो जाता है ।

❀ आतिशबाज़ी ❀

इससे न कोई संसार का लाभ न पारलौकिक, परन्तु वर्षों का उपार्जन किया हुआ धन क्षणमात्र में जलाकर राखकी ढेरी बना देते हैं । इस प्रकार भीर भाड़ होती है कि एक के ऊपर दस २ गिरते हैं, एक इधर जाता एक उधर, यहां तक धक्कापेल मचती है कि बहुधा बेदम होजाते हैं । किसी की पैर की उँगली पिची, किसी की दाढ़ी जली, किसी की भोंहों तथा मूंछो का सफ़ाया हुआ, किसी का दुपट्टा तथा किसी का अँगरखा जल गया, किसी किसी के हाथ पांव भुन जाते हैं । बहुधा मकानों के छप्परों में आग लग जाती है कि जिससे हाहाकार मचजाता है, बहुधा उनमें नुक़सान हो जाते हैं कभी कभी मनुष्य तथा पशु भी जल कर प्राण त्यागते हैं ।

इसके अतिरिक्त वायु बिगड़ जाती है कि जिससे प्राणीमात्र की आरोग्यता में अन्तर पड़जाता है और सबका पाप समधीके सिर पर चढ़ता है, तिस पर तुर्रा यह कि घरवालों को कसरत कामों से घर फूँक के भी तमाशा देखने की नौबत नहीं पहुंचती है ।

❀ रण्डी का नाच ❀

रण्डियों के नाच ने तो भारत को ग़ारत करदिया । क्योंकि तबला सारंगीके बिना भारतवासियों को कल नहीं पड़ती । बरात के आने जानेवालों की वह जीवन प्राण है, समधी तथा समधिन का पेट उसके बिना नही भरता । जहां बरात चली, विषयीजन बिना बुलाये चलने लगते हैं, जो रुपया उसको दियागया, उसका तो सत्यानाश हुआ ही, उसके साथ ही बहुत सी हानि होने के मार्ग खुल जाते हैं। नाच ही में कुमार्गी मित्र उत्पन्न हो जाते हैं, नाच ही में हमारे देशके धनाढ्य साहूकार लज्जा को तिलांजलि दे देते हैं, नाच ही में इन हरामज़ादियों को शिकार फासने तथा नौजवानों का सत्यानाश मारने का समय (मौक़ा) हाथ लगता है। बाप बेटे, भाई, भतीजे

सब एक महफ़िल में बैठ लज्जाका परदा डालकर सब अच्छे प्रकार घूरते तथा आंखें सेकते हैं।

यह भी महफ़िलों में ठुमरी, टप्पा, बारहमासा, ग़ज़ल आदि इश्क विरह, वस्ल, इश्तियाक़, इन्तज़ार को गाती हैं, तिस पर तुर्रा यह है कि यह नौजवान खूबसूरत शृंगार किये हुए सुरीली आवाज़ से ऐसे ऐसे तीर हाव भाव कटाक्ष से मारती हैं कि जिनको सुनकर स्त्री पुरुष ऐसे घायल होजाते हैं कि फिर उनको सिवाय इश्क़, वस्ल और प्यार के कुछ भी नहीं सूझता।

सुनिये किसी महात्मा ने कहा है—

दर्शनात् हरते चित्तं स्पर्शनात् हरते बलम्।
मैथुनात् हरते वीर्य्यं वेश्या साक्षाद्राक्षसी॥

दर्शन से चित्त, छूने से बल, मैथुन से वीर्य्य जाता है, अतः वेश्या को साक्षात् राक्षसी के समान जानो।

तिस पर भी तो बाप बेटे को कुछ नहीं समझता, जहां आंख लगी चकनाचूर हो जाते हैं, प्रतिष्ठा तथा जवानी को खोकर बदनामी का तौक़ गले में पहिनते हैं, अनेकान इश्क के नशे में चूर होकर घर बार बेच कर दो दो दानों को मारे २ फिरते हैं, कोई धन कमा कमा कर इनकी भेंट चढ़ाते हैं और स्वयं निर्धन हो महा दुःखी होते हैं। सच पूछो तो अपनी करनी का फल भोगते हैं, क्योंकि प्रथम तो प्रत्येक उत्सव अर्थात् लड़का होने, नामकरण, मुण्डन, सगाई विवाह के उपरान्त जन्माष्टमी, रासलीला, होली, दिवाली, दशहरा, वसन्त आदि पर बुलवा २ कर इन नौजवानों को रसभरी आवाज़ तथा मधुभरी आखें दिखलाते हैं कि जिससे बहुधा रण्डीबाज़ होजाते हैं तथा आतिशक सूज़ाक आदि बीमारियां घेर लेती हैं कि जिनकी आग में वे खुद भुनते रहते तथा औलाद को निराश छोड़ जाते हैं।

अनेकानेक जन रण्डियों के नाज़ नखरे तथा बनाव शृङ्गार आदि पर ऐसे मोहित होजाते हैं कि घर की विवाहिता स्त्रियों के पास तक नहीं जाते, नाना प्रकार के दोष उनपर धरकर मुंह से बोलना भी अच्छा नहीं समझते, वह बिचारी दुःखों में रात दिन रोती रहती हैं।

बहुधा स्त्रियां जो महफ़िल का नाच देख लेती हैं उनपर इसका ऐसा बुरा असर होता है कि जिससे घर के घर उजड़ जाते हैं, क्योंकि जब वे देखती हैं कि सम्पूर्ण महफ़िल के लोग उस मालजादी की ओर टकटकी लगाये हुए उसके नाज़ नखरे सह रहे हैं, यहां तक कि जब वह थूकने का इरादा करती है तो एक आदमी उगालदान लेकर हाज़िर होता है। ऐसे ही यदि पान खाने की ज़रूरत हुई तो भी निहायत नाज़ तथा अदब के साथ मौजूद किया जाता है। इसके उपरान्त वह दुष्टा नीचे से ऊपर तक सोने चांदी के आभूषणों तथा अतलस, गुलबदन, कमखाब, सासनलेट, गिरंट आदि बहुमूल्यवान् वस्त्रों के पिसवाजको, एक २ दिन में चार २ दफ़े नई क़िस्म के बदलती है, इतर फुलेल की लपटें उससे चली आती देखकर विद्याहीन स्त्रियों के मन में बस जाती है कि जिसका आख़ीर नतीजा यह होता है कि बहुधा वहीं खुल्लमखुल्ला लज्जाको त्याग रण्डी बनकर गुलछर्रे उड़ाने लगती हैं कोई२ रेल पर सवारहो अन्य देशों में जा अपने मन की आशा पूर्ण करती है, क्या यह हमारी तुम्हारी बहू बेटियां नहीं हैं? यदि हैं तो फिर कैसे शोक का स्थान है कि कुछ भी विचार न कर आंखों पर पट्टी बांधे हुए हम चले जावें।

इसके अनन्तर जब दर्वाज़ोंपर रण्डियां गाली गाती हैं, उधर से उस का जवाब होता है। देखिये उस समय कैसे अपशब्द बोले जाते हैं कि जिनको अन्य देशीय सुनकर हँसते २ पेट फुला कहते हैं कि इन्होंने तो रण्डियों को मातकर दिया। धिक्कार है ऐसी सास आदिपर जो मनुष्यों के सम्मुख ऐसे २ शब्द उच्चारण करें? अथवा रण्डियों से इस प्रकार की गालियां सुनकर भाई, बन्धु, माता, पिता आदि की किञ्चित् लाज न करें और गृह के बीच घूंघट में रहें तथा आवाज़ से बात भी न कहें। सच पूछो तो विवाह क्या है, मानो परदेवालियों को बेशर्म बनाना है, इसपर तुर्रा यह कि खुश होकर रण्डियोंको रुपया देती हैं प्यारे सुजनों! इन रण्डियों के नाच के ही कारण जब मनुष्य वेश्यागामी होजाते हैं तो वे अपने धर्म कर्म पर भी धता भेज देते हैं, जहां नाच होता है दस पांच मुड़ जाते हैं। इसके उपरान्त जो रुपया उत्सव तथा खुशियों में उनको दिया जाता है, उससे बताओ 'बकराईद' में वह क्या करती हैं? वह हत्या भी हमारे तुम्हारे सिरपर होती है, क्योंकि जब हमको यह बात प्रकट है कि यदि इनके पास रुपया न होगा

तो हाथ मल कर रह जावेंगी, फिर भला बताओ तो अब कौन अपराधी है ? रण्डियों के गान को सुनिये, वे क्या कहती हैं—

शुभ काज को छांड़ कुकाज रचें, धन जात है व्यर्थ सदा तिनको,
एक रांड बुलाय नचावत हैं, नहिं आवत लाज ज़रा जिनको।
मिरदंग भने धृक है ! धृक है सुरताल पुछे, किनको किनको ?
तब उत्तर रांड बतावत है धृक है इनको, इनको, इनको ॥

यदि बुद्धिमानी से पक्षपात त्याग कर विचार किया जावे तो प्रत्यक्ष प्रकट हो जावेगा कि रण्डियों के नाच ही के कारण देश में निम्नलिखित हत्याओं की जड़ पड़ गई—

(१) बालहत्या, (२) स्त्री हत्या, (३) पुत्री हत्या, (४) गौ हत्या, (५) विश्वहत्या, (६) कुलहत्या, (७) आत्महत्या, (८) गुरुहत्या, (९) ब्रह्महत्या।

अथोपरान्त भक्ति तथा योग की हानि, धर्म अथवा ईश्वर में श्रद्धा का अभाव, सत्सङ्ग वा मित्रता की हानि होती है।

प्रियवरो ! यदि आपके विचार में भी उपरोक्त वार्त्ता ठीक हो तो शीघ्र भारत-सन्तान के उद्धार के अर्थ वेश्याओं के नाच को त्याग दीजिये वरना सम्मति देने से आप भी दोषी होंगे।

❀ भांड ❀

ज्योंही वेश्याओं के नाच से निश्चिन्त हुए त्योंही भांडों का लशकर बरसाती मेंढकों की तरह भाँति भांति की बोली बोलता हुआ निकल पड़ा, अब लगीं तालियां बजने, कोई किसी की घुटी खोपड़ी में चपत जमाता है, कोई गधे की भांति चिल्लाता, एक म्याऊँ, एक फुस, अर्थात् अनेक प्रकार के कोलाहल मचाते तथा ऐसी ऐसी नक़ल बनाते सुनाते कि लालाजी, सेठजी, पण्डितजी आदि की प्रतिष्ठा में पानी पड़जाता है। ऐसे ऐसे शब्दोच्चारण करते हैं कि जिनके लिखने में हमको लज्जा आती है परन्तु उस सभा के बैठनेवाले जो सभ्य कहलाते हैं कुछ लाज नहीं करते वरन् प्रसन्न चित्त होकर हँसते हँसते अपना पेट फुलाते तथा पारितोषिक प्रदान करते हैं।

प्यारे सुजनों ! इन्हीं व्यर्थ बातों के कारण हमारी सन्तानों का

सत्यानाश मारागया। इस कारण इन मिथ्या प्रपंचों को शीघ्र त्यागकर दीजिये कि जिसके कारण इस देश का चटपट होगया। कैसे पश्चात्ताप का स्थान है कि जहां प्राचीन समय में प्रत्येक उत्सवों में ऋषि मुनि महात्मा जनों के सत्योपदेश होते थे, वहां रंडी तथा लौंडे का नाच या भांति भांति की नक़लें आदि तमाशे दिखलाये जाते हैं, हा शोक! हा शोक!! हा शोक!!!

अथोपरान्त स्त्रियों को बाज़ार तथा गली कूचे वा घर में फूहर गाली अथवा गीत न गाना चाहिये, हां जिनमें मर्यादा के शब्द हों उनको कोमल वाणी से गाना भला है। क्योंकि युवतियों को युवाअवस्था में निलज्ज शब्द काढ़ना मानों बारूद की चिनगारी छोड़ना है तथा ऐसेही स्वभाव भी बिगड़ जाता है, चित्त विकारों से भरजाता है, मन विषय की ओर दौड़ने लगता है, फिर उसका साधना अत्यन्त ही कठिन वरन् दुस्तर होजाता है।

उचित है कि मन को पहिले ही से विषय रस की ओर न झुकने देवें, यौवन मतवाले के हाथ में विषय रसरूपी हथियार देकर अपने हितकारी सत्य गुणों का नाश न करावें।

अथोपरान्त दोनों ओर से ऐसा कोई काम न करना चाहिये कि जिससे आपस में प्रेम न रहे। यथा बहुधा बरातों में दाने घास परोसे आदि तनिक तनिकसी बातों ऐसे में झगड़े डालदेते हैंकि जिससे समधियों के मनों में अन्तर पड़जाता है कि जिसके कारण लाखों देने पर भी आनन्द नहीं आता क्योंकि कहा है—

जहां गांठ तहँ रस नहीं, यही प्रीति की बान।

सच है बिना प्रेम के सर्वस्व मिलने पर भी प्रसन्नता नहीं होती, अतः प्रीतिपूर्वक प्रत्येक कार्य को करें कि जिससे दोनों तरफ़ प्रशंसा हो, पर ख़र्च व्यर्थ न हो। प्यारे सुजनो! तनिक तो विचारांश करो कि जब एक की बुराई हुई तो क्या वह हमारा सम्बन्धी नहीं है? क्या वह हमारी बदनामी नहीं हुई? सच पूछो तो ऐसे सम्बन्धियों पर घता भेजना उचित है, क्योंकि प्यारे भाइयो! यह विवाह का समय आनन्द तथा प्रेम बरसाने या मृदुल कोमल वार्त्तालाप करने का है न कि इस समय में एक दूसरे के विपरीत लीला रचकर युद्ध का सामान इकट्ठा करलेना। यह सर्वथा मूर्खता की बात है। अतः परस्पर एक दूसरे की भलाई तन, मन से विचार कार्यों को कर यश लेना उचित है। अथोपरान्त वे मनुष्य जो मन से दोनों की धूर

चाहते तथा बाहर से बहुत लल्लो पत्तो करते हैं, उनकी वार्त्तापर कदापि ध्यान न दो। क्योंकि इस संसार में दूसरेको निरन्तर प्रसन्न करने के लिये प्रिय बोलने के प्रशंसक लोग बहुत हैं परन्तु सुनने में अप्रिय पर वास्तव में कल्याण करने वाला हो, उसका बोलनेवाला तथा सुननेवाला पुरुष दुर्लभ है, यथा—

परुषा बहवो राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्यतु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्ल्लभः॥

बहुधा गुप्त शत्रु तथा दुष्ट लोग सम्मुख उसकी हाँ में हाँ मिलाते हैं और पीछे बुराई निकाल कर दर्शाते हैं, तथा सज्जन लोग मुँह पर प्रत्येक वस्तु के गुण दोष वर्णन करते हैं, परोक्ष में प्रशंसा करते हैं, अतः दोनों समधियों आदि को योग्य है कि आप दो पर दो, प्रत्येक बात का निर्णय कर जो दोनों के लाभदायक हों अङ्गीकार करें। जिससे दोनों ही आनन्द में रहें। यही विवाह का मुख्य फल है।

वर्त्तमान समय में वर तथा कन्याओं में जो प्रतिज्ञा कराई जाती है, वह महादेव वा पार्वती के नामसे होती है इससे जान पड़ता है कि महादेव वा पार्वती के विवाह से प्रथम प्रतिज्ञायें नहीं होती थीं। मान्यवरो यह प्रतिज्ञायें वेदोक्त तथा सृष्टि के आदि से चली आती हैं, इसलिये आप भी वेदोक्त प्रतिज्ञायें कराइये जिसप्रकार "श्रीस्वामीदयानन्द जी महाराज ने" अपनी बनाई "संस्कारविधि" में लिखी हैं। और वर तथा कन्यासे ही इनप्रतिज्ञाओं को उच्चारण कराना योग्य है, क्योंकि सचमुच इन्हीं वचनोंका नाम विवाह है।

वर्त्तमान समय के पण्डित लोग विवाह के समय हवन पूर्ण रीति से नहीं कराते, वरन् गणेश (महादेव के पुत्र) का पूजन वेदोक्तमंत्र (गणानां त्वा०) आदि से करते तथा बीच बीच में दक्षिणा लेते जाते हैं, जिसकी आज्ञा प्राचीनग्रंथों में नहीं मिलती और बुद्धि के भी विरुद्ध है। क्योंकि सर्व जन जानते हैं कि महादेवपार्वती के विवाह के पश्चात् इन गणेशजी का जन्म हुआ होगा, तो इससे प्रथम जो हमारे पूज्यों के विवाह संस्कार हुए होंगे उनमें इन गणेश का पूजन कैसे हुआ होगा? ज्ञात होता है कि प्रथम सब गणों के ईश परमात्मा का पूजन होता था, जिसके स्थान पर अब मिट्टी के गणेश बनाकर पूजन कराकर दक्षिणा लेने लगे।

मान्यवरो ! इस प्रकार दक्षिणा देना भी अत्यन्त बुरा है। क्योंकि बीच में पंडित तथा यजमान में दक्षिणा का झगड़ा होनेसे वैदिक संस्कार का स्वाद बिगड़ जाता तथा श्रोताओं को आनन्द नहीं आता, अतः संस्कार के अन्त में यथारुचि दक्षिणा देना श्रेष्ठ है।

तदुपरान्त वर्त्तमान समय में विवाह संस्कार होने के पश्चात् पुत्र तथा पुत्रीवाले दान भी करते हैं जो भूड़ दक्षिणा अथवा देहरी के नाम से ब्राह्मणों को मिलती है जिसमें प्रतिवर्ष हज़ारों रुपयों के दान हो जाते हैं। परन्तु वर्त्तमान समय की रीति से दाताओं से लेनेवालों को एक दो दिन के भोजनों के सिवा कुछ लाभ नहीं होता, अतः दान करनेकी रीतों को विचार कर दान करना अभीष्ट है, जिससे दान का फल दाताओं को प्राप्त हो तथा देश का भी कल्याण हो, धन भी व्यर्थ नष्ट न होने पावे क्योंकि धन एक उत्तम पदार्थ है।

❋ धन की महिमा ❋

हे सज्जनों ! इसी लक्ष्मी से सब कार्य संसार के चलते हैं, जितनी बातें हमारे जीवन के लिये आवश्यक हैं वा जिनसे हमारा जीवन भोग विलास सुख चैन तथा आराम से कटता है वे सब इन्हीं लक्ष्मी जी के अधीन हैं। क्योंकि संसार भर के मनुष्य, जिनको कुछ भी बोध तथा ज्ञान है इस बात को मानते हैं तथा प्रतिदिन हमारी परीक्षा में भी आ रहा है कि धन ही से गौरवता, प्रतिष्ठा, विभव, ऐश्वर्य, सुख, धर्म तथा प्रभुता प्राप्त होती है। पारमार्थिक काम भी बहुधा इसी के द्वारा निकलते हैं। क्या राजा क्या प्रजा, सब इसी के लालची तथा इसी के लोभी बने भटकते रहते हैं। जैसा कि—

टका हर्ता टका कर्ता टका मोक्षप्रदायका।
टका सर्वत्र पूज्यन्ते बिन टका टकटकायते ॥

आत्मा की शुद्धि ज्ञान से, शरीर की आरोग्यता से, आरोग्यता उपयोगी आहार विहार से, संयमसे सुनियम निश्चिन्तता से, निश्चिन्तता धन से प्राप्त होती है। विद्याध्ययन में पुस्तकों तथा पत्रों की आवश्यकता होती है जो बिना धन के नहीं मिल सकते। संसार में प्रतिष्ठा की सब कोई

अभिलाषा रखता है । प्रतिष्ठा राज्यसम्मान से, राज्य सम्मान विद्या से, विद्या शिक्षा से, शिक्षा गुरु सेवा से और गुरु सेवा धन से होती है । लोकेन्द्र, सुरेन्द्र, महेन्द्र, राना राव, साहूकार, महाजन, सेठ, नव्वाब सब लक्ष्मी जी ही के खेल हैं । सी. आई. ई. सितारे हिन्द आदि उपाधियां, सब लक्ष्मी जी ही की तो उपाधें हैं । निदान उस सर्वशक्तिमान् ने धन को एक विचित्र शक्ति दी है, मानो उसको (उप) सर्वशक्तिमान् बना दिया है । जिनके बाप दादे निर्धनता के कारण जुगनू से चमकते थे, आज उनके बेटे धन की बदौलत सूरज के समान दिगन्तर में प्रकाशित हैं जिन घरों में प्रकाश चन्द्रमा की चन्द्रिका को ले जाता था, आज उन घरों में घोर अन्धकार छाया हुआ है । ये चन्द्रवंशी तथा सूर्यवंशी जिनका प्रभाव चन्द्रदिवाकर की भांति समस्त भूमण्डल में व्याप्त हो रहा था वह अब बहुतेरे क़र्ज़े के बन्धन में ऐसे जकड़े हुए हैं कि जिससे पल मात्र चैन नहीं पड़ता । जिनकी जाति पांति का कभी नाम भी सुनने में नहीं आता था, वह राय राव इत्यादि कहलाते हैं । हम क्या वरन् सब जगत् के मनुष्य इस बात को कहते हैं कि ईश्वर ने सम्पूर्ण सृष्टि से धन ही को उत्तम पद दिया है, संसार के सब काम तथा सम्बन्ध उसी के अधीन रक्खे हैं, उस विश्वम्भर के पीछे हमारी आवश्यकता तथा सुखसाधन के निमित्त धन से बढ़ कर कोई पदार्थ नहीं, ऐसा ही भर्तृहरि जी ने कहा है ।

पद्मपुराण स्वर्ग तृतीय खण्ड अध्याय ६४ श्लोक ३७ वा ३८ में लिखा है कि माता, पिता, पुत्र, भ्राता, सुहृद, मित्र, सखा, स्त्रियाँ निर्धन पुरुष को समय पर छोड़ देती हैं, जिस प्रकार हंस वर्षा ऋतु के पीछे नदियों को छोड़ देते हैं ॥ ३७ ॥

धनवान् ही कुलीन, पण्डित, बहुश्रुत गुणज्ञ तथा दर्शनीय हैं । ऐसाही उद्योगपर्व अध्याय ७२, चाणक्यनीति तथा हितोपदेश में भी कहा है । किसी महात्मा का वचन है कि शील, शौच, शान्ति, चातुर्य, मधुरता, कुलीनता यह सब निर्धन मनुष्य को शोभा नहीं देते । भर्तृहरि जी ने लिखा है कि शील पर्वत से गिरकर चूर होजाय, शूरता भी जातीरहे, जाति भी रसातल को चलीजाय, परन्तु केवल एक धन बचारहे, क्योंकि उसके बिना सर्व गुण तृण के समान जान पड़ते हैं । ऐसा ही युधिष्ठिर ने यक्षसे कहा तथा अर्जुन को उपदेश दिया है कि धन से धर्म, अर्थ, काम मोक्ष, और कीर्त्ति की उन्नति होती है, इसी कारण अथर्वकाण्ड १३ अनु० १ व० ४ में लिखा है—

दिवं च रोह पृथिवीं च रोह राष्ट्रं च रोह द्रविणं च रोह ।
प्रजां च रोहामृतं च रोह रोहितेन तन्वं १ संस्पृशस्व ॥

परमेश्वर आज्ञा देता है कि हे मनुष्यो ! शरीर को आरोग्य रख कर उद्योग द्वारा धनादि पदार्थों को प्राप्त करो । यजुर्वेद अ० ४० मं० २ में लिखा है कि हे मनुष्यो ! जब तक जियो तब तक उद्योग करते रहो, आलसी कभी न हो; जैसा कि—

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः ॥

बाल्मीकीय रामायण किष्किन्धाकाण्ड सर्ग १२ में लिखा है कि उत्साह ही श्रेष्ठ है, उत्साही मनुष्यों को कुछ दुर्लभ नहीं, यही लक्ष्मी तथा सुख का मूल है। य० अ० २० मं० ७२ में कहा है कि ऐश्वर्य के बिना राज्य, राज्य के बिना राजलक्ष्मी और राजलक्ष्मीके बिना भोग प्राप्त नहीं होते, इसलिये नित्य पुरुषार्थ करना चाहिये ।

वरुणः क्षत्रमिन्द्रियं भगेन सविता श्रियम् ।
सुत्रामा यशसा बलं दधाना यज्ञमाशत ॥

य० अ० २१ मं० ३८ में कहा है कि जिस प्रकार विद्वान् लोग ब्रह्मचर्य्य धर्म के आचरण विद्या सत्संग आदि से सब सुख प्राप्त करते हैं, उसी भांति पुरुषार्थ से लक्ष्मी को प्राप्त होवें ।

होता यक्षत् सुरेतसमृषभं नर्यापसंत्वष्टारमिन्द्रमश्विना भिषजं न सरस्वतीमोजो न जूतिरिन्द्रियं वृको न रभसो भिषग् यशः सुरया भेषजꣳश्रिया न मासरं पयः सोमः परिस्रुता घृतं मधु व्यन्त्वाज्यस्य होतर्यज ।

क्योंकि गृहस्थाश्रम घोड़े आदि उत्तम पशु और वीर अर्थात् बलवान् योधाओं और सुवर्ण आदि धन के बिना यह यज्ञ पूर्ण नहीं होता अर्थात् आनन्द नहीं आता, इसलिये सदा पुरुषार्थ करना उचित है, जैसा य० अ० ८ मं० ६३ में कहा है—

आ पवस्व हिरण्यवदश्ववत्सोम वीरवत् ।
वाजं गोमन्तमा भर स्वाहा ॥

प्रिय सज्जन पुरुषों! संसार में जो कुछ होता है वह सब पुरुषार्थ का ही फल जानों, वेदों का भी यही सिद्धान्त है, यथा—

श्रमेण तपसा सृष्टा ब्राह्मणा वित्तेश्रिताः ॥

सब स्त्री पुरुष श्रम करके सुखों को प्राप्त करते रहें, इसके उपरान्त य० अ० ६ मं० २२ में भी लिखा है कि मनुष्यों तुम आलस्य मत करो, सदैव पुरुषार्थ करते रहो। भर्तृहरिजी ने अपनी राजनीति में भी लिखा है कि आलस्य के समान मनुष्य के शरीर में कोई रिपु नहीं है, इसलिये भाग्य के भरोसे बैठकर उद्योग न करना अत्यन्त अज्ञानता का कारण है। शास्त्र में प्रारब्ध को बीज के समान माना है। मान्यवरो! विचार करने का स्थान है कि यदि किसी पुरुष के पास बीज हो और वह पृथ्वी आदि में न बोकर पानी आदि से उसका उचित वा योग्य उपाय न करे तो कदापि अन्न आदि की उत्पत्ति नहीं हो सकती। हां प्रारब्धरूपी भूमि में उद्योगरूपी जल से सेचन करने से ही कार्यरूपी अंकुर निकलकर मनुष्यों को सुख होता है। चाणक्यनीति में लिखा है कि उद्योग दरिद्रता का नाश करता है-"उद्योगे नास्ति दारिद्रयम्।"

भर्तृहरिजी ने कहा है कि उद्योग के समान मनुष्य का कोई बन्धु नहीं, याज्ञवल्क्य जी भी कहते हैं कि एक चक्र से रथ नहीं चलता, अयोध्या काण्ड सर्ग २ श्लोक १६ में लक्ष्मणजी का वचन है कि जो लोग डरपोक तथा वीर्यहीन होते हैं वही हाथपर हाथ धरे बैठे रहते हैं, शूरवीर लोग उद्योग कर सुख प्राप्तकरते हैं, परन्तु यह भी स्मरण रहे कि अन्याय से प्राप्त किया धन सुख नहीं देता न अधिक दिन तक ठहरता है, वरन् चाणक्यजी के लेखानुसार ग्यारहवें वर्ष के प्राप्त होते ही मूल-सहित नष्ट हो जाता है—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते एकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥

आपने यह भी सुना होगा कि जो धन जिस प्रकार आता है वहउसी प्रकार जाता है, 'माले हराम बूद बजाये हराम रफ़्त।' अर्थात्-रहे न कोड़ी पाप की ज्यों आवे त्यों जाय॥

तत्पश्चात् जो मनुष्य दूसरों का द्रव्य झूठ बोलकर लेते हैं वह उनका सर्व प्रकार का नाश कर देता है, अतः ऐसे पुरुषों को पूर्ण सुख नहीं मिलता वरन् थाड़े ही दिनों में जड़ समेत नाश हो जाते हैं।

अधर्मेणैधतेतावत्ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलंतु विनश्यति ॥

इसके अतिरिक्त संसार में झूंठा, बेधर्मा आदि नाम से प्रसिद्ध हो जाते हैं, इसी लिये घूस आदि अधर्म से धन कमानेवालों की शुद्धि मिट्टी अथवा जल से नहीं होतीं, क्योंकि सम्पूर्ण शुद्धियों के बीच द्रव्य शुद्धिही मुख्य है। अर्थात् जो मनुष्य धर्म से धन को प्राप्त करता है वही शुद्ध कहाता है:—

सवषामेव शौचानामर्थशौचं परंस्मृतम् ।
योऽर्थशुचिर्हि स शुर्नचिमृद्धारि शुचिः शुचिः ॥

इसी हेतु परमात्मा ने यजुर्वेद में आज्ञा दी है कि हे मनुष्यों! तुम किसी के धनकी इच्छा मतकरो—'मा गृधः कस्यचिद्धनम् ।' इसी के अनुकूल ऋग्वेद अ० २। अ० ७। व० ११। मं० २। अ० ३। सू० २७। मं० ७ में कहा हैकि अन्याय से किसी के धन के ग्रहण करने की इच्छा न करो किन्तु धर्मयुक्त व्यवहारों से यथाशक्ति धन का संचय करते रहो और जो कोई चोरों की भांति द्रोह से पराये पदार्थों को लेते हैं वे धर्म को नहीं जानते, जैसा ऋग्वेद अ० २। अ० ६। व० ३२। मन्त्र १ अ० ३। सू० ३२। मं० १६ में कहा है।

इसीके अनुकूल मनुजी महाराज ने कहा है:कि धर्म से रहित धन को त्यागना उचित है। क्योंकि पाप से कमाई करनेवाला किसी कर्म के करने का अधिकारी नहीं रहता। इसी हेतु मनुजी यह उपदेश करते हैं कि अपने जीवन के अर्थ भी अधर्म से धन को प्राप्त न करना चाहिये।

न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं स्वात्मरक्षणम् ।
अन्यायेन तु योर्जीवेत्सर्वकर्मवहिष्कृतः ॥

अतः धर्मानुसार धन उपार्जन कर दानादि कार्य करो, ऐसा करने से ही कीर्ति होती है क्योंकि बिना इसके जीताहुआ मनुष्य मरे के समान है। अतः अन्य के धनको मिट्टी के समान त्यागना उचित है जैसा कि कहा है—

'परद्रव्येषु लोष्ठवत्'

क्योंकि पक्का त्याग, सब आचारों की जड़ तथा सब विचारोंका सार यही

है। इसके उपरान्त पाप के करनेवाले पुरुषों को ही दण्ड मिलता है, अन्य मनुष्य खाकर अलग होजाते हैं। जैसा कि विदुरजी महाराज का वचन है—

एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनाः।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते॥

मान्यवरो! फिर मोह में फँस कर सम्पूर्ण पाप सिरपर लेना वृथा है। अतः धर्मानुसार द्रव्य उपार्जन करने की टेव डालना उचित है। देखिये श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने कहा है कि संसार में थोड़े ही दिन रहना है अतः अधर्म से पृथ्वी का राज्य लेना भी वृथा जानो। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि जिस कार्य में धर्म की हानि होती हो उस कार्य को कदापि न करना चाहिये। देखिये विष्णुस्मृति अ० ३ श्लोक १८, १९, २० में लिखा है। जो धर्मशास्त्र के अनुकूल कार्य करते हैं ईश्वर उनकी सहायता करते हैं, जिनकी इन्द्रियाँ पाप में नहीं जातीं, जो अपनी स्त्री में सन्तुष्ट रहते हैं। ऐसा ही विदुर नीति में भी लिखा है। हे प्यारे भ्रातृगणो! सब मिलकर इन उपरोक्त आज्ञाओं के अनुकूल कार्य करके धन प्राप्त कर सुख तथा आनन्द को भोगो। जैसा ऋग्वेद मन्त्र १ अध्याय ३ सूत्र १५ मन्त्र ७ में लिखा है।

प्यारे सुजनो! बहुधा जन धन उपार्जन में तो अधिक परिश्रम करते हैं पर उसकी रक्षा में किञ्चित् ध्यान नहीं देते, न उस द्रव्य को यथायोग्य समयों पर यथावत् रीति से व्यय करते हैं कि जिसके कारण उनको उस धन से वह लाभ प्राप्त नहीं होते जो अन्य देशीय बुद्धिमान प्राप्त कर रहे हैं, वा हमारे प्राचीन पुरुषों ने फ़ज़ूलख़र्ची तथा कंजूसी दोनों को त्यागन कर यथार्थ-व्ययी बनकर आनन्द उड़ाते थे। इसी भांति वर्त्तमान समयमें भी बहुधा बुद्धिमान जातियों ने, जो उन्नति में सूर्यके समान प्रकाश कररही हैं, यथार्थ-व्यय ही पर अमल किया है। संसार के मनुष्य मात्र को अपने समान जाना तथा इनको बढ़ने फूलने फलने की आज्ञा दी कि जिसका यह फल हुआ कि जाति की जाति बुद्धिमान, विद्यावान्, चतुर होगई। अपने ख़र्च के निमित्त अत्यन्त उत्तम रीतें नियत कीं जिसका बदला यह मिला कि समस्त जाति धनाढ्य तथा निश्चिन्त होगई, जिसके कारण से जो आराम तथा सुख एक गोरे को मिलरहा है वह हमारे देशके धनवान साहूकारों को स्वप्न में भी प्राप्त नहीं होता। जिसका मुख्य कारण यही है कि हमारे देश

वाले द्रव्य को यथावत् रीतिसे खर्च करना नहीं जानते। देखिये, रईस तथा ज़मींदारों का धन क्या सदा फ़ज़ूलख़र्ची में नहीं जाता है ? महाजनों तथा साहूकारों की कंजूसी ने धन को इकट्ठा करने के उपरान्त धन से क्या कुछ अन्य काम लिया ? कृषकजनों की दशा देखकर क्या शोक नहीं आता ? हे प्यारे सुजनो ! यदि उपरोक्त क्लेश मेटा चाहो तो तनिक विचार में मेट सकते हो, क्योंकि हम तथा आप अपना धन फ़िज़ूलख़र्ची तथा मिथ्या लड्डो पत्तो में उठाकर आप भोंदू बनजाते हैं वा इस धन पर ऐसे मोहित होजाते हैं कि उसको प्राण बचने की आशा पर भी नहीं देते।

इसके अतिरिक्त हम लोग अपने उपार्जित धन को सम्पूर्ण कार्यों में व्यय करने के लिये विभाजित भी नहीं करते जिससे शारीरिक, मानसिक आत्मिक एवं सामाजिक यथार्थ उन्नति नहीं होती। देखिये अथर्वकाण्ड ३ मं० ७ "सब कुटुम्बी लोग जो धन धान्य कमावें उसमें अधिकांश भाग विपत्ति समय के लिये रक्खें एवं शेष धन के तीन भाग विद्या-वृद्धि और चार हिस्से सामान्य निर्वाह खान पान वस्त्र आदि में व्यय करें" महात्मा रामचन्द्रजी अपने सञ्चित द्रव्य के पांच भाग कर व्यय किया करते थे। यथा, एक धर्म में दूसरा यशप्रकाशनार्थ, तीसरा अपने खर्च में, चौथा भाई बन्धुओं के देने लेने और पांचवा विपत्ति काल के सहायतार्थ कोष में। अतएव प्यारे मित्रो ! हमको अब भी ऐसा ही करना चाहिये। एवं विवाहादि में भी भविष्यत् का भी ध्यान बनाये रहें। इसी से कहा है (उतने पांव पसारिये जितनी लांबी सोर)॥

जो कोई अपनी पदवी से अधिक बढ़ता है वह नाना प्रकार के दुःखों को भोगता है तथा बहुधा घमण्ड के नशे में चूर हो नामवरी में आकर द्रव्य में आग लगाते चले जाते हैं कि जिसके कारण ऋणी होकर देश विदेश मारे मारे फिरते हैं। बहुधा अपने बाप दादे के घर बार बग़ीचे बेंच कर नंगे होजाते हैं, बहुधा अन्न वस्त्र को तंग होकर चोरी आदि दुष्कर्म करते हैं क्या यह कम विपत्ति की बातें हैं ? जिन सज्जन पुरुषों के पास धन की अधिकता हो उनको भी इस धन को इन मिथ्या कार्यों में व्यय न करना चाहिये, क्योंकि उन्हीं बड़े लोगों की देखा देखी सामान्य जन भी करने लगते हैं। भगवद्गीता में लिखा है, यथा—

यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः ।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥

अतः आप परमेश्वर की आज्ञा के विपरीत मत चलिये कि जिस लीक पर अन्य जन चलने लग गये कि जिससे इस पवित्र भूमि का सौभाग्य जाता रहा, यह सब पाप भी आपके सिर होगा। हां गृह में खानपान उत्तम प्रकार से समयानुकूल पवित्रता के साथ नियत समयों पर अर्थात् दिन के १० बजे तथा रात्रि के ६ बजे पर होना आवश्यक है। प्रत्येक ऋतु के फल जो उत्तम २ स्वादिष्ट तथा लाभदायक हों खाने चाहियें। एवं विवाहोत्सव में प्रातःकाल कुछ उत्तम भोजन खाने के लिये जनवासे में भेजना अभीष्ट है तथा ग्रीष्म ऋतु में ठण्डाई अच्छे प्रकार से कि जिसमें गुलाब तथा केवड़ा भी पड़ा हो पिलावें, तथा खान पान आदि अच्छे प्रकार से दें। शाम को भोजनों के पीछे प्रत्येक को आध सेर दूध मिश्री-संयुक्त पिलाना चाहिये।

इसी भांति प्रत्येक प्रकार के प्रबन्ध भली भांति कर सम्पूर्ण बरातियों को प्रसन्न कर नामवरी लें, वह धन जो उधर मिथ्या लुटाया जाता है कि जिससे किञ्चित् लाभ नहीं होता तथा इधर खान पान में भी कुछ ध्यान नहीं है, चाहिये कि जितना हो सके उतना धन लड़की जमाई को दें कि जिससे उनका जीवन उत्तम प्रकार से व्यतीत हो, तथा आपको भी सदा परमानन्द हो। बहुत सा धन गोटा पट्ठा आदि की पोशाकों में व्यय न करो कि जिसमें रुपये के छः आने रह जाते हैं, जो जो पदार्थ दिये जावें वह भी अच्छे तथा काम के हों न कि पुरानी देगची, कलई की भड़क, भला ऐसे देने से क्या लाभ होता है?

दान-माहात्म्य

मान्यवरो! संसार में दान भी एक अद्भुत पदार्थ है जिसके बड़े बड़े माहात्म्य सुनने में आते हैं, प्रतिदिन नाम मात्र के साधू भी यह कह कर चिताया करते हैं कि "जो देगा सो पावेगा।"

तुलसी दिया अनूप है, दिया करो सब कोय।
कर का धरा न पाइहो, जो कर दिया न होय॥

पण्डित जन भी आपत्ति के समय यही उपदेश करते हैं कि दानकर सुख लीजिये। राजा कर्ण तथा हरिश्चन्द्र ने इसी के कारण इस संसार में यश पाकर अन्त को स्वर्ग पाया। ज्ञानी, अज्ञानी, उत्तम नीच, सेठ, साहूकार, स्त्री पुरुष प्रत्येक इसके गुणों को जानते हैं। इसके अतिरिक्त आपके वेदादि सत्यशास्त्रों में दान करने के बड़े बड़े माहात्म्य वर्णन किये हैं। देखिये यजुर्वेद अध्याय २८ मन्त्र २४ में लिखा है, जो मनुष्य सत्य विद्या आदि पदार्थों को दान करते हैं वे अतुल कीर्त्ति को पाकर सुखी होते हैं तथा अन्य को भी सुखी करते हैं—

होता यक्षत्समिधानं महद्यशः सुसमिद्धं वरेण्यमग्नि-मिन्द्रं वयोधसम्। गायत्रीं छन्द इन्द्रियं त्र्यविंगां वयोदध द्वेत्वाज्यस होतर्यज ॥

पराशरस्मृति में लिखा है कि दान से परम सुख तथा स्वर्ग मिलता है, अर्थात् दान करने से दोनों लोकों में प्रतिष्ठा होती है।

दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते।
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः ॥

महाभारत में भीष्मपितामह का वचन है कि तीनों लोक में दान से बढ़कर कल्याण करनेवाला कोई धर्म नहीं। विदुर महाराज ने कहा है कि दान करने से नाना प्रकार के सुख होते हैं। परशुराम जी ने दान देनेसे अतुल लाभ कहा है। महाराज युधिष्ठिर जी ने दान को परमशान्ति का कारण कहा है। शुक्रनीति तथा चाणक्यनीति में लिखा है कि बिना दान के एक दिन भी व्यतीत न करना चाहिये।

यथार्थ में दान करने से मनुष्य को संसार में सुख तथा परलोक में आनन्द प्राप्त होता है। परन्तु स्मरण रहे! परमेश्वर ने जितनी वस्तुएं संसारमें रची हैं उनके काम में लाने की एक विद्या भी बनाई है। जो मनुष्य उन वस्तुओं को उस विद्या के अनुकूल यथावत् काम में लाते हैं वे अपने कार्य को सिद्ध कर आनन्द को पाते हैं अन्यथा कार्य की सिद्धि नहीं होती तथा बहुधा क्लेश उठाने पड़ते हैं। क्या किसी ने ऊपर में बीज डालकर अन्न को काटा है? क्या बालू की दीवार से किसी ने अपने घर की रक्षा की? या किसी

ने नीमके पेड़ को लगा कर आम खाये हैं ? नहीं, वरन् अपने धन तथा बीज एवं परिश्रमको व्यर्थ खो कर नाना प्रकारके क्लेश को उठाया होगा।

प्यारे सज्जनों ! अब आप जो बिना विचार किये नाना प्रकार के अन्न वस्त्र, सोना, चांदी इत्यादि दान करते चलेजाते हैं तथा उनसे अक्षय फल की प्राप्ति की आशा रखते हो ; पर मान्यवरो, कभी आपने दान करने की रीतों को भी सुना या देखा है ? नहीं, फिर क्योंकर यथार्थ फल आपको मिलसकता है ? कदापि नहीं; वरन् विपरीत रीति के अनुसार कार्य करनेसे उपरोक्त किसानादि की भांति धनको व्यर्थ खोकर ईश्वरीय नियम के तोड़ने के कारण दंडभागी होना पड़ेगा। इसलिये सबसे प्रथम दाताओं को यह विचार करना योग्य है कि किस पदार्थ को किस प्रकार देने का नाम दान है ? देखिये, याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि स्वधर्म के अनुसार न्याय पूर्वक संचित कियेहुए द्रव्य को विधिवत् श्रद्धा करके जो याचकों के प्रति समर्पण करते हैं उसका नाम दान है, यथा—

न्यायार्जितधनं चापि विधिवद्यत्प्रदीयते ।
अर्थिभ्यः श्रद्धया युक्तं दानमेतदुदाहृतम् ॥

देखिये हितोपदेश में लिखा है 'दारिद्र्यै दीयते दानम्' अर्थात् दरिद्री को दान देना चाहिये। इसके उपरान्त—

वृथा वृष्टि समुद्रेषु वृथा तृप्तस्य भोजनम् ।
वृथादानं समर्थस्य वृथा दीपो दिवापि च ॥

जैसे समुद्र पर वर्षा व्यर्थ है, दिन के समय दीपक निष्प्रयोजन है, उसी भांति पेट भरे को भोजन कराना तथा धनवान् को दान देना व्यर्थ है।

अब इस विषय में विचार करना योग्य है कि दरिद्री कौन है ? प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि दरिद्री वह मनुष्य है जो अङ्गहीन अर्थात् लूला, लङ्गड़ा, गूंगा, बहरा, अन्धा वा असाध्य रोगी वा विधवा वा अनाथ जिन का पालनकर्त्ता कोई सम्बन्धी न हो वा ऐसा सत्पुरुष जो समय के हेरफेर से कंगाल होगये हों पर याचना करते सकुचते हों तो उनका अवश्य ही खान पान वस्त्र इत्यादि का सहारा करना चाहिये। क्योंकि दीनों की रक्षा करना परम आवश्यक है न कि हट्टे कट्टे सण्डे मुसण्डे, नाम के ब्राह्मण वा वैरागी साधुसन्तों की जो परिश्रम कर दो चार आठ आने रोज़ पैदा कर

सकते हैं, अच्छे प्रकार माल भेंट चढ़ा कर अपने को कृतार्थ मानते हैं कि जिसके कारण वर्त्तमान समय में 'एक चौथाई भारतवासी भीख मांग कर भोजन करते हैं।' क्योंकि जब मनुष्य देखते हैं कि बिना परिश्रम किये नाना प्रकार के पदार्थ घर बैठे चलेआते हैं तथा समस्त सेवा में रहते हैं, तो फिर क्यों परिश्रम करें ? विद्या पढ़ने की कुछ आवश्यकता नहीं। आचरण कैसा ही हो, जहां तिलक छापे लगाये, कंठी माला गले में डाली, पत्रा बगल में दाबा वा जटा रखा ली, चिमटा हाथ में लिया, पंडित जी, महात्मा जी, योगी महाराज, बाबाजी आदि बन मज़े से चैन उड़ाते हैं। बहुधा उनमें से धन जमा कर नाना प्रकार के व्योपार करते, अनेकान् नाम मात्र के ब्राह्मण दो दो रुपये की नौकरी कर लालाजी, मुन्शी जी तथा ठाकुर साहब के पीछे लठ लेकर चलते हैं, नीचे आसन पर बैठते हैं, पानी भर कर पिलाते हैं, बोझ लेकर चलते तथा भोजन बनाकर खिलाते हैं, उनके बच्चों का लालन पालन कर पशुओं आदि की सेवा करते हैं।

इसके उपरान्त नवयुवकों तथा स्त्रियों के कान फूंक कण्ठी गले में बांध तन, मन, धन, स्वामी के अर्पण करा अच्छे प्रकार आनन्द भोगते हैं। कोई कोई जंगलों में मढ़ी बनाकर रहते हैं, बहुधा प्रकटरूप से स्त्रियों को साथ रखते हैं, बहुधा पर स्त्री, वेश्यागमन आदि कर चरस भंग आदि के दम भरते हैं। कोई कोई खड़ेश्वरी बन ऊंची धुनाकर लेते हैं। कोई फूले पर फूल अन्न त्यागन कर दूध उड़ाते तथा दूधाधारी कहलाते हैं। कोई सदा नंगे ही रहा करते हैं, कोई पञ्चाग्नि तापते हैं, कोई मौन धारण कर लेते हैं, कोई खाक पर लेट आयु व्यतीत करते हैं। इनके सिवाय पुरोहित, आचार्य, गुरुजन मतलब निकालते हैं—क्या इन्हीं का नाम पण्डित, ब्राह्मण, महात्मा, साधू वैरागी आदि है ?

प्यारे भ्रातृगणों! सद्ग्रन्थों को श्रवण करो या विचारो तो ज्ञात हो जावे कि पण्डित, महात्मा, साधु, वैरागी, पुरोहित आचार्य किसको कहते हैं ? देखिये महाभारत उद्योगपर्व विदुर प्रजागर में लिखा है—

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता।
यमर्था नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥
निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते।
अनास्तिकः श्रद्धधान एतत्पण्डित लक्षणम् ॥

अर्थात् जिसको आत्मज्ञान सम्यक् प्रारम्भ अर्थात् जो निकम्मा आलसी कभी न रहे, सुख दुख हानि लाभ मानापमान निन्दा स्तुति में हर्ष शोक कभी न करे, धर्म ही में नित्य निश्चित रहे, जिसके मन को उत्तम उत्तम पदार्थ अर्थात् विषय सम्बन्धी वस्तु आकर्षण न कर सकें, वही पण्डित है।

जो सदा धर्मयुक्त कर्मों का सेवन अधर्मयुक्त कर्मों का त्याग मिथ्याचार की निन्दा करनेहारा, ईश्वर वेद आदि में अत्यन्त श्रद्धालु हो, यही पण्डित का कर्त्तव्य कर्म है। हितोपदेश में भी लिखा है—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

पराई स्त्री को माता, अन्य के द्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान, अपने आत्मा के समान सब जीवों की आत्मा को जाने, वही पण्डित है।

श्रीकृष्ण जी महाराज ने ब्राह्मणों के लक्षण गी० अ० १२ श्लोक ४२ में लिखे हैं—

शमोदमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जव मेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजम्॥

अर्थात् अन्तःकरण तथा इन्द्रियों का निरोध, विचार करना, बाहर भीतर पवित्र, क्षमा, कोमलता, शास्त्राचार्य द्वारा ज्ञान, अनुभव, विश्वास आदि उत्तम कर्म जिसमें हों उसको ब्राह्मण कहते हैं। और भी कहा है—

ऋतं तपः सत्यं तपो दमस्तपः स्वाध्यायस्तपः॥

यह तैत्तिरीय उपनिषद् का वाक्य है कि शुद्ध भाव से सत्य मानना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, बाह्य इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकना, अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन से शुभकर्मों को करना, वेदादि सत्य विद्याओं का पढ़ना, वेदानुसार आचरण करना आदि धर्मयुक्त कामों का नाम तप है। इन्हीं कर्मों के करनेवालों को तपस्वी, साधु वैरागी, महात्मा कहते हैं। ऐसाही श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० ११ में लिखा है—

साधयन्ति परकार्याणि स्वकर्माणि च कार्याणि स साधुः॥

अर्थात् जो मनुष्य यथावत् परोपकार करना ही अपना कर्त्तव्य कर्म समझता है उसीका नाम साधु है। परमेश्वर के पूर्णज्ञान होनेसे जो प्रकृति

के गुण तथा कार्यों में अरुचि होती है उसे वैरागी कहते हैं, पूर्ण ज्ञानी का नाम महात्मा है, जैसा कि ऊपर वर्णन हुआ, और भी कहा है—

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु ।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा भस्मलेपनैः ॥

धर्मात्मा, शास्त्रोक्त विधि की पूर्ण रीति को जाननेहारा, विद्वान् कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेद प्रिय, पूजनीय, सर्वोपकारी मनुष्य को पुरोहित कहते हैं, जो साङ्गोपाङ्ग वेदों के शब्द अर्थ सम्बन्ध तथा क्रिया का जाननेहारा, छल कपट रहित, अति प्रेम से सबको विद्या का दाता, परोपकारी, तन मन धन से सबको सुख बढ़ाने में तत्पर निरपेक्ष होकर सत्योपदेष्टा, सबका हितैषी, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय हो उसीको आचार्य अर्थात् गुरु कहते हैं।

कहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि बिना वेदादि विद्या पढ़े तथा उसके अनुसार आचरण सुधारे, किसी को महात्मा, वैरागी, साधु, सन्त, पुरोहित, आचार्य न कहना चाहिये।

अब भारत के वैरागी, साधु, महात्मा, पण्डित, पुरोहित, आचार्य आदि को किञ्चित् ध्यान से अवलोकन कीजिये तथा उपरोक्त गुण मिलाइये तो नाम मात्र की गिनती रह जावेगी न कि जिधर दृष्टि डालिये उधर पंडित साधु महात्मा आदि ही दिखलाई पड़ते हैं। क्योंकि इन उपरोक्त कामों के धारण करने में किसी प्रकार का परिश्रम नहीं करना पड़ता, परन्तु पूजा नित्य प्रति होती है। पंडित जी, महात्मा जी, पुकारे जाते हैं हलवा पूरी खाने को मिलती है, अतः कोई घर से लड़ कर माल मार कर, कोई स्त्री के ऊपर, कोई बाहर देखने को मूड़ मुड़ाय वैरागी साधु सन्त बन, चैन उड़ाते हैं। हरे कृष्ण, जय सीताराम जी के भंडार खोल देते हैं। यदि इनसे कहाजावे कि आपने विद्या नहीं पढ़ी, आचरण नहीं सुधारा तो बड़े क्रोध में आकर लाल आँखें चढ़ा कहते हैं कि विद्या पढ़ कर क्या होगा, हमको कुछ दुनिया का काम थोड़ा ही है, जंगल में रहना मंगल करना, माई के लाल बने रहें हमको कमी क्या है ? देखलो बच्चो, माइयां आती हैं दर्शन कर फल पाती हैं। इत्यादि इत्यादि।

प्रिय सभ्यजनो ! देखिये, मनु में लिखा है कि वेद विरुद्ध व्रत तथा नाना चिह्नों के धारण करनेवाले तथा निषिद्ध जीविका से जीने, वैडाल

हृत्तिक एवं जिनकी वेद में श्रद्धा नहीं, ऐसे वेदविरोधी तर्क करनेवालों का वाणी मात्र से भी आदर न करना चाहिये। फिर दान कैसा ? परन्तु शोक है ! आज तो आप विद्या और आचरणों के विना देखे ही थैली का मुंह खोल 'माले मुफ्त दिले बेरहम' की भाँति नाममात्र के साधु, सन्त वैरागी, संन्यासियों के घरों में धड़ल्ले के साथ पहुंचाते चले जाते हैं।

इसके अतिरिक्त, गंगा, यमुना, हरिद्वार, काशी, प्रयाग बदरीनारायण, द्वारिका, जगन्नाथ, सेतुबन्धुरामेश्वर आदि में पुण्य के नाम से देना, मृत कुटुम्बियों के नामपर सण्डों को खिलाना एवं इन्हीं के लिये काशी प्रयागादि में क्षेत्र खोलना, तदन्नतर सुथरेसाईं मुसल्मान फकीर अघोरियोंको भी देना प्रारम्भ करदिया। आज जिनकी देखा देखी बहुधा जन उन्हीं के रूपों को धारण करते चले जाते हैं, तिसपर ये सब मांग २ कर इकट्ठे कर भट्टीखाने में शराबेंपीते, भंग चरस के दम लगाते, मांस खाते, व्यभिचारदि नाना प्रकारके कुकर्म करते जिनके सत्संग से भारत सन्तान का नाश होताजाता है नशीली चीज़ोंकी खपत बढ़ती जाती है। क्या इसका पाप दाताओं के शिरपर न होगा ? मनु महाराज ने अ० ३ श्लो० ९७ में लिखा है—

नश्यन्ति हव्यकव्यानि नराणामविजानताम्।
भस्मीभूतेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि दातृभिः॥

अर्थात् वेद विद्या रहित, भस्म सदृश ब्राह्मणों को जो मोह से दाता लोग हव्य कव्य दान करते हैं वह सब निष्फल होता है। मनुस्मृति अध्याय २ श्लोक १५८ में लिखा है--

यथा षण्डोऽफलं स्त्रीषु तथा गौर्गविचाफलम्।
यथा चाज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः॥

अर्थात् जिस प्रकार से नपुंसक मनुष्य स्त्रियों में, गो गौ में, एवं वेदाध्ययन के विना ब्राह्मण निष्फल है, और उस मूर्ख ब्राह्मण को दान देना निरर्थक है इसी प्रकार मनुस्मृति अध्याय ३ श्लो० १४२ में लिखा है—

यथेरिणे बीजमुप्त्वा न वप्ता लभते फलम्।
तथाऽनृचेहविर्दत्वा न दाता लभते फलम्॥

जिस प्रकार ऊषर भूमि में बीजबोने से बोनेवाला फल को नही पाता उसी भांति से जो ब्राह्मण वेद नहीं पढ़ता उसको ईश्वराराधन सम्बन्धी

पदार्थ देने में दाता को फल नहीं मिलता। उक्त अध्याय के १६८ श्लोक में लिखा है--

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति।
तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि हूयते॥

वृहन्नारदीय पुराण अध्याय ८ में लिखा है कि विना पढ़नेवाला ब्राह्मण और अभ्यागत शून्य है। और मनु० अ०३ श्लोक १६८ में लिखाहै--

जैसे तृण की अग्नि झटपट शान्त हो जातीहै तैसे ही वेदरहित ब्राह्मण है। अतः उसको हव्य न देना चाहिये क्योंकि राख में हवन नहीं होता। मनु० अध्याय ४ के श्लोक १९३ में लिखा है--

तथा प्लवेनौपलेन निमज्जत्युदकेतरन्।
तथा निमज्जतोऽधस्तादज्ञौ दतृप्रतीच्छकौ॥

जिस प्रकार पत्थर की नावपर चढ़ कर मनुष्य जल में डूब जाता है, उसी प्रकार मूर्ख दाता तथा प्रतिगृहीता दोनों नरक में डूबते हैं। इसी प्रकार गीता अध्याय १२ श्लोक २० में लिखा है--

अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामससमुदाहृतम्॥

जो दान कुपात्रों को निषिद्ध देशकाल में दिया जाता है वह तमोगुणी अर्थात् राक्षसी दान कहलाता है। व्यासस्मृति अ० ४ श्लो० ५१ में लिखाहै कि शौच से नष्ट तथा व्रत से विहीन ब्राह्मणोंको अन्न तक न दे यथा----

नष्टशौचे व्रतभ्रष्टे विप्रवेदविवर्जिते।
दीयमानं रुदत्यन्नं भयाद्वै दुष्कृताकृतं॥

उक्त अध्याय के ३७ श्लोक में लिखा है कि जिस प्रकार काठ का हाथी, चमड़े का हिरण, वैसाही विना पढ़ा ब्राह्मण केवल नामको धारण करनेवालाहै --

यथाकाष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः।
तथा विप्रोऽनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः॥

मनुजी महाराज ने अध्याय ४ श्लोक ९० में कहा है कि जो ब्राह्मण

तप या विद्याशून्य है, वह दान लेकर दाता समेत नरक में जाता है, जैसे पत्थर की नाव पर चढ़ने वाला मल्लाह सहित डूबता है।

ऐसा ही भविष्यपुराण के तीसरे अध्याय पूर्वार्द्ध तथा शांतिपर्व अ० २६ में युधिष्ठिर महाराज ने कहा है कि जो धर्म भ्रष्ट लोगोंको दान देते हैं वे १०० वर्ष तक परलोक में पुरीष भोजन करते हैं। भविष्यपुराण के अ० १३६ उत्तरार्द्ध में कहा है कि अकुलीन, मूर्ख, लोभी, पिशुन ब्राह्मण को कभी दान न दे। विष्णुपुराण अंश ५ अध्याय ४८ में अर्जुनने कहा है कि विना वेद पढ़े ब्राह्मण को दान देने मे नष्ट हो जाता है।

मार्कण्डेय महर्षि ने वन-पर्व अध्याय १६७ में लिखा है कि धर्म से हीन, पतित, चोर, पापी, कृतघ्न, शूद्र के पुरोहित, वेद के बेचने वाले, जिसने वेश्या से समागम किया हो उनको कदापि दान न दे। बिदुरजीने महाराज धृतराष्ट्र से कहा है कि नमक, दूध, शहद, तल, घी, तिल, फल, फूल, शाक, कपड़ा, गुड़, अन्न तथा सम्पूर्ण सुगन्धों के बेचने वाले ब्राह्मणों के पैर भी न धोना चाहिये। वृद्धगोतम संहितामें श्रीकृष्णजी महाराज ने युधिष्ठिरसे कहाहै कि हे राजेन्द्र! अपात्रों को विपुल दान करना भी राख में हवन करने के समान निष्फल है।

अपात्रेभ्यस्तु दत्तानि दानान्यसु बहून्यपि।
वृथाभवन्ति राजेन्द्र! भस्मान्याज्याहुतिर्यथा॥

मनुस्मृति अध्याय ११ के श्लोक ७० में लिखा है कि जो ब्राह्मण निन्दित जनों से दान लेता हो व्योपार, शूद्र की चाकरी करता हो, झूंठ बोलता हो, उसको दान लेने का अधिकार नहीं रहता।

कृमिकीवयो हत्या मद्यानुगत भोजनम्।
फलैधः कुसुमस्तेय मधैर्य च मलावहम्॥

बृहन्नारदीय पुराण अध्याय १२ में लिखा है कि वेद निन्दक, देवता अर्थात् विद्वान् का द्वेषी, कर्म रहित, पर स्त्री में रत, परद्रव्य हारी, अरु नक्षत्र सूत्री ज्योतिषी, ईर्षक, कृतघ्नी और मायावी जो नित्य याचना करता है और हिंसक है, उसको दान देना निष्फल है।

मनुस्मृति के अध्याय ४ श्लोक १९२ में मनुजी महाराज स्पष्ट आज्ञा

देते हैं कि जिस ब्राह्मण की वृत्ति बिल्ली अथवा बगले के समान हो, जो वेद को नहीं जानता, उसको जल मात्र भी दान न दे।

नवार्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालवृत्तिके द्विजे।
न वकवृत्तिके विप्र ना वेद विदि धर्मवित्॥

लिङ्गपुराण में लिखा है कि जिसके शरीर पर गर्म करके शंख चक्र की छाप लगाई हो वह जीते भी मुर्दा तथा सर्व धर्मों से पतित के समान त्यागने योग्य है। जैसा कि—

शंखचक्रे तपायित्वा यस्य देहः प्रदह्यते।
संजीवन कुणपस्त्याज्यः सर्वधर्मवहिष्कृतः॥

फिर ऐसे चिह्नके धारण करनेवाले ब्राह्मणोंको लिङ्गपुराणके कर्त्ताने भी दान देना उचित नहीं बताया है क्योंकि दान श्रेष्ठोंको दिया जाता है न कि पतितोंको। पद्मपुराणमें लिखाहै कि जो मनुष्य तम्बाकू पीनेवाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाताहै, लेनेवाला ब्राह्मण गांवके सुअर का जन्म लेता है, यथा—

धूम्रपानरतं विप्रं दानकृत्वेति यो नरः।
दातारो नरकं यान्ति ब्राह्मणो ग्रामशूकरः॥

महाभारत शांतिपर्वमें व्यासजी ने कहाहै कि वेदज्ञानसे हीन ब्राह्मण को दान न देना चाहिये, जिस प्रकार कपाल में पानी तथा कुत्तेके चमड़े में दूध बिगड़ जाताहै उसी भांति कुपात्रको दान देनेसे पापी बनना पड़ता है। बृहस्पतिस्मृति श्लोक ५७,५८,५६,६० में लिखा है कि कच्चे पात्र में रक्खा हुआ दूध, दही, घी शहद पात्र दुर्बलतासे नष्ट होजाताहै उसी प्रकार गौ, सुवर्ण वस्त्र पृथ्वी, तिलको जो मूर्ख लेता है वह काष्ठके समान नष्ट हो जाता है, अतः कुपात्रों को कभी दान न देना चाहिये।

प्रिय सज्जन पुरुषो! जब उपरोक्त नाममात्र के पण्डितोंका पेट सोने, चांदी, अन्न, घी, हाथी, घोड़े आदि से भी न भरा तब उन्होंने स्त्री दान का भी आर्डर पास कर दिया, छिः! छिः! हा लज्जाको भी तिलाञ्जलि दे दी! दोनों के हिये के नेत्र मारे गये! वेदादि सत्य ग्रन्थों में तो स्त्री दान के अर्थ कोई आज्ञा नहीं है, अथोपरान्त बुद्धि से भी विचार करना योग्य है कि स्त्री दान करने से क्या हानि लाभ है?

प्यारे भाइयो ! गंगादि स्थानों पर बहुधा मनुष्य स्त्री दान करते हैं फिर पुरोहितजी मुँहमांगी दक्षिणा यजमान से लेकर स्त्री फेर देते हैं। अब विचार कीजिये कि यदि यजमान मुँह माँगे दाम नदे तो स्त्री गई, यदि दे तो मनमाना धन गया। बिना पूरे मूल्य के भेंट किये स्त्री का लेना मानो पाप को मोल लेना है, क्योंकि अब तो पुरोहितजी का पूरा अधिकार है, अपने सौदे को जितने मूल्य पर चाहें बेचें। इसके अतिरिक्त यदि पति स्त्री से नाराज़ ही हो तो वह पुरोहितजी को मुंह मांगा मूल्य न देगा तो पुरोहितजी से इस सूरत में जो अधिक दाम लगावेगा वह उस माल को लेलेगा। यदि स्त्री नवयौवना हुई तो पुरोहित जी के कुटुम्बी नन ही उसको क्यों बाहर जाने देंगे, तो बताओ इस दशामें उसका पातिव्रतधर्म गया या नहीं ? इसके अतिरिक्त पुरोहित जी अपने यजमान की स्त्री को पुत्री के समान जानते हैं, तो क्या वह पुत्री का दान लेतेहैं ? वा उस कहावत को यथार्थ रीति से पूरा कर दिखाते हैं कि 'मन में राम बग़ल में ईंटें' अर्थात् हाथी के दांत दिखलाने के और खाने के अन्य होते हैं, इसी प्रकार का हाल इन तीर्थ के पण्डों पुरोहितादि का जानना चाहिये। धिक्कार है ऐसे यजमान वा पुरोहित पण्डों पर जो ऐसे अनुचित कर्म को खुले मैदान करते हुए भी धर्मात्मा कहलाते हैं पर राजदण्ड के भागी न हों।

हे प्यारे दाताओ ! इन सत्यानाश के मारनेवाले दानों को त्यागो, यह विषयी तथा लालची पुरुषों ने चलाये हैं कि जिससे यजमान से मुँह मांगा द्रव्य मिल सके, नहीं तो विषयरूपी आनन्द तो कहीं गयाही नहीं।

अथोपरान्त सुनिये कि सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण में कुरुक्षेत्रादि स्थानों पर भी ऐसी ही लीला रचकर अपना पेट भरते तथा कहते हैं कि ऐसा समय दान का अति दुर्लभ है, इस समय दान देने से विशेष फल होता है। इसका कारण यह बतलाते हैं कि जब विष्णुजी देवताओंको अमृत बांटरहे थे उस समय राहु नाम राक्षस देवता का रूप धर उनके साथ बैठ गया तथा अमृत पी लिया तब, पर सूर्य चन्द्रमा ने चुग़ली खा दी तब विष्णु ने क्रोधकर चक्र से राहु का सिर काट डाला, पर वह अमृत पी चुका था अतः वह मरा नहीं, इसीसे सूर्य चन्द्रमा को जहाँ पाता पकड़ लेता है, फिर जब भारतवासी उस समय भंगी आदि को दान देते हैं तो वह छुटकारा पाते हैं। इस हेतु सूर्य चन्द्रमा उन लोगों को जो दान देते हैं आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारा

सदा भला हो जो तुमने हमको छुड़ाया। हा अविद्या तू ने भारतवासियोंके जी में ऐसा बिश्वास कराया है, उनको कुछ भी विचार नहीं, जो जैसा चाहते हैं गपोड़े सुनाकर हाथ मारते हैं देखिये ग्रहलाघव में लिखा है—

छादयत्यर्कमिन्दुर्विधं भूमिभः।

अर्थात् जिस समय पृथ्वी घूमती हुई सूर्य चन्द्रमा के बीचमें आजाती है तब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है, इसी को चन्द्रग्रहण कहते हैं। इसी भांति जब सूर्य तथा पृथ्वीके बीच चन्द्रमा आजाता है तब चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है अर्थात् सूर्य कटता सा दिखाई देता है, इसी को सूर्यग्रहण कहते हैं। ऐसाही अथर्व का० १४ अनु० १ मं० १ में लिखाहै—

'दिवि सोमो अधिश्रितः'

अर्थात् सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है, अतः भूमि के बीच में आजाने से चन्द्रमा में अन्धकार होने लगता है अर्थात् चन्द्रमा कटा सा दिखलाई देता है।

इसी प्रकार अंग्रेज़ों ने भी माना है, कालिजों तथा स्कूलोंमें पढ़नेवाले वि[द्या]र्थियों पर यह बात अच्छेप्रकार से प्रकट है, फिर पुराणों के इस लेख को मानना महा मिथ्या है, फिर भंगी तथा नाम मात्र के ब्राह्मणों या कुपात्रोंको सूर्य वा चन्द्रमाके छुटानेके निमित्त दान देना महा मिथ्या है।

देखिये यजुर्वेद अ० १६ मंत्र २९ में लिखा है कि गृहस्थजनों को योग्य है कि ब्रह्मचारी आदि को सत्कारपूर्वक विद्या दान करें वा करावें, संन्यासी आदि की सेवा कर विशेष विज्ञान को ग्रहण करें।

नमः कपर्दिने च व्युप्त केशाय च नमः सहस्राक्षाय च शतधन्वने च। नमो गिरिशयाय च शिपिविष्टाय च नमो मीढुष्टमाय चेषु मते च॥

याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि वेद समस्त धर्मों का बतलानेवाला है, अतः वेद विद्या का दान सब से श्रेष्ठ है।

सर्वधर्ममयंब्रह्म प्रदानेभ्योऽधिकंयतः।
तद्ददत्समवाप्नोति ब्रह्मलोकमविच्युतम्॥

मनुजी महाराज का वचन है कि जल, अन्न, गौ, पृथ्वी, वस्त्र, तिल, सुवर्णादि के दानों से वेदविद्या का दान अति श्रेष्ठ है।

संवर्त्तस्मृति में लिखा है कि विद्या-दान से मनुष्य ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठा पाता है—'विद्यादानेन सुमतिर्ब्रह्मलोके महीयते।'

और य० अ० २८ मं० २४ में कहा है जो सत्‌विद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं वे अतुल कीर्ति को पाकर आप सुखी होते हैं और दूसरों को सुखी करते हैं। ऐसा ही मनु महाराज ने अध्याय ४ श्लोक २३२ में लिखा है—'ब्रह्म दो ब्रह्मसार्ष्टिताम्।'

प्यारे सुजनो! यदि इन लेखों पर ध्यान देकर हम दान देते रहते तो क्या भारत की यह कुदशा होती? मान्यवरो, विद्या दो प्रकार की होती है—परा और अपरा। परा से आत्मज्ञान और अपरा से सांसारिक व्यवहारों की सिद्धि होती है। परन्तु ब्रह्मज्ञान से सांसारिक पदार्थों का ज्ञान आपसे आप होजाता है, अतः ब्रह्म अर्थात् वेदविद्या का दान सर्वोपरि माना है। इसलिये हम सबों को विद्या-प्रचार के लिये गुरुकुल हरिद्वार, महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावनादि तथा अन्य विद्याप्रचारक विद्यालयों, कालिजों को प्रचुरता से द्रव्य देना चाहिये ताकि इनकी शाखायें समस्त भारत को विद्या के सूर्य्य से प्रकाशित कर दें क्योंकि विद्या की प्राप्ति भी विद्वज्जनों के समागम से ही होती है।

प्यारे सुजनो, सब आर्य्य ग्रन्थों में सुपात्र को दान करने की आज्ञा है, सुपात्र विद्या तथा ज्ञान से होता है, फिर जब आप शास्त्र की आज्ञा के विरुद्ध कुपात्र को दान देते हैं तो फल किस प्रकार से आपको मिल सकता है? देखिये, मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक २०१ में लिखा है कि गाय, पृथ्वी, सुवर्णादि जो कुछ दान करना हो विधिपूर्वक सुपात्र को दे, यदि अपना भला चाहो तो जान बूझ कर कुपात्र को कभी दान न दो।

गोभूमिहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम्।
नापात्रे विदुषा किंचिदात्मनः श्रेय इच्छता॥

वामनपुराण अ० ६२ में लिखा है जो पात्र को दान देता है वह सुखी होता है। याज्ञवल्क्य स्मृति अ० १ श्लोक ६ में लिखा है कि पवित्र देश और पवित्र काल में जो वस्तु श्रद्धा पूर्वक सुपात्र को दी जाती है वह महा उत्तम है। जैसा—

देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ॥

शिवपुराण अ० ३१ ज्ञानसंहिता में लिखा है कि जो देशकाल और पात्र को देख कर दान करता है, उसको सब कुछ प्राप्त होता है ।

संवर्तस्मृति श्लोक ६५ में लिखा है कि जो मनुष्य उत्तम गुणवाले ब्राह्मण को दान देता है, उसको लक्ष्मी प्राप्त होती है ।

व्यासस्मृति अ० श्लोक ३२ में लिखा है कि पात्र अर्थात् वेदपाठी तथा तपस्वी को दान दे । मनु० अध्याय ४ श्लोक २२७ में लिखा है कि जब सत्पात्र मिलजावे तो उत्साह के साथ यथाशक्ति दान दे तथा यज्ञादि कर्मकरे ।

मनुजी महाराज ने अध्याय ३ श्लोक ९८ में सत्पात्र के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं कि जो ब्राह्मण विद्या तथा तप अर्थात् शुद्ध आचरण से युक्त होता है उसका मुख अग्नि के समान होता है, उसमें डाला गया अर्थात् दान दियागया हव्य कव्य आदि इस लोक में कठिन रोग, अग्नि तथा रोगपीड़ा आदि भय तथा बड़े पाप से बचाता है ।

विद्या तपः समृद्धेषु हुतं विप्रमुखाग्निषु ।
निस्तारयति दुर्गाच्च महतश्चैवकिल्विषात् ॥ ९८ ॥

मारकण्डेय पुराण अध्याय ३५ में लिखा है कि योग्य ब्राह्मणों को ही दान देना चाहिये--

दानानि चैवदेयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभिः ।

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ७३ श्लोक ४६ में लिखा है कि भूखे को अन्न और जल सत्पात्र को मिष्टान्न और दक्षिणा देनी चाहिये । बृह-न्नारदीय पुराण अध्याय १२ श्लोक ११ में लिखा है कि जो श्रेष्ठ कर्म परायण और वेदपाठी साग्निक होवे अथवा आजीविका हीन हो तथा दरिद्र कुटम्बी होवे उसको दान देना उचित है ।

पाराशरस्मृति अध्याय १ श्लोक ४७ में लिखा है कि अच्छे खेत में बोया हुआ बीज कभी नष्ट नहीं होता, इसी भांति सुपात्र को दिया धन उत्तम होता है ।

सुक्षेत्रे वापयेद्बीजं सुपात्रेनिक्षिपेद्धनम् ।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न चश्यति ॥

दक्षस्मृति अध्याय ३ श्लोक ४ में तथा भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध अ० १३२ में लिखा है कि सुपात्र को दान देना योग्य है, इसी का फल दाता को होता है, ऐसा ही कपिल तथा युधिष्ठिर महाराज की सम्मति है, ऐसा ही वशिष्ठ जी ने राजा जनक से कहा है।

याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक २०० में लिखा है कि केवल विद्या और तप से सत्पात्र नहीं होता, हां जो विद्वान् हैं तथा वेदानुकूल उनके सुन्दर आचरण भी हैं उनको सत्पात्र कहते हैं—

न विद्यया केवलया तपसा वापि पात्रता ।
यत्र वृत्तमिमेचोभे तद्धि पात्रं प्रकीर्त्तितम् ॥

ऐसा ही व्यासस्मृति अध्याय ४ श्लोक ५५ में लिखा है—

यद्भुङ्क्ते वेदविद्विप्रः स्वकर्मनिरतः शुचिः ।
दातुः फलमसंख्यातं प्रतिजन्मतदक्षयम् ॥

शांतिपर्व में महात्मा कपिल ने कहा है कि सत्पात्र वही हैं जिन्हों ने कभी पापकर्मों का सहारा नहीं लिया तथा जो अग्निहोत्रादि कर्म करते हैं, जिनका जन्म कर्म तथा विद्या तीनों पवित्र हैं। देखिये, अत्रिस्मृति श्लोक ३३९–३४० में लिखा है कि जो ब्राह्मण वेद को जानता हो तथा सब शास्त्रों में चतुर हो, माता पिता की सेवा करता हो, अपनी स्त्री के साथ ऋतुगामी हो, शीलवान् हो, उत्तम आचरणवाला हो, प्रतिदिन प्रातः स्नान कर नित्यकर्म करता हो और अपने कल्याण की इच्छा रखता हो उसको दान दे। संवर्त्तस्मृति अ० १ श्लोक ४९–५० में लिखा है कि वेदपाठी कुलीन सुशील बुद्धिमान् तथा शुद्धब्राह्मण को दान दे। शंखस्मृति अध्याय २ श्लोक १३ में लिखा है कि जो ब्राह्मण नियमपूर्वक शुद्ध आचरण से गायत्री का जप करे उसको दान दे। ऐसा ही वन पर्व अध्याय १९९ में लिखाहै। हारीतस्मृति अध्याय १ श्लो० २२, २३ में लिखाहै कि वेदशास्त्र के ज्ञाता ब्राह्मणों ही को दान देना चाहिये ऐसा ही वृहस्पतिस्मृति श्लोक ५७ में लिखा है कि कुलीन, दरिद्री, वेदपाठी, सन्तोषी, नम्र, सब का

हितैषी, वेदाभ्यासी, तपस्वी, जितेन्द्रिय, देवताओं में उत्तम ऐसे सज्जनों को जो दान दिया जाता है वह अक्षय फल को प्राप्त होता है । मनुजी महाराज ने ११ अ० के ६ श्लोक में लिखा है कि वेद के जाननेवाले तथा वन में रहनेवाले सुयोग्य ब्राह्मण को दान देने से स्वर्ग होता है ।

और जो उत्पन्न करने और विद्या देनेवाले विद्वान् हैं उन का घी आदि पदार्थ वा गौ आदि के दान से यथायोग्य सत्कार करना चाहिये, जैसा य० अ० २४ मं० २८ में कहा है—

धूम्रा बभ्रुनीकाशाः पितॄणां सोमवतां बभ्रवो धूम्रनीकाशाः पितॄणां बर्हिषदां कृष्णाःबभ्रुनीकाशाः पितॄणामग्निष्वात्तानां कृष्णाः पृषन्तस्त्रैयम्बकाः ॥

य० अ० २० मं० ७९ में लिखा है—गृहस्थ पुरुषों को उन्हीं पुरुषों का भोजनादि से सत्कार करना चाहिये जो लोग पढ़ाने वा उपदेश करने और अच्छे कर्मों के अनुष्ठान से जगत् के बल, पराक्रम, यश, धन और विज्ञान को बढ़ावें—

अहाव्यग्ने हविरास्ये तेस्रुचीव घृतं चम्वीव सोमः ।
वाजसनिᳫं रयिस्मे सुवीरंप्रशस्तं धेहि यशसं बृहन्तम् ॥

और अ० २५ मं० ४७ में कहा है कि सबके उपकारी वेदादिशास्त्रों के ज्ञाता, अध्यापक, उपदेशक, विद्वानों का सदैव सत्कार करें और वे विद्वान् उन उत्तम उपदेशादि अच्छे गुणों और धनादि पदार्थों को सदा देते रहें, जिससे परस्पर प्रीति और उपकार से बड़े बड़े सुखों का लाभ हो ।

अग्ने त्वन्नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ।
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षिद्युमत्तम ᳫं रयिन्दाः ॥

और देखिये गीता में श्रीकृष्णजी ने कहा है—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशेकाले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥

अर्थात् देश, काल, पात्र को देख कर जो दान दिया जाता है उस को सात्विकी दान कहते हैं ।

प्यारे भाइयो ! देश से यह प्रयोजन है कि जिस मुल्क में जो वस्तु खाई जाती या काम में लाई जातीहो अथवा उस देश में जिस बात की आवश्यकता हो, काल अर्थात् ऋतु यानी सर्दी, गर्मी, वर्षा इन सबको देख भालकर जो जिस समयमें उत्तमहो उसको दान करे, परन्तु, पात्र को देख कर (जैसा कि पूर्व वर्णन हो चुका है) दान देना चाहिये । ऐसे ही दानों से दाता यथावत् फल को पाता है, सो अब बिना देख भाल किये खस्ता कचौड़ी तथा मोहनभोग के उपरान्त, गौ दान, गजदान आदि देते चले जातेहो । हा शोक ! जब ही तो ब्राह्मणों ने वेद का पढ़ना पढ़ाना, सुलक्षण होना, सत्योपदेश करना, यज्ञ करना कराना इत्यादि छोड़ दियाहै । पूर्वकाल में हमारे ऋषिमुनि महात्मा योगी ब्राह्मण नाना भांति से वेदादि विद्या पढ़ाते थे तथा योगाभ्यास कर नाना विद्याओं का प्रकाश करते थे । चहुं ओर यज्ञ तथा हवन होते थे, समस्त भूमण्डल में भ्रमण करके अपने सत्य उपदेश से तम हरते थे । उनके अर्थ लाखों के दान यहां से जाते थे, नकि वर्त्तमान समय की भांति काशी,प्रयाग, गयादि तीर्थों में स्वार्थी, कुमार्गी, दुष्ट, आलसी, लम्पट आदि को हज़ारों के दान दिये जावें, पर विद्या दानपर जिसका पूर्व वर्णन किया गया किञ्चित् विचार न किया जावे, शोक का स्थान नहीं तो क्या है ? इसके उपरान्त दान के विषय में किसी महात्मा ने कहा है, उसके अनुकूल दान करना योग्य है यथा—

नष्टं कुलं भिन्न तड़ाग कूपं भ्रष्टं च राज्यं शरणागतं च ।
गौ ब्राह्मणं देवगृहं च जीर्णं य उद्धरेत् पूर्व चतुर्गुणानाम् ॥

१—नष्ट कुल वही हैं जिनमें दूध पीते बालक बालिकाओं का कोई लालन पालन करनेवाला न हो, जिनको अनाथ कहते हैं, उनकी पालना दान से यतीमख़ाने वा अनाथालय बनवा कर करना चाहिये ।

प्यारे सुजनो ! इस ओर आप आंख भी नहीं उठाते, हज़ारों अनाथ पादरियों ने लेकर धर्म से भ्रष्टकर दिये, क्या यह पाप की बात नहीं कि हमारे तुम्हारे होते स्वदेशियों की सन्तानों को अन्य देशीय पालनकर पीढ़ी दर पीढ़ीका नाश मारदें, क्या यह शोक की बात नहीं ? क्या इन समस्त मुसण्डों के लालन-पालन से अधिक पुण्य की बात नहीं ? सच पूछो तो धिक्कार है हमको, जो हमारे जीतेजी भारत-सन्तान का धर्म भ्रष्टकर सदा केलिये अपना दास बना लें, तिसपर भी हम दान का घमण्ड करें अथवा

नशे में चूर रहें। ज़रा आंख खोलिये, अविद्यारूपी नशे में ऐसे न डूब जाओ ताकि घर की भी सुध न रहे। अब उठ बैठिये, क्योंकि अब बरेली तथा फ़ीरोज़पुर, अजमेर, लाहौर, आगरा आदि में अनाथालय नियत हो गये हैं, जहां इन दुःखियों का अपनी सन्तानसे भी अधिक पालन पोषण होता है। गवर्नमेन्ट भी सहायता देती है, बहुधा देश के शुभचिंतक भी दान देकर उनको सनाथ कर रहे हैं, अतः अब सम्पूर्ण भारतवासियोंको इनके पालन की सुध लेना योग्य है—

२-टूटे फूटे कुएं तालावों की मरम्मत कराना, अर्थात् कुएं बावली तथा तालावों को ऐसे स्थानों पर बनवाना चाहिये जहां ग्रीष्म ऋतु में बिना जल के पथिकों तथा पशु पक्षियों के प्राण संकट में पड़ते हों, वा पियाऊ लगवाना जिससे दीनों को उत्तम जल मिलता रहे।

प्यारे सुजनों! बिना जल के प्राण जाते हैं, इस कारण इसका दान करना भी पुण्य है क्योंकि उस समय कोई दान काम नहीं देता अर्थात् रुपया, पैसा, मोती, काञ्चन आदि मिट्टी सदृश जान पड़ता है, जैसा किसी कवि का वचन है—

निरजल वन में प्यास सतावे, मोती सीप काम नहिं आवे।

३-(भ्रष्टराज) अर्थात् राज्य पर विपत्ति हो तो उसकी सहायता करना भी पुण्य है, क्योंकि उसके रहने से नाना भांति के आनन्द रहते हैं।

४-(शरणागतं च) अर्थात् जो मनुष्य आपत्ति वा विपत्ति के कारण अपनी शरण आया हो तो उसकी अवश्य ही सहायता तन मन धन से करनी चाहिये, परन्तु डाकू, चोर, बदमाश, राज्य का अपराधी आदि कुकर्मियों अधर्मियों की सहायता करना भला नहीं। क्योंकि ऐसे खोटे मनुष्यों के बचाने तथा सहायता करने से जो वह सांसारिक जनों को नाना भाँति के क्लेश पहुंचावें, उनका पाप उन दाताओं की गर्दन पर होगा जिन्होंने ऐसे कुपात्रों की सहायता की है।

५-(गौ की रक्षा करना) हे सज्जन पुरुषों! यह आपका बड़ा उपकारी जीव है, इसी कारण हमारे पूर्वजों ने इसके गुण देखकर 'तरण तारण' नाम इसी को दिया। गौ माता भी इसी को कहते हैं क्योंकि यह माता के समान अपने रक्षकों का समस्त आयु पालन करती है। इसे कामधेनु भी कहते

है, क्योंकि यह सकल कामनाओंको पूर्ण करती है। इसका अमृतरूपी दूध मनुष्यों के जीवन का बीज, आयुर्बल, आकृति, धारणा, स्मृति, कान्ति का धारण, सौन्दर्य, शरीर तथा रूप का देनेवाला, शुद्ध तथा मनके मैलको पवित्र करनेहारा है। ऐसा ही इसका घी भी निर्बलता शोष (खुश्की) कृशता (दुर्बलता) पित्त वायु को हरनेवाला, जीर्णज्वर, चेहरे की सर्दी, नेत्र-विकार आदि विकारों को दूर करता है।

इन उपरोक्त लाभों के अनन्तर इसीके घी से यज्ञ होतेहैं कि जिससे वृष्टि होती है, कि जिससे सम्पूर्ण पदार्थ उत्पन्न होते हैं जिनसे संसार की रक्षा होती है। गीता का वाक्य है—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः॥

मनुजी महाराज ने मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १६२ में लिखा है—

आचार्यंश्च प्रवक्तारं पितरंमातरं गुरुम्।
न हिंसाद्ब्राह्मणान्गाश्च सर्वांश्चैव तपस्विनः॥

अर्थात् आचार्य, पिता माता, गुरु, तपस्वी तथा गायको किसी प्रकार से न सताना चाहिये, क्योंकि इनसे सब संसार का उपकार होता है। देखो, इसी गाय के बच्चे खेती के काम करते हैं जिससे जीवमात्र का पालन पोषण होता है, इस लिये ऐसे उपकारी जीवकी सर्व प्रकार रक्षा करनी चाहिये। बूढ़ी गायका दान करना भी छोड़ दीजिये, गोशाला बना कर नगर नगर में रक्षा करनी चाहिये।

प्यारे सज्जनों! ब्राह्मणों की सदा सहायता करना योग्य है क्योंकि इन्हींके सहाय से हमारा देश सदैव उन्नति पातारहा, इन्हींके द्वारा वेदादि सत्य विद्याओं का प्रकाश हुआ, इन्हीं के प्रभाव से ज्ञानरूपी प्रकाश ने संसार के अंधकार को मेट दिया, इन्हीं ने हमारे अर्थ अपने घरबार सकल परिवार को त्यागनकर प्राण तक न्योछावर करदिये सच पूछो तो जो कुछ वैभव प्रकाश तेज होगया, सब इन्हीं का प्रताप था। फिर भला कौन ऐसा मनुष्य है जो इस उपकार को न मानता होगा? कहा है—

ब्राह्मणार्थं गवार्थं वा सद्यः प्राणान् परित्यजेत्।

अर्थात् ब्राह्मणों तथा गौवों के अर्थ प्राण को भी समर्पण करना चाहिये, फिर भला धन की क्या गिनती ? परन्तु ब्राह्मणों के लक्षण स्मृति वा गीता आदि में जो लिखे हैं कि जिनको मैं पूर्व वर्णन कर आया हूं उन्हीं की ब्राह्मण संज्ञा है। यथा 'ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं' अर्थात् ब्राह्मणों का तप ज्ञान है, अर्थात् स्वयं पूर्ण विद्वान् होकर धर्मके लक्षणों का यथावत् पालन कर सदा दयायुक्त निरपेक्ष हो सत्य सनातन वेदोक्त धर्मका प्रचार करें। सो भ्रातृगणों, ऐसे सुलक्षण युक्त पूर्ण विद्वान् ब्राह्मणोंके इस समयमें दर्शन दुर्लभ होगये हैं। इसी कारण तो भारतके सिरका मुकुट गिर गया समस्त देश बल-हीन, तेज-रहित, विद्याविहीन होगया। वर्त्तमान समय के गोबर गणेश वीर्य से ही ब्राह्मण बन मूर्ख रह कर, पंचमहायज्ञों को त्याग पत्रापांडे होगये, सत्योपदेश की दुकान बन्द हो गई तथा नाना भांति के प्रपंच फैल गए।

देवगृह उन स्थानों को कहते हैं जहां पूर्वोक्त गुणयुक्त महात्मा ब्राह्मण संन्यासी निवास करते हों अथवा जहां सदैव नियत समयों पर धर्मोपदेश होता रहता हो जिसे सुनकर सर्वजन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

हे प्यारे भ्रातृगणों ! ऐसे देवगृह प्रत्येक नगर में होने आवश्यक हैं, जहां प्रतिदिन नियत समयों पर वेदादि सत्य शास्त्रोंके व्याख्यान हों कि जिससे प्राणीमात्र परमेश्वर की आज्ञाओं को जान सदा प्रेमपूर्वक उन आज्ञाओं को पालन कर आनन्द को प्राप्त हों। सो वर्त्तमान समय में इस भांति के व्याख्यान न होने से देखिये भारत की क्या गति हो गई ? ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब ने अपने धर्म पर पानी फेर दिया, वेद का नाम ही नाम रह गया। मुख्य तो यह है कि सत्योपदेश के न होने से ही मत मतान्तर फैल गये, कि जिनके कारण फूट ने अपना राज्य कर सब को तितर बितर कर दिया। सुख आनन्द जाता रहा, विद्या का नाम ही मिट गया, जिसके कारण देवगृह के स्थान पर नाना भांति के मन्दिर बन गये, जहां मूर्ख बाबाजी झांझ, ढोलक, मंजीरा, शंख आदि बजा कर भंग, गांजा, अफ़्यून आदि नशे जमाते हैं। कहीं रण्डियों या लड़कों के नाचादि कौतुक होते हैं। सच पूछो तो ये नाम मात्र के साधु, वैरागी, ब्राह्मण, संन्यासी आदि ने भारत को ग़ारत कर दिया, क्योंकि विना श्रेष्ठ ज्ञानी, बुद्धिमान्, हिंसा-रहित, विद्या वा परमेश्वरयुक्त, सत्यवादी

उपदेशक बिना "यथानाम तथा गुण" देवगृह मिलना तथा उनमें सत्योपदेश का होना अत्यन्त कठिन ही नहीं वरन् दुस्तर होगया कि जिसके कारण लाखों मनुष्य ईसाई और मुसलमान होगये जिससे धर्म का स्वरूप ही पलट गया।

प्यारो! यह वही भारत-भूमि है कि जहां धर्म का नकारा बजताथा। यह वही भारतवर्ष है जो सभ्यता में अद्वितीय था। यह वही जम्बू द्वीप है कि जहां के निवासी सत्यता के कारण देव शब्द के नाम से पुकारे जाते थे। यह वही रत्नमय भूमि है कि जहां के निवासी धृति तथा क्षमा के कारण प्रख्यात हो रहे थे। यह वही भूमि है जहाँ के सुजनों ने धर्म के लिये अपने प्राण तक समर्पण कर दिये। यह वही देश है कि जहां की स्त्रियां देवियों के नाम से पुकारी जाती थीं॥

हा शोक! आज वही आर्यावर्त्त रहगया है कि जहां के निवासी अपने धर्मको भी नहीं जानते। हाय भारत! तुम्हारी क्या गति होगई, तुम्हारा तो स्वरूप ही पलट गया, तुम्हार नाम, प्रकाश, वैभव, प्रतिष्ठा सब सत्य-पदेश अर्थात् धर्मपालन ही के कारण हुई थी, सो आज सब ख़ाक में मिल गई। यह फ़तहका झण्डा तुम्हारे साथ से जाता रहा, परन्तु धन्य है उस परमेश्वर जगत् पितामह अन्तर्यामी को जिसने इस अंधेरे के समय में **स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज** को उत्पन्न कर दिया कि जिन्होंने धर्मोपदेशकर भारतवासियों के धर्मको बचाया! अब सम्पूर्ण भारत तथा अन्य देशों में भी यहां के सत्योपदेश की रोशनी पहुंच रही है, बहुधा नगरों में आर्य्यमन्दिर अर्थात् देवगृह बन गए कि जिनमें प्रति रविवार को वेदादि सत्य शास्त्रोक्त धर्मोपदेश होते हैं जिनको अब हज़ारों मनुष्य सुनते और प्रसन्नचित्त हो उन कार्यों को करते चले जाते हैं। यद्यपि पेटार्थी जन नाना प्रकार के कोलाहल करते हैं, तथापि धर्म-जिज्ञासु धर्म ही को मुख्य जानकर मूर्खों की मूर्खता पर किञ्चित् ध्यान नहीं देते। अतः मैं श्रीस्वामी जी महाराज को कोटानुकोटि धन्यवाद देता हूं कि जिन्होंने भारत के धर्मरूपी प्राणों को सत्योपदेशरूपी अमृत पिला कर चैतन्य कर दिया कि जिसके कारण भारतवासी घोर निद्राको त्यागकर भारत के पुनरुद्धार के लिये तन, मन, धन से नाना भांति की चिकित्सा कर रहे हैं, पर शोक

तो यही है कि इतनेपर भी लाखों के दान करनेपर भी सच्चे दानों की ओर ध्यान नहीं देते कि जिसके विना भारत का भारत, ग़ारत हुआ जाता है।

प्रत्येक नगर में वेद-प्रचार-फण्ड को दान देकर भूमण्डल के समस्त देशों में वेद-प्रचार कराइये। देवालय अर्थात् आर्य्य-मन्दिर बनाकर सदा प्रत्येक उत्सव तथा त्योहारों पर बड़े धूम धाम से हवन कर सत्योपदेश सुनिये कि जिसके कारण समस्त नगर में धर्म की चर्चा होने लगे, मनुष्य धर्म को जान उसपर चलें कि जिससे भारत में सुख और आनन्द की वर्षा होने लगे।

इन सब दानों के अतिरिक्त अपने कुटुम्ब तथा घराने अर्थात् बिरादरी वा मुहल्ले के दीनों तथा सच्चे प्रेमी भक्तों की प्रत्येक प्रकार से सुध लेना परम आवश्यक है, परन्तु ऐसा भी न करना चाहिये जैसा कि किसी कवि ने कहा है—

> नौ बुलाये तेरह आये देखो यहां की रीत।
> बाहरवाले खा गये और घर के गावें गीत ॥

इसी प्रकार नगर की विधवाओं के खान पान तथा उनकी आत्मिक उन्नति के अर्थ शिक्षा, सत्योपदेश का प्रबन्ध होना भी परम आवश्यक है कि जिससे वह धर्म पर यथावत् आरूढ़ रहें कि जिसके बिना देख लीजिये कि इस भारत की विधवाओं की क्या २ कुगति हो गई ?

तदन्तर प्रत्येक नगर में औषधालय खोलने चाहियें, जहां दीनों को औषधि नियत समय पर विना मूल्य के प्रतिदिन मिला करे, धर्मशाला बनवाना कि जहां दीन बटोही तथा नगर के दीनों को आनन्द मंगल के साथ भोजन मिला करें। ऐसे ही जहां पूर्ण विद्वान् महात्मा रहते हों वहां भी क्षेत्र खोलना उत्तम है। पाठशाला के विद्यार्थियों को अच्छे प्रकार भोजनों का सुप्रबन्ध होना उचित है न कि वर्त्तमान समय की भांति क्षेत्रों तथा धर्मशालाओं में लुच्चे, गुंडे, धर्महीन पुरुष अच्छे प्रकार से खा जाते हैं, पर दीन, अन्धे, लंगड़े, विद्यार्थी सच्चे साधु महात्माओं को नाम मात्र भी नहीं मिलता, इन सब बातों का शोधन कर दान कीजिये।

इसके उपरान्त अन्यान्य देशोपकारक कार्यों का करना परम आवश्यक

है इसी को 'रिफ़ाह आम' कहते हैं, जैसा बग़ीचे लगवाना, मार्ग ठीक कराना, दीनों की पुत्रियां तथा पुत्रों का विवाह करना, नाना भांतिके गुण सीखने के अर्थ निर्धनोंको सहायता देना, उपदेशकोंका मासिक देकर उपदेश कराना, धर्म ग्रन्थों को बाँटना, बड़े बड़े हवन कराना परम धर्म तथा पुण्यकी बातहै, क्योंकि इनसे संसार का बड़ा उपकार होता है।

जिस स्थान पर इन ईश्वरीय आज्ञाओंके अतिरिक्त विद्वानोंके भोगने योग्य पदार्थ मूर्खों को दिये जाते हैं, तथा विद्वानों का तिरस्कार होता है उसी देशमें अकाल, मरी तथा नाना प्रकारके उपद्रव होते हैं यथा भारतवर्ष में इस समय हो रहा है। जैसा कहा है—

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमात्।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भ्यथा ॥

अतः अब मैं अपने भाई बहिनों से प्रार्थना करता हूं कि यदि आपको दानके फलकी इच्छा हो तो सदा मन वच कर्म से परमेश्वरीय नियमों को यथावत् पालन कीजिये। क्योंकि परमात्मा की आज्ञाके प्रतिकूल कार्य करने में नाना प्रकारके दुःख भोगने पड़ते हैं, अतः उसकी आज्ञाका यथार्थ ज्ञान होने के अर्थ विद्वान् धर्मात्माओं का कि जिन्होंने मन, वच, कर्मको एक कर दिया है, समागम कर सदा पुरुषार्थके साथ मनको काम क्रोध लोभ मोहादि दोषोंसे पवित्र करते रहिये। क्योंकि बिना मनकी पवित्रताके किसी प्रकार के दानसे यथार्थ फल नहीं मिल सकता, अतः मन को दोषों से बचाकर वाणी से सत्य सत्य बोलनेका पूर्ण नियम अर्थात् व्रत धारण करके अपने स्वदेशियोंको सत्य वाणी का पूर्ण दान कीजिये कि जिससे प्राणीमात्रको आनन्द मिले। तथा श्रद्धापूर्वक ऐसे ही सत्यवादी, वेदविद्व महात्माओंकी सम्मत्यानुसार, धर्मानुसार प्राप्त किये हुए धन को दान कीजिये।

प्यारे सुजनो! वाणीसे प्रयोजन केवल शब्द ही से नहीं वरन् वाणी शब्द, अर्थ, सम्बन्ध तीनों के योग को कहते हैं, सम्पूर्ण संसारका वाणीसे ही प्रबन्ध किया जाता है, वाणी ही सारे मनुष्य तथा पशु सृष्टि पर आज्ञा चलाती है। वाणी में जो प्रत्यक्ष शक्ति है वह किसी इन्द्रिय में दृष्टि नहीं आती। वाणी ही ने समय पाकर कामोंके विचारोंको पलट दिया। वाणी ही मनुष्यों की प्रतिष्ठाके लिये एक सच्चा हथियार है, इसकी सहायतासे

मनुष्य जाति ने समस्त भूमण्डलके जीवों को अपने आधीन कर रक्खा है। जो वाणी न होती तो शब्द, अर्थ, सम्बन्ध का कुछ भी ज्ञान न होता तो भला मनुष्य तथा पशुमें क्या अन्तर होता तो यही ज्ञान तथा उसके प्रकाश करने की शक्ति है, अर्थात् वाणी मनुष्य को मोक्ष सुखका आनन्द दिलाती है, यही उसको नरक के दुःख-सागर में ले जाती है।

अतः आओ प्यारे भाई बहिनो ! हम सब मिलकर पूर्ण प्रेम के साथ नम्रतापूर्वक उस जगत्पिता परमात्मासे मन वच कर्मके साथ उस शुद्ध निर्मल वाणीके अर्थ प्रार्थना करें जिसको प्राप्त करके मनुष्योंने अपने आप ही को नहीं, वरन् हज़ारों जीवात्माओं को पापके अथाह समुद्रसे पार लगाया है। आओ प्रिय सांसारिक भाइयो ! हम सब अपने प्रेम से उस जगदीश्वर से प्रार्थना करें कि वह हमें ऐसी मधुर तथा आकर्षणशक्ति वाली वाणी से विभूषित करे जिसको पाकर संसार के सच्चे शूरों ने अपने सच्चे घरों में पहुंचने तथा अपने प्यारे के गले में लिपटने के लिये अपना तन, मन, धन सब न्योछावर कर दिया है, जैसा कि वेद में लिखा है—

पावकानः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवतीयज्ञं वष्टु धियावसुः।

गृहस्थाश्रम

प्रिय सज्जन पुरुषो ! और चतुर महिलाओ ! वेद स्मृतियों में गृहस्थाश्रम को सब अच्छे व्यवहार वा सब आश्रमों का मूल माना है। इससे इस गृहस्थाश्रम का अनुष्ठान अच्छे प्रकारसे करना चाहिये क्योंकि इस आश्रमके बिना मनुष्यों की वा राज्यादि व्यवहारों की सिद्धि कभी नहीं होती, जैसा य० अ० ३ मं० ४१ में कहा है कि—

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं बिभ्रत एमसि।
ऊर्जंविभ्रजद्वः सुमनाः सुमेधा गृहानैमिमनसा मोदमानः॥

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ७७ में लिखा है कि जिस प्रकार वायु के आश्रय समस्त जीव रहते हैं, उसी प्रकार अन्य आश्रमवाले ब्रह्मचारी वानप्रस्थ तथा संन्यासी अपनी अपनी जीविकाके अर्थ इस आश्रम का आश्रय लेते हैं, यथा—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्त्तंते सर्वजन्तवः ।
यथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्तंते सर्व आश्रमाः ॥

और अ० ६ श्लोक ९० में लिखा है कि जिस प्रकार से सम्पूर्ण नदी समुद्र में जाकर विश्राम पाती हैं उसी भांति सब आश्रमवाले गृहस्थी में जाकर ठहरते हैं ।

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥

और ऐसा ही वसिष्ठस्मृति अ० ७ में कहा है दक्षस्मृति अ० २ श्लोक ४६ में कहा है कि देवता (विद्वान्) मनुष्य और तिर्यक योनि आदि अपना अपना भोजन गृहस्थों से पाते हैं, इसी कारण गृहस्थआश्रम सर्वश्रेष्ठ है ।

देवैश्चैव मनुष्यैश्च तिर्यग्भिश्चोपजीव्यते ।
गृहस्थः प्रत्यहं यस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठाश्रमो गृही ॥

और श्लोक ४७ में कहा है कि ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यास इन तीनों आश्रमों का गृहस्थी योनि (कारण) है इससे इसके दुःखी होने से यह तीनों आश्रम दुःखी होते हैं ।

त्रयाणामाश्रमाणां तु गृहस्थो योनिरुच्यते ।
सीदमानेन तेनैव सीदन्ति हीतरे त्रयः ॥

मनु अ० ६ श्लो० ८७ में कहा है कि ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम इसी गृहस्थाश्रम से पृथक् पृथक् उत्पन्न होते हैं, जैसा—

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥

शंखस्मृति अ० ४ श्लोक ५ में भी कहा है कि उक्त तीनों आश्रम गृहस्थ के प्रसाद से यथाविधि जीते हैं ।

अ० ३ श्लोक ७८ में कहा है कि तीनों आश्रमों को ज्ञान और अन्न से गृहस्थ ही धारण करता है, इसलिये गृहस्थाश्रम ही बड़ा है ।

यस्मात् त्रयोऽप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहम् ।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥

शंखस्मृति अध्याय ४ श्लोक ६ में कहा है कि गृहस्थ ही यज्ञ करता है, वही तप और ज्ञान देता है, इसलिये गृहस्थाश्रम सबसे बड़ा है।

गृहस्थ एव यज्ञते गृहस्थस्तपते तपः
ददाति च गृहस्थश्च तस्माच्छ्रेयान् गृहाश्रमी ॥

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ६० श्लोक १८, १६, २० में कहा है कि गृहस्थाश्रम से श्रेष्ठ कोई आश्रम भूतल पर नहीं। गृहस्थ का घर सर्व तीर्थमय वा सर्व देवमय होता है, क्योंकि गृहस्थाश्रम के आश्रित हो कर सब जीव जन्तु जीते हैं, इससे गृहस्थाश्रम के समान अन्य आश्रम हम नहीं देखते जहां कि अग्निहोत्र होता हो और देवताओं की पूजा होती वा वेद पढ़े जाते हों ॥

षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय ७४ में महादेवजी ने पार्वती से कहा है, तपस्वी वन में तपस्या करते हैं परन्तु जब उनको भूख लगती है तब वह गृही के यहां आकर भोजन करते हैं इसलिये उसको भी तपस्या का कुछ फल मिलता है, यह आश्रमों में श्रेष्ठ है जो मनुष्य इस आश्रम का अच्छे प्रकार पालन करते हैं वह उत्तम फल को पाते हैं, क्योंकि गृहस्थाश्रम में ही देवताओं अतिथियों को भोजन मिलता है और मार्ग चलनेवालों का यही आश्रय है, इसलिये वह अत्यन्त धन्यवाद के योग्य है।

तप्त्वातपस्वी विपिने क्षुधार्तो गृहं समायातिसदान्नदातुः।
भक्त्यासचान्नं प्रतिदातितस्मै तपोविभागं भजतेहि तस्य ॥

देवीभावत स्कन्ध १ अध्याय १४ श्लोक ५६, ५७ में व्यासजी ने कहा है कि जो न्याय से धन लाता है और वेदोक्त श्राद्धादि कर्म करता तथा पवित्र रहता है ऐसे गृहस्थ की, मध्यान्ह में ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और यती व्रतस्थित जन आशा करते हैं, इस लिये इस आश्रम के समान धर्म हमने न देखा न सुना—

न्यायागतधनः कुर्वन्वेदोक्तं विधिवत्क्रमात्।
गृहस्थोपि विमुच्येत श्राद्धकृत्सत्यवाक्छुचिः ॥
ब्रह्मचारी यतिश्चैव वानप्रस्थो व्रतस्थितः।
गृहस्थंसमुपासन्ते मध्यान्हातिक्रमे सदा ॥

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अ० १४ श्लोक १७ में लिखा है कि जिस प्रकार मनुष्य नाव में बैठकर समुद्र पार होजाता है उसी प्रकार इस आश्रम में रह कर सम्पूर्ण व्यसनों से पार होजाता है—

सर्वा श्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ।
व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ॥

इसी स्कन्ध के अध्याय १४ में कश्यप जी ने कहा है कि इस आश्रम से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों पदार्थों की प्राप्ति होती है, इसी कारण यह श्रेष्ठ है । भविष्य पुराण अ० १५० में भी ऐसा ही वर्णन किया है । मार्कण्डेय पुराण अध्याय २९ में गृहस्थाश्रम को कामधेनु गाय की समता दी है । वामनपुराण में लिखा है कि सब आश्रमों में गृहस्थाश्रम बड़ा है ।

प्रिय सज्जन पुरुषो और सुजन स्त्रियो ! उपरोक्त कथन से स्पष्ट प्रकट होरहा है कि यह आश्रम सम्पूर्ण आश्रमों की जड़ अर्थात् मूल है, यही सबके पालन पोषण का केन्द्र तथा वर्णों का द्वार यही है ।

इस लिये गृहस्थों के धर्मानुकूल कार्य करने से संसार की उन्नति होती है और इसके विपरीत कार्य करनेसे संसार बिगड़ जाता है, क्योंकि जड़ की रक्षा से स्कन्ध (डालें) और डालों से डालियां और उससे पत्ते फूल फल इत्यादि होजाते हैं और मूल के नाश होने से सब नष्ट होजाते हैं । जैसा दक्षस्मृति अ० २ श्लोक ४० में कहा है—

मूलत्राणे भवेत्स्कन्धः स्कन्धाच्छाखेतिपल्लवाः ।
मूलेनैव विनष्टेन सर्वमेतद्विनश्यति ॥

इसी हेतु य० अ० ८ मं० ३३ में परमेश्वर ने उपदेश किया है कि इस आश्रम के आधीन सब आश्रम हैं । यदि इसकी सेवा वेदोक्त श्रेष्ठ व्यवहारों से कीजावे तो इससे दोनों लोकोंके सुखोंकी प्राप्ति होसकती है ।

इसी भांति श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि जो मनुष्य शास्त्र के प्रतिकूल काय करते हैं उनको न तो सिद्धि, न सुख और न परमगति प्राप्त होती है, इसी हेतु दक्ष महाराज ने द्वि० अ० के श्लोक४८ में राजा और अन्य तीनों आश्रमवालों को आज्ञा दी है कि वह गृहस्थाश्रम की यत्नपूर्वक मान सहित रक्षा करते रहें ।

तस्मात् सर्व प्रयत्नेन रक्षणीयो गृहाश्रमी ।
राज्ञाचान्यै स्त्रिभिः पूज्यो माननीयश्च सर्वदा ॥

परन्तु मनुजी महाराज ने कहा है कि दुर्बल इन्द्रिय वाले स्त्री पुरुषों के धारण करने योग्य यह आश्रम नहीं है, इस लिये सुख की इच्छा करने वालों का यत्नपूर्वक धारण करना चाहिये ।

ऐसाही पद्मपुराण षष्ठ उत्तरखंड अध्याय ७४ श्लोक ६ में महादेव जी ने पार्वती से कहा है कि अजितेन्द्रियों को यह आश्रम अत्यन्त दुःखकारक है, इस लिये ब्रह्मादिक देवताओं ने इस आश्रम का बुद्धिमानों को सेवन करने की आज्ञा दी है, यथा—

सुदुस्तरः सत्वजितेन्द्रियाणां संहयन्तैः श्रेष्ठतमःशुभाश्रमः ।
गृहस्थधर्मः प्रवरोमनीषिणां ब्रह्मादिभिश्चाभितोनगात्मज ॥

अब आप विचारिये कि हम वेदानुकूल कार्य करते हैं ? उत्तर मिलेगा कि नहीं । मित्रो ! सब शास्त्रों और अन्य बुद्धिमानों का यही सिद्धान्तहै कि प्रथम मनुष्य को जितेन्द्रियता से शरीर का बल और विद्या से आत्मा के बल को बढ़ाकर इस आश्रम में पग रखना उचित है, तब ही वह वेदोक्त व्यवहारों से इस आश्रम की सेवाकर आनन्दों की प्राप्ति कर सकते हैं । आपने वेदों की मर्यादा को उठादिया जिसके कारण शारीरिक और आत्मिक बल का नाश होगया, फिर सुख कैसा ? इसी कारण तो इस समय यह आश्रम कारागार के समान होरहा है, इसलिये आइये प्रथम सब मिलकर वेदानुकूल अर्थात् गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णों को नियत करें जो इस आश्रम के सुधार की जड़ है, परन्तु वर्त्तमान समय में वेद की आज्ञा के विपरीति वीर्य ही से वर्णव्यवस्था मानी जाती है, जिस से भारत की अधोगति होगई । देखिये मनु महाराज ने अपनी स्मृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र के लक्षण निम्न रीति से बतलाये हैं—

ब्राह्मणोंके लक्षण

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा ।
दानं प्रतिग्रहंचैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥

पूर्ण विद्या पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना, कराना, विद्या वा सुवर्ण आदि का

सुपात्रों को दान देना, न्याय से धन उपार्जन करनेवाले गृहस्थों से दान लेना ब्राह्मणों का धर्म है। मनु० अ० १ श्लोक। ८८।

क्षत्रियों के लक्षण

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ८९॥

दीर्घ ब्रह्मचर्य से वेदादि शास्त्रों का यथावत् पढ़ना, अग्निहोत्रादि कर्मों का करना सुपात्रों को विद्या सुवर्ण आदि तथा प्रजाको अभय दान देना तथा उनका सब प्रकारसे यथावत् पालन करनेवालों को क्षत्रिय कहते हैं।

वैश्यों के लक्षण

पशूना रक्षणं दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिरेव च ॥

वेदादि शास्त्रों का पढ़ना, अग्निहोत्रादि यज्ञों का करना, दान देना, पशुओं का पालन करना, देशोंकी भाषा, हिसाब, भूगर्भविद्या भूमि बीजादि के गुण दोषों को जानना, सर्व पदार्थों के भाव समझाना, व्यौपार करना कुसीद अर्थात् व्याज का लेना, खेती की विद्या का जानना, अन्नादिकी रक्षा करनेवालों को वैश्य कहते हैं। अ० १ श्लो० ९०।

शूद्रों के लक्षण

एकमेवहि शूद्रस्य प्रभुः कर्मसमादिशत्।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनसूयया ॥

जिसको विद्या पढ़ने से भी न आवे, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन तीनों वर्णों की निन्दा रहित प्रीतिपूर्वक सेवा करे उसको शूद्र कहते हैं। अ० १ श्लो० ९१

प्रकट हो कि उपरोक्त कर्मों में से दान देना, यज्ञ करना, वेद पढ़ना, यह तीन धर्मार्थ, तथा यज्ञ कराना, वेद पढ़ाना, दान लेना, यह तीन जीविकार्थ ब्राह्मणों के कर्म हैं। दान देना, वेद पढ़ना, यज्ञ करना, यह तीन धर्मार्थ तथा प्रजा का पालन करना, शस्त्र धारण करना, यह जीविकार्थ क्षत्रियके कर्म हैं। इसी प्रकार दान देना, वेद पढ़ना, यज्ञ करना धर्मार्थ तथा पशुपालन, व्योपार, व्याज लेना, यह जीविकार्थ वैश्य के कर्म हैं। शूद्रका केवल एक ही कर्म अर्थात् तीनों वर्णों की यथावत् सेवा करना धर्मार्थ जीविकार्थ है।

सान्यवरो! इसी भांति हारीतस्मृति अध्याय १ श्लोक १७ तथा अत्रि-स्मृति श्लोक १३, १४, १५। शङ्खस्मृति श्लोक २, ३, ४, ५। विष्णु राण

के तीसरे अंश के ८ अध्याय। मारकण्डेय पुराण २७ के श्लोक ३, ४, ५, ६, ७। भविष्य पुराण अध्याय १ तथा शुक्रनीति अध्याय ४ श्लोक ५७, ५८, ५६। विदुरनीति तथा गीता, उद्योगपर्व और श्रीमद्भागवत में ऐसा ही वर्णन किया है।

प्रियवरो! वर्णोंका अन्तर गुण कर्मोंके अनुसार नियतहै, शूद्र ब्राह्मण तथा ब्राह्मण शूद्र होजाता है। यदि ब्राह्मणका बालक कर्मोंसे योग्य हो तो वह यथार्थ ब्राह्मण शूद्र होताहै, अन्यथा क्षत्रिय अथवा वैश्य शूद्रकी पदवी को पाता है। इसी भांति शूद्रका लड़का मूर्ख हो तो वह शूद्र ही रहता है अन्यथा गुणकर्मोंके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण में पहुंच जाता है। इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य की भी दशा होती है। जैसा मनु० अ० १० श्लोक ६५ में लिखा है—

शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्।
क्षत्रियाज्जातमेवन्तु विद्याद्वैश्यस्तथैव च॥

अर्थात् ब्राह्मण शूद्रपन तथा शूद्र ब्राह्मणता को प्राप्त हो जाता है। क्षत्रियसे उत्पन्न हुआ भी इसी प्रकार और वैसेही वैश्यसे हुआ पुरुष भी अन्य वर्ण को प्राप्त हो जाता है।

शुक्रनीति अ० १ श्लो० ३८ में लिखा है कि जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ नहीं होते वरन् गुण तथा कर्मके भेदसे होते हैं। जैसा—

न जात्याब्राह्मणश्चात्र क्षत्रियो वैश्य एव च।
न शूद्रश्चैव न म्लेच्छो भेदितागुणकर्मभिः॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। गीता अ० १२ श्लो० १३

शुक्रनीति तथा मनुस्मृतिमें यह भी लिखा है कि ब्राह्मण उत्तम गुणों के कारण सब वर्णों से श्रेष्ठ माना गया है। यथा—

सर्वाधिको ब्राह्मणस्तु जायते हि स्वकर्मणः।

अब हम आपको महाभारत के प्रमाण से बतलाते हैं, कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र गुण कर्म स्वभाव से ही होते हैं। देखिये महाभारत वन पर्व अ० ३१२ श्लोक १०५ से १०६ तक यक्ष और युधिष्ठिर का संवादहै—

यक्ष उवाच ।

राजन् ! कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा ।
ब्राह्मण्यं केन भवति प्रब्रूह्येतत्सुनिश्चितम् ॥

अर्थात् हे राजन् ! कुल से, चरित्र से, वेद-पाठ से वा विद्या से किस से ब्राह्मण होता है ? यह आप मुझसे निश्चयपूर्वक कहिये ।

युधिष्ठिर उवाच ।

शृणु यक्ष कुलं तात ! न स्वाध्यायो न च श्रुतम् ।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ॥१०६॥
वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः ।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः ॥१०७॥
पठकाः पाठकाश्चैव येचान्ये शास्त्रचिन्तकाः ।
सर्वेव्यसनिनोमूर्खा यः क्रियावान् स पण्डितः ॥१०८॥
चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते ।
योऽग्निहोत्र परोदान्तः स ब्राह्मण इतिस्मृतः ॥१०९॥

अर्थ हे यक्ष ! कुल से और वेद-पाठ से ब्राह्मण नहीं होता । किन्तु आचरणों से ही ब्राह्मण मानने योग्य है ॥१०६॥ मनुष्यों तथा विशेषतः ब्राह्मणों को चाहिये कि यत्न से अपने आचरणों की रक्षा करें क्योंकि जो आचरण हीन है वही हीन है ॥१०७॥ पढने पढ़ानेवाले तथा शास्त्र के विचारकरनेवाले मूर्ख और व्यसनी हैं । जो क्रियावान् हैं वही पण्डितहैं१०८ चारों वेदों का जाननेवाला यदि दुराचारी हो तो वह ब्राह्मण शूद्रसे भी नीच है, जो अग्निहोत्र का करनेवाला सदाचारी है वही ब्राह्मण है ॥१०९॥

इसके पश्चात् युधिष्ठिर महाराज और सर्प का संवाद जो महाभारत वनपर्व अध्याय १८० में है, जिसके पाठ मात्र से ही स्पष्ट ज्ञात होता है कि गुण, कर्म, स्वभाव ही से वर्णों की व्यवस्था नियत थी ।

सर्प उवाच ।

ब्राह्मणः को भवेद्राजन् ! वेद्यं किं च युधिष्ठिर !
ब्रवीह्यतिमतिं त्वां हि वयंयैरनुमिमीमहे ॥श्लोक २७॥

अर्थात्–हे युधिष्ठिर ! ब्राह्मण किसे कहते हैं ? जगत् में कौन वस्तु जानने योग्य है ? आप हमारे इन दो प्रश्नों का उत्तर दीजिये तो हम आपको बहुत बुद्धिमान् मानें ।

युधिष्ठिर उवाच ।

सत्यं ज्ञानं क्षमा शीलामानृशंस्यं तपो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र नागेंद्र स ब्राह्मण इतिस्मृतः ॥श्लो०२१॥

हे नागेन्द्र ! जिसमें सत्य, दान, क्षमा, शील, लज्जा, तप और घृणा हो उसे ब्राह्मण कहते हैं । पुनः सर्प पूछता है कि—

चातुर्वर्ण्यं प्रमाणञ्च सत्यं च ब्रह्मचैव हि ।
शूद्रेष्वपि च सत्यं च दानमक्रोध एव च ॥२३॥
आनृशंस्यमहिंसा च घृणाचैव युधिष्ठिर ! ॥

हे युधिष्ठिर ! इस जगत् में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण हैं और ये चारों वेद का प्रमाण मानते हैं, यदि किसी शूद्र में सत्य, दान, क्षमा, लज्जा, अहिंसा और घृणा हो तो क्या वह भी ब्राह्मण हो जावेगा ? युधिष्ठिर ने उत्तर दिया कि—

शूद्रेयत्तु भवेल्लक्ष्मद्विजेतञ्च न विद्यते ।
नवै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः ॥

जो लक्षण शूद्रमें हैं वह ब्राह्मणोंमें नहीं हैं और यदि वह लक्षण शूद्र में हों तो शूद्र भी ब्राह्मण हो सकता है, और यदि शूद्र के लक्षण में ब्राह्मण हो तो वह ब्राह्मण भी शूद्र ही है ।

पद्मपुराण तृतीयसर्ग खण्ड अ० ११ में कहा है कि विद्या धन और जन्म द्विजत्व के कारण हैं, परन्तु जब वह ब्राह्मण आचार से भ्रष्ट हो जाता है तो यह सब निष्फल होजाते हैं, इसलिये पवित्रता ब्राह्मण का हेतु

है। अध्याय २० में कहा है कि सब लोकों में सब कल्याणों से श्रेष्ठ सदाचार व्रत है, इस लिये अपने व्रत में चाण्डाल को भी ब्राह्मण कहते हैं। श्रीमद्भागवत में लिखा है—

यस्य यल्लक्षणम्प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यद्यन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्॥

कि जिन मनुष्यों में जिस प्रकार के गुण होते हैं, वह उसी वर्ण में मिलाने के योग्य होते हैं। आपस्तम्ब के सूत्र में लिखा है—

धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वंपूर्वंवर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ।

कि अपने कर्मों से छोटा बड़ेपन को पा लेता है, फिर लिखा है—

अधर्मचर्ययापूर्वोवर्णोजघन्यं २ वर्णमापद्यतेजातिपरिवृत्तौ॥

बुरे कर्मों के कारण ऊँचे वर्ण का मनुष्य भी नीचे वर्ण को पहुंच जाता है, यही कारण है कि विश्वामित्र क्षत्रिय से तथा नारद ऋषि नीच वर्ण से ब्राह्मण हो गये।

इसके उपरान्त भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध के प्रथम अध्याय में लिखाहै कि जो ब्राह्मण वेद पढ़ कर वैश्यादि कर्म कर शूद्र की सेवा करे तथा नट, चोरी, चिकित्सा से निर्वाह करे वह भी शूद्र कहाता है। मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक ६७ में लिखा है कि मूर्ख ब्राह्मण को लकड़ी के हाथी तथा चमड़े के मृग के समान ही समझना चाहिये। शान्तिपर्व अध्याय ७७ में भीष्मपितामह तथा याज्ञवल्क्यस्मृति के आपद्धर्म प्रकरण में लिखा कि हस्तक्रिया, लेन देन, गौ, घोड़ा, गाड़ी, व्योपार, मुद्रा, लवण, तिल, फल, पत्थर, वस्त्र, रस, मधु, तक्र, मांस, पृथ्वी, कम्बल, शाक, गंध इनको ब्राह्मण कदापि न बेंचे। दूध,दही, मदिराका बेचनेवाला और नाचनेवालाब्राह्मण भी शूद्रहै।

वृहन्नारदीय पुराण अध्याय २३ में लिखा है कि आपत्ति के समय ब्राह्मण क्षत्रिय का और अत्यंत आपत्ति पड़ने पर वैश्य का काम कर ले, परन्तु शूद्र का काम कभी न करे और जो मूढ़ द्विज ऐसा करे तो उसको चांडाल जानना चाहिये। श्रीमद्भागवत स्कंध ११ अध्याय १७में ब्राह्मण को नीचवृत्ति करने की आज्ञा नहीं है। वसिष्ठस्मृति अध्याय ६ श्लोक ३ में तथा पाराशरस्मृति अध्याय ८ श्लोक ३ में लिखा है कि जो वेद नहीं

जानता, व्योपार खेल से आजीविका करता है, सन्ध्या अग्निहोत्र नहीं करता, खेती से पालन पोषण करता है, वह नाममात्र का ब्राह्मण है।

प्रिय सज्जन पुरुषो ! उपरोक्त कथन से प्रत्येक्ष प्रकट होरहा है कि कर्म ही मनुष्य को ऊँची पदवी अर्थात् उच्च वर्ण में लेजाते हैं और कर्म से ही नीचा होजाता है। ऐसाही शांतिपर्व अध्याय १८८ में भारद्वाज ने भृगुजी से कहा है, ऐसाही भविष्यपुराण अध्याय ३६ में सुमन्त मुनि ने राजा शतानीक की शङ्काओं को समाधान कर कहा है कि कर्म ही ब्राह्मण का हेतु है जैसा अनुशासन पर्व अध्याय १४३ में महादेवजी ने पार्वतीजी से कहा है। वनपर्व अध्याय १५० में हनुमानजी ने भीमसेन से कहा है कि जो क्षत्रिय काम क्रोध द्वेष से रहित होकर उचित्त रीति से दंड का विधान करते हैं, वह पंडितों की जाति को पाते हैं।

इसके अतिरिक्त चाणक्यस्मृति अ० ११ श्लोक १२, १३, १४, १५, १६, १७ में स्पष्टरूप से वर्णन किया है कि जो ब्राह्मण अच्छे कर्मों को करता हो ऋतुगामी हो वह द्विज तथा जो सांसारिक कर्मों में रत हो, पशुओं का पालन, बनियई तथा खेती करनेवाला हो वह वैश्य। जो लाखादि पदार्थ तेल, नील, घी, कुसुम, मधु, मद्य का बेचनेवाला है वह शूद्र। जो दूसरे का काम बिगड़नेवाला दम्भी अपने अर्थ का साधनेवाला, छली, द्वेषी मृदु तथा अन्तःकरण में निठुर हो वह बिलार। जो बावली कुआँ आदि को बिगाड़ता है वह मलेच्छ। जो देवता वा गुरु के द्रव्य को हरता या परस्त्री के संग गमन करता तथा सब प्राणियों में निर्वाह करलेता, वह चांडाल कहाता है। इसी प्रकार अत्रिजी महाराज ने ३७१ श्लोक में इस प्रकार के ब्राह्मण लिखे हैं जिनके लक्षण उपरोक्त कथन से कुछ कुछ मिलते हैं। जिनको अधिक जानने की इच्छा हो वह श्लोक ३७२ से ३८१ तक को देखलें, हम विस्तार के कारण यहां नहीं लिखते हैं। शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ११ श्लोक ३ वा ४ में लिखा है कि अल्पाचार थोड़ा वेद पढ़ा हुआ, राजसेवक ब्राह्मण क्षत्रिय ब्राह्मण है और कुछ आचारवाला, खेती, वाणिज्य करनेवाला वैश्य ब्राह्मण कहाता है और जो स्वयं हल जोते वह शूद्र ब्राह्मण है। निन्दा करनेवाला पराया द्रोह करनेवाला चांडाल ब्राह्मण है। और य० अ० १८ मं० ४८ में कहा है, परमेश्वर पक्षपात को छोड़ ब्राह्मण आदि वर्णों से समान प्रीति करता है वैसे ही विद्वान् लोग भी समान प्रीति करें। जो ईश्वर

के गुण कर्म और स्वभाव से विरुद्ध वर्त्तमान हैं, सब नीच और तिरस्कार करने योग्य हैं।

प्यारे भाइयो! इस प्रकार वर्णव्यवस्था को जान धर्मानुसार वर्णों के धर्म करने से ही कल्याण होता है तथा अन्य वर्ण के धर्म करने से पतित होजाता है। जैसा मनु जी ने अध्याय १० श्लोक ९७ में लिखा है—

वरं स्वधर्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः।
परधर्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः॥

इसी प्रकार गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से, मार्कण्डेयपुराण में मन्दालसा ने अलर्क से और श्रीमद्भागवत् स्कन्ध ३ के २८ अध्याय के २ श्लोक में। हारीतस्मृति अध्याय ७ श्लोक १७-१८। दक्षस्मृति श्लोक ३, ४ तथा अत्रिस्मृति अध्याय १ श्लोक ३२। विष्णुपुराण अंश २ अध्याय ६ में यही प्रतिज्ञा है।

प्यारे भाइयो! जब तक इस देश में गुण, कर्म स्वभाव से वर्णव्यवस्था नियत होने की रीति प्रचलित थी, तब तक प्रत्येक मनुष्य परिश्रम करता था। जब से यह भय इस देश से निकल गया, अर्थात् जन्म ही से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बन गये उसी दिन से देश की हीन दशा हो गई। इसका कारण यही है कि कोई दण्ड देनेवाला नहीं रहा, विना दण्ड के कोई नियम ठीक नहीं रह सकता, जैसे मनु० अ० ७ श्लोक १८ में कहा है—

दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति।
दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्डन्धर्मं विदुर्बुधाः॥

दंडही से प्रजाकी रक्षा होती, यही शिक्षा देनेवाला, यही सोतों को जगाता है। शुक्रनीति में भी लिखा है कि दंड ही से धर्म की रक्षा होती है।

पति-पत्नी-धर्म

प्रिय सज्जन पुरुषो! ब्रह्मचर्य पूर्ण होने के पश्चात् जब विवाह होजाता है तब स्त्री पुरुष एक स्थान पर रहते हैं, उस समय परस्पर एकता होना बहुत आवश्यक है। क्योंकि गृहस्थी एक राज्य है जिसका राजा पुरुष और स्त्री मन्त्री है। अब आप जानते हैं कि जब तक राजा और मन्त्री विद्वान् होने

के पश्चात् एक मत होकर अपने २ धर्म को नहीं करते तो उस राज्य की दशा प्रशंसनीय नहीं होती । वरन् नाना प्रकार के कष्ट राजा और प्रजा को उठाने पड़ते हैं और देश देशान्तरों में प्रतिष्ठा होती है । शत्रु भी समय पाकर अपना कार्य पूरा करते हैं अर्थात् थोड़े ही दिनों में वह राज्य नष्ट हो जाता है । मान्यवरो ! ठीक उसी भांति गृहस्थी रूपी राज्यको समझो, यदि स्त्री और पुरुष विद्वान् होकर सम्मति के साथ प्रबन्ध नहीं करते तो वह गृहस्थी रूपी राज्य भी शीघ्र नष्ट हो जाता है । इस लिये शास्त्रकारों ने स्त्री और पुरुष को यही आज्ञा दी है कि परस्पर पूर्ण आयु प्रीतियुक्त रह पुरुषार्थ धन और श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर एक दूसरे की रक्षा करते हुए धर्मानुकूल सांसारिक और पारलौकिक कार्यों को कर इस संसार में नित्य आनन्द करें । जैसा कि—

इषे राये रमस्व सहसेद्युम्न उर्जे अपत्याय ।
सम्राडसि स्वराडसि सारस्वतौ त्वोत्सौ प्रावताम् ॥२५॥

और य० अ० १४ मंत्र ८ में कहा है कि स्त्री पुरुषों को चाहिये कि स्वयंवर विवाह करके अति प्रेम के साथ आपस में प्राण के समान प्रियाचरण, शास्त्रों को सुनना, औषधि आदि का सेवन और यज्ञ के अनुष्ठान से वर्षा करावें ।

प्यारी स्त्रियों और सुजन पुरुषों ! जिस प्रकार श्रेष्ठ अर्थात् शिक्षित दो घोड़े युक्त रथपर सुख के साथ अपने स्वामी को एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाते हैं उसी भांति परस्पर प्रसन्नचित्त योग्य दो विद्वान् गृहस्थीरूपी रथ के द्वारा अपने सब मनोरथों के पूर्ण करने में समर्थ होते हैं । जैसा ऋग्वेद अ० ३ व० १६ मं० ३ अ० ४ सू० ५३ मं० ४ में कहा है—

जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिस्तदित्त्वा युक्ता हरयो वहन्तु ।
यदा कदा च सुनवाम सोममग्निष्ट्वा दूतो धन्वात्यच्छ ॥

ऋग्वेद अ० ३ अ०४ व० २ मं० ३ अ० १ सू० ५७ मं० ४ में कहा है कि जहां स्त्री और पुरुषों में प्रेम होता है वहां सब प्रकार के आनन्द रहते हैं, परन्तु हे सुन्दरियो ! इस प्रेम की जड़ विद्या और धर्मात्मा होना ही है अर्थात् गृहस्थाश्रम में सुख जब ही प्राप्त होते हैं जब कि स्त्री पुरुष

दोनों विद्वान् और धार्मिक हों जैसा ऋग्वेद अ० २ अ० १ व० ४ मं० १ अ० १८ सू० १२३ मं० ३ में लिखा है।

इस लिये हे स्त्री पुरुषो! तुम दोनों को ऐसे व्यवहार और बर्त्ताव करना चाहिये जिससे परस्पर भय नष्ट होकर आत्मा को दृढ़, उत्साहयुक्त और गृहस्थाश्रम में व्यवहार की सिद्धिसे ऐश्वर्य बढ़े और दोष तथा दुःख दूर हो चन्द्रमा के तुल्य आन्हादित होओ। जैसा य० अ० ६ मं० ३५ में लिखा है—

माभेर्म्मा संव्विक्था ऽऊर्ज्जन्धत्स्वधिषणे वीड्वी सती
वीडयेथामूर्ज्जन्दधाथाम्। पाप्मा हतो न सोमः॥

य० अ० ३८ मं० ६ में लिखा है कि जैसा शब्दों का अर्थों के साथ वाच्य वाचक सम्बन्ध है, सूर्यके साथ पृथ्वीका, पृथ्वीका किरणोंके साथ, वर्षा का यज्ञ के साथ तथा ऋत्विजों का यजमान के साथ सम्बन्ध है, वैसा ही तुम्हारा पति के साथ सम्बन्ध है। जैसा—

गायत्रं छन्दोसि त्रैष्टुप्छन्दोसिद्यावापृथिवीभ्यांतवा परिगह्णा भ्यंतरिक्षेणोपयच्छामि। इंद्राश्विन मधुनः सारघस्य धर्मपात वसवो यजत वाट्। स्वाहा सूर्यस्य रश्मये वृष्टिवनये॥

जिस प्रकार ऋत्विज लोग सामग्री का संचय करके यज्ञ को शोभित करते हैं वैसे ही तुम दोनों प्रीतियुक्त घर के कार्यों को किया करो, जैसा य० अ० १६ में कहा है—

हविर्धानं यदश्विनाग्नीध्रं यत्सरस्वती।
इन्द्रायैंद्रथ्ंसदस्कृतं पत्नीशालं गार्हपत्यः॥

पुरुषों को योग्य है कि अपनी अपनी स्त्रियों का सत्कारसे सुख और व्यभिचार से रहित होकर प्रीतिपूर्वक आचरण और उनकी रक्षा आदि निरन्तर करें, इसी भांति स्त्रियां भी करें—और पुरुष अपनी स्त्रीके सिवाय अन्य स्त्री की, स्त्री अपने पति को छोड़कर दूसरे पुरुष का कभी संग न करें, इसी भांति प्रीतिपूर्वक सदा आपस में रहें। जैसा य० अ० १२ मं० १६ में लिखा है—

विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चीर त्राय । अग्निष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयांगिरस्वद् ध्रुवा सीद ॥

विवाह के समय में जिन व्यभिचार आदि के त्याग के नियमों को करे उनसे विरुद्ध कभी न चले क्योंकि पुरुष विवाह के समय स्त्रीका हाथ ग्रहण करता है तब ही पुरुषका जितना पदार्थ है वह सब स्त्री का, जितना स्त्रीका है वह सब पुरुषका समझा जाताहै। जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ कर अन्य स्त्री के निकट जाता है वा दूसरे पुरुष की इच्छा करे तो वह दोनों चोरके समान पापी होतेहैं। इसलिये स्त्री की सम्मतिके बिना कोई कार्य पुरुषको और पुरुष की आज्ञा बिना स्त्रीको कुछ भी न करना चाहिये। यह दोनों में परस्पर प्रीति बढ़ानेवाला कर्महै, इसलिये व्यभिचार को सब समय में त्याग दें। जैसा य० अ० १२ मं० ६५ में कहा है—

यन्ते देवी निर्ऋतिरत्यवन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम् ।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं हितुमद्धि प्रसूतः ॥
नमो भूत्यै येदं चकार ॥

और य० अ० ११ मं० ५० में कहा है कि विवाह के समय में स्त्री पुरुषों को चाहिये कि व्यभिचार छोड़ने की प्रतिज्ञा कर व्यभिचारिणी स्त्री और लम्पट पुरुषों का सत्संग सर्वथा छोड़ आपस में भी अति विषय शक्ति को छोड़ और ऋतुगामी होकर परस्पर प्रीतिके साथ पराक्रमवाले सन्तानों को उत्पन्न करें। क्योंकि स्त्री पुरुषके लिये अप्रिय, आयुका नाशक, निन्दा के योग्य कर्म व्यभिचारके समान दूसरा कोई भी नहीं। इसलिये व्यभिचारी कर्मों को सब प्रकार से छोड़ धर्माचरण करनेवाला होकर पूर्ण अवस्था के सुखों को भोगें। य० अ० १३ मं० में कहा है कि जिस कुल में स्त्री और पुरुष प्रीतियुक्त होकर रहते हैं, वहां सब विषयोंमें कल्याण होताहै। यथा—

अद्य सर्वाभीरुचे जनाय नस्कृधि ॥

जिस प्रकार स्त्री अपने पति को रक्खे उसी भांति पति भी स्त्री को सुख देवे, दोनों शुद्ध कर्म में भी पृथक् पृथक् न बसें अर्थात् सदा इकट्ठे हो कर वर्त्ताव करें, जैसा—

अपो हिष्ठा मयो ऊर्जे दधातन महे रणाय चक्षसे ।

क्योंकि ऋग्वेद अ० ३ अ० ४ व २ अ० ५ सू० ५७ मं० ४ में कहा है कि जो स्त्री पुरुष पृथ्वी और सूर्य के सदृश संयुक्त हुए वर्त्तमान हैं वे भाग्यशाली होते हैं, इसलिये स्त्रियों को उचित है कि जिस भांति माता पिता अपने पुत्रों का सेवन करते हैं उसी भांति अपने पतियों की प्रीतिपूर्वक सेवा करें, जैसे प्यासे प्राणियों को जल तृप्त करता है वैसे ही अच्छे स्वभाव से स्त्री और पुरुष आनन्द में रहें । जैसा य० अ० ११ में लिखा है—

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः । उशतीरिवमातरः

और मं० ५२ में कहा है जिस पुरुष की जो स्त्री हो वा जिस स्त्री का जो पुरुष होवे आपस में किसीका अनिष्टचिन्तन कदापि न करें । ऐसेही सुख और सन्तानों से शोभायमान होकर धर्म से घरके कार्य करें । जैसा कि—

तस्मा अरंगमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथ ।
आपो जनयथा च नः ॥

मन्त्र ५३ में कहा है कि श्रेष्ठ गुणवान् विद्वानों के संग से शुद्ध आचार को ग्रहण कर शरीर और आत्मा की आरोग्यता को प्राप्त होकर अच्छे अच्छे सन्तानों को उत्पन्न करें । जिस भांति पुरुष स्त्री को अच्छे कामों में नियुक्त करे उसी भांति स्त्री भी अपने पति को अच्छे कामों में प्रेरणा करे, जिससे निरन्तर आनन्द बढ़े । य० अ० १४ मं० १२ । और स्त्री पुरुष का पुरुष स्त्री का जैसे अवस्था आदि की वृद्धि होवे वैसे परस्पर नित्य आचरण करें । जैसा य० अ० १४ मं० १७ में कहा है ।

स्त्री पुरुषों को चाहिये कि शुद्ध विद्या क्रिया और स्वतन्त्रता से पृथ्वी आदि पदार्थों के गुण कर्म स्वभाव को जान खेती आदि कर्मों से सुवर्ण आदि रत्नों को प्राप्त हों और गौ आदि पशुओं की रक्षा कर ऐश्वर्य बढ़ावें । जैसा य० अ० १४ मं० १९ में कहा है—

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षञ्छन्दो द्यौश्छन्दः समाञ्छन्दो,
नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो
हिरण्यञ्छन्दो गौश्छन्दोऽजाश्छन्दोऽश्वश्छन्दः ॥

य० अ० ११ मं० ५४ में कहा है जैसे वायु सूर्य का, सूर्य प्रकाश का,

प्रकाश नेत्रों के देखने के व्यवहार का कारण है वैसे ही स्त्री पुरुष आपस में सुख के साधन और उपसाधन करनेवाले होके सुखों को सिद्ध करें, इसलिये तुम विद्वानों का सत्कार, ईश्वर आराधन, अच्छा संग, सत्य विद्या आदि का दान यह इष्ट, और पूर्ण बल ब्रह्मचर्य विद्या की शोभा पूर्ण युवाअवस्था साधन और उपसाधन यह पूर्त्त (इष्टापूर्त्ती) दोनों प्रकार के कर्मों को करते रहो। जैसा य० अ० १५ मं० ५४ में कहा है, इसके अतिरिक्त दोनों शीतल स्वभाव से गृह में रहकर कार्य करें क्योंकि विवाह के पश्चात् विना इसके सुख नहीं मिलता, जैसा ऋग्वेद अ० २ अ० १ व० ४ मं० १ अ० १८ सू० १२३ मं० १ में कहा है।

विवाहिता स्त्री पुरुषों को चाहिये कि जैसा सूर्य अपने प्रकाश से सर्व जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही अपने सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से शोभायमान होके घर आदि वस्तुओं को सदा पवित्र रक्खें। य० अ० ११ मं० ४० में कहा है--

सुजातो ज्योतिषा सह शर्म वरूथ मासदत्स्वः।
वासो अग्ने विश्वरूप ꣳ संव्ययस्व विभावसो॥

और कभी धन के अहंकार से किसी के साथ ईर्षा द्वेष मत करो, दूसरों की वृद्धि वा धन देख कर सदा आनन्द मानो, जैसा य० अ० ११ मं० १५ में कहा है--

रायस्पोषेण समिषा मदंतोऽग्ने माते प्रतिवेशा रिषाम्।

और जिस भांति शिशिर ऋतु सुखदाई होती है उसी भांति स्त्री पुरुष संतोषी हो उत्तम कर्मों के करने का अनुष्ठान कर दुष्ट कर्मों को छोड़ परमेश्वर की उपासना कर आनन्द करें, जैसा य० अ० १५ मं० ६४ में कहा है। जैसे बिजुली और सूर्य जल वर्षा से औषधि आदि पदार्थों को बढ़ाते हैं उसी भांति तुम दोनों कुटुम्बों को बढ़ाया करो और जिस प्रकार प्रकाश और पृथ्वी आकाश का आचरण करते हैं उसी भाँति गृहस्थाश्रम के व्यवहारों को पूर्ण करो। जैसा य० अ० १४ मं० ११ में कहा है--

इंद्राग्नी अव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम्।
पृष्ठेन द्यावापृथिवी अंतरिक्षं च विबाधसे॥

जब२ तुम्हारे यहां आनन्ददायक कार्य्य हों तब २ तुम अपनी सहेलियों (पुरुष अपने मित्रों और बन्धुजनादि) को बुलाकर भोजनादि पदार्थों से यथायोग्य सत्कारकर सदा प्रसन्न करती रहो. और नाना भांति के विचार शास्त्रार्थ, उपदेश, विद्या विषयक वाग्विलास (वार्तालाप) में समय को व्यतीत करो। जैसा य० अ० ८ मं० १२ में कहा है—

यस्तेऽअवस्हनिर्भक्षो यो गोगनिस्तस्य तऽइष्टयजुपस्तु।
तस्मोमस्य शस्तोक्थस्योपहूतस्योपहूतो भक्षयामि॥

कभी सौगन्द न खाओ, न्याय के विरुद्ध कभी कोई कार्य और मूर्खों के समान ईर्षा को न करो, जैसा य० अ० १२ मं० ६० में कहा है—

मुञ्चंतु मा शपथ्यादथोवरुरयादुत।
अथो यमस्य पड्वीशात्सर्वस्माद् देव किल्विषात्॥

जब कभी अकस्मात् भ्रान्ति से किसी विद्वान् का अनादर कोई करे तो उसी समय क्षमा कराये, जैसा य० अ० २० मं० १४ में लिखा है।

यद्देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम्।
अग्निर्मा तस्मादेनसो विश्वान्मुंचत्वाꣳहसः॥

तुम सदा उन्हीं लोगोंको बुद्धिमान समझो जो अन्याय से किसीकी वस्तु का ग्रहण नहीं करते और दुष्ट वेश हिंसा करनेवालों का संग और न्याय से प्राप्त हुए धन का व्यर्थ खर्च, दुष्ट बन्धु का संग और शत्रु का विश्वास नहीं करते वही आनन्द को भोगते हैं। जैसा ऋग्वेद अ० ३। अ० ४। व० २२ मं० ४ अ० १ सूत्र ३ मं० १३ में कहा है।

मा कस्य यच्चं सदमिद्धुरो गामावशेश्य प्रमिना तो मापेः।
मा भ्रातुरग्ने अनृजोर्ऋणं वेर्मा सख्युर्दत्तं रिपोभुजेम॥

इसके उपरान्त जिस २ कार्य के करने से विद्या, अच्छी शिक्षा बुद्धि, धन, सुहृद्भाव और परोपकार बढ़े उस २ कर्म को सदा करती रहो, जैसा य० अ० ८ मं० ४ में कहा है।

यज्ञोदेवानाम्प्रत्येति सुम्नतादित्यासो भवतामृडयन्तः।

आ वोर्वाञ्ची सुमतिर्ववृत्यादंय्होश्चिद्या वरिवो ॥
वित्तरासदादित्येभ्यस्त्वा ॥

गृहस्थ जन घर के कार्यों को यत्न से कर राजभक्ति. राजसहायता, उत्तम धर्म से गृहस्थाश्रम का पालन कर आनन्द भोगें।

तात्पर्य इस कथन का यह है कि इस आश्रम में स्त्री और पुरुषों को बड़ी सावधानी से जितेन्द्रिय हो, धैर्य को धारण कर, सहनशीलता से कार्य करना चाहिये। सब से प्रथम प्रत्येक बात को विचार कर कार्य करना सुख का मूल है। जिसको स्वयं बुद्धि नहीं है, शास्त्र उसको क्या कर सकता है, जैसे नेत्र रहित मनुष्य को दर्पण कुछ सहायता नहीं कर सकता। जैसा-

यस्यनास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणं किं करिष्यति ॥

इसलिये सदा विचार कर कार्य करना चाहिये, जो विना विचार किये कार्य करते हैं उनकी बड़ी हानि होती है। जैसा किसी कवि ने कहा है-

कुण्डलिया-बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय।
काम बिगाड़े आपनो जग में होत हंसाय ॥
जग में होत हंसाय चित्त में चैन न आवै।
खान पान सम्मान राग रंग मनहि न भावै ॥
कह गिरधर कविराय सदा नर रहे दुखारे।
खटकत है दिन रैन कियो जो बिना विचारे ॥

इसलिये इस बात को ध्यान कर कार्य करो, क्रोध के समय शान्ति के वचन बोलो जिससे कलह न बढ़े। तुम कभी किसी की निन्दा मत करो। छोटों पर स्नेह और बड़ों का मान करो, जिससे परस्पर प्रेम बढ़ता रहे। सदा परोपकारी हो संसार में परोपकार करते रहो क्योंकि परोपकार रहित स्त्री पुरुष के जीवन को धिक्कार है। पशुओं का धर्म भी परोपकार करना है, देखो नदियां आप जल नहीं पीतीं, वृक्ष अपना फल नहीं खाते, मेघ अपने उपजाये हुए धान को आप नहीं खाते, ऐसे ही सज्जन पुरुषों का जीवन परोपकार के लिये ही होता है। जैसे---

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः ।
धाराधरो वर्षति नात्महेतोः परोपकाराय सतां विभूतयः ॥

इसके उपरान्त विद्या, शरीर, वचन, वस्त्र और पांचवां विभव अर्थात् धन इनको सदा संचय करते रहो । गुप्तदान, घर पर आये अतिथियों का आदर करना, भलाई करके चुप रहना, अन्य के उपकार को सभा में कहना, लक्ष्मी का गर्व न करना, निन्दा भी किसी की न करना, इन तीक्ष्ण व्रतों को धारण करने से परम ऐश्वर्य की बढ़ती होती है । तुम कभी गरजने वाले बादल की भांति न गरजो वरन् सज्जनों की भांति कार्यों को कर उसकी पूर्त्ति की सूचना दो । गृहस्थ होकर मांगने की टेंव न डालो क्योंकि घास से रुई हलकी और रुई से याचक । इसी कारण कहा है कि "मांगना भला न बाप का जो प्रभु राखे टेक ।" इसलिये उद्योग, साहस, धीरज, बुद्धि, पराक्रम यह जहां रहते हैं वहां सदा आनन्द रहता है ।

अब हम कुछ उपयोगी शिक्षायें वेद, शास्त्र और नीति से लिखते हैं जिन पर चलने से अनेकान लाभ होते हैं ।

वेदोक्त शिक्षा

१–पुरुषार्थ ही मित्र है, वही सुख देता है, इसलिये सदा यत्न से पुरुषार्थ करो क्योंकि आलसी सदा दुःखी रहता है ।

२–जो मनुष्य क्रिया में कुशल, धार्मिक और परोपकारी होते हैं वही दोनों लोकों के सुखों को भोगते हैं । एवं धर्म मार्ग में दुष्टता कभी न करना चाहिये ।

३–जो परमेश्वर सर्वत्र फैला है वही दुष्टों को दण्ड और धर्मात्माओं की रक्षा करता है, वही उपासना करने योग्य है ।

४–सृष्टि के पदार्थों को देख उनसे नाना गुणों को जो ग्रहण करते हैं वही योग्य होते हैं ।

५–शिल्पविद्या की पूर्ण रूप से उन्नति जब ही होती है जब मनुष्य अग्नि, वायु और जल से नाना प्रकार की युक्तियों से काम लेकर अनेकान् भाँति के कला यन्त्र निर्माण करते हैं ।

२१-विना उत्तम बुद्धि के सुख नहीं होता, इसलिये धर्मात्मा विद्वानों के सत्संग से बुद्धि को बढ़ाओ और विद्या तर्क से उपयोगी होती है।

२२-सूर्य से सब जगत् का प्रकाश होता है और परमात्मा सब का प्रकाशक है।

२३-वैद्यक शास्त्रानुसार सब रोगोंको निवृत्तकर शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाली औषधियों का सेवन करो।

२४-वाणी वही उत्तम कहाती है जिसमें तीन गुण हों, प्रथम विद्या और शिक्षा से संस्कार की हुई, दूसरे सत्यभाषण युक्त, तीसरे मधुर गुणयुक्त हो।

२५-न्याय से सबका मन प्रसन्न होता है, इसलिये सदा न्याय करता रहे। जीव अनादि कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में परतन्त्र है। फल का देने वाला परमात्मा है।

२६-जैसा सब दुःख हानि लाभ अपनी आत्मा को होता है, वैसा ही अन्य को भी जानना चाहिये, तब ही सुख की वृद्धि होती है।

२७-जो जन जिस कार्य में निपुण हो उसको उसी कार्य में लगाना चाहिये, जिससे कार्य सुगमता और उत्तमता से हो।

२८-जो गर्भ दश महीने से अधिक ठहरता है वह बल बुद्धि का वीर होता है, अन्यथा वैसा नहीं।

२९-स्त्री पुरुषों के सुयोग्य होने से सन्तान प्रशंसनीय रूप, गुण, कर्म, स्वभाव, बल आदि वाले होते हैं।

३०-उपासना के अनुकूल आचरण करने से सर्वत्र विजय होती है।

३१-विना ज्ञान के ईश्वर की उपासना नहीं होती क्योंकि विज्ञान ही उसकी अवधि है।

३२-जो स्त्री पुरुष व्यभिचार को त्याग संयम से रहते हैं वही सुख के पात्र होते हैं। और दाता जनों को कभी कृपणता नहीं आती।

३३-जो स्त्री पुरुष विना पूर्ण विद्या और ब्रह्मचर्य के गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं, वे सदा दुःखों में फँसे रहते हैं।

३४-सच्चे शूरवीर वही हैं जिनकी प्रतिज्ञा और वाणी कभी मिथ्या न हो।

३५-जो मूर्ख और क्षुद्राशय पुरुषसे सम्बन्ध करते हैं वे दुःखी होते हैं।

३६-जिन देशों में सूर्य और चन्द्रमा के समान उपदेशक जन व्याख्यानों से सब विद्याओं का प्रकाश करते हैं, वहाँ कोई भी विद्याहीन होकर भ्रम में नहीं पड़ता।

३७-जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवन आदि सुखों को भोगते हैं।

३८-श्रेष्ठ स्त्रियों को योग्य है कि अच्छी शिक्षिता और चतुरा दासियों को रख कर सब पाक आदि करायें।

३९-जल का आधार समुद्र और उसका भूमि और भूमि का आकाश उसी भांति गृहस्थी के सब पदार्थों का आधार गृह है।

४०-पृथ्वी को खोद नाना प्रकार की धातु आदि उपयोगी पदार्थों को काम में लाने से बड़ा ऐश्वर्य होता है।

४१-मनुष्य को योग्य है कि वह असत्य, खोटे कर्म, झूँठी स्तुति, प्रार्थना, प्रशंसा और व्यभिचार कभी न करे।

४२-जिस सन्तान को माता पिता ब्रह्मचर्य्यादि उत्तम नियमों से उत्पन्न कर लालन पालन और विद्या पढ़ा धर्मात्मा बनाते हैं वही उन को सुख देने वाले होते हैं।

४३-वनों की रक्षा करता रहे क्योंकि इसीसे वर्षा और रोगों की शांति होती है।

४४ ऐश्वर्य के विना राज्य और राज्य विना लक्ष्मी, लक्ष्मी विना उद्योग प्राप्त नहीं होती, इसलिये परिश्रम से धन प्राप्त करो।

४५-अग्नि में खींचने की, पृथ्वी में धारण, पवन में चढ़ने की, मेघों से जल वर्षाने आदि की सब क्रियाओं को जो जानते हैं वही संसार में सुख की वर्षा करते हैं तथा जो दूध घी का सेवन करते हैं वही कोमल स्वभाव होत हैं।

४६-चेतन ब्रह्म ही उपासना के योग्य है और जो इससे भिन्न है वह उपास्य नहीं किन्तु उपकार लेने योग्य है।

४७-रोगों की निवृत्ति, निदान, चिकित्सा औषधि और पथ्य सेवन से होती है। न्यायके विरुद्ध श्रेष्ठों पर मूर्खोंके समान अपराध न लगाओ।

४८-जितने रोग हैं उतनी ही उनकी औषधि हैं, जो उनको जानते हैं वही सुखी रह कर सबको आनन्द देते हैं।

४६-जो अपने समान सबका हित चाहते हैं उनकी सब प्रकार की वृद्धि होती है।

५०- जो मन वाणी को अपने वश में करते हैं वही योग्य होते हैं।

५१-पृथ्वी पर जितने पदार्थ हैं उनमें अन्न ही परम उपयोगी है, इसलिये अन्न दान करनेवाले पुरुष की सर्वत्र कीर्ति होती है।

५२-जो समय का विभाग कर कार्य करते हैं वह सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त करते हैं। एवं यथार्थ सम्मतिदाताओं को ही न्यायपरायण कहते हैं।

५३-जो पक्षपात से रहित और न्याय से युक्त हों उन्हीं से सम्मति लेना योग्य है।

५४-परमेश्वर पाप कर्मों के ही कारण मनुष्यों को लूला, लँगड़ा, बौना, अंधा, बहिरा आदि करता है, इसलिये सदा शुभ कर्मों का करना उचित है।

५५-जीव के रहने का स्थान शरीर है, इसको ब्रह्मचर्यादि से दृढ़ बनाये रहो। अपनी जठराग्नि को सदा तेज़ बनाये रक्खो।

५६-जो जन आप्त विद्वान् सत्यवादी की शिक्षा पर चलते हैं उनको सदा विजय, राज्य, श्री, प्रतिष्ठा, बड़ी अवस्था, बल और विद्या प्राप्त होतीहै।

५७-जो अग्नि और जलादि से युक्त भाफ से शीघ्रगामी यानों का प्रचार करते हैं, उनकी नाना प्रकार की उन्नति होती है।

५८-विद्याध्ययन करने के पश्चात् जो एकान्त देश में विचार करते हैं वे योगियों के समान उत्तम बुद्धिवाले होते हैं।

५६—जो न्याय और विनय से परोपकार को करते हैं वह विद्वान् पिता और विदुषी माता और श्रेष्ठ पदार्थों को प्राप्त हो विद्वानों के सेवक हो अन्य सुखों को पाते हैं।

६०—जो विद्यार्थी निष्कपट हो विद्वानों की सेवा करते हैं उन्हीं को विद्या का प्रकाश होता है, अन्य का नहीं।

६१—प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक, नाम इन सोलह वस्तुओं को परमेश्वर ने बनाया, यही षोड़सी कहाती हैं।

६२—नीच व्यवहार और नीच पुरुषों और स्त्रियों का संग छोड़, उत्तम कर्म और सज्जनों का साथ करना ही सर्वोपरि उत्तम कार्य है।

६३—बिना प्रीति और सत्य व्यवहार के कोई भी ईश्वर के गुण कर्म और स्वभाव को यथार्थ नहीं जानता।

६४—जो ब्रह्मचर्य धारण कर विद्या को पढ़ धर्मानुसार कार्य करते हैं वही पुरुष उपदेशक होते हैं, अन्य हठी और अभिमानी नहीं।

६५ जो माता पिता के सच्चे अनुचर होते हैं वही श्रीमन्त होते हैं।

६६ जो मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा का पालन, विद्वानों का संग कर बहु सामर्थ्ययुक्त मनको शुद्ध करते हैं उन्हींको सब अवस्थाओं में आनन्द प्राप्त होता है। गम्भीर बुद्धिवाले ही विद्वानों में माननीय होते हैं।

६७— मनुष्य-शरीर धारण करने का यही फल है कि विद्या, उत्तम शिक्षा, उत्तम स्वभाव, धर्म, योगाभ्यास और विज्ञान का ग्रहण कर मुक्ति को प्राप्त करें।

६८ मनुष्यों का विशेष कल्याण पढ़ाने और उपदेश से होता है इस लिये गुरुकुल में विद्या पढ़ाने और उपदेशक बनाने के लिये जो पुरुष यत्न करते हैं, वे धन्य हैं। अनाथों की जो रक्षा करते वे पुण्यवान् कहाते हैं।

६९—जो धर्म-मर्यादा का उल्लङ्घन नहीं करते वे निरोग होकर पूर्ण आयुवाले होते हैं और उनको मृत्यु मध्य में नहीं मारती।

७०—जिस प्रकार अग्नि, विद्युत् और सूर्य तीव्र रूप से जगत् में प्रकाशित हो रहा है उसी भांति उत्तम बल, कर्म, बुद्धि, धर्म से संचित धन, जीती हुई इन्द्रियां महान् सुख को देती हैं।

७१—ज्यों ज्यों मनुष्य सत्कर्म की चेष्टा करते हैं त्यों त्यों पापकर्मों से बुद्धि की निवृत्ति होती है और विद्या, अवस्था और सुशीलता बढ़ती है।

७२—जिस प्रकार समुद्र जल को भर जीवों की रक्षा कर नाना प्रकार के मोती आदि देता है उसी भांति धर्म से धन इकट्ठा कर दरिद्रियों की रक्षा कर आनन्द भोगो। जो वाणी को वश करते हैं वह ज्ञान के धनी होते हैं।

७३ जो समय को वृथा खोते हैं, वायु आदि पदार्थों का शुद्ध नहीं करते, अदृश्य पदार्थों का अनुमान नहीं जानते, वे कभी सुख नहीं पाते।

७४—अग्नि स्थूल पदार्थों को जलाता है, सूक्ष्म को नहीं।

७५—जो परमेश्वर न कभी उत्पन्न होता है, न मरता है, उसको ध्यानशील योगिराज ही जानते हैं।

७६—परमेश्वर की उपासना, सुन्दर विचार, विद्या और उत्तम सत्सङ्ग अन्तःकरण की शुद्धि अर्थात् धर्माचरण से होती है।

७७–जो परमात्मा की आज्ञा पालन करते हैं, वे लक्ष्मी सन्तान से रहित कभी नहीं होते और न वे अल्पायु होते हैं।

७८–पितर वे कहाते हैं जो विद्या और उत्तम शिक्षा से पण्डित धर्मात्मा बनाते हैं।

७९–धर्मात्माओं के लिये संसार के सम्पूर्ण पदार्थ मंगलकारी होते हैं।

नीतियुक्त शिक्षा

१–धर्मयुक्त नीति का विचार करना उत्तम है जिस प्रकार तपा कर सुवर्ण की परीक्षा की जाती है उसी भांति कर्म, गुण, शील और कुलादि से सम्पूर्ण की परीक्षा करें।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदन तापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते त्यागेन शीलेन गुणेन कर्मणा॥

२–राजा देवता अर्थात् विद्वान, गुरु, अग्नि, तपस्वी और धर्म इनका सावधानी से सेवन करे, शास्त्र-ज्ञान के विना धर्म-मार्ग में मर्मज्ञ नहीं होता है।

३–माता, पिता, गुरु, स्वामी, भाई पुत्र और मित्र इनसे एक क्षण को भी कभी विरोध न करे, एवं इनसे वैर करनेवाला दुःखी होगा।

४–स्त्री, बालक, वृद्ध, मूर्ख इनके साथ विवाद न करे।

५–अकेला स्वादिष्ट भोजन और अर्थ की चिन्ता और मार्ग में न चले।

६–स्त्रियों के साथ एक आसन पर न बैठे। निद्रा, तंद्रा, भय, क्रोध, आलस्य, दीर्घसूत्रता इन छः बातों को त्याग दे।

७–शत्रु के गुण ग्रहण करने चाहियें और गुरु के अवगुण छोड़ने उचित हैं।

८–अपने घर में आये हुए क्षुद्र की भी यथायोग्य सेवा करनी चाहिये।

९–रोग, शत्रु को थोड़ा समझ कर न छोड़े, याचकों को तीखा उत्तर न दे। दाता, धार्मिक शूरवीर इनकी ख्याति को यत्न से सुने। दीन, अन्धे, पंगु, बहिरे इनका हास्य कभी न करे।

१०–जिसने कुटुम्ब का पालन नहीं किया वह जीता ही मरों में गिना जाता है। सींग, नख, डाढ़वाले जीवों और दुर्जन का कभी विश्वास न करे।

११–स्त्री, बालक, रोग, दास, पशु धन और विद्या अभ्यास और सज्जन सेवा को एक क्षण भी त्याग न करे।

१२-श्रुति, स्मृति इनके अर्थ का ज्ञान और उत्तम बुद्धि पण्डितों के संग से होती है। तरुणा स्त्री, धन, पुस्तक इनको पराधीन न करे।

१३—गुरु, बलवान, रोगी, शत्रु, राजा, श्रेष्ठ व्रतवाला और सवारी पर चढ़े को मार्ग छोड़ देना चाहिये।

१४-गाड़ी से पांच हाथ, घोड़े बैल से दस हाथ, हाथी से सौ हाथ दूर रहे।

१५-धन देने के समय मित्रता को और लेने के समय शत्रुता को प्रकट करता है, इसलिये बिना लिखा पढ़ी के कभी भी किसी को धन न देवे।

१६—अलंकार, राज्य, पुरुषार्थ, विद्या इनसे मनुष्य की इतनी शोभा नहीं होती, जितनी भलाई रूपी भूषण से होती है।

१७-बिना शास्त्र के जाने धर्म निर्णय, नीति, दण्ड, चिकित्सा, प्रायश्चित् और क्रिया के फल को वर्णन न करे।

१८-विद्या, शूरता, चतुराई, बल और धीरजता यह स्वभाव ही से मित्र कहे हैं, इसलिये इन से ही वर्ते।

१९-अनिष्ट वा कठोर वचन कहनेवाला, जल और बाग़ को नष्ट करनेवाला, नक्षत्र सूत्र, राजा का वैरी, खोटा मन्त्री, कपटी, खोटा वैद्य, अशुद्ध रहनेवाला, मार्ग का रोकनेवाला, स्वामी-द्रोही, अधिक व्ययकर्त्ता, अग्नि लगानेवाला, विष देनेवाला, व्यभिचारी, अन्यायकर्त्ता, माता पिता आदि से द्रोह करनेवाला, पराये गुणों में दोषों को ढूंढ़नेवाला, शत्रु का सेवक, मर्म का छेदक, वंचक, अपनों का द्वेषी, कुटुम्ब का बिना पालन पोषण के तप करनेवाला, मोटा ताज़ा होकर भिक्षा मांगे, कन्या बेचे, अधर्म का प्रचार करे, स्वतन्त्र, पुत्र स्त्री वृद्धों का निन्दक, इन सब का संग त्याग दे।

२०-मृग हेड़ी के शब्द से, हाथी हथिनी के स्पर्श से, पतंग दीपक के रूप से, भ्रमर फूल के रस से, मीन अन्न की गन्ध से ये पांचों एक एक इन्द्रियों के विषय से मारे जाते हैं।

२१-धनवानों के सन्तान न होना और निर्धन होकर मूर्खता होनी यह पाप का ही फल है। इसलिये वही जीविका श्रेष्ठ है जिससे धर्म न छूटे।

२२ धूर्त मनुष्य अन्य के उपदेश के लिये सदैव साधु के समान परन्तु अपने प्रयोजन के लिये सैकड़ों कुकर्म करते हैं।

२३-दुष्ट भार्यावाले गृहस्थ से मरना भला है, कुमन्त्रियों से राजा, कुवैद्यों से रोगी, कुत्सित राजाओं से प्रजा, खोटी सन्तान से कुल, कुबुद्धि से आत्मा सदैव नष्ट होते हैं। अति भ्रमण, अति भोजन, अति मैथुन, अति परिश्रम ये शीघ्र बुढ़ापा लाते हैं, इस लिये अति छोड़कर कार्य करे।

२४-साधु तनक उपकार को बड़ा मानता है, खल बड़े उपकार को भी कुछ नहीं मानता।

२५-जिस देश में आदर, जीविका, बन्धु और विद्या का लाभ नहो वहां रहना योग्य नहीं। जहां धनिक, वेद का ज्ञाता ब्राह्मण, राजा, नदी और वैद्य विद्यमान न हों वहां एक दिन भी वास न करना चाहिये।

२६-काम लगने पर सेवकों की, दुःख आनेपर बान्धवों की, विपत्ति काल में मित्र की, विभव के नाश होने पर स्त्री की परीक्षा करनी चाहिये।

२७-सब पर्वतों पर माणिक्य नहीं होता और मोती सब हाथियों में नहीं मिलता, इसी भांति साधु सब स्थानों पर और सब वनों में चन्दन नहीं होता।

२८-स्त्री का बिरह, अपने जनों से अनादर, युद्ध से बचा शत्रु, कुत्सित राजा की सेवा, दरिद्रता और अविवेकियों की सभा ये बिना अग्नि के ही शरीर को जलाते हैं।

२९-कुग्राम में वास, नीच कुल की सेवा, कुभोजन, कलही स्त्री, मूर्ख पुत्र, विधवा कन्या, ये छः बिना आग के शरीर को जलाते हैं।

३० नदी के तीर का वृक्ष, अन्य गृहमें जानेवाली स्त्री, मन्त्री-रहित राजा शीघ्र नष्ट होजाते हैं।

३१-ब्राह्मणों का बल विद्या, राजा का सेना, वैश्यों का धन और शूद्रों का बल सेवा है।

३२-आलस्य, मद, मोह चञ्चलता, बुरी सलाह, अभिमान, कठोरता और भूल ये सात दोष विद्यार्थियों में होते हैं। सुख चाहनेवाले को विद्या, विद्या की इच्छावाले को सुख कहां ?

३३-आलसी, भयङ्कर, घमण्डी, चोर, कृतघ्न, नास्तिक का कभी विश्वास न करना चाहिये।

३४-मूर्ख, नशों का पीनेवाला, आलसी, अजितेन्द्रिय और रोगी इनके पास धन कभी नहीं रहता।

३५—जिन पति पत्नियों के हृदय से हृदय, मन से मन और बुद्धि से बुद्धि मिल जाती है उनको ही सुख प्राप्त होता है।

३६—जिसका आचरण बुरा है, दृष्टि पाप में रहती है, बुरे स्थान में बसनेवाला और दुर्जन इन पुरुषों की मैत्री शीघ्र नष्ट होजाती है।

३७—मित्र को धर्म का उपदेश करना भला है, पुत्र पुत्रियों को विद्या में लगाना उचित है।

३८—आचार से कुल जाना जाता है, बोली से देश, आदर से प्रीति और शरीर भोजन को बतलाता है।

३९-कोकिलाओं की शोभा स्वर, स्त्रियों की पातिव्रत, तपस्वियों की शोभा क्षमा और सुपुत्र से कुल शोभित होता है, योग्य पुत्री से दो कुलों की शोभा होती है, कुपत्र से कुल शोभा रहित होजाता है।

४० धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के बिना मनुष्य शरीर निरर्थक हीहै।

४१—जहां मूर्खों की पूजा होती है वहां अन्न संचित नहीं रहता और जहां स्त्री पुरुषों में प्रेम होता है, वहांही लक्ष्मी विराजमान रहतीहै।

४२—सज्जनों की सबसे बड़ी यही परीक्षा है कि उनके मन, वच और कर्म एक होते हैं।

४३ धन होने पर विवेक, विद्या के साथ विनय, बल के साथ नम्रता होना महात्माओं के लक्षण हैं।

४४ बड़े महात्मा वही हैं जो धन पाकर बौराते नहीं, युवा होकर चंचल नहीं होते और अधिकार पाकर घमण्ड नहीं करते।

४५-कान श्रुति अर्थात् शास्त्र सुनने से शोभित होते हैं कुंडल से नहीं, हाथ दान से शोभित होता है कंकण से नहीं, इसी भांति शरीर परोपकार से शोभा पाता है चन्दन के लगाने से नहीं।

४६-विपत्ति में धीरज, बढ़ती में क्षमा, सभा में वचन की चतुराई, युद्ध में शूरता, यश में रुचि और वेद में कामना यह महात्माओं को स्वभाव से ही होती है। दुष्ट मनुष्य सर्वदा ही परनिन्दा से प्रसन्न होते हैं।

४७ गुप्त दान देना, अतिथियों का आदर करना, भलाई करके चुप रहना, पराये उपकार का सभा में कथन करना, लक्ष्मी का गर्व न करना, दूसरों की निन्दा न करना, इनव्रतों के करनेवाले सज्जन कहलाते हैं।

४८—सांप का विष दांत में, मक्खिका का सिर में, बिच्छू का पूंछमें परन्तु दुर्जन का विष सब अंगों में रहता है।

४९—आरोग्य रहना, ऋणी न होना, परदेश में अधिक न रहना, सत्पुरुषों का सत्संग करना, अपनी वृत्तिकी आजीविका और निर्भय होकर रहना, ये इस लोक के सुख हैं।

५०—जो मनुष्य कच्चे फलों को खाता है उसको स्वाद नहीं मिलता।

५१—शरीर के अंग ढीले पड़ गये, सिरके बाल सफ़ेद होगये, मुख दन्तरहित होगया, बुढ़ापा आगया, दण्ड लेकर चलने लग गया, परन्तु तो भी आशा ने पिंड नहीं छोड़ा।

५२—मान अपमान पर ध्यान कर अपने कार्य को कर दिखलाना उत्तम पुरुषों का काम है। विवाह, मित्रता, व्यवहार ये तीनों समान से ही शोभित होते हैं।

५३—चंचलता, लालच, कोप, मिथ्या, चुगली, द्वेष और पराये घर पर रहना इन सबको बुद्धिमान् त्याग दें।

५४ पर द्रव्य अन्य की निन्दा, बड़ों के साथ हंसी ठट्ठा करना और चंचलता इन सबका त्याग देना चाहिये।

५५—तृण, भूमि, जल और चौथा सुन्दर मधुर वचन, ये सब सज्जनों के यहां सदा बने रहते हैं।

५६—जब तक शरीर स्वस्थ अर्थात् नीरोग है, मृत्यु दूर है, तब तक अपना हित साधन करना चाहिये, जब प्राण का अन्त समय आ जायगा तब कोई क्या करेगा?

५७—कामनाओं के भोगने से कामना शांति कभी नहीं होती, जिस प्रकार से घृतादि होम सामग्री से अग्नि शान्ति नहीं होता।

५८—वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं।
वरं क्लैब्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम्॥
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येष्वभिरुचिः।
वरं भिक्षाशित्वं न च परधनस्वादन सुखम्॥

चुप रहना अच्छा पर झूंठ बोलना अच्छा नहीं, नपुंसकपना अच्छा पर पराई स्त्री का संगम अच्छा नहीं, मर जाना अच्छा पर चुगली में प्रीति

अच्छी नहीं, भीख मांग कर खाना अच्छा है पर दूसरे का धन खा कर सुख उठाना अच्छा नही।

५९—वरं शून्या शाला न च खलु वरो दुष्टवृषभो।
वरं वेश्यापत्नी न पुनरविनीता कुलवधूः॥
वरंवासोऽरण्ये न पुनरविवेकाधिपपुरे।
वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः॥

गोशाला खाली रहना अच्छा पर मारने वाला बैल अच्छा नहीं, वेश्या पत्नी अच्छी पर दुश्चरित्रा कुलबधू अच्छी नहीं, जंगल का रहना भला पर अविवेकी राजा के नगर में रहना अच्छा नहीं और प्राण चला जाना अच्छा पर नीचों की संगति अच्छी नहीं।

६०—मूर्खो द्विजातिः स्थविरो गृहस्थः।
कामी दरिद्रो धनवांस्तपस्वी॥
वेश्याकुरूपा नृपतिः कदर्यो।
लोके षडेतानि विडम्बितानि॥

मूर्ख द्विजाति, बूढ़ा गृहस्थ, दरिद्र होकर विषयकी इच्छा रखनेवाला, तपस्वी होकर धन का संचय करने वाला, कुरूपा वेश्या और कायर राजा ये छहा संसार में अनादर किये जाते हैं।

६१—अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयन्ति।
प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतञ्च॥
पराक्रमञ्च बहुभाषिता च।
दानं यथा शक्ति कृतज्ञता च॥

प्रज्ञा, कुलीनता, दम अर्थात् मन को दुष्ट कर्मसे रोकना, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, थोड़ा बोलना, यथाशक्ति दान, कृतज्ञता अर्थात् दूसरेकी भलाई को मानना ये दश गुण मनुष्य को उज्ज्वल कर देते हैं।

६२—जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः॥

जल में तेल, दुर्जन में गुप्त वार्त्ता, सुपात्र में दान और बुद्धिमान् में शास्त्र ये थोड़े भी हों तौ भी वस्तु की शक्ति से अपने आप विस्तार को प्राप्त हो जाते हैं।

६३—यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
पुरा पंचदशास्येभ्यो गां चरंतीं निवारय॥

जो एक ही कर्म से जगत् को वश किया चाहते हो तो पहिले पन्द्रहों के मुख से मन को निवारण करो, तात्पर्य यह है कि आंख, कान, नाक, जीभ, त्वचा ये पांच ज्ञानेन्द्रिय हैं, मुख, हाथ, पांव, गुदा, लिंग, ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं, रूप, शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों के विषय हैं। इन पन्द्रहों से मन को निवारण करना उचित है।

६४—अग्निरापः स्त्रियो मूर्खः सर्पो राजकुलानि च।
नित्ये यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणिषट्॥

आग, जल, स्त्री, मूर्ख, सांप और राजा के कुल, ये सदा सावधानता से सेवन योग्य हैं क्योंकि ये छः शीघ्र प्राण के हरनेवाले हैं।

६५—उत्पन्ना पश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी।
तादृशी यदि पूर्वंसस्यात् कस्य नस्यान्महोदयः॥

निन्दित कर्म करने के पश्चात् पछतानेवाले पुरुष को जैसे बुद्धि उत्पन्न होती है वैसी यदि पहिली होती तौ किसको बड़ी समृद्धि न होती?

६६—नभावा न प्रवेष्टव्या वक्तव्यं वासमंजसम्।
अब्रुवन् विब्रुवन्वापि नरः किल्विष भाग्भवेत्॥
तस्मात् सभ्यः सभां गत्वा रागद्वेषविवर्जितः।
वचस्तथा विधं ब्रूयाद्यथा न नरके पतेत्॥

सभा में नहीं जाना चाहिये. जो जाय भी तो उचित बोलना चाहिये क्योंकि उचित को नहीं बोलता हुआ और विरुद्ध बोलता हुआ ये दोनों ही पाप के भागी होते हैं, इसलिये सभा में जाकर सभासद्द को उचित है कि रागद्वेष को त्याग कर बात वैसी कहे कि जिससे नरक में न गिरे।

६७—क्षमीदाता गुणग्राही स्वामीदुःखेन लभ्यते ।
अनुकूलःशुचिर्दक्षो राजन्भृत्योऽपिदुर्लभः ॥

क्षमावान, दाता और गुणका समझनेवाला स्वामी कठिनता से मिलता है। आज्ञाकारी पवित्र और चतुर चाकर भी, हे राजन् ! दुर्लभ है।

६८-शाठ्येन मित्रं कपटेन धर्मं परोपतापेन समृद्धभावम्।
सुखेन विद्यां पुरुषेण नारी वाञ्छन्ति ये नूनमपण्डितास्ते॥

जो पुरुष शठता से मित्र, कपट से धर्म्म, दूसरों की पीड़ा द्वारा धन, सुख से विद्या और कठोरता द्वारा नारी प्राप्त करना चाहता है, वह निःसन्देह पण्डित नहीं है।

६९—दुर्वलार्थं वलं यस्य धर्मार्थंस्यपरिग्रहः ।
वाक् सत्यवचनार्थं च पिता ते नैव पुत्रवान् ॥

दुर्वलों की रक्षा के लिये जिसका वल है, धर्म के लिये जिसका धनसञ्चय है और बोली जिसकी सत्य प्रकाश करने के लिये है, ऐसे ही लड़के से पिता पुत्रवाला कहलाता है।

७०—न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति ।
न पश्यति मन्दोन्मत्तोह्यर्थी दोषं न पश्यति ॥

जन्म का अन्धा, कामान्ध और अभिमान से पागल को नहीं सूझता, अर्थी दोष को नहीं देखता।

७१—वाचां शौचं च मनसः शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
सर्वभूतदयाशौचमेतच्छौचं परार्थिनाम् ॥

वचन तथा मन की शुद्धि, इन्द्रियों का संयम, सब जीवों पर दया ये परार्थियों की शुद्धि है।

७२—अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानोहि महतां धनम् ॥

अधम धन ही चाहते हैं, मध्यम धन और मान, उत्तम मान ही चाहते हैं, इस कारण कि महात्माओं का धन मान ही है।

७३–वरं न राज्यं न कुराजराज्य वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम् ।
वरं न शिष्यो न कुशिष्य शिष्यो वरं न दारा न कुदारदाराः॥

राज्य का रहना अच्छा परन्तु कुराजा का राज्य होना अच्छा नहीं, मित्र का न होना यह अच्छा परन्तु कुमित्र को मित्र बनाना उत्तम नहीं, शिष्य न हो यह अच्छा परन्तु निन्दित शिष्य का होना भला नहीं, भार्या न हो यह अच्छा परन्तु कुभार्या का भार्या होना अच्छा नहीं।

७४—जिस प्रकार हज़ारों गौ होते हुए बछड़ा अपनी ही माता के पास जाता है, उसी भाँति किया हुआ पाप कर्त्ता ही को मिलता है।

७५–सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया सखा ।
शान्ति पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः ॥

सत्य माता, ज्ञान पिता, धर्म भाई, दया मित्र, शान्ति स्त्री और क्षमा पुत्र है।

७६–क्रोधो वैवस्वतोराजा तृष्णा वैतरणीनदी ।
विद्या कामदुघाधेनुः संतोषो नन्दनं वनम् ॥

क्रोध यमराज है, तृष्णा वैतरणी नदी है, विद्या कामधेनु गाय है और सन्तोष इन्द्र की वाटिका है।

स्त्री-धर्म

प्यारी स्त्रियो! वेदानुकूल जीवन का प्रधान फल मुक्ति ही माना गया है, उसके प्राप्त करने के उत्तम उत्तम उपाय वेदों में दर्शाये गये हैं, उन्हीके अनुकूल ऋषि और मुनियोंने भी उपदेश किये हैं, जिनपर चलने से दोनों लोकों के सुख प्राप्त होते हैं, जो हमारे प्राचीन पुरुषों ने भी उठाये। परन्तु जहांतक हम देखते हैं स्त्रियों के लिये केवल एक ही साधन पति-सेवा को मुख्य माना है क्योंकि स्त्री का पति ही सर्वोपरि धन, वही उसका इष्टदेव है, उसीकी सेवा करने तथा आज्ञानुवर्तिनी होने से परमसुख अर्थात् वैकुण्ठ मिलता है और वही इस भवसागर में सुखों को देता, आनन्द को बढ़ाता, उसीसे जीवन सुफल होता है वही सौभाग्य की उन्नति करता तथा शरीर में प्राण के तद्वत् है। मुख्य तो यह है कि पति के तुल्य इस असार संसार

में कोई पदार्थ नहीं यदि है तो वही पति । क्योंकि वही उसका तन, मन, धन है । हे सुन्दरियो ! जब तुम्हारा पति ऐसा इष्टदेव है जिसके बिना तुम्हारे प्राण नहीं रहसकते, तो भला कैसे शोक और पश्चात्ताप का स्थान है कि जिस पति के रहने से तुम्हारे प्राण रहते हैं फिर तुम उसको नाना प्रकार से क्लेशित करती रहती हो ? उसकी सेवा तथा आज्ञापालन इस भांति करना योग्य है कि जिससे तुम्हारे प्राणनाथ, जीवनमूल सदा आनन्द, मग्नानन्द में रहें । क्योंकि पति से अधिक तुम्हारा कोई मित्र नहीं, वह तुम्हारे जीवन भरके दुःख सुख का साथी है, बिना उसके तुमको संसार सूना जान पड़ता है, धरती आकाश भी दृष्टि नहीं आता, सम्पूर्ण ऐश्वर्य मिथ्या (झूठा) मालूम होता है । यथार्थ में बिना प्राणनाथ के प्राणों को चैन नहीं आता । जो स्त्री अपने पति को दुःख देती वा उसके दुःख में साथी नहीं होती, उससे अधिक इस संसार में कोई अपराधिनी नहीं । वही नरक को जाती है, वही तरुणाई में विधवा होती है, उसी को इस संसार में नाना क्लेश उठाने पड़ते हैं । इस कारण हे स्त्रियो ! तुम सदा पति की सेवा करो, क्योंकि तुम्हारे आज्ञाकारिणी होने से सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं ।

देखो दक्षस्मृति अ० ३ श्लो० १ वा ५ में कहा है कि जो स्त्री नम्र पति के अन्तःकरण की बात को जाने और उसके अधीन रहे वही पत्नी है और अन्य सब दुःखरूप हैं, क्योंकि उनके मनों में परस्पर प्रेम नहीं होता ।

पत्नी मूलं गृहं पुंसां यदि छन्दानुवर्तिनी ।
गृहाश्रमात्परं नास्ति यदि भार्या वशानुगा ॥ १ ॥
सा पत्नी या विनीतास्याच्चित्तज्ञावशवर्तिनी ।
दुःखाह्यन्यासदाखिन्ना चित्तभेदः परस्परम् ॥ २ ॥

तथा श्लोक १०-११ में स्पष्ट कहा है कि जो स्त्री अनुकूल, उत्तम वाणी और चतुरा, साधु स्वभावा, पतिव्रता इत्यादि गुणों से युक्त हो तो वह निःसन्देह लक्ष्मी ही है और जो स्त्री प्रसन्न मन, स्थान और मनकी ज्ञाता, पति में प्रीतिवाली है, वही भार्या है जैसा कि—

अनुकूलात्ववागदुष्टा दक्षासाध्वीपतिव्रता ॥ १० ॥
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेव स्त्री न संशयः ।

प्रहृष्टमासा नित्यं स्थानमान विचक्षणा ॥११॥
भर्त्तुः प्रीतिकरी यातु भार्या सा चेतराजरा ॥१२॥

शङ्खस्मृति अ० ३ श्लोक १५ में कहा है कि जो स्त्री गृहकार्यों में चतुरा और पतिव्रता है अर्थात् जिसके प्राण पति में बसते हैं, जिसके सन्तान भी है, वही भार्या है। पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अ० ६१ गौमिलदैत्य ने पद्मावती से कहा है कि उत्तम पतिव्रता वही है जो मन, वच, कर्मसे प्रतिदिन पति की सेवा करती है और भर्त्ता के क्रोधित होने पर भी आप क्रोध को सहन कर उसकी उचित सेवा में न्यूनता नहीं करती तथा तृतीतखण्ड अध्याय २० में लिखा है कि जो स्त्री अपने पति को स्नेह में पुत्र से सौगुणा, भय में राजा के समान और आराधना में विष्णु के तुल्य जाने वही स्त्री पतिव्रता है। जो नित्य सेवा करे, कभी मत्सरता न करती हो, कृपणता और मान भी करती हो, इसके अतिक्ति मान अपमानको समान समझती हो, वह पतिव्रता है। वनपर्व अ० २०४ में युधिष्ठिरजी ने कहा है कि जो स्त्री अपने पति की सेवा तथा सत्य को धारण कर सन्तान के पालन पोषण में नियुक्त रहती है, वही पतिव्रता है।

मान्याहि गुरवः सर्वे एक पत्यस्तथास्त्रियः।
पतिव्रतानां सुश्रूषा दुष्करा प्रतिभातिमे॥

इस कारण हे स्त्रियो! तुम सदा पतिसेवा को स्वीकार करो जो तुम्हारे अर्थ अमृतरूपी रस है कि जिसके प्राप्त करने से सर्वप्रकार के सुख मिलते हैं जैसा य० अ० १४ मं० १३ में कहा है।

कि हे स्त्री, तू पूर्व दिशा के तुल्य प्रकाशमान है, दक्षिण दिशा के समान अनेक प्रकार की विनय और विद्या के प्रकाश से युक्त है और पश्चिम दिशा की भांति चक्रवर्ती राज्य के सदृश अच्छे सुखयुक्त पृथ्वी पर प्रकाशमान है और ऊपर नीचे की दिशा के तुल्य तेरा घर में अधिकार है, इस लिये तू पति को तृप्त कर।

राज्ञ्यसि प्राचीदिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि।
प्रतीचीदिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहतीदिक्॥

जिस प्रकार ऋतु और गौ अपने२समय पर अनुकूलता से सब प्राणियों

को सुखी करती हैं इसी भांति उत्तम स्त्रियां सब समय में अपने पति आदि को तृप्त कर आनन्दित करें। जैसा य० अ० १७ मं० ३ में कहा है कि—

ऋतव स्थ ऋतावृध ऋतुष्ठाः स्थ ऋतावृधः घृतश्च्युतो।
मधुश्च्युतो विराजो नाम कामदुधा अक्षीयमाणाः॥

और य० अ० ३८ मं० ३ में कहा है, हे स्त्री! जैसे पगड़ी आदि वस्तु सुख देनेवाली होती है वैसे तू पति के सुख देनेवाली हो।

य० अ० ३८ मन्त्र ३ में लिखा है कि जिस भाँति अग्नि जीवन को, बिजुली प्रजा को, लक्ष्मी शोभा को, और महाशय जन बल को उसी भांति सुलक्षणा स्त्री सुखों को देनेवाली होती है। और ऋग्वेद अ० ३,४ व० ८ मं० ३१। अ० ५ सू० ६१ मं १ में कहा है कि जिस प्रकार प्रातः-वेला सब प्राणियों को जगाय कार्यों में प्रवृत्त करती है उसी भांति पति-व्रता होकर स्त्रियां को पति के साथ अनुकूलता से रह कर कार्य कर प्रशंसित होना योग्य है।

और मं० ३ में कहा है कि जैसे प्रातःकाल सम्पूर्ण भुवनों के खण्डों को प्रकाशित करता है उसी भांति उत्तम स्त्रियां को उत्तम व्यवहार कर प्रकाशित करना चाहिये और मं० ४ में कहा है कि जिस भांति दिन का सम्बन्धी प्रातःकाल है वैसे ही छाया सदृश अपने अपने पति के साथ अनुकूल होकर वर्ताव करना उचित है।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध ६ अध्याय १८ में कश्यपजी ने दिति से कहा है कि पति ही स्त्री का परम देवता है, जैसा कि—

पतिरेवहिनारीणां दैवतं परम स्मृतम्॥

मनु अ० ५ श्लोक १५४ में लिखा है 'सततं देवत्पतिः' ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के प्रकृतिखण्ड में लिखा है कि गुरु ब्राह्मण और इष्टदेव सब से बड़ा गुरु स्त्री का पति है, इस लिये स्त्रियों को सब से अधिक उसकी पूजा करनी चाहिये। य० अ० १३ मं० १४ में कहा है। अग्नि के समान तेजस्वी, विज्ञान युक्त, सुन्दर, देव स्वरूप पति का दृढ़ता के साथ सेवन करो। और य० अ० १४ मं० १६ में उपदेश है कि देवता स्वरूप पति की कार्य और कारण के सम्बन्ध से निश्चल होकर सेवा करे।

क्योंकि जिस प्रकार सूर्य से चन्द्रमा प्रकाशित होता है उसी भांति स्त्री से उत्तम पति और अच्छी सेना से सेनापति शोभित होते हैं, जैसा कि य० अ० १७ मं० १० में कहा है—

पावकया यश्चित्या कृपा क्षमन रुरुच उपसो न भानुना।
तूर्वन्नया मन्नेतशस्य नूरण आयोघृणे न ततृषाणो अजरः॥

और ऋग्वेद० ३। अ० ४। व० ८। मं० ३। अ० ५। सू० ६१ मं० ५ में भी कहा है, जिस भांति प्रातःकाल का सेवन करने से उत्तम बल को प्राप्त होते हैं उसी भांति स्नेहपात्र पतिव्रता स्त्री को प्राप्त होकर मनुष्य शारीरिक आत्म बल और आरोग्यपन को पाते हैं—

अच्छा वो देवी मुषसं विभातीं प्र वो भरध्वं नमसा सुवृक्तिम्।
ऊर्ध्वंधूदादिविपाजो अश्रेत्प्ररोचना रुरुचेरण्व संदृक॥

इसके उपरान्त तुमही सन्तान का हित और उनकी पालन कर्त्ता के अतिरिक्त प्रतिदिन अतिथि और मित्रों के भोजनादि और लोकाचार कर प्रत्यक्ष आधार हो, जैसा मनु अध्याय ६ में लिखा है—

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम्।
प्रत्यहंलोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबंधनम्॥म०६।२७॥

तुम बड़ी भाग्यवती और सन्तान का हेतु सत्कार योग्य तथा लक्ष्मी और घर की शोभा हो।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हागृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्चगेहेषु न विशेषोऽस्तिकश्चन॥ ६।२६॥

पुत्रोत्पादन धर्म कार्य (अग्निहोत्रादि) शुश्रूषा उत्तम रति तथा पितरों और अपना स्वर्ग अर्थात् सुख ये सब तुम्हारे ही आधीन हैं।

आपत्यं धर्मकार्याणि शुश्रूषा रतिरुत्तमा।
दाराधीनस्तथास्वर्गः पितृणात्मनश्चह॥ ६। २८॥

ऐसा ही याज्ञवल्क्य जी ने आचार अध्याय के श्लोक ७८ में कहा है कि स्त्रियों से लोक में बेटा, पोता, परपोता आदि से वंश की स्थिरता और अग्निहोत्र आदि गृहकार्यों को सिद्धि होती है, जैसा कि—

लोकानंत्यं दिवःप्राप्ति पुत्र पौत्रप्रपौत्रकैः ।

इसके उपरान्त लक्ष्मी जिससे संसार में सर्व सुख मिलते हैं वह भी तुम्हारे ही आधीन है, जैसा विष्णुस्मृति अ० ६ श्लोक २१,२२ में लिखा है कि लक्ष्मी सदा उस स्त्री के पास रहती है जो सदा यथायोग्य वस्त्र धारण करती और पतिव्रता है, जिसकी वाणी कोमल और स्वभाव कम खर्च करने का है जिसके पुत्र हैं, जो घर की वस्तु चतुरता से रखती और जो नित्य कर्म करती है।

नारीषु नित्यं सुविभूषितासु पतिव्रतासुप्रियवादिनीषु ।
अमुक्तहस्तासुसुतान्वितासु सुगुप्तभाण्डासुवालप्रियासु ॥

इसी कारण याज्ञवल्क्यस्मृति श्लोक ८३ में लिखा है कि गृह-कार्यों को कर पति की सेवा में तत्पर रहना ही स्त्रियों का धर्म है और श्लोक ८७ में लिखा है कि जो स्त्री इंद्रियों को वश में कर पति की इच्छानुसार कार्य करती है उसकी सब लोक में प्रशंसा होती है तथा परलोक में सुख मिलता है य० अ० १४ मं० ५ में लिखा है कि जो स्त्री गृह-कार्यों में कुशला हो उसको योग्य है कि घर के भीतर के सब कार्य अपने आधीन कर उनको यथोचित उन्नति दे।

य० अ० १३ मं० ३२ में कहा है कि जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश सब जगत् की वस्तुओं का प्रकाशित करता है उसी प्रकार श्रेष्ठ पतिव्रता स्त्रियां घर के सब कार्य कर उसको प्रकाशित करती हैं, इस वैदिक आज्ञा के अनुसार ऋषियों ने धन संग्रह करना और व्यय, शौच, धर्म और रसोई बनाना, घर की वस्तुओं की देख भाल करना आदि की आज्ञा दी है जैसा मनु अ० ६ श्लोक ११ में कहा है—

अर्थस्य संग्रहे चैनां व्ययं चैव नियोजयेत् ।
शौचेधर्मेन्नयक्त्यां च पारिणाह्यस्य चेक्षणे ॥

इस लिये प्रसन्न चित्त होकर घर के सब कार्यों को चतुरता से करती रहो, गृह के बर्तन भांडे ठीक २ बनाये रहो और व्यय करने में उदार न हो, जैसा मनुजी ने कहा है—

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥

और य० अ० २० मं० ५८ में कहा है कि पतिव्रता स्त्री का धर्म है कि घृतादि उत्तम वस्तु आप न खाकर—और धन व्यय न कर अपने पति के लिये रख. उन सब से उनका यथायोग्य सत्कार करती रहे।

जाजुहवाना सरस्वतीन्द्रायेन्द्रियाणि वीर्य्यम्।
इडाभिरश्विनाविषꣳसमूर्जꣳसꣳरयिंदधुः॥

कभी कुटुम्ब के धन से बहुत कोरचा न करे और अपने धन से भी विना आज्ञा पति के अलंकार आदि न बनवावे, जैसा मनु० अ० २ श्लोक १९९ में कहा है—

न निर्हारं स्त्रियः कुर्युः कुटुम्बाद्बहुमध्यगात्।
स्वकादपि च वित्ताद्धि स्वस्य भर्तुरनाज्ञया॥

शुक्रनीति अ० ४ में कहा है कि स्त्री पति से प्रथम उठ शरीर को शुद्ध कर अर्थात् शौचादि से निवृत्त हो शय्या के वस्त्रों को उठा घर का स्वच्छ करे, यथा—

पत्युः पूर्वं समुत्थाय देहशुद्धिविधाय च।
उत्थाप्यशयनी यानी कृत्वा वेश्मविशोधनम्॥

फिर अग्निशाला वा आंगन को मार्जन वा लीप कर शुद्ध करे, चिकने यज्ञ के पात्रों को अर्थात् बासनों को गर्म जल से धोवे—

मार्जनैर्लेपनैः प्राप्य सानलं य वसांगणम्।
शौधर्यद्यज्ञपात्राणि स्निग्धान्युष्णेन वारिणा॥

उनको धो कर वहां रखदे वा अन्य पात्रों को शुद्ध कर जल भर रखदे—

प्रोक्षणीयानि तान्येव यथास्थानं प्रकल्पयेत्।
शोधयित्वातु पात्राणि पूरयित्वातु धारयेत्॥

महानस (रसोई) के सब पात्रों को बाहिर धोवे, चूल्हे को लीप कर अग्नि वा ईंधन उसमें रख दे—

महानसस्थपात्राणि वहिः प्रक्षाल्य सर्वशः।
मृद्भिस्तुशोधयेच्चुल्लीतत्राग्नि सेधनं न्यसेत्॥

जाड़े के पात्रों को वा रस अन्न, द्रव्य इनका स्मरण वा प्रातःकाल के काम को करके सास और श्वसुर को नमस्कार करे ।

स्मृत्वा नियोगपात्राणि रसान्नद्रविणानि च ।
कृतपूर्वाह्नकार्य्येदं श्वशुरावभिवादयेत् ॥

फिर भोजन बन जाने पर बलिवैश्वदेव करके कुटुम्ब के मनुष्यों को भोजन करा कर पति को जिमावे, फिर उनकी आज्ञा लेकर आप खाकर शेष दिन आय व्यय अर्थात् आमदनी खर्च की चिन्ता में लगावे ।

वैश्वदेवोद्धतैरन्नैर्भोजनीयांश्च भोजयेत् ।
पतिं च तदनुज्ञाताशिष्टमन्नाद्यमात्मना ॥
भुक्त्वानयेदहः शेषं सदाऽऽयव्यय चिन्तया ।

फिर सायंकाल घर को शुद्ध कर वा भोजन बना भृत्यों समेत पति को जिमावे ।

पुनः सायं पुनः प्रातर्गृहशुद्धिं विधाय च ।
कृतान्नसाधना साध्वी स भृत्यं भोजयेत् पतिम् ॥

आप अधिक न खाकर और घर की नीति अर्थात् काम काज करके भली प्रकार शय्या को बिछा कर पति की सेवा करे ।

नाति तृप्ता स्वयं भुक्ता गृहनीतिं विधाय च ।
आस्तृत्य साधः शयनं ततः परिचरेत्पतिम् ॥

विदुरजी ने कहा है कि न्यून भोजन करनेवालों को आरोग्यता, आयु, बल, सुख, सन्तान, बलवान् होना, वीर्य तीच्ण न होना, ये सात गुण प्राप्त होते हैं । जब पति सो जावे तब आप भी उनके समीप उन्हीं में मन लगा कर दूसरी खाट पर सो जावे, परन्तु नगी न सोवे और मतवाली न रहे । काम को त्यागे, इन्द्रियों को जीते ।

इसके उपरान्त पति के साथ ऊँचे स्वर से कड़वा चिल्ला कर अप्रिय वचन न बोले, किसी के साथ विवाद लड़ाई तथा वृथा न बके—

नोच्चैर्वदेन्न परुषं नह्वारुतिमप्रियम् ।
न केन चिच्चविवदेदप्रलापविवादिनी ॥

पति के धन में से बहुत व्यय न करे और धर्म वा धन को न बिगाड़े, प्रमाद उन्माद रूठना ईर्षा वा निन्दा न करे।

नचास्य व्ययशीलास्यान्न धर्मार्थविरोधिनी।
प्रमादोन्मादरोषेर्ष्या वचनान्यति निंद्यताम्॥

चुगली, हिंसा, मोह, अहंकार, अभिमान, नास्तिकता, साहस, अविचार, चोरी, दम्भ—इन सबको साध्वी स्त्री त्याग दे।

चाणक्यजी ने कहा है कि मधुर वचन के बोलने से सब जीव सन्तुष्ट होते हैं, इसलिये मधुर बोलना योग्य है और इस में कुछ देना भी नहीं पड़ता, फिर वचन में दरिद्रता ही क्या है--

प्रिय वाक्य प्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने किं दरिद्रता॥

विदुरजी ने कहा है कि अर्थ के भरे वा सुन्दर वचनों को थोड़ा बोलना उचित है इसी से आनन्द मिलता है, फर्सा का कटा हुआ वृक्ष हरा और बाण का लगा हुआ घाव भर आता है परन्तु वचनरूपी बाणों से लगा हुआ घाव कभी नहीं भरता—

वाक् संयमोहि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्चविचित्रां च न शक्यं बहुभाषितुम्॥
रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुनाहसम्।
वाचा दुरुक्तं वीभत्सं नसरोहति वाक्क्षतम्॥

तुम कभी अभिमान भी न करो, देखो जिस प्रकार बुढ़ापा रूप को, आशा धीरज को, मृत्यु प्राणों को, दुष्टता धर्म को, क्रोध लक्ष्मी को, दुष्ट सेवा शील को, काम लज्जाको नाशकर देता है; उसी भांति अभिमान त्याग सत्य और कोमल बोलने का स्वभाव डालो, यह एक प्रकार का दान है इस से देश का बड़ा उपकार होता है, इसी को धारण करो।

इस विषय में य० अ० ३५ मं० २१ में कहा है कि गृहकार्यों को वही कर सकती है जो पृथ्वी के समान क्षमा को धारण करती है और क्रूरतादि दोषों को अपने पास नहीं आने देती, जैसा कि—

स्योना पृथिवीनोभवा नृक्षरानिवेशनी ।
यच्छानः शर्मप्रथाः । अपनः शोशचदघम् ॥

ऋग्वेद अ० ३ अ० ८ । व० ३ । मं० ४ । अ० ५ । सू० ५२ मं० ६ में कहा है कि जिस भांति प्रभातवेला अपने प्रकाश से अंधकार निवारण करती है उसी प्रकार विद्यायुक्त स्त्रियां अपने उत्तम स्वभाव से दोषों को दूर कर अच्छे प्रकार भोजनादि में सब की भले प्रकार से रक्षा करें ।

आयक्षषी विभावरिव्यावज्जोतिषातमः । अषो अनुस्वधामव ॥

बहुधा नारी अपने सास, श्वसुर, देवर, जेठ, जिठानी आदि से बात बात पर लड़ती झगड़ती हैं अथवा दिन रात अपने पति के कान भरती हैं यहांतक कि बिना अलग हुए नहीं मानतीं भला विचारो तो कि कौन ऐसे सास श्वसुर आदि हैं जो अपनी बहू बेटे का भला नहीं चाहते कि जिस बेटे के अर्थ अपना तन मन धन तक अर्पण किया, बहू के आने की बधाई बांटी, धिक्कार उस बहू पर कि जिसने उनको सुख के स्थान पर दुःख दिया तथा उनके मनको ऐसी ग्लानि करदी कि जिससे वह बहू का नाम तक नहीं लेते । जब कोई उनके सम्मुख बहू का नाम लेता है तो वे ठंडी सांस लेकर रह जाते हैं । भला विचारिये तो कि ये जो अब तुम्हारे पति कहलाते हैं, कि जिनके ऊपर तुम उछलती कूदती और नखरे करती हो, किस ने उनको पालकर ऐसा किया ? तो कहोगी माता पिता ने, फिर भला उन के सुख बिना तुम्हें कहीं सुख मिल सकता है ? कदापि नहीं, वरन् थोड़े ही दिनों में जब कि तुम्हारी सन्तान का विवाह होगा तो वह तुम्हारी नई बहू आते ही तुम को वह फटकार बतावेगी कि तुम्हारे पते तक न लगेंगे । उस समय तुमको उपरोक्त क्लेश जान पड़ेंगे कि हाय २ क्या किया बहू ने आते ही हमारी कुगति करदी, अब हमसे काम काज भी नहीं होते, हाय यह हमारा बुढ़ापा क्योंकर कटेगा, बड़े दिनों में तो ज्यों त्यों कर यह दिन नसीब हुआ था सो भाग्यवश और भी अधिक दुःख हुआ, इस से तो सन्तान न होती तो अच्छा था, अब क्या करें, कहां जांय, किसी ने सच कहा है—

जाके पैर न जाय बिवाई । सो क्या जाने पीर पराई ॥

इस लिये तुम सदा अपने माता पिता आदि के समान अपने सास श्वसुर आदि को समझ कर उन की आज्ञा पालन और शुश्रूषा करती रहो

कि जिससे तुमको भी सुख मिले और दोषभागिनी भी न हो । इसके उपरान्त क्या तुम्हारे पति को जो तुम्हारे साथ में रहता है अपने माता पिता के क्लेशित होने से प्रसन्नता रहती होगी ? कदापि नहीं, सदा चिन्तारूपी ज्वाला में शरीररूपी लकड़ी की भांति जलताही रहता होगा, फिर भला सुख कैसा ? इस से हे युवतियो ! तुम कदापि ऐसा न करो, वरन् पति के नाते के अनुसार प्रत्येक का आदर भाव सदा करती रहो कि जिससे घर में सब प्रकार के आनन्द और सुख रहें, संसार में तुम्हारी भलाई हो । जैसा य० अ० ११ मं० ७१ में कहा है कि पति के माता पिता और सास श्वसुर आदि सम्बन्धियों और मित्रों, सहेलियों को सर्वकाल में प्रसन्न करती रहो ।

अवरां २ । अभ्यातर । यत्राहमस्मि तां अव ॥

और ऋग्वेद अ० २ । अ० १ । व० ५ मं० १ । अ० १८ । सू०१८ मं० ६ में कहा है कि जिस भांति प्रातः समय की वेला अन्धकार को दूर कर दिन को प्रसिद्ध करती है, उसी भांति स्त्री सत्य भाषण तथा माता पिता और पति के कुल की कीर्ति से प्रशंशितकर अपने श्वसुर और पति के प्रति उनके अप्रसन्न होने का कोई व्यवहार न करे । इसके अनन्तर तुम अपने आश्रित सेवक सेविकाओं को दान मान से सदा प्रसन्न करती रहो जिस भांति समुद्र जल सबको बढ़ाता है । जैसा ऋग्वेद अ० २ । अ० ६ । व ३ । मं० २ । अ० १ । सूत्र ११ मंत्र १ में कहा है ।

य० अ० १४ मं० ३ में कहा है कि अपने नौकर पुत्र और पशु आदि की पिता के समान रक्षा करो और विवाह के पीछे तुम अपने माता पिता से कभी प्रीति न छोड़ो, क्योंकि उन्ही दोनों से तुम्हारा शरीर उत्पन्न हुआ तथा पला है । जैसा य० अ० ३५ मं० ५ में कहा है ।

सविता ते शरीराणि मातुरुपस्थ आ वपतु तस्मै पृथिवी शंभव

ऋग्वेद अ० २, अ० ७, व० ६, मं० २, अ० ३, सू० २८ मं० ५ में भी ऐसा ही उपदेश है । कुल का प्रकाशित होना भी तुम्हारेही हाथ है क्योंकि ऋग्वेद अ० १, अ० ४, व० ४, मं० १, अ० ६ सू० ४८, मं० ६ में कहा है कि विदुषी धार्मिका कन्या दोनों अर्थात् माता पिता

के कुलों को उज्ज्वल करती हैं और य० अ० १४ मं० २२ में लिखा है कि जहां स्त्रियां पृथ्वी के समान क्षमायुक्त, आकाश के समान निश्चल और यन्त्रकला के तुल्य जितेन्द्रिय होती हैं, उन्हीं के कुल का प्रकाश होता है। जैसा कि—

यन्त्री राडयन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वोर्ज्जे त्वा रय्यै त्वा पोषायत्वा॥

और ऋग्वेद अ० ३। अ० ८। व० ३। मंत्र ४। अ० ५। सू० ५२ मं० ५ में कहा है कि जो स्त्रियां किरणों के समान उत्तम व्यवहारों का प्रकाश करती हैं वही निरन्तर कुल की उन्नति करनेवाली होती हैं और मं० ३ में लिखा है कि जो स्त्री पति की आज्ञानुसार मित्र के समान सेवा करती है वही प्रभात के समान कुल का प्रकाश करती है। ऋग्वेद अ० ३। अ० ५। मं० ४ व० ३४। अ० २। सू० १४ मं० ३ में कहा है कि जो स्त्री पतिव्रता प्रिय लक्षणों से युक्त अत्यन्त बलवती होती है वही प्रातःकाल के समान कुल का प्रकाश करती है और य० अ० १३ मं० २० में कहा है।

जिस प्रकार दूर्वा औषधि रोगों का नाश कर सुख को बढ़ानेवाली है और वह सुन्दर विस्तार युक्त होती हुई बढ़ती है उसी भांति विदुषी को चाहिये कि बहुत प्रकार से अपने कुल को बढ़ावे।

इसलिये तुम सदा व्यभिचार और काम की व्यथा से रहित अर्थात् जितेन्द्रिय होकर धर्मानुकूल पुत्रों को उत्पन्न करो। जैसा य० अ० १३ मं० १६ में कहा है—

ध्रुवासि धरणास्तृता विश्वकर्मणा। मात्वा समुद्र।
उदवधीन्मा सुपर्णो अव्यथमाना पृथिवीं दृꣳह॥

और इसके लिये अपने पति से नित्य प्रार्थना करती रहो कि जिस प्रकार मैं प्रसन्न चित्त होकर आपकी सेवा कर आपको चाहती हूं आप भी वैसी ही मेरे ऊपर कृपा कर अपने पुरुषार्थ भर मेरी रक्षा करो, जिस से मैं दुष्टाचरण करनेवालों की भांति पाप की भागिनी न होऊं। जैसा य० अ० ८ मं० २७ में कहा है।

इसी हेतु ऋग्वेद अ० २ । अ० ५ । व० २३ । मं० २ । मंत्र १ । सू० ३ मं० ५ में कहा है जिस भाँति कारु (राजों) के बनाये हुए घरों में सुन्दर शोभायुक्त द्वार होते हैं उसी प्रकार विदुषी, धर्मपरायणा, पतिव्रता स्त्री कीर्तिवती और उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करनेवाली होती है—

वि श्रयन्तामुर्विया हूयमानाद्धारो देवीः सुप्रायणानमोभिः ।
व्य चस्वतीर्वि प्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥

हे सुन्दरियो ! उत्तम सन्तान के होने से ही संसार में सुख की वृद्धि होती है । इसलिये तुम्हारा परम धर्म है कि आप ब्रह्मचर्य के साथ विदुषी होकर शरीर आत्मा का बल बढ़ाने के लिये अपने सन्तानों को निरन्तर विज्ञान की शिक्षा देती रहो । जैसा य० अ० १४ मं० १४ में कहा है ।

क्योंकि जो माता सूर्य के सदृश अपने सन्तानों को बोध कराती और दुष्ट आचरणों को दूर करके शिक्षा करती है तो वह सन्तान उत्तम होते हैं । ऋग्वेद अ० ३ । अ०५ । व० २६ । मं० ४ । अ० २ । सू० १८० मं५ में कहा है—

अनवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम ।
अथोदस्थात्स्वयत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः ॥

ऐसा ही य० अ० ११ म० ६८ में भी कहा है कि जिन घरों में स्त्रियां पंडिताओं से शिक्षा पाई हुई होती हैं वही अपने पतियों को सत-उपदेशों से कुकर्म से बचा सुकर्म में लगाती हैं ।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चद्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति
एताते ऽअघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥

इसके उपरान्त हे देवियो ! तुमको यह भी जान लेना उचित है कि जिस घर में धार्मिक विदुषी प्रशंसायुक्त पंडिता स्त्री होती है वहां दुष्ट अर्थात् बुरे कर्म नहीं होते और वहां ही धन की अधिकता से बहुत प्रकार के सुख मिलते हैं, जैसा य० अ० १७ मंत्र ५४ में कहा है ।

इसलिये मनु जी अध्याय ५ श्लोक १५६ में स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि पति लोक की इच्छा करनेवाली स्त्री जीवित वा मृतक पति का कभी अप्रिय कोई कर्म न करे ।

पाणिग्राहस्यसाध्वी स्त्री जीवितो वा मृतस्यवा ।
पतिलोकमभीप्सन्ती नाचरेत्किञ्चदप्रियम् ॥

और अ० ५ श्लो० १५४ में स्पष्ट कहा है कि पति शील-रहित भी हो और वह अन्य स्त्री से भी प्रीति रखता हो विद्यादि गुणों से भी रहित हो तिस पर भी पतिव्रता स्त्री को योग्य है कि उसकी देवता के समान पूजा करे ।

विशीलःकामवृत्तौ वा गुणैर्वा परिवर्जितः ।
उपचर्यः स्त्रिया साध्व्या सततं देववत्पतिः ॥

दक्षस्मृति अध्याय ३ श्लो० १६, १७ में कहा है जो स्त्री दरिद्र वा रोगी पति का तिरस्कार करती है वह मर कर बार बार कुत्ती, गधी और मच्छी होती है ।

दरिद्रं व्याधितं चैव भर्त्तारं यावमन्यते ।
शुनी गृदध्री च मकरी जायते सा पुनः पुनः ॥

पराशर जी ने अपनी स्मृति अध्याय ४ श्लोक १६ में कहा है कि जो स्त्री दरिद्री, रोगी, धूर्त्त पति का तिरस्कार करती है वह मर कर बार बार कुतिया वा सुअरनी होती है ।

दरिद्रं व्याधितं धूर्तं भर्तारं यावमन्यते ।
सा शुनिर्जायते: मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥

पद्मपुराण तृतीय खंड अध्याय १३ श्लोक १७५, १७६ में नारदजी ने कहा है कि पति कैसाही हो परन्तु स्त्रियों के धर्म और सुख का देनेवाला वही है, इसलिये जीतेजी स्त्री का धन पति ही है, अन्य कुछ नहीं, चाहे निर्धन, दुष्ट वचन कहनेवाला, मूर्ख, सब लक्षणों से रहित हो तौ भी स्त्री का परम देवता पति ही है । विष्णु पुराण अंश ६ अ० २ में कहा है कि जो स्त्री मनसा, वाचा और कर्मणा अपने पति की सेवा करती है, वह इसी एक कर्म से पति-लोक को जाती है । मनु० अ० ५ श्लोक १६४ में कहा है जो स्त्री पतिव्रतधर्म को छोड़ देती हैं उनकी इस लोक में निन्दा और मरने के पीछे गीदड़ी के पेट में जन्म लेती हैं और सदा रोगी रह कर पाप के फल को भोगती हैं ।

व्यभिचारत्तुभर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोतिनिन्द्यताम् ।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्चपीड्यते ॥

इसलिये धिक्कार है जो पतिको छोड़कर अन्य पुरुष से सम्बन्ध रखती है वा उसको किसी प्रकार से क्लेश दे तो आप रौरव नर्क में जाती है, सच पूछो तो स्त्री को धर्म, अर्थ काम और मोक्ष का देनेवाला केवल एक पति ही है।

परन्तु वर्त्तमान समय में उस पतिको त्याग अनेक लीला रचती हैं अर्थात् कोई तो चेली होती है युवक पुरुषों के साथ तीर्थयात्रा को जाती हैं उसके ही दर्शन से अपना जन्म सुफल समझती है, कोई गंगा जमुनादि के स्नान में वैकुण्ठ समझती है. परन्तु इन सब बातों से नाना प्रकार की हानि के अतिरिक्त कोई भी लाभ नहीं, वरन् इस प्रकार के कार्य करने से दोनों लोक बिगड़ जाते हैं और इस लोक में तो वह २ बुराइयां होती हैं कि जिनके वर्णन करने से लाज आती है और हृदय दाड़िम सा दरकता है हा ! उस समय पति को तो मरना ही सूझता है, कोई २ मनुष्य ऐसी स्त्रियों को मार भी डालते हैं-मन में प्रेम नहीं रहता जिससे प्रतिदिन क्लेश रहता है तथा गृहस्थी के प्रबन्ध में विघ्न पड़ जाता है और सन्तान भी उत्पन्न नहीं होती। इसके उपरान्त न्यायशालाओं में मुक़दमे होते हैं जिससे कुटुम्बियों को भी लाज आती ह, बाप दादे तक का नाम डूब जाता है, धिक्कार है ऐसी स्त्रियों को जो पलमात्र के सुख में डूब कर अपयश का टोकरा सिर पर धरती हैं और दोनों कुलों को दग्ध कर देती हैं।

इसलिये तुम उपरोक्त सर्व मिथ्या बातों को छोड़ पति सेवा ही करो, क्यों कि महाभारत वनपर्व अध्याय १५८ में कुन्ती महारानी ने भीमसेन से कहा है कि स्त्रियों के लिये यज्ञ, तप, नियम, दान इन सब से परम धर्म यही है कि पति-सेवा करें, जैसा मनु आदि ऋषियों का भी सिद्धान्त है।

वाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड सर्ग२४ में श्रीराम ने कौशिल्याजी से कहा है कि स्त्री को पति का परित्याग करना अति निन्दित कर्म है, इसलिये मन से भी अति निन्दित पति का त्याग न करे।

जब तक पति जीवित रहें तब तक आप उन्हीं की सेवा करें यही सनातनधर्म है, तुम्हारे देवता पति ही हैं, तुमको उन्हीं की सेवा से उत्तम

गति मिल सकती है, इसलिये जो स्त्री अपना कल्याण चाहे वह निश्छल होकर पति की सेवा करे, यही वेद की आज्ञा है, लोक में भी ऐसा ही देखने में आता है।

जब सीताजी श्रीरामचन्द्र के साथ वन में अत्रिमुनिके आश्रम पर पहुंचीतो उनकी स्त्री श्रीमती अनुसुइयाजी ने सीता को पतिव्रत धर्म का उपदेश किया, उसके उत्तर में सीताजी ने कहा है कि स्त्रियों का जप तप आदि एक पति-सेवा ही है, इसी से वे स्वर्ग पाती हैं, जैसा सावित्री रोहिणी ने पाया।

देवीभागवत स्कन्ध ६ में जरुत्कार मुनि ने कहा है, जो स्त्री अपने पति की सेवा करती है वह आनन्द लोक को पाती है और जो उसकी सेवा नहीं करती वह नाना प्रकार के दुःखों को भोगती है। पद्मपुराण तृतीय स्वर्गखण्ड अध्याय ५ में शंकर ने सावित्री से कहा है कि स्त्रियों की परम गति भर्त्ता ही है।

जरुत्कार मुनि की स्त्री ने कहा है कि पति का विछोह प्राणों के विछोह से भी अधिक है, क्योंकि पतिव्रता स्त्रियों का सौ पुत्रों से भी अधिक पति प्रिय होता है इसी कारण पति का 'प्रिय' नाम है। जैसा पुत्रवान् पुरुषों का पुत्र में और वैष्णव अर्थात् परमात्मा के उपासकों का हरि में, काने पुरुषों का नेत्रों में, पियासे मनुष्यों का जल में, भूखों का अन्न में, कामी पुरुषोंका मैथुन में, चोरों का परधन में, व्यभिचारिणी स्त्रियों का जार पुरुषों में, पण्डितों का शास्त्रों में, उद्यमियों का व्योपार में निरन्तर मन लगा रहता है, उसी भांति पतिव्रता स्त्रियों का मन पति में लगता है।

सुन्दर काण्ड सर्ग २४ में सीताजी ने कहा है कि पति चाहे दीनहो, चाहे राजहीन, पन्तु हमारे जो पति हैं, वही हमारे गुरु हैं। मैं उन्हीं के विषय में स्थित हूं, जिस प्रकार महा भाग्यवती इन्द्राणी इन्द्र में, अरुन्धती वसिष्ठ में, रोहिणी चन्द्रमा में, लोपामुद्रा अगस्त मुनि में, सावित्री सत्यवान् में, श्रीमती कपिलदेव में, शकुन्तला दुष्यन्त में, केशिनी सगर में, दमयन्ती नल में, उसी भांति मैं भी अपने पति में रत हूं।

पद्मपुराण भूमिखण्ड अ० २४ में सुकला ने अपनी सखियों को स्त्री-धर्म का उपदेश किया है उसको हम तुम्हारे अवलोकनार्थ यहां संक्षेप से वर्णन करते हैं।

सुकुला ने कहा कि स्त्री का परम देवता पति है इस लिये उससे पृथक् स्त्री न रहे और जो बहुत काल अलग रहती है वह पाप रूप हो जाती है, इसलिये स्त्री को चाहिये कि मन, वचन और कर्म से सत्य-भाव सहित अपने पति की सेवा करे और जो पति की विद्यमानता में स्त्री अन्य तीर्थ व्रतादि करती हैं वह सब उनका निष्फल होता है और वे पुंश्चली कहाती हैं। क्योंकि उन्होंने अपने पतिरूपी तीर्थ को छोड़ अन्य तीर्थ को पति बनाया। जिस स्त्री के ऊपर उसका पति सदा सन्तुष्ट रहता है वह संसार में है, इसमें संशय नहीं।

जो स्त्री अपने पति के विरुद्ध रहती है, पृथ्वी पर उसको सुखरूप यश कहां मिल सकते हैं? पुत्र, कीर्ति, धन भी नहीं मिलते, क्योंकि वह सदैव दुःख ही भोगती है, संसार में कुछ भी सुख उसे नहीं मिल सकता और सब पापों की पापिनी होती है, वह सब दुःख ही दुःख भोगती है।

स्त्रियों का रूप यौवन है, उस यौवन के लिये स्त्री को पृथ्वीमण्डल में अकेला अपना पति ही है। जो नारी पति की सेवा करती है वह सुपुत्रवती होती है, उसी का यश संसार में होता है। इस लिये तुम कभी इन उपरोक्त मिथ्या बातों में न फंसो, क्योंकि पति ही तुम्हारा गुरु है, उसकी आज्ञानुकूल चलना परम धर्म है। न कभी अपने माता, पिता, बान्धव और धनादि के अभिमान से पति को त्याग अन्य पुरुष से कभी सम्बन्ध करो, क्योंकि ऐसी स्त्री के लिये मनुजी राजा को आज्ञा देते हैं कि उसको बहुत मनुष्यों के बीच कुत्तों से नुचवावे, जैसा कि—

भर्त्तारं लंघतेद्यातु स्त्री ज्ञातिगुणदर्पिता।
ता श्वाभिःखादयेद्राजा संस्थाने बहुसंसिते॥

मनुजी महाराज ने कहा है कि जो स्त्रियां पति को परम देवता समझ कर उनकी सेवा टहल करती हैं वे इस लोक में यश और परलोक में पतिलोक को पाती हैं, जैसा कि—

एवं परिचरन्तो सा पतिं परमदेवताम्।
यशस्यमिहयात्येव परत्र च सलोकताम्॥

और मनु अ० ५ श्लो० १६५ में कहा है कि जो स्त्री मन, वाणी और

शरी से अपने पति को दुःखित नहीं करती वह पतिलोक को प्राप्त होती है और अच्छे जन उसको साध्वी कहते हैं, याज्ञवल्क्यजी ने कहा है कि जो स्त्री पति के प्रिय और हित कार्य को कर जितेन्द्रिय हो उत्तम आचरण से रहती है उसकी संसार में कीर्ति और परलोक में उत्तम गति होती है। यथा—

पति प्रियहिते युक्तास्वाचारा विजितेन्द्रिया।
सेहकीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमांगतिम्॥

कात्यायनस्मृति खण्ड १९ के श्लोक १२ में लिखा है कि पति की सेवा से सब सुख और स्वर्ग की प्राप्ति होती है और फिर भूगोल में जन्म धारण कर सुखों की समुद्र होती है।

पतिशुश्रूषयैव स्त्री कान्न लोकान्समश्नुते।
दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत्॥

इस लिये इन सब बातोंका ध्यान करतीहुई पतिकी सेवा करो, क्योंकि तुम पति की सेवा ही से स्वर्ग में पूजीजाती हो, तुम्हारेलिये यज्ञ, व्रत, उपवास पति से पृथक् कोई नहीं। जैसा मनु अ० ५ श्लो० १५५ में कहा है—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥

शंखस्मृति अ० ५ श्लोक ८ में कहा है कि स्त्री को व्रत, उपवास और नाना प्रकार के धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती, किन्तु पति-पूजन से स्वर्ग को पाती है।

न व्रतेर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्ग मवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात्॥

इसलिये व्यासजी ने कहा है कि स्त्रियां पति के मन व्रत और वृत्ति के अनुसार ही रहें क्योंकि पतिसे पृथक् धर्म, अर्थ, कामका कोई कारण नहींहै।

एक चित्ततया भाव्यं समान वृत वृत्तितः।
न पृथग्विद्यते स्त्रीणां त्रिबर्गविधिसाधनम्॥

इसके उपरान्त उपवास अर्थात् भूखे रहने की तो हमको कोई आज्ञा नहीं मिलती, वरन उसके निषेध में पाराशरजी महाराज अपनी स्मृति के

अध्याय ४ श्लोक १६ में आज्ञा देते हैं कि जो स्त्री पति के जीतेजी उपवास करती है वह अपने पति की आयु को हरती है और आप नरक को जाती है।

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत्।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी कुरुते तु या॥

विष्णुस्मृति अ० २५ श्लो० १६ में भी ऐसा ही लिखा है और ऐसा ही अत्रिस्मृति श्लोक १३४, १३५ में लिखा है—

जीवेद्भर्तरि या नारी उपेष्य व्रतचारिणी॥ १३४॥
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्॥ १३५॥

मनु अ० ५ श्लोक १५५ में लिखा है कि जो स्त्री पति के जीवते भूखी रहनेवाली व्रत करती है वह पति की आयु को बाधा पहुंचाती और नरक को जाती है।

ऐसा ही वाल्मीकि रामायण अयोध्याकाण्ड सर्ग ११६ में अनुसुइयाजी ने सीताजी को उपदेश दिया है कि स्त्रियों के लिये पति ही सुख का दाता तथा बन्धु है, इसलिये जो उसको दुःख देती है उसको नरक प्राप्त होता है।

पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय ५ श्लोक ७० से ७२ तक सावित्री ने गायत्री से कहा है कि स्त्रियों को पृथक् कोई कार्य करने की आज्ञा नहीं है वरन् पति जिस कार्य के करने की आज्ञा दे उसको सदा करती रहो।

इस हेतु यदि तुमको देवता का पूजन करना हो तो पतिरूप देव का सदा पूजन करो, जैसा कि मनुजी ने कहा है—'पतित् परम दैवतम्'।

और इसके पूजा की विधि ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिखण्ड में इस प्रकार लिखी है—

सती स्त्री प्रातरुत्थाय त्यक्त्वा च रात्रिवाससम्।
भर्तारं च नमस्कृत्य कराति स्तवनं मुदा॥
गृहकार्यं ततः कृत्वा स्नात्वा धौते च वाससी।
गृहीत्वाशुक्लपुष्पं च भक्तितः पूजयेत्पतिम्॥

स्नापयित्वा सुपूतेन जलेन विमलेन च ।
तस्मैदत्वा धौतवस्त्रं तत्पादौ क्षालयेन्मुदा ॥
आसने वासयित्वा च दत्वा भाले च चन्दनम् ।
सर्वांग लेपनं कृत्वा दत्वा माल्यं गलेपि च ॥
सामवेदोक्तमन्त्रेण भोगद्रव्यैः सुधोपमैः ।
सम्पूज्यभक्तितः कान्तं स्तुत्वा च प्रणमेत्मुदा ॥
नमः कान्ताय शांताय सर्वदेवाश्रयाय च ।
इत्यनेनेव मन्त्रेण दत्वा पुष्पं च चन्दनम् ॥
पाद्यार्घ्यं धूपदीपांश्च वस्त्रं नैवैद्यमुत्तमम् ।
जलं सुवासितं शुद्धं ताम्बूलं च सुसंस्कृतम् ॥
दत्वा स्तोत्रञ्च प्रपठेद्यद् कृतं पाठ्यमेव च ।

अर्थात् प्रथम प्रातःकाल उठ रात्रि के पहिने हुए वस्त्र बदल कर पतिदेवको प्रणाम करके स्तुति करे, फिर घर का कार्य कर स्नान करे, धुले हुए वस्त्र पहनकर और सुफेद फल हाथ में लेकर भक्तिपूर्वक पतिदेव की पूजा करे प्रथम छने हुए निर्मल जल द्वारा पतिदेव का स्नान कराये, पहरने को धुले हुए वस्त्र देवे, फिर पति के चरणों को धोवे, पुनः आसन पर बिठाकर माथेपर चन्दन लगा गलेमें माला पहनावे, तत्पश्चात् सामवेद के मन्त्रों से भक्तिपूर्वक अमृत के समान स्वादिष्ट भोग की सामग्री करावे, फिर स्वस्ति पाठ करके नमस्कार करे, फिर 'नमः कांताय शाँताय' यह कहकर चन्दन, पुष्प, पाद्य, अर्घ्य, धूप, दीप, उत्तम नैवेद्य, पवित्र जल और ताम्बूल अर्पण करे, फिर निम्नलिखित स्वस्तिवाचन करे—

नमः कान्ताय शान्ताय शिवचन्द्रस्वरूपिणे ॥
नमः शान्ताय दांताय सर्वदेवाश्रयाय च ।
नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणाश्रयाय च ॥

पति को नमस्कार है जो कान्त, शान्त शिव चन्द्रमा का स्वरूप है, पति को नमस्कार है जो शांत दांत सम्पूर्ण देवताओं का सहारा है, पति को नमस्कार है जो ब्रह्मस्वरूप है और सती स्त्री के जीवन का आधार है ।

इसलिये तुम कदापि पति की आज्ञा के अतिरिक्त कोई ऐसा कार्य न करो और न कभी पर पुरुष या स्त्री के साथ गंगास्नान वा तीर्थयात्रा को जाओ, क्योंकि तुम्हारे लिये वेदों की आज्ञानुसार ऋषियों ने पतिसेवा को ही सर्वोपरि माना है, इसी हेतु अत्रिऋषि अपनी स्मृति के १३५ श्लोक में आज्ञा देते हैं कि जिसको तीर्थस्नान की इच्छा हो वह अपने पति के चरणों को धोकर पीवे, जैसा कि—

तीर्थस्नानार्थिनीनारी पतिपादोदकं पिवेत् ॥

क्योंकि सर्व शास्त्रों का यही मत है कि स्त्री का तीर्थ उसका स्वामी ही है। देखो शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ३५ श्लोक ४० में लिखा है कि पुत्र और स्त्रियों के तीर्थ घरों में ही रहते हैं, पुत्र के माता पिता और स्त्री का तीर्थ उसका स्वामी ही है।

देवी भागवत स्कन्ध ६ अध्याय ४३ में राधिका का वचन है कि स्त्रियों को चाहिये कि पति की सेवा सदा धर्म से करें, क्योंकि स्त्रियोंका पति ही बन्धु है और वही अधिदेव और सद्गति है और परम सम्पत्ति स्वरूप, मूर्तिमान, भोगदायी, धर्मदायक, सुखदायक, निरन्तर प्रीतिदायी, शान्तिदायी, सम्मानों करके दैदीप्यमान, आनन्द, मान और बन्धुओं के बन्धु बढ़ानेवाला है। स्त्रियों को बन्धुओं में भर्ता के समान अन्य कोई प्यारा बन्धु नहीं है। पति स्त्री का भरण पोषण करता है इससे उसका भर्ता नाम है, पालन करने से पति और शरीर का ईश होने से स्वामी, काम देने से कांत, सुख देने से बन्धु, प्रीतिदान करने से प्रिय, ऐश्वर्यदान करने से ईश, प्राणों का ईश होने से प्राणनायक और रतिदान से रमण नाम हुआ है, कहां लों कहें, प्रिय से परे कोई नहीं, जो कहो पुत्र बहुत स्त्रियों को प्रिय होता है, उसका भी यही हेतु है, क्योंकि वह स्वामी के वीज से उत्पन्न होता है इसीसे प्रिय होता है, कुलीन स्त्रियों को तो सौ पुत्रों से भी अधिक पति प्रिय होता है और जो दुष्टा स्त्रियां हैं उनको हम कुछ नहीं कहसकते, क्योंकि वे तो पति को अच्छी तरह जानतीं ही नहीं, फिर पतिसेवा तो कहीं दूर है। और सब तीर्थों में स्नान सब यज्ञों में दक्षिणा देना, पृथिवी की प्रदक्षिणा, सब तपस्या, सब प्रकार के व्रत महादान पुण्य, गुरु की सेवा और पोषणादि अन्य जो जो शुभ कर्म हैं वे सब पति के चरणों की सेवा सोलहवें भाग के भी समान नहीं होसकते ! जैसे कि

पुरुषों के लिये विद्यादाता गुरु सब से श्रेष्ठ है वैसे ही पतिव्रताओं के लिये पति ही सर्वोपरि है।

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ४२ में सुकला नाम स्त्री ने अपने पति से निवेदन किया है उसको सुनिये—

मैं तुम्हारी पुण्य करनेवाली वा प्रिय करनेवाली धर्मपत्नी हूं वा पत्नि के मार्ग पर सदा चलती हूं वा नित्य पति ही की पूजा करती हूं, मैं कभी आपको छोड़ किसी ब्राह्मण की भी पूजा नहीं करती, केवल तुम्हारी छाया का आश्रय करके उत्तम व्रत करती हूं; जो कि पतिव्रतधर्मा नारियों के लिये उत्तम पुण्यदायक लिखा है; वही नारियों को गतिदायक है।

लोक में वह पुण्यवती स्त्री कहाती है जो पति की सेवा में परायण रहती है, उत्तम पति को छोड़कर युवतियों को अलग और कोई तीर्थ नहीं है।

बस स्त्री के लिये पति ही स्वर्ग, मोक्ष देनेवाला तीर्थ है। पति का बाम पाद स्त्री के लिये प्रयाग तीर्थ है, दक्षिण चरण उसके लिये पुष्कर है। सो स्त्री अपने पति के चरणों को धोवे, तो उसके चरणों का जल अमृत के समान है। उसमें यदि वह स्नान करे तो महा पुण्य है। इसलिये श्रेष्ठ स्त्रियों के लिये पति के चरणों का जल प्रयाग वा पुष्कर, इन दोनों तीर्थों के समान होता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं। सर्व तीर्थमय और सर्व पुण्यमय पति ही होता है। बहुत से यज्ञों के करनेवाले यजमानों को जो पुण्य होता है, वह सब फल पति की शुश्रूषा करने से स्त्री को मिलता है। इसलिये स्त्रियों को पतिसेवा को छोड़ कोई धर्म ही नहीं है।

इसके अतिरिक्त श्रेष्ठ स्त्री वही है जो पति से कभी विरोध नहीं करती और न ऐसी स्त्रियों का सत्संग करती है, वरन् सदा सत्य सम्भाषण कर प्रशंसायुक्त होकर गृह-कार्यों को करती है। जैसा कि ऋग्वेद अ० ३ अ० ८। व० ३। मं० ४। अ० ५। सू० ५२। मं० ४२ में कहा है—

यावयद्द्वेषसंत्वा चिकित्वित्सू नृतावरि प्रतिस्तो सैरभूत्स्महि।

इसलिये तुम बिजुली के समान सब विद्याओं को जान, उद्योगवती अर्थात् कार्य्य करने में चतुर, नम्र स्वभाव वाणी की योग्यता को जानने-वाली और वर्षा के समान सम्पूर्ण सुखों को देनेवाली होकर सुखों को दो। जैसा कि ऋग्वेद अध्याय ३। अ० २। व० ६ मन्त्र ३। सू० ३१।

मं० ६ में कहा है कि फिर कैसे शोक की बात है कि तुम तनिक २ से क्लेशों में अपने पति का साथ छोड़ देतीहो। क्या आपने प्राचीन पतिव्रता स्त्रियों के जीवनचरित्रों को नहीं पढ़ा? देखो, रामचन्द्र के वनोवास होने और श्रीराम के समझाने और सास ससुर के कहनेपर भी ध्यान न देकर सच्चे पतिव्रत धर्म के पालनार्थ सीताजी उनके साथ चलने को तैयार हुईं; जब उन्होंने वन के दुःखों का वर्णन किया, तिसपर भी सीताजी ने नम्रतापूर्वक उत्तर देकर कहा कि बिना आपके सम्पूर्ण सुख और आनन्द के पदार्थ आनन्ददायक नहीं, हां सब प्रकार के सुख पति के साथ ही में मिलते हैं। जब श्रीरामचन्द्र जी ने उनका सच्चा प्रेम जाना तो उनको साथ चलने की आज्ञा दी जहां, वन, में उन्होंने नाना प्रकार के कष्टों को सहन किया और उनको ही तीर्थ समझ सेवा की। देखो जब रावण संन्यासी का रूप धर कर उन के पास गया और उसने उनके रूप पर मोहित होकर कहा—तुम हमारी भार्याहो जाओ तो मेरी सब रानियां तुम्हारी दासी हो जावेंगी। मैं कुवेर का सौतेला भाई हूं, मेरा नाम रावण है। हमारे भय से कुवेर अपना स्थान लङ्काको छोड़ कैलाश चलेगये हैं, उन्हीं का यह पुष्पक विमान है, जिसपर चढ़ मैं आकाश के मार्ग से तुम्हारे पास आया हूं। हमारी लङ्का इन्द्र की अमरावती के समान है हाथी रथों की बहुतायत है, मंगल नगाड़े हमारे द्वार पर सदा बजते तथा फुलवाड़ियों में ऐसे२ वृक्ष हैं जो सदा फूलते फलते रहते हैं। हे सीते! तुम हमारे साथ वहां बसो, तपस्वी राम के साथ तुम क्या करोगी? तुम मुझको अपना पति बनाओ, राम तो मेरी अंगुली के समान भी नहीं हम तुम्हारे भाग्य से यहां आ गये हैं। फिर उसने दण्डी के रूप में अपना रूप प्रकट कर कहा कि यदि तुम तीनों लोकों में विख्यात पति चाहती हो तो हमारे आश्रम में आओ, तुम्हारे योग्य हम ही पति हैं, राज्य से भ्रष्ट अर्थ रहित राम की स्त्री कहाने से क्या फल? दुष्ट जन्तु सेवित वन में बसने से क्या लाभ? प्यारी बहिनों! इन सब बातों को सुन सीताजी ने कहा कि सुमेरु पर्वत और समुद्र के समान अचल, महेंद्राचल के समान गुरु, सर्व लक्षणयुक्त महा बरगद के समान अपने आश्रयीभूत लोगों के तापध्वंसक, सत्यप्रतिज्ञ, महाभयशाली, आजानुबाहु, महा चौड़ा छातीवाले, सिंह के समान प्रकाशित, पूर्णचन्द्र के समान मुखवाले राजकुमार, जितेन्द्रिय, महाकीर्तिवान्, महाबाहु रामचन्द्रजी की मैं अनुव्रता हूं। तुम शृगाल होकर सिंहरूप को चाहते हो, यह अत्यन्त दुस्तर है। सूर्य

की प्रभा को कोई नहीं छू सकता, उसी भांति रामचन्द्र की तेजरूपी अग्नि से घिरी हुई हमको तुम किस प्रकार छू सकते हो ? हे राक्षस ! तुम रामचन्द्र की प्रिय भार्या हमको चाहते हो,—यह ऐसा ही दुर्लभ है जैसा कोई निर्धन पुरुष अपने घर में सोने के वृक्ष लगे हुए देखना चाहे। तुम पर्वतों में श्रेष्ठ मन्दराचल को हाथ से उखाड़ना चाहते हो, कालकूट विष पीकर कल्याण सहित जीया चाहतेहो, सुई से अपने नेत्र खुजलाया चाहते हो, जीभ से छुरा की धार चाटना चाहते हो, क्या तुम गले में पर्वतशृंग बांध समुद्र उतरना चाहते हो ? क्या सूर्य चन्द्रमा दोनों को दोनों हाथों से पकड़ कर उठाना चाहते हो ! राम की प्यारी भार्या को ज़बरदस्ती भोग करना, मानों प्रज्वलित अग्निको वस्त्र में बांध ले जाया चाहते हो। क्या लोहे के त्रिशूल पर चलना चाहते हो ? देखो, जितना अन्तर सिंह शृगाल, छोटी नदी वा समुद्र अमृत और सिरका, हाथी और बिलार, तथा गरुड़ और काक में है उतना ही श्रीरामचन्द्रजी और तुम में है।

अन्त को रावण उन्हें बलात्कार लङ्का को ले गया और वहां भी उनको बड़े २ क्लेश दिये परन्तु कहीं सीता सी सती सती स्त्री अपने कर्तव्य को छोड़ सकती थी ? शूर तो वही कहाता है जो संग्राम में काम करता है, समय पर ही तो परीक्षा होती है।

सीता ने कष्टोंको सहा, दुःखों को उठाया, परन्तु रावणके वैभवको तृणवत् समझ उसके भय से धैर्य्य को धारण कर अपने सत्यव्रत पतिव्रत धर्म का यथार्थ में पालन किया और अन्तको श्रीराम को प्राप्त हो अयोध्या में आकर आनन्द मनाया। अब तुम अपनी चाल को देखो, तुम दिन रात घरों में क्या २ लीलायें रचती हो परन्तु पतिव्रत से सत्यव्रत को धारण नहीं करतीं।

प्यारी बहिनों ! इसके उपरान्त दमयन्ती भी ऐसी ही प्रेम भक्ति, अपने पति राजा नल से रखती थी, जब राजा नल अपने भाई पुष्कर के साथ सब राज पाट हारगया और बारह वर्ष का वनोवास हुआ। उस समय दमयन्ती भी अपने प्राणनाथ के साथहुई। वन में नल ने उसको दुःख सहन करते देखकर कहा कि हे सुन्दरी तू जा, घर चलकर रह, मेरे साथ तुझको अत्यन्त क्लेश है मैं तेरे दुःख देखकर और भी दुःखी होता हूं। दमयन्ती ने उत्तर दिया कि हे कृपासिंधु ! हे जीवननाथ ! मुझको आप के साथ ही परम सुख है अन्यथा नाना भाँति दुःख है, क्यों कि स्त्री को पति के

समान कोई सुख नहीं। जैसे छाया शरीर से अलग होते ही मरजाती है, कमल को सूर्य और कुमुदिनी को चांद के रहते ही सुख मिलता है, मछली का प्राण पानी है, पपीहा स्वाती के बूंद को चाहता है, हंस को दूध से प्रीति होती है, उसी भांति हे प्रियतम! स्त्रियों का सर्व सुखों की जड़ पति ही का साथ है, सो आप मुझको दुःखी बताते हैं, यह कदापि नहीं हो सकता। जब दमयन्ती ने राजा नल का कहना न माना तब नल एक दिन उसको सोता हुआ छोड़कर चलागया, तो वह नाना प्रकार से विलाप करती थी कि हे प्राणनाथ! मुझको अपने सुख दुःख का बिचार नहीं है केवल शोक यही है कि मैं आपकी सेवा न कर सकूंगी। जिस समय आप रात को थकित होकर किसी पेड़ के नीचे विश्राम करेंगे तो आपकी सेवा कौन करेगा? हे नाथ! मुझ से क्या अपराध हुआ जो आपने मुझ से इस समय सेवा भी करानी उचित नहीं जानी, मेरे अपराध को क्षमा कीजिये और दर्शन देकर मेरे मन की कली को खिलाइ।

इस भांति विनती करती हुई, वन जंगल छानती अपने पिता के यहां पहुंची, दूसरे स्वयम्बर के मिस से राजा नल को खोजने का उपाय कराया उसके साथ ही में यह भी प्रण कर लिया कि यदि राजा नल आज न मिला तो मैं अपने प्राण अनलमें दाह करदूंगी, परन्तु राजा नल मिल गया, फिर दोनों ने आनन्द से आयु व्यतीत की।

इसी प्रकार शकुन्तला कि जिसने तपोवन में गन्धर्व विवाह राजा दुष्यन्त के साथ किया था, फिर जब वह राजमहलों को गई तो राजा ने भ्रम से उसको नहीं जाना, तब उसने कई वर्ष तक पति के विरह में वन में तपस्या की, फिर भेंट होने पर अपने पति दुष्यन्त को उसकी भूल चूक पर लज्जित नहीं किया, वरन् अपना ही दोष समझकर राजा को बड़े आदर सत्कारके साथ धन्यवाद देकर निवेदन किया कि हे प्राणनाथ! प्रीतमप्यारे यह आपकी बड़ी कृपा है जो आज तक मुझ दासी पर आप का वही स्नेह तथा प्रेम बना है।

इसके उपरान्त पद्मावती जो चित्तौर के राजा भीमसिंह से व्याही गई थी कि जिसका रूप वा गुण तथा सुन्दरता को सुन दिल्ली के बादशाह अलाउद्दीन ने चढ़ाई की थी, रानी पद्मावती पतिव्रत धर्म बचाने के अर्थ बादशाही को तुच्छ जान आग में जल कर मर गई। जैसा हम पूर्व कह चुके हैं

प्यारी बहिनों! आपको तो इतने पर भी कुछ ध्यान नहीं होता, आप तो तनिक तनिक दुःखों तथा निर्धनता में साथ छोड़ देती हो, यदि तुम में इनके समान प्रेम स्नेह होता तो भारत की आज यह कुदशा क्यों होती? इनके उपरान्त तारा, सुलोचना, द्रौपदी आदि होगईं कि जिनके नाम सुयश के साथ चले जाते हैं।

धन्य है उन सुन्दरियों को जो ऐसी ही सुहावनी चाल से चल कर अपने पति आदि को प्रसन्न रखकर पतिव्रता कहाती हैं।

हे स्त्रियो! तुम्हारी नाव का खेवट पति है, बिना उसके तुम्हारा पार करनेवाला इस भवसागर में दृष्टि नहीं आता; क्योंकि जैसे तुम अपने पति को नाना भांति से दुःखित रखती हो यदि वह भी तुम्हारी भांति अज्ञान हो किसी अन्य स्त्री से प्रीति करलें तो बताइये कि तुम्हारी क्या दशा हो? मैं तो यही जानता हूं कि फिर यह दुःख तुम्हारे टाले नहीं टलेगा, इसी अग्नि में जल कर भस्म होजाओगी, यदि यह कहो कि हम भी ऐसा ही करेंगी तो फिर विचारिये कि घर तो गया, नष्टता तो हुई, तिस पर तुर्रा यह होगा कि थोड़ेही दिनों के पश्चात् तुम्हारे अपगुणों से वह भी अप्रसन्न हुआ तथा उसने भी तुम्हें छोड़ दिया तो उस समय तुम्हारी दशा धोबी के कुत्ते के समान हो जावेगी, जो घर का न घाट का।

इसके उपरान्त ऐसे पुरुष एक स्त्री के बन्धन में नहीं रहते, जहां नवीन शोभायुक्त स्त्री पाते हैं तुरन्त मोहित होकर पहिली स्त्री को पुराने जूते के समान निकाल कर फेंकदेते हैं, फिर बतलाइये उस समय आपकी क्या गति होगी? सच पूछो तो तुम्हारे प्राण संकट में होंगे और अपने किये हुए को स्मरण कर पछताओगी परन्तु फिर क्या होता है 'जब चिड़िया चुग गईं खेत।' फिर तुम अपनी छाती आप ही कूटोगी वा अफ़-यून खाओगी या दो दो दानों को मारी मारी फिरोगी। यथार्थ तो यह है कि जो स्त्री अपने पति के आज्ञा के विरुद्ध चलती है वह इसी भवसागर में नाना नरकों को भोगती है।

इसके उपरान्त तुमको स्वतन्त्रता से कार्य करने की भी आज्ञा नहीं है, देखो मनु अ० ५ श्लोक १४७ में लिखा है—

बालया वा युवया वा वृद्धया वाऽपि योषिता।
न स्वातन्त्र्येण कर्तव्यं किंचित्कार्यं गृहेष्वपि॥

इस हेतु बाल्यावस्था में पिता और यौवन में पति तथा बुढ़ापे में पुत्र रक्षा करे, स्त्री स्वतन्त्रता के योग्य नहीं।

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्र न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।

ऐसा ही व्यासस्मृति अध्याय २ श्लोक ५४ तथा याज्ञवल्क्यस्मृति श्लोक ८५ में लिखा है।

इसके उपरान्त पतिव्रता स्त्री पति के मरने पर विना सन्तान के भी स्वर्गलोक को जाती है, जिस प्रकार कुमारी ब्रह्मचारिणी गई, जैसा मनुस्मृति के अध्याय ५ श्लोक १६० में लिखा है--

मृते भर्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथाते ब्रह्मचारिणः॥

बहुधा स्त्रियां अपने पति आदि से वस्त्र आभूषणों पर ऐसे कटुवचन बोलती हैं कि जिस का कुछ पारावार नहीं। इसके उपरान्त रोटी नहीं खातीं किन्तु सम्पूर्ण गृह की स्त्रियों से प्रत्येक बात पर लड़ती हैं, पति से बात भी नहीं करतीं। भला यह कौनसी बात बुद्धिमानीकी है, क्या पति आदि को अपनी मान बड़ाई प्रतिष्ठा स्वीकृत नहीं है? क्या सास ससुर इत्यादि को अपनी बहू का पहरना ओढ़ना, खाना पीना अच्छा नहीं लगता? सच पूछो तो बहू बेटे के अर्थ अपने प्राणों को भी देना भला समझते हैं, परन्तु क्या किया जावे जब उनको बचत ही न हो, यदि बचत होगी तो वह मनु आदि ऋषियोंकी आज्ञानुसार वस्त्र और आभूषण से अवश्य ही तुम्हारा सत्कार करेंगे, परन्तु तुम्हारे मुख्य भूषण पातिव्रतधर्म आदि गुण ही हैं, जिनसे सर्वत्र तुम्हारी पूजा होती है और विना इन भूषणों के सोने चांदी के भूषण शरीर का भार ही होते हैं और कुछ शोभा नहीं देते।

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ३५ में लिखा है कि स्त्रियों का प्रथम भूषण रूप और दूसरा शील, तीसरा सत्य, चौथा शृंगार, पांचवां धर्म, छठा मधुर बोलना, सातवां भूषण अन्तःकरण और बाहर से शुद्ध रहना, आठवां पति का मान रखना और नवां पति की सेवा करना, दसवां सहनशीलता और रति में कुशल होना ही है।

इसके पश्चात शुक्रजी ने अध्याय ३ में वर्णन किया है कि घोड़े का वेग, बैल का धैर्य्य, मणि की कांति, राजा की क्षमा, वेश्या के हावभाव, गानेवाले का मधुर स्वर--

अश्वेजवा वृषेधर्यं मणौ कांतिः क्षमानृपे।
हावभावाश्च वेश्यानां गायके मधुरस्वरः ॥

धनवान् का देना, सिपाही की शूरता, गौ का बहुत दूध देना, तपस्वियों का इन्द्रियां दमन करना, विद्वानों का सभा में बोलना--

दातृत्वधनिके शौर्यं सैनिके बहु दुग्धता।
गोषु दमस्तपस्वीषु विद्वत्सुवाकदूकता ॥

सभासदों में पक्षपात न करना, साक्षियों में सत्य वाणी, भृत्यों में स्वामी की भक्ति वा मन्त्रियों में राजा के हित का वचन—

सभ्येष्वपक्षपातस्तु तथा साक्षिषुसत्यवाक्।
अनन्यभक्तिर्भृत्येषु सुहितोक्तिश्च मन्त्रिषु ॥

मूर्खों में मौन और स्त्रियों में पातिव्रत ही भूषण होता है, इनके विपरीत जो हैं सो इन सब में दुष्ट भूषण हैं जो शोभा नहीं देते—

मौनमूर्खेषु च स्त्रीषु पातिव्रत्यं सुभूषणम्।
महादुर्भूषणं चैतद्विपरीतममीषु च ॥

इसलिये पतिव्रतरूपी भूषण को धारण कर संसार की भलाई करो जिससे तुम्हारा सर्वत्र मान हो, क्योंकि विना गुण के सुन्दरता व्यर्थ होती है जैसा 'निर्गुणस्य हतं रूपम्।'

इस हेतु तुम्हारी सुन्दरता भी विना गुण के शोभा नहीं देती, क्योंकि स्त्रियों का मुख्य स्वरूप पातिव्रत ही है, जिसके धारण करने से संसार में प्रख्यात हो जाती है, जैसाकि 'स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम्।'

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ४२ में लिखा है कि नारी विना पति के शोभित नहीं होती चाहे वह अनेक प्रकार के द्रव्य भूषण रत्न और वस्त्रादिकों से क्यों न भूषित हो, जिस प्रकार विना चन्द्रमा के रात्री, विना पुत्र के कुल और दीपक विना मन्दिर नहीं शोभित होता, उसी भांति विना पति के स्त्री सुशोभित नहीं होती।

इसलिये हे सुन्दरियो ! तुम पति के कठोर वचनको सुनकर अप्रसन्न न हो वरन् उनको प्रसन्न करना ही तुम्हारा परम धर्म है, जिस गृह में दुष्ट स्त्री होती है वहां भी नाना भांति से हानि दृष्टि आती है तथा पति को तो मरना ही सूझता है, यथा--

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तर दायकः ।
ससर्पेच गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥

इसका यह अभिप्राय है कि दुष्टा नारी तथा मूढ़ मित्र अथवा नौकर उत्तर देनेवाला हो तो उस घर में हे सुशीलाओ ! मूढ़ मित्र वा उत्तर देने वाले चाकर को दूर कर श्रेष्ठ मित्र वा चाकर कर सकते हैं कि जिस से सुख मिल सकता है परन्तु स्त्री के त्याग न करने से मृत्यु ही होती है ।

हे सौभाग्यवतियो ! तुम उपरोक्त कथन पर ध्यान देकर अपने आचरण को इसके अनुसार सुधार कर अपने पति अथवा अन्य सास श्वसुर देवर जिठानी आदि से यथायोग्य प्रिय मधुर वाणी से नम्रतापूर्वक सत्य सम्भाषण करो, इसीसे तुमको धन सम्पत्ति आदि अनेक सुख मिल सकते हैं। जब तुम सुलक्षणा होजाओगी तो पति आदि अड़ोसी पड़ोसी सब प्रसन्न होंगे तथा तुम्हारी भलाई तन मन से करने पर उद्यत होजावेंगे । प्रति स्थान पर तुम्हारी बड़ाई होगी, सर्वजन तुम्हारा आदर सत्कार करेंगे, गृह में भी आनन्द रहेगा, मानों साक्षात् स्वर्ग के सुखों को भोगोगी । जो तुम निठुर, अप्रिय वा असत्य भाषण करोगी, भोजन वस्त्र आभूषण आदि काम काज पर लड़ोगी तो कदापि आनन्द के स्वप्नमें भी दर्शन न होंगे। सदा चिंता रूपी ज्वाला में जलकर एक दिन राख की ढेरी बनजाओगी। प्यारी स्त्रियो ! पति ही तुम्हारा स्वामी दुःखहर्ता इष्टदेव है अतः किंचित् जीवन में असन्तोष तथा क्रोध आदि मिथ्या सुखों में फंसकर अमृत रूपी सुखों को क्यों लात मारती हो, कि जिससे तुम्हारे दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। इसके पश्चात् शराब या कोई अन्य नशे का पीना, कुमार्गिणी स्त्री वा पुरुष की सङ्गत, पति से जुदाई, वृथा इधर उधर घूमना, बे समय सोना, दूसरे के गृह में निवास करना, इन छः दूषणों को भी अपने निकट न आने दो, जैसा कि धर्म-शास्त्र में लिखा है—

पानं दुर्जन संसर्गः पत्यां च विरहोटनम् ।
स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥

क्योंकि इनके कारण स्त्री का आदर नहीं होता, तथा नाना भाँति के दोष उत्पन्न होजाते हैं, इस कारण इन उपरोक्त दोषों को त्यागना उचित है। यदि आपको इस विषय में अधिक देखना होतो हमारी बनाई हुई नीत्युक्त स्त्रीधर्म वा स्मृत्युक्त स्त्रीधर्म इन दोनों को मंगाकर देखलीजिये।

अथोपरान्त निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान देना योग्य है—

(१) यदि पति से सम्मति करनी अथवा कुछ निवेदन करना हो तो यथा योग्य समय को देखकर शील स्वभाव से वार्त्ता करो।

(२) लड़ाई किसीके साथ न करो, धर्म और अर्थकाविरोधभी नकरो।

(३) असावधानी, उन्माद, क्रोध, ईर्षा, ठगई, अत्यन्त चुगुलपन, हिंसा, बैर, अहंकार, धूर्त्तपन, नास्तिकता, चोरी और दम्भ इन सबको छोड़ दो।

(४) सदा प्रसन्नचित्त रहो, घर के कार्य्य बुद्धिमानी से करो तथा वर्त्तन वस्त्र आदि सब वस्तुओं को पवित्र बनाये रहो।

(५) व्यय करने में कभी उदार न हो।

(६) गृह का मासिक हिसाब यथायोग्य लिखकर मास के अन्त में पति को दिखाकर यदि कुछ उस में संशोधन कराना हो तो उनकी सम्मत्यानुसार करो।

(७) कोई उत्तम वस्तु अपने सास, श्वसुर, पति के बिना भोजन कराये आप न खाओ।

(८) द्वार वा खिड़की के पास खड़ी न हो।

(९) जब पति परदेश को गये हों तो श्रृंगार न करो और न अन्य घरों में जाओ।

(१०) गृह में जब कोई उत्सव हो तो सास आदि की सम्मति से खर्च के ब्यौरे को लिखकर पति को सुना यथायोग्य व्यय करो अर्थात् घर की प्राप्ति और गृहकार्य्य देखकर काम करो, मिथ्या प्रशंसा पर न मरो।

(११) जब पतिगृह में आवें, उठ कर नमस्ते कर उनके बैठने को आसन दो, पंखा करो तथा पान, इलायची आदि से समयानुसार उनका आदर सत्कार करो।

(१२) कभी और किसी दशा में पति की बुराई न करो वरन् अपने सब प्रकार के दुःखों को देशकाल को देखकर निवेदन करती रहो।

(१३) परमेश्वर की उपासना को कभी न भूलो और आनन्दोत्सवों पर सब मिल कर पारिवारिक उपासना करो।

(१४) कभी अन्य पुरुष से एकान्त में बैठ कर बातें न करो।

(१५) फक़ीरों और बाबाजियों के यहां न जाओ, न अपने घर बुलाओ तथा उनको भिक्षा देने भी न जाओ।

(१६) नौकरों और दासियों के कार्य्यों की जांच करती रहो।

(१७) यह समझ कर कि यही मेरा पति सूर्य्य, चन्द्रमा से भी अधिक प्रकाशमान्, सब से बुद्धिमान्, शूरवीर, धनवान्, रूपवान् तथा कुलवान् है सेवा में लगी रहो। चाहे अन्य पुरुष कैसा ही बुद्धिमान्, धनवान्, कुलीन क्यों न हो स्वप्न में भी उसका ध्यान न करो।

(१८) गृहकार्यों के समय नियत कर यथायोग्य उन्हीं समयों पर उनको कर, शेष आराम के समय में उत्तम उत्तम पुस्तकें, समाचारपत्र भी पढ़ा करो और अपनी सहेलियों आदि को सुनाया करो।

(१९) प्राचीन पतिव्रता स्त्रियों के इतिहास अवलोकन कर उनसे सार को ग्रहण करने की टेव डाल कार्य्य करो।

(२०) पुत्रियों को पढ़ाती रहो, सीना पीरोना भी अच्छे प्रकार सिखलाओ, क्योंकि सन्तान सुधार तुम्हारे ही हाथ है।

(२१) सदा ऐसे कार्य्य करो जिससे दोनों घरानों का यश और कीर्ति हो, इसी में तुम्हारी भलाई और सर्वोपरि लाभ है।

(२२) लाज को कभी न त्यागो, परन्तु मिथ्या लाज में फँस कर प्राण भी न गमाओ, लाज के मुख्य अभिप्राय को जान कार्य्य करो।

(२३) यदि पति कुरूप हो और आप स्वरूपवान् हो तो भी उसकी कभी निन्दा तथा घमण्ड न करो, पति के मित्रों को मित्र और शत्रुओं को शत्रु जान व्यवहार करो, इसके विपरीत नहीं।

(२४) पति यदि परस्त्रीगामी भी है तो भी तुम कभी पति से न लड़ो वरन् प्रेम भाव से यथायोग्य शिक्षा और उपदेश से उनको सुधर्मी बनाओ और सौतियाडाह कभी न करो। इसके अतिरिक्त १—सदा सत्य कोमल प्रिय भाषण करो। २—बहुत न बोलो न अधिक चुप रहो अर्थात् समय पर बोलना और कुसमय बोलना छोड़ यथार्थभाषिणी बनो। ३—मन के

भेद करानेवाली बातें सभा में मत कहो, ऐसी बात भी न बोलो जिसका कोई विश्वास न करे ४–जानती हुई भी बिना पूंछे कोई बात न कहो अर्थात् जड़वत् बैठी रहो। ५–पीछे निन्दा भी न करो। ६–सदा सोच समझ आगा पीछा विचार सार वचनों को कहो।

(२५) आभूषण धारण करके स्नानादि को न जाओ, (२) रात्रि में अचेत न सोओ, (३) अपने आभूषणों को तुच्छ दृष्टि से न देखो, (४) वृद्ध होने पर आभूषण धारण करने का स्वभाव न बनाओ, (५) बहुधा स्त्रियां मुख में दांत और शरीर में मांस न रहने पर भी तरुण स्त्रियों से अधिक गहना पहरने शृंगार करने का चाव रखती हैं, इसके लिये कोई कोई अड़ोसी पड़ोसियों का गहना मांग, पहन दूसरों के घर जाती हैं यह योग्य नहीं, ६ कान और नाक में भारी गहना पहरना अयोग्य है, (७) देशाटन के समय अधिक सामान आभूषण लेकर न चलो, (८) तुम सदा सत्यता से जगत् को और शत्रु को शील से, धन से कृपण को, विद्वज्जनों को विद्या से, मूर्ख को प्रशंसा एवं मनोहर कथाओं से, स्वामी को भक्ति से, राजा को आज्ञा पालन से, क्रोधी को शांति से, कुटुम्बी जनों को स्नेह से, दीनों को दान से जीतने अर्थात् वश करने का उपाय करती रहो, (९) गृह में गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं की देख भाल करती रहो, (१०) मकान की मरम्मत को बर्सात से पहिले करालिया करो, (११) ईंधन को भी बर्सात से पहिले ले लिया करो, (१२) कपड़ों को भी आठवें दिन देख धूप में सुखा दिया करो, (१३) ऊनी कपड़ों को वर्षा ऋतु में बाँध कर न रक्खो वरन् हवादार खूंटी में टांग दो और चौथे या पांचवें दिन झाड़ दिया करो, (१४) भोज्य वस्तुओं को फसल पर लेकर रख लिया करो जिससे लाभ रहता है, (१५) अवकाश के समय शिल्प तथा गान विद्या में अपनी योग्यता बढ़ाती रहो।

लाज और परदा

लाज ऐसी वस्तु है जा प्रत्येक मनुष्य और स्त्री को करना चाहिये स्त्री पुरुषों का तो यथार्थ भूषण है। लाज से यह प्रयोजन है कि अपने सास श्वसुर पति आदि बड़े बूढ़ों के सामने कोई ऐसी बात न कहे जिसमें उनका अपमान हो, बुरे कामों से बचना ही लाज है।

प्यारी बहिनो! लाज इसको नहीं कहते कि बड़ा सा घूंघट काढ़ लिया या घरों के भीतर बैठ रहीं, जब तक तुम्हारा चित्त सुशिक्षित वा तुम्हारे पास विद्या न होगी तब तक इस वृथा लाज से कुछ नहीं हो सकता। जब से इस देश में मुसल्मानों का राज्य हुआ तभी से इस प्रकार का परदा चला आता है, क्योंकि यह लोग सुन्दर क्वारी कन्याओं को पकड़ कर विवाह कर लेते थे, तब से इस देश के विद्वानों ने इस परदा को चलाया जिस से वह कन्याओं के धर्म को भ्रष्ट न करें।

इस वृथा परदे से स्त्रियों को निम्न-लिखित हानियां होती हैं—

(१) उनको इसके कारण उत्तम वायु और प्रकाश नहीं मिलता जिस के कारण वे नित्य प्रति बीमार बनी रहती हैं, मुंह मेंढक सा पीला पड़ जाता है, जिसके कारण हज़ारों रुपया दवाओं में वैद्यों को देने के अनन्तर नाना प्रकार की लल्लो पत्तो करनी पड़ती है, (२) किसी प्रकार की विद्या भी नहीं सीख सकतीं, (३) बूढ़ी भी शीघ्र हो जाती हैं, (४) मरती भी शीघ्र हैं, (५) चतुरा या फुरतीली तथा चटकीली और बलवान् भी नहीं होतीं, (६) सोच विचार का स्वभाव भी नहीं पड़ता, (७) उनकी सन्तान भी निर्बल होती है।

गांववाली अथवा मेमों को देखिये वह कैसी मोटी ताज़ी होती हैं. निरोग चतुरा तथा बुद्धिमती होती हैं, सच है कि जब तक इस देश से परदा की रीति न उठेगी तब तक स्त्री जाति की किसी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त परदा केवल सास श्वसुर पति आदि भले आदमियों से किया जाता है परन्तु धोबी, चमार, धीमर आदि नीच क़ौम का परदा कभी नहीं करतीं चाहे वे ख़राब चलन हों, बेधड़क घर में चले आते हैं, क्या तब लाज नहीं रहती, जब सास श्वसुर आदि आते हैं तो बड़ा सा घूंघट काढ़कर भीतर को भागती है।

बहुत सी स्त्रियां झनकदार आभूषण पहनकर मेला आदि में जाती हैं तो क्या दुर्जन लोग अपनी दुर्जनता को काम में न लाते होंगे?

सोचने की बात है कि जब किसी के ब्याह आदि उत्सव होते हैं तो सिर्फ एक कपड़े की ओट से बहू बेटी अपने बाप आदि के सामने बुरे भले गीत गाती हैं, बतलाइये तो सही तब लाज उनकी कहां चली जाती है?

हाय! क्या इसी का नाम लाज है ? आज कल की लज्जावती स्त्रियों को निम्न-लिखित बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

बहुधा स्त्रियां ब्याह आदि में जो वृथा अपशब्दयुक्त गीत गाती हैं उनको बन्द करके यदि परमात्मा की प्रार्थना के भजनादि गायें अथवा ऐसे गीत गायें जिनमें बुरे शब्द न हों तो अच्छा हो। अथोपरान्त स्त्रियों को रामलीला, नौटंकी तथा नाच में भी न जाना चाहिये क्योंकि ऐसी जगह भी उनकी लाज जाती रहती है, उनको ऐसे स्थानपर स्नान भी न करना चाहिये जहां बहुत से मनुष्य हों क्योंकि केवल मुंह ढकने ही से लाज नहीं होती। सण्ड मुसण्डे वैरागियों के यहां किसी लालसा से न जाना चाहिये। मुख्य प्रयोजन हमारे कथन का यह है कि स्त्रियों को विचारपूर्वक लाज करना चाहिये कि जिससे उपकार हो, वृथा इस प्रकार की लाज से नाना दोष भारत सन्तान में फैल गये हैं।

पाकविद्या अर्थात् भोजनविधि

वेदों में लिखा है कि स्त्रियां सदा वैद्य के समान सब की हितकारिणी हो औषधिवत् अन्न बना यथायोग्य भाषण कर निरन्तर सुखों को प्राप्त करने योग्य होती हैं, जैसा कि यजुर्वेद अध्याय ३३ मंत्र ५६ में लिखा है।

हे सुशीलाओ ! इस विद्या को सूप वा पाकविद्या कहते हैं जिसका जानना स्त्रियों के लिये परम लाभदायक है। जो स्त्रियां पदार्थ विद्या और वैद्यक विद्या को जानती हैं वही पाकविद्या में पूर्ण योग्यता प्राप्त कर लेती हैं। जो एक२ वस्तु से युक्तियों द्वारा नाना भांति के भोजन बनाती हैं जिनके स्वाद और आनन्द को वही जन जानते हैं जिनको उत्तम योग्य विद्यावती सूपविद्या में चतुर वैद्यक विद्या की ज्ञाता स्त्रियां मिलती हैं, परन्तु जिनका मिलना प्रत्येक को इस समय महान् कठिन है। इसलिये सर्व साधारण के जानने के लिये छप्पन प्रकार के व्यञ्जनों में से कुछ थोड़े से का वर्णन करते हैं जिनका विशेष कर प्रतिदिन वा वर्ष में काम पड़ता है।

भोजन बनाने से प्रथम नीचे लिखी बातों पर ध्यान करना आवश्यक है।

(१) भोजन बनानेवाली स्त्री स्नानादि कर स्वच्छ वस्त्र धारण कर

भोजन बनाने को जावे और पाकशाला ऐसे स्थान पर हो जहां यथावत् वायु आती जाती हो और धुआं निकलने के लिये रोशनदान हो। (२) पाकशाला स्वच्छ हो (३) सम्पूर्ण बासन मँजे और पवित्र हों। (४) प्रत्येक भोजन पृथक् पृथक् रक्खे जावें अर्थात् एक दूसरे से न मिलें और विशेषकर निमकीन और मिष्ट। (५) एक बासन में जब कोई पदार्थ रख दिया हो और उसमें दूसरा रखना चाहे तो फिर उसको धोकर स्वच्छ कर ले, क्योंकि ऐसा न करने से कुछ तो स्वाद में भेद हो जाता है और स्वरूप में भी अन्तर आ जाता है। (६) मसाला, नमक अधिक वा न्यून न होने पावे वरन् यथारुचि और यथायोग्य हो। (७) भोजन जलने न पावे और न कच्चा रहे, (८) एक मोटा अंगौछा अपने पास रखना उचित है। (९) फोड़ा, फुंसी, खांसी आदि रोगवाली स्त्रीको भोजन बनाना उचित नहीं। (१०) प्रत्येक वस्तु को इस प्रकार से रखना उचित है जिससे परोसने में कठिनता न हो और परोसने से प्रथम प्रत्येक वस्तुको देखभाल कर परोसे जिससे सबको वह वस्तु मिल जावे (११) खटाई और उसकी पड़ी वस्तुओं को सदा कांच, पत्थर तथा मिट्टी के बासन में रखना उचित है क्योंकि पीतल वा तांबे में रखने से वह पितला जाती है। (१२) पदार्थ बनाने से प्रथम प्रत्येक आवश्यक वस्तुओं को शोधकर अर्थात् अन्न को बीन बिना छांट, फटककर ठीक करले और इसी भांति हरे सागों को धोय धायऔर गले सड़े पत्तों को निकाल कर ठीक कर लेना उचित है।

ग्रीष्म में भोजन ठंढे करके और वर्षा में वायु आने जानेवाले स्थानमें धा ऐसे बासनादि से ढके जिसमें वायु जाती रहे क्योंकि इस ऋतु में भोजन दबाने से शीघ्र बिगड़ जाता है, इसी भांति जाड़े में दबाकर रक्खे नहीं तो शीघ्र ठंढा होकर सूख जाता है। इसके उपरान्त भोजन छः प्रकार के होते हैं—

(१) पेय (लेह्य) (३) चूष्य (४) चर्व्य (५) भक्ष्य (६) भोज्य।

(१) पेय—जो पिया जावे जैसे दूध, (२)लेह्य—जो चाटा जावे जैसे चटनी सोंठ इत्यादि, (३) चूष्य—जो चूसा जावे जैसे ईख, आम, (४) चर्व्य—जो चाबकर खाया जावे जैसे चना परमल, चने की दाल इत्यादि, (५) भक्ष्य—जो निगल कर खायाजावे जैसे दूध लपसी, खीर, हलुवा, साबूदाना इत्यादि,

(६) भोज्य-जो रौंथ रौंथ कर भोजन किया जावे जैसे पूरी, कचौड़ी, रोटी दाल वा साग इत्यादि ।

❋ भोजन कराने की विधि ❋

प्रथम बालकों, २-नई बधू, ३-बूढ़ों, ४-गर्भिणी, ५ रोगी, ६-अतिथि, ७-सेवक, ८-पति, फिर अन्त को आप भोजन करे ।

❋ शाक ❋

आलू-बनाने की रीति, प्रथम आलुओं को उबाल कर छील ले फिर जितने आलू हों उनसे चौथाई घी कढ़ाई में डाल आलुओं को तले, फिर घरके मनुष्यों के स्वभाव के अनुकूल गरममसाला और निमक मिर्च डाल यदि खुश्क करनाहो तो थोड़ा सा पानी डाल उतार ले । यदि पतले करने हों तो बहुत पानी डाले । इसके उपरान्त यह भी याद रहे कि आलू नरम बक्कुल के हों तो उबालने की ज़रूरत नहीं, केवल बनारकर छौंक दे ।

भिन्डी-यह दो प्रकार की बनती हैं एक मसालेदार, दूसरी सादी । मसालेदार भिन्डी बनानीहो तो उनको बीच से चीर ले और उनके पेट में भिन्डी के अनुकूल ही खटाई, सौंफ, धनियां, अदरक, लौंग, इलायची, मिर्च भर कढ़ाई में थोड़ा सा या जितनी रुचि हो घी डाल उसमें हलदी एवं अजवायन भून भिन्डी डालदे और धीमी २ आंच से होने दे । सादी भिन्डियों को सिर्फ बनारले औ नमक मिरच डाल कर बना ले ।

जमीकन्द-प्रथम जमीकन्द पर कपड़ा लपेट कर चिकनी मिट्टी भिगोकर उसपर लपेट अच्छे प्रकार भूने अथवा इमली के पत्ते वा उसकी खटाई डालकर उबाल ले, ऐसा करनेसे उसकी परपराहट जाती रहती है, फिर उसको चाकू से तराश कर सोंठ, धनियाँ, मिरच इस मसालेको पीस घी में भून जमीकन्द को डाल खूब भूने, फिर उसके पीछे थोड़ा सा दही छान कर उस पर डाले और पानी जलने पर उसको उतार ले ।

उत्तम घुइयाँ या अरवी-बड़ी बड़ी लेकर उनको उबालकर छील ले फिर मठा जिसमें पिसा हुआ नमक पड़ा हो दो तीन दिन भिगोवे फिर निकाल कर सुखलावे, जब वह करकरी होजावे तब कढ़ाई में घी छोड़ कर पूरी की भांति उतार ले और उसमें निमक काली मिरच और खटाई बारीक पीस कर मिलादे ।

साधारण घुइयां—ये दो प्रकार से बनती हैं, एक सूखी दूसरी पतली। बनानेवाले चाहे छील कर बनावें चाहे उबाल कर। जब सूखी बनाना हो तो प्रथम कढ़ाई में घी डालकर उसमें अजवायन, मिरच, हल्दी आदि मसाले को अच्छे प्रकार भूने, जब भुन जावे तब उसमें घुइयां डाले, यदि उबली हों तो पानी डालने की कुछ आवश्यकता नहीं वरन् थोड़ा सा पानी गलने के योग्य डालदे, जब गल जावें तब उतार ले, जो पतली रसे की बनाना हो तो जितना योग्य जाने पानी और नमक आदि मसाले भी अनुमान से छोड़ दे।

रतालू—इसको छीलकर कतर ले और आलू की भांति बना ले।

करेले—प्रथम सेर भर करेलों को छीलकर बीच से चीर ले और पिसा हुआ नमक भर के थोड़ी देर रखदे और जब नमक अच्छी तरह से भिद जावे तब अच्छी तरह मसाला डाल दोनों हाथ से पानी निचोड़ कर अलग रख धनियां भर, नमक छटांक भर, मिरच आधी छटांक, जीरा एक तोला, सौंफ आधी छटांक, अमचूर आधी छटांक कूट कर भर दे और फिर घी में हींग और जीरे का बघार देकर भूनले और जब भुन जावे तो थोड़ा सा पानी डाल कर ढक दे और जब पानी जल जाय तो कलछी से चला कर निकाल ले। अधिक हों तो अनुमान से मसालों को घटा बढ़ा ले।

बैंगन—इनको प्रथम छीलले और फिर चाकू से तराश ले और बटलोई में घी डाल कर पिसा मसाला छोड़ कर भून ले, फिर बैंगनों को कलछी से चलावे और उसके अनुसार नमक डाले और एक कटोरे में पानी भर ऊपर रखदे और धीमी २ आंच दे और दो एक बार कलछी से चलादे और जब गल जावें तो उतार ले।

बैंगन का भरता—बैंगन दो प्रकार के होते हैं—एक भाटू, दूसरे बतिया। परन्तु भाटू का भरता अच्छा होता है। इसको प्रथम भाड़ अथवा चूल्हे में भुनवाले, फिर छिलकेको छील हाथ में मलकर नमक मिला कर हींग, गरम मसाला और पिसा अमचूर डाल घी में छौंक दे।

टेंड़स वा टिंडे—इसको नरम २ लेकर छील ले और फिर बना कर नमक मिरच डाल छौंक दे।

गोभी—इसके फूल का साग अच्छा होता है परन्तु नरम डांडी भी इसके संग में बना लेते हैं, जो कड़ी हो तो उसका छिलका छील कर गूदा निकाल उसको धोलेवे और फिर हींग मसाले का बघार देकर इस में धुली हुई गोभी और महीन पिसा हुआ मसाला और उसी के अनुसार नमक डाल खूब चलादे और फिर थोड़ा पानी और दही डालकर ढक दे और जब गल जावे तब उतार ले।

❋ हरे शाक बनाने की रीति ❋

प्रथम शाक अच्छे प्रकार बीनकर स्वच्छ कर ले, कोई सड़ा गला न रहे, फिर बनाकर बटलोई में उबाल ले, जब उबल जावे तब पृथक् रख ले, फिर कड़ाही में घीडालकर मेथी आदि मसाला डाल कर शाक डाल दे और फिर अनुमान से नमक पीसकर डालदे और जब पानी न रहे तब उतार ले।

❋ रोटी ❋

प्रथम गेहूं के आटेको छान अच्छी परात में माड़कर थोड़ा सा पानी देकर लोचदे, उस आटेको भिगोकर रखदे, फिर थोड़ी देर के पीछे आटे को माड़र ठीक कर लेवे अर्थात् आटा बहुत अच्छे प्रकार लोचदार हो जावे, इतने में दाल को जो पहिले से चूल्हे पर होने को रक्खी थी उतार कर घये में रखले, चूल्हे पर तवा रखदे, फिर छोटी लोई तोड़ चकले पर बेलन से बेल तवे पर सेंक घये अर्थात् चूल्हे में अच्छे प्रकार सेंक ले, पर रोटी जलने न पावे। लोई हाथ से बढ़ाकर सेकने से रोटी पाचक होती है। चने गेहूं की रोटी बनानी हो तो गेहूं चने का आटा मिलाकर माड़ लेते हैं, बाजरा मक्का ज्वार की रोटी करने में आटे को लोचदार उसी समय बनाते जाते है जिसको ईछना कहते हैं। जो मीठी रोटी करना हो तो आटे को मीठा डाल माड़ लेते हैं फिर रोटी करने वा सेकने की वही रीति है जो ऊपर लिखी है।

❋ पनफती रोटी ❋

जो बिना परोथन के केवल पानी के हाथ से बढ़ाते हैं और रोटी की भांति सेंक लेते हैं।

❀ उरद की दाल बनाने की रीति ❀

उरद की दाल जो पहिले ही से स्वच्छ कर रक्खी हुई है प्रातःकाल भिगो दे, जब भीगजाय तो हाथों से मलकर चलनी में रखकर पानी डाले तब छिलके ऊपर आजावेंगे उनको उतार दे, इसी भांति उसको पानी डाल डालकर धोले। तत्पश्चात् दाल को फिर साफ कर ले अर्थात् उसमें के ढोरे आदि निकालकर बटले में पानी डाल चूल्हे पर रख गर्म कर दूसरे बर्त्तन में कर ले, फिर बटलोई में घी डालऊपर से वह गर्म पानीजो पहिले से कर रक्खा था इतना डाले कि दाल से दो अंगुल ऊपर रहे, फिर अनुमान से नमक डाल, ढक, धीमी धीमी आंच दे, जब दाल होजाय उसको उतार अंगारों पर रख दे. फिर दाल में सोंठ धनियां पैसे पैसे भर, दालचीनी, कालीमिरच छदाम छदाम भर, इलायची दो इनको महीन पीसकर आधसेर में इस मसाले में से आधा डाल दे, फिर जीरा तथा राई का छौंक दे, मानो दाल बन गई।

ऐसेही मूंग, अरहर आदि की दालें बनाले. अलबत्ता मसाला कम डाले क्योंकि दोनों दालें गर्म हैं, मूंग की दाल में लौंग का छौंक देते हैं। और अरहर की एक सेर दाल में एक छटांक अमचुर वा दही डाल दे क्योंकि खटाई अधिक रहने से स्वादिष्ट होती है। बहुधा स्त्रियां उरद वा मूंग की दालों के साथ पालक, सोया मेथी आदि का शाक डालती हैं, उन को उचित है कि प्रथम शाक डाल कर पका लें फिर मसाले डालें तत्पश्चात् बघार दें तो अति श्रेष्ठ शाक दाल बन जावेगी।

कोई कोई मूग उरद वा चना आदि की दालों में से दो दो को मिला कर रांधते हैं, उन की भी यही रीति है, यदि साबुत मूग बनानी हो तो प्रथम बड़ी बड़ी रोल कर भाड़ में बालू से अकुरवा ले फिर गलने पर चावलों का थोड़ा सा मांड डाल दे तो बहुत सोंधी हो जायगी।

❀ गेहुं का दलिया ❀

प्रथम गेहूं को धोकर सुखा ले फिर भाड़ में भुना उसे दल डाले, फिर घी डाल कर भून ले, इसके पश्चात् यदि दूध में बनाना हो तो दूध वरना बटलोई में पानी डाल चूल्हे पर चढ़ा दे, जब पानी खूब गरम हो जावे तब दलिये को डाल कढ़ दे, अगर निमकीन बनाना हो तो निमक या मीठे खाने हों तो मीठा डाल उतार ले।

❋ चावल ❋

प्रथम स्वच्छ चावलों को फिटकरी के पानी से धोकर फिर ३ बार गर्म पानी से अच्छे प्रकार धो चूल्हे पर बटलोई आदि में चढ़ा उसमें छः वा सात अंगुल पानी डाल कर थोड़ी सी सोंठ अदरख कूट कर डाल दे जिस से उस की वादी मारी जाती है, जब चावल की एक कनी रहजावे तो कपड़े या चलनी में पसा कर पृथक् मांड़ कर अंगारों पर बटलोई को रख दे और थोड़ा सा स्वच्छ घी डाल कर बासन को हिला दे, यदि सुगन्धित करना हो तो गुलाब या केवड़े के इतर का छींटा दे दे।

मीठे चावल—एक पात्र उत्तम धुले चावल उस से आधा घी और उतना ही दूध वा एक छटांक चीनी (बूरा) सब को पाव भर पानी डाल चूल्हे पर चढ़ा धीमी आंच से पकावे, पौन गल जाने पर कोयलों में रख दे।

केसरिया चावल—चावलों को धो कर अदहन में चढ़ाकर एक सेर में ६ मासे केसर पीस कर डाले और गरम मसाले का छौंक दे।

मीठे केसरिया चावल—एक सेर उत्तम चावलोंको तीन बार धोकर डेढ़ सेर पानी में डेढ़ तोला हरसिंगार की दण्डी और एक तोला केसर पीस ले और सेर भर मिश्री की चासनी करे, पाव भर घी बटलोई में डाल १५ लौंग, तीन मासे बड़ी इलायची का बघार दे, केसर का पानी उसमें डाल दे और फिर ऊपर से चावल भी डाल दे. जब आधे गल जावें तब उस चासनी को डाल धीमी धीमी आंच देकर पकावे, फिर जब पौन गल जाय तब छोटी इलायची तीन मासे जायफल, जावित्री एक एक माशा और पाव सेर मेवा डाल ढक कर कोयलों पर रख दे, फिर इस के आनन्द को देखे।

खिचड़ी—चूल्हे पर बटलोई को चढ़ा पानी गर्म होने पर चावल धो कर डाले, साथ ही अगर मूग की खिचड़ी बनाना हो तो मूग की यदि उड़द की बनाना हो तो उड़द की दाल डाल दे और अदहन का पानी एक अंगुल ऊपर रहे, फिर उस में गरम मसाला और अनुपान से नोन डाल बटलोई को धीमी धीमी आंच दे, थोड़ी देर के पश्चात् एक चावल को निकाल टटोले जब वह गला जान पड़े तब उस में थोड़ा सा घी डाल ढक दे और उतार कर अंगारों पर रख दे।

तहारी व बड़ी चावल—बड़ियों को घी में भूनकर चावलों के साथ उन्हीं की रीति से पका ले. पर मसाला इनमें और डाल दे।

खीर—कमोद या हंसराज अथवा बासमती के अच्छे चावलों को ले और शोधकर धो ले, फिर दूध को कढ़ाई में अधौटा कर उतार ले, इसके पश्चात् उन धोये हुए चावलों को जो सूख गये हों उनको घी के हाथ से मले फिर बटलोई में उस अधौटे दूध को चढ़ा कर दूध में आधी छटांक सेर के हिसाब से चावल डाले और पौसेरी सेर का बरा और कुछ मेवा डाल ढक कर धीमी आंच दे, जब पक जावें तो उतार ले।

शिखरन—ताज़ा, मीठा, चका दही को कपड़े में बांध पानी निचोड़ डाले, जब पानी निचुड़जाय तब कूँड़ी या कांच के बर्तन में रख उसमें इलायची, काली मिरच और स्वच्छ मिश्री वा उसी के अनुसार घी और कच्चा दूध मिला ले।

खुर्चन—दूध को रबड़ी की भांति लच्छे कर कर (जितने दूध का बनाना हो) जब सब दूध के लच्छे होजावें तब उनको सावधानी के साथ अर्थात् लच्छे टूटे नहीं) कढ़ाई में डाल घी में भूने, जब बहुत थोड़े बच रहें तब उनमें क़न्द और बड़ी इलायची पीसकर मिला उतार ले और सुगन्धि के लिये गुलाब या केवड़े के इतर को छिड़क दे।

रबड़ी—मिश्री पाव भर, छोटी इलायची १ तोला, इनको पीस कर रखले, फिर ५ सेर दूध को कढ़ाई में डाल गरम करे जब अच्छी तरह से गरम हो जावे तब धीमी धीमी पंखे की हवा करे और दूसरे हाथ से पड़ती हुई मलाई को उतार उतार कढ़ाई के किनारों में लगाता जावे और कभी कभी दूध को भी चला दिया करे, जब एक सेर रह जावे तब कढ़ाई उतार ले और थोड़ा सा गुलाब का इतर तथा किनारों में लगी हुई मलाई और पहिले की पिसी हुई चीज़ों को डाल मिला लो, उम्दा रबड़ी बनेगी।

दूध की नमश

चार सेर दूध को इतना औटावे कि आधा रहजावे, औटाने में ऐसा करे कि मलाई न पड़ने पावे, जब इस प्रकार दूध औट चुके तो आगसे उतार कर जिस पात्र में वह दूध हो उसे वस्त्र से ढापकर रात को ठण्डे में रक्खे, सवेरे आध सेर मिश्री. तीन तोले समुद्रझाग ले कर छिलका उतार

बारीक पीस कर और आध पाव कवड़ा या गुलाब उस दूध में मिलावे, पुनः इन सबको रई से मथ कर जो झाग निकले उसे एक पात्र में धरता जावे, इसी झाग का नाम नमश है, बहुत स्वादिष्ट होता है।

पनीर—दही का मथ कर पतले वस्त्र में बांध कर लटका दियाजावे, सब जल निकलजाने से पनीर बन जाता है जिसमें नमक कालीमिर्च डालकर खाना योग्य है।

❀ कुलफी का बरफ़ ❀

एक मोमबत्ती के सांचे के समान नली बनाकर एक तरफ़ बंद और दूसरे मुँह का ढक्कन रक्खे, फिर गरम दूध से उस नल को भर के उस में नींबू का रस, चीनी डाल कर मुंह बन्द करदे, उन कुलफियों को एक हांडी में भर कर उसके ऊपर के भाग में थोड़ा सा नोन और बरफ़ डाल कर रक्खे, इस रीति से बरफ़ तैयार हो सकती है।

बड़ी, मुंगौड़ी वा चुनौड़ी

बड़ी उरद की दालकी और मुँगौड़ी मूँग की दालकी वा चुनौड़ी चने की दाल की होती हैं। इन सब के दो भेद हैं—एक टटकी, दूसरी सूखी। जब इनको बनाना हो तो दाल उरद वा मूँग वा चने का भिगोदे, और भीग जाने पर साफ़ धो महीन पिट्ठी बनाले, यदि उरद की पिट्ठी हो तो सोंठ, तेजपात, धनियां, मिर्च, लौंग, इलायची आदि पीस कर डाले, फिर हाथ में पानी का छींटा दे दे कर खूब फेंटे और चटाई या खाट पर मुँगौड़ी वा बड़ी तोड़ दे और जब सूख जावें तब उठाकर बर्तन में रख ले। बड़ियों की पिट्ठी को खट्टाकर बनाते हैं और चने की चिनौड़ी भी इसी भांति बना ले। जब किसी बड़ी, मुँगौड़ी वा चिनौड़ी को रांधना होतो बटलोई में घी डाल भून ले पश्चात् पानी डाल नमक, मिरच हल्दी को भी डाल रांध ले।

कढ़ी—यह बेसन की बनती है। पहले छोटी छोटी बेसन की पकौड़ी तोड घी में बना ले और कूंडी भर दही या मट्ठे में बेसन को घोल कढ़ाई में चढ़ा दे और धीमी धीमी आगसे होने दे, इसके उपरान्त कलछी से चलाता भी जावे, जितनी औटाई जावेगी उतनी ही अच्छी होगी। जब अधौटा होजावे तब वह बेसन की पकौड़ी डाल देवे।

झोर—यह मूंग की दाल की पिट्ठी, आलू वा आम की गुठलियों का बनता है। यह बहुत पतला रहता है और कढ़ी की भांति पकाया जाता है। यदि मुंगौड़ी का बनाना हो तो मुँगौड़ी पीसकर मिलादें, यदि आलू का बनाना हो तो आलू मिलाकर बनालो। परन्तु आमका इस प्रकार से बनता है कि पके आम को लेकर उसका रस निकाल छिलके और गुठली को धो मिलादे, आम की झोरी मिट्टी की हांडी में बनाना योग्य है, क्यों कि पीतल वा कांसे की बटलोई में पितला वा खराब हो जाता है।

सिमई—यह सलूनों पर बनती है, सिमई को पतली बनाना चाहिये और इस भाँति पकाना चाहिये जिससे गरिष्ट न हों। सिमई को या तो पूरी की भांति घी में उतार ले और खांड वा बूरे की चाशनी बना कर पाग ले। अथवा कुछ पानी डाल उबाल ले। और दूध में पकावे तो गरिष्ट नही होती, अर्थात् जल्द पच जाती है।

पूरी

कच्चे सिंगाड़े की पूरी—कच्चे सिंगाड़ों को छील, कतले कर कुछ धूप में फरेरेकर सिल लोढ़ी से पिट्ठीकी भांति पीस लेवे, फिर उसमें सूखा गेहूं वा सिंगाड़े का ही आटा मिला सेक लेवे।

रामपूरी—प्रथम एक छटांक मैदा में तीन तोले दूध, डेढ़ तोला दही और छोटे बताशे मिलाकर नरम गूंध कर किसी मिट्टी तथा काठ या पत्थर के पात्र में धरदे, दस घण्टे तक पड़ा रहने दे, परन्तु गरमी के दिनों में थोड़े समय तक जब खमीर उठ आवे तब उसको एक सेर मैदा, दारचीनी तीन माशा, समुद्रफेन ६ माशा, २ तोले महीन नोन मिलावे, तीन छटांक मोयन देकर, ३ तोला सौंफ थोड़े जल में पीस छान उस आध सेर दूध में मिला कर मैदा गूंधे, शीतकाल में सारे दिन और गरमी में दोपहर तक दूध में पड़ा रहने दे। फिर ३ तोले की लोई बना उसको पटे पर बेल खसखस धुली हुई या सफेद तिली जिसको शोध लिया हो दही में मिला कर पूरी के एक ओर लगाय सेक ले।

मीठी पूरी—के लिये अधपई सेर के हिसाब से मोयन डाल लुबई बनाने योग्य मैदा गूंध, अन्दाज़ से मिश्री और १ पाव पिश्ता, आध पाव बादाम, अदरक का रस २ तोला, दालचीनी और लौंग २ आना भर ले, पीस फिर कचौड़ा की भांति इसे लोई में भर घी में उतार ले।

पूरी—मैदा गूंध लोई बना पटा बेलन से बढ़ा कढ़ाई में घी डाल चूल्हे पर साधारण आंच से घी खौलने पर छोड़ उलट पुलट कर सेंक ले।

कचौड़ी—पूरी से किसी कदर ढीला आटा गूंथ कर लोई बनावे और धोई पीस कर उसमें नमक हींग सोंठ बारीक पीसकर मिलावे और लोई के भीतर उसको भरकर हथेली के बराबर पटा बेलन से बढ़ा पूरी की भांति सेंक ले।

नागौरी पूरी—पांच सेर मैदा में डेढ़ सेर घी, डेढ़ छटांक नमक, एक छटांक अजवाइन डालकर गुनगुने पानी से माड़े और फिर पटे बेलन से पूरी की भांति बढ़ा घी में सेंक ले।

खस्ता कचौड़ी—पांच सेर मैदा, सेरभर घी आधसेर तेल, दो सेर गुनगुना पानी, पौन पाव पिसा हुआ नमक डालकर माड़ले और सवासेर उरद की पिसी पिट्ठी में एक छटांक धनियां, सोंठ, मिरच, लौंग, जीरा दो२तोला अच्छे प्रकार पीसकर डाले, फिर उस पिट्ठीको कढ़ाई में घी डाल कर खूब भूने और कुल्हड़ में हींग को पानी में घोल कर रखले, उसमें हाथ बोर २ करपिट्ठी की लोई आटे की लोई में भरकर गोलकरे, फिर हथेली से चपटा कर कढ़ाई में छोड़ता जाय और अच्छे प्रकार सेककर निकाल ले, यदि कम खस्ता बनती हो तो घी या तेल थोड़ा डाले।

पूरन पूरी—आध सेर अरहर की दाल मुवाफ़िक के पानी में उबाले जब गल जावे तब चूल्हे से उतार पानी निचोड़ दे और हाथ से मथ कढ़ाई में डेढ़ पाव घी डाल मथी हुई दाल और उसी में आधसेर चीनी ४ तोला सफेद इलायची वा पाव भर घी में भुना खोवा, दो पैसे की किशमिश डाल दे, जब सब मिल जावे तब उतार ले और फिर लोई के भीतर कचौड़ी की तरह भर घी में सेक ले।

टिक्कर या पराउठे—पूरी के समान आटा माड़ कर लोई को बेल तवे पर डाल इधर उधर थोड़ा सा घी डाल दोनों तरफ अच्छी तरह से सेंक ले और जब सिक जावें तो उतार ले, इस रीति से घी कम लगता है, परन्तु उत्तम बनाने में घी अधिक लगता है और बड़ा स्वादिष्ट होते हैं। उसकी रीति यह है कि आटे को प्रथम दूध में या मलाई डाल कर गूंध ले, फिर थोड़ा सा आटा ले पटे बेलन से बेल फिर घी लगाय कर लौटे और लोई करे, इसी

प्रकार दो तीन बार कर उस आटे में से छोटी २ लोई तोड़े, फिर एक लोई को लेकर कढ़ाई में अच्छे प्रकार घी देकर पूरी की भांति सेक ले, फिर इसके स्वाद को देखिये, यदि इससे घी कम लगाना हो तो पराठों की भांति सेक ले।

पकवान

ये दो प्रकार के होते हैं-एक जो मीठे से बनते हैं या ऊपर से उन में मीठा चढ़ाया जाता है। दूसरे नमकीन।

चाशनी—जितनी खांड हो उस से आधा पानी डाल भट्टी के ऊपर कढ़ाई में चढ़ादे और मुसद्दी (जो काठ की बनी होती है) से घोले और आंचदे, जब उफान आने लगे तब मन पीछे २॥ सेर पानी खड़े होकर ऊंचे से चारों ओर कढ़ाई में डालदे, जब मैल फूलकर झाग बन जावे तब उसको पौना से (जो लोहे का होता है) उतार किसी बर्त्तन में रखता जाय, जब सब मैल पौने से ले चुके तब एक मन में सवा सेर दूध और ढाई सेर पानी मिलाकर दो तीन बार में ऊंचे से उस कढ़ाई में छोड़ता रहे और मैल फिर पौने से उतार ले। फिर एक टोकरे या डलिया में स्वच्छ कपड़ा भिगोकर एक बड़े बर्त्तन के ऊपर टिकटी रखकर उस कढ़ाई के मीठे पानी को टोकड़े में डोरी से डाल २ कर छान ले। इस छने हुए को बक्खर कहते हैं।

लड्डू—यह अनेक प्रकार के बनते हैं, उनमें से मोतीचूर, बेसन का लड्डू, मूंग की पिट्ठी, उरद की पिट्ठी, बरूने का चून, तिल, गुड़धानी, मुरमुरा, मेथी, कंगनी और फाफड़ा के प्रसिद्ध हैं।

मोती चूर—इसको बूंदी और नुक्ती का भी लड्डू कहते हैं, इस के बनाने के लिये प्रथम चाशनी इस प्रकार से बनावे कि उसके स्वच्छ पानी को कढ़ाई में चढ़ा कर भट्टी पर रक्खे, जब उसमें चमकदार बुलबुले उठने लगें तब उसमें एक सींक से लेकर अंगूठे पर लगा पास की उँगली से देखे, जब छः सात तार मालूम पड़ें तब कढ़ाई उतार ले और मन भर के पीछे पाव भर बताशे मीड़ कर डाले फिर बूंदी डाल लड्डू बांध ले।

अंगूरदाना अर्थात् बूंदी—जब चाशनी बनजावे तब बेसनसे ड्योढ़ा

उत्तम घी लेकर स्वच्छ कढ़ाई में चढ़ाकर जब घी बोलने लगे तो एक बर्त्तन में बेसन को घोल पौने से कढ़ाई में नुकती छांटता जाय, जब नुकती कढ़ाई के ऊपर आजावें तब पौने से उनको लौटे फिर निकाल २ कर चाशनी में डाल एक कौंचे से भिगो २ कर कढ़ाई के किनारों की ओर जमाता जाय, यदि बूंदी और दाना बनाना हो तो उनको निकाल कर इतर लगा दे, यदि लड्डू बनाना हो तो मेवा काट कर और बड़ी इलायची के दाने पीस कर उसमें मिला इच्छानुसार छोटे बड़े लड्डू बना ले।

बेसन के लडडू—बेसन के बराबर घी लेकर कढ़ाई में चढ़ादे और धीमी २ आग से भूने, जब भुन जाय और कच्चा न रहे और न जलनेपर आवे उसको उतार ठंडा कर के सवाया ड्योढ़ा बूरा मिलावे और फिर बूरे बेसन को एक रस करके मेवा डाल लड्डू बांध ले।

मूंग या उरद की पिट्ठी के लड्डू—दाल को पानी में भिगो कर खूब धोले कि छिलका न रहे, उसकी महीन पिट्ठी पीस नुकती छांट ले और मोतीचूर की भांति बांध ले।

अथवा बड़ी२ मूंग को छांटकर भाड़ में भुनवाले और दलकर उसका छिलका उतार फटक चक्की से पीसले, उसके चून से आधा घी डाल कर थोड़ा भून और फिर सेर आटे पीछे तीन पाव वा ढाई पाव बूरे के हिसाब से डाल कर खूब मिला लड्डू बांध ले।

सूजी वा मगद का लड्डू—सूजी के बराबर घी कढ़ाई में चढ़ा कर मन्दी २ आग से भूने, कौंचा से चलाता जाय, जब उसका रंग बादाम का सा हो जावे और सुगन्ध उठने लगे तब उतार कर ठण्ढा कर ले और सवाया बूरा और मेवा डाल कर लड्डू बांध ले।

मस्ते का लड्डू—खिले हुए चनों के छिलके उतार बहुत महीन पीस ले और धीमी २ आंच से भून ले क्योंकि यह तनिक सी तेज़ आंच में जल जाते हैं और बूरा मिला कर ऊपर की रीति से बांध ले।

चुटिये का लड्डू—एक सेर मैदा में आध पाव घी डालकर हाथ से मसल ले और गुनगुने पानी से उसन कर छटांक २ भर की मुठिया बना ले और घी में उतार ले और फिर कूट छान कर कढ़ाई में बचा हुआ घी भी उसमें मिलादे और उसीके बराबर बूरा और मेवा वा कन्द डाल कर लड्डू बना ले।

चूरमे, तिल, गुड़धानी, मुरमुरे, फाफड़ा—के लड्डू बनाना कुछ कठिन नहीं है, पूरी को मींड कर बूरा वा गुड़ मिला कर बांध लेते हैं और अन्य चारों को भून गुड़ वा बूरे की चाशनी करके इन्हें मिला कर बांध ले परन्तु चाशनी बनाने के समय यह देख ले कि डालने से जमती है या नहीं।

मेथी—इसके बीज को आठ दस दिन तक भीगने देवे और जब भीग जावें तो खूब मल कर कई पानी से धो डाले और सुखा कर महीन पीस ले और उस में आधा गेहूं का आटा मिला कर घी में भून ले और बूरा डाल कर लड्डू बांध ले।

कंगनी इसे खूब दलवा फटकवा कर महीन पीस ले और फिर उस में गेहूं का आटा मिलाकर घी में भून ले और बूरा डालकर लड्डू बांध ले।

मालपुआ—आधी छटांक सौंफ और काली मिर्चको आधपाव पानी में भिगो दे, थोड़ी देर के पीछे स्वच्छ कर ले फिर छान कर एक सेर आटे में आध सेर शरबत खाँड, बताशे, मिश्री या गुड़ को छान कर डाले, फिर सब को भले प्रकार मथे कि जिससे उनमें फेन उठ आवे, फिर कढ़ाई में घी डाल कर आँच दे, जब घी गर्म होजावे तब कटोरे अर्थात् बेले में उस घुले हुए आटे को ले फैली हुई रीति से कढ़ाई में डाल उलट पुलट कर खूब सेंक फिर पौने या थापा से निचोड़ कर निकाल कर रखता जाय। ऐसे ही थोड़े घी के चीले बनते हैं।

जलेबी—जब बनाना हो तो प्रथम खमीर बनाना चाहिये। जाड़ों में यह कई दिन में उठता है और गर्मियों में एक दिन में अर्थात् एक दिन पहिले मैदा को मथकर एक मिट्टी के बर्तन में रख दे तो दूसरे दिन खमीर उठ आवेगा और अगर जाड़े के दिन हों और शीघ्र बनाना हो तो गर्म पानी वा धूप और भट्टी के पास रखने से शीघ्र उठ आता है और सौंफ का पानी डालने से शीघ्र उठता है। सौंफ़ का पानी पकाने के लिये सौंफ़ को पचगुने में औटावे।

जलेबी की चाशनी—बनने की पहिचान यह है कि इसमें जब चार पांच तार देख पड़ें तब उतारकर रख ले और जब करनेको बैठे तब खमीर को खूब फेंटले और एक छोटी सी मलिया के पेंदे में कमल के बराबर मोटा छेद कर ले, घी को कढ़ाई में दे भट्टी पर चढ़ादे, जब घी होजावे तब उस मलिया में उस खमीर को भरे और छेद एक उंगली से दाब ले फिर सीधे

हाथ में उस को ले उंगली को हटा प्रत्येक जलेबी के लिये चार पांच चक्कर देकर कढ़ाई वा तई में जितना हो सके करे फिर उस छेद को उसी उँगली से बन्द करदे, जब वह सिककर ऊपर आजावे तब बांसकी आधी उंगली बराबर मोटी और हाथ भर लम्बी और सीधी लकड़ी से उलट कर सेंक फिर उसी लकड़ी से निकाल निकालकर चाशनी में डाल पौना या कलछी से बोर बोर तथा निचोड़ निचोड़ कर अलग किसी थाल में रखता जाय। चाशनी मैदा से दुगुनी वा ढाई गुनी होनी चाहिये।

इमरती—उड़द की दाल को तीन पहर अच्छे प्रकार भिगो कर खूब धोवे जिसमें छिलका न रहे, फिर उसको बीनकर बहुत महीन पीसे और एक कपड़ा बालिश्त भर लम्बा चौड़ा लेकर उसके बीच में छेद कर उसको चारों तरफ़ से सीं दे, फिर जितनी करनी हो उससे तिगुनी उपरोक्त प्रकार की चाशनी बनाकर रख ले, इस के पीछे भट्टी पर घी को तई में चढ़ावे, और पिट्ठी को अच्छे प्रकार मथ मथ कर या प्रथम ही से मथ ली हो अथवा अन्य कोई पुरुष मथ मथ कर देता जाय उसको उस छेदवाले कपड़े में रख कर सीधे हाथ से घी खरा होने पर कपड़े को हाथ से दबा और फिरा कर एक छोटासा गोलाकार बनावे फिर गोलके दाहिनी तरफ़ से छोटे छोटे से गोल खाने एक तरफ़ बनाता जावे, इसी भांति इमरती तोड़े, फिर बांस की सींक से उलट कर सेंक ले और जलेबी की भांति निकाल निकाल कर चाशनी में डुबो अलग किसी थाल में रखता जाय।

पेड़ा—गौ या भैंस का ढाई सेर उत्तम खोया लेकर उसको धीमी धीमी आंच से स्वच्छ कढ़ाई में भूने और सेर भर कन्द या शक्कर डाले, फिर थोड़ी देर चलाकर उतार ले, जब ठण्डा होजावे तो शक्कर मिलाकर खूब मले और इलायची, पिस्ता, गोला, चिरौंजी और लौंग का चूरा डालकर छोटी छोटी सी आटे की तरह लोई ले हाथ या कढ़ाई में दबा कर थाल में चुनता जाय।

बर्फ़ी—गौ या भैंसका ताज़ा खोया ढाई सेर ले स्वच्छकढ़ाई में धीमी धीमी आंच से भून ले, जब अच्छी तरह भुन जावे तो उतार अलग रखदे और जब थोड़ा गर्म रहे तो डेढ़सेर कन्द डाले फिर खूब हाथ से मिला घी चुपड़ी हुई थाली में गुनगुना भर कर ऊपर से थोड़ा सा कन्द, पिस्ता, चिरौंजी, इलायची बुरकावे और फिर दो घण्टे बाद चाकू या छुरी से तराश ले।

मलाई के लड्डू—गाय या भैंस का उत्तम खोया ढाई सेर भून ले फिर उतार कर अलग रख दे। जब अच्छी तरह ठण्डा हो जावे तो डेढ़ सेर कन्द और दो बूंद केवड़ा या गुलाब का इतर डाल हाथ से मल गोल लड्डू पैसे पैसे भर के बांध ले और कन्द से औड़ कर रखता जावे।

कपरकन्द—उत्तम और ताज़ी रामतुरई ले चाकू से इतना छीले कि उस में हरियाली न रहे, फिर लोहे के पंजे से लच्छे उतार कर पानी में डालता जावे फिर चूना या फिटकरी के पानी में थोड़ी देर भिगोवे, फिर अच्छे स्वच्छ पानी से साफ़ करले और कढ़ाई को स्वच्छ कर जलेबी की तरह चाशनी बनाले, फिर रामतुरई के लच्छों को निचोड़ कर चाशनी में डाले और जब डालने के पीछे जलेबी की तरह चाशनी होजावे तब उतार कर घी डाल खुरपी से लौट पौट कर सुखा ले. फिर हाथ में केवड़ा या गुलाब का इतर लगा लच्छों को सुरभा २ किसी बर्तन में रखता जावे।

गुजिया—प्रथम आटे की मोटी मोटी पूरियां बना कर सेक ले फिर उनको कूट कूट कर धूप में सुखावे. तत्पश्चात् चलनी में छान कर जो टुकड़े रह जावें वह चक्की में पीस ले. फिर तीन सेर में सवा सेर खांड डाले। यह गुली कहलाती है, फिर गेहूं के आटे को महीन वस्त्र में छान कर (जिस को मैदा कहते हैं) माड़े, जितनी बड़ी बनाना हो उतनी बड़ी लोई काट कर पूरियां बेले, तिन में उन के योग्य गुली भर फिर हाथ से गोठ कढ़ाई में घी डाल उत्तम प्रकार से सेक ले।

अँदरसे—प्रथम ढाई सेर साठी वा कोदों के चावलों को तीन दिन तक पानी में भिगोवे, चौथे दिन मल कर साफ पानी से धोकर सुन्दर सफेद वस्त्र पर फैला कर हवा लगने दे, जब सरदी दूर होजावे तब ऊखली मूसल से कूटे, कूटते समय १ सेर खांड मिलादे पश्चात् थोड़ी देर तक एक बर्तन में रखदे फिर कढाई में घी डाल पुओं की भांति घी में छोड़ कर सेककर रख ले

नानखताई—मैदा के बराबर घी और बूरा लेकर और एक सेर के पीछे ३ माशा समुद्रफेन डाल बिना पानी के मांड आलू की बराबर छोटी छोटी गोल लोई बनावे, फिर उसके दो भाग बराबर करे फिर तीन ईंटें रखकर उस में पक्के कोयले सुलगावे और एक लोहे के तसले में कोयले सुलगावे फिर एक थाली में कागज बिछा उन टुकड़ों को थोड़ी २ दूर पर रख थाली को ईंटों के ऊपर रखदे, फिर उस तसला को जिसमें कोयले सुलग

रहे हैं ऊपर से रख दे, जब वह सिक जावे और खिल कर बादाम की रंगत आ जाय तब उतार ले, इसी भांति और भी सेंक ले।

सट्टक—लौंग, सोंठ, मिरच, पीपल इन को पीस कर दही में मिला कर मथै, फिर कपड़े में छान ले, ऊपर से अनारदाना और कपूर का चूर्ण बुरकावे इस का नाम प्रमोदक सट्टक है।

फेनी—स्वच्छ सफैद मेदा को मथ कर तेज़ घी में पकावे, फिर उसे खांड की चाशनी में डालता जाय, तब फेन के समान फेनी बनती है।

सोहन पपड़ी—सेर भर मैदा को आध सेर घी में मध्यम आंच से भून उतार ले और दो सेर शक्कर की चाशनी करे और जब चाशनी की गोली बने (दाँत से चबा कर देखे जब दांत में न चिपके तो उतार ले) और फिर उस चाशनी को तयी या परात में ठंडा करे फिर उस में मैदा डाल फुर्ती से मिला बेलन से बेल दे, इस प्रकार पपड़ी बनती है, इस से भी अधिक खस्ता बनाना हो तो अधिक घी डाले।

गुलाबजामन—सेर भर खोये में पाव भर कची मैदा मिला कर हाथ से फुलेंदा जमनी के बराबर गोल या लम्बी बना फिर स्वच्छ कढाई में घी डालकर सेके और उस चाशनी में जो जलेबी की भांति पहिले से तैयार कर लेनी चाहिये डालता जावे।

खुरमा अर्थात् बालूसाई—यह दो प्रकार की होती है एक सादी दूसरी दही की, जिसको दहीबड़ा भी कहते हैं। सादी-सेर भर मैदा को आध सेर घी में मांड़े और जिस क़दर पानी की ज़रूरत हो उतना पानी भी डाल ले और डेढ़ डेढ़ पैसे भर की लोई तोड़ गोल कर हथेली पर रख दूसरी हथेली से दबावे और बीच में अंगूठा से धीरे से दबा कढाई में मध्यम आग से सेके और जलेबी की भांति चाशनी में पाग ले। दूसरी प्रकार बनाने की रीति—सेर भर दही को कपड़े में बांध खूंटी में ६ या ७ घंटे तक टंगा रक्खे और पानी टपकने दे, फिर उसको कूंड़े में डाल मथे फिर जितनी उस में मैदा पड़ सके डाले और एक पैसा का सोडा खस्ता करने के लिये अवश्य डाल कर ऊपर की भांति बना ले।

रसभरी यानी रसगुल्ला—मूंग की पिट्ठी कर कूंडे में डाल अच्छे प्रकार घेपे और अगर रंगतदार बनाना चाहे तो सिंगरफ या केशर की रंगत दे, गुल्ला बना जलेबी की भांति चाशनी में पाग ले।

दन्दान—खांड की सोहनपपड़ी की भांति चाशनी बना एक परात में घी चुपड़ चाशनी को उसमें लौटे, इकट्ठी कर कालीमिरच डाल थोड़ी हवा लगा फौरन ही पट्टी की तरह लम्बी २ खींच ले।

पेठ की मिठाई—पक्का पुराना पेठा लेकर साफ छील टके २ भर की कतलियां कर पानी में डालता जावे फिर सोडा के पानी से चार बार खूब धो सूजा से गोद जलेबी से २१ चाशनी में पाग ले। और खुशबू के लिये केवड़ा डाले।

❀ मोहनभोग वा हलुआ ❀

यह सूजी, गँगाफल, गाजर, आम, मलाई, हल्दी, चोबचीन, सुपारी, छोहारा, केशर का बनता है।

सूजी—प्रथम सूजी रवे के बराबर कढ़ाई में घी डाल सूजी को खूब भूने, फिर सूजी से तिगुना खौलता हुआ गर्म पानी डाले वा इतना ही दूध ड्योढ़ा बूरा डाल अच्छे प्रकार चलावे और मेवा डाल उतार ले।

इसी को मोहनभोग वा सूजी का हलुवा कहते हैं। ऐसे ही मैदा का हलुवा बनता है। ध्यान रहे ज़रा मोटे आटे का अच्छा बनता है।

गंगाफल—इस को छील बीज निकाल टुकड़े कर उबाल ले, फिर काशीफल से दूनी मिश्री ले चाशनी कर उबले हुए को उस में डाल दे और कोंचे से पाव घंटे तक मिलावे और धीमी धीमी आंच से घोट हलुवा तैय्यार कर ले।

गाजर-मोटी मोटी गाजर लेकर उसको छील बीच से लकड़ी निकाल उबाल ले और घी में भून मीठा डाल खूब मिला उतार ले।

हलुआ आम का—मीठे आमों का रस ३ सेर, खांड १ सेर, घी आध सेर, दूध १ सेर, शहद पाव भर, बादाम की मींगी ४ तोला, सिंघाड़े का आटा ४ तोला, पहिले बादाम की मींगी और सिंघाड़े के आटे को घी में भून ले, फिर खांड शहद और दूध को कलई के बर्तन में पकावे, फिर सब वस्तुओं को डाल हलुआ बना ले।

मलाई का हलुवा—आधसेर कन्द पावभर मलाई में डालकर मन्द मन्द आंच पर धरे, फिर हिला २ पावभर घी गरम करके उसमें मिलावे, जब हलुआ बन जाय तब इलायची मेवा डाल चांदी के वर्क यथायोग्य

लगावे, यह हलुवा एक छटांक से आध पाव तक खांय तो बल बढ़े और वीर्य अधिक होवे।

बादाम—जितने बादामों का हलुवा बनाना हो उतनों को फोड़ रात्रि को पानी में भिगो दे, प्रातः पानी में से निकाल छील, सिल लोढ़ी से पिट्ठी की भाँति बांट कढ़ाई में डाल ऊपर से घी और चीनी डाल हलुवा बना ले।

हल्दी—एक भाग हल्दी, गेहूं का आटा, सफेद, कन्द, गाय का घी हर एक तीन भाग आटे और हल्दी को घी में भूने और कन्द की चाशनी बनाकर उसमें डाल दे, यह धातु को रोकता है।

चोबचीनी—सवा सेर गेहूं के आटे को आध सेर घी में भूने फिर दो सेर शहद में मिलाकर धीमी आंच दे और जब हलुवा की तरह बन जावे तब बादाम, पिश्ता, चिरौंजी इत्यादि हर एक चार२ तोला मिलावे, उसके पीछे चोबचीनी सत्रह तोला कूट कर मिलावे, फिर लौंग, छोटी इलायची, दालचीनी, नरकचूर, सौंफ, अजवायन, देशी इंद्रजौ, पीपल, कुलंजन, नागरमोथा प्रत्येक पांच तोला कूट छानकर मिलावे। यह शरीर को बलवान् और पुष्ट करता है।

सुपारी—कपूर साफ पौनेदो माशे, तज, पत्रज, नागकेशर, नागरमोथा पीपल, छोटी इलायची प्रत्येक साढ़े तीन माशे, तालीसपत्र, जावित्री, बंस-लोचन, सफेद चन्दन, कालीमिर्च प्रत्येक पौनेदो माशे, जायफल सातमाशे, जीरा सफेद चौदहमाशे, अरंडी की जड़, पुष्प नीलोफर, त्रिनाले की मींग, कमलगट्टे की मींग, लौंग, धनिया, पीपल की जड़ प्रत्येक चौदह माशे, सिंघाड़ा, शतावरि प्रत्येक पौने दो तोला, चिरौंजी बादाम की मींगी दो दो तोला, पिश्ता मिर्च छः छः तोला, दक्खिनी सुपारी चौदह तोला, इनमें जो दवा कूटने पीसने छानने की हो उनको कूट पीस छान और मेवा को सिल लोढ़े से पीस ले और प्रत्येक सुपारी के चार टुकड़े कर पांच सेर गाय या भैंस के दूधमें जोश दे कि वह सम्पूर्ण दूध को पी लेवे फिर उनको कूट छानकर पृथक् रख दे फिर मिश्री आध सेर शतावरि का शीरा एक सेर, गाय या भैंस का दूध चार सेर, सफेद चीनी तीन सेर इनको एक करके चाशनी बनावे फिर गाय के आध सेर घी में

पिसी हुई दवा और पिसी हुई सुपारियों को भून कर चाशनी में डालकर पकावे और फिर हलुवा की तरह बना ले।

छोहारा—आध सेर छोहारों की गुठली निकालले, फिर एक रात पानी में भिगोकर सवेरे निकाल उनको महीन कूटले और फिर एक सेर गेहूं के आटेको एक सेर गाय के घी में खूब भूनकर एक सेर मिश्री में पानी डाल छोहारा पकावे, फिर भुना हुआ आटा डालकर उतार ले, फिर उसमें पिश्ता बादाम चिरौंजी चिलगोज़ा मिला कर खावे।

केशर का हलुवा—गेहूं की आध सेर मैदाको आध सेर गाय के घी में भूने, फिर एक सेर मिश्री में दो सेर पानी, पाव भर शहद मिला कर पकावे, इसके पश्चात् उसमें मैदा को मिला कर हलुवा की भांति बना ले और फिर केशर तीन माशे, ख्यारैन, बादाम, पिश्ता, चिलगोज़ा, चिरौंजी दो २ तोला मिलावे।

मुरब्बा

यह आम, बादाम, कद्दू, गाजर, सेब, बिहा, अनन्नास, हड़ आंवला, अदरक, अखरोट, छुहारा, पेठा इत्यादिकों का बनता है।

आम का मुरब्बा—बेरेशा बड़ा और गूदेदार आम ले, इनको छील भीतर की गुठलियां निकाल क़लई की हुई बटलोई में चूने के पानी में उबाल ले. जब उबल जावें, तब उतार चूने का पानी फेंक दे और उन खांपों को स्वच्छ पानी से इतना धोवे कि चूने का अंश बिलकुल जाता रहे, फिर सफ़ेद कन्द की चाशनी कर उस में डाल दे। यह बलवान् करता तथा हाज़मे को बढ़ाता है।

बादाम—बादाम की मींग को शहद में उबाल तथा फिर चार दिन के बाद ताज़े शहद में उबाल इमरतबान में रख ले। यह खांसी और खरखराहट को दूर करता है।

कद्दू—ताज़े कद्दू को ले उबाल शहद की चाशनी में डालदो, यह हृदय और मसाने के लिये लाभकारी है।

गाजर—इनको छील नस निकाल कतले कर पानी में उबाल क़न्द की चाशनी कर उसमें डाल दे। यह पुष्ट तथा मीठे स्वर, खांशी और नज़ले के लिये हितकारी है।

सेव—इस को छील टुकड़े कर पानी में उबाल शहद या चीनी की चाशनी में डाल दो। यह हृदय और मस्तक को बलवान करता है।

बिही—उपरोक्त प्रकार से।

अन्ननास—इसके ऊपर और भीतर के भाग को बड़े लम्बे टुकड़े कर प्रथम भीतर के लम्बे २ टुकड़ों को क़लई की बटलोई में बिछा पुनः ऊपर के टुकड़ों को उनपर बिछा बटलोई का मुंह बन्द करदे और मुलायम आग से उबाले जब वह गल जावे तब उतार नस को साफ़ कर मिश्री की चाशनी में डालदे। यह दिल की धड़क को दूर कर दृढ़ करता है।

हड़—इसको हरी ले एक डेग में पानी डाल ग्यारह दिन तक भिगोवे और तीसरे दिन पानी बदलता रहे, बारहवें दिन निकाल थोड़ा उबाल, शहद की चाशनी में डाल दो। ऐसे ही आमले का मुरब्बा बनता है। ये दोनों मुरब्बे मस्तक और हृदय को ताक़त और पेट को नरम तथा बवासीर को लाभदायक हैं।

अदरक—इसको पानी में उबाल शक्कर की चाशनी में डाल दो। यह पेट के दर्द तथा मसाने के लिये लाभदायक है।

अखरोट—इसके छिलके को पृथक् कर गिरीको शक्कर की चाशनी में डाल ले। यह मेदे को ताक़त तथा वीर्य्य को बढ़ाता है।

छुहारा—इस को रात भर पानी में भिगो सवेरे निकाल शक्कर की चाशनी में मुरब्बा डाल ले यह वीर्य्य को बढ़ाता है।

पेठे का मुरब्बा—पक्का पेठा ले छील, भीतर का गूदा साफ़ कर चौकोर कतले कर पहिले पानी में थोड़ा उबाले फिर कन्द की चाशनी उसमें डाल दे, यह दिल मस्तक को बलवान् करता है।

❁ गुलकन्द ❁

यह २ प्रकार से बनता है, एक अग्नि से द्वितीय सूर्य्य की गर्मी से बनता है, इन दोनों में सूर्य्य की गर्मी से बना उत्तम होता है, उसी को हम लिखते हैं।

गुलाब का गुलकन्द गुलाब के फूल की पत्तियों को साफ़ करके सफ़ेद चीनी का बूरा मिलाकर दोनों हाथ से मले और जब पत्तियां सुकड़ जांय तब इमरतबान में डालकर उसको नित्यप्रति सूरज की धूप में रखदे, २ माह बराबर रखने से उत्तम गुलकन्द तैय्यार हो जाता है।

इसी तरह सेवती, बनफ़शा, गावजुबां, नीलोफर, ब्राह्मी के बनते हैं, जिनके लाभ निम्नलिखित हैं—

गुलाब का गुलकन्द—स्वास्थ्य, पाचनशक्ति को बढ़ाता है।

सेवती—हृदय मस्तक को बलवान् करता है।

बनफ़शा—पाचनशक्ति को बढ़ाता है।

गावजुबां—प्यास को कम करता है।

फूल कफूल—शीतल है और मस्तक की प्रत्येक प्रकार की गर्मी को लाभदायक है।

ब्राह्मी—गरम है, स्मरणशक्ति तथा बल को बढ़ाती है।

नमकीन

सेव—अच्छे चनों की उत्तम दाल को महीन पीस बेसन के अनुसार लाहौरी निमक अजवायन मिरच पीसकर डाले और उसको कड़ा माड़ कढ़ाई में घी चढ़ा मध्यम आग में पेच या चलनी द्वारा सेव झाड़ कर सेक ले।

मूँग की दाल वा चने की दाल—जितनी दाल बनानी हो उसको बीनकर रात में भिगो दे, फिर सुबह मलकर चार पानियों से स्वच्छ धो कपड़े से पोंछ अर्थात् पानी को सुखा घी में तल ले। फिर दाल के अनुसार निमक मिला ले। ऐसे ही चने, मसूर, और मौठी बनती है।

सेम—सेर भर मैदा को पाव भर घी में आधी छटांक अजवायन को साफ़ कर मिला आटे को माड़ ले और रोटी की बराबर पटे पर बेल चौपरता कर लम्बी लम्बी चाकू से काट घी में मध्यम आग में सेक ले, मठरी बनाना हो तो बालूसाई की भाँति बना ले। और इसी भाँति सक्लपारे बना ले, बेलने में मोटे रक्खे और चौकोर काट उपरोक्त प्रकार से भून ले।

समोसे वा तिकोने—ये कई प्रकार से बनते हैं आलू के और दाल (कूर) के। प्रथम मैदा को ले मोयन डाल माड़ ले फिर छोटी लोई ले पटे बेलन से गोल बेल उसके दो सम भाग कर ले, फिर कूट भर हाथ से गोंठ कर अलग रख दे और जब सब बुठ जाय फिर कढ़ाई में घी डाल कर अच्छे प्रकार उलट पुलट सेंक ले।

कूर बनाने की रीति—प्रथम आलू को उबाल छील उसमें निमक, गरममसाला, अमचुर डाल अच्छे प्रकार पीस एक या दो दिन सुखा कर

कार्य में लावे। द्वितीय—तली मूँग की दाल को पीस मसाला डाल कर काम में लाओ। तृतीय—झरबेरी के बेरों का छिलका उतार गूदा निकाल सुखा कर पीस ले और उसमें बूरा मिला कर कूर बना ले।

मेवा के दहीबरे—उरद की उत्तम धुली दाल जिसमें साधारण मसाला डाल कर अच्छे प्रकार पीस ले और एक गीले कपड़े को एक स्वच्छ तख्ते या चकले पर बिछा थोड़ी सी पिट्ठी की लोई ले उसको गोल कर उस कपड़े पर रख हाथ से पानी लगा गोल गोल चौड़ावे और उसपर भुना सफ़ेद जीरा गरममसाला एक कालीमिरच एक धुली हुई किशमिश कतरा हुआ पिस्ता छिला और कतरा गोला, बादाम, चिरौंजी को रखकर एक दूसरी चौड़ाई हुई लोई को कपड़े पर से उठा उसके किनारे मिला दे और फिर इसी भांति बना बना कर और कढ़ाई में सेक सेक कर पानी में डालता जावे, फिर उत्तम दही को मथ, छान जिसमें पिसा हुआ निमक, कालीमिरच, भुना हुआ सफ़ेद जीरा पड़ा हो पानी से निकाल कर डालता जाय।

कचरी—यह कार्तिक के महीने में होती है, जब यह अधपकी हो तो मोल ले उनको छील उन्हीं के अनुसार मट्ठा ले और उसमें निमक डाल कचरियों को ५-६ दिन तक भीगने दे, फिर निकाल धूप में सुखा कतले कर रख छोड़े, जब आवश्यकता हो घी में तल ऊपर से निमक मिरच डाल खावे।

टेंटी—यह जेठ के महीने में होती है, इनको एक मिट्टी के बर्तन में पानी भर कम से कम १० दिन भीगने दे, तीसरे दिन पानी बदलता रहे, फिर निकाल धूप में सुखा रख छोड़े और कचरी की भांति भून खावे।

पकौड़ी—यह बेसन, मूँग और उड़द की बनती है, बेसन की बनाने की यह रीति है कि प्रथम महीन बेसन को ले उसमें निमक, मिरच, अजवायन उसी के अनुकूल डाल खूब फेंटे और फिर हाथ से घी की कढ़ाई में पकौड़ी तोड़ तोड़ अच्छे प्रकार सेक ले, इसी भांति मूँग उड़द इत्यादि की बनती है।

मूली की उत्तम पकौड़ी—प्रथम इसके कतले को उबाल सिलबट्टे से खूब महीन पीसे और खिले चनों का आटा पिसा हुआ और निमक, गरममसाला मिलावे, फिर छोटे छोटे आल के बराबर गोले बना कर

धीमी धीमी आंच से घी में सेक ले, इसीभांति बथुए के साग को उबाल कर पीस उसमें उपरोक्त वस्तु डाल गोले बना सेक ले, ये दोनों बड़ी स्वादिष्ट पकौड़ियां होती हैं।

ऐसी ही बैंगन की पकौड़ी बनती हैं। बैंगन की पकौड़ी, केवल निमक मिरच डाल बेसन फेंट सेक ले। अरवी रतालू के पत्तों को पकौड़ी बनाना हो वो इनका फेन गाढ़ा रहता है और बेसन में पत्तों को लपेट डोरे से बांध घी में पूरी की भांति उतारी जाती हैं। इसी भाँति काशी-फल के फूल वा केलेकी फली को भर बना ले। इसके अतिरिक्त सोआ, पालक, पान, पोई, केले के नरम पत्तों पर बेसन लपेट कर बनाते हैं। ये भी खाने में स्वादिष्ट होती हैं।

बड़े—यह मूंग और उड़द दोनोंकी पिट्ठी के बनते हैं, पहिले जिसके करने हों उसकी पिट्ठी बना घी में पूरी की भांति सेक ले।

दही—गाय या भैंस का दूध लेकर उसमें अधपई सेर का पानी डाल औटावे इस प्रकार कि मलाई न पड़ने पावे और जब आधपाव सेर दूध पानी में से आधपाव कम सेर रहजावे तब उतार कर यदि जाड़े की ऋतु हो तो कुछ गर्म दूध में निचुड़े हुए दही का जामन दे अर्थात् अच्छे प्रकार घोल दे और भूभल उसके नीचे रखकर ढक दे और यदि गर्मी हो तो औटे हुए दूध को ठण्डा कर जामन दे ठण्डे स्थान में रख दे यदि किसी कारण से दही न जमे तो ढाक का पत्ता वा कलदार रुपया डाल दे एक या दो घण्टे में अवश्य जम जावेगा।

रायता—यह अनेक प्रकार से बनता है इसमें बूंदी, आलू, लौकी, ककड़ी, केला, गाजर कद्दू इत्यादि डालते हैं, इसमें सबसे उत्तम बूंदी का रायता होता है, बूंदी बनानेकी रीति प्रथम लिखचुके हैं. जब रायता बनाना हो तो कढाई से बूंदी को निकाल पानी में डालता जाय, रायता उत्तम बनाने के लिये दही अच्छा मीठा होना चाहिये जिसको छानने के समय पानी डाल कर बहुत पतला न करे, फिर उसमें निमक पिसा हुआ और अन्य मसाले पिसे हुए मिले हों और जिस बर्त्तन में रायता रक्खा जाय उसको प्रथम से धो सुखा फिर घी हींग का बघार देकर छने हुए दही को भर बूंदी पानी में से निकाल पोले हाथों से निचोड़ डाल दे।

अचार

आम का अचार—गदर गदर आमों को लेकर प्रथम पानीमें डाल अच्छे प्रकार धोकर स्वच्छ कर चाकू से चौफँका करे, परन्तु फांकें उसकी पृथक् पृथक् न होने पावें अर्थात् जुड़ी रहें, कोई कोई आधी वा सारी गुठली भी उनकी निकाल डालते हैं फिर उन में मसाला तेल में भोकर भरे, मसाला एक सेर के लिये छटांक भर मेथी और आधी छटांक पिसी हल्दी, छटांक भर सौंफ और धनियां, आधी छटांक लाल मिरच, छटांक भर कच्चे चने, आधपाव निमक इन सबको कूट आमों में भर भर कर किसी चिकने घड़े में जिसका मुँह सकरा हो रखता जावे फिर उस घड़े को चार पांच दिन धूप और ओस में सुखा कर पीछे अच्छा कड़वा तेल जिसमें अन्य प्रकार का तेल न मिला हो दो चार अंगुल ऊंचा भर दे जिससे फफूंदन न आने पावे अथवा गर्म पानी डाल के तेल भर दे।

बिना तेल का अचार—ढाई सेर आमों को चौफंका करे जिसकी फांकें पृथक् होजावें और उनको अच्छे प्रकार धोकर स्वच्छ कर घड़े में भर दे, फिर उसमें काला व सेंधा निमक छटांक छटांक भर, खारी ६ छटांक, साम्हर डेढ़ पाव, कांच का निमक आधी छटांक इनको पीस बुरका कर धूप में रख दे। और नित्य प्रति हिला दिया करे।

अदरक—इसको छील पतले और लम्बे कतले कर उनमें अजवायन निमक नींबू का रस डाल रखदे। यह १० दिन में खाने योग्य हो जाता है।

हड़ का अचार—१ सेर बड़ी बड़ी और मोटी हड़ ले पत्थर वा काठ के बासनमें चारअंगुल ऊपर तक नींबू का रस भर ७ दिनतक भीगने दे, ८ वें दिन निकाल उसमें काली मिरच, सोंठ, पीपल सौंफ, धनियां, फूला सुहागा १ तोला, हींग छः माशे, भुनाहुआ जीरा ६ तोले, १५ तोले निमक, १४ तोले पोदीना, दालचीनी छः तोले, पत्रज तीन तोले, बड़ी इलायची के दाने छः तोले नींबू के रस में वा चूक में सानकर भर दे और वह नींबू का पानी जिसमें हड़ भिगोई थीं डाल दे। यह बड़ी पाचक होती है।

आक के पत्तों का अचार आक के अधपके अर्थात् कुछ पीले और कुछ हरे ले पत्ते खौलते पानी में डाल थोड़ी देर तक ढके रक्खे, फिर निकाल कपड़े से पोंछ फरेरे कर सौंफ, सोंठ, धनिया बारह बारह भाग

बड़ी इलायची ५ भाग, छोटी इलायची, काला जीरा, लौंग एक २ भाग पोदीना, सफेद भुना जीरा दो दो भाग, दालचीनी ६ भाग, काली मिरच, ८ भाग, पीपल ३ भाग, जावित्री ६ तथा जायफल ४॥ भाग, और निमक ६० भाग लेकर दरदरा पीस पत्तों के ऊपर नीचे अच्छी तरह बुरक अचारी में भरकर रखदे, जब मन चाहे तब खावे।

नींबू—जब पांच सेर नींबू हों तो उनमें से आधों का रस निकाल उनमें एक सेर निमक और आधपाव लौंग का चूरा अर्क में डाले, फिर आधे नींबुओं को चोफंका करके डाल दे।

दूसरी रीति—कागज़ी नींबू लेकर चौफंका करले जिसकी फाँके जुड़ी हुई रहें, फिर उसमें सोंठ, पीपल, मिरच, बड़ी इलायची, सैंधा और काला निमक एक २ छटांक, धनिया, आधपाव, जीरा आधी छटांक, लौंग एक तोला, काला ज़ीरा डेढ़ तोला, कच्चा सुहागा १ पाव, छोटी इलायची ६ माशे, जवाखार पाव छटांक, सांभर तीन छटांक को कूट महीन कर भर कर रख दे।

मीठे नींबू—चौफँका कर १ सेर पीछे पावभर गुड़, पावभर निमक डाल दे और नित्य उछाल कर धूप में रख दिया करे।

अचार नमक—प्रथम सौ नींबू का अर्क निकालकर बुझावे फिर उसको छान कर उसमें २॥ सेर खाण्ड और आध सेर सांभर की डलियां और पाव भर काली मिरच, आध पाव इलायची इन सबको पीस अमृतबान् में डाल दे, एक महिने पश्चात् खावे।

अचार टेंटी—इसमें पानी भर आठ दश दिन तक धूप में रख दे, जब खूब वास आने लगे अर्थात् उठ आवे तब तीन चार बार स्वच्छ जल से धो डाले इसके उपरान्त हल्दी, लाल मिरच, मकरारगाई पीस कर डाले।

गाजर—मोटी २ लेकर ऊपर से छील डाले और फांकें कर थोड़ा सा उबालले, फिर टेंटी का सा मसाला डालदे, दो चार दिनमें उठ आवेंगी।

अरवी और आलू—इनका अचार गाजर के समान होता है और

लहसोड़े—के अचार बनाने में इतना ही अन्तर है कि ये छीले नहीं जाते टोपी उतार और गुठली निकाल उबालले और उपरोक्त मसाला डाल दे। *

* नोट—आम के अतिरिक्त सब अचार १० या १५ दिन से अधिक नहीं ठहरते इसलिये ये तेल पानी के अचार कहलाते हैं, अगर इनको बहुत दिन रखना हो तो तेल में डाल दे अथवा चार अंगुल ऊपर अच्छा तेल भर दे।

चटनी

चटनी बादाम—कद्दू और बादाम की गिरी पृथक् २ साढ़े सत्रह माशे और बबूल का गोंद, कतीरा, मौरेठी का सत यह तीन २ तोला और कन्द सफेद ५ तोला ले पीस कर उस में इतना शहद मिलावे कि पतली रहे या कन्द की चाशनी कर मिलाले, यह गले की खरखराहट और खांसी को दूर करती है।

चटनी गोंद पिश्ता—मुरमुकी, केशर सत्रह माशा, काली मिरच, चीनी नशास्ता, सोसन की जड़, अजवाइन, सलारस प्रत्येक दो तोला, दस माशा, सोसन की शाख, बबूल का गोंद प्रत्येक ६ तोला, मीठी बादाम कड़वी बादाम प्रत्येक पन्द्रह तोला, अलसी भुनी हुई मुनक्का हरएक आधसेर सबको बारीक पीस शहद में मिलावे, यह गले की खरखराहट पीव खून और कफ थूकने को लाभदायक है।

चटनी अलसी—भुनी हु अलसी, बादाम की मींगी प्रत्येक पन्द्रह माशे कतीरा, मौरेठी चिलगोजे की मींगी, नशास्ता, गोंद बबूल सात माशे ले इनको कूट कर अंगूर के पानी में उसको पका ले जब तीन भाग में एक भाग रहजावे तब उतार ले और मीठा डाल ले।

चटनी बनफशा—बनफशा ३ तोला, सकमुनिया भुना हुआ, मौरेठी, कतीरा, निशस्ता प्रत्येक ३ माशे कूट कर दस तोला शहद में बनावे यह खांसी को दूर करती है।

चटनी खशखास—केशर एक माशा, मौरैठी का सत, निशास्ता प्रत्येक छः माशा गुलाब के फूल, बबूल का गोंद प्रत्येक एक तोला बंशलोचन एक तोला खशखास सफेद महीन पिसा हुआ एक तोला ले और दस तोले शहद में तैयार करे। यह छाती और फेफड़े की प्रत्येक बीमारी को लाभदायक है।

चटनी गोंद बबूल—बबूल के गोंद को पानी में डाल कर साफ करो इसके पश्चात् बादाम के तैल में पकावे, जब गाढ़ा होजाय तो उतार ले, यह सूखी खांसी को दूर करती है।

चटनी छोहारा—जावित्री, केशर, इलायची छोटी प्रत्येक छः माशा, जायफल तीन माशा, लौंग, पीपल, चीता, दारचीनी, पिश्ते के फुल, सुपारी

के फल प्रत्येक एक तोला, छोहारा, नारियल हर एक २० तोला, बादाम मींगी गाय का घी प्रत्येक आध पाव, कस्तूरी तीन माशे, चांदी के वक २० इन को कूट तीन पाव शहद में मिलावे, इसको बच्चा पैदा होने के बाद औरत को खिलावे तो रहम की बीमारी जावे।

नमकीन आम की चटनी—एक सेर आम को छीलकर गदा उतार ले और उसमें साम्हर छटांक भर, अदरक, लौंग दो दो माशे, लाल मिरच, काली मिरच, धनिया एक एक तोला, जायफल, जावित्री, दारचीनी ३ माशे, पोदीना सूखा एक तोला और एक छटांक नीबू का रस डाल खूब बारीक पीस ले और अमृतबान में भर कर रख दे।

मीठी चटनी—एक सेर आम को छील कर उसका गूदा उतार ले और सेंधा नमक भर धनिया एक तोला, बड़ी इलायची ६ माशे, लौंग, जायफल, जावित्री, दारचीनी एक २ माशे, पोदीना डेढ़ तोला, आधी छटांक अदरक को लेकर महीन पीस ले और बादाम की मींगी एक तोला पिश्ता ६ माशे, किशमिश आध पाव धोकर घी में भून ले और आध सेर खाण्ड की चाशनी कर आध पाव छोहारे शहत सब को खूब मिलावे और फिर उतार कर किसी अमृतबान में रख दे।

दूसरा प्रकार—आम का कच्चा गूदा सात सेर, चीनी ७ सेर, सिरका अंगूर का दो बोतल, लालमिरच तीन छटांक, बादाम की गिरी १ पाव, धनियां एक पाव, किशमिश तीन पाव, अदरक डेढ़ पाव, इन सबको ले। यह चटनी दो प्रकार से बनती है—एक में आम के कतले रहते हैं, दूसरे में आम को पीस लुग्दी की जाती है। पहिले आम को छील महीन कतर सिलपर पीस ले फिर मिरच, धनिया, अदरक, को सिरका के रस में पीस ले, बादाम को महीन कतर ले, फिर सब चीज़ों को क़लई के बरतन में भर चूल्हे पर रख धीमी २ आंच देकर पकावे और कलछी से चलाता जावे, जब जाने कि खूब पक गई और महक आने लगी तो उतार कर कांच के बर्तन में रख ले. यह चटनी अति स्वादिष्ट होती है।

चटनी गोखरू—हरे गोखरू लेकर इतने पानी में डाले कि वह तैरने लगें फिर उनको पका पानी निचोड़ शहत मिला ले।

वैद्यक विद्या

इस विद्या का स्त्री पुरुषों को जानना परम आवश्यक है, परन्तु ब्रह्मचर्य की मर्यादा नष्ट कर देने से पुरुष ही किसी विद्या के पूर्ण विद्वान् नहीं होते और स्त्रियों के लिये तो उन्होंने विद्या पढ़ने का अधिकार ही नहीं रक्खा इस कारण गृहस्थाश्रम में बच्चों के बीमार होने और गृह के अन्य स्त्री पुरुषों के रोगी होने के समय बड़े २ क्लेश उठाने पड़ते हैं इस लिये हम चरक, सुश्रुत, वाग्भट्टादि ग्रन्थों से कुछ उपयोगी विषय लिख बालचिकित्सा के पश्चात् कुछ आवश्यक २ बातों का भी वर्णन करते हैं जिससे आशा है कि बहुत कुछ लाभ होगा।

❁ पथ्यापथ्य विचार ❁

प्रिय सभ्य पुरुषों और देवियो! संसार में प्रत्येक वस्तु को नियमित-रूपेण कार्य लाने से वे सब ही सुखद होती हैं और विपरीत दुःख के देने वाली। इसी भांति हमारा शरीररूपी इञ्जन है—यदि इसकी भले प्रकार पथ्यापथ्यरूपी महोषधि से सर्वथा रक्षा की जाती है तब तो मनुष्य देह धारण करके अलभ्य सभी सुखों का अनुभव कर सकते है, क्योंकि मनुष्य के स्वास्थ्य-सुधार के लिये पथ्य से सरल, अल्पव्यय, अनमोल एवं अपने स्वाधीन कोई और उपाय अभी तक दृष्टिगोचर नहीं हुआ। केवल पथ्य सेवन करने से ही बड़ी २ विशूचिकादि बीमारी भी पास नही फटकतीं, रोगार्त जन भी पथ्यसेवन से शीघ्र आरोग्य लाभ करते हैं तभी तो सौ औषधियों की एक मूल औषधि पथ्य बतलाया गया है। परन्तु शोक के साथ कहना पड़ता है कि आजकल हमारे शिक्षित भाई भी इस ओर विशेषरूप से ध्यान नहीं देते! फिर मूर्खा बहिनों की तो कथा ही क्या! जिसके कारण नित्य वैद्य जी के द्वार पर खड़ा रहना पड़ता है, नित्यप्रति डाक्टर साहब की फ़ीस देने, औषधियां मोल लेने से अपनी आयु का बड़ा भाग खर्च किया जाता है तिस पर भी स्वास्थता का चिन्ह भी नही देख पड़ता, क्योंकि रोगों का मूल कारण कुपथ्य खान पान रहन सहन अर्थात् आहार विहार ही है, इस लिये कुपथ्य आहार विहार करनेवालों को अच्छी गुणदायक औषधियों के सेवन से लाभ की आशा सर्वथा छोड़ देनी चाहिये। अहो! अभागे भारत की कुपथ्यता से ही बढ़ी हुई मृत्यु संख्या

को देख कर भी हमको पथ्य सेवन करने की अभिलाषा नहीं! यही नहीं, किन्तु भारत की गृहिणी रोगी को बलात्कार लुका छिपा कर कुछ न कुछ खिला पिला अपथ्य करा बैठती हैं, तिसपर तुर्रा यह है कि चिकित्सक से भी छिपाती हैं! परन्तु कुपथ्य कभी छिपता नहीं, लेकिन देर में प्रकट होने से उस काल तक रोग की खूब वृद्धि होती जाती है, चिकित्सक महाशय कुपथ्य को न जान ठीक उसका प्रतीकार करने में असमर्थ होते हैं। बस आखिरी परिणाम यह होता है कि रोगी यमपुर का मार्ग देखता है!! इसलिये प्रिय सज्जन पुरुषो, एवं गृहणियो! यदि आप अपने शरीर को स्वस्थ सबल रखना चाहते हैं, यदि युवावस्था में बुढ़ापे की झलक देखना नहीं चाहते तो आपको पथ्य सेवन करना उचित है। प्यारी महिलाओ! तुम्हरी रोगी की सब से बड़ी सेवा सुश्रुषा यही है कि उसको कुपथ्य आहार विहार से बचाये रहो, कदाचित् कोई अपथ्य हो जावे तो तुरन्त वैद्य, डाक्टर से कह दो क्योंकि जितनी जल्दी कुपथ्य की सूचना मिलेगी उतना ही शीघ्र रोगी का कल्याण होगा, एवं निरोग जन भी बलवान् और हृष्ट पुष्ट बने रहेंगे।

❀ औषधि-विचार ❀

औषधि नवीन उत्तम होती है परन्तु वायबिड़ङ्ग, पीपल, धनिया, गुड़, शहत, घी, यह पुराने ही लेना योग्य हैं, अडूसा, कायला, गुड़चवेल, शतावरि, असगन्ध, खरैटी, बड़ी सौंफ यह गीली ही लेना चाहिये और गीली को सूखी के प्रमाण से दूनी लेनी चाहिये।

❀ औषधि-सेवन का समय ❀

औषधि-सेवन के पाँच समय हैं—प्रथम सूर्य उदय। २—दिन को भोजन के समय। ३—सायंकाल के भोजन के समय। ४—बारम्बार। ५—रात्रि में परन्तु विशेष कर प्रातःकाल औषधि सेवन करना बहुत उत्तम है।

(१) पित्त अथवा कफ़ के कोप में और पित्त पर विरेचन के लिये कफ़ में वमन के लिये वात आदि दोष कम करने के लिये रोगी को बिना भोजन किये प्रातःकाल औषधि देना चाहिये। (२) गुदा सम्बन्धी रोगों में भोजन करने से कुछ समय प्रथम। (३) अरुचि रोग में उत्तमोत्तम चाटने और फाँकनेवाले पदार्थों के साथ औषधि देना चाहिये। (४) जो नाभि का

वायु बिगड़ा हो तो अग्नि को तेज करनेवाली औषधि भोजन पदार्थ में मिला कर देना चाहिये। (५) यदि सम्पूर्ण शरीर का वायु बिगड़ा हो तो भोजन करने के पीछे औषधि देनी चाहिये। (६) वायु और कफ के रोग में भोजन के आदि और अन्त दोनों में देना चाहिये। (७) उदान के बिगड़ने में तो सायंकाल के भोजन के समय घी आदि पदार्थों में मिला कर एक एक ग्रास के साथ देना चाहिये। (८) जब प्राणवायु का कोप हो तब विशेष कर सायंकाल के भोजन करने के पीछे। (९) वमन, हिचकी, श्वास और विष दोष में अन्न सहित वा अन्नरहित देना चाहिये (१०) वात के वेग को कम करने के लिये रात्रि के समय पाचन अन्नरहित देना चाहिये।

● स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम, फांठ आदि की विधि ❋

स्वरस—जो बनस्पति अग्नि तथा कीट आदि से दूषित न हुई हो उसको जगल से लाकर तत्काल उत्तम पत्थर के टुकड़े पर पीस वस्त्र से निचोड़ कर रस निकाल लो उसको स्वरस कहते हैं। दूसरे चार पल सूखी औषधियों को कूट कर मिट्टी के पात्र में आठ पल जल के साथ भिगो कर छान लो। तीसरे सूखी औषधि से अठगुने जल को मिट्टी के पात्र में भिगो कर औटावे जब चौथाई शेष रह जावे तो छान ले, यह तीसरे प्रकार का स्वरस है। हां इतना भेद है प्रथम स्वरस की मात्रा दो तोले और दूसरे और तीसरे की चार तोला देना चाहिये।

कल्क—गीली औषधि को चटनी के समान बारीक पीसे तथा सूखी को जल डाल कर पीसने को कल्क कहते हैं।

इसकी मात्रा एक तोले भर कही है। यदि कल्क में शहत, घी, तेल मिलाना हो तो मात्रा से दूना और शक्कर गुड़ मिलाना हो तो समान और दूध और जलादि गीले पदार्थ मिलाना हों ता मात्रा से चौगुना।

क्वाथ--चार तोल औषधि को कुचल कर उससे सोलह गुणा पानी ले मिट्टी के बर्तन में डाल हौले २ आंच देवे, जब वह औटते औटते आठवां भाग रहजावे ता मिट्टी के पात्र में छान लवे इसे क्वाथ कहते हैं, इसकी मात्रा उत्तम ४ तोले की होती है आर निकृष्ट दो तोल।

हिम—चार तोला औषधि को कूट कर चाबीस तोले पानी के साथ

मिट्टी के पात्र में रात भर भिगो कर प्रातः उसको छान ले इसको हिम कहते हैं, इसकी मात्रा एक तोला है।

फांट—चार तोला औषधि को कूट कर पाव भर जल के साथ मिट्टी के पात्र में डाल कर आंच देवे, जब वह औटने लगे तब कुछ काल के पीछे उतार कर छान ले, इसी को फांट कहते हैं, इसकी मात्रा ८ तोले तक है।

चूर्ण—सब सूखी औषधियों को पीस कर कपड़े में छान ले, उसीको चूर्ण कहते हैं, इसकी मात्रा एक तोला। यदि इसमें गुड़ मिलाना हो तो समान, मिश्री दूनी, हींग अनुमान से, शहत दूना, दूध, गोमूत्र, जलादि चौगुनी और नींबू आदि का पुट देना हो तो उसके रस में अच्छे प्रकार भिगोओ।

अवलेह—औषधियों के काढ़े को औटते औटते जब वह चटनी की भाँति चाटने के योग्य होजावे तब उतार ले, उसी को अवलेह चटनी कहते हैं। इस की मात्रा एक पल यदि गुड़ मिलाना हो तो दुगना, शक्कर चौगुनी, इसी भांति दूध, गोमूत्र जल आदि भी।

गुटिका—शक्कर आदि की चाशनीकर अथवा बिना चाशनीके अथवा जल दूध और शहत में मिलाकर गोली बांध ले, इसी को गुटिका कहते हैं।

घृत, तैल—जिन पदार्थों का घी वा तैल बनाना हो तो प्रथम कल्क बनाना उससे चौगुना घी वा तैल डाल कढ़ाई वा मिट्टी के पात्र में आंच दे, जब घी और तैल ही रहजावे तब उतार कर छानले, इसकी मात्रा एक पलहै।

क्षीर पाक—औषधि से आठगुणा दूध और चौगुना जल इन तीनों को एक में मिला कर आंच दे, जब पानी जल कर दूध रह जावे तब उतार ले, इसको क्षीर पाक कहते हैं।

उष्णोदक—एक सेर पानी को आग पर चढ़ावे, जब गरम हो जावे अथवा आधा चौथाई रहजावे तब उतार ले।

❀ औषधि दीपन-पाचनादि विचार ❀

दीपन पाचन—जो औषधि आपको न पचावे और अग्नि को प्रदीप्त करे उसको दीपन कहते है, जैसे सौंफ जो आप पचावे और अग्नि को प्रदीप्त न करे उसको पाचन कहते हैं, जैसे नागकेशर। और जो आंव को पचावे और अग्नि तेज करे उसको दीपन पाचन कहते हैं, जैसे चित्रक।

संशमन जो औषधि वात आदि दोषों को दूषित न करे और न उनको शोधन करे अर्थात् पूर्व दशा ही पर स्थित रक्खे और शरीर के बिगड़े हुए दोषों को ठीक करे, उसको संशमन कहते हैं, जैसे गिलोय आदि।

स्रंसन—जो औषधि कोठे की वात आदि दोष तथा मल मूत्र को गुदा द्वारा निकाल देवे उसको स्रंसन कहते हैं।

रेचक—जो औषधि पचे वा अनपचे अन्नादि को तथा वात आदि दोषों को पतला कर निकाल देवे उसको रेचक कहते हैं, जैसे निसोत।

वमन—जो औषधि बिना पचे हुये वात तथा पित्त को बलपूर्वक मुख द्वारा निकाल देवे, उसको वमन कहते हैं, जैसे मैनफल।

संशोधन—जो औषधि अपने स्थान में वातादि दोष तथा मल सञ्चय को ऊपर को खींच कर मुख, कान आदि अथवा गुदा वा मूत्र द्वारा निकाल दे उसे संशोधन कहते हैं, जैसे देवदार।

छेदन—जो औषधि रस और धातु तथा वातादि को अपनी प्रबलता से छिन्न भिन्न कर दे उसको छेदन कहते हैं, जैसे मिरच, पीपर।

लेखन—जो औषधि रस धातु तथा वातादि का अथवा वमन का शोषण कर पतला कर देती है उसको लेखन कहते हैं, जैसे वच।

ग्राही—जो औषधियां जठराग्नि को चैतन्य करें और आम आदि को पचावें उनको ग्राही कहते हैं, जैसे सोंठ।

स्तम्भन—जो औषधि रूखेपन, शीतलता, कटुता, हलकापन और पाचन इन गुणों से वात उत्पन्न करनेवाली है उसको स्तम्भन कहते हैं, जैसे नागरमोथा।

रसायन—जो औषधि शरीर में बुढापे और रोगों को दूर करनेवाली हो वह रसायन कहाती है जैसे शतावर-दूध।

धातुवर्द्धनी—जो औषधि धातु को बढ़ाती है उसको धातुवर्द्धनी कहते हैं, जैसे मूसली।

धातु चैतन्य—जो धातु को चैतन्य और उत्पन्न करती है, जैसे दूध, आंवला, उड़द।

बाजीकरण—मनुष्य जो द्रव्य घोड़े के समान सामर्थ दे, श्रेष्ठ वैद्यों ने उसे बाजीकरण कहा है, लोलम्बराज ने कहा है कि सुन्दरता और पुष्ट

बल वीर्य्य इनके बढ़ानेवाले रसायन, जरा व्याध नाशक औषधियां पृथिवी पर बहुत हैं, परन्तु घी और मिश्री मिले हुए दूध से बढ़ कर दूसरा कोई प्रयोग इस विषय में नहीं है।

(१) हड़, बहेड़ा और आंवला को त्रिफला कहते हैं यह रसायनों में उत्तम रसायन है। (२) सोंठ, मिरच, पीपल को त्रिकुटा कहते हैं। (३) चव्य, चीता, सोंठ, पीपल और पीपलामूल इनको पंचकोल कहते हैं। (४) बड़ी कटेहली, शालपर्णी प्रष्टिपर्णी और गोखरू को लघु पञ्चमूल कहते हैं, । (५) शतावरि, वीरा, महाशतावरि, जीवंती जीवक और ऋषभक चौथा पञ्चमूल होता है। (६) डाभ, काश, ईख, शर और चावल की जड़ इनको तृण संज्ञक पंचमूल कहते हैं।

❋ देश और प्रकृति विचार ❋

(१) जहां नदी नाले, झील, दलदल, छोटे वृक्ष वन अधिक हों वहां की प्रकृति बादी, कफ कारक और शीतल होती है । (२) जहां सूखे रेतीले मैदान वा जंगल हों उसको जंगल देश जानना, उसकी प्रकृति गरम, पाचक और पित्तकारक होती है। (३) जहां उपरोक्त दोनों प्रकार के लक्षणयुक्त देश हों वहां प्रकृति भी मिली हुई जानना।

❋ प्रकृति विचार ❋

(१) जो मनुष्य दुबला और रूखा और जिसके बाल कड़े हों और बहुत बोलता हो उसे बात प्रकृति जानना चाहिये। (२) जो पतला हो रूखा न हो, क्रोधी हो, पाचनशक्ति अधिक हो, जिसके बाल बुढ़ापे से प्रथम श्वेत हो गए हों उसको पित्त प्रकृति जानना । (३) जो मनुष्य मोटा हो गम्भीर हो, उसके बाल नरम हों कम बोलता हो, कम सोता हो, स्थिर बुद्धि हो उसको कफ प्रकृति जानना चाहिये। (४) बात प्रकृतिवाले पुरुष को रूखा ठण्डा, बादी भोजन हानिकारक है, गरम तर पदार्थ लाभदायक हैं। (५) पित्त प्रकृति को पतला, शीतल, तर भोजन गुणकारी है, कड़ा गर्म चरपरा हानिकारक है। (६) कफ प्रकृति को श्रम, रूक्ष, चरम आहार, शोषण वस्तु गुणदायक हैं और पतला चिकना वा बहुत ठण्डा वा गरिष्ट दुःखदायी है।

❀ अवस्था विचार ❀

(१) बाल्यावस्था में पित्त अधिक होता है फिर ज्यों ज्यों अवस्था बढ़ती है त्यों त्यों कफ वायु की वृद्धि होती है। (२ तरुण अवस्था में कफ और वृद्धावस्था में वायु की अधिकता होती है, इसी से बालकों की जठराग्नि प्रबल होती है, अनेक प्रकार का भोजन किया हुआ पच जाता है। युवावस्था में बल पराक्रम अधिक होता है।

वृद्धावस्था—इस अवस्था में वायु की अधिकता से अच्छा भोजन मिलने पर भी धातु उपधातु सब शोषण हो जाते हैं और वायु वेग से जठराग्नि विषम हो जाती है।

❀ वैद्य ❀

जिसने केवल पुस्तकें पढ़ी हों और क्रिया कुशल नहीं, जैसा संग्राम को देख कर कायर डरता है उसी प्रकार रोगी को देखकर वैद्य डरने लग जाता है। इसी भांति जिसने वैद्यों के साथ रहकर अथवा देख कर क्रिया को सीख लिया है, योग्य वैद्य से वैद्यक ग्रन्थोंको नहीं पढ़ा, ऐसे ऐसे मूर्ख वैद्यों की औषधि अमृत के समान होने पर भी विष के तुल्य न खाना चाहिये। इस लिये जिस वैद्य ने वैद्यकशास्त्रों को पढ़ा है और क्रिया में कुशल है। जो रोगियों को निरोग करने में समर्थ है। जिस प्रकार युद्ध में दो पहियों का रथ बहुत उपकारी होता है और शीघ्र कार्य करता है, उसी भांति योग्य वैद्य से चिकित्सा करानी चाहिये।

❀ औषधि पचने न पचने के लक्षण ❀

वायु की यथा स्थान स्थित, मन प्रसन्न क्षुधा और तृषा का लगना, शरीर हलका, इन्द्रियां चैतन्य, शुद्ध डकार का आना, यह औषधि पचने के लक्षण हैं और ग्लानि, अंगदाह, शिथिलता, चित्त भ्रम, मस्तक में पीड़ा बेचैनी आदि उपद्रव औषधि न पचने के होते हैं।

बाल चिकित्सा—जो रोग बड़े मनुष्यों के होते हैं वही बालकों के भी होते हैं, इनकी औषधि की मात्रा इस प्रकार है, एक वर्ष के बालक को एक रत्ती और दो वर्ष के बालक को दो रत्ती और दो वर्ष के पश्चात एक माशा औषधि देना चाहिये।

बाल रोग परीक्षा—रोने से अथवा मुख का रंग देखने वा स्तन खींचने से बालक के रोग की परीक्षा करनी चाहिये, इसके उपरान्त जहां हाथ लगते ही बालक रोवे वहां दर्द जानना चाहिये, मस्तक में पीड़ा हो तो आंखें मूँदता है, गुदा में दर्द होता है तो बालक को प्यास ज्यादा लगती है और जो मूर्छा होती है तो मल मूत्र रुकजाता है, स्वास अधिक चलती है।

बाल्य भेद—बालक तीन प्रकार के होते हैं—एक दूध पीनेवाले, दूसरे दूध पीने और अन्न खानेवाले, तीसरे अन्न खानेवाले।

❋ हितकारक सूचना ❋

(१) दूध पीनेवाले बालक की माता को पथ्य कराना और बालक को हितकारी औषधि देनी चाहिये। (२) जो दूध और अन्न दोनों का आहार करते हों उनको दोनों प्रकार से औषधि देनी चाहिये। (३) जो बालक अन्न खाता हो उसको अन्न के साथ देनी चाहिये।

प्रायः बालकों को निम्नलिखित रोग हो जाते हैं, घांटी, हँसली का आना, गला आ जाना, मुख का पकना, आंख का आना, आंखों की सूजन, कर्ण रोग, हिचकी, बहुत रोना, सिर रोग, गंज, लार, खाल का चिपटना, खांसी, ज्वर, उलटी, दुबलापन, प्यास, पेट फूलना, पेचिश, पेट बढ़ना, आंव, लोहू का आना, कांच, चिनग, छालों का पड़ना, फुड़ियों का होना, कोथियां, फफोले, मुख का आना, मूत्ररोग, ज्वर, जड़ी, उदर रोग, ज्वर अतीसार, प्यास और आंव अतिसार, रक्त अतिसार, मुंहां, टूंडी का पकना, टूंड़ी का अर्थात् बाउट का जाना, अलाई, शीतला, मसान रोग, खाज, मृगी, लू लगना, नकसीर, गुदा का पकना।

घांटी अर्थात् काक का गिरना—यह रोग गर्मी के कारण होता है इसलिये इन दिनों में बालक और दूध पिलानेवाली को गरम वस्तु खाने को न देना चाहिये। जब यह रोग सन्तान को होता है तब बालक दूध पीना छोड़ देता है अथवा पीकर तुरन्त डाल देता है और बहुत रोता है और दुर्बल होने लगता है।

उपाय—१-चुल्हे की राख और काली मिरच को उँगली पर लगा चतुर दाई उँगली के बल से घांटी को उठा दे। २-माजू को सिरके में पीस उँगली में लगा काक को उठा दे। ३-मुलतानी मट्टी को सिरके में पीस तालू पर लगा दे।

हँसली का जाना—नार में एक हड्डी हँसली की भांति होती है उसमें झटका लग जाने से दर्द होने लगता है, जिस से बच्चे को बहुत दुःख होजाता है, उसके क्लेश दूर करने का उपाय यह है, कि चतुर दाई से सुतवा देवे और गले में चाँदी की हँसली बनवा कर डाल दे।

गला आ जाना—इसके लिये कई बार शहद का शर्बत चाटना उत्तम है।

मुख पकना—चमेली के कोमल पत्ते और फूलों को शहद में मिलाय मुख में लगावे।

आंख का आना—आंखें दुखने के कई कारण हैं कभी सर्दी, कभी गर्मी और कभी माता की आंख दुखने से, कभी दांत निकलने के कारण नेत्र पीड़ा हो जाती है। इनमें दांतों के कारण जो पीड़ा होती है वह तो जब तक दांत अच्छे प्रकार नहीं निकल आते तब तक दुखती ही रहती हैं और कठिनता से अच्छी होती हैं। अन्य दोनों तरह की दुःखती हुई आंखों में-सर्दी से (१) आंवला और लोध को गौ के घी में भून कर पानी में पीस लगावे। (२) घीग्वार के रस को आंखों में टपकावे। (३) बकरी के दूध का फोहा डाले। (४) बालक के मूत्र में रुई भिगो कर फोहा बांधे। (५) बांसी की पत्ती को पीस कर टिकिया बांधे, कान में और आंख में कड़ुए तेल की दो बूंद डालना। (६) घी में फोहा भिगो कर गर्म बांधे और गर्मी से हो तो। (१) नीम की कौंपल पीस कर बांधे। (२) रसौत का पानी आंखों में डाले। (३) गेरू को पीस उसमें रुई भिगो कर आंखों पर बांध दे, यदि बालक माता का दूध पीता हो तो माता को नियम से रहना चाहिये और कुपथ्य भोजनादि कार्य न करने चाहियें। और यदि बालक की आंख किचड़ाती हो तो त्रिफला के रस से धोना चाहिये और उसको नींद न आती हो तो उसकी इन्द्री पर पोस्त के दाने का तेल लगाना चाहिये।

कोथियों के दूर करने का उपाय—(१) कपड़ा हाथ पर रगड़ रगड़ गर्म करके सेकना। (२) तत्ता काजल आंजना। (३) लोध, पुनर्नवा, सिंघाड़ा, कटेवा, त्रिफला, बनफशा इन सब को बारीक पीस कर नेत्रों के पलक पर लेप करे।

आंखे सूजन पर हों—हर्र, फिटकरी, रसौत, तीन २ माशे और अफ़ीम २ माशे इनको घिस कर गुनगुना कर तीन चार बार लगावे।

फुली—चिरचिटे की जड़ का रस शुद्ध शहत में मिला आंख में लगावे।

कर्ण रोग—यदि बालक के कान में दर्द हो तो सुखदर्शन का पत्ता गुनगुना कर कान में डाले अथवा माता के दूध की चार पांच बूंदें अथवा नींबू की कोंपल के रस को शहद में मिला कर डाले। (२) बहुधा बालकों के कान से पीब आने लगता है, कारण उसका यह है कि बालक की माता बालक को औंघते समय दूध पिला देती है वह दूध बह कर कान में आ जाता है, वहां जमा होकर फुड़ियां फुन्सी उत्पन्न कर देता है जिस से कान बहने लगता है, उस समय माता को योग्य है कि कान में धुनी हुई रुई को लगाये रहे। (३) फिटकरी के पानी से पिचकारी द्वारा धीरे २ धोना, बबूल की कलियों का चूर्ण कर कान में डाले। (४) समुद्रफेन, सुपारी, कत्था यह सब महीन पीस कर कान में डालना। (५) मोटी सीप को कड़वे तेल में पका कर उस तेल को कान में डाले। (६) यदि कान के पीछे कटा हो तो सफेद कत्था एक माशे, जस्ते की खील अर्थात् सफ़ेदा एक माशे इनको छः माशे मक्खन में धोय तीन दिन तक लगावे।

हिचकी—इस रोग के दूर करने के लिये नारियल पीस कर शकर मिला कर चटावे और गीला कपड़ा तालू पै धरे।

बहुत रोना—प्रथम बहुत रुदन का कारण जानना चाहिये-देख ले कहीं हंसली तो नहीं डिगगई इसके कारण बहुत रोता है, नीम के पत्तों की धूनी दे गुंजा की माला पहनावे।

शिररोग—बालक के कान में सरसों का तेल डाले।

गंजा—मक्खी का मल जो छप्पर के लटके हुये तिनकों पर जमा रहता है पानी में घोलकर लगावे। (२) गौ के घी को दस पन्द्रह बार धो कर उसमें कबीला, तूतिया, मुर्दाशङ्ख एक२ तोला पीसकर मिला लगावे।

लार—जब गिरने लगे तब जवारस, मस्तगी थोड़ी २ खिलावे।

खाल का चिपकना—जब बालक की खाल जांघ में चिपकी रहती है, वहां मैल जम जाता है और वह लग उठती है इस लिये तेल लगा मैल निकाल नित्य गरम पानी से स्नान करा देना चाहिये।

खांसी—(१) अनार का छिलका निमक में पीस कर चटावे। (२ वंशलोचन शहत में दे। (३) पोहकर मूल, पीपर, काकरासिंगी इन को पीस शहत बारम्बार चटावे। (४) आक की मुहमुंदी कली लेकर उतनी मिरच, पाचों निमक, एक छोटी कुल्हिया में डाल कपरोटी कर आग में फूंक ले राख को थोड़ी २ चटा दिया करे। (५) बहेड़े को भूभल में भून नमक में मिला कर चटावे।

बालकों की खांसी की औषधि—अतीस, नागरमोथा, और मुलेठी को बराबर लेकर महीन पीस कर छान ले और बालकों की अवस्था के अनुसार आधी रत्ती से ५ रत्ती तक शहद के साथ दिन में चार बार चटावे यदि न चाट सके तो शहद में मिला माता के दूध में मिला कर पिला दे।

सब प्रकार की खांसी जाने का उपाय—लौंग, मिरच, बहेड़े के फल इन तीनों को सम भाग और सब के बराबर खैर मिला कर महीन पीस और छान कूट (बबूल) के काढ़े के रस में खरल करे चार २ माशे की गोलियां बनाकर एक गोली नित्य रातको मुख में रख रस को चूसता रहे तो सब प्रकार की खांसी जाती रहती है।

खांसी ज्वर उलटी—बालक को ज्वर खाँसी के साथ उल्टी भी हो तो काकड़ासिंगी, पीपर, अतीस, नागरमोथा, इनके चूर्ण को शहद में मिला कर चटावे। (२) बादाम की मींग पानी में घिसकर चटावे। (३) सुहागा अधभुना इसके बराबर कालीमिरच पीस घीग्वार के रस में चने के बराबर गोली बांध कर खिलावे। पोदीना का अर्क़ पिलाना योग्य है।

खांसी ज्वर और अतीसार—(१) काकड़ासिंगी, पीपर, अतीस, मोथा, शहत के साथ देवे।

सर्व प्रकार के ज्वर पर क्वाथ—धनियां, पद्माख, लाल चन्दन, गुर्च और नीम की भीतरी छाल यह सब बराबर २ लेकर अधकचरा कर दो तोले दवा को पाव भर पानी डाल मिट्टी की हंडिया में रातको भिगोदे सुबह औटावे जब आधा रह जावे तब मल छान कर ठण्डा कर पीवे इसी प्रकार पांच दिन में उपद्रव जाता रहता है।

हड़ की छाल पर्व २, मुलहठी, नागरमोथा, नीम की छाल यह सब छः छः माशे ले आधसेर जल में भिगोय चतुर्थांश काढ़ा कर छान ले फिर उसके अनुमान से दिन को दो बार मिश्री शहत डाल ४ दिन तक देवे।

(२) हड़ की छाल बराबर मुलहठी, नागरमोथा, नीम का छिलका यह सब छः छः माशे ले कूट कर आधसेर जल में भिगोय चतुर्थांश काढ़ा कर छान ले, फिर उसे अनुमान से दिन में दो बेर शहत और मिश्री संयुक्त ५ दिन तक बालक को निरन्तर पिलावे तो बालक का सर्व प्रकार का ज्वर जाता रहे।

दूध पीनेवाले बालक के लिये घूंटी—कश्मीरी केशर, नागकेसर, मुलहठी, छुकमेल, वंशलोचन, जायफल इन सबको सम भाग ले चूर्ण कर माता के दूध के साथ देनेसे बालक पुष्ट और निरोग रहता है।

दुबलापन—नित्य प्रातःकाल गाय वा बकरी का दूध औटा हुआ और १० वर्ष के अवस्थावाले बालक बालिकाओं को धारोष्ण (थन का दुहा ताजा) पिलाना चाहिये।

पियास—जब बालक को पियास अधिक हो तो (१) मुनका को सेंधा नमक के साथ घोट कर दे। (२) जहरमोरा, खताई पानी में घिस कर पिलावे। (३) कमलगट्टा की हरी मींग को निकाल कर सेंधे निमक के साथ पानी में पीस कर दे।

पेट फूलना—जब पेट फूल जाता है तो बच्चा सुस्त रहता है, तो सोंठ १ चावल, रेवन्तचीनी दूनी, सौंफ का अर्क तिगुना लेकर पिलावे दो खुराक कर प्रातः सायं खिलावे।

पेचिश—तज २ चावल, हींग, सौंफ १ चावल, बबूल का गोंद १ चावल, हींग और सोये के बीज चौथाई चावल इनको पीस पानीमें औटा कर उतार ले जो बहुत छोटा हो तो आधी खुराक दे।

पेट बढ़ जाने पर—(१) शहत थोड़ा पानी मिला कर देवे। (२) जो पेट फूल जावे तो सेंधा निमक, सोंठ, इलायची, भुनी हींग, भारंगी इनको महीन पीस गर्म जल के साथ पावे अथवा छोटी इलायची, सूखा पोदीना, कालीमिरच, पीपर, काला नोन सबको बराबर ले पीस कर तीन दिन तक खावे।

आंव लोहू—बालक को आंव मिले खून के दस्त आते हों तो अधभुनी सौंफ को कूट कर उसमें शक्कर मिलाय खिलावे। (२) मरोर-फली को सेंधा निमक के साथ देवे। (३) सोंठ का मुरब्बा खिलावे।

कांच—(१) बालक को उसी के पेशाब से आबदस्त लिवावे। (२) पुरानी चलनी का चमड़ा जला कर उसके पानी को उस पर छिड़के।

चिनक—इस रोग में बालक पेशाब करते समय रोता है वा बारम्बार इन्द्री को पकड़ कर खैंचे तो उस समय जानले कि इसको चिनंग होगई है।

(१) बबूर के गोंद की चार पांच डली कपड़े में बांध कर पानी में भिगो देवे फिर उसमें मिश्री मिला कर पांच बार पिलावे।

छारुये—यह पेट में पाचन न होने से होजाते हैं दांत निकलने के समय विशेष कर होते हैं इससे बालक आँखें ढेर जाता है, मुख नीला पड़ जाता है, इसकी पहिचान यह है कि सोते में बालक गुदा को खुजाता है, नाक को मीड़ता है और दांतों को करें करें करता है जब ऐसा हो तो जान ले कि पेट में छारुवे होगये हैं प्रायः यह रोग दांत निकलने के समय होता है।

उपाय—(१) कांजी का पानी पिलावे। (२) मुनक्का के दाने बीजा निकाल कर तथा वायबिड़ंग पाँच सात दाने खिलावे। (३) शीतल जल के छींटे मुख पर दे। (४) हींग वा कड़ुवे तेल वा नमक के पानी का फोहा बना कर गुदा पर रक्खे। (५) इन्द्रजव पीस कर पिलावे।

फुड़ियों का होना—(१) सफेदा काशग़ारी ६ माशे, माखन ८ माशे मिलाकर चुपड़ देव। (२) यदि फुड़ियां भरती फूटती हों तो किसी चतुर वैद्य से चिरा कर नीम के पानी से धोवे और उसकी ही पुलटिस बांधे। (३) यदि नेत्र लाल हों तो एक रत्ती फिटकरी को ढाई तोला निर्मल जल में मिला कर एक या दो बूंद डाले अथवा त्रिफला का निर्मल जल दिन में दो तीन बार डाल दिया करे।

फफोले—शीतला की भांति यह भी निकलते हैं जिनकी खाल बहुत पतली सफेद सी होती है और चारों ओर ललाई होती है जो नित्य टूटते हैं।

उपाय—(१) अफोह नाम के वृक्ष की डाली को चलनी में रख प्रातःकाल उसमें जल डाल कर तीन दिन तक इस प्रकार स्नान करावे।

मूत्र रोग—(१) मिश्री, मिरच, पीपर और धाय के फूल इनको शहत के साथ पिलावे। (२) जो मूत्र न उतरता हो तो मूमे की लेंडी को मठा में पीस गर्म कर नाभि से पेड़ू तक लगावे। (३) टेसू के फूल पीस कर पिलावे।

ज्वर—यदि बालक १ वर्ष से ७ वर्ष का हो तो मरोरफली, अमलतास, हर्रा के बीज, सौंफ और इन्द्रायन यह सब तीन २ माशे और मुरदाशङ्ख १ रत्ती इन सब का पावसेर जल में काढ़ा बनाय पैसा भर काढ़ा रहने पर उतार ठण्डा कर पिलावे।

जूड़ी—(१) तुलसीदल आधा माशा, शहत डेढ़ माशा मिला कर जूड़ी आने से दो घण्टा प्रथम देवे।

उदर रोग—जब बालक को पतला दस्त आने लगे तो नेत्रवाला, धाय के फूल, बेल का गूदा, गजपीपर इनका काढ़ा अथवा चूर्ण खिलाने से दस्त बंद हो जाते हैं।

ज्वर अतीसार—ज्वर के साथ दस्त भी आते हों तो पीपल, अतीस, नागरमोथा, काकरासिंगी, इन का चूर्ण सहत में चटावे।

प्यास और ज्वर अतीसार—सोंठ, अतीस, मोथा, इन्द्रजव इन का काढ़ा पिलावे।

आंव अतीसार—अजमोद, पीपर, वायविड़ङ्ग इनको बारीक पीस कर चावल के पानी से पिलावे।

रक्त अतीसार—सोंठ और पाषाणभेद को पानी में घिसकर पिलावे अथवा कुड़े के बीज, सफ़ेद जीरा जल के साथ पीस कर मिश्री मिला पिलावे।

खुजली चूने के पानी में कडुवा तेल डाल कर खूब हिलावे और जब वह हिलाते २ गाढ़ा हो जावे तब रुई के फाये भिगो २ लगावे।

बालकों का कब्ज—इसकी प्रत्यक्ष परीक्षा यही है कि जब बालक को दस्त खुल कर न आवे और सोते २ रोने लगे तो प्रथम घूंटी देना चाहिये। (२) कालानिमक, भुनी हींग सुहागा इनको पीस गुनगुना कर पिलावे। (३) अण्डी का तेल पिलावे।

❋ मुहां अर्थात् मुख आ जाना ❋

जब बालक के मुंह में सफ़ेद मलाई सी जमी और फटी २ वस्तु देख पड़े तो उसको मुहां कहते हैं वह दो प्रकार का है एक लाल दूसरा सफ़ेद।

उपाय। लाल मुहां—त्रिफला को पाव भर पानी में रुई भिगो कर दिन में तीन चार बार धो दिया करे। सफ़ेद मुहां—१) सफेद कत्था ६ माशे, शीतल चीनी १० दाने, कपूर १ रत्ती तीनों को पानी में पीस अंगुली से लगावे। (२) कत्था सफ़ेद २ माशे को ६ माशे भेड़ के दूध में घिस कर लगावे। (३) छोटी इलायची के बीज, पपरिया कत्था और बंशलोचन पीस कर बुरका दे।

टूंडी का पकना

(१) मोम का मरहम कपड़े पर लगा कर लगादे। (२) थोड़ा सी अलसी की पुलटिस बांध दे। (३) कपड़े को कड़ुवे वा गोले के तेल से भिगो फाया डाल दे। (४) अगर सूजन हो तो उस कपड़े को गरम कर सेके। (५) पीली मिट्टी को गरम कर दूध डाले उसका बफारा दे।

टूंडी का जाना

लक्षण—बालक को पतले दस्त आने लगते हैं और दस्त के समय फिट फिट का शब्द होता है तथा रोता भी है। चतुर दाई वा बूढ़ी स्त्री से जो इस बात को अच्छी तरह जानती हो उठवा देना चाहिये।

अलाई

वर्षाऋतु में जो बहुधा छोटे छोटे चकत्ते पीठ, छाती और शरीर पर निकल आते हैं उनको अलाई कहते हैं।

उपाय—मसूर के छिलके और आंवले के छिलकों को जला इन्ही के बराबर मेंहदी और कबीला पीस घी में मिला उन पर लगादे और मेंहदी डाल पानी को औटा छान कर नहलावे

शीतला—इसका वर्णन हम पहिले कर चुके हैं।

❀ मसाने अर्थात् पसली रोग ❀

यह रोग सौर में मैला कुचैला रहने से उत्पन्न होजाता है और पसली चलने लगती है, पसलियों में कफ जम जाता है, ज्वर होजाता है, दस्त भी आने लगते हैं, बालक अचेत होजाता है. यह सर्दी और गर्मी के कारण दो प्रकार का होता है, जो गर्मी के कारण होता है उसमें कुछ भय नहीं होता परन्तु सर्दी से जो रोग उत्पन्न होजाता है उसमें बहुत डर रहता है।

वायु पित्त के लक्षण—दस्त पतला हो, पेशाब कम और गर्म हो, प्यास के कारण होंठ चाटे, दूध भी कम पिये, सिर को बार बार घुमावे, हाथ पैरों को तन्नाय।

वायु के लक्षण—मल के सूखजाने से पाखाना नहीं होता, पेट फूल जाता है, पेशाब भी कम होता है, नाक के छेद सूख जायँ तथा नाक की राह श्वांस भी कम आवे, पेशाब का मुक़ाम भीतर को सिमट जाय, मुख की रङ्गत सफेद हो जाय, नाक की ओर बार बार हाथ चलावे।

❀ पसली कभी न चले ❀

उपाय—जिस समय बालक उत्पन्न हो और नार काटा जाय उस समय एक चावल भर उत्तम कस्तूरी थोड़े से कोयले के साथ में महीन पीस कर उस कटे हुए नार पर लगा दे।

खाज—नीलाथोथा, कबीला, पारा, आवलेसारगन्धक, बावची, मुर्दाशङ्ख, सिंदूर, सिंगरफ़, वायबिड़ङ्ग, कुठ और पमाड़ के बीज यह सब बराबर ले पीस छान कर, १०० बार धोये हुए मक्खन में मिलाय नित्य लेप करे।

खाज अर्थात् खुजली—चूने के पानी में कड़ुवा तेल डाल खूब घेपे, जब गाढ़ा होजावे तब उसमें फाये भिगो भिगो उस पर लगावे।

मृगी—इस रोग से बेसुध हो पानी आग इत्यादि में गिर पड़ता है और यदि दूसरा मनुष्य न हो तो इनमें गिर कर मर भी जाते हैं। यह मस्तक के बेसुध होने से होता है इसलिये मस्तक को सुस्त न होने दे तथा यह दौरे से होता है। मृगीवाले को आग और पानी के पास न जाने दे। पानी को देख मृगी बहुत आती है।

नकसीर—जब नाक से रुधिर बहने लगे तब पोता मिट्टी के डले पर पानी डाल डाल कर सूँघे। (२) शिर पर पानी डाले।

श्वेतकुष्ट की अनुभूत औषधि—त्रिफला, त्रिकुटा, चित्रक, नागरमोथा, बायविड़ंग, बच इन सबको सम भाग ले चूर्ण कर नित्य एक तोला गरम पानी के साथ रात को खाय। अवश्य ही अठारहों तरह के कुष्ट नाश होंगे।

श्वेतकुष्ट पर लेप के लिये—त्रिफला, बायबिड़ंग, चव, बच, मुनक्का, मड़ूँकी, पीपली, शुद्ध भिलावां, शङ्खपुष्पी, बावची, भृङ्गराज सबको बराबर लेकर चूर्ण करे, फिर चूर्ण को कांजी में पीस शरीर पर लेप करे।

शिर दर्द—मेंहदी की पत्ती ३ माशे, केशर एक माशा, मुचकुन्द के फूल ४ माशे, चन्दन का बूरा ६ माशे कपूर डेढ़ माशे पानी में पीस शिर पर लेप करे, कैसी ही शिर की पीड़ा हो अवश्य दूर होगी।

लू लगने पर—कच्चे आम का भरता कर पानी मिला पिलावे।

❁ हैज़े के लक्षण ❁

बेहोशी, पतला दस्त, बारम्बार क़ै और प्यास का होना।

❁ हैज़े के साध्य लक्षण ❁

शरीर ऐंठना, जँभाई का आना, दाह, शरीर का रंग बदलना, देह कांपना, हृदय और शरीर में दर्द, पेशाब का न होना, धीरे धीरे उपद्रव घटते जावें, विशेष कर रोगी को निद्रा आ जावे, शरीर गर्म बना रहे, रोगी तीन चार दिन बना रहे, कफ़ और बात का कोई रोग न हो तो रोगी बच जावेगा।

❁ असाध्य लक्षण ❁

हाथ पैर में ऐंठन अधिक हो, स्वर भंग, बल घटता जावे, भीतर दाह ऊपर शीत हो, रोगी को कल न पड़े, पेशाब न उतरे, पियास की अधिकता के कारण गले में कांटे से पड़ गये हों, हुचकी आती हों, नाड़ी रुक रुक कर चले तो रोगी का जीना कठिन है।

❁ हैज़े से बचने के उपाय ❁

(१) प्रातः सायं शुद्ध वायु सेवन करना योग्य है। (२) हैज़े के समय प्रतिदिन बेल का शरबत पीना अच्छा है। (३) कपूर को सूँघना अच्छा है और कपूर का पानी तोला या दो तोला दोनों समय पीना श्रेष्ठ है

क्योंकि कपूर सेवन से हैज़ा नहीं होता । (४) तंग कोठरी में मुंह ढांप कर न सोवे, तंग स्थान में बहुत आदमियों के साथ में न रहे । (५) हैज़े के स्थान को छोड़ कर दूसरे स्थान को चला जावे । (६) सुबह शाम गृह वा बैठक में गन्धक या धूप या गुग्गुल की धूनी दे । (७) हैज़ेवाले के कपड़े और मल को इधर उधर न फेंके वरन् उनको धरती में खोद कर गाड़ देवे नहीं तो हैज़ा नगर भर में फैल जाता है ।

चिकित्सा—हैज़ा होते ही फ़ौरन दस्त बन्द करना चाहिये, फिर शरीर में बल आने और पेशाब खोलने का उपाय किया जावे ।

हैज़े की प्रधान औषधि—अफ़ीम, कपूर, ब्रांडी, सौंफ, गुलाब, पोदीना, बर्फ़ ।

विशूचिकान्त बटी

सिंगरफ़ मकमूदाबादी एक तोले को १२ पहर कागज़ी नीबू के रस में खरल कर छाया में सुखा ले, इसके बाद सिंगरफ़ के बराबर अफ़ीम ले दोनों को खरल में डाल पानी से घोट कर बाजरा के बराबर गोलियां बना ले, ये हैज़े में रामबाण का हुक्म रखती हैं ।

अनुपान—हैज़ा शुरू होते ही गोली पानी से खिला देनी चाहिये, यदि क़ै से गिर जावे तो फिर एक गोली को पानी में पीस कर पिला दे, गोली के पचते ही क़ै दस्त बन्द हो जायगा, यदि दस्त बन्द न हों तो ३ घंटे के पीछे जैसी ताक़त हो वैसी एक या दो गोली खिला देनी चाहिये, फिर भी बन्द न हो तो १० घंटे तक गोली न दे प्यास वमन रोकने के लिये उपाय करे, अर्क सौंफ ऽ। पोदीना का अर्क ऽ≈ गुलाब ऽ≈ कपूर का पानी आधी छटांक, बर्फ़ का पानी ऽ। भर इन सबों में जो मिल जाय मिला कर एक एक तोला दस दस मिनट में पिलाता जाय ।

गोली—शुद्ध लहसुन की पुत्ती, काला जीरा, शुद्ध आमलेसार गंधक, सेंधा नोन, सोंठ, मिरच, पीपल, घी में भुनी हींग, यह सब वस्तु समभाग ले चूर्ण कर नींबू के रस में भिगोवे, फिर भावना (पुट) दे खरल कर चार चार रत्ती की गोलियां पांच पांच नित्य गर्म जल से ले तो शीघ्र ही विषूचिका (हैज़ा) तथा अजीर्ण (बदहज़मी) दूर होकर भूख लगे ।

स्त्री-रोग-चिकित्सा

स्त्रियों में दो रोग ऐसे हैं जो गर्भाधान में अधिक बाधक होते हैं, इस लिये हम उनकी चिकित्सा भी लिखते हैं।

सोम रोग—बारम्बार मूत्र होने को सोमरोग कहते हैं। मुलहठी और आंवला की समान बुकनी दूध के साथ पीवे।

रक्त प्रदर रोग—यह अति भोजन, अति शयन, अति मैथुन करने से होता है। जिस में स्त्री की जननेन्द्रिय से एक प्रकार का पानी विना मैथुन के ही गिरता रहता है, जिससे वह बहुत ही दुर्बल हो जाती है।

(१) एक तोला फालसे की छाल को एक मिट्टी के कुल्हड़े में भिगो दे, प्रातः छान मिश्री मिला कर पी लेवे, दस बारह दिन में आराम हो जावेगा।

(२) कतीरा रात्रि को भिगो कर प्रातः छान मिश्री मिला कर पी जावे।

(३) भूनी फिटकरी ३ माशे, मिश्री ३ माशे पाव भर दूध के साथ सात वा चौदह दिन तक खावे।

(४) माजूफल, पुरानी सुपारी, कसैला धाय का फूल, लोध और गोंद इनको एक पाव भर लेकर मजीठ, मोचरस, मैदा लकड़ी और सोंठ में से प्रत्येक को ३ माशे ले कूट पीस छानकर एक सेर घी में भिगोवे और २ सेर मिश्री की चाशनी करके लड्डू बना लेवे, अनन्तर उसमें से प्रति दिन एक छटांक प्रातःकाल सायंकाल खावे तो सब प्रकार का रोग शान्त होजाता है।

(५) चिकनी सुपारी को पीस घी मल कर शक्कर मिलाय दो दो तोला प्रति दिन दोनों समय खाय तो प्रदर रोग जाता रहता है।

श्वेत प्रदर की बड़ी परीक्षित औषधि—भिंडी की जड़ सूखी पाव भर, पिंडारु (सुथनी भी कहते हैं) सूखा हुआ पाव भर, दोनों कूट छान छः छः माशे की पुड़िया बना ले, पाव भर गौ के दूध में एक तोला चीनी मिला कर एक पुड़िया मुंह में रख शाम सवेरे उतार जाया करे, रोग जाता रहेगा। तेल, खटाई, मिरच आदि गर्म वस्तुओं से परहेज़ करती रहें।

दशमूलादि अर्क

शरवन की जड़ ऽ। पिथवन की जड़ ऽ। छोटी बड़ी भटकटैया की जड़ ऽ। गोखरू, गौनयार, सानापाठी, खंभार, पाडर इन सब की जड़ पाव पाव भर,

बेल की जड़ की छाल ऽ। रूसा की जड़ की छाल ऽ॥ चीते की जड़ ऽ= भारंगी, देवदारु, लौंग, हड़, बहेड़ा, आँवला, साठी इन सबकी जड़ पाव२ भर, बसलोचन ऽ= मिर्च ऽ- पीपर ऽ- अदरख का रस ऽ॥ शहद ॥ इन सब को अधकुटा कर मज़बूत मिट्टी के बर्त्तन में चौगुने जल में भिगोये पात्र को पृथ्वी में गाड़ दे परन्तु पात्र का मुंह खुला रहे, २१ दिन बाद निकाल भभके द्वारा अर्क खींच ले। इस की मात्रा १ तोले से ३ तोले तक है। दिनमें दो या तीन बार इस अर्क के पीने से क्षयी, संग्रहणी, अरुचि, शूल, कास, श्वांस, मंदाग्नि, कुष्ठ एवं मूत्रकृच्छ आदि रोग शीघ्र ही आराम होते हैं। परन्तु बालक, गर्भिणी स्त्री, दाह युक्त रोगियों को नुक़सान करता है।

❀ सन्तान उत्पन्न होने के पीछे प्रसूता को गुणकारक ❀ ❀ पानी बना कर देने की विधि ❀

सतावर १॥ तोला, असगन्ध १॥ तोला, सालव मिश्री १ तोला, मूसली सफ़ेद १॥ तोला, बंसलोचन १ तोला, तोदरी सफ़ेद वा सुर्ख एक एक तोला, बहिमन सफ़ेद वा सुर्ख एक २ तोला, जावित्री १ तोला, चुनिया गोंद १ तोला, ताल मखाना २ तोला, इन्द्रजौ मीठा १ तोला, छोटी इलायची के दाने १ तोला, मोचरस १। तोला, सत गिलाय १ तोला, गोखरू छोटे बड़े एक २ तोला, समुद्रसोख, १ तोला, बीजबन्द १, तोला दारुचीनी १ तोला, मूसली सेमल २तोला, गोंद बबूल २तोला, गुलधावा १ तोला, बांस के पत्ते २तोला, कांस के पत्ते २ तोला, कौंच के बीज१तोला, तीखुर १ तोला, कमरकस १ तोला, चिरायाकन्द १।तोला, जायफल २ तोला, वायबिड़ङ्ग १तोला, हालम १तोला, नारजील का छिकल २तोला, सिंघाड़ा १ तोला, छोटी बड़ी माई डेढ़ २ तोला, मुलैठी १॥ तोला, छोटी पीपल १॥ तोला, वायखुम्बा १॥ तोला, सुपारी के फूल १ तोला, कल्मी तज १ तोला, पत्रज १ तोला, सोंठ १ तोला, कायफल१ तोला, बड़ी कटाई १ तोला, अतीस १ तोला, काकड़ासिंगी १ तोला, जवासा १ तोला, देवदारु १ तोला मीठे कूट की जड़ १ तोला इन सबको कूट समान २ सात पुटरियां बना एक पोटली को चरुए की हांडी के (ढेप में कुछ मिट्टी लगादे ताकि वह पटक न जावे) पानी में डाल धीमी २ आंच से औटा कर प्रसूता को पिलावे, उक्त पोटली तीन दिन बाद बदल दे।

इस प्रकार सिद्ध किये पानी को २१ दिन तक पिलाने से प्रसूता स्त्री प्रसूत सम्बन्धी सर्व रोगों से मुक्त रहती है।

❋प्रसूता और नवजात बच्चे को पुष्टता देनेवाला सुहागसोंठ पाक❋

सुहागसोंठ की औषधियां।

सोंठ बैतरा १॥ पाव, बकरी का दूध ५ सेर, घी गऊ का १ पाव, चीनी २॥ सेर, दालचीनी १॥ तोला, तेजपात १ तोला, छोटा इलायची २ तोला, नागकेशर १॥ तोला, स्याह जीरा १ तोला, सौंफ १। तोला, अकरकड़ा १॥ तोला, जावित्री १ तोला, विधारा १। तोला, कमलगट्टे की गिरी १॥ तोला, पीपरामूल १ तोला, त्रिफला २ तोला, बरियारा की जड़ २ तोला, चाव १ तोला, चीता १ तोला, मोथा १॥ तोला, खस १॥ तोला, नागौरी असगन्ध २ तोला, सफेद चन्दन १ तोला, काला अगर १ तोला, सफेद जीरा १ तोला, लौंग १। तोला शतावर १ तोला सफेद मूसली २ तोला, सोंठ २ तोला, पीपर १ तोला, मिर्च १॥ तोला, जायफल १। तोला, सिंघाड़ा २ तोला, कंकोल १॥ तोला, अजमोद १ तोला, मुनक्का १ छटांक, किशमिश २ छटांक, अखरोट २ छटाँक, बादाम १ पाव, पिस्ता १ पाव।

❋ सुहागसोंठ के बनाने की रीति † ❋

सब से प्रथम सोंठ को कूट छान ले, पुनः दूध को कढ़ाई में डाल औटावे जब आधा जल जाय तब उस पिसी सोंठ को डाल देवे और करछी से बराबर चलाता रहे पुनः जब खोयाहो जावे तब खोया निकाल घी दे खोये को भून लेवे, पश्चात् साफ कढ़ाई में चाशनी कर सब कूटी छनी औषधियाँ एवं कतरी हुई को खोया समेत डाल आधी २ छटांक के लड्डू बना ले। प्रातः सायंकाल अपने बल के अनुसार लड्डू खाकर ऊपर से मिश्री संयुक्त दूध पी ले। इस पाक के खाने पर बच्चा और प्रसूता स्त्री सब प्रकार निरोग रहेंगी।

---

† नोट— इस पाक के खाने का समय कार्त्तिक से लेकर माह तक है और इस अवधि में यदि कोई सज्जन तैयार कराया उम्दा पाक मंगाना चाहें वे २) सेर के भाव हमारे यहां से मंगा लें।

अन्य उपयोगी बातें

माणिक्य, मूंगा, इन्द्रनील, गोमेद, वैडूर्य्य, मोती, पुखराज, पाची, वज्र ये नौ रत्न हैं ।

माणिक्य लाल मूंगा पीला रक्तकांति, पुखराज पीला जिसमें स्वर्ण की झलक हो, इन्द्रनील कृष्ण सजल मेघ के समान कांति, गोमेद किञ्चित् पीला लाल, वैडूर्य्य बिल्ली के नेत्र की कांति तुल्य जिसमें लकीरें हैं ।

मोती—लाल, पीला, सफेद, श्याम कांति वाले उत्तम हैं ।

पाची—मोर वा चास के समान जिसका वर्ण हो वह अच्छा होता है, इस में जो रत्न हलके और बड़े होते हैं उनका मोल अधिक होता है, खांड के समान जिसकी कांति हो वह कम मूल्य का, चपटा मध्यम और कमलदल के समान जो गोल हो वह श्रेष्ठ मूल्य का होता है ।

मोती की परीक्षा

मोती बनाये भी जाते हैं, इसलिये उष्ण जल में रात्रि को भिगो दे, प्रातः धानों से मले, यदि मैला न हो तो उत्तम वरना ख़राब अर्थात् बना हुआ जानना चाहिये ।

सोना, चांदी, तांबा, शीशा, रांग, लोहा ये सात धातु हैं, इनमें श्रेष्ठ सोना और चांदी है ।

गौ—जिसके सींग अच्छे, दुहने में सुशील बहुत दूध दे, बछड़ा अच्छा हो, तरुण हो, चाहे वह छोटी हो पर अधिक मोल की होती है ।

बैल—जिसके सींग अच्छे हों बलवान् हो, बोझ ले जाने में समर्थ हो, तेज़ चलता हो, आठ बिलस्त ऊंचा हो, जिसकी तालू और जिह्वा नीली हो, दांत टेढ़े हों और जिसके दांत न हों, जिसका बड़ा बैर हो, जिसमें बहुत मद हो और जिसकी पीठ कंपती हो, जिसके अठारह से कम नख हों, जो मन्द हो, जिस की पूंछ भूमि पर लटकती हो उसको न मोल ले । और इसके विपरीत उत्तम होते हैं । उनके भद्र, मद्र, मृग, मिश्र ये चार भेद हैं ।

भद्र—जिसके दांत मधु के समान और बलवान जिसके अंग सम हों जिसका आकार गोल, सुन्दर मुख, अंग अच्छे हों ।

भद्र—जिस की कोख स्थूल हो, सिंह के समान दृष्टि हो, गला और शुंड बड़े हों, अंग मध्यम हों. लम्बी कमर होती है।

मृग—जिस के कण्ठ, दांत, कान, शुंड ये सब पतले हों, नेत्र, हृदय और ओष्ठ बड़े तथा जो छोटा हो।

मिश्र—इन सब के चिन्ह जिसमें मिलें वह गज मिश्र कहाता है।

अंगुली से नापा जाय उसको मान कहते है, बाटों से जो तोला जाय उसे उन्मान. किसी पात्र से जो मापा जाय उसे परिमाण कहते हैं. कौड़ी से लेकर रत्नपर्यन्त को द्रव्य और पशु, अन्न, वस्त्र, तृण आदि को धन कहते हैं।

कस्तूरी की पहिचान

चार पांच लहसुन के जवे को पत्थर पर महीन पीस एक बिलस्त भर तागे को उसमें भिगो सुई में पिरो नाभे में छेद कर डोरे को खींच ले यदि नाभे के भीतर उत्तम कस्तूरी होगी तो लहसुन की दुर्गंधि जाती रहेगी कस्तूरी की सुगन्धि उसमें आ जावेगी।

खुली कस्तूरी की परीक्षा

बहुधा ठग कोयले आदि वस्तु को महीन खाक कर असल कस्तूरी को पानी में घोट उसी में खाक को तर कर साया में सुखा लेते हैं इसी प्रकार दो तीन पुट देकर मेलों में जाकर बेचते हैं। उसी की परीक्षाके लिये एक खे को आग पर धर उसकी सुगन्धि को ले यदि असली होगी तो बराबर धुआं सुगन्धित निकलता जायगा नहीं तो पहिले सुगन्धित फिर सुगन्धि-रहित।

कस्तूरी के गुण-गर्म, वात. श्लेष्मानाशक, धातु उत्तेजक, वाजीकरण, अग्नि और बल बर्द्धक, खुराक आध चावलसे चार चावल तक, धनाढ्य लोग जाड़े में पान में रखकर खाते हैं। शीत मिजाजवालों को अति लाभदायक है।

कस्तूरी की गोली-कस्तूरी ६ माशा, अनबिधे मोती १ तोला, जावित्री डेढ़ तोला, केशर २ तोला, जायफल २ तोला, छोटी इलायची और अकरकरहा २ तोला, कालीमिरच २ तोला, कपूर ६ माशे, शुद्ध कुचला या कुचले का सत ४ चावल, सोने के वर्क १०, चांदी के वर्क २०।

बनाने की विधि—मोतियों को पक्के खरल में गुलाब के अर्क़ में ४ पहर घोट ले और कुचला को शोध ले, और न डाले तब भी कोई हानि नहीं, सबको खरल में डाल २ तोला शहद और गुलाब के अर्क़ में घोट मटर के बराबर गोली बना साया में सुखा शीशी में बन्द कर रख दे, चौथाई गोली से २ गोली तक खावे, इसके सेवन से शक्ति बढ़ती है। लकवा, गठिया, नपुंसक आदि रोग जाते हैं। खाने के समय तेल, मिरच, खटाई, बासी अन्न, बाजरा आदि न खावे। दूध, मलाई, पुराने चावल का भात, मीठा सेव, अनार, पौंड़े की गँडेरियां खावे।

आंवले का मुरब्बा—प्रति दिन सवेरे चांदी के वर्क़ के साथ खाने से अतिही लाभदायक है। यह तीनों दोषोंको हरता है अर्थात खट्टे रस से वात, शीतल और मीठे अंश से पित्त को, रुक्ष और कषाय के प्रभाव से कफ को नाश करता है। यदि आंवले का मुरब्बा और चांदी का वर्क़ न मिले तो केवल सूखे आंवले का चूर्ण ६ माशा और मिश्री ६ माशा फांक कर पानी पी लिया करे तो भी लाभ होगा।

पेठे का मुरब्बा—इसके प्रातः और सायंकाल खाने से रक्त पित्त ज्वर, क्षयी, प्यास, स्वांस और कासादिक रोग जाते रहते हैं और धातुक्षीणवाले मनुष्य को विशेष लाभ होता है।

कृमिनाशक चूर्ण—रेवतचीनी, वायबिड़ङ्ग, कबीला, इन तीनों को बराबर लेकर महीन पीस ले, एक माशे से तीन माशे तक शाम सबेरे फाँक आध पाव गऊ का कच्चा दूध पीवे, थोड़े काल में केंचुये इत्यादि नष्ट हो जावेंगे।

केश उत्तम करने का उपाय—(१) कुम्हेरन की जड़, पियाबांसा के फूल, केतकी की जड़, लोहचूरा, भंगरा, त्रिफला का जल और तेल इनको लेकर लोहे के पात्र में भर कर पकाय एक महीने पृथ्वी में गाड़ कर निकाल ले, फिर केशों पर लगावे तो भौंरा के समान काले लम्बे केश हो जावें।

(२) काकमाची, जौ, चमेली और काले तिल इन सबका तेल यन्त्र द्वारा निकाल लेवे और बालों पर मले तो बाल अति काले होजाते हैं।

(३) बालों के बढ़ाने के लिये आंवले का तेल बड़ा लाभदायक है।

आंख दुखने का लेप—छोटी हर्र, सेंधा नमक, गेरू, रसौत इन चारों को सम भाग ले महीन पीस गुनगुना कर सोते समय पलकों पर लेप करे।

रतौंधी का अंजन—रसौत, दारुहल्दी, नीम के पत्ते इन सबको बराबर ले गोबर के रस में घोट गोली बना ले। दोनों समय पानी में घोट अंजन करे तो रतौंधी जाती रहेगी, सिर पर चमेली के तेल को लगा कर स्नान करे दुग्ध आदि शीतल चीज़ें खावे।

वीर्य्य उत्पन्न करनेवाली औषधि—तत्काल का दुहा गौ का दूध, दोनों बहमन, तोदरी, अरसी, बादाम, पिस्ता, इन्द्र जौ, नारियल, केशर, दालचीनी, शतावरि, असगन्ध, पक्का आम को खाकर दूध पीना, मीठा अनार, सेव, तालमखाना, लाल धान, उरद, दूध गेहूं की रोटी, मक्खन, घी, मलाई, छोटी इलायची, समय पर शीतल भोजन, प्रातःकाल का वायु-सेवन, सुगंधित तेल मल कर स्नान करना इत्यादि प्रसन्नकारक कार्य्यों से वीर्य्य उत्पन्न होता है।

वीर्य्य को गाढ़ा और पुष्ट करनेवाली औषधियां—सफेदमूसली स्याह मूसली, सेमर की मूसली, गोंद बबूल, कामराज, बीजबन्द, मखाना, वंशलोचन, शतावरि, काले तिल, असगन्ध, सिंघाड़ा और मिश्री।

बुद्धिवर्द्धक—ब्राह्मी, सफेद सरसों, बच, कूट, पीपल।

(१) मुलहठी, वंशलोचन, पीपल, सेंधा नमक, लोहा, चांदी, तांबा, शीशा, रांगा, सोना, बच, शहद, घृत इनमें से किसी एक के साथ मिश्री त्रिफला मिला कर सेवन करने से रोगों को नाश करती है यह रसायन है धारणा, आयु, स्मृति और बुद्धि को देती है।

(२) ब्रह्मचारी लोग चीते की छाल को छाया में सुखा दूध के साथ एक महीने तक पियें।

लघु हरीतकी बनाने की विधि—पीली सौ बड़ी हड़ लेकर एक रात मठा में भिगो कर प्रातः उनको पानी से धोकर स्वच्छ कर उनका पेट चीर बीज निकाल कर सोंठ, पीपर और भुनी हींग आठ २ माशा, मिरच पीपरमूल, चाव, चीता, जवाखार और सज्जी एक २ तोला, अजावयन, अजमोद, सेंधा निमक, सांभर, काला नोन, खारी और बिड़ नोन डेढ़ २ तोला इन सब दवाओं को नींबू के या चूक के रस में चार पहर घोट उक्त हर्रों में भर कर १० दिन तक नीबू के अर्क में भिगो कर रख दे।

यह हर्र वात विकारवालों को बहुत ही लाभदायक है, सोते समय खाने से

एक या दो दस्त साफ आ जाते हैं। इसके सिवाय हैज़ा, अजीर्ण, अग्निमन्द और वायु से जो पेट में दर्द होता हो उसको दूर करता है।

लवण भास्कर चूर्ण—समुद्र नमक ८ तोला, काला नमक ५ तोला, जवाखार, सेंधा नमक, धनिया, पीपर, पीपरामूल, काला जीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र और अमलबेत दो २ तोला, मिरच, जीरासफेद और सोंठ एक २ तोला, अनार का सूखा दाना ४ तोला, इलायची छोटी के दाने ५ माशा, दालचीनी ५ माशा इन सब को कूट छान कर नींबू के रस में घोट झरबेरी के बराबर गोली बना ले।

खाने की विधि—गुल्म, संग्रहणी और उदर सूजन में गौ के मठे के साथ देना चाहिये। पिलही, बादी, बवासीर, कुब्ज, आमातिसार, बलगमी खांसी और स्वास रोग में यह चूर्ण गरम जल से १ माशे से ३ माशे तक और बालक को आधा माशा।

आचार बटी—हल्दी, दारुहल्दी, मिरच, आंवला, सोंठ, हड़, चीता, कट, पीपर, सेंधा नमक एक २ तोला, नीम के पत्ते और नीम पर की गुरच दो २ तोला, मोथा ६ तोला इन सब को छान कर बकरी के पेशाब में खरल कर चने बराबर गोली बना ले।

(१) नित्य ज्वर, अतरा, तिजारी, चौथिया और सूतक ज्वर में दिन में दो दो घण्टे के बाद एक एक गोली का पानी के साथ देवे। (२) इस को घिस कर आंखों पर लगाने से आंखों के सम्मुख से अँधियारा जाता है। (३) स्त्री के दूध में घिस कर लगाने से पलकों का चिपटना जाता है। (४) बकरी के दूध में घिस कर लगागे से नवीन फुली जाती है। (५) तिल के तेल में लगाने से रतौंधी जाती है। (६) केले के जल से लगाने से आंखों का पानी बन्द हो जाता है। इस गोली के खानेवालों को मातदिल भोजन करना चाहिये।

हाज़में की गोलियां—काला निमक, सेंधा नोन, बड़ा नोन, अजवायन, जीरा, काला जीरा, काली हर्र, वायबिड़ंग, धनियां, सूखा पांदीना, चित्रक का छिलका एक एक तोला और अमलबेत १॥ तोला, सुहागा ६ माशे, इन सबको कूट छान कर क़ाग़ज़ी नींबू के रस की तीन पुट देकर जंगली बेर के समान गोली बना ले। प्रातः सायं एक गोली खाने से खूब भूख लगती है, तिल्ली और बाई जाती रहती है। मधां १ तोला,

जवी ८ तोले देशी चीनी ५ तोला इन सबको पीस चूर्ण कर तोला भर नित्य शहद में मिला चाटे तो पेट का फूलना दूर हो।

गन्धक बटी—शुद्ध आमलेसार, गन्धक, चीते की छाल, आक की बन्द कलियाँ, मघां, काली मिरच, शुंठी, जवाखार, सांभर नोन, सेंधानोन, काला नोन इन सबको सम भाग ले चूर्ण कर नींबू के रस में सात दिन खरल कर चार चार रत्ती की गोलियां बनावे रोग अनुसार १ से ४ तक गोलियां गर्म जल से नित्य खा ले तो आम अजीर्ण, शूल गोला, अफरा, आदि रोग तुरन्त दूर होवें यह अत्युत्तम और स्वादु बटी है।

लोलम्बराज चूर्ण—सोंठ ५ तोला, सुतिया सोंठ ४ तोला, अजमोद २ तोला, अजवायन २ तोला, निमक देशी १ तोला, बड़ी हड़ की छाल १५ तोला इसको कूट पीस छान कर ४ माशे प्रतिदिन गरम जल से प्रातःकाल खावे, इससे बदहज़मी, वायुगोलादि सब रोग जाते रहते हैं।

पुराने ज्वर का पथ्य—आंखों में अञ्जन लगाना, स्नान, वायु-सेवन करना, दाह शान्ति करनेवाली औषधियों को छाती और माथे पर लेप करना जैसे श्वेत चन्दन, पीतचन्दन, कपूर, शीतलचीनी, खस, सुगन्धबाला इत्यादि वस्तुओं को न्यूनाधिक करके गुलाब के अर्क में पीस छाती आदि में लगाना, खाने में मूंग तथा अरहर की दाल, पुराने चावल का भात, गेहूं या जौ की रोटी, गौ बकरी का दूध, मक्खन, ताज़ा घी, परवल, रामतोरी, मूली की जड़ और कोमल बीज रहित बैंगन की भाजी, स्वच्छ गंगाजल अथवा (फिलटर वाटर) पानी देना ऐसा सुश्रुत आदि में लिखा है।

पाचन चूर्ण---स्याह, सफेद जीरा, सोंठ छोटी पीपल, अजवायन काली मिरच, सेंधानमक इन में से दोनों जीरा को भून सबको बराबर ले कूट छान कर मिलाले, रोटी खाते समय प्रथम ३ माशे एक ग्रास के साथ खावे फिर रोटी को खावे। (२) आक के वृक्ष की बोंडी, काली मिरच, काला निमक इन तीनों में बोंडी पाव भर शेष पौन पौन तोला, लेकर पीस गोली बांध कर धूप में सुखा ले।

दिल धड़कने के समय—सेवती का गुलकन्द सेवन करे।

बुद्धिबढ़ाने का उपाय—सर्दी के दिनों में मालकंगुनी छः माशे, शक्कर छः माशे मिला प्रति दिन प्रातःकाल खावे।

उत्तम स्वर होने के हेतु—कुलीजन को खावे।

दाद—गन्धक एक छटांक, चौकिया सुहागा एक छटांक, सीप का चूना एक छटांक, राल एक छटाँक, नीलाथोथा आधी छटांक इन सबको पीस छान भैंस के ताज़े घी में मिला कर लगावे।

दमे का अच्छा करना—वायबिड़ग तीन माशे और पांच सात कालीमिर्च और थोड़ी सी सोंठ इन सबको पानी में पीस गर्म करके ठण्डा कर पीजावे और ५ मिनट तक गले में रहने दे, दबा कर निकाल दे—खटाई और लाल मिरच से परहेज़ करना उचित है—प्रति तीसरे दिन ऐसा करता रहे जब तक आराम न हो।

बवासीर खूनी या बादी—प्रतिदिन प्रातःकाल शौच से निवृत्त होने पर नीम की निबोली वृक्ष से तोड़ कर पाँच सात निगल जावे। तेल खटाई लालमिरच का परहेज़ बनाये रहे यदि ताज़ी निबौली न मिले तो पांच सात सूखी निबौलियों को रात में भिगोकर भीगे कपड़े में बांधदे, प्रातः खाजावे।

(२)-मूली के बीज, नगरकोटी रसौत, नीम के पत्ते ये तीनों सम भाग ले भांग के रस में अच्छे प्रकार खरल कर तीन २ माशे की गोलियां बांध एक गोली नित्य प्रातः १४ दिन तक मक्खन में धर खावे। (३)—मिरच, पीपर, सोंठ, चीता इनको पीस और चीता से चौगुना जमीकन्द ले और इनके बराबर गुड़ मिला कर गोली बांध खावे। (४)—जमीकन्द ८ भाग, चित्रा की छाल ४ भाग, हर्र ५ भाग, मिर्च ५ भाग, पीपल २ भाग, पुराना गुड़ १४ भाग चूर्ण कर गोली बनाय प्रति दिन खाय तो रोग शांति हो। (५)-शोधा हुआ भिलावां इसके बराबर सोंठ लेकर पुराना गुड़ बराबर मिला गोली बना कर खावे।

संग्रहणी—अनार का दाना ८ भाग, तज (दालचीनी) पत्रज, छोटी इलायची, नागकेशर तीन २ भाग, सोंठ, मग मिर्च चार २ भाग, मिश्री कूजा ३२ भाग ले इनको कूट २ महीन कपड़छानकर नित्य प्रातःकाल एक तोला भर शीतल जल से खावे तो अरुचि, संग्रहणी दूर हो, अग्नि दीप्त होकर पाचनशक्ति को बढ़ावे।

(१) खट्टे द्रव्य, खट्टे फल, कुलथी, मटर और मूली के साथ दूध और मूली उरद की दाल के संग और उरद की दाल, गुड़, दूध दही, घृत इनके

साथ बड़हल और तक्र, दही तोड़ के साथ तथा फल के साथ केले की फली और पीपर मिर्च शहद गुड़ के संग मकोह को न खाना चाहिये।

कांसा के पात्र में दश रात्रि तक घी रखने से बिगड़ जाता है।

रात्रि में जागना रुक्ष है, दिन में शयन करना स्निग्ध है. हाँ ग्रीष्म ऋतु में थोड़ा सोना हित है, अन्य ऋतुओं में दिन का सोना कफ और पित्त को करता है परन्तु घोड़े पर चढ़नेवाला, मार्ग, हिचकी रोगवाला, वृद्ध, बालक बल से रहित, भूख और तृषा से पीड़ित, अजीर्ण, उन्मत्त और दिन में शयन के अभ्यास वालों को दिन में सोना भला है। विष से पीड़ित और कण्ठ रोगी को रात्रि में शयन न करने देवे।

स्थूल पुरुष को शहद के साथ पानी मिला कर सेवन करने से स्थूलता जाती है। कृश मनुष्य पान, अन्न, औषधि इनको यथायोग्य सेवन करे और चिन्ता को सदा दूर करे, आनन्द में रहे तो बलवान् हो जाता है।

विषयुक्त अन्न की परीक्षा—विषयुक्त अन्न को हँस खाकर अण्ड बण्ड बोलता है, भ्रमर शब्द करते हैं, मोर नाचते हैं, मुरगा अत्यन्त शब्द करता है, कूंच मस्त हो जाता है, वामन वमन कर देता है, नौले की रोम खड़ी होजाती है, सारिका भी वमन करती है, ऐसे अन्न का भोजन न करना चाहिये।

जल जाने की औषधि—१—जलते ही सेक दिया जाय, २—रेल के कोयले तेल के साथ पीस लगावे, ३—इमली की छाल को जला कर गौ घी में मिला कर लगावे।

सांप—(१) साठी की जड़ ६ माशे और काली मिर्च ११ को पीस कर दो चार बार पिलादो। (२) हुक्के की गुली को निकाल उसकी चनेके बराबर गोली बांध कर उसमें थोड़ा सा घी मिला कर काटे हुए सांप वाले को खिलादे और काटने के स्थान पर भी लगादे। (३) लाल फिटकरी, नौसादर तूतिया इन तीनों को पीस सांप के काटे घाव में भर दे यदि घाव न हो तो चाकू से करले, इसके करने से खून निकलना जारीहो जावेगा, १० मिनट के अन्तर पर बार२ करता रहे और उपरोक्त औषधि ही रोगी को जबतक चेत न हो बारम्बार पाव घण्टे के पीछे खिलाता रहे अवश्य ही आराम होगा। आक के पत्ते की सफेदी नाखून से उतार जमा कर लेव उस में आक के पत्ते का दूध मिलाकर चने के बराबर गोली बना ले आध२ घंटे पीछे एक२ गोली दे, सातवीं गोली कड़वी मालूम होगी और रोगी अच्छा हो

जावेगा। (४) जहां पर सांप काटे उस स्थान से कुछ छोड़कर एक डोरी से कड़ा करके बांध दे और फिर चाकू से खून निकाल गर्म शलाखा से दाग देवे और जहां बांधने की जगह न हो वहां छुरी आदि से छील दाग दे अथवा बोंबी से वायु निकलवावे।

कुत्ता–(१) लाल मिरच पीस कर भरदे। (२) उसी का गू जलाकर भरदे। (३) कुचला पीसकर लगा दे।

बिच्छू–१ मूली के पत्ते का रस लगा दे। २–काशीफल से ऊपर जो डण्ठल होता है उसको घिसकर लगादे। ३–जमालगोटा पानी में घिसकर लगा दे। ४ चिरचिरा पीसकर लगा देवे। ५–औंधा पेड़ की लकड़ी को अपने हाथ में रखले। ६–पानी में दियासलाई के मसाले को घिस कर लगादे। ७–खांड को पानी में मथ कर बिच्छू के काटने की जगह पर लगादे।

कांतर–के ऊपर कड़वा तेल डाल दो, टुकड़े २ होकर मर जायगी। (२) मूली के पत्ते का रस निचोड़ दो तो तुरन्त ही छूट जायगी।

मकड़ी–(१) नीबू के रस में चूना पीस कर लगावे। (२) अमचूर घिस कर लगा दे।

मक्खी–घी को लोहे से घिसकर लगादे। मक्खी का गू ही लगादे।

ततैया–(१) पानी में कागज़ को भिगोकर रखदे। (२)-खाने का चूना या नौसादर लगा दे।

इसके उपरान्त निम्नलिखित विषों को उतारने की रीति लिखते हैं जिसको आवश्यक समय पर काम में लाना योग्य है।

(१)-अफीम का विष उतारना हो तो हाग का पानी घोल कर पिला देना योग्य है। (२) फिटकरी का चूर्ण और बिनौले का सत। (३) नारी के पत्तों का रस पिलावे। (४) चौलाई वा अरहर के पत्तों का रस पिलावे। (५) जिसने अफयून खाई हो उसको सोने न दे और टहलाता रहे।

संखिया का विष–उतारना हो तो गूलर की छाल औटा कर पिलावे अथवा कत्था खिलावे और पिलावे।

धतूरे का विष–अदरक का रस पिलावे। (२) निबौली की मींग घोट कर पिलावे।

सिंगया का विष—नारंगी का रस पिलाने से उत्तर जाता है।

❋ दीमक से बचने का उपाय ❋

जहां दीमक लगने का भय हो वहां कपूर औ तमाकू को बराबर बराबर ले पीस चौथे आठवें दिन बुरका दिया करे।

कपड़े रँगने की क्रिया

प्रथम पानी में कपड़े को इस प्रकार डुबोवे कि सम्पूर्ण कपड़े पर एकसा रंग आजावे परन्तु धब्बे न पड़ने पावें और महीन वस्त्र में थोड़ा रंग और पानी लगता है, गाढ़े वस्त्र में अधिक लगता है और रंगने के पिछले डोब में पिसी फिटकरी या अमचुर का भीजा हुआ पानी या खट्टे का रस पानी में मिलाकर एक डोब और दे दे कि रँग खिल उठे और पक्का भी हो जावे, जो रँग कच्चे हों उन्हें रंग कर कपड़े को छाया में और जो पक्के हों तो धूप में भी सुखा सकते हैं क्योंकि धूप में कच्चा रंग फीका पड़ जाता है।

कपड़े में से रंग काटना

पानी को किसी धातु के बर्तन में औटावे और जिस कपड़े का रंग काटना हो उसको उस गरम पानी में डाल दे कि कपड़ा पानी के भीतर डूब जावे, फिर थोड़ी सी पिसी फिटकरी डाल कर औटता रहे, रंग कट कट कर पानी में आ जावेगा, कपड़े का रंग कटने से उसका और ही रंग हो जाता है, परन्तु कच्चा ही रँग कट सकता है पक्के रंग नहीं कट सकते।

रंगने में धब्बा न पड़ने की क्रिया

प्रथम कपड़े को खोलकर पानी में डोबे फिर रंग में डोबे, इससे धब्बे नहीं पड़ते और बहुत से रँग ऐसे हैं जो कई रंग मिलाकर रंगे जाते हैं, इस लिये कपड़े को एक रंग के पानी में रंग कर निचोड़ कर सुखा ले, फिर दूसरे में डुबा निचोड़ सुखा ले, इसी प्रकार अन्त तक करे परन्तु यह न करे कि एक रंग में गीला ही दूसरे रंग में डोब दे, ऐसा करने से रंग अच्छा नहीं चढ़ता।

रंग

हरा रंग—प्रथम पक्के नील के पानी में डोब दे फिर हल्दी में जोश दिये हुए पानी में थोड़ी देर तक पड़ा रहने दे, पुनः पानी से फिटकरी के पानी में डोब दे।

कासनी—तीन सेर पानी में दो ताले नील डाल कपड़े का रंग सुखा ले, फिर कसूम के फूलों के रंग से रंग दे, पीछे खटाई के पानी में धो डाले।

पीला—पिसी हुई हल्दी में थोड़ी सी सज्जी मिला कपड़े को रंगले, फिर पानी डाल२ कर कपड़े को कई बार धो फिटकरी के पानी में डोब दे।

केसरिया—पानी में मजीठ को औटा कर रंग निकाल ले, अनार के छिलके और हरसिंगार की डण्डी को साथ २ औटा कर छान ले, कपड़े को फिटकरी के पानी में पहिले डोब ले फिर इन दोनों रंगों के पानी को एक संग मिला कर कपड़े को रंग ले।

नारंगी—हरसिंगार के फूलों को पानी में औटा कर कपड़े को पीछे कसूम के पानी में रंग खटाई के पानी में रँग ले।

बादामी—पाव भर तुन के फूलों को सेर भर पानी में औटा लेवे, पहिले गेरू में कपड़े को रंगले, पीछे तुन के आध सेर पानी में इसको डोब दे, यदि रुचि के अनुसार न हो तो बाकी पानी में फिर डोब ले।

कपासी—कपासी दो प्रकार का होता है-(१) बहुत ही थोड़ा जिस से कपड़े पर रंग नाम मात्र को ही आवे, थोड़े से नील के पानी में घोल कर कपड़ा रंगले, पर रात को टेसू के फूल भिगो रक्खे, उनका रंग इस समय कर तनिक सा चूना डाल कर फिर निथार ले, अब इसमें नील डूबे हुए कपड़े को रँगे, जब रंग चढ़ जावे तो खटाई के पानी में डोब दे फिर पहले ही रंग बदल कर कपासी हो जावेगा।

अँगूरी—टेसू के औटाये हुए पानी में कपड़ा रंगे, फिर बहुत ही हलका नील का रंग दे, इसके पश्चात् खटाई के पानी में डोब देकर सुखा ले।

शरबती—तीन भाग हरसिंगार के फूलों का रंग, एक भाग कुसुमका रंग (जो रैनी के पीछे निकाला जाता है) मिला कर रंगले।

अद्भुत दुरंगा—सीप, मूंगे की जड़ सफ़ेद गोंद इनको महीन पीस गुड़ मिला पानी के साथ खूब औटावे, जब औट जावे तो उतार कर खरल करे, फिर महीन मलमल लेकर एक तरफ़ इस रंग का लेप करे, जब सूख जावे तो पहिले पक्के रंग (जैसे नीला) में डोबे, जब सूख जावे तो कच्चे रंग (जैसे कसूम) में डोबे तो एक ओर आबी दूसरी ओर नाफरमानी

हो जावेगा या पहिले नील में रंग हल्दी में डोब दिया जावे तो एक ओर पीला और दूसरी ओर हरा दिखाई देगा।

गुलाबी—कसूम की थोड़ी सी गाद को पानी में मिला कपड़े को रंगले

लाल—इसमें कसूम की गाद गुलाबी से चौगुनी छः गुनी देकर रंगना चाहिये, पीछे खटाई के पानी में डोब कर सुखा ले।

गुलेअनार—पहिले कपड़े को कसूम के फूलों के दूसरे रंग में डोब लेवे, फिर गाद के पानी में रंगे, फिर गाद के पानी में हल्दी पीस कर मिला दे और कपड़े को रंग खटाई के पानी में डोब दे।

पिस्तई—कपड़े को हल्दी में रंगे फिर साबुन के पानी में डोबे, इस के पीछे नींबू की खटाई दे कर सुखा ले।

उन्नाबी—प्रथम हर्रे के पानी में द्वितीय छटके पानी में तृतीय छटांक भर पतंग के औटाये हुए पानी में चतुर्थ चार तोले फिटकरी के पानी में डोब दे सुखा ले।

कांकरेज़ी—डेढ़ सेर पानी में पावभर पतंग महावर दो ड्राम हिरमिच और माजूफल एक२ ड्राम को औटा कर छान ले फिर रंगे।

किशमिशी—पहिले कपड़े को हर्रे के पानी में द्वितीय कटके पानी में तृतीय हल्दी के पानी में चतुर्थ कुसुम के उस पानी में जो रैनी के पीछे निकलता है। फिर अनार के छिलके के पानी में डोब देकर फिटकरी के पानी में धो डाल, परन्तु डोब सुखा कर दिया जावे।

तूतिया—गन्धक का तेज़ाब और तांबा बराबर मिला कर कढ़ाई में जलावे तो तूतिया बन जावेगा।

हीरा कसीस—गन्धक के तेज़ाब के साथ लोहा मिला ले।

कपड़ों के धब्बे छुड़ाना

लोहू का धब्बा—नमक के पानी में धो डालने से जाता रहता है।

फलों के रस के दाग़—पानी में कबूतर की बीट औटा कर धोवे।

मेंहदी के रंग के दाग़, नील के दाग़—ताज़े दूध को गर्म करके धो डाल।

स्याही का दाग़—पुराने सिर्के को पानी में गर्म करके धो डाले।

चिकनाई का दाग़—नोन चूना पीसकर पहिले मले, फिर इसी को पानी में घोल कर धो डाले, घी की चिकनाई पर तेल को, तेल की चिकनाई पर घी लगा कर रख दे, पीछे पानी में इस कपड़े को डाल कर औटा लेवे. छुट जावेगा।

पसमीने की चिकनाई—जौ की भूसी को पानी में औटा कर धोवे फिर गन्धक का धुआं देवे, साफ हो जावेगा।

रेशमी कपड़े की चिकनाई—सूखा चूना और नोन पीस कर उसपर डाले, पीछे अलसी पीसकर डाले और इतनी देर रहने दे कि वह सब चिकनाई को सोख ले।

सब भांति के दाग़—ऊंट की मेंगन को पीसकर पानी में घोले और उसमें कपड़े को भिगो दे. एक दिन रात पड़ा रहने दे, दूसरे दिन धो डाले या रीठा और साबुन के पानी से धो डाले. सब दाग छुट जावेंगे।

❀ सोने चांदी की चीज़ साफ़ करने का सहज उपाय ❀

निमक, फिटकरी बराबर ले पीसकर मैले गहने के ऊपर चढ़ा आग में तपावे जब लाल हो जावे तो साफ पानी में डालकर कपड़े में रख इमली से खूब मांज कर धोवे और आग के सहारे सुखा ले।

❀ तांबे, पीतल पर क़लई ❀

बालू से बर्तन साफ कर आग पर रख थोड़ा सा नौसादर छोड़ रांग घिस दे, पिघलने पर एक कपड़े के टुकड़े से सब जगह बराबर लगादे।

सीना-पिरोना

जिस प्रकार स्त्रियों को पाकविद्या के जानने की आवश्यकता है उसी भांति वस्त्र बनाने और सीने पिरोने के कार्यों को जानने की अति आवश्यकता है, इस लिये स्त्रियों को योग्य है कि इस विद्या को आप जान अपनी पुत्रियों को भी दिखलाने और सिखलाने की उत्तम रीति यह है कि पहिले आप सीकर उनको दिखलावें और फिर उधेड़कर उन से सिलवावें, जिससे वे उन्हीं डोरों के चिन्हों को देखकर सी लेवें और जब हाथ सध जावे तो पुराने कपड़ों में से काट २ कर उनको दे दें और उनसे सिलवावें और फिर फटे पुराने कपड़े दे दें जिनमें से वे आप काट २ कर सीवें और फिर उनको

पुराने कपड़ों में से टोपियां, कुर्ते, थैले इत्यादि इसी भांति की सहज सीधी सिलाई के कपड़े उनको सीने दें। जब सीना आ जाय तब तुरपना बतावें और जब इन में भी अच्छी तरह हाथ सध जाय तो नये कपड़े सीने को दें जो सीधी सिलाई के हों जैसे रज़ाई, गद्दा, दोहर, जब इतना आ जाय तो उसको कपड़े का काटना बतावें।

सीना—६ प्रकार का होता है (१) साधारण जैसे अंगरखा, कुर्ता, दुपट्टा, चोली, दामन और बटुआ, (२) जाली पर काढ़ना, (३) रेशम डोरे और कलाबत्तू का काम करना, (४) सुजनी आदि, (५) सलमें सितारे का कार्य्य करना, (६) कटाव का काम करना।

पिरोना अर्थात् सुई को डोरों में पिरो कर जो कार्य्य करते हैं उसको पिरोना कहते हैं जैसे हाथ पाँव के मोज़े बुनना, फीता, बेल, कमरबन्द बटुये की डोरी गूंदना, माला वा हार गूंदना, फूलों के अनेक प्रकार के गहने बनाना, माला पहुंची इत्यादि को बटुये की भांति पो लेना, गुलूबन्द इत्यादि बना लेना।

सीना पिरोना—इसी के साथ में गोखरू मोड़ना किरन बनाना, ठप्पा व कलाबत्तू करना इत्यादि के काम भी स्त्रियों को करने पड़ते हैं, इस लिये इन सब बातों का जानना अति उपयोगी है। जो स्त्रियां उपरोक्त बातों को नहीं जानतीं उनको अपने बाल बच्चों के टोपे टोपी घंघरिया चादर इत्यादि के लिये दर्जी के यहां जाना पड़ता है जिसमें व्यय भी अधिक होता है और समय पर वस्तु भी नहीं मिलती। इसके अतिरिक्त वह ऊँचा, ढीला, तंग इत्यादि कर देते हैं इससे कपड़ा बिगड़ जाता है जिसको पहिने देख अन्य जन बच्चों की माता की चतुरता और अज्ञानता को जान लेते हैं। अथवा इन कार्यों के लिये अन्य चतुरा स्त्री के पास जाकर उसकी लल्लो पत्तो करनी पड़ती है। देखो, इसके सीखने में बहुत सा व्यय भी नहीं करना पड़ता, केवल सुई डोरा, कैंची, बेड़ा और गज़ की आवश्यकता होती है।

सीने की रीति—सुई को अँगूठे और बिचली अँगुली से थामते हैं और अंगूठा और बीच की अंगुली से सुई को दबा कर चलाते हैं, अनामिका में बेड़ा पहिनते हैं, कोई २ बीच की ही अंगुली में पहनते हैं और जब सुई

कपड़े से नहीं निकलती तो इससे दबा कर निकाल लेते हैं। इसके उपरान्त सुई भी हाथ में नहीं छिदती और यह छोटा सा पीतल वा तांबे का होता है जिससे अँगुली का एक पोरुआ ढँक जाता है, इसमें बहुत से छोटे छोटे खाने होते हैं जिससे सुई दबाने के समय फिसलने नहीं पाती और वहीं जमी रहती है और अँगुली में ठेक भी नहीं पड़ती, कोई कोई इसका काम नखसे दबा कर ले लेते हैं परन्तु यह उत्तम नहीं है।

विशेष सूचना—सुई डोरा कपड़े के अनुसार लेना योग्य है, जैसा गज़ी, गाढ़ा इत्यादि के सीने में चर्खे के कते हुए मोटे डोरे लेने चाहियें और सुई भी उसी के अनुसार मोटी हो। लंकलाट, साटन, इंचीदार इत्यादि के सीने में रील का डोरा और सुई तनिक महीन लेनी चाहिये गोटा पट्ठा गोखुरू इत्यादि के लिये सुई बहुत महीन वा पेचक का डोरा लेना योग्य है।

सिलाई—यह भी कई प्रकार की होती है, प्रथम साधारण जिसमें दो टुकड़े के छोर मिलाकर जोड़ देते हैं, जैसे अँगरखा कुर्ता के ठड़ा करने में जो सिलाई होती है उसे पिसूजना वा पिसूज की सिलाई कहते हैं और जब इसी को गोल करके भीतर की ओर उलट कर सीते हैं तो उसे उटलना वा तुरपना कहते हैं। यह दो प्रकार का है एक तो गोल जो पिसूज की सिलाई के बराबर ही तुरपी जाती है और दूसरी चौड़ी जिसे अव्वल पत्ती कहते हैं और जो पिसूज से थोड़ी सी दूरपर जाकर तुरपी जाती है। यह भी दो प्रकार की है। एक तो जिसमें दोनों सिरे एक ही ओर को उलटे जाते हैं, दूसरी जिसमें पिसूज की दोनों ओर को एक एक छोर उलटा जाता है।

तृतीय—बखिया की सिलाई होती है जो इस प्रकार की जाती है कि जहां से सुई चुभो कर निकाली जाय वहां से फिर पिछाड़ी को लेजा कर आधीदूर पर चुभोई और पहिले के बराबर दूरी पर निकाली जाय फिर पीछे को लाकर जहां से पहिली सुई निकाली थी उसी छेद में उसको पिरो कर उतनी ही दूर जा निकाला, इसी भांति करते रहें तो ऊपर की सिलाई एक दूसरे के बराबर चली जायगी और नीचे को दोहरी होती जायगी। यह भी दो प्रकार की होती है—एक साधारण जिसका उपरोक्त वर्णन कर चुके हैं, दूसरी कांटेदार इसमें लहरिया जो पड़ती है वह नीचे को भीतर की ओर रहती है और बखिया दो ओर हो जाती है। इसके उपरान्त तेपची और जाली की सीमन होती हैं। जाली की सीमन बहुत मज़बूत डोरे से

सी जाती है और कांटेदार बखिया की भांति होती है, जहां इसका काम करते हैं वहां कपड़े दोनों छोरों को उलट कर तुरप देते हैं जिससे यह चमकता है।

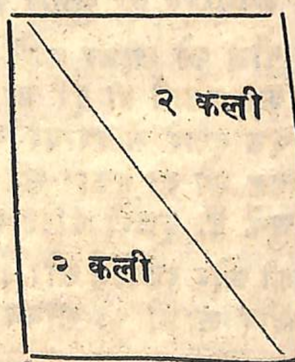
फलीता—यह काले वा लाल रँग का एक डोरा होता है जो मगज़ी संजाफ के किनारे पर लगाया जाता है।

संजाफ और गोट—यह भी दो प्रकार से लगाई जाती है—एक सुदेत्र सीधे कपड़े में से सीधी पट्टी कतर कर बन जाती है, दूसरी औरेब जो दो प्रकार से कतरी जाती है, एक तो कपड़े में से टेढ़ी काटी जाती है दूसरे कपड़े का औरेबी थैला बना कर काट लेते हैं जिसमें सीधी धज्जी उतरती चली जाती है टुकड़े टुकड़े जोड़ने की आवश्यकता नहीं होती और इसके थैला बनाने की यह रीति है कि कपड़े को अर्ज़ में से मोड़ कर दोनों छोर मिला आधा कर ले और बखिया की तरह दे, फिर इसका आधा करे और फिर इसी आधे के बराबर कपड़े की लम्बान में से नाप कर चिन्ह कर दे, फिर यहां से एक शिकन मोड़ कर वहां तक डाल दे जहां से अर्ज़ का आधा करके सिलाई की थी। इसको फिर जितनी चौड़ी गोट वा मगज़ी चाहे उतना ही एक सिरे पर छोड़ कर दूसरे को सी देवे तो दूसरी ओर का भी थैला सिल जाने पर उतना ही सिरा बच रहेगा और थैले की सी सूरत होजायगी, फिर इसको कैंची से काट लेवे तो एक लम्बी सी धज्जी होजायगी, उसे दोहरा करके भीतर की ओर सिलाई करके गोट हो जायगी।

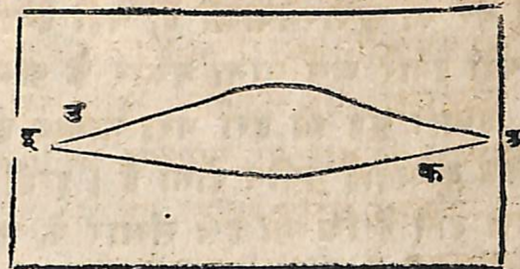
❋ कपड़ों की कतर ब्योंत ❋

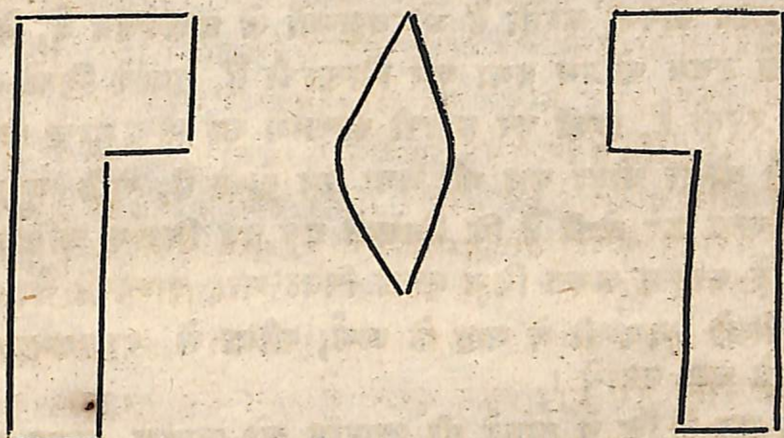
कुर्ता—पहिले कपड़ा ले दोनों कंधों से आगा पीछा नाप ले, फिर जितना चौड़ा आगा पीछा लिया है उतना ही लम्बा चौड़ा कपड़ा ले ४ कली काटो। जैसा कि नीचे चित्र दिया है उस प्रकार चार कली काट आगे पीछे में जोड़ लो और आगे पीछे के कपड़े में से एक आगे की ओर गला फाड़ लो फिर बांहे चौबगले जोड़ तुरपन लगा सींलो।

———



पाजमा—इसमें सवा तीन बिलस्त चौड़ा और जितना लम्बा मनुष्य हो उतना ही लम्बा नाप (अ) से (इ) तक काट लो, फिर (उ) से (क) तक काटने पर सूरत यों हो जायगी।





और बीच में मियानी निकल आवेगी, इसको दोहरा कर जोड़ ले और बखिया लगा सी ले। यह सब में और सहल उत्तम अँगरेज़ी पाजामा काटने की रीति है। अचकन, अङ्गरखा, कोट इनका समझना कठिन है, इसलिये इनको दर्ज़ी से ही सिलाना चाहिये।

पति-धर्म

मान्यवरो! सृष्टि-क्रम पर एक साधारण दृष्टि डालने से हमको प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जिस प्रकार आंख के लिये सूर्य्य, सूर्य्य के लिये आंख, बुद्धि के लिये ज्ञान और ज्ञान के लिये बुद्धि की आवश्यकता है, इसी प्रकार स्त्री को पुरुष तथा पुरुष को स्त्री का होना भी परमावश्यक है, वरन् जिस प्रकार सूर्य्य के न होने से आंख को तथा ज्ञान के न होने से बुद्धि को कुछ आनन्द नहीं होता इसी प्रकार पुरुष के बिना स्त्री तथा स्त्री के बिना पुरुष को भी इस गृहस्थी में कुछ आनन्द नहीं प्राप्त हो सकता।

यही घर की सुधारनेवाली हैं, यही हमारे सब प्रकार के आनन्द देनेवाली हैं, यही हमारे अर्थ नाना प्रकार के कष्ट उठाती हैं।

हमारा गृह जो हरा भरा मालूम होता है, वही बिना इनके जंगल से अधिक दुःखदाई प्रतीत होता है। इन्हीं से धर्मात्मा, बुद्धिमान्, वीर पुरुष उत्पन्न होते हैं कि जो इस संसार के भूषण माने जाते हैं, नाना प्रकार के धर्म-कार्य करते हैं, सांसारिक कार्यों को उत्तमता से चलाते हैं। येही सन्तान का पालन पोषण करती हैं जो मनुष्यों से असम्भव है, ये हमको नाना प्रकार से उत्तम भोजन बना कर खिलाती हैं, हमारे मित्रों की सेवा शुश्रूषा करती रहती हैं, इन्हीं पर हमारी सन्तान का सुख दुःख वा सुधार निर्भर है, येही थोड़ा थोड़ा धन भी जमा कर लेती हैं, येही गृहस्थी का ऐसा उत्तम प्रबन्ध कर लेती हैं कि जिससे बड़े बड़े विद्वान् चकित रहजाते हैं। येही हमारे कारण अपने प्रिय माता पिता भाई बान्धवों को छोड़ कर आती हैं। देखिये दमयन्ती ने नल के अर्थ, सीता ने रामचन्द्र के साथ किस प्रकार के कष्ट उठाये।

सच तो यह है कि ये हमारे ही आराम को अपना सच्चा सुख तथा हमारे दुःख को ही अपना दुःख समझती हैं। फिर भला यह सम्भव हो सकता है कि इनको दुःख देकर हम किसी प्रकार का आनन्द उठा सकें? कदापि नहीं। वरन् इनको प्रसन्न रखने ही से हमको सब प्रकार के आनन्द प्राप्त हो सकते हैं।

याज्ञवल्क्य जी ने लिखा है कि पिता, बन्धु, पति तथा जाति के लोग सास ससुर तथा सब प्रकार के बान्धवगण दुर्गुणों को त्याग कर वस्त्र अन्न आभूषण प्रीतिपूर्वक कोमल वाणी से शक्ति के अनुसार स्त्रियों की पूजा अर्थात् आदर सत्कार करें। यथा—

भर्तृभ्रातृपितृज्ञाति श्वश्रूश्वशुरदेवरः।
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः॥

मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ५७ में लिखा है कि स्त्रियों को सदा प्रसन्न रक्खे, क्योंकि ऐसा करने से कुल की वृद्धि होती है। जहां वे क्लेशित रहती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता। यथा—

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु तत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा॥

इसी अध्याय के ५८ श्लोक में लिखा है कि जहां स्त्रियों का यथावत् मान नहीं होता वह कुल उनके शाप से तत्काल ही नाश हो जाता है। अध्याय ३ श्लोक ५६ में लिखा है कि जहां स्त्रियों का आदर होता है वहां देवता प्रसन्न रहते हैं, जहाँ उनका अनादर होता है वहां धर्म-कार्य का फल प्राप्त नहीं होता। यथा—

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

फिर नहीं जान पड़ता कि वर्तमान समय में हमारे भारतवासी बन्धुवर्ग इन पवित्र आज्ञाओं पर क्यों नहीं ध्यान देते।

कोई२ जन अन्य स्त्री वा बालकों से प्रीति कर लेते हैं और अपनी स्त्री से बात तक नहीं करते। घर का समस्त धन बाहरवालों को खिला देते हैं पर अपनी स्त्री को भोजन देना अत्यन्त कठिन हो जाता है। सैकड़ों रुपयों के कपड़े वेश्याओं को बनवाते हैं पर इन बिचारियों को केवल अपनी दासी ही मान रक्खा है कि जो दिन भर गृह-कार्य करती रहती हैं, तिस पर भी उनको किसी प्रकार का सुख नहीं मिलता।

सचमुच यही कारण है कि वर्त्तमान समय में जिधर हम दृष्टि उठा कर देखते हैं कोई गृह हरा भरा नहीं जान पड़ता, जिससे गृहस्थों को गृहस्थी के धर्म पूर्ण करने में अधिक कठिनाइयां जान पड़ती हैं, क्योंकि स्त्रियां न सास श्वसुर का कहना मानतीं न पति को कुछ समझती हैं, केवल लड़ाई झगड़ों में सब दिन काटती हैं। फिर मनुष्यों को घर से बाहर रहने में आनन्द आता है। कोई२ परदेश में जाकर साधु हो जाते हैं। यहां स्त्रियां बैठी हुई नाना प्रकार के कौतुक रचती हैं कि जिससे उनके बाप दादों के नाम पर धब्बा आता है तथा वंश का भी नाश हो जाता है। अथवा कोई२ उत्सव के समयों पर ऐसा झगड़ा मचाती हैं कि रस नीरस हो जाता है, वह आनन्द दुःखरूप जान पड़ता है। पति कुछ कहता परन्तु स्त्री अपनी डेढ़ चावल की खिचड़ी अलग ही पकाती है। सर्व साधारण घर के भेदों को जानते हैं, जिससे देश देशान्तर में नाना प्रकार की हंसी होती है, कुल की निन्दा सब

स्थानों पर हो जाती है। प्यारे पुरुषो ! इन बातों में क्या धरा है, परमात्माकी आज्ञा पालन करो अर्थात् स्त्रीव्रत होकर स्त्री को प्रसन्न करो। यही काम सब से अधिक उसकी प्रसन्नता का है। और जब तक जितेन्द्रिय नहीं होते तब तक किसी प्रकार के सुख नहीं मिलते अर्थात् जो मनुष्य प्रमत्त स्त्रियों में प्रमत्तता को प्राप्त नहीं होते वे ही बली होते हैं।

ऋ०अ०१,अ०५,व०२६,मं०४, अ०२, सू०१८,मं०८ में कहा है—

ममच्चन त्वा युवतिः परास ममच्चन त्वा कुषवा जगार।
ममच्चिदापः शिशवे ममृड्युर्ममच्चिदिन्द्रः सहसोदतिष्ठत्॥

इसके उपरान्त तुम्हारी भी तो प्रतिष्ठा नहीं रहती। य० अ०२३मं०२१ में परमात्मा राजा को आज्ञा देते हैंकि व्यभिचारी पुरुष और स्त्री को बाँध कर ऊपर को पग और नीचे को शिर कर ताड़ना करनी चाहिये, जैसा कि—

उत्सक्थ्या अवगुदं धेहि समंजिं चारया वृषन्।
य स्त्रीणां जीवभोजनः॥

धर्मात्मा राजपुरुषों को चाहिये कि जो अपने अनुकूल सेना और प्रजा हो उनका निरन्तर सत्कार करें और जो सेना तथा प्रजा विरोधी हों तथा डाकू, चोर, खोटे वचन बोलनेवाले, मिथ्यावादी, व्यभिचारी मनुष्य हों उनको अग्नि से जलाने आदि भयंकर दण्डों से शीघ्र ताड़ना देकर वश में करे। य० अ० ११ मं० ७७ में कहा है मनु० अ० ८ श्लोक ३७ में कहा है कि व्यभिचारी पापी मनुष्य को जलते लोहे की चारपाई पर सुलावे और सब लोग उस पर लकड़ियां डालें, उनमें पाप करनेवाला जले।

यदि तुम कहो कि पत्नी योग्य नहीं हैतो आप अपनी योग्यता से उन को शिक्षाकर योग्य बनाइये कि जिससे गृहस्थी में सुख और आनन्द मिले और आगे को सन्तानों के सुधार के लिये वेदानुकूल स्वयंबर में विवाह की प्रथा को प्रचलित करो, फिर उस ब्रह्मचारिणी को जो मेघ के तुल्य गम्भीर शब्द संयुक्त, थोड़ा बोलनेवाली, पवित्र और विद्यायुक्त है विवाह कर आनन्द भोगो, जैसा ऋग्वेद अ० ३। अ०८। व०१। मं०४। अ० ५। सू० ५२। मं० २ में लिखा है—

अस्थुरु चित्रा उषसः पुरस्तान्मिता इव स्वरवोऽध्वरेषु।
व्यू व्रजस्य तमसो द्वाराच्छन्तीरव्रञ्छुचयः पावकाः ॥

ऋग्वेद अ० २। अ० ७। व० १५। मं० २। अ० ३। सू० ३१। मं० ७ में कहा है। वही पत्नी उत्तम होती है जो सर्वांग सुन्दरी, बहुत प्रजा उत्पन्न करनेवाली, शुभ गुण कर्म उत्तम स्वभावयुक्त हो, उन में से एक एक पुरुष को एक एक स्त्री के साथ विवाह कर प्रजा उत्पन्न करना योग्य है, जैसा—

याः सुबाहुः स्वंगरिः सुषूमा बहुसूवरी।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन ॥

ऋग्वेद अ० ३। अ० ५। व० १६। मं० ४। अ० २। सू० १६। मं० १० में आज्ञा है कि, हे मनुष्यो! आप निन्दित स्त्री का त्याग कर समान रूपवाली, दोषों के नाश करनेवाली को प्राप्त हो कर दोनों मिल कर प्रीति से गृह में रहो, जैसा कि—

आः दस्युघ्ना मनसा याह्यस्तं भुवत्ते कुत्सः सख्ये निकाम।
स्वे योनौ निषदतं सरूपा वि वां चिकित्सदृतचिद्धनारी ॥

और ऋग्वेद अध्याय ३। अ० ५। व० १। मं० ४। अ० १। सू० ५ में कहा है-हे मनुष्यों! जो स्त्री भाई के सदृश अनुकूल नहीं और जो अनुकूल हो तो शत्रु के सदृश विरोध करनेवाली हो और पापी जन सबको पीड़ा देनेवाले हों उनका दूर से त्याग करो, ऋग्वेद अ०३। अ० ५ व० १। मं० ४। अ० १। सू० ५। मं० ५ में कहा है—

अभ्रातरो न योषणो व्यन्तः पतिरिपो न जनयो दुरेवाः।
पापास सन्तो अनृता असत्या इदं पदमजनता गभीरम् ॥

इसलिये आप स्त्री-व्रत होकर उनके खान पान का उत्तम प्रबन्ध कर उनको सर्व प्रकार के सुख दीजिये, यही आपका सच्चा व्रत, तप, नियम है। उनको प्रेम के साथ भाषा पढ़ा कर उत्तम २ पुस्तकें पढ़ाइये और पढ़ी हुई विदुषी धर्मात्मा स्त्रियों का सत्संग कराइये। फिर पञ्चक्रमादि उत्तम कर्म का उपदेश कीजिये और फिर मीठा बोल उनके मन को अपने वश कर आनन्द भोगिये। यही आनन्द और शान्ति का मार्ग है। अन्यथा

और कोई सुख का साधन नहीं है। क्योंकि जब तक गृह में सम्मत और शान्ति नहीं होती तब तक धन प्राप्ति के भी उपाय ठीक २ नहीं होते और बिना धन के गृहस्थी जंजाल होती है, इस लिये जितेन्द्रिय हो कर धन उपार्जन के अर्थ व्योपार आदि कीजिये।

व्योपार

हे प्यारे सुजनो! इस भूमण्डल में उदर-पोषण, शरीर-पालन तथा धन-उपार्जन के निमित्त बहुधा बातें हैं जिनकी गणना खेती, चाकरी, बणिज या भीख, इन चारों नामों से करते हैं परन्तु जो जिससे हो सकता है वह उसी से धन उत्पन्न करता है। इस स्थान पर यह भी स्मरण रहे कि इन सबों में खेती उत्तम है क्योंकि उसमें परिश्रम अधिक करना पड़ता है और स्वाधीन होकर प्रतिदिन बालबच्चों आदि में रहना होता है। उत्तम२ वायु तथा समयपर यथायोग्य भोजन मिलते हैं जिससे शरीर निरोग और हट्टाकट्टा बना रहता है और कार्य भी अधिक होता है। वर्त्तमान समय में एतद्देशीय खेती करनेवाले पुरुष अधिक उत्पन्न होने की आशा पर विष्टा आदि की मलिन खाद डालते चले जाते हैं कि जिनके खान पान करने से भारत में रोगों की प्रबलता होती जाती है और बुद्धि प्रतिदिन घटती चली जाती है। इस विषय में य० अ० १२ मं० ६६ में परमात्मा ने आज्ञा दी है कि हे मनुष्यों! खेती से अत्यन्त सुख प्राप्त होते हैं, खेती में विष्टा कदापि मत डालो, किन्तु बीज सुगन्धित आदि से युक्त करके ही बोओ कि जिससे अन्न भी रोग-रहित उत्पन्न होकर मनुष्यों की बुद्धि को बढ़ावे, जैसा कि--

शुनꣳसुफाला विकृषन्तु भूमिꣳशुनंकीनाशा अभियन्तु वाहैः।
शुनासीरा हविषा तोशमाना सुपिप्पला ओषधी कर्त्तनास्मै॥

यजुर्वेद अध्याय २२ मंत्र २३ में लिखा है कि जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, औषधी, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरवी, आलू, कसेरु, रतालू, शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं वे निरोग होकर बुद्धि, बल, आरोग्यपन तथा दीर्घायुवाले होते हैं।

इस लिये शुद्ध खाद को डाल कृषि-विद्या की उपयोगी पुस्तकों के अनुसार कार्य्य कर धन को प्राप्त कीजिये, विद्वानों ने इस विषय में बहुत उन्नति की है उसी प्रकार आपको भी शीघ्र करना चाहिये।

❋ वणिज व्योपार ❋

वणिज में नाना प्रकार के लाभ हैं, प्रथम धन की अधिक प्राप्ति, दूसरे देशाटन करने से मनुष्य बड़े चतुर, गुणी तथा बुद्धिमान् होजाते हैं। तीसरे अन्य देशीय जनों से समागम या मेल होने से प्रीति का अंकुर जमजाता है कि जिससे अनेकान कार्य्य सिद्ध होते हैं। नाना प्रकार की वस्तु यहां की वहां और वहां की यहां लाते था ले जाते हैं कि जिसके कारण कारीगरी अर्थात् शिल्प की उन्नति होती है तथा नाना प्रकार की नवीन अद्भुत तथा अनोखी वस्तु, कल, यन्त्रादि बनने लगते हैं जिसके द्वारा मनुष्य धनी होजाते हैं तथा धन के द्वारा सर्व आनन्द भोगते हैं।

❋ चाकरी ❋

चाकरी मे मनुष्य अपने परिवार को छोड़ अपनी जन्मभूमि को त्यागन कर हज़ारों कोस जातेहैं, नौकरी कैसी ही प्रतिष्ठित वा कैसा ही बड़ी तनख्वाह की क्यों न हो बिना मालिक की आज्ञा के कोई कार्य्य अपनी स्वतन्त्रता से नहीं कर सकता अर्थात् उसे अपनी स्वतन्त्रता, धर्म तथा इच्छा को रुपये के पलटे में बेचना पड़ता है, अतएव चाकरी की समता कुकुर से दीगई है, क्योंकि इसमें सुख के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते, जिस प्रकार तुलसीदासजी ने कहा है कि 'पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।' धर्म-शास्त्र में लिखा है कि जो पराधीन कर्म हों उनको प्रयत्न से त्यागन करे, इसी प्रकार जो जो स्वाधीन कर्म हों उनको प्रयत्न से सेवन करे, यथा—

> यद्यत्परवशं कर्म तत्तद्यत्नेन वर्जयेत ।
> यद्यदात्मवशन्तुस्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ॥

ऐसा ही य० अ० १५। मंत्र ५ में उपदेश है।

जितने पराधीन कर्म हैं वे सब दुःख स्वरूप हैं, जो स्वाधीन हैं वे सब सुखदायक हैं. अर्थात संक्षेप से यह सुख और दुःख का लक्षण है, जैसा कि मनु जी ने कहा है—

> सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् ।
> एतद्विद्या समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥

किसी चतुर स्त्री ने कहा है—

नींद नारि भोजन परिहरो। तौ तुम कन्थ चाकरी करो ॥

इन पेशों की एक प्राचीन कहावत प्रसिद्ध है—

उत्तम खेती मध्यम बान। निकृष्ट चाकरी भीख निदान॥

घूस - बहुधा हमारे भाई नौकरी को व्यापार से इसलिये उत्तम कहते हैं कि व्यापार में रुपये की अधिक आवश्यकता होती है, तिस पर भी बहुत प्रकार की हानि का भय लगा रहता है तथा चाकरी में मासिक वेतन के उपरांत चपरासी से लेकर बड़ी पदवी तक यथायोग्य प्राप्ति होती है। उन सुजनों को विचार करना चाहिये कि प्रथम तो घूस लेना महा पाप है, दूसरे जो द्रव्य इस भांति से आता है वह हमारी उन्नति को रोकता है। क्योंकि परमेश्वर भले मनुष्यों की सहायता करता है न कि बुरों की। तीसरे जो धन जिस प्रकार आता है उसी भांति जाता है, अतः चार दिन की चांदनी पर लोट पोट न होना चाहिये क्योंकि वह हमारे तुम्हारे सुख चैनरूपी पेड़ की जड़ काटता है। कहा है कि—

रहे न कौड़ी पाप की ज्यों आवे त्यों जाय।
लाखन को धन पाय के, मरे न कफ्फन पाय॥

और ऋग्वेद अ० १। अ० ३। व० २४। मं० १ अ०१८८। सूत्र ४२ मं० ३ में कहा है कि चोर अनेक प्रकार के होते हैं, कोई डाकू, कोई कपट से हरता, कोई मोहित करके दूसरों के पदार्थों को ग्रहण करता, कोई रात में सुरंग लगा कर ग्रहण करते, कोई हाथ से छीन लेते, कोई नाना प्रकार की व्योहारिक दुकानों में बैठ छल से पदार्थों को हरते, कोई घूस अर्थात् रिशवत लेते, कोई भृत्य होकर स्वामी के पदार्थों को हरते, कोई छल कपट से औरों के राज्यको स्वीकार करते, कोई धर्म-उपदेश से मनुष्यों को भ्रमा कर गुरु बन शिष्यों के पदार्थों को हरते, इत्यादि ये सब चोर हैं, नृपश्रेष्ठ इनको निकाल धर्म से राज्य का पालन करे। जैसा—

अपत्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम्।
दूरमधि श्रुतेरजा॥ ३॥

यह वार्ता तो स्पष्ट है कि घूसिया लोग हज़ारों की घूंस लेने पर भी कौड़ी २ को तंग रहते हैं, क्योंकि उनका धन वेश्यागमन, शराबख़ोरी आदि फिजूलख़र्ची में जाता है यदि इनसे बच गया तो चोरी आदि

दैवी आपत्तियों में पड़ जाने से तमाम होजाते हैं, तथा जब कभी इनका भेद सरकार में खुलजाता है तो बड़ी बड़ी हानियां उठानी पड़ती हैं अतः सभ्य सज्जनों को ऐसे धन की कभी इच्छा न करनी चाहिये।

❀ भीख ❀

यह बहुत ही बुरी है क्योंकि इससे घर घर जाना पड़ता तथा नाना भांति के कटुवचन सहने पड़ते हैं जिस पर भी पेट भर नहीं मिलता, फिर ऐसे मनुष्यों की प्रतिष्ठा नाममात्र को भी नहीं होती, अतः यह काम अन्धे, लूले, लँगड़े आदि का है जो परिश्रम नहीं कर सकते।

उपरोक्त कथन से व्योपार की बड़ाई प्रकट होती है, अथोपरान्त जिस देशवाले कारीगरी या व्योपार में लगे रहते हैं वह सदा धनवान् बने रहते हैं, जिन देशों में चाकरी को मुख्य माना है वह सर्वदा निर्धन ही रहते हैं, किसी प्रकार से उनमें चमत्कारी नहीं आती। इसके लिये आप भारत ही को देख लीजिये जहां व्योपार से चाकरी की पदवी अधिक है, जिससे अपनी प्रतिष्ठा समझते तथा धन प्राप्त होने का द्वार जानते हैं। परन्तु कुछभी ध्यान नहीं करते कि इस देश में २५ करोड़ मनुष्य निवास करते हैं, उन सबके लिये उच्च पद की नौकरियां कहाँ से आ सकती हैं ! अधिक से अधिक बीस लाख ले लीजिये अर्थात् 'एक अनार और दस बीमार' से भी अधिक यह रोग फैल रहा है कि जिसके कारण और जो जो कुछ माल मता था सब खा गये तथा लाखों मनुष्य जो न शिल्पविद्या जानते न व्योपार कर सकते हैं, नौकरी की लकीर पर फ़क़ीर बने बैठे रहने से अन्नमात्र को भी तंग होगये। यदि व्योपारी होते तो यह कुदशा इस भारत की कभी न होती क्योंकि लिखा है कि—"व्योपरे बसते धनम्।" अतः उपरोक्त वार्ताओं को जान निकम्मे पेशे करने का कभी विचार न करो। जहांतक हो सके विद्या पढ़ने के उपरान्त उत्तम उत्तम व्योपारों को तन मन धन से करने की टेव डालो तथा सत्य को काम में लाओ कि जिससे उद्यमरूपी नाव संसाररूपी सागर में अच्छे प्रकार चली जावे। खेती वा व्योपार को नाना भांति से उन्नति दो, उनके अर्थ नवीन वा प्राचीन दोनों रीतों को काम में लाओ कि जिससे सब प्रकार के सुख तथा आनन्द मिलने लगें।

प्यारे भाइयो ! व्योपार से देश को यथार्थ लाभ होते तथा वह चमत्कारी

देखने में आती है कि जिसका पारावार नहीं। देखो पूर्व समय में भारत की क्या दशा थी, अब क्या होगई। श्रीमान् अँगरेज़ बहादुर इसी व्योपार की बदौलत बादशाह होगये। जब यह लोग मेज़ पर भोजनों के अर्थ बैठते हैं तो चीन के बर्तनों में बंगाल के चावल अफ़ग़ानिस्तान के मेवे, फ्रांस की शराब, अमरीका की मछली आदि नाना पदार्थ चुने जाते हैं, यह सब केवल व्योपार ही का फल है। परन्तु यह भी स्मरण रहे कि व्योपार की वृद्धि जब ही होती है जब देश में कारीगरी फैलाई जावे कि जिससे नाना भांति की वस्तु तथा अद्भुत कला यन्त्रादि भी मुल्क में बनने लगें। जिस प्रकार इस समय इँगलैण्ड आदि देशों में होरहा है, जहां से करोड़ों रुपये का माल भारत को आता है, और आते ही हुर्र हो जाता है। देखिये किस प्रकार कपड़े कलों के बने हुये आते हैं, सूत बारीक तथा नाना भांति के कला यन्त्र हथियार अंगरेज़ी बूट, जूते, छड़ी, सन्दूक, कागज़ पिटारी, झाड़ फ़ानूस इत्यादि, हमारे गृहों में सब सामान उधर ही का दीख पड़ता है। यहां तक कि सुई तथा पेंचक, दियासलाई, मेज़, कुर्सी आदि भी, फिर भला वह देश क्योंकर मालामाल न हो?

क्योंकि यह लोग अमरीका, आस्ट्रेलिया, आयर्लैंड, स्कन्दरिया, हिन्दुस्तान आदि प्रत्येक स्थान पर बेधड़क आते जाते तथा लाभ उठाते हैं। अथोपरान्त देशान्तर की अपूर्व अनोखी वस्तु लाकर उनको अपने देश में बनवा कर उनका प्रचार कराते हैं। इन सब को भी रहने दीजिये। प्रथम अपने शरीर पर दृष्टि डालिये, सिर से पैर तक तो सिवाय विदेशी वस्तुओं के देशी एक भी न पाइयेगा।

प्यारे सुजनो! इसका क्या कारण है? क्या सदैव से इस देश की ऐसी ही दशा चली आती है, कि प्रत्येक लोग एँडमान के निवासियों की भांति कपड़ों तक के लिये परदेशियों के अधीन रहें! कदापि नहीं, स्वप्न में भी नहीं! यदि पहिले से भारतवर्ष की ऐसी दशा होती तो निश्चय जानिये कि आज तक भारतवर्ष का नाम ही नहीं रहता, दासत्व स्वीकार करने पर भी एक समय का भोजन न मिलता। नहीं, नहीं, यहां प्राचीन काल में ऐसी शिल्पविद्या की अधिकता थी कि कोई विलायत इसकी समानता नहीं कर सकती थी। ढाका की मलमल अरब तक चमकती थी, बनारस की साड़ियां सारे संसार को ढकनी थीं, गुजरात के मिसरू मिश्र तक भड़कते

थे फ़र्रुख़ाबाद के लिहाफ़ ईरान तक पहुंचते थे, ठाकुरद्वारे की छींटें चीनी की छींटों को चुनौती देता थीं, चन्देरी की ज़रबफ़्त भारत की ज़री का नमूना सभी देशों के अधिपतियों के चित्तों को लुभाती थीं, नदिया की दरियाई ने तातार के मरुस्थल में मानों दरिया बहा रक्खे थे। अभी थोड़े ही दिन की बात है, यहां से हज़ारों रुपयों का माल जहाज़ों पर लाद अपने देश को ले जाते थे और लाखों का लाभ उठाते थे। चार सौ वर्ष भी नहीं बीते कि योरुप-निवासी आर्यावर्त्त में आने के अर्थ सीधा मार्ग ढूंढने के लिये कैसे व्यग्र हुए थे। अरब आदि देशवासी भारत से वाणिज्य पदार्थ को मिश्र देशों में होकर योरुप को ले जाते थे, इनसे सौदागर लोग इतना लाभ उठाते थे कि जितना समस्त भूमण्डल के अन्य किसी में होना असम्भव था। यही कारण था कि अंगरेज़ों को यहां आने की हलचली मच रही थी। उस समय कोई ऐसा देश न था जहां के लोग यहां आने की अभिलाषा न करते हों। अङ्गरेज़ों ने जो फ़र्रुख़सियर से ज़मींदारी ली थी वह इस अर्थ को सिद्ध करने के लिये ही थी कि यहां जुलाहे बसा कर उनसे कपड़ा ख़रीद कर सीधा ले जाया करें और घर घर न फिरना पड़े। क्या महिमा है उस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर की कि हिन्दुस्तान के जुलाहे तो वही रहे, अङ्गरेज़ भारत से वस्त्रादि ले जाने के पलटे इंगलैंडादि से वस्त्रादि माल भारत में लाने लगे। यही कारण है कि वर्त्तमान समय में भारत के समस्त विभागों में इङ्गलैंड ही इङ्गलैंड हो रहा है।

वर्त्तमान समय में इनकी विद्या, साहस तथा एकता की तुलना कोई नहीं कर सकता, जो आज यह अग्रशोची हैं अन्य कोई दृष्टि नहीं आता। शूरवीरता में पूरी योग्यता कि जिसके कारण पूरे सभ्य गिने जाते हैं। शोक तो हमको अपने ही देशी भाइयों पर है जो ब्योपार वा कारीगरी की ओर दृष्टि भी नहीं उठाते, साहस का तो नाम ही मेट दिया, एकता के स्थान पर फूट से काम लिया जाता है शूरवीरता पर छार डाल दी। सच पूछो तो आलस्य में रहना, धनका अभिमान करना और अधिक ब्याज खाने को हा स्वर्ग समझते हैं। क्योंकि घर बैठे ही बैठे माल आता है, चुपचाप सूद की दर प्रति दिन बढ़ाते चले जाते हैं कि जिसके कारण सामान्य जन अधिक पिसे जाते हैं जिस से हमारे देश की और भी हानि हो रही है।

प्यारे सज्जनों! इन बातों से क्या कभी देश की उन्नति हो सकती है?

कदापि नहीं। इसके उपरान्त जो माल विलायत से आता है उसके पलटे यदि यहां से जाता है तो हम यही कहेंगे कि हमारे जीवनमूल या भोग विलास की मूल वस्तु जैसे गेहूं, रुई, रेशम, सरसों आदि और जिनके बदले में वहां से वही मेम बाबा लोगों की तसवीरें, कांच के भांति २ के गिलास, लैम्प तथा काठ के खिलौने, बूट जूते, बारीक साफ तार आदि जिनको देख मनुष्य का मन फड़क जाता है एवं हम लोग ज़ेवर बेच कर उन वस्तुओं से घर भर लेते हैं। फिर अन्नादि के चले जाने से यहां छः सेर बिकने लगा है कि जिसके कारण लाखों जानें लुप्त चली जाती हैं। इनका मूल कारण भी यही है कि एतद्देशनिवासी शिल्प व्यापार की ओर ध्यान नहीं देते। यहां प्रति दिन तंगी आने का जो कारण है; वही कारण वहां सुख वैभव बढ़ने का है, क्योंकि हमारे देश के कारीगर हाथ पर हाथ धरे रोते रहते हैं, उनको शाम तक पेट भर रोटी नहीं मिलती, लाखों मनुष्य भीख मांगते फिरते हैं, यह केवल विलायती वस्तुओं का आदर करने का ही कारण है। हमारे यहां की सौदागरी की यह दशा है कि जिसको फेरी कहना चाहिये, क्योंकि कोई तो बनारस से लाहौर ले जाता है, कोई कलकत्ता से बम्बई, मद्रास,। कहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि हमारे सौदागर यहां का वहां तथा वहां का यहां लौट फेर करते हैं, क्या भला ऐसी सौदागरियों से हमारे देश का प्रकाश हो सकता है? कदापि नहीं; क्योंकि एक भाई से लिया दूसरे को दिया, फिर भला उन्नति की कौन सूरत? क्योंकि जिस ताल में से सैकड़ों मोरियों द्वारा पानी जाता हो और आने का एक भी द्वार न हो तो बतलाइये कि वह ताल कब तक भरा रहेगा?

प्यारे भाइयो! यह भी एक स्वाभाविक बात है कि जिस किसी वस्तु की अधिक उन्नति हो जाती है जैसे कि प्रातःकाल, मध्यान्हकाल, सायंकाल, बाल्यावस्था, तरुणावस्था, इसी भांति सदा धन, पराक्रम, विद्या आदि में घटती बढ़ती होती रहती है। जैसा कि एक समय भारत ही भारत था, जब इसके बुरे दिन आये तो मिश्र, यूनान, रूम ने आनन्द उड़ाया। फिर समय के फेर फेर ने इनको भी लिया, अब वर्त्तमान-समय में इङ्गलैंड, जापान, जर्मनी अमेरिका की कला जगमगा रही है, चारों ओर उन्हीं का डंका बज रहा है। पदार्थविद्या में तो यहां तक हाथ मारे हैं कि मनुष्य गण देख कर चकित

रह जाते हैं। देखो तार में हज़ारों कोस के समाचार आन की आन में आते जाते हैं, समुद्र में जहाज़ों के आने जाने के मार्ग देखिये। चीन, जापान, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, इंगलैंड, हिन्दुस्तान आदि से नाना प्रकार के पदार्थ लदे हुये चले जाते हैं। कलों से कैसा कपड़ा बुना जाता है, तोप कैसा दूर गोला फेंकती है, घड़ी कैसा समय बताती है, नोट कैसा काम देते हैं, छापे को देखिये कि पुस्तकों को छाप कर घर घर कर दिया, कौड़ियों में मिलने लगीं, अन्धों के पढ़ाने के अर्थ कैसे २ यत्न निकाले हैं, डाक्टरी के पूरे उस्ताद हो गये हैं, ज्योतिष, भूगोल आदि में वह उन्नति की है कि जिसको देख कर मन उछलता है, बूटियों के खोज में कैसा परिश्रम किया है, पहाड़ नदी आदि में कैसे २ काम किये हैं, सच बात तो यह है कि इस समय जो कुछ है वह सब योरुप अमेरिका का ही प्रभाव है।

प्यारे सुजनों! इङ्गलैंड, जापान, अमेरिका आदि देश में जाकर इन विद्याओं को सीख अपने देश में आकर प्रचार करो ताकि भारत की सुदशा हो जावे, नहीं तो चौपट हुआ जाता है, क्योंकि अब बिना विदेश गये भारतवासियों का काम किसी प्रकार से नहीं चल सकता। यदि भारतवासी आज राजनैतिक अधिकार प्राप्त होने की इच्छा करें तो हमें विदेश ही एक मात्र अवलम्ब देख पड़ता है। यदि हम विज्ञान आदि विविध विद्या सीखना चाहें तो भी विदेश ही में बाध्य हैं, यदि न जावें तो हमने अपने सुख को खोया, अपने देश की भलाई में असमर्थ हुए, आप निकम्मे और निर्धन रहे, अतः जिस तरह देखो विदेश बिना हमारी गति नहीं।

प्यारे सुजनों! विचार कर देखिये, आज कौन ऐसा देशहितैषी मनुष्य है जो बिदेश बिना गये दीन भारत भूमि का किंचिन्मात्र भी उपकार कर सके? क्या राजनैतिक, क्या विद्या-विषय, सभों के अवलोकनार्थ आन्दोलन करने, हानि लाभ उठाने का एक मात्र आज हमें विदेश ही हो रहा है। अधिक क्या कहें, आज विदेश बिना हमारा छुटकारा नहीं। हमारी चुटिया विदेश के हाथ है। जब हम इस प्रकार से विदेश के आधीन हो रहे हैं तो यदि विदेश जाने का उपाय न करें तो क्यों कर भलाइ कर सकते हैं? इस लिये इस ओर ध्यान देना अभीष्ट है।

हे सुजनों! जैसे मलयागिर पर चन्दन की, असभ्य देशों में ईश्वरबन्दन

की, बागों में फूलों की और वनों में फलों की चाह नहीं, ऐसे ही हमारे स्वदेशीय भाइयों को देशान्तर गमन करने को मन नहीं होता। घर की अँधेरी कोठरी में, जन्मभूमि की कुंजगलियों में घुट घुट कर मर जाते हैं, जन्मभूमि में लंघन करके मरना अङ्गीकार है, परन्तु घर के बाहर जाने को सौगन्द, वरन् नगर छोड़ना महा संकट जानते हैं। जन्मभूमि की प्रीति ने उन्हें ऐसा मोहित कर रक्खा है कि उससे अलग होने को उनका जी ही नहीं चाहता। जैसे कोई विषयी किसी रूपवती वेश्या पर आसक्त होकर अपनी धन प्रतिष्ठा गौरव और तन को अर्पण करके निर्लज्ज हो उसके द्वार का दास बन जाता है, वही दशा हमारी जन्म-भूमि के स्नेह में बीत रही है। परन्तु यह स्नेह वास्तविक स्नेह नहीं कहा जा सकता, जन्म-भूमि में बैठे बैठे उसके नाम को कलंकित कर देना; जन्म-भूमि को प्यार करना मान रक्खा है।

हे प्यारे भाइयो! उत्तम पुरुषों की भांति उद्योग में लग जाइये, चाहे प्रथम किसी प्रकार के विघ्न भी सहने पड़ें। क्योंकि बुद्धिमान् वही हैं जो जिस कार्य को आरम्भ करते हैं फिर उसे बिना पूर्ण किये नहीं छोड़ते, मध्यम पुरुष विघ्न होने पर उस कार्य्य को छोड़ देते हैं तथा निकृष्ट जन विघ्नों के भय से कार्य को आरम्भ ही नहीं करते। यथा—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः।
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः॥
विघ्नैस्सहस्रगुणितैरपि हन्यमानाः।
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति॥

अथोपरान्त यह भी कहा है कि मनुष्य वही हैं जो साहस, धीरज, उपाय बल, बुद्धि, पराक्रम को सदा काम में लाते हैं, कबीर का वचन है—

जिन ढूंढ़ा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।
मैं बौरी ढंढ़न गई, रही किनारे बैठ॥

सच तो यह है कि जिस किसी ने उद्योग किया उसने फल पाया। देखो प्राचीन काल में योरुप की क्या दशा थी, जिस समय ख़लीफ़ा वलीद ने योरुप को विजय करने पर कमर बांधी, हस्पानियां तक कोई रोकनेवाला न मिला। वेही हस्पानियांवाले अर्थात् स्पेन तथा पोर्तगालवाले ऐसे बढ़े कि

अमेरिका अर्थात् नई दुनिया को दरयाफ्त किया। वही अँगरेज़ जो छः सौ वर्ष पहिले उन्नतिशाला नहीं गिने जाते थे, सो अब सारे संसार के शिरोमणि गिने जाते हैं। जिन यूनानियों की शिक्षा से योरुप सभ्य बना वे वर्षों पराधीन रहे, और जिस रूस को मुसलमान लोग निर्धन तथा निर्लोभ जान छोड़ कर चले आये थे वहां ही के रूसी, धरती के छठे भाग के मालिक हो गये। जिन पार्सियों ने ख़लीफ़ा उमर के मारे ईरान छोड़ कर भारत वास किया था वह अब कैसे हो गये, बीसियों जहाज़ चले आते हैं, बीसियों दस दस भाषा लिख पढ़ सकते हैं, देश देशान्तर में करोड़ों रुपये के व्यापार करते हैं, स्त्रियों को ऐसी शिक्षा देते हैं कि वह फिरंगियों की समता करती हैं। अब आपको क्या २ गिनावें ! संसार में सब की घटती बढ़ती इसी उद्योग के अधीन है, जैसा कि कहा है—

उद्योगिनं पुरुषसिंह मुपैति लक्ष्मीः।
दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति ॥
दैवं विलंघ्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या।
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यतिकोऽत्र दोषः ॥

अर्थात् उद्योगी पुरुष सिंह के पास लक्ष्मी जाती है, 'दैव देगा' यह कायर कहते हैं, जो दैव को लांघ कर अपनी शक्ति से पौरुष कर यत्न करने पर कार्य की सिद्धि न हो तो इसमें क्या दोष ! और भी कहा है—

दैव दैव करि मूर्खजन, कुछ न करें व्यवसाय।
क्यों कर कर डाले बिना, कौर पेट में जाय ॥
श्रम कीन्हे धन होत है, धन ही सुख को मूल।
व्यवसाई अरु चतुर नर, उद्यम को मत भूल ॥

अतः किसी सज्जन का वचन है कि मणि की भी जब तक वह कान में रहता है कुछ प्रतिष्ठा नहीं होती, तलवार जब मियान में रहती है कुछ नहीं कर सकती। यजुर्वेद में ईश्वर आज्ञा देते हैं—

आनोमित्रावरुणाघृतैर्गव्यूतिमुक्षतम्। मध्वा रजांसिसुक्रतु ॥

और ऐसीही अ० २१ मं० ६ वा ७ में आज्ञा है।

जिस प्रकार सांस ऊपर नीचे आती है ऐसे ही शिल्प विद्या अर्थात् जहाज़ चलाने की विद्या को जाननेवाले मनुष्य भ्रमण करते रहे, अर्थात् जहाज़ों में घूमते रहे, जैसे कि सांस काम करती है, उसी प्रकार हम लोग भी समुद्र में फिरें, ऐसे कर्म करनेवाले मनुष्यों को वह परमात्मा शुभकारी नामों से पुकारते हैं तथा अन्त में उपदेश करते हैं कि देशदेशान्तरों में फिर एक दूसरे से व्योपार करो, क्योंकि देश में धन की उन्नति व्योपार तथा कारीगरी से होती है जिसके बिना किसी प्रकार के आनन्द के स्वप्न में भी दर्शन नहीं होते। ऐसा ही य० अ० २१ मं० ६ वा ७ में आज्ञा है और ऋग्वेद अ० ३ । अ० ३ । व० १६ । मं० ३ अ० ४ सू० ५३ मं० ४ में कहा है कि—

मनुष्यों को चाहिये कि कार्य सिद्धि के लिये सर्वत्र सिद्ध भ्रमण करें परन्तु सदा नहीं, भ्रमण के पश्चात् गृह पर रह कर सम्पूर्ण भाई बन्धु से मेल कर फिर भी ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये एक से दूसरे देश में आवें जावें। और ऋ० अ० २ । अ० २ । व० ७ मं० १ अ० २१ सू० १४७ मं० १२ में कहा है, विद्वानों को चाहिये कि जैसे घोड़े आदि पशु पैरों से चलते हैं वैसे चलनेवाली बड़ी २ नाव बना के और एक द्वीप से दूसरे द्वीप वा समुद्र में युद्ध अथवा व्यवहार के लिये आया जाया करके एक ऐश्वर्य की उन्नति निरन्तर करें जैसा—

रथाय नावमुत नो गृहाय नित्यारित्रां पद्वतीं रास्यग्ने ।
अस्माकंवीरां उतनोमघानोजनांश्चया पारयाच्छर्मया च ॥

अब आप इन उपरोक्त वार्त्ताओं को जान पूर्व भारतवासियों की भांति उद्योग को धारण कर विलायत, इंगलिस्तान, जर्मनी, पेरिस आदि देशों में जाकर शिल्पविद्या आदि उपयोगी वा लाभकारी बातें सीख फिर अपने देश में आकर उन बातों का प्रचार कीजिये तथा व्योपार के अर्थ अन्य क़ौमों की भांति पर्यटन कीजिये तो फिर भारत की कुदशा न रहेगी। जैसा कि वर्त्तमान समय में मदरास, बम्बई, भड़ौच, अहमदाबाद, इंदौर, कानपुर, कलकत्ता आदि नगरों में कपड़े सूत आदि और लखनऊ में काग़ज़ कलों से बनता है, परन्तु वह सब कलें इतना सूत तथा कपड़ा अथवा काग़ज़ नहीं बनातीं कि जितनी भारतवर्ष को आवश्यकता है, अभी तो इनकी दस बीस गुणी हों और उनमें भांति भांति के वस्त्र तथा नाना

भांति की आवश्यक वस्तु बनने लगें तो भारत के पेट में चैन पड़े। जिस प्रकार इलाहाबाद में देशी तिजारत के नाम से एक कम्पनी नियत हुई है जिसमें ढाके की मलमल, मुरादाबाद के कपड़े, नगीने के कलमदान, बरेली की दरी, अमृतसर के धुस्से लोई, बनारस की धोती, अहमदाबाद आदि भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों की प्रसिद्ध प्रसिद्ध वस्तु बिकती हैं इसी प्रकार और भी दुकानें भारत के नगरों में होनी चाहिये कि जिससे हमारी देशी वस्तुओं को काम में लाने का प्रचार हो जावे।

हमारे देशीय कारीगरों को उचित है कि वस्तु बनाने में परिश्रम करें कि जिसमे उनको भी सुख चैन मिले तथा हमारे भारत से ब्योपार की वस्तु बाहर जाने लगे तो यहां भी धन की बढ़ती होने की पूर्ण आशा हो जावे।

हे हमारे देश के राजा महाराजाओ, सेठ साहूकारों! आप इस ओर ध्यान देकर अपने अपने नगर तथा राज्य में शिल्पविद्या के स्कूल नियत कराइये तथा कलों से काम होना प्रचलित करा दीजिये जिससे समस्त वस्तुयें हमारे देश में बनने लगें, तथा आप भी सब कृपा कर उन्हीं देशीय वस्तुओं को काम में लाइये, जैसे हमारे पुराने पुरुषा अपनी देशीय वस्तुओं का आदर सत्कार करते थे कि जिससे इन देशीय वस्तुओं के काम में लाने का प्रचार समस्त भारत में हो जावे।

अथोपरान्त जब भारत ही में सब वस्तु उत्तम वा मनोहर बनने लगेंगी तब वह विलायत की वस्तुओं से सस्ती भी बिकेंगी तो समस्त देशवासी प्रसन्नतापूर्वक अपने ही देश की बनी वस्तुओं का आदर सत्कार करने लगेंगे तब ही भारत देश की उन्नति होगी।

अथोपरान्त हमारे देश में कम्पनी बनाने की रीति न होने के कारण देश भर को हानि हो रही है क्योंकि सर्वजनों के पास अधिक रुपया होना असम्भव है जो ऐसे ऐसे कार्यों को अकेले ही कर सकें। यही कारण है कि यह देश बड़े बड़े कार्य नहीं निर्वाह कर सकता। दूसरा मुख्य कारण अविद्या है, क्योंकि अविद्या के प्रताप से फूट फैल रही है, अपने पेट पूर्ण करने के अतिरिक्त किसी भलाई का किंचित् विचार नहीं। यदि इंगलैंड की भाँति एकता होती तो क्या इङ्गलैंड तथा फ्रांस आदि के ही मनुष्य थोड़े थोड़े रुपये डाल कर आप अपने देश को लाभ पहुंचाते? कदापि नहीं।

हे भारतवासियो ! तनिक तो विचार करो कि फूट से हमारी तुम्हारी क्या दशा हो रही है, इस कारण देश को लाभ जान कम्पनी बनाने की टेव डालो। अङ्गरेज़ी में सौदागरों के समूह अर्थात् साझियों के झुण्ड को कम्पनी कहते हैं। देखो पहिले हिन्दुस्तान में अङ्गरेज़ों की ईस्ट-इण्डिया कम्पनी ही आई थी, व्योपार करते करते बादशाह हो गई। आप लोग भी उठ बैठें और बड़े कार्यों को बहुत से मनुष्य पत्ती डाल कर एक कम्पनी बना कर करने लगें तो फिर सब बातें शीघ्र सुधर जावेंगी।

प्यारे मित्रो ! पूर्ण पुरुषार्थी और विद्वान् न होने का प्रबल कारण यही है कि हमारी सन्तानों के यथावत् संस्कार नहीं होते, इसलिये उन्नति के अभिलाषियों को इन संस्कारों की परिपाटी को शीघ्र प्रचलित करना योग्य है।

संस्कार

मनुष्यों के १६ संस्कार गर्भाधान से लेकर मृत्युपर्यंत अवश्य करना चाहिये, जैसा मनुस्मृति अध्याय २ श्लो० १६ में लिखा है—

निषेकादिश्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योतो विधिः।

वे सोलह संस्कार ये हैं—गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्त्तन, विवाह, वानप्रस्थ, संन्यास और अन्त्येष्टि।

व्यासस्मृति अ० १ श्लोक १५ में भी इन्हीं संस्कारों को बतला कर १६ की गणना की है कि 'संस्काराः षोडशस्मृताः।'

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध के अ० १ में सुमन्त ने इन्हीं सोलह संस्कारों के लिये उपदेश किया है। क्योंकि जो निषेक आदि वैदिक संस्कारों से पवित्र होते हैं वह अवश्य ही मुक्ति पाते हैं।

परन्तु किसी किसी स्मृति में १७ और किसी में १५ संस्कार पाये जाते हैं, इस न्यूनाधिकता का मुख्य कारण यही है कि किसी ने दो संस्कार को एक के अन्तर्गत कर दिया है, किसी ने पृथक पृथक माना है। अस्तु संस्कार १६ ही हैं, इसमें कुछ मतभेद नहीं पाया जाता। यद्यपि 'दशकर्मपद्धति' पुस्तक बनानेवाले पण्डितों ने वर्त्तमानसमय की रीत्यनुसार

दश ही संस्कार माने हैं, तो भी १६ का खण्डन नहीं किया। उस गणना से भी १६ संस्कार सिद्ध हो जाते हैं। क्योंकि उन्होंने उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, इन तीनों संस्कारों को वर्त्तमान समय की रीत्यनुसार एक ही के अन्तर्गत कर दिया है और केशान्त-संस्कार को एकदेशीय और संन्यास, वानप्रस्थ और अन्त्येष्टिकर्म प्रचार न होने के कारण नहीं माने, परन्तु इन सब के मिलने से १६ संस्कार हो जाते हैं। इस लिये मैं दशकर्मपद्धति बनानेवाले पण्डितों से प्रार्थना करता हूं कि उस पुस्तक में उक्त तीनों संस्कारों की विधि बढ़ा दें, जैसा कि स्मृतिकारों ने आज्ञा दी है, जिससे संसार में संस्कारों की परिपाटी बनी रहे।

इसके अतिरिक्त इस समय भी जब कि भारत धर्मपरिपाटी बहुत अधोगति पर है, इनमें से आधे से अधिक संस्कार प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य के यहां होते हैं, यद्यपि उनकी वेदानुकूल रीतें जाती रहीं और नाममात्र के पौराणिक पण्डितों ने मनमानी रीति प्रचलित कर ली है।

परन्तु शोक है! कि वर्त्तमान समय के बहुधा बड़े जन कि जिन्होंने ऋषि मुनियों के ग्रन्थों पर दृष्टि भी नहीं डाली, जो वेद विद्या और उसके सिद्धान्तों से बिलकुल अनजान हैं, या जिन्होंने अपनी सम्पूर्ण आयु को दूसरे देश की विद्या और उसके रहनेवालों में रहकर उनके सिद्धान्तों को सीख कर उनकी ही पुस्तकों के पाठ में व्यय की है, जो उन्हीं के गिरोहों में रहते हैं, इनके मुख्य मर्म से निपट अज्ञान रह गर्भाधानादि सोलह संस्कारों में नाना प्रकार की शंकायें उत्पन्न करते हैं और बहुधा नेचरिया विवाह आदि दो एक संस्कारों को तो मानते हैं, परन्तु यज्ञोपवीतादि करने को वे वृथा ही समझते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि वह यह नहीं जानते कि संस्कार का अर्थ क्या है और इसका फल कुछ होता है या नहीं? देखिये 'सम्' पूर्वक कृञ् धातु से संस्कार शब्द सिद्ध होता है जिसका अर्थ अच्छे प्रकार सुधार करना है।

यह दो प्रकार का होता है-(१) शरीर सम्बन्धी (२) आत्मा सम्बन्धी वा अन्तःकरण सम्बन्धी। इन दोनों में आत्मासम्बन्धी संस्कार अति उत्तम है, इसी कारण यज्ञोपवीत और वेदारम्भ मुख्य समझे जाते हैं।

प्रियवरो! जितनी वस्तुयें इस संसार में परब्रह्म परमेश्वर ने उत्पन्न की हैं, मैं जानता हूं कि उन सबको सुधराव की आवश्यकता है, यहां तक कि

बिना सुधराव किये हम उनसे अपना कार्य भी नहीं ले सकते और न वे उत्तम जान पड़ती हैं! क्या आप नहीं देखते कि पत्थर जब तक वह अपनी स्वाभाविक दशा में होता है तो अच्छा नहीं मालूम पड़ता, परन्तु जब उस को कोई शिल्पकार दुरुस्त करता है तो वही पत्थर उत्तम जान पड़ता है और प्रत्येक मनुष्य उसको देखकर प्रसन्न होता है। इसी प्रकार हीरा आदि रत्न भी बिना सान दिये बेडौल रहते हैं और सान देने पर उत्तम जान पड़ते हैं। यही सान देना एक प्रकार का संस्कार कहाता है। इसी प्रकार बुरी से बुरी और छोटी से छोटी वस्तु भी अच्छी और बड़ी हो सकती है। पक्षी की भाषा और रंग भी सुधराव से उत्तम हो जाता है।

परन्तु शोक है कि हम पशु पक्षियों और घास आदि के सुधार के लिये नाना प्रकार के उपाय (संस्कार) करें और मनुष्य मात्र के सुधार के अर्थ संस्कार करना वृथा समझें। देखिये, जो मनुष्य वेदारम्भ संस्कार कर विद्या पढ़ लेते हैं वही सभ्य और जो विद्या नहीं पढ़ते हैं वही असभ्य कहाते हैं। इस लिये मान्यवरो! आप भी मनु महाराज के लेखानुसार वेदानुकूल संस्कार कर आनन्द उठाइये, जैसा कि मनु० अ० २ श्लोक २६ में कहा है—

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥

द्विजातियों के गर्भाधानादि संस्कार वेदमंत्रों से होने चाहियें क्योंकि इससे शरीर और आत्मा की शुद्धि अर्थात् संस्कारों के करने से सन्तान शुद्ध, निष्पाप और बड़ी धर्मात्मा होती है।

❋ (१) गर्भाधान ❋

प्रिय सभ्य महोदयो! इसी संस्कार पर हमारी शारीरिक और आत्मिक उन्नति निर्भर है। देशोन्नति और अवनति का बीज इसी समय वपन होता है, कुल के सभ्य वा कीर्तिरूपी सूर्य से चमकने की नींव इसी समय पड़ती है, सांसारिक और पारमार्थिक सुखों का प्रारम्भ यहीं से होता है, चारों आश्रमों के विधिवत् पालन करनेवाले पौधे का मूलारोपण इसी समय होता है, इसी संस्कार पर सम्पूर्ण सृष्टि के बनने और बिगड़ने का दायित्व है, फिर इतने बड़े महत्व के पौधे पर ध्यान न देना कैसे शोक की बात है?

जैसे चतुर शिल्पी सांचे से मनमानी मूर्ति आदि गढ़ सकता है ठीक वैसे ही हम भी राम कृष्ण से पुत्र और सीता राधा दमयन्ती सी पुत्रियां उत्पन्न कर सकते हैं। परन्तु कब ? जब कि हमारे सारे कार्य विधिपूर्वक हों। लेकिन वाह री सभ्यता ! इच्छा तो करते हैं कि यदि 'श्रवण' सा पुत्र हो तो सेवा खूब करे परन्तु इच्छा करने पर भी उन नियमों पर एक क़दम नहीं चलना चाहते, फिर अभीष्ट सिद्धि हो तो कैसे हो ? मूर्ख मनुष्य 'इमरती' खाना तो चाहता नहीं, फिर स्वाद मालूम होतो कैसे हो ? इस हेतु ऐ देशहितैषियों ! संसार के सभ्य महोदयो ! यदि आप अपनी इच्छा पूर्ण किया चाहते हैं तो सब से प्रथम इसी संस्कार पर आपको पत्नी सहित पूर्ण रूप से ध्यान देना चाहिये। क्योंकि जब तक इस संस्कार की प्रणाली न सुधारी जायगी तब तक अन्य १५ संस्कार भी पूर्ण रूप से फलप्रदाता न होंगे। क्या वृक्ष की जड़ काट उसके पल्लवित होने की आशा की जा सकती है ? नहीं, कदापि नहीं, ऐसा त्रिकाल में भी होना सम्भव नहीं ! अतएव प्रिय सभ्य गणो ! एवं प्यारी महिलाओ ! यदि तुम संसार को स्वर्गमय देखा चाहती हो, यदि मनुष्यश्रेणी की गणना से मूर्खों का बहिष्कार कर देना चाहती हो, यदि भारत को 'सितारे मुल्क' बनाया चाहती हो तो मनोयोग से इस संस्कार पर ध्यान दो। *

❀ (२) पुंसवन ❀

यह संस्कार गर्भस्थिति के दूसरे या तीसरे मास होता है, प्रायः इस की सम्पूर्ण विधि में पति पत्नी परन्तु विशेष कर पत्नी को आदेश दिया गया है कि वह यत्न से गर्भ की रक्षा करे। रेचनकारी औषधि वा वस्तु के आघात से सदैव बची रहें ताकि गर्भ पर कोई व्याघात न पहुंचे। क्यों कि प्रत्येक पौधे की प्रारम्भिक दशा बड़ी कोमल होती है और उस दशा में यदि उस पर कोई भारी आघात लग जावे तब उसे मृत्यु के मुख में पतित हुआ ही समझिये। बस इसी तरह तीसरे मास तक गर्भ की धारक शक्ति निर्बल होती है, अतएव इस समय तक बड़ी सावधानी रखना योग्य है, एवँ इस संस्कार में जिन जिन औषधियों का सेवन कराना लाभदायक

* इस संस्कार की विधि एवं गर्भाधान के सम्पूर्ण विषय मेरी बनाई 'गर्भाधानविधि' नामक पुस्तक में अवश्य देखिये मूल्य =) मात्र है।

बताया गया है उन सब का गर्भिणी को अवश्य सेवन कराना चाहिये, क्योंकि उन औषधियों से गर्भ को नाना प्रकार के लाभ पहुंचते हैं।

(३) सीमन्तोन्नयन

उक्त संस्कार का समय चौथा, छठा और आठवां मास है। गर्भिणी के मन को शान्त रखने तथा मानसिक उच्च विचारों से पूर्ण संकल्प विकल्प रखने की इस संस्कार की आज्ञा है, क्योंकि चतुर्थ मास से ही गर्भजात बालक की मानसिक उन्नति प्रारम्भ हो जाती है, इस हेतु गर्भिणी जिन जिन विचारों को अपने मन में आश्रय देगी उन विचारों का बच्चे पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा, और अन्त में बच्चे की रुचि उन्हीं विचारों की अधिक रहेगी, इसलिये विधिपूर्वक संस्कार की क्रियाओं को समाप्त करके पत्नी को आदेशानुसार कार्य करना अभीष्ट है।

(४) जातकर्म

यह संस्कार सन्तान की उत्पत्ति के समय होता है। जब बालक उत्पन्न हो उसी समय उसको सुवर्ण, मधु और गौ का घृत तीनों मिलाकर चटावे, क्योंकि ये तीनों वस्तुय बुद्धि, आयु, आरोग्य और बल को बढ़ानेवाली हैं, तत्पश्चात् नालच्छेदन का विधान करे।

(५) नामकरण

पुत्र या पुत्री के जन्म समय से १० दिन छोड़ कर ११ वा १०१ वें दिन वा दूसरे वर्ष के आरम्भ में यदि पुत्र हो तो दो वा चार अक्षर का घोष संज्ञक और अन्तःस्थ वर्ण अर्थात् पांचों वर्गों के दो दो अक्षर छोड़ कर जिसमें हों तीसरा चौथा पांचवां और य, र, ल, व, ये चार वर्ण अवश्य आवें, ऐसा नाम रक्खे। यदि पुत्री हो तो तीन वा पांच अक्षर का नाम रक्खे जैसे यशोदा सुखदा इत्यादि। इन के उपरान्त इस बात का भी ध्यान रहे कि नाम बहुत लम्बा चौड़ा न हो, सुनने में प्रिय सार्थक हो और किसी वृक्ष, पक्षी, पर्वत, नदी आदि पर न हो और ऐसा भी नाम न रक्खे जिसके सुनने से भय मालूम हो। यदि ब्राह्मण हो तो शर्मा, क्षत्रिय हो तो वर्म्मा, और वैश्य हो तो गुप्त नाम के अन्त में लगावे, जैसे— देवशर्म्मा, देववर्म्मा, देवगुप्त इत्यादि। ऐसे नामों के रखने का मुख्य तात्पर्य यह था कि प्रत्येक जान लेवे कि हम ब्राह्मण या क्षत्रिय या वैश्य हैं, इसलिये हमको सत्कर्मों में प्रवृत्त होना और बुरे कर्मों से घृणा

करना चाहिये। क्योंकि वर्त्तमान समय में भी राय बहादुर, सितारेहिन्द आदि नाम प्रतिष्ठित गिने जाते हैं और जिनको वह मिलते हैं उनको उतना ही अधिक ध्यान उत्पन्न कराते हैं और वह मानते हैं कि हमारा यह काम है, हम प्रतिष्ठित हैं, हमको यह काम करना योग्य है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी पर हमारे भाई बहिन कुछ भी ध्यान नहीं देते और अण्ड के सण्ड नाम रखते हैं।

❋ (६) निष्क्रमण अर्थात् हवा खिलाना ❋

इसका समय जन्म से ४ मास तक है। संस्कार के पश्चात् बस्ती के बाहर जहाँ शुद्ध वायु धीरे धीरे चलता हो, शुद्ध पवित्र कपड़े पहना कर ले जावे और उस दिन से नित्यप्रति सन्ध्या, प्रातःकाल भेजा करे, जिससे उसकी शारीरिक उन्नति हो, यदि बालक निर्बल या रोगी हो तो विद्वज्जन कोई और समय नियत कर लें।

❋ (७) अन्नप्राशन अर्थात् चटाना ❋

किसी किसी ऋषि ने इसका समय छटे महीने लिखा है और किसी ने लिखा है कि यह संस्कार उस समय हो जब बालक को पाचनशक्ति होजावे क्योंकि इसका अभिप्राय यही है कि उस दिवस से बालक को अन्न दिया जावे। संस्कार के पश्चात् बालक को भात में दही, घी और शहद मिला कर खिलावे। तत्पश्चात् उत्तम विधि से बना हुआ नरम थोड़ा भोजन दे जैसा गर्भाधान विषय में लिखा है ताकि बालक के रोग न हो।

❋ (८-९) चूड़ाकर्म अर्थात् मुण्डन और कर्णवेध अर्थात् कनछेदन ❋

इनका समय कम से कम ३ रा और ५ वां वर्ष है। चूड़ाकर्म संस्कार के दिन चतुर नाई से बालक के बाल मुड़वावे। कर्णवेध के दिन चरक सुश्रुत वैद्यक ग्रन्थों के जाननेवाले के हाथ से कर्णवेध करावे, जो नाड़ी को छोड़ दे। तत्पश्चात् ऐसी औषधि उस पर लगावे जिससे कान न पकें और शीघ्र आराम हो जावे।

❋ (१०) उपनयन अर्थात् जनेऊ ❋

इस संस्कार का वेदानुकूल समय ब्राह्मण के लिये ८ वर्ष, क्षत्रिय

के लिये ११ वर्ष और वैश्य के लिये १२ वर्ष है। जैसा कि मनु० अ०२ श्लोक ३६ में लिखा है—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

और ऐसा ही विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक १३, १४ व्यासस्मृति अ० १ श्लोक १६, श्रीमद्भागवत, महाभारत, मार्कण्डेयपुराण, भविष्य-पुराण और याज्ञवल्क्यस्मृति में भी लिखा है और य० अ० १६ मं० १७ में आज्ञा है कि यज्ञोपवीत धारण करे।

इसके उपरान्त यह भी लिखा है कि यदि किसी कारण से उपरोक्त समय पर यज्ञोपवीत न हो सके तो ब्राह्मण के १६, क्षत्रिय के २२ और वैश्य के बालक का २४ वर्ष से पूर्व पूर्व यज्ञोपवीत अवश्य होना चाहिये। तत्पश्चात् गायत्री का अधिकार नहीं रहता। जैसा मनु० अ० २ श्लोक ३८ में लिखा है—

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्तते।
आद्वाविंशात् क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥

इसी संस्कार के समय आचार्य्य बालक को गायत्री आदि वेदोक्त कर्मों के करने की शिक्षा करता है जिसको वह सदा करता रहे। इसी समय बालक ब्रह्मचारी होने का सर्व साधारण के सामने प्रण करता है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में बहुधा क्षत्रिय और वैश्यों के यहां यह संस्कार नहीं होता। यदि उनसे पूंछा जावे तो वह कह देते हैं कि "हमसे नहीं सध सकता" और पौराणिक पितृ कर्म आदि में पहन लेते हैं! बहुधा घरानों में जब घर का बूढ़ा मर जाता है तो उनके पुत्रों में जो सब से बड़ा होता है बिना वेदोक्त संस्कार किये जनेऊ धारण कर लेता है जिसकी आज्ञा कहीं नहीं पाई जाती है। परन्तु शोक का स्थान है कि सभ्यजन इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते।

इस विषय में बहुधा ऋषियों का कथन है कि जिनका यज्ञोपवीत संस्कार क्रियापूर्वक नहीं हुआ, मनुष्यमात्र उनसे विवाह आदिक किसी प्रकार का सम्बन्ध आपत्काल में भी न रक्खें न ऐसे मनुष्य गायत्री के अधिकारी रहते हैं, जब तक प्रायश्चित न करावें जैसा कि मनु० अ०२ श्लोक ३९ वा ४० में लिखा है—

अतऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः ।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः ॥
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् ।
ब्राह्मान् योनांश्च सम्बन्धानाचरेद्ब्राह्मणैः सह ॥

इसके उपरान्त इस संस्कार के न होने से वेदारम्भ संस्कार की आवश्यकता ही नहीं रही, फिर वेदों का प्रति दिन पढ़ना क्योंकर हो सकता है अर्थात् पंच कर्म करने की शास्त्र की आज्ञा है वह भी नहीं हो सकती और न द्विज कहला सकते हैं। इस लिये विचार कर इस धर्म-मर्य्यादा को प्रचलित कर संस्कार का उद्धार कीजिये। और वर्तमान समय में जो कण्ठ में कण्ठी बांधने की रीति अत्यन्त प्रचलित हो गई है जिसके लिये कोई वेदोक्त आज्ञा नहीं है, मिथ्या जान ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य को इसकी प्रथा शीघ्र उठा देनी चाहिये। इसके उपरान्त यह भी स्मरण रहे कि जब नवीन यज्ञोपवीत धारण करे तो इन मन्त्रों को पढ़ कर पहने—

ओ३म् यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात् ।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं वलमस्तुतेजः ॥१॥
यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि ॥२॥

❋ (११) वेदारम्भ ❋

गायत्री मन्त्र से लेकर सांगोपांग चारों वेदों के अध्ययन करने के लिये नियम धारण करने का नाम वेदारम्भ संस्कार कहाता है। यह संस्कार उपनयनके दूसरे दिन वा एक सालके भीतर किसी दिन होता है। उस दिन से ब्रह्मचारी गुरुकुलमें जाकर विद्याध्ययन करता है कि जिससे मनुष्यके आत्मिक संस्कारों क उन्नति होना सम्भव है। क्योंकि विना वेदादि विद्या पढ़े कभी धर्म के मर्म को नहीं जान सकता। पूर्व समय में इसी संस्कार पर अधिक वल दिया जाता था, क्योंकि बिना इस संस्कार के कभी शरीर और विद्या की उन्नति नहीं होती। पूर्व ऋषियों ने इस विषय में बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे हैं और हमारे प्राचीन पुरुषा उनके लेखानुसार यज्ञोपवीत संस्कार कराकर अपने पुत्र पुत्रियों को गुरुकुल में भेज यथावत् विद्या उपार्जन कराते थे। और गुरुजन बड़े प्रेम और भक्ति से उन पुत्रपुत्रियों को अपनी निजसन्तानके समान लालनपालन कर विद्या और ब्रह्मचर्य को पूरा कराने का

यत्न करते थे। उसी समय भारत के सुपात्र धार्मिक गृहस्थ होते थे, जो नियमानुकूल वेदों की आज्ञाओं को पालन कर आगे आनेवाली सन्तानों के लिये उदाहरण होते थे। परन्तु अब महानशोक का स्थान है कि माता पिता वेद-विद्या से रहित होने के कारण अपनी सन्तानों का यथावत् उपकार नहीं कर सकते। जिसके कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य से यह प्रथा उठ गई और विद्याहीन आचार्यों ने एक नया मिथ्या ढकोसला निकाल कर भारत-सन्तान का जड़ पेड़ से खोज मार दिया।

प्रियवरो! वर्त्तमान समय में जब यज्ञोपवीत संस्कार होता है तो उसी समय वेदारम्भ संस्कार भी कराया जाता है और ब्रह्मचारी गायत्री का उपदेश लेकर विद्या पढ़ने के लिये काशी (जहां किसी समय में बड़ा भारी गुरुकुल था) जाने के लिये अपने हित और सम्बन्धियों से मार्गव्ययादि के लिये भिक्षा मांग कर धन इकट्ठा कर लेता है। परन्तु शोक है उन आचार्य्य आदि पर कि जो खड़े होकर यह विश्वास देकर कि हम तुमको यहीं विद्या पढ़ा देंगे रोक लेते हैं और फिर उसकी कुछ भी सुध नहीं लेते और माता पितादि भी इस विषय में कुछ भी नहीं कहते। ब्रह्मचारी अपने रूप को बदल कर गृहस्थों की भांति गृहकार्यों में लग जाता है और फिर थोड़े ही दिनों में गृहस्थ भी बना दिया जाता है। बहुधा अब यह संस्कार विवाह समय में भी होने लगा है। सज्जन जन विचार करें इसका नाम हमारे ऋषि मुनियों ने ब्रह्मचर्याश्रम रक्खा था। क्या प्रचीन आचार्य इसी भांति वेदारम्भ संस्कार कराकर गुरुकुल के जाने से झूठा विश्वास देकर रोक लेते थे? नहीं ३। यदि आप प्राचीन ग्रन्थों को देखेंगे तो स्पष्ट प्रकट हो जावेगा कि इन आचार्यों ने प्राचीन ब्रह्मचर्य का सत्यानाश मार दिया प्रियवरो! यह रीति कौन से वेद या आचार्य की सनातन रीति है? क्या आचार्य का यही परम धर्म है कि अपने शिष्य को झूठा विश्वास देकर उसकी आत्मिक उन्नति का नाश मार दे? क्या ऐसे आचार्य आत्मा के हनन करनेवाले दोष के भागी नहीं होते? अवश्य होते हैं। इसलिये अब माता पिता को योग्य है कि यथावत् समय पर यज्ञोपवीत संस्कार कराकर गुरुकुल में भेजने की प्रथा को यथावत् प्रचलित करें और जब तक वह विद्या को यथावत् प्राप्त न कर लें तब तक कदापि गुरुकुल से अपने घर पर न आवें, जैसा कि वेदादि सत्य शास्त्रों में आज्ञा है। उसी समय देश का कल्याण होगा।

(१२) समावर्तन संस्कार

जब ब्रह्मचारी एक दो तीन वा चारों वेदों को समाप्त करके विद्वान् होकर विद्यालयको छोड़कर अपने घरको आता है उसीका नाम समावर्त्तन संस्कार है। मान्यवरो! जब वेदारम्भ संस्कार ही नहीं रहा, तो इसको कौन पूछता है?

(१३) विवाह संस्कार

इस विषय में पहले पृष्ठ १५३ में लिख आया हूं, देख लीजिये।

(१४) वानप्रस्थ संस्कार

जब गृहस्थी में मनुष्य पूर्ण आनन्द उठा चुके और अपने पुत्र पुत्रियों का ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त होने पर विवाहादि कर चुके और पुत्र के भी पुत्र हो जावे तब सम्पूर्ण धन, दौलत पुत्र को देकर अपनी स्त्री को साथ ले या बड़े पुत्र के अधीन करके वन में जाकर जितेन्द्रिय होकर रहे। इसको वानप्रस्त संस्कार कहते हैं। इसका समय ५० वर्ष के उपरान्त ही है। जब घर को छोड़े तो अपने साथ अग्निहोत्र की सामग्री ले जावे और अपने समय को वेदादि पुस्तकों के पठन पाठन में बितावे। यदि स्त्री साथ हो तो भी प्रसग न करे, भीख मांगकर खावे। सब से मित्र-भाव से वर्ते। मनुष्यों को यथायोग्य ज्ञानोपदेश दे पंचयज्ञ करता रहे। भूमि पर सोवे।

(१५) संन्यास

यह मनुष्यों के कर्त्तव्य का अन्तिम संस्कार है। यह तीन प्रकार का होता है। एक तो वह जो क्रम से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ और वानप्रस्थ को सेवन कर के लेते हैं। यह सब से श्रेष्ठ है। दूसरा वह जो गृहस्थाश्रम ही से संन्यास ले लेवे। तीसरा वह जो ब्रह्मचर्याश्रम से ही बिना गृहस्थ और बानप्रस्थ के ले लेते हैं। परन्तु यह अत्यन्त कठिन है और यदि किसी का मन संसार के विषयानन्द से किसी युक्ति से ब्रह्मचर्याश्रम में ही हट गया हो तो अत्यन्त उत्तम है। परन्तु ब्रह्मचर्याश्रम से प्रथम अर्थात् बिना विद्या पढ़े संन्यास बिल्कुल वेदविरुद्ध है। मनुजी ने लिखा है कि ७० वर्ष की अवस्था में संन्यास लेवे।

संन्यासियों के कर्तव्य

(१) अपने समय को वेदादि सत्-विद्या के फैलाने और वेद-विरुद्ध मतों के दूर करने के लिये सम्पूर्ण संसार में भ्रमण करे और मनुष्यों को सदुपदेश करता रहे। सत्य को ग्रहण करे, असत्य को छोड़ देवे। (२) कहीं घर बना कर न रहे, जल को छानकर पिये और अपने आचरण को सुधारे रहे। (३) सब सिर के बाल मुड़ाये रहे, रंगे वस्त्र पहने, जो मिले वह आनन्द प्रसन्न होकर खावे, मद्यादि मादक द्रव्य कभी न पीवे। (४) किसी को पीड़ा न दे, क्रोध को त्याग दे। (५) इन्द्रियों को अपने वश में रक्खे और आठ प्रकार के मैथुनों को त्यागे। (६) मृत्यु तक हो जावे परन्तु सत्य के कहने में न चूके (७) परमेश्वर के सिवाय अन्य की उपासना न करे और अपने जीवन को परोपकार में लगावे। (८) सांसारिक पदार्थों में अपने चित्त को लगाने की चाहना न करे।

(१६) मृतक संस्कार

इसका कोई समय नियत नहीं और न मनुष्य को यह संस्कार अपने आप करना पड़ता है वरन् इसका करना मनुष्य के सम्बन्धियों का कर्म है। इसलिये उनको योग्य है कि जब कोई मर जावे तब यदि स्त्री हो तो स्त्री और पुरुष हो तो पुरुष स्नान करा कर, चन्दनादि लेपन करके नवीन वस्त्र धारण करावे और जितना मनुष्य का शरीर हो उतने ही घृत में (यदि अधिक सामर्थ्य हो तो अधिक परन्तु आधा मन से कम किसी तरह न हो, चाहे मनुष्य कितना ही दरिद्री क्यों न हो, यदि उस मनुष्य के संबन्धी दरिद्र हों तो उस मुहल्ले के श्रीमानों को योग्य है कि इसका प्रबन्ध करादें) एक रत्ती कस्तूरी, एक माशा केसर और १ मन या आध मन घी के साथ सेर २ भर अगर तगर और यथायोग्य चन्दन का चूरा भी डालें और शरीर के भार से दूनी लकड़ी श्मशान भूमि में ले जाकर और यथावत् रीति से वेदी बनाकर वेदमन्त्रों की विधि से मृतक का दाहकर्म करें फिर सब मनुष्य वस्त्रों को धोकर स्नान कर नगर में जाकर मृतक के घर पहुंचे, जो लीप पोत कर पहिले से स्वच्छ हो गया हो। वहां स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण और ईश्वरोपासना कर उन्हीं मन्त्रों के द्वारा गृह में सुगन्धित द्रव्यों सहित हवन करें। जिससे गृह में से मृतक की दुर्गन्धि निकल जावे और उत्तम वायु गृह में प्रवेश करे कि जिससे सब मनुष्यों के चित्त

प्रसन्न हों। इसके उपरान्त तीसरे दिन मृतक का कोई संबन्धी अस्थि उठा कर एक स्थान पर रखदे। परन्तु वर्त्तमान समय में केवल लड़कियों में ही शव को रख कर जला देते हैं। देखिये इसी संस्कार के वेदरीत्यनुसार न होने से देश में अकाल, मरी रोगों की बहुतायत हो गई। पदार्थ विद्या के न जानने के कारण इस देश की अधोगति होती जाती है। प्यारे बहिन भाइयो! टुक तो विचारो कि जब आप शरीर को लड़कियों के साथ जलाते हो तो वह मांसादि जल कर दुर्गन्धित वायु कर देता है, उसको मनुष्य पशु पक्षी इत्यादि सूंघते हैं, उनकी नाना भांति से हानि होती है और उन्हीं परमाणुओं से कालान्तर में बादल बनते हैं, फिर मेह बरसता है, उससे अन्न, फल, फूल, होते हैं जिसको प्रतिदिन खाते हैं। नदियों; तालाबों, कुओं में भी पानी बिगड़ जाता है, उसको पीते हैं, इन्हीं कारणों से भारतवासियों की दिन पर दिन हीन दशा होती जाती है। उत्तम उत्तम भोजन करने पर भी नाना रोग घेरे रहते हैं। इस लिये अब आप इस हानिकारक प्रथा को दूर कीजिये! देखिये अयोध्याकाण्ड सर्ग ७६ श्लोक १६, १७, १८ में लिखा है कि जब श्रीमान् राजा दशरथ जी का देहान्त हो गया तो सरयू तीर पर ले गये। वहां चन्दन, अगर, साखू, काठ देवदारु आदि से उत्तम चिता बना कर उसमें सुगन्धित पदार्थ डाल ऋत्विक लोगों ने राजा को अपने हाथों से उठा उसमें लिटाया।

चन्दना गुरु निर्यासान् सरलं पद्मकं तथा।
देवदारु णिचाहृत्येच्क्षेपयन्ति तथा परे ॥ १६ ॥
गन्धानुच्चाव चांश्चान्यांस्तत्रगत्वाथ भूमिपम्।
तत्र संवेशयामासुश्चितामध्येत मृत्विजः ॥ १७ ॥

इसके पीछे भरतजी ने चिता में अग्नि लगाई और ऋत्विक लोग पितृमेध यज्ञ के मन्त्र पढ़ने लगे और सामवेदपाठी लोग सामवेद गाने लगे।

तदाहुताशनंहुत्वाजे पुस्तस्य तदृत्विजः।
जगुश्चते यथाशास्त्रं तत्र सामानिसामगाः ॥१८॥

देवी भागवत् स्कन्ध २ अध्याय ११ श्लोक ३ में लिखा है कि जब राजा परीक्षित का देवलोक हो गया तब मन्त्रियों ने गंगातटपर चन्दनादि से चिता बना कर वेदमन्त्रों से उनकी सकल क्रिया की।

दुर्मरेण मृतस्यास्य चक्रुश्चैवौर्ध्व देहिकीम् ।
क्रियां पुरोहितास्तस्य वेद मन्त्रैर्विधानतः ॥

पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अ० २० में लिखा है कि पुत्र को योग्य है कि पिता के शरीर को विधिपूर्वक स्थापित करके मन्त्र पढ़ अग्नि देवे ।

इस वैदिक रीत्यनुसार प्राचीन समय में दाह क्रिया होती थीं, देखो य० अ० ३९ मं० ३ में ईश्वर स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि लोग सुगन्ध युक्त घृतादि सामग्री से मरे शरीर को जलावें ।

आदित्यै रासनासीदाराया उष्णीः । पूषासि धर्मायदीष्व ॥ ३ ॥

क्योंकि यजुर्वेद में स्पष्ट लिखा है कि जो लोग सुगन्धयुक्त घृतादि सामग्री से मरे शरीर को जलाते हैं, वे पुण्य सेवी होते हैं ।

वाचे स्वाहा प्राणाय स्वाहा प्राणाय स्वाहा ।
चक्षुषे स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा ॥

और मं० १३ में लिखा है कि जो सृष्टि विद्या को जान कर अन्त्येष्टि कर्म की विधि करते हैं वे सब के मंगल देनेवाले होते हैं और सब काल में इस प्रकार मृतक शरीर को जला कर सब के सुख की उन्नति करनी चाहिये ।

प्यारे सुजनों ! इस रीति के अनन्तर जो दशगात्र, एकादशाह, द्वादशाह सपिण्डी, मासिक, वार्षिक, गया श्राद्धादि कया जाता है सो यह सब ठगई का जाल है, क्योंकि वेदों में इन बातों का वर्णन लेश मात्र भी नहीं लिखा और उस जीव का संबन्धियों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता । यह जीव अपने कर्मों के अनुकूल यमालय को जाकर गर्भाशय में आता है जहां उसका संबन्ध हो जाता है। वेद के अनुकूल शरीर छूटने पर वेदमन्त्र द्वारा उसका दाह होना लिखा है, उसको उठाकर अपने पेट में धरने के लिये उस क्रिया को न कर पिण्ड आदि बनाकर नाना लीला रचते हैं और अच्छे प्रकार गप्फा लगाते हैं हमारे भाई गरुड़पुराण जो उन्हीं के पुरुषों ने बनाया है 'यम' की कथा सुना अपने सम्बन्धी के लिये डेरा, तम्बू, हाथी, घोड़ा, मुद्रा आदि 'कट्टहा' जी की भेंट चढ़वाते हैं कि जिनके आशीर्वाद से ही पापी, कामी, हत्यारे आदि जीव स्वर्ग को चले जाते हैं और उन विद्याहीनों को यही निश्चय हो रहा है कि 'कट्टहा' जी के कहने से ही अर्थात् सुफल बोलते ही हमारे माता पिता आदि 'यम, के कोप से बच कर स्वर्ग

को चले जाते हैं। प्यारे भाई बहिनों! तुम विचारो, क्या ईश्वर भी अन्यायी है जो अच्छे कर्म करनेवालों को बिना सुफल के नरक में भेज देता है और बुरे कर्म करनेवालों को सुफल के कहते ही स्वर्ग के जाने का हुक्म हो जाता है, जो 'कट्टहा' जी दस, पांच, सौ दो सौ, हज़ार आदि मिलने पर कहते हैं? क्या ईश्वर भी घूसिया है जो घूस मिलते ही डिगरी की डिसमिस और डिसमिस की डिगरी कर देता है? देखिये क्या अच्छा नुस्ख़ा निकाला है कि जिससे जन्म भर के पाप 'कट्टहा' जी के प्रसन्न होते ही कट जाते हैं। फिर क्या हमारे पुरुषों ने विद्या पढ़ आचरण सुधारे, आचार विचार किये? जैसा कि जनक, दशरथ, रामचन्द्र, श्रीकृष्ण, व्यास, बाल्मीकि इत्यादि ने नाना प्रकार के कष्ट सहकर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि को मारा। क्या उनके लड़कों के पास इतने रुपये न थे? प्यारे भाइयो! जन्म भर के पाप यदि इन कर्मों से जाते तो फिर क्या था, फिर तो पौबारे थे, परन्तु आप तो कुछ भी विचार नहीं करते और ईश्वर आज्ञा के प्रतिकूल चलने का अपराध आपके सिर पर चढ़ता है। दूसरे इनका उद्धार 'कट्टहा' जी करते हैं जो आप भी सब रँगों में रंगे रहते है। विद्या का नाम नहीं जानते, नाना भांति के कुकर्म करते हैं, उस धन को रंडी, भंडुओं, भंग, चरस आदि में खोते हैं। क्या ऐसे महापापियों की बातें ईश्वर मानता है। इन्होंने तो ईसाइयों को भी मात कर दिया। प्यारे भाइयो! इन गपोड़ों को त्यागो, इस धोखे में अमृतरूपी काया को वृथा मत खोओ, हां जो कुछ दान आदि माता पिता आदि से कराना हो जीते जी कराकर जैसा दान-विषय में लिखा है वैसा दान कीजिये अर्थात् पाठशाला, यतीमख़ाने, भूखे, नंगे को भोजन वस्त्र आदि उत्तम उत्तम कार्यों में व्यय कीजिये, न कि इन निरक्षर भट्टाचार्यों को जो जीव के अर्थ उसके मरने पर उसके मिलने की आशा पर थैली खोल देते हो। जिससे देश का कोई लाभ नहीं होता, वरन 'कट्टहों' की एक क़ौम जिसमें हज़ारों मनुष्य मरने की आशा पर आयु ही व्यतीत करते हैं, नियत हो गई है अर्थात् निकम्मे निठल्ले मिथ्या बातों में समय खोते हैं। क्या यह आपके शिर पाप न होगा? अवश्य ही होगा। इसके उपरान्त 'यम' की कथा जो इन मिथ्याचार्यों के गुरुओं ने बनाई है, झूंठी है। क्योंकि वेदानुकूल निम्न-लिखित पदार्थों का नाम 'यम' है—

पडिद्यमा ऋषणो देवजा इति । ऋ० मं० १० सू० १६४ मं० १५ । शकेम वाजिनो यमम । ऋ० मं० २ सू० ५ मं० १ । यमाय जुहता हविः । यम ह यज्ञो गच्छत्यग्नि दूतो अरंकृता ऋ० मं० १० सू० १४ मं० १३ यमः सूयमानो विष्णुः संभ्रियमाणो वायुः पूयमानः । यजुर्वेद अ० ८ मं० ५८ । वाजिनं यमम । ऋ० मं० ८ सू० २४ मं० २२ । यमं मातरिश्वानमाहुः । ऋ० मं० सू० १६ मं० ४६ ।

(१) यहां ऋतुओं को यम (२) यहां परमेश्वर (३) यहां अग्नि को (४) यहां वायु विद्युत् और सूर्य को (५) यहां भी वायु को (६) और यहां परमेश्वर का नाम यम है । इस कारण पुराणों की कथा मिथ्या ही जानना और यम रूपी परमेश्वर के प्रसन्न होने के अर्थ वेदादि सत्य शास्त्रों को श्रवण करो और समय के अनुकूल आचरण करो, तब ही वह न्यायकारी परमेश्वर प्रसन्न होगा । उस समय हम आप नाना भांति के दुःख रूपी नरकों से बच सकते हैं न कि कट्टहा के सुफल बोलने पर । यह सब मिथ्या है, धोके की टट्टी में शिकार खेलते हैं, इस लिये आप सत्य शास्त्रों को विचारो और बुद्धि से भी काम लो, नहीं तो यह 'कट्टहा' जी जो प्रातःकाल उठ कर मरने का ही स्मरण करते हैं कि हमारे महीने में भाग्यवान् अर्थात् रुपयेवाला मरे । धन्य है ऐसे शुभचिन्तकों को दान देकर पुरुषों को स्वर्ग भेजने के भरोसे पर लाखों में पानी दे देते हो । क्या शोक की बात नहीं है ? क्या इससे भी अधिक कोई अन्धेर होगा ? ईसा से भी बढ़ कर परमेश्वर के पिता ही बन गये, अर्थात् जो पोप जी कहेंगे वही परमेश्वर करेगा । इसके उपरान्त बहुधा जन मुर्दों को पाप निवृत्ति और स्वर्ग वा सर्वथा मुक्ति का साधन समझ गंगा आदि नदियों में डाल देते हैं कि जिससे जल विकारी हो जाता है और जो कोई उसको पीते हैं उनको नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं । जिसके पाप का बोझ भी पुजारियों पर होता है । इसलिये गरुड़पुराण के ऐसे लेखों पर धता भेजनी चाहिये, गंगादि में डालने से मुक्ति कभी हो सकती है ? (मुक्ति के साधन तीर्थ विषय में सविस्तार वर्णन किये गये हैं) ।

इसके उपरान्त—धनिष्टा, शतभिषा पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद, रेवती इन पांच नक्षत्रों में पंचकें होती हैं। यदि इनमें मरण हो तो गंगादि नदियों पर जाकर फूंक कर उनमें डाल देते हैं, यदि किसी कारण से गंगादि पर न पहुंच सकें तो उनकी चिता में गाड़ी के पहिये का कोई टुकड़ा वा सम्पूर्ण पहिया भी रख कर जला देते हैं और कहते हैं कि यह तो कभी न कभी गंगा जल में स्नान कर आया होगा इसके रखने से पंचकों का दोष जाता रहता है। इसके अतिरिक्त अग्नि में जल कर मरने या सांप के काटने, कुयें में गिरने वा दब कर मरने, नदी में डूब कर वा बिजली के गिरने से और स्त्रियों को सँवरमें मरने आदि को अकाल मृत्यु कहते हैं, जिसके दो भेद हैं। प्रथम में मृतक का शरीर उपस्थित हो, दूसरी में मृतक का शरीर न मिले। प्रथम दशा में "नारायनवलि" करते हैं अर्थात् प्रेतयोनियों से छुड़ाते हैं। दूसरी दशा में "समवलि" करते हैं अर्थात् जब मृतक का शरीर नहीं मिलता तो फिर नये सिरे से जौ के आटे का पुतला मृतक के शरीर के बराबर बनाते हैं. उसको मरा हुआ नहीं जानते वरन् बीमार समझते हैं. फिर उसी समय जिस समय उस मनुष्य के मरने की ख़बर मिली थी, सब घर के स्त्री पुरुष रोते पीटते चिल्लाते हैं अर्थात् उस समय उसको मरा जानते हैं, फिर नये सिरे से मृतक की सम्पूर्ण क्रिया करते हैं।

ये सब बातें पोप जी ने अपने पेट भरने ही के अर्थ लिखी हैं. क्योंकि लोभ में मनुष्य माता पिता आदि को मार डालते हैं, सो इन्हीं बेद अर्थों को पलट कर धर्म को मार सर्व प्रकार से अपना ही पेट भरा। इस पर कल न पड़ी तो तेरही नाम से भी गप्पा लगाया, मासिक वार्षिक पर भी हाथ मारा। मुख्य प्रयोजन यह है कि जिस प्रकार हो सका लूटने में किसी प्रकार कसर नहीं की। अब सत्य ग्रन्थों को श्रवण करो तो गरुड़पुराण और नाशकेत और कर्मविपाकादि पाखण्डों से छूटो, नहीं तो इन्हीं गपोड़ों में पड़ कर भारत का ग़ारत कर दिया, परन्तु शोक तो इस बात का है कि सब कुछ जानने पर भी विचार नहीं करते। इसके उपरान्त जब कभी मृत्यु हो तो अत्यन्त शोकातुर होकर रोना पीटना आदि कर्म न करना चाहिये। क्योंकि मरना जीना शरीर का धर्म है अर्थात् जो उत्पन्न होता है, वह मरता है और जो मरता है वह उत्पन्न होता है। इसी को आवागमन कहते हैं।

———

आवागमन

आवागमन का अर्थ आना और जाना है अर्थात् पाप पुण्य के अनुसार इस संसार में सुख दुःख भोगने के लिये बारम्बार उत्पन्न होना और मरना 'आवागमन' कहाता है। जिसको फ़ारसी में 'तनासुख' और अङ्गरेज़ी में 'टिरेन्समिग्रेशन आफ़ सोल' कहते हैं।

मान्यवरा! ऋषियों के जीवनचरित्र पाठ करने से जाना जाता है कि वह इन नियमों में किस प्रकार लिप्त थे। सारे भारतवर्ष की धर्मपरिपाटी की केवल यही जड़ है। यह वह मनुष्यों का सच्चा मित्र है जो सदा सच्चे ही मार्ग की ओर ले जाता है। यदि हम विचार दृष्टि से देखें तो हमको ज्ञात हो जावेगा कि भारतवासी जन अन्य देशावासियों से धर्म-कार्य में क्यों बढ़े हुए थे, क्यों वह कहते थे कि 'अहिंसा परमो धर्मः'? क्यों वह अपने समान सबको जानते थे? क्यों वह नम्रतापूर्वक सब जीवों से बर्त्ताव करते थे? किस कारण सांसारिक सुखों को 'हेच' तृणवत् समझते थे?

इसका कारण यही था कि उनके पास यह सच्चा हितैषी था जो प्रति समय शिक्षा देता था कि हे सांसारिक सुखों की गहरी नींद में सोनेवाले मनुष्यो! सचेत रहो तुम केवल इस संसार में परीक्षा के लिये उत्पन्न किये गये हो और कुछ समय पश्चात् आपको न्यायकारी परमात्मा के पास फिर जाना होगा जो न्यायपूर्वक धर्म-तुला में तुम्हारे कर्मों को तोलेगा, यदि कुछ भी हलचल हुए तो फिर पता कहां? फिर भी नाना लोकों में उत्पन्न होकर सुख और दुःख उठाते रहोगे। इसी कारण देखिये मनु० अध्याय १२ श्लोक २३ में लिखा है कि मनुष्य का आवागमन पाप और पुण्य के कारण होता है, इस कारण पुण्य की प्राप्ति का यत्न करना चाहिये। जैसा कि--

> एतादृष्ट्वास्य जीवस्य गतिः स्वेनैव चेतसा।
> धर्मतोऽधर्मतश्चैव धर्मे दध्यात्सदा मनः॥

और इसी अ० के २६ श्लोक में लिखा है कि कर्मों के कारण मनुष्य आवागमन में फँसा रहता है, और श्लोक ४० में कहा है कि सत्वगुणी देवरूप, रजोगुणी मनुष्यरूप और तमोगुणी पशुयोनि को प्राप्त होते हैं,

यही आवागमन है श्लोक ७४ में लिखा है कि दुर्जन पुरुषों को निन्दित कर्म करने से निन्दित योनियों में जन्म लेने पड़ते हैं। और विष्णुस्मृति अ०२० श्लोक २६ में लिखा है कि जिसका जन्म हुआ है वह अवश्य मरेगा और जो मरेगा उसका अवश्य जन्म होगा। इस जन्म मरण के रोकने की सामर्थ्य किसी को नहीं। जैसा कि—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
अर्थे दुष्परिहार्य्येऽस्मिन्नास्ति लोके सहायता॥

इसी अ० के श्लोक ४३ में लिखा है कि कर्मों के अनुसार बार बार शरीर धारण करना पड़ता है और श्लोक ५० में लिखा है कि जैसे पुराने वस्त्र को त्याग कर नवीन वस्त्र को धारण करते हैं वैसे ही जीव पुराने शरीर को त्याग अपने कर्मों के अनुसार नवीन शरीर को धारण करता है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद अ० ४ अष्टन १ व० २३ मं० ६ वा ७ में लिखा है कि--

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः पुनः प्राण मिहनो धेहि भोगम।
ज्योक पश्येम सूर्यमुत्ररन्तमनुमते मृडयानः स्वस्ति॥
पुनर्नो असं पृथिवी ददातु पुनर्द्यौदवी पुनरन्तरिक्षम।
पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्या ३ या स्वस्ति॥

हे सुखदायक परमेश्वर ! आप कृपा करके पुनर्जन्म में हमको उत्तम नेत्रादि सब इन्द्रियां दीजिये तथा प्राण अर्थात् मन बुद्धि चित्त और अहंकार बल पराक्रम आदि युक्त शरीर पुनर्जन्म में कीजिये। इस जन्म और परजन्म में हम लोग उत्तम २ भोगों को प्राप्त हों तथा आपकी कृपा से सूर्य लोक प्राण और आपको विज्ञान तथा प्रेम से सदा देखते रहें। हे अनुमते ! सब जन्मों में हम लोगों को सुखी रखिये जिससे हम लोगों का भला हो।

हे सर्वशक्तिमान् ! आपके अनुग्रह से हमारे लिये बारम्बार पृथिवी प्राण प्रकाश चक्षु और अन्तरिक्ष स्थानादि अवकाशों को देते रहें। दूसरे जन्म से सोम अर्थात् औषधियों का रस हमको उत्तम शरीर देने में अनुकूल रहे तथा पुष्ट करनेवाला परमेश्वर कृपा करके सब जन्मों में हमको सच्चे दुःख निवारण करनेवाली पथ्यरूप स्वस्ति को देवे और य० अ० ४ मं०

१५ में लिखा है कि हे परमेश्वर! जब जब हम जन्म लेवें तब तब आप हमको उत्तम उत्तम इन्द्रियां प्रदान कीजिये और हमारे शरीर का पालन कीजिये। निरुक्त अ० १३ खं० १९ में लिखा है कि मैंने अनेक बार जन्म धारण किया, हज़ारों गर्भाशयों का सेवन किया, अनेक माताओं का दूध पिया। इसकी पुष्टि योगशास्त्र में पतञ्जलि मुनि ने की है। अमेरिका का एमसन नामक प्रसिद्ध विद्वान् एक बालक की ओर इशारा करके बोलता है कि—"इस बालक के भोले भेष पर मत भूलो, इसकी अवस्था हज़ारों वर्ष की है।" इनके अतिरिक्त प्रोफेसर मैक्समूलर ने कहा है कि "जीव जैसा कर्म करेगा वैसा ही भविष्य में पावेगा।" प्लेटो पूर्ण रूप से पुनर्जन्म मानता था। इसके अतिरिक्त बालक जन्म भर भी वस्तुओं को देख देख कर प्रसन्न होकर हाथ पैर फेंकते हैं और 'अम्मा' २ शब्द शीघ्र कहने लगते हैं जिससे प्रकट होता है कि इसका कुछ कुछ ज्ञान उनको पूर्व जन्म से है। इत्यादि प्रमाणों से सिद्ध होता है कि जीव का बराबर आवागमन होता रहता है।

और गीता में लिखा है कि आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकता, अग्नि जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता, पवन सुखा नहीं सकता, वह निराकार और मन से परे है। फिर भला बहुत दिनों तक शोक रखना नाना भांति से रोदन करना व्यर्थ ही है कि जिससे क्लेश के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आता, जैसा कि—

> नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
> न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥
> अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।
> नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः॥

इसके अतिरिक्त मृत्यु का कोई समय नियत नहीं, न जाने कब आ जावे और मृत्यु के आने पर इसी प्रकार के उपायों से हम लाभ नहीं उठा सकते और हमारी कोइ सहायता भी नहीं कर सकता, केवल उस समय पर धर्म ही हमारी सहायता करता है।

धर्म्म

वेदादि शास्त्रों के अवलोकन करने और ऋषि, मुनियों के जीवन-

चरित्रों पर ध्यान देने से स्पष्ट प्रकट होता है कि इस संसार में सुख प्राप्त करने और मरने के पश्चात् सुख से रहने का मुख्य कारण धर्मानुसार चलना ही है क्योंकि संसार के धनादि सब पदार्थ यहीं रह जाते हैं अर्थात् स्त्री, पुत्र, शरीर, सम्बन्धी, मित्र, धन, पशु और पक्षी इत्यादि ये सब प्राण-यात्रा के समय पृथक् हो जाते और उसको ऐसे छोड़ देते हैं जैसे पक्षी फलहीन वृक्ष को, फिर उसके कमाये हुये धन का कोई और ही स्वामी हो जाता है और उसके शरीर की हड्डी, रुधिर, मांस को अग्नि भस्म कर देता है, परन्तु जीव के साथ उसका धर्म हा जाता है जैसा कि मनुस्मृति अ० ४ श्लोक २३६ में लिखा है—

नामुत्र हि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः ।
न पुत्रदारा न ज्ञातिर्धर्म्मस्तिष्ठति केवलः ॥
अनित्यानि शरीराणि विभवोनैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्म संग्रहः ।

महाभारत में लिखा है—

न जातु कामान्न भयान्नलोभाद्धर्म्मं त्यजेज्जीवितस्यापिहेतोः ।
धर्मोनित्यः सुखदुःखेत्वनित्ये जीवोनित्यो हेतुरस्यत्वनित्यः ॥
धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।
तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मानो धर्मो हतोवधीत् ॥

चाणक्य ऋषि ने भी स्पष्ट आज्ञा दी है; लक्ष्मी, प्राण, शीशमहल एक दिन चले जाते हैं और अन्त को संसार भी स्थिर नहीं रहता, हां केवल एक धर्म ही पूरा साथ देता है । इस लिये वही उसका सच्चा मित्र कहाता है, जैसा 'धर्मोमित्रं मृतस्य च ।' ऐसा ही अनुशासन पर्व अ० ११० में बृहस्पति जी और शुक्रनीति अ० ३ श्लोक ६ में और बाल्मीकीय रामायण आरण्य काण्ड स० ६ में सीता महारानी ने रामचन्द्र महाराज से कहा है कि सुख का मूल धर्म ही है । महात्मा भीष्म का वचन है कि जिस प्रकार सूर्य्य अन्धकार का नाश करता है उसी भांति धर्म पापों को नष्ट करता है द्रोणाचार्य और कृष्ण महाराज ने कहा है कि धर्म से जय होती है, परशुराम और युधिष्ठिर महाराज कहते हैं कि आपत्ति में भी धर्म का न

छोड़ना चाहिये। इस लिये जो अधर्म को छोड़ कर सब प्रकार से धर्म का आचरण करते हैं उनके लिये पृथ्वी आदि सृष्टि के सब पदार्थ मङ्गलकारी होते हैं, जैसा य० अ० ३५ मं० ६ में कहा है—

कल्पन्तान्ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्य भवन्तु सिंधवः।
अन्तरिक्षꣳशिवं तुभ्यं कल्पन्तान्ते दिशःसर्वा।

देखो धर्म से धन और उसी से सांसारिक सुख और भोगविलास प्राप्त होते हैं और उसी से परब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस लिये सब स्त्री पुरुषों को उसी का आश्रय लेना चाहिये।

धर्मात्संजायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते।
धर्मादेव परंब्रह्म तस्माद्धर्मं समाश्रयेत॥

कूर्म और स्कन्द पुराणों में भी कहा है कि सुख और ज्ञान की प्राप्ति धर्म से ही होती है। इस लिये विद्वानों को योग्य है, अन्य सब बातों का त्याग करें धर्म का ही आचरण करें, जैसा कि—

धर्मात्सुखं च ज्ञानंच यस्मादभयमाप्नुयात्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य विद्वान्धर्मं समाचरेत्॥

प्रह्लाद ने कहा है कि कुमार अवस्था ही से भगवद्भक्ति सम्बन्धी धर्मों में लग जाना चाहिये, क्योंकि प्रथम तो मनुष्य का जन्म ही मिलना दुर्लभ है वह भी स्थिर नहीं न जाने कब छुट जावे, इस लिये धर्म को सच्चा माता, पिता, बन्धु और सुहृद समझ सदा मोक्ष के साधन में लगा रहना उचित है। इस हेतु य० अ० २७ मं० २ में कहा है कि प्राण आदि पदार्थों और सब साधनों सहित धर्म का आचरण करना चाहिये। बहुधा जन अधर्म से भी बढ़ती जानते हैं। परन्तु प्यारे सुजनों! इस विषय में मनुजी महाराज का कथन है कि अधर्म करनेवाला शीघ्र बढ़ता है और विजय पाता है, फिर अन्त को मूल सहित नष्ट हो जाता है, जैसा मनु० अध्याय ४ श्लोक में कहा है—

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥

ऐसा ही य०अ० ६ मं० १२ में लिखा है, इसी लिये ऋषिगण धर्म

का उपदेश करते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० १६ में लिखा है कि मनुष्यों का श्रेष्ठ धन धर्म ही है, जैसा—'धर्म इष्टं धनं नृणाम्।' इसी हेतु हमारे परम पूज्य नीतिज्ञ विदुर जी महाराज यह उपदेश करते हैं कि मनुष्य को आयु भर वह कार्य करना चाहिये, जिससे मरने के पीछे सुख हो।

यावज्जीवेन तत्कुर्य्याद्येनामुत्र सुखं वसेत् ॥

देखिये धर्म के सहारे ही सूर्य तप रहा है। पृथ्वी अपनी कील पर घूमती है। धर्म से बेड़ा पार होता है, धर्मात्मा ही संसार के सुखों को भोगते हैं, धर्म से ही मनुष्य कहाता है और इसी धर्म के बल से मनुष्य को ऋषि मुनि महात्मा देवता आदि की पदवी मिलती है, धर्म्म ही से विजय होती है। धर्म से ही शरीर आरोग्य और बुद्धि प्रबल होती है। धर्मात्मा ही के सत्सङ्कल्प पूर्ण होते हैं, धर्म से ही स्वर्ग के सुख और मोक्ष पद पाता है, अर्थात् धर्म से ही इस लोक और परलोक के महान् सुख मिल सकते हैं। धर्मात्मा भीष्म ने कहा है कि धर्म ही इस लोक और परलोक में सुख का कारण है। उसी से जय प्राप्त होती है और अधर्मी पुरुषों को सदा दुःख उठाना पड़ता है बृहस्पति जी ने कहा है जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाशक है उसी प्रकार धर्म पापों को नष्ट करता है। कुबेरजी ने कहा है कि जो अधर्म करता है वह नष्ट हो जाता है। द्रोणाचार्यजी ने कहा है कि धर्म ही जय का कारण है। संजय ने कहा है कि मनुष्यमात्र धर्म को न त्यागें। परशुरामजी ने कहा है कि धर्म ही उत्तम पदार्थ है, इसी कारण विद्वान् अर्थ को छोड़ और हानि उठा कर उसको करते रहते हैं। वाल्मीकि जी ने कहा है कि धर्म सम्पूर्ण वस्तुओं से बढ़कर है। युधिष्ठिर ने कहा है कि धर्म ही आपत्काल में सहायक होता है। मार्कण्डेय ऋषि ने कहा है कि धर्म से पापों का नाश होता है और धर्मात्मा मित्रों-सहित स्वर्ग को जाता है।

नागों ने कहा है कि अधर्म ही नाश का कारण है। हनूमान्जी ने कहा है कि बिना धर्म के सुख कहां, धर्म के बिना बृहस्पति के तुल्य जन भी नष्ट हो जाते हैं। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है धर्म से ही अर्थ और काम की सिद्धि होती है, जो मनुष्य धर्मात्माओं से अधर्मरूप से वर्तता है वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

अब पाठकगण सोचते होंगे कि जिस धर्म की इतनी प्रशंसा की गई वह क्या है? उसके क्या लक्षण और वह किस प्रकार से जाना जाता है? जिस

का मैं क्रम से वर्णन करूँगा। देखिये, जैमिन ने अपने मीमांसा दर्शन के अ० १ पा० १ सू० २ में लिखा है कि जिस कर्म में सर्वनियन्ता, सर्वान्तर्यामी परमेश्वर की प्रेरणा हो वही धर्म है, जैसा—(चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः)

इसके अतिरिक्त कणाद ने वैशेषिक शास्त्र में लिखा है कि जिससे शारीरिक और पारमार्थिक सुखों की उन्नति हो उसे धर्म कहते हैं, जसाकि—

यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।

और लिङ्गपुराण पूर्वार्द्ध अ० १० में लिखा है कि उत्तम कर्म को धर्म और निकृष्ट को अधर्म कहते हैं, अर्थात् जिससे इष्ट फल की प्राप्ति हो उसका नाम धर्म और जिससे अनिष्ट फल मिले उसको अधर्म कहते हैं।

हे सुजनो ! धर्म ईश्वर की आज्ञा पालन को कहते हैं जो हमको वेदद्वारा बतलाया गया है, वा उन कर्मों के अनुसार चलने का नाम धर्म है कि जिनमें परमानन्द और मोक्ष मिलती है। वेदोक्त न्याय से युक्त होकर, पक्षपात को छोड़ सत्य ही का सदा आचरण और असत्य का त्याग करना भी धर्म कहाता है, वा जिस आचरण के करने से संसार में उत्तम और निःश्रेयस अर्थात् मोक्ष सुख की प्राप्ति हो उसको धर्म कहते हैं, वा मनको पवित्र वा वेद विद्या युक्त करना ही धर्म कहाता है, वा प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, असम्भव और अभाव इन आठ के द्वारा जो निश्चय होता है उसको धर्म कहते हैं, जैसा यजुर्वेद अ० १८ मं० ५८ में कहा है—

यदाकूतात्समसुस्रोद्धृदो वा मनसो वा सं भृतं चक्षुषो वा तमनुप्रेत सुकृतामु लोकं यत्रऽऋषयो जग्मुः प्रथमजाः पुराणाः ॥

❋ धर्म के लक्षण ❋

मान्यवरो ! इस परोक्त धर्मरूपी गह के मनुजी महाराज ने धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध ये दश खम्भे बतलाये हैं, जैसाकि—

धृतिःक्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम् ॥

और ऐसा ही याज्ञवल्क्य महाराज ने भी कहा है—

सत्यमस्तेयमक्रोधो ह्रीः धीर्धृतिर्दमः ।
संयतेइन्द्रियता विद्या धर्मः सर्व्वउदाहृतः ॥

इसी प्रकार महाभारत में व्यासजी महाराज ने कथन किया है ।

प्रियवरो ! यही धर्मरूपी गृह के दश खम्भे अन्य शास्त्रों में भी पाये जाते हैं । आप जानते हैं जब तक खम्भे ठीक रहते हैं मकान उत्तम बना रहता है और रहनेवाले सुख चैन से रहते हैं, और जब खम्भे ठीक नहीं होते तो मकान शीघ्र गिर कर चूर हो जाता है और रहनेवालों को नाना प्रकार के क्लेश होते हैं । इसलिये यदि आपको सुखपूर्वक रहकर परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा है तो इन खम्भों पर पूरा ध्यान दें, क्योंकि ऐसे ही सज्जन पुरुषों को सुख और परमगति प्राप्त होती है । जैसा कि मनु० अ० १० श्लोक ६३ में लिखा है—

दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते ।
अधीत्य चानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम् ॥

प्यारे सुजनो ! उन्हीं उपरोक्त दश लक्षणों पर यथावत् चलने की आज्ञा समस्त ऋषि और मुनियों ने दी है, इन्हीं को स्वर्ग का मार्ग बतलाया है, मनुजी महाराज ने अ० ६ श्लोक ६ में स्पष्ट लिखदिया है—चाहे जिस आश्रम में रहे परन्तु इन दश लक्षणों का अच्छे प्रकार सेवन करता रहे ।

अब मैं इन्हीं धर्म के दस लक्षणों अर्थात् खम्भों की व्याख्या वेद तथा प्राचीन ऋषि और मुनियों के अनुकूल करता हूं । विचार कीजिये और यदि परमानन्द प्राप्त करने की इच्छा हो तो अवश्यमेव इन्हीं के अनुकूल अपने मन को निर्मल और शुद्ध कीजिये ।

(१) धृति—नाम धैर्य्य धारण करने का है अर्थात् श्रेष्ठ मनुष्यों को चाहिये कि धीरज का कदापि त्याग न करें क्योंकि धैर्य्य करने से ही सांसारिक और पारमार्थिक कार्य्य सुगमता से होते हैं ।

(२) क्षमा—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक दुःखों की प्राप्ति में न क्रोध करना और न हिंसा करना । प्रिय सज्जन पुरुषो ! इस से उत्तम संसार में कोई वस्तु नहीं, इसी से लक्ष्मी की शोभा होती है और परमेश्वर प्रसन्न होते हैं । जैसा श्रीमद्भागत के नवें स्कन्ध के १५

अध्याय में लिखा है, और वनपर्व अध्याय २९ में युधिष्ठिर महाराज ने द्रौपदी से कहा है। क्षमा ही परम धर्म, क्षमा ही यज्ञ, क्षमा ही वेद, क्षमा ही ब्रह्म है, क्षमा ही सत्य, क्षमा ही जप, क्षमा ही पवित्र, क्षमा से ही जगत् स्थिर है, क्षमा ही दया, क्षमा ही तीर्थरूप है, क्षमावान् ही स्वर्ग को जाते हैं, उन्हीं को मोक्ष और यश प्राप्त होता है। ऐसा ही वृद्धगौतमसंहिता में लिखा है, जैसा—

> क्षमा हिंसा क्षमा धर्मः क्षमा चेन्द्रियनिग्रहः।
> क्षमा दया क्षमा यज्ञः क्षमा धैर्य्यमुदाहृतम् ॥
> क्षमावान्प्राप्नुयात्स्वर्गं क्षमावान्प्राप्नुयाद्यशः।
> क्षमावान् प्राप्नुयान्मोक्षं क्षमावांस्तीर्थमुच्यते ॥

चाणक्य जी ने कहा है कि शान्ति से अधिक कोई तप नहीं 'शांति तुल्यंतपोनास्ति।' व्यासस्मृति अ० २ श्लोक ४३ और आपस्तम्बस्मृति अ० ९ श्लोक ५, ६ में लिखा है कि क्षमा करनेवाले पुरुषों को इस लोक और परलोक में सुख मिलता है।

(३) दमः—मन को विपरीत कर्मों से हटा कर सदा अच्छे कर्मों में लगाना ही दम कहाता है। मन अत्यन्त वेग से गमन करता है, यह बड़ा चंचल है, कभी धन के उपार्जन में डूबता है, कभी लड़ाई झगड़े पर उद्यत होता है, कभी सम्पूर्ण सांसारिक वस्तुओं को छोड़ कर विरक्त बनता है, कभी स्त्रियों पर आसक्त होता है, कभी उनको माता के तुल्य मानता है। कभी जंगलों में रहना स्वीकार करता है, कभी संसार के आनन्दों को छोड़ कर ऋषि मुनि बनना चाहता है। इसी के कारण बड़े बड़े महात्मा, राजा, महाराज और विद्वानों ने अपयश प्राप्त किया है। इसी कारण वही ऋषि, मुनि और देव हैं जिन्होंने इस मन को वश कर लिया है। मन का एकत्र करना ही सब से बड़ी तपस्या है, क्योंकि इसके जीतने से सब इन्द्रियां निर्बल हो जाती हैं। और फिर कल्याण मार्ग दृष्टि आता है और मनुस्मृति अ० २ के श्लोक २ में भी ऐसा ही लिखा है। और गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि बिना मन के संयम किये सब आचरण मिथ्या हैं। यह मनुष्य का शरीर रथ, मन रथवान् अर्थात् सारथी और इन्द्रिय घोड़े हैं। यदि यह रथवान् बुद्धिमान है तो इन इन्द्रिय रूपी घोड़ों को अपने अधीन रख सकता है, अन्यथा नहीं। देखो य० अ० १६४ मंत्र ३ में लिखा है—

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव ।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरञ्जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

परमेश्वर उपदेश करता है कि मन की दो प्रकृति हैं । एक तो वह जब किसी वस्तु पर आसक्त होना है तो अपने इन्द्रियरूपी घोड़ों सहित उसकी तरफ़ दौड़ता हुआ चला जाता है जिसके अनुसार मूर्ख कार्य करते हैं और कष्ट भोगते हैं । दूसरी वह है जो इन्द्रियरूपी घोड़ों को अपने २ विषय से हटा कर अपने वश में कर विद्वान् भोगते हैं ।

(४) अस्तेय--नाम चोरी न करने का है, वह (१) कायिक, (२) वाचिक, (३) मानसिक तीन प्रकार की होती है । (१) कायिक अर्थात् किसी के धन स्त्री आदि पदार्थ को ले लेना कहलाता है । (२) वाचिक अर्थात् वचन का चुराना । यह दो प्रकार का होता है । एक तो सत्य का छिपाना, दूसरे असत्य बोलना । सत्य का छिपाना उसे कहते हैं कि हम किसी वार्ता को अच्छे प्रकार जानते हैं और जब हम से कोई मनुष्य पूंछे कि आप इस विषय में क्या जानते हो तो हम किसी कारण से कहदें कि मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता । असत्य बोलना—अर्थात् जान बूझ उलटी बात कहें । (३) तीसरी मानसिक चोरी अर्थात् मन के सिद्धान्त के विरुद्ध कार्य करना । जैसे कोई मनुष्य परमेश्वर का ध्यान कर रहा हो और उसका मन अन्य विषयों के विचार में लग रहा हो । इस लिये इन तीनों प्रकार की चोरियों का त्यागना अभीष्ट है ।

(५) शौच—अर्थात् पवित्र रहना और पवित्रता दो प्रकार की होती है । (१) बाह्य और (२) आभ्यन्तर । बाह्य अर्थात् वस्त्रगृहादि और शरीरको स्नान द्वारा पवित्र रखना जिसके लाभ आपको स्नान में बतलाये गये । दूसरी आभ्यन्तरिक जो ईश्वराराधन, विद्याध्ययन, विषयवासना और कामादि दोषों के त्यागने से होती है । शुद्धि ही धर्म का मूल है और जो बाहर भीतर से शुद्ध हो वही धर्मात्मा हो सकता है । इस लिये महाशय, दोनों प्रकार की शुद्धि पर पूर्ण ध्यान रखिये ।

(६) इन्द्रियनिग्रह—इन्द्रियों को विपरीत व्यवहार में न लगने देना अर्थात् धर्मपूर्वक कामों में इन्द्रियों को प्रेरणा करना, जैसा कहा है कि—

इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारिषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनाम् ॥

जैसे विद्वान् सारथि घोड़े को नियम में रखता है वैसे ही मन और आत्मा को खोटे कामों में खींचनेवाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में प्रयत्न सब प्रकार से करे क्योंकि जीवात्मा इन्द्रियों के वश हो के निश्चय बड़े २ दोषों को प्राप्त होता है और जब इन्द्रियों को अपने वश करता है तभी सिद्धि को प्राप्त होता है, जैसा कहा है—

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् ।
सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥

इस विषय में गीता के १६ अध्याय के ३८ श्लोक में लिखा है कि विष खाने से तो प्राणी एक बेर में ही मरता है परन्तु इन्द्रिय-विषयों के स्वाद भोगने से बारम्बार मरता ही चला जाता है, जैसा कि—

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसंस्मृतम् ॥

इसके उपरान्त महात्मा अष्टावक्रजी ने कहा है कि हे प्यारे सुजनो ! जो मुक्तिरूपी सुखों की इच्छा हो तो इन्द्रियों के विषयों को विषवत् त्याग दो और य० अ०१७ मंत्र ६८ में लिखा है कि योगीजन जितेन्द्रिय हो कर नियमपूर्वक परमात्माको पाकर आनन्दित होते हैं। सञ्जय ने धृतराष्ट्र से कहा है कि इन्द्रियों के जीतनेवाले महात्मा ईश्वर के दर्शन करते हैं। श्रीकृष्णमहाराज ने अर्जुन से कहा है कि इन्द्रियों के जीतने से बुद्धि बढ़ती है। शान्तिपर्व अ० १५९ में भीष्मपितामह ने कहा है कि चारों आश्रमों के बीच इन्द्रिय-निग्रह ही उत्तम धर्म है। इस लिये आओ ! ज्ञान के द्वारा विषय-वासना में विचरती हुई इन्द्रियों को अपने आधीन कर सुख की प्राप्ति करें।

(७) धी—नाम बुद्धिका है अर्थात् जिस प्रकार से बुद्धि की उन्नति हो वह कार्य करना। मुख्य प्रयोजन यह है कि सदा विचार पूर्वक बुद्धि को अच्छे कर्मों में लगाना और इसकी वृद्धि के लिये यत्न करना, जिसकी तीन रातें हैं–(१) वेद शास्त्रों का विचार करना, (२) महात्मा और विद्वानों का सत्संग करना, (३) उत्तम २ गुणों को सीखना।

(८) विद्या—अर्थात् जिससे पदार्थों का सत्यरूप मालूम हो उसे विद्या कहते हैं, जैसा कि—

पदार्थान् याथातथ्येन वेत्ति यया सा विद्या ।

और इसके विपरीत दशा को अविद्या कहते हैं अर्थात् नित्य को अनित्य, अनित्य को नित्य, धर्म को अधर्म और अधर्म को धर्म मानना इत्यादि अविद्या हैं जैसा कि योगसूत्र में लिखा है—

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु ।
नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥

और ऐसा ही प्रश्नोपनिषद्द में भी लिखा है। सचमुच विद्या से बढ़ कर कोई मित्र और अविद्या से बढ़कर कोई शत्रु नहीं। विद्या ही के कारण मनुष्य इस संसार में सर्व प्रकार के आनन्द पाता है और अन्त को मोक्ष प्राप्त करता है। परन्तु अविद्या सब क्लेश की जड़ है और भगवान् पतञ्जलि ने अविद्या, अस्मिता, रागद्वेष, अभिनिवेश पांच क्लेश माने हैं, जैसा कि—

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पञ्च क्लेशाः ॥

अविद्या ही के कारण यह देश अधोगति को प्राप्त हुआ, अविद्या ही के कारण हमने सज्जनों और विद्या को छोड़कर मूर्खों की संगति में पड़ कर नाना प्रकार की बुराइयां सीखी हैं, अविद्या ही के कारण इस देश में वेश्या का नाच होने लगा, अविद्या ही के कारण हम अपने जीते माता पिताओं को दुःख देकर गयादि तीर्थ उनके सुख पहुंचाने को करने लगे, जिससे धर्म की परिपाटी में अन्तर आ गया।

अब इस समय में महाशय! आप विद्या और अविद्या को जान कर ही कार्य कीजिये जिससे सर्व प्रकार के सुख मिलें और देश की यह दशा न रहे। मुख्य कथन यह है कि वेदोक्त कर्मों के करने को विद्या और वेदविरुद्ध कर्मों के करने को अविद्या कहते हैं।

(९) सत्य--अर्थात् मिथ्या व्यवहार कभी न करना, इसी से मनुष्य को सब प्रकार के आनन्द मिलते हैं। यही मनुष्य को स्वर्ग में ले जाता है, इसके बिना संसार का कोई कार्य नहीं चल सकता। सच तो यह है कि संसार के सम्पूर्ण कार्य इसी पर निर्भर हैं देखो चाणक्य जी लिखते हैं—

सत्येन धार्यते पृथ्वी सत्येन तपते रविः ।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥

सत्य ही से पृथ्वी स्थिर है, सूर्य प्रकाशमान है और वायु चलता है और भी कहा है—

नहि सत्यात्परं धर्मो नानृतात्पातकं परम् ।
नहि सत्यात्परं ज्ञानं तस्मात्सत्यं समाचरेत् ॥

सत्य से बढ़ कर कोई धर्म और झूठ से बढ़ कर कोई पाप नहीं है। और सत्य से बढ़ कर कोई ज्ञान भी नहीं है।

शिवपुराण ज्ञानखण्ड अ० १० में लिखा है कि शूर की संग्राम में, मित्र की आपदा में, स्त्री की असमर्थ होने में, श्रेष्ठ कुल की विपत्ति में, स्नेह की दूर जाने में और सत्य की संकट प्राप्त होने पर परीक्षा होती है।

इसके उपरान्त—हनुमान जी, भीष्मपितामह, मार्कंडेय जी, सनत्सुजात मुनि, नारद जी, शकुन्तला और भृगु जी इत्यादि ने कहा है कि द्विजातियों का परम धर्म सत्य है, सत्य से आयु क्षीण नहीं होती, सब गुणों में सत्य ही प्रधान है, उसी में अमृत बसता है, वही सब व्रतों में श्रेष्ठ है, सत्य ही परम धर्म है, यही सब की जड़ है, इसी के द्वारा स्वर्ग मिलता है, इसी से कल्याण और हित होता है। और यजुर्वेद अ० १७ मं० १४ में लिखा है कि जो मनुष्य शास्त्र के अभ्यास, सत्य वचनादि से वाणी को पवित्र करते हैं वे ही शुद्ध होते हैं। परन्तु सत्य के ग्रहण करनेवाले को यजुर्वेद के ब्राह्मण पर भी पूरा ध्यान रखना चाहिये अर्थात् सत्य को मन से धारण करना, न कि मनुष्यों के दिखलाने के अर्थ, क्योंकि जो मन में होता है वही वाणी में आता है और जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है, जैसा कि—

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति तत्।
कर्मणा करोति यत्कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते ॥

अर्थात् जो मनुष्य सत्य का अनुष्ठान करते हैं वही सच्चे धर्मात्मा कहाते हैं, वह इसी के बल से भवसागर से पार हो जाते हैं। सचमुच सत्य ऐसा ही पदार्थ है, इस लिये सत्य को मन में ग्रहण करना चाहिये।

(१०) **अक्रोध**—अर्थात् प्राणीमात्र पर क्रोध न करना। क्योंकि क्रोध सम्पूर्ण पापों की जड़ है, इसी क्रोध में आकर मनुष्य की विचार शक्ति नहीं रहती, बहुत सी हानि व्यर्थ कर बैठता है। प्रसिद्ध है कि एक क्रोधी ने केवल एक ही को कष्ट देने के अर्थ अपने गृह में आग लगा दी थी। क्रोध ही इस संसार में परम शत्रु है, क्रोधी मनुष्य की कहीं प्रतिष्ठा नहीं

होती। जो मनुष्य क्रोध के वश में रहते हैं, उनका शीघ्र नाश हो जाता है। अक्रोधी ही को सब प्रकार के आनन्द मिलते हैं, वही अपने कार्य को सिद्ध कर प्रतिष्ठा पाता है। वही सब में श्रेष्ठ और विद्वान् गिना जाता है। हनूमान् जी महाराज ने सुन्दरकाण्ड में कहा है कि धन्य है उन पुरुषों को जो क्रोध रोक शान्ति का प्रसाद लेते हैं, ऐसे ही मनुष्यों को महात्माओं की पदवी मिलती है। आपस्तम्बस्मृति अ० ६ श्लोक ८ में लिखा है कि क्रोधी पुरुष के यज्ञादि उत्तम कर्मों का भी फल नष्ट होजाता है। इसलिये इन उपरोक्त धर्म के लक्षणों का यथावत् पालन करते हुए धर्म-मार्ग पर चलने का यत्न करते रहिये।

धर्म-मार्ग

प्रत्येक मनुष्य सदा सीधे और सुगम मार्ग की चाह में रहता है क्योंकि ऐसे मार्ग पर चलने से मनुष्य को कष्ट नहीं होता और उसका प्रयोजन शीघ्र सिद्ध होजाता है जिससे चलनेवाले को थकावट नहीं होती। इसके अतिरिक्त टेढ़े, कुमार्ग पर जाने से बहुधा कष्ट उठाने पड़ते हैं और न बटोही अपने अभिप्राय को प्राप्त करते हैं। इसलिये सर्व प्राणीमात्र को धर्म के सीधे अर्थात् सत्य सनातन मार्ग को जान कर मोक्ष प्राप्त करना चाहिये।

प्रिय सज्जन पुरुषो! वर्त्तमान काल में सहस्रों मार्ग अर्थात् पंथ प्रचलित होगये हैं। कोई इधर खैंचता कोई उधर पकड़ता है, कहीं वाममार्ग के लटके दिखलाये जाते हैं, कहीं फ्रीमेशन की प्रशंसा बतलाई जाती, कहीं नानक पंथ कबीर साहिब की साखी सुनाई जाती और वाह गुरु की विजय कान में फूंकी जाती है, कहीं शब्द ज्ञान कराया जाता, कहीं झूंठे भोजन की महिमा सुनाई जाती, कोई गंगा और एकादशी आदि व्रत और मनमानी सत्यनारायण की कथा सुनने को ही धर्म मार्ग बतलाते हैं। बहुधा तुलसी, शालिग्राम, महादेव पार्वती इत्यादि की पाषाणादि मूर्तियों के पूजन करने और उनके सम्मुख नाचने गाने को ही धर्म-मार्ग कहते हैं। और कोई बरगद, पीपल और केले आदि वृक्षों की पूजा से ही ईश्वर की प्राप्ति मानते हैं। कोई कोई नाना भांति के तिलक छापे और ठाकुर प्रसाद और तुलसी शालिग्राम के विवाह को ही धर्म कहते हैं। परन्तु हमारे प्राचीन ऋषियों ने और ही धर्म के मार्ग बतलाये हैं, जिनपर हमारे पुरुषाओं ने चल कर नाना प्रकार के सांसारिक सुखों के उपरान्त परमपद

को भी प्राप्त किया है और उसी को सनातनधर्म कहते हैं, जिसको मनुजी महाराज श्रुति स्मृति सदाचार और अपनी आत्मा को प्रिय, कर्मों को धर्म मार्ग ठहराया है, जैसा कि—

श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

भविष्यपुराण पूर्वार्द्ध के प्रथम अ० में भी श्रुति, सदाचार, अपने मन की प्रसन्नता को ही धर्म मार्ग माना है। ऐसा ही महाभारत शान्तिपर्व अ० २५८ और अनुशासन पर्व अ० १४८ में कहा है और लिंगपुराण अ० १० श्लो० ७ में यह लिखा है कि धर्म वही है जो श्रुति स्मृति के अनुकूल वर्णाश्रम धर्मों को जान कर करते हैं।

वर्णाश्रमेषु युक्तस्य स्वर्गादि सुखकारिणः ।
श्रौतस्मार्त्तस्य धर्मस्य ज्ञानं धर्म उच्यते ॥

ऐसा ही विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक २४ और अत्रिस्मृति श्लो० ३४९ में भी लिखा है। और शिवपुराण विन्देश्वरी संहिता अ० १९। श्लो० ४४ में लिखा है कि जो वेद और स्मृति के कर्म को अनादर कर दूसरे कर्म करता है उसका फल नहीं होता, इसलिये वेदोक्त कर्म करने को ही धर्म-मार्ग कहते हैं।

वेद

प्रिय सज्जन पुरुषो ! श्रुति वेद और स्मृति धर्मशास्त्र को कहते हैं, जैसा कि मनु जी ने कहा है—

श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्मशास्त्रन्तु वै स्मृतिः ।

इसके उपरान्त मनुस्मृति अध्याय १२ श्लोक ९९ में लिखा है कि वेद सनातन विद्या है, वही सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है, इसी कारण जीवों के लिये मैं उसी को सब से उत्तम उपाय सुख की प्राप्ति का निश्चय करता हूं।

बिभर्ति सर्व भूतानि वेद शास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्य यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥

और अ० २ के ८ श्लोक में लिखा है कि विद्वान् को योग्य है कि

विद्या से हमको समझे और वेदोक्त धर्म को स्वीकार करे, और श्लोक १३ में मनुजी ने स्पष्ट लिखा है कि धर्म जानने के लिये श्रुति ही परम प्रमाण है।

धर्मजिज्ञासमानानाम्प्रमाणं परमं श्रुतिः।

इसी कारण नित्य कर्मों में प्रतिदिन वेद पाठ करने को आज्ञा दी है। इसके उपरान्त १२ अध्याय के ६७ श्लोक में लिखा है कि चारों वर्ण, तीनों लोक, चारों आश्रम, तीनों काल, सब वेदद्वारा जाने जाते हैं।

चातुवर्ण्यन्त्रयो लोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति॥

इसी लिये मनुजी ने इसी अध्याय के १०६ श्लोक में स्पष्ट लिख दिया है कि जो मनुष्य वेद के अर्थ को यथार्थ जान कर चलता है चाहे वह जिस आश्रम में रहे, जीवनमुक्ति को पाता है।

वेदशास्त्रार्थतत्त्वज्ञो यत्र तत्राश्रमे वसन्।
इहैव लोके तिष्ठन् स ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

और श्रीमद्भागवत में लिखा है कि धर्म वही है जो वेद में लिखा है, उसके अतिरिक्त अधर्म है और वेद नारायण का रूप है।

वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः।
वेदो नारायणः साक्षात् स्वयं भूरिति शुश्रुमः॥

फिर इसी अ० में लिखा है कि जो वेद विरुद्ध कार्य करते हैं उनको नरक होता है और अ० ४ में ऋषभदेवजी ने अपने पुत्रों को श्रुतिस्मृति धर्म को मुख्य मान कर उसकी शिक्षा की है। स्कन्ध ११ अ० ३ के श्लोक ४६ में स्पष्ट लिखा है कि वेदोक्त कर्म करने से मोक्ष होती है।

वेदोक्तमेवकुर्वाणो निःसंगोऽर्पितमीश्वरे।
नैष्कर्म्यां लभतेसिद्धिं रोचकानार्थाफलश्रुतिः॥

याज्ञवल्क्य स्मृति अध्याय २ श्लोक ४० में मनुष्य मात्र को आज्ञा की है कि यज्ञ, तप और शुभ कर्मों से द्विजों का सब से बड़ा उपकार वेद को जानना चाहिये।

यज्ञानां तपसां चैव शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥

क्योंकि सब कर्म वेद से ही जाने जाते हैं। लिंगपुराण पूर्वार्द्ध के ७८ अ० में स्पष्ट लिखा है कि जो मनुष्य वेद-विरुद्ध व्रत आचार आदि करते हैं, श्रुति स्मृति से विमुख हैं, उत्तम वर्ण वाले उन पाखण्डियों का स्पर्श तथा उनसे सम्भाषण भी न करें।

वेदबाह्यव्रताचाराः श्रौतस्मार्तबहिष्कृताः ।
पाषण्डिनइतिख्याता न सम्भाष्या द्विजातिभिः ॥

विष्णुपुराण अ० २ श्लोक ६ में लिखा है कि जो वेद-विरुद्ध कार्य करते उनको (सतन) नाम नरक होता है। ऐसा ही श्रीमद्भागवत के स्कन्ध ५ अध्याय २६ श्लो० १५ में लिखा है कि जो वेद-मार्ग को छोड़ पाखण्ड मार्ग में चलते हैं वह (कालसूत्र) नाम नरक में जाते हैं।

यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्ड-
आपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरति ॥

मनुजी ने अ० १२ श्लोक ८६ में लिखा है कि वेदोक्त कर्म करने से मनुष्य सुपात्र होता है। श्री रामचन्द्र जी ने बाल्मीकीय रामायण में कहा है कि जो मनुष्य वेद मर्यादा को त्यागते हैं वह पापी होते हैं। इसके उपरान्त उन्होंने चित्रकूट पर भाई भरत को सदा वेदोक्त कार्य करने के लिये शिक्षा की है। शान्तिपर्व अध्याय २०१ में बृहस्पति ने भी यही लिखा है। श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि वेद-विरुद्ध कार्य करनेवालों को तत्वज्ञान नहीं मिलता, इसी हेतु उन्होंने उद्धव को उपदेश किया है कि वेद जाननेवाले ही सत्पुरुष को गुरु करना। इसी प्रकार कौशिक मुनि, नकुल, युधिष्ठिर, सनत्सुजात और कपिल आदि मुनि तथा सम्पूर्ण स्मृतिकार यही पुकार पुकार कर कहते हैं और पुराणों के कर्त्ता भी यही उपदेश करते हैं कि वेद ही के अनुसार कार्य करना अभीष्ट है। देखो वृहन्नारदी पुराण अध्याय ९ श्लोक १४१ में लिखा है कि जो सब प्राणियों में दयायुक्त और वेद मार्ग पर चलते हैं और गुरु-पूजा-परायण हैं, वही परम स्थान को जाते हैं। अ० १४ में लिखा है कि जो वेद मार्ग से भ्रष्ट हैं वे पाखण्डी कहाते हैं। कूर्मपुराण में स्पष्ट लिखा है—

न च वेदादृते किञ्चिच्छास्त्र ब्रह्मा त्रिधायकम् ।
योऽन्यत्र रमते सोसौ न सम्भाष्याद्विजातिभिः ।।

वेद को छोड़कर एक भी ग्रन्थ परमेश्वर का चिन्तवन करनेवाला नहीं है, जो मनुष्य वेद को छोड़ कर अन्य (पाखण्डी) ग्रन्थों को मानते हैं । द्विजातीय उनसे वार्त्तालाप न करें ।

पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अध्याय ६४ में राजा ययाति ने मातलि से कहा है कि जो कोई वेद की निन्दा करता है, ज्ञानी पण्डितों ने उसको महापापी बतलाया है ।

वृहन्नारदीय पुराण में लिखा है कि जो मनुष्य वेदोक्त धर्म को छोड़ कार्य करता है वह पापियों में महापापी और आत्मघाती है ।

विष्णुपुराण अंश ३ अध्याय १७ में लिखा है जो कोई वेद-मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग में जाता है, वह महापापी और नंगा कहा जाता है, इस लिये ब्राह्मण, क्षत्री और वैश्य के शास्त्र वेद ही हैं ।

ऋग्यजुः सामसंज्ञेयं त्रयीवर्णा वृत्तिर्द्विजः ।
एतामुज्झतियोमोहात्स नग्नः पातकीस्मृतः ।।

अठारवें अध्याय में मैत्रेयी जी ने कहा है कि जो वेदानुसार नहीं चलते वेही नग्न कहाते हैं, इस लिये वेद त्यागी के साथ उठना, बैठना, बोलना उचित नहीं, फिर पूजा कैसी ?

ब्राह्मण्याश्चये वर्णाः स्वधर्मादन्यतोसुखम् ।
यान्तितेनग्न संज्ञांतु हीन कर्म स्ववस्थिताः ।
सर्वदा वर्जयेत्प्राज्ञ आलापस्पर्शनादिष ।

अयोध्या काण्ड सर्ग ६७ श्लोक ३२ में कहा है कि जो लोग वेद शास्त्र की मर्यादा को उल्लंघन करते हैं उनको नास्तिक कहते हैं ।

'येहि संभिन्नमर्यादा नास्तिकाश्छिन्न संशयाः ।

सर्ग १०० में रामचन्द्रजी ने भरतजी से कहा है कि तुम वेदशास्त्र के बिना पढ़े हुए अज्ञानी लोगों की सेवा तो नहीं करते, ऐसे लोग परलोक विषयक ज्ञान कुछ भी नहीं जानते और अपने को वह पंडित ही पंडित

मानते हैं, वास्तव में उनको महा मूर्ख समझ उनकी मनमानी तर्कनाओं पर कुछ ध्यान नहीं करना चाहिये । इस लिये राजा का यही धर्म है कि वेदों को सदा पढ़ता रहे । सुन्दर काण्ड सर्ग २६ श्लोक २५ में सीता ने राक्षसियों से कहा है कि तुम्हारे सब कार्य शास्त्र के विरुद्ध हैं, इस लिये नाश होना सम्भव है और सर्ग १०९ में लिखा है कि जो लोग वेदानुकूल कार्य करते हैं वही कुलीन तथा इससे विपरीत को अकुलीन कहते हैं ।

देवी भागवत स्कन्ध १ अध्याय १८ श्लोक ४७ में राजा जनक ने कहा है कि प्राणी मात्र को वेदानुकूल कार्य करना चाहिये ।

धर्मनाशे विनष्टः स्याद्वर्णाचारोऽति वर्तितः ।
अतो वेद प्रदिष्टेन मार्गेण गच्छतांशुभम् ॥

बृहन्नारदीय पुराण अध्याय ४ में लिखा है कि धर्म वेद से प्रकट होता है और वेद परमेश्वर से, इस लिये जिसकी श्रद्धा उसमें नहीं उससे परमेश्वर अति दूर है, अध्याय १५ श्लोक ३० में लिखा है कि जो धर्म और अधर्म का ज्ञान वेद से कर उसके अनुसार कार्य करते हैं वे साधुजन कहाते हैं ।

देखो य० अ० २८ मं० ३५ में कहा है कि जैसे आकाश में सूर्य का प्रकाश बढ़ता है, इसी भांति वेदों के अभ्यास करने से बुद्धि बढ़ती है, जो इस जगत् में वेदद्वारा सब विद्याओं को जानते हैं वे सब ओर से बढ़ते हैं ।

देव बर्हिर्वयोधसं देवमिन्द्र मवर्द्धयत् । गायत्र्या छन्दसेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रवयो दधद्वसुवने वसुधेयस्य वेतुयज ॥

सामवेद उत्तरार्चिके ६ अध्याय ।

पवमानस्य विश्ववित्प्रते सर्गा असृक्षत सूर्यस्येव न रश्मयः ।

जिस प्रकार सूर्य की किरणें उदय होकर मनुष्यादि प्राणियों की आंखों को सहायता देती हैं, उसी भांति परमात्मा से वेद प्रकट होकर मनुष्यों की बुद्धियों को सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हैं जो अनादि हैं ।

❀ वेदों के अनादि होने का प्रमाण ❀

मान्यवरो ! यदि मुझ को कोई मनुष्य उत्पन्न होते ही एक गृह में बन्द कर देता और वहीं भोजनादि देता और मेरे सम्मुख कोई बात चीत भी न करता तो आशा है कि मुझको बात चीत करना भी न आती, न किसी विद्या को जानता । मुख्य कथन यह है कि जो कुछ मैंने इस संसार

में सीखा, पढ़ा लिखा, यह सब माता पिता और विद्वानों की संगति का ही गुण है। इसी प्रकार हमारे पिता ने सीखा और पढ़ा। परन्तु जिस समय संसार उत्पन्न हुआ उस समय कोई सिखानेवाला न था, केवल परमेश्वर ने अपनी कृपा और अनुग्रह से अपने वेदरूपी ज्ञान को अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा महर्षियों के हृदय में प्रकाश किया, जो उस समय से आज तक ऋग्, यजु, साम, अथर्व के नाम से प्रसिद्ध हैं। इससे प्रकट होता है कि वेद ही सनातनधर्म पुस्तक अर्थात् अनादि हैं।

प्रकट हो कि आर्यावर्त के विद्वानों और बुद्धिमानों ने सृष्टि की आयु को १४ मन्वन्तरों पर बांटा है, इनमें से ६ मन्वन्तर व्यतीत हो चुके और सातवां अब बीत रहा है और १ मन्वन्तर में १७ चतुर्युगी होती हैं। अर्थात् चारों युग ७१ बार बीतते हैं। प्रत्येक की आयु नीचे लिखी है—

१—सतयुग १७,२८,०००
२—त्रेतायुग—१२,९६,०००
३—द्वापरयुग—८,६४,०००
४—कलियुग—४,३२,०००

चारों का योग ४३,२०,०००

इससे प्रकट है कि हर चतुर्युगी की आयु ४३,२०,००० वर्ष की होती है और अगर इसको ७१ से गुणा किया जावे तो एक मन्वन्तर हो जाता है, जिसके ३०,६७,२०,००० साल हुए। इस प्रकार के १४ मन्वन्तर व्यतीत हों तो दुनिया की आयु सम्पूर्ण होगी। परन्तु अब १४ मन्वन्तरों में से केवल ६ मन्वन्तर और २७ चतुर्युगी बीती हैं, २८ वीं चतुर्युगी अब बीत रही है जिसमें से तीन युग—सतयुग, त्रेता, द्वापर बीत चुके हैं और चौथा कलियुग अब बीत रहा है। कलियुग में से सन् १९०४ ई० तक ५००३ वर्ष बीत चुके हैं, इस लिये सृष्टि की उत्पत्ति का हिसाब इस प्रकार है—

एक चतुर्युगी	४३,२०,०००
	७१
एक मन्वन्तर	३०,६७,२०,०००
	६
६ मन्वन्तर—	१,८४,०३,२०,०००
७ वें मन्वन्तर में से २७ चतुर्युगी बीत चुकीं—	११,६६,४०,०००

अब २८ वीं चतुर्युगी है जिसके ३ युग बीत चुके— ३८,८८,०००

कलियुग में से जो वर्ष बीत चुके— ५००१

सम्पूर्ण योग— १,९६,०८,५३,००१

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति को १,९६,०८,५२,९०६ वर्ष हो चुके हैं और अब सम्वत् १,९६,०८,५३,००३ बीत रहे हैं।

स्मृति

द्वितीय धर्म का मार्ग स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र हैं, इनकी संख्या १८ है जिन को मनु, अत्रि, विष्णु, हारीत, याज्ञवल्क्य, उशना, अँगिरा, यम, आपस्तम्ब, सम्वर्त्त, कात्यायन, बृहस्पति, पराशर, व्यास, शंख, दक्ष, गौतम, शातातप, वशिष्ठ ऋषियों ने लिखा है कि जिनमें उन्होंने वेद के गूढ़ मन्त्रों की व्याख्या पूर्णरूप से कर योग और नाना क्रियाओं से ज्ञान प्राप्त करके की थी। संसार की दशा सदा एक ही नहीं रहती, कभी वृद्धि को प्राप्त होती है और कभी हीन दशा हो जाती है। देखिये यही सूर्य जो प्रातःकाल में प्रकाशित होकर संपूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है वही सायंकाल को हीन दशा को प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार जब यह देश अविद्या को प्राप्त हुआ, नाममात्र के विद्वान् भी अपने लाभ के लोभ में फँस गये और लोभ में धर्म का विचार नहीं रहता। इसलिये उन्होंने भी स्वार्थसिद्धि के अर्थ अनेक श्लोक बना कर मिला दिये। इस कारण अब स्मृतियों और वेदों में भी बहुधा भेद हो गया है। परन्तु कुछ शोक नहीं, क्योंकि हमारे ऋषि मुनि अपनी २ स्मृतियों में लिख गये हैं कि धर्म विषय में वेद ही का प्रमाण मानना चाहिये, जैसा मैंने ऊपर वर्णन किया और जो स्मृतियां वेदानुकूल हों उनको भी मानना अभीष्ट है, परन्तु वेदविरुद्ध स्मृतियों के मानने की मनु आदि ऋषि आज्ञा नहीं देते, पालन करना कैसा ? देखिये मनुजी महाराज ने अ० १२ श्लोक ९५ में लिखा है, जो स्मृति वेद विरुद्ध है उससे कुछ फल नहीं हो सकता, समझ लेना चाहिये कि वह तमोगुणी पाखंडियों की बनाई हुई है, यथा —

या वेदबाह्याः स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमोनिष्ठा हिताः स्मृता ॥

इसके उपरांत जब स्मृतियों में भी आपस में अन्तर हो तो मनुस्मृत का लेख प्रमाण होगा, क्योंकि सामवेद के छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है कि जो कुछ मनुजी ने कहा है वह मनुष्य के लिये औषधि की औषधि है, जसा—

यद्वै किञ्चन मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः ।

बृहस्पति स्मृति में लिखा है—

वेदार्थोपनिबन्धत्वा प्राधान्यं हि मनोस्मृतम् ।
मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्नैव शस्यते ॥

कि उस स्मृति की प्रशंसा नहीं होती जिसका लेख मनुस्मृति से नहीं मिलता । प्रिय सज्जन पुरुषो ! मनुजी महाराज स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि मैंने वेदानुकूल ही लिखा है और वेदानुकूल ही मेरी आज्ञा को मानना चाहिये. अर्थात् मेरा लेख वही है जो वेद से मिलता हो । जैसा मनुमृति अध्याय २ श्लोक २ में लिखा है—

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्म्मो मनुनापरिकीर्तितः ।
स सर्वाभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः ॥

फिर इसी अध्याय के ८ श्लोक में और भी पुष्टता की है तथा १२अ० के ६५ श्लोक में स्पष्ट आज्ञा दी है कि जो स्मृतियां वेद के विरुद्ध हों वह माननीय नहीं, अर्थात् अठारह स्मृतियों में जिस जिस स्थान पर वेदानुकूल न हो वह प्रमाण के योग्य नहीं । इस कारण जब किसी विषय में स्मृतियों में अन्तर हो अथवा समझ में न आता हो या पेटार्थू जन कुछ का कुछ कहें, आपको योग्य है कि वेदों के प्रमाण से उसका प्रामाणिक अन्यथा अप्रामाणिक समझना चाहिये और इसी प्रकार जब स्मृमि और पुराणों में विरोध हो तो स्मृति के अनुसार कर्म करना चाहिये । तात्पर्य इस कथन का वहा है जो मैंने ऊपर वर्णन किया, अर्थात् धर्म-विषय में श्रुति ही स्वतः प्रमाण है और स्मृति तथा पुराण परतः प्रमाण अर्थात् वेदानुकूल होने से प्रामाणिक हो सकते हैं, अन्यथा नहीं । और ऐसा ही व्यासस्मृति अ० १ श्लोक ४ में लिखा है, जैसा कि—

श्रुतिस्मृति पुराणानां विरोधो यत्र दृश्यते ।
तत्र श्रोतं प्रमाणं तु तयोर्द्वैधे स्मृतिर्वरा ॥

सदाचार

मान्यवरो ! यह दोनों उपरोक्त धर्म मार्ग अत्यन्त कठिन हैं, क्योंकि जब तक कोई मनुष्य विद्या पढ़ कर विद्वान् न हो वह इनको पूर्ण प्रकार से नहीं जान सकता और विद्वान् होने के लिये बहुत समय की आवश्यकता होती है। परन्तु धर्म का अंकुर बाल्यावस्था ही से बालक के हृदय में लगता है, इस लये हमारे मुनियों ने तृतीय धर्म का मार्ग सदाचार माना है। यह शब्द 'सत्' और 'आचार' से संयुक्त है, अर्थात् जो कुछ सत्य धर्म अपने प्राचीन पुरुषाओं को करते देखा वा सुना अथवा उनकी लिखित पुस्तकों के द्वारा जाना गया हो, उसको करना। इस बात को सुन कर हमारे बहुधा भाई यह कह देंगे कि हम तो वर्त्तमान में वही कार्य करते हैं जो हमने अपने बाप दादे को करते हुए देखा है, फिर आप उसको क्यों नहीं धर्म मानते और क्यों नाना प्रकार की शंकायें करते हैं ? प्यारे मित्रो ! इसका मुख्य कारण यही है कि प्राचीन काल में महाभारत के बड़े भारी संग्राम होने से लाखों विद्वान् मारे गये, फिर आलस्यादि दोष उत्पन्न होकर विद्या रहित होने लगे। इसके अनन्तर बौद्ध, जैनमतों ने भारतवर्ष में ललकारा जमाया, वेदादि रीति को उठाया। इसके पीछे मुसल्मानों ने राज्य किया कि जिनमें हमारे धर्म पुस्तक जलाये तथा डुबाये गये, हमारी कुवारी लड़कियां छीनी गई और मुसलमान बनाई गई। रात दिन लूटे मारे गये, क्योंकि बारह मर्तबा महमूद ने लूट की, फिर शहाबुद्दीन ने ८ बार चढ़ाई की, लाखों मनुष्यों को पकड़ ले गया और उनके खून से गार बनवाया, फिर चंगेज़ ने दुन्द मचाया। पुनः तैमूर ने दिल्ली, तुलम्बा, अटनेर आदि में हाहाकार मचाया तदनन्तर नादिरशाह ने आकर दिल्ली में ५ दिन तक क़तलआम कराया और इसके पीछे महमूदशाह ने तीन चढ़ाइयां कर लूट मार की। और सन १६५७ ई० से १७०७ ई० तक औरङ्गज़ेब ने दिल्ली के तख़्त पर बैठ कर सम्पूर्ण भारतवर्ष में भारतखण्डियों पर जुल्म किये, इसके बीच ही में नानक, कबीर आदि ने अपने अपने पन्थ नियत किये। मेरे लिखने का मुख्य तात्पर्य यह है कि महाभारत के पश्चात् अङ्गरेज़ी राज्य के आने तक हमारे पुरुषों को जान बचाने के लाले पड़ रहे थे, फिर भला ऐसे समयों में इन वेदानुकूल रीतों को कौन पूंछता है। क्योंकि कहा भी है "आपत्काले मर्य्यादा नास्ति।" फिर उन पुरुषाओं का धर्म हमारे लिये

क्योंकर माननीय हो सकता है। हां, यदि हम उन मनुष्यों के धर्म पर चलें जो उस समय में रहते थे जब कि वेद-विद्या का प्रचार था, बालक से लेकर वृद्ध तक उसी के अनुसार चलते थे, लोभ और कामादि के त्यागी थे, धर्म पर जीवन को न्योछावर कर, धन पर धता भेज धर्म ही को मुख्य समझते थे। इसलिये आप अपने कुल की दश बीस पीढ़ियों की रीति पर न चल सृष्टि के आरम्भ से आज पर्यन्त वेदानुसार सनातन रीति पर चलना योग्य है। अर्थात् जिस मार्ग पर हमारे सत्पुरुष पिता पितामह चले हों, उसी पर चलें और जो पितामह ने अनुचित कर्म्म किये हों तो उनके मार्ग को कभी स्वीकार न करें, जैसा मनुजी ने लिखा है—

येनास्य पितरो याता येन याताःपितामहाः।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते॥

और ऐसा ही य० अ० मं० २० में लिखा है—

अनुत्वा माता मन्वतामनु पिताऽनु भ्राता सगर्भ्योऽनुसखा। सयूथ्यः। सा नेवी देवमच्छेन्द्रायसेॐरुद्रस्त्वा वर्त्तयतु॥ स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि।

और य० अ०२१ मं०५० में लिखा है कि सन्तानों को योग्य है कि जो जो पितादि बड़ों का धर्मयुक्त कर्म हो, उस उस का सेवन करें और जो जो अधर्मयुक्त हो उस उस को छोड़ देवें। श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है कि जिस आचार पर श्रेष्ठ चलते हैं, उसी पर इतर जन चलते हैं—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरोजनः।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते॥

और ऐसी ही य० अ०१२ मं०१११ में भी आज्ञा है। फिर भला आप क्यों प्राचीन पुरुषाओं की मर्यादा को तोड़ कर नवीन पुरुषाओं के अनाचार का प्रमाण देते हो। जब कि पुरुषाओं ने जितेन्द्रियता को मेट, विद्या का पठन पाठन ही उठा दिया। फिर आचार का क्या ठीक? देखिये मनुजी महाराज ने श्रेष्ठों के ये लक्षण लिखे हैं, अर्थात्—

धर्मेणाधि गतो यैस्तु वेदः सपरिबृंहणः।
ते शिष्टा ब्राह्मणाज्ञेया श्रुतिप्रत्यक्षहेतवः॥

श्रेष्ठ उन ब्राह्मणों को समझना चाहिये जिन्होंने विधिपूर्वक वेद को मीमांसा सहित पढ़ा है। जो वेदोक्त वाक्य को प्रमाण से समझ सकते हैं। इसी कारण विदुर महाराज ने धृतराष्ट्र महाराज से कहा है-१ मतवाला, २ नशे पीनेवाला, ३ बेहोश, ४ थका हुआ, ५ क्रोधी, ६ भूखा ७ शीघ्रता करनेवाला, ८ लोभी, ९ डरपोक, १० कामी। ये दश मनुष्य धर्म को नहीं जानते, जैसा कि—

दश धर्मं न जानन्ति धृतराष्ट्र ! निबोधताम्।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः॥

इसी हेतु अब आप व्यास, पराशर, मनु, राजा दशरथ, राजा जनक, अर्जुन, भीम श्रीकृष्ण आदि सनातन पुरुषाओं की रीति पर चलिये, क्योंकि अब वह समय नहीं है कि किसी की धर्म सम्बन्धी परिपाटी में बाधा डाली जावे। वरन् सरकारी राज्य में शेर बकरी एक घाट पर बैर त्याग विहार कर रहते हैं, इसलिये आप भी इन प्रचलित रीतों को वेद से मिलाइये, यदि उनके प्रमाण वेद में मिल जावें तो स्वीकार कीजिये अन्यथा वेद विरुद्ध कार्यों को कर पापभागी न बनिये, चाहे सहस्र मन क्यों न कहें। और धर्म के निर्णय के लिये प्रत्येक नगर वा बड़े बड़े नगरों में सभा नियत कर उसकी आज्ञानुसार कार्य कीजिये, उसी को धर्मसभा वा आर्यसभा कहते हैं। प्राचीन काल में ऐसा ही होता था। देखो य० अ० ३ मंत्र ४५ में ईश्वर उपदेश करते हैं कि चारों आश्रमवाले मनुष्यों को मन, वाणी, कर्मों से सत्य का आचरण कर पाप वा अधर्म को त्याग करके विद्वानों की सभा, विद्या तथा उत्तम उत्तम शिक्षा का प्रचार करके प्रजा की उन्नति करना चाहिये देखिये मनुजी महाराज ने लिखा है—

दशावरा वा परिशद्यन्धर्मम्परिकल्पयेत्।
त्र्यवरा वापि वृत्तस्था तन्धर्मन्न विचालयेत्॥
त्रैविद्यो हैतुकस्तर्की नैरुक्तो धर्मपाठकः।
त्रयश्चाश्रमिणः पूर्वे परिषत्स्याद्दशावरा॥

ऋग्वेदविद्यजुर्विच्च सामवेदविदेव च ।
त्र्यवरा परिषज्ज्ञेया धर्मसंशयनिर्णये ॥
एकोपि वेदविद्धर्मं यं व्यवस्येदद्विजोत्तमः ।
सविज्ञेयः परो धर्मोनाज्ञानामुदितोऽयुतैः ॥
अव्रतानाममन्त्राणां जाति मात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्वन्न विद्यते ॥
यं वदन्ति तमोभूता मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तं पापं शतधा भूत्वा तद्वक्तृननुगच्छति ॥

जिस सभा में तीनों वेद, मीमांसा, न्याय, निरुक्त और धर्मशास्त्र के जाननेवाले ब्रह्मचारी, गृहस्थ और वानप्रस्थ हों वह सभा दशावरा कहलाती है और जिसमें सम्यक् तीनों वेदों के ज्ञाता तीन सभासद् हैं वह त्र्यवरा कही जाती है। धर्म संशय में इन्हीं के द्वारा निर्णय होना चाहिये, अथवा एक भी वेदवित् आपत्ति में जिस धर्म की व्यवस्था करे वह माननीय है, न कि सहस्रों मूर्खों का कल्पित धर्म। सत्य भाषणादि व्रत से रहित, स्वाध्याय से भ्रष्ट, केवल जाति के आश्रय से आजीविका करनेवाले सहस्रों मूर्खों के झुण्ड को सभा वा समाज नहीं कह सकते। ऐसे लोग धर्म के मर्म को नहीं जान सकते और न उनकी दी हुई व्यवस्था माननीय हो सकती है ऐसा ही याज्ञवल्क्यस्मृति अध्याय १ श्लोक ९ और अत्रिस्मृति श्लोक १४०, १४१ में लिखा है और विदुर जी ने महाभारत में कहा है कि वह सभा नहीं जहां वृद्ध न हों और वह वृद्ध नहीं जो धर्म को न कहे, वह धर्म्म नहीं जो सत्य न हो और वह सत्य नहीं जिसमें छल हो, जैसा कि—

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मो नवै यत्र च नास्ति सत्यं सत्यं न तद्यच्छलमाभियुक्तम् ॥

परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में मनुष्य जानकर इस बात पर कुछ ध्यान नहीं देते और शास्त्र के लेखानुसार विद्वान् धर्मात्माओं से धर्म की परीक्षा नहीं कराते, आप और अपने आगे आनेवाली सन्तानों का सत्यानाश करते चले जाते हैं। प्रियवरो ! थोड़े २ धन के निर्णय करने के लिये बड़े २ वकीलों को, सोने की परीक्षा के लिये चतुर सुनार को बुलाते

हो, क्या यह धर्म-परीक्षा मूर्ख, अविद्वान्, लोभी कर सकते हैं ? कदापि नहीं ३। इस लिये इस कार्य्य को महत्कार्य जान उत्तम पुरुषों से परीक्षा कराकर स्वीकार कीजिये जिससे भारतसन्तान को सुख प्राप्त हो।

प्रियमात्मनः

जब शास्त्रों में धर्म मर्यादा के अनुसार किसी विषय में दो भिन्न भिन्न आज्ञायें पाई जावें तो उनमें किसी एक के अनुसार जो अपने मन बुद्धि और सामर्थ्य के अनुकूल हो, कार्य करना आत्म-प्रिय कहलाता है। पाठको ! इसी धर्म पर हमारे अनेकान जन्मों का सुधार निर्भर है, इस लिये लल्लो पत्त में डालकर समय को वृथा न खोइये, वरन् अच्छे प्रकार तर्क कर धर्म को निश्चय कीजिये। देखिये, मनुजी महाराज स्पष्ट आज्ञा दे रहे हैं—

आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्रविरोधिना।
यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः॥

इसलिये आप निर्भय हो शान्तिपूर्वक धर्म को निर्णय कर सत्यासत्य को विचार सनातन धर्म के अनुकूल पंच कर्मों को श्रद्धा, भक्ति और यथाविधि से यथावत कीजिये।

नित्य-कर्म

प्रिय सज्जन पुरुषो ! कर्म दो प्रकार के होते हैं, एक नित्य कर्म जो प्रतिदिन किये जाते हैं, दूसरे नैमित्तिक कर्म जो किसी नियत समय पर होते हैं। इस स्थान पर हम उन नित्यकर्मों अर्थात् पंचयज्ञों की व्याख्या करते हैं जिनकी आज्ञा सत्य शास्त्रों में पाई जाती है और प्राचीन पुरुषों ने इन यज्ञों को प्रतिदिन कर महान सुख उठाया था। परन्तु शोक ! वर्त्तमान काल में बहुधा जन इन यज्ञों के नाम तक भी नहीं जानते, फिर करना कैसा ? प्यारे भ्रातृगणों ! इन पंचयज्ञों के करने से आत्मिक ज्ञान की उन्नति होती है, वरन यों कहा जावे कि ये सब कर्म परमात्मा के पूर्ण ज्ञान होने के साधन हैं, इस लिये प्रतिदिन इनके करने की आज्ञा है। देखिये विदुर जी महाराज ने विदुरनीति में लिखा है—पंचयज्ञों को प्रतिदिन यत्नपूर्वक करना उचित है।

पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्य्या प्रयत्नतः ।

यही पराशर स्मृति के १२ अध्याय के ५ श्लोक में आज्ञा है—

सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवतातिथिपूजनम् ।
आतिथ्यं वैश्यदेवं च षट् कर्माणि दिनेदिने ॥

शंखस्मृति अ० ५ श्लोक २ और पराशरस्मृति अ० २ श्लोक १५ में लिखा है कि जो पंचयज्ञो का त्याग करता है, वह पंच हिंसाओं का प्रतिदिन भागी होता है। सम्वर्त्तस्मृति के प्रथम अध्याय के श्लोक ३५ में भी यही उपदेश है—

अतः पञ्चमहायज्ञान्कुर्यादहरहर्द्विजः । न हापयेत् ॥

चाणक्य नीति में लिखा है —

विप्रोवृक्षस्तस्यमूलंहि सन्ध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतोरक्षणीयो छिन्नेमूले नैवशाखा न पत्रम् ॥

कि विचारवान् पुरुष उस वृक्ष की नाईं है जिसकी मूल सन्ध्या और शाखा वेद हैं, उसमें धर्म कर्म रूप पत्ते लगे हुए हैं, अतएव मूल अर्थात् सन्ध्या का सेवन यत्न से करना चाहिये, क्योंकि मूल के नष्ट होने से अर्थात् सन्ध्या का अभ्यास त्याग देने से न तो वेदरूपी शाखा और न धर्म कर्म रूपी पत्र ही स्थित रह सकते हैं, अर्थात् सब नष्ट हो जाते हैं। भविष्यपुराण उत्तरार्द्ध के ७० अध्याय में लिखा है कि जो मनुष्य बिना पंचयज्ञ किये भोजन करते हैं वे मानों रुधिर पीते हैं। श्रीमद्भागवत स्कन्ध ५ अध्याय ६ श्लोक १८ में लिखा है कि ऐसे मनुष्य कौवों के समान हैं और मरकर ऐसे स्थान पर जन्म लेते हैं जहां कृमि भोजन को मिलते हैं। लिंगपुराण पूर्वार्द्ध के २६ अ० में यही आज्ञा है कि जो इन पंचयज्ञों के किये बिना भोजन करता है वह शूकर की योनि में जाता है, यथा—

अकृत्वा च मुनिः पञ्चमहायज्ञान् द्विजोत्तमः ।
भुक्त्वा च शूकराणान्तु योनौ वै जायतेनरः ॥

भविष्यपुराण अध्याय १५ में कहा है, कि ब्रह्मयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ और अतिथियज्ञ प्रतिदिन करना चाहिये, इनके न करने से पञ्चसूना अर्थात् पांच प्रकार की हिंसाओं का भागी होता है। शिवपुराण धर्मसंहिता

अ० १८ में लिखा है कि जो पंचयज्ञों को त्यागता है उसको सुरापान के समान पाप लगता है। विष्णुपुराण अ० ६ में लिखा है कि गृहस्थ पुरुषों को प्रति दिन पञ्चयज्ञ करना चाहिये। मनु०अ० ३ श्लो० ६९ में कहा है कि गृहस्थों को प्रतिदिन के गृहकार्यों आदि से जो पाप होता है उनके प्रायश्चित के लिये महर्षियों ने पांच महायज्ञ रचे हैं, जैसा—

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभिः।
पञ्चक्लृप्ता महायज्ञा प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ॥

देवी भागवत स्कन्ध ११ अध्याय २२ श्लोक २ में लिखा है कि देवयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ और मनुष्ययज्ञ इन पांच यज्ञों को अवश्य करना अभीष्ट है—

देवयज्ञो ब्रह्मयज्ञो भूतयज्ञस्तथैव च।
पितृयज्ञो मनुष्यस्य यज्ञश्चैवतु पञ्चमः ॥

इसलिये इन सब बातों को जान प्रतिदिन पञ्चयज्ञ करते रहो क्योंकि जो मनुष्य अपनी शक्ति के अनुसार इन पञ्चयज्ञों को नहीं छोड़ता वह गृह में रहता हुआ भी हिंसा के दोषों में लिप्त नहीं होता, जैसा कि मनु० अ० ३ श्लोक ७१ में कहा है—

पञ्चैतान्यो महायज्ञान्नहापयति शक्तितः।
स गृहेऽपि वसन्नित्यं सूना दोषैर्नलिप्यते ॥

विष्णुपुराण अंश ३ अध्याय १८ में मैत्रेयीजी ने कहा है कि जो नित्य कर्म त्यागन करता है वह पापी होता है।

बृहन्नारदीय पुराण अध्याय २५ श्लो० ३७ में कहा है कि जो पञ्चयज्ञों को त्यागन करता है वह ब्रह्म हत्याग होता है। वामनपुराण अ० १४ में लिखा है कि नित्य नैमित्तिक कर्म की हानि कभी न करनी चाहिये।

श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अ०८४ में जब बलदेव जी महाराज संन्यास धारण करने को उद्यत हुये तब श्रीकृष्ण महाराज ने उनसे कहा कि जो पुरुष गृहस्थ होकर देव, ऋषि, पितर का ऋण उद्धार किये बिना पंच कर्मों को त्यागता है वह नाना प्रकार के नरक भोगता है। ऐसा ही तुलाधार ने जाजलि मुनि को उपदेश दिया है और राजा पाण्डु का भी यही

कथन है। इसलिये प्यारे सुजनो! प्रेम और उत्साह के साथ इस सनातन आज्ञा के अनुकूल पंचयज्ञ करने का प्रचार करो और वह पंचयज्ञ यह हैं, जैसा कि मनुस्मृति अध्याय ३ श्लोक ७० में लिखा है—

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥

१—वेद के पढ़ने पढ़ाने संध्योपासन अर्थात् ईश्वर की स्तुति प्रार्थना उपासना करना आदि को ब्रह्मयज्ञ कहते हैं। २—अग्नि में पुष्टिकारक सुगन्धित, रोगनाशक, मिष्ट इन चार प्रकार के पदार्थों को मन्त्र सहित डालने को देवयज्ञ कहते हैं। ३—माता, पिता, गुरु, आचार्य्य को श्रद्धापूर्वक तृप्त करने का नाम तर्पण है। ४—भोजनों के समय मिष्टान्न को मन्त्र सहित अग्नि में चढ़ाना फिर सब पदार्थों में से छः ग्रास निकाल कर कंगाल, रोगी आदि को देने का नाम बलिवैश्वदेव है। ५—पूर्ण विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्योपदेशक, शान्त चित्त, निर्भय इत्यादि गुणयुक्त संन्यासी भ्रमण करता हुआ गृहस्थ के यहां आकर निवास करे तो उसका अच्छे प्रकार सत्कार करके तृप्त करने को अतिथियज्ञ कहते हैं।

ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय १७ श्लो० ५० में लिखा है कि वेदाध्ययन से ब्रह्म को, श्रद्धा से स्वधा करके पितरों को, होम करके देवताओं को, बलिवैश्वदेव करके भूतों को, अन्न और जल से मनुष्यों को तृप्त करना परम आवश्यक है।

वेदाध्यायः स्वधास्वाहाबल्यन्नाद्यैर्यथोदयम्।
देवर्षिपितृभूतानि मद्रूपाण्यन्वहं यजेत्॥

इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति के स्नान प्रकरण के प्रथम श्लोक में लिखा है।

बालकर्म स्वधा होमः स्वाध्यायातिथिसत्क्रिया।
भूतपितृपरब्रह्म मानुष्याणां महामखाः॥

यही उपदेश शंखस्मृति अ० ५ श्लो० ३, ४ और कात्यायनस्मृति खण्ड १३ श्लो० २ में पाया जाता है।

❋ ब्रह्मयज्ञ ❋

सन्ध्या—प्रिय सज्जन पुरुषो! सन्ध्या काल में ईश्वर की उपासना

वेद मन्त्रों से करने की आज्ञा है, उसमें भी गायत्री मन्त्र के जपने का उपदेश किया है। बहुधा हमारे प्राचीन ऋषिमुनि और प्राचीन पुरुषा इसी मन्त्र के द्वारा परमेश्वर की उपासाना करते थे। स्मृतिकारों ने इसी मन्त्र को वेदमाता कहा है और पुराणों के कर्त्ताओं ने भी इसकी बड़ी महिमा दिखलाई है देखिये हारीतस्मृति अ० ३ श्लो० ४ में लिखा है-"गायत्री वेदमातरं" और व्यासस्मृति अ० १ श्लो० २१ में भी गायत्री को वेदमाता माना है। शङ्खस्मृति अ०१२ श्लो०११ में लिखा है कि गायत्री वेदों की माता है, यह पापों का नाश करती है और अभीष्ट फल को देती है जैसा कि—

अभीष्टं लोकमाप्नोति प्राप्नुयात्काममीप्सितम्।
गायत्री वेदजननी गायत्री पापनाशिनी॥

और १२ श्लोक में लिखा है कि गायत्री से परे पवित्र करनेवाला कोई मंत्र नहीं, नरकरूपी समुद्र में पड़नेवाले मनुष्यों को हाथ पकड़ कर निकालनेवाली गायत्री है। और श्लोक १६, १७ में इसके जप से स्वर्ग और मोक्ष की प्राप्ति का माहात्म्य बतलाया है। पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय १६ में लिखा है कि प्रातःकाल गायत्री का जो कोई जप करता है वह चारों वेदों के फल को पाता है।

संवर्त्तस्मृति के ११७ श्लोक में लिखा है कि सब पापों की शुद्धि के लिये वेदों की माता गायत्री का वन में नदी के तट पर जप करे, जैसाकि—

अभ्यसेच्च तथा पुण्यां गायत्रीं वेदमातरम्।
गत्वारण्ये नदीतीरे सर्व पाप विशुद्धये॥

और श्लोक २१८, २१६, २२०, २२१, २२२. २२४ में भी गायत्री के जप की आज्ञा तथा दक्षस्मृति के २ अ० के ४२ श्लोक में लिखा है कि "गायत्री जप उच्यते।" मनुस्मृति अ० ३ के श्लोक ८३ में लिखा है कि सर्वोपरि गायत्री मन्त्र है, जैसा कि "सावित्र्यास्तु परं नास्ति।" फिर इसी के जप की आज्ञा ७५, ७७ श्लोक में की है, और श्लोक ७८ में लिखा है कि इसके जप से मनुष्य बड़े पापों से छुटजाता है। और ८२ श्लोक में लिखा है कि परमपद को पाता है। याज्ञवल्क्यस्मृति अ० १ श्लोक २२, २३ और शिवपुराण विन्ध्येश्वर संहिता अ० ३२ श्लोक १८ में गायत्री के जप की आज्ञा है हारीतस्मृति अ०४ श्लोक ४६ में कहा है कि गायत्री के पति

दिन जप करने से पापों का नाश होजाता है, जैसा "गायत्रीं यो जपेन्नित्यं स न पापेन लिप्यते।" मनुजी महाराज ने प्राय इसी विषय में लिखा है कि जहां तक हो सके गायत्री का जप करे 'सावित्रीं च जपेन्नित्य' और पाराशरस्मृति में 'गायत्री परमोत्तमा' अर्थात् गायत्री सब मन्त्रों से उत्तम है। संवर्त्तस्मृति श्लोक २२१ में पापियों के पाप का शोधक गायत्री से परे कोई मन्त्र नहीं, इसी लिये ओंकार महाव्याहृति समेत गायत्री का जप करे। गरुड़पुराण अ० ८ में लिखा है कि प्रेतयोनि से छूटना चाहे वह नम्र होकर गायत्री का जप करे। लिङ्गपुराण अ० १५ में गायत्री के जप की आज्ञा है और २३ अ० में बड़ी महिमा दिखलाई है। भविष्यपुराण अ०३ में कहा है कि जो गायत्री का जप करता है वह बड़े पद को पाता है। गीता अ०१० श्लो० ३५ में श्रीकृष्ण महाराज का वचन है कि सब मन्त्रों में गायत्री श्रेष्ठ है। शङ्खस्मृति अध्याय १२ श्लोक १ में गायत्री को श्रेष्ठ मंत्र माना है 'सावित्री विशिष्यते।' चाणक्यनीति अध्याय १७ श्लोक ७ में गायत्री को सब मन्त्रों से अधिक माना है इसके उपरान्त विष्णुपुराण अंश ३ अ०११ में कहा है कि बिना गायत्री जपे जो भोजन करता है वह पीव पीता है—

मृतकश्च नरकं गत्वा श्लेष्मभुग्जायते नरः।

पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय १६ श्लोक ७६ में लिखा है कि जो प्रतिदिन गायत्री का जप नहीं करता वह रक्त खाता और पीता है। अध्याय १७ श्लोक ११ में लिखा है कि जो ब्राह्मण सन्ध्योपासन नहीं करता वह ब्राह्मण का मारनेवाला कहाता है और नरक को जाता है। और अ० ३१ श्लोक १०६ में लिखा है कि जो जन्म भर स्नान, सन्ध्या नहीं करता वह प्रेत होता है। शिवपुराण ज्ञानसंहिता अध्याय ७४ में लिखा है कि सन्ध्याहीन पापी होता है।

शिवपुराण विन्ध्येश्वरी संहिता अ० ११ में गायत्री जपने की आज्ञा है।

अयोध्याकाण्ड सर्ग श्लोक ५ से प्रत्यक्ष प्रकट है कि श्रीरामचन्द्र महाराज सन्ध्या कर गायत्री का जप करते थे और श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण महाराज का गायत्री मन्त्र से परमात्मा की उपासना करना प्रकट है। इस के उपरान्त इसी से प्रकट होता है कि 'जड़' के पिता ने गायत्री का उपदेश किया था।

प्रिय मान्यवरो! जब सम्पूर्ण ऋषि मुनि हमको गायत्री का उपदेश करते हैं और प्राचीन पुरुषाओं ने इसके जपने से महान् सुखों को प्राप्त किया, फिर हम नहीं जानते सर्वमान्य मंत्र को त्याग कल्पित और आधुनिक मंत्रों का क्यों जाप करते हैं, जिनकी किसी मत के कर्त्ता ने आज्ञा नहीं दी और हमारे परम पूज्य श्रीरामचन्द्र, श्रीकृष्ण इत्यादि ने उन मन्त्रों का मान्य भी नहीं किया, अर्थात् आप भी इसका जप नहीं किया वरन् उसी परम पवित्र वेदोक्त मंत्र ही का जप कर संसार के लिये उपदेश भी किया। वर्त्तमान समय में ऐसे मन्त्रों की संख्या अगणित होगई थी, जिनके जप के बड़े माहात्म्य भी स्वार्थी जनों ने बना लिये हैं। इसलिये इसको मिथ्या जान शीघ्र त्याग कर गायत्री मन्त्र से ही परमेश्वर की उपासना करो। क्योंकि अत्रि ऋषि महाराज ने अत्रिस्मृति श्लोक ६३ में लिखा है कि जो मनुष्य सायंकाल और प्रातःकाल प्रमाद से सन्ध्या का त्याग करते हैं वे एक हज़ार गायत्री के जप से शुद्ध होते हैं। मनुस्मति अ० २ श्लोक ८०में लिखा है कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य गायत्री का जप नहीं करता और अपने धर्मों को नहीं करता तो उसकी साधुजन निन्दा करते हैं। और इसी अध्याय के १०२ श्लोक में लिखा है, जो द्विज प्रातः सायंकाल में सन्ध्या के समय गायत्री का जप नहीं करता वह शूद्र के समान है, अतः द्विजों के समान कर्म करने का अधिकारी नहीं रहता, जैसा कि—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः॥

देवी भागवत् स्कन्ध ११ अध्याय २६ में भी यही उपदेश है तथा मन्त्र २५ में यह भी लिखा है कि सन्ध्या हीन पुरुष को सदा अशुचि कहा है "सन्ध्याहीनो अशुचिः।"

स्कन्ध ११ अध्याय २४ में लिखा है कि बिना सन्ध्योपासन किये अन्य किसी कार्य का अधिकारी नहीं रहता, अध्याय १८ में बिना जप गायत्री के उसका श्रम वृथा है, अध्याय ४६ में जरत्कारु मुनि की स्त्री ने कहा है, सूर्य अस्त होनेवाला है यदि हमारे स्वामी सायं सध्या न करेंगे जो प्रतिदिन करते हैं (और ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य को करनी चाहिये) तो ब्रह्महत्यादि का पाप उनको होगा। इस लिये उनको सोते से जगा दिया और पाप से बचाया।

बृहन्नारदीयपुराण अ० २५ में लिखा है कि जो धूर्त द्विज स्वस्थ भया भी सन्ध्या नहीं करता उसको सब धर्म्मों और वर्णों से बाहर जान पाखंडी जानना चाहिये।

इस लिये 'ओं नमो नारायण' और 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' इत्यादि मन्त्रों को त्याग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जिनको द्विज कहते हैं, एक ही गायत्री से परमात्मा की उपासना करना चाहिये, क्योंकि तीनों वर्णों को द्विज कहा है, तीनों को वेद के पढ़ने का अधिकार है और यह मन्त्र भी यजुर्वेद के ३६ वें अध्याय का तीसरा मन्त्र है, फिर इसके भिन्न होने का क्या कारण? श्रीरामचन्द्र और श्रीकृष्ण आदि ने भी गायत्री के कहीं भेद नहीं लिखे। मनुजी महाराज ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के यज्ञोपवीत, मेखला, दण्ड में तो भेद लिख दिया, परन्तु तीनों वर्णों की तीन गायत्री होने वा जप करने का उपदेश नहीं किया, वरन् मनुस्मृति अ० २ श्लोक ७७ में स्पष्ट लिखा है 'ओं भूः भुवः स्वः' और गायत्री के तीनों पाद जो तीनों वेदों से निकाले हैं तीनों वर्णों को गांव के बाहर इसी के जप करने की आज्ञा अध्याय २ श्लोक ७९ में की है, जैसा—

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य वहिरेतत्त्रिकं द्विजः।
महतोऽप्येनसो मासात् त्वचेवाऽहिर्विमुच्यते॥

फिर भेद कैसा? इसके उपरान्त तीनों वर्ण के यहां १६ संस्कार होते हैं, उनके यहां यही--

गणानांत्वा गणपति ॐ हवामहे० इत्यादि॥
शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिश्रवन्तुनः
स्वस्ति न इन्द्रो बृद्धस्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्व वेदाः० इत्यादि
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्द्धनम्०

इत्यादि वेद मन्त्र पढ़े जाते हैं और शनैश्चर, बृहस्पति की प्रसन्नता और अकालमृत्यु से बचाने के लिये पुरोहित जी अपने यजमानों से इन्हीं का जप कराते हैं। इसके उपरान्त सम्पूर्ण सत्य शास्त्रों में वेदारम्भ संस्कार के समय प्रथम गायत्री के उपदेश की आज्ञा है, इसी कारण गुरुमुख से सुने जाने के कारण गुरुमन्त्र कहते हैं. किसी और मन्त्र के उपदेश के सुनाने की आज्ञा किसी स्मृतिकार ने नहीं दी, और न उपदेश किया कि

ब्राह्मण को ब्रह्म और क्षत्रिय को क्षत्रिय और वैश्य को वैश्य गायत्री सुनाना। इसके अतिरिक्त ब्रह्म गायत्री के तो यही अर्थ हैं कि ऐसा छन्द जो ब्रह्म अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान कराता है जिसकी सबको आवश्यकता है, परन्तु क्षत्रिय गायत्री और वैश्य गायत्री के क्या वही अर्थ हैं जो उस समय के लिये आवश्यक हैं ? कदापि नहीं। इसके उपरान्त पुराणों में भी तीनों वर्णों के लिये ब्रह्मगायत्री के जप करने की आज्ञा है।

देखिये लिंगपुराण उत्तरार्द्ध के अध्याय २० में लिखा है कि हमारी पूजा के अधिकारी ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य हैं, फिर अध्याय २२ में पूजा की विधि इस प्रकार वर्णन की है--

ओं भूः भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यम् ओं ऋतः ओं ब्रह्म, इन नवाक्षरी मन्त्र और **ओं भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ओंनमः सूर्य्याचन्द्रमसोभ्यां नमः।**

अब आपको प्रकट हो गया कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य को एक ही गायत्री मंत्र से पूजा करने की आज्ञा पुराण दे रहे हैं, केवल 'ओं नमः सूर्याय खखोभ्यां नमः' यह मन्त्र अपनी ओर से लगा दिया है, वरन् आप ही पण्डित जी से पूंछिये कि यह कौन से वेद का मन्त्र है ?

फिर इसी उत्तरार्द्ध के ५१ अध्याय में शत्रुनाशनी विद्या लिखी है, उसमें गायत्री मन्त्र लिखकर उसके आगे (ओं फट जहिहुंफट छिं धि भिधि जहि हन हन स्वाहा) इतना विशेष लिखा है। प्यारे सज्जन पुरुषो ! यह तो कोई देखनेवाला ही नहीं कि यह यजुर्वेद अ० ३६ मं० ३ में तो लिखा ही नहीं, पण्डित जी कहां से ले आये ? शोक तो इसी बात का है कि दूध में पानी मिलाने आदि को तो पापी कहें, परन्तु वेद मन्त्रों में अनगढ़ और बेजोड़ मन्त्रों को मिलानेवाले तथा सत्य के छिपानेवालों को आप पण्डितजी ही कहते चले जाते हैं।

इस हेतु भविष्यपुराण अ० ३ में लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इस गायत्री का जप करें जिसको ब्रह्मा ने तीनों वेदों से निकाला है और पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय १६ में ब्रह्माजी ने गायत्री जप का बड़ा माहात्म्य

बतलाया है जिसको सुन नारद ने पूछा कि वह गायत्री कौनसी है ? तब ब्रह्मा ने उत्तर दिया है—

सविता देवता यस्य मुखमग्निस्त्रिपात्स्थिता ।
विश्वामित्र ऋषिश्छन्दो गायत्री सा विशिष्यते ॥

कि जिसका गायत्री ही छन्द, सूर्य देवता, अग्नि मुख और विश्वामित्र ऋषि है। ऐसा ही शंखस्मृति अ० १२ श्लो० १ तथा दक्षस्मृति अ० २ श्लोक ४३ में लिखा है, अर्थात् जो य० अ० मं० में लिखा है और जिसमें उपरोक्त सब बातें उपस्थित हैं, सब से श्रेष्ठ, प्रसिद्ध और जपने योग्य है। देखो विदुरजी ने महाराज धृतराष्ट्र को उपदेश किया है—

नवै भिन्नाजातु चरन्ति धर्मं नवै सुखं प्राप्नुवंतीह भिन्नाः।
नवै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति नवै तेभ्यः प्रशमं रोचयन्ति ॥
नवै तेषां स्वादते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् ;
भिन्नानांगैमनुजेन्द्रपरायणं नविद्यते किञ्चिदन्यद्विनाशात् ॥

हे राजन् ! जिन मनुष्यों में भिन्नता होती है वे न धर्म का आचरण कर सकते हैं, न सुख, गौरव और शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं, न उनको हित की बात अच्छी लगती है और न योगक्षेम पदार्थों की प्राप्ति और रक्षा में समर्थ हो सकते हैं, अर्थात् भिन्न पुरुषों का परिणाम सिवाय नाश के कुछ नहीं। ऋ० अ० ८ व० ४९ मन्त्र ३ में लिखा है—

समानोमन्त्रः समितिः समानीं समानं मनः सहचित्तमेषाम् ।
समानं मंत्रमभिमंत्रयेवः समानेन वोहविषा जुहोमि ॥

हे मनुष्यों ! तुम्हारा विचार और तुम्हारी सभा और तुम्हारे सब आशय और तुम्हारा पुरुषार्थ आदि सब समान अर्थात् अभिन्न हों और समान हो मन्त्र से संसार वा परमार्थ का विचार करने के लिये मैं तुम को आज्ञा देता हूं।

यथेमां वाचं कल्याणि मावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्म राजन्याभ्यांशूद्राय चार्य्याय च स्वाय चरणाय ॥

जैसे मैंने इस कल्याणकारिणी वेदरूपी वाणीका सब मनुष्यों के लिये उपदेश किया है वैसा तुम परस्पर इसका उपदेश या प्रचार करो।

इसके उपरान्त यजुर्वेद अ० १२ मन्त्र ५८ में—

सवां मनाथंसि संव्रता समुचित्तान्याकरम् ।
अग्ने पुरीष्याधिपा भवत्वेनइषमूर्तयजमानायधेहि ॥

ईश्वर स्पष्ट आज्ञा देते हैं कि उपदेशक मनुष्यों को चाहिये कि जितना सामर्थ्य हो उतना सब मनुष्यों का एक धर्म और एक कर्म, एक प्रकार की चित्त वृत्ति, बराबर सुख दुःख जिस प्रकार का हो, उसी प्रकार की शिक्षा करें, सब स्त्री पुरुषों को योग्य है कि विद्वान् ही को उपदेशक और अध्यापक नियत कर सेवा करें और उपदेशक और अध्यापकों को योग्य है कि उनके ऐश्वर्य और पराक्रम को बढ़ावें, क्योंकि सब मनुष्यों में एक धर्म के बिना आत्माओं में मित्रता नहीं हो सकती और मित्रता के बिना निरन्तर सुख भी नहीं मिल सकता।

प्यारे स्त्री पुरुषो! इसी भिन्नता ने तो भारत का चौपट कर दिया, अब ध्यानपूर्वक विचार कर एक ही गायत्री मंत्र से दोनों काल परमात्मा की उपासना कीजिये, क्योंकि वेद में भी उपासना के दो ही समय बतलाये हैं। देखो य० अ० मं० ५० में लिखा है—

देवीऽउषासावश्विनांसुत्रमिन्द्रे सरस्वता । बलंनवाचमास्पृऽउषाभ्या दधारन्द्रियम् ॥ वसु वने वसुधेयस्यन्यतूयस्तु ।

अर्थात् जो पुरुषार्थ मनुष्य सूर्य चन्द्रमा अर्थात् सायंकाल और प्रातःकाल की वेला के समान नियम के साथ उत्तम २ यत्न करते हैं, तथा इन ही दोनों वेलाओं में सोने और आलस्य आदि को छोड़ कर ईश्वर का ध्यान करते हैं, वे बहुत धन अर्थात् उत्तम सुखों को पाते हैं अथर्व कां० ६१ मं० ३-४ अनु० ७ में लिखा है—

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः । सौमनस्य
दाता वसोर्वसोर्वसुदान ॥ एधिवयं त्वेत धानास्तन्वं पुषेम ।
प्रातःप्रायगृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सौमनस्य दाता ।
वसोर्वसोर्वसुदान एधीन धानास्त्वाशतहिमाऋधेम ॥

अर्थात् हे आरोग्य आनन्द सब उत्तम पदार्थों के दाता वसुदेव परमे-

श्वर ! हम लोग सायं २ प्रातः २ अर्थात् सुबह शाम आपकी उपासना करते हुए सौ वर्ष तक ऋद्धि, सिद्धि और पुष्टि को प्राप्त हों।

उद्यन्तमस्तयान्तमादित्यमभिध्यायेन कुर्वन् ॥

ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते ॥ तैत्त० १य आ० २ प्रपा०२ अनु०२॥

सूर्य के उदय और अस्त होते हुये परमेश्वर का ध्यान करता हुआ ब्राह्मण सब ऐश्वर्य को प्राप्त होता है। और कठोपनिषद में लिखा है—

स्वप्नान्तं जागरितान्तै योभौमेनानपश्यति ।

महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥

मनुष्य स्वप्न के अन्त अर्थात् प्रातःकाल और जागृत के अन्त अर्थात् सायंकाल इन दोनों में परमात्मा को यथार्थ देखता है अर्थात् ध्यान लगाता है; वह ध्यानशील ज्ञानी ईश्वर को सर्वोत्तम और व्यापक जान कर, व्याकुल नहीं होता। मनु महाराज ने अ०२ श्लो०१०१, १०२ में लिखा है कि—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्क दर्शनात् ।

पश्चिमांतु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥

पूर्वां सन्ध्यां जपं स्तिष्ठेन्नैशमेनो व्यपोहति ।

पश्चिमांतु समासीनो मलं हंति दिवाकृतम् ॥

प्रातःकाल खड़ा होकर गायत्री का जप करने से मनुष्य का रात का किया हुआ पाप छुट जाता है और सायंकाल खड़ा होकर गायत्री का जप करने से मनुष्य का दिन का किया हुआ पाप छुट जाता है।

जो द्विज प्रातःकाल खड़ा होकर और सायंकाल बैठ कर जप नहीं करता वह शूद्र के समान है और आर्यों के कर्म करने का अधिकारी नहीं रहता।

याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि—

प्राणानायम्य संप्रोक्ष्य ऋचेनाब्दैवतेनतु ।

जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ॥

सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवंह तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् ।

अग्निकार्यं ततःकुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि ॥

प्राणायाम करके मार्जन के मन्त्र से सिर पर जल छिड़क के सन्ध्या समय में जब तक तारे निकलें गायत्री जपता रहे इसी प्रकार प्रातः सन्ध्या की भी सूर्योदय तक उपासना करे, अनन्तर दोनों सन्ध्याओं में अग्निहोत्र करे। और भी लिखा है—

शरीर चिंतां निर्वर्त्य कृत शौचविधिर्द्विजः।
प्रातः सन्ध्यामुपासीत दन्तधावन पूर्वकम् ॥
उपास्य पश्चिमां संध्यां हुत्वाग्नींस्तानुपास्य च।
भृत्यैः परिवृतोभुक्त्वा नातितृप्याथसंविशेत् ॥

अर्थात् द्विज प्रातःकाल शौच और दातौन कर सन्ध्या को करे, इसी प्रकार सायं सन्ध्या और अग्निहोत्र कर नौकरों की सुध लेकर आप सूक्ष्म भोजन कर शयन करे। देवलस्मृति में कहा है—

सायं प्रातः सदा सन्ध्यामुपासीत शुचिर्वहिः।

प्रातःकाल और सायंकाल सन्ध्या करने ही से मनुष्य शुद्ध होता है। महाभारत वनपर्व के अ० १६६ श्लो० ८१ में मारकण्डेयमुनि का वचन है—

सायं प्रातश्चसन्ध्यां यो ब्राह्मणोऽभ्युपसेवते।
प्रजपन् पावनीं देवीं गायत्रीं वेद मातरम् ॥

जो प्रातःकाल और सायंकाल की सन्ध्या में गायत्री को जपते हुए उपासना करते हैं, वह पाप रहित और पवित्र हो जाते हैं।

भविष्यपुराण अध्याय ३ में लिखा है कि प्रातःकाल सूर्योदय पर्यन्त और सूर्यास्त से पहिले ही सायं सन्ध्या का आरम्भ करे और तारा-दर्शन तक गायत्री का जप करे। अध्याय ७१७ सदाचार निरूपण, ब्रह्म मुहूर्त में उठ धर्म और अर्थ का चिन्तवन करे और आचमन स्नानादि कर प्रातः सन्ध्या को मौन से करे, फिर सायंकाल को भी सन्ध्या वन्दन करे।

मार्कण्डेय पुराण के ३४ अध्याय में सदाचार के विषय में मन्दालसा ने जो अलर्क को उपदेश किया है, सो आपको सुनाता हूं—

पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम्।
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥

पूर्व सन्ध्या को तारे रहते समय करे, इसी को प्रातः सन्ध्या कहते हैं, और सन्ध्या काल की जो सन्ध्या है उसको सूर्य के रहते हुए पश्चिम मुख होकर न्यायपूर्वक करे, इसको साय सन्ध्या कहते हैं।

भुञ्जीत पुरुषः स्नानः सायं प्रातर्यथाविधि।

प्रातःकाल और सायंकाल स्नान और सन्ध्या करके भोजन करे, श्रीमद्भागवत के पाठ करने से प्रकट होता है, भगवत भजन करने के बहुधा स्थानों पर दो ही समय बतलाये गये हैं और स्कन्ध ७ अध्याय ११ श्लोक १ में युधिष्ठिर और नारद का सम्बाद है, अर्थात् युधिष्ठिर महाराज को जब नारद जी ने वर्णाश्रम धर्मों का उपदेश दिया है वहां स्पष्ट रूप से प्रकाश किया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यथाक्रम से जनेऊ करा कर गुरुकुल में जाकर वेद पढ़ें और इन्द्रिजित रहकर सायंकाल और प्रातकाल गायत्री मन्त्र से सनातन ब्रह्म की उपासना करें, जैसा—

सायंप्रातरुपासीतगुर्वन्यर्क सुरोत्तमान्।
उभेसन्ध्ये च यतवाग् जपन्ब्रह्म सनातनम् ॥

वाल्मीकीय रामायण के बालकाण्ड सर्ग ३५ श्लोक २० में लिखा है—

सुप्रभाता निशा राम पूर्वा सन्ध्यां प्रवर्त्तते।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते गमनायाभिरोचय ॥

हे रामचन्द्र! प्रातःकाल हुआ, उठिये और प्रातःकाल की सन्ध्या कर चलने की तैयारी कीजिये। अयोध्याकाण्ड सर्ग ४५ श्लोक १३ में लिखा है—

उपास्यतुशिवांसंध्यां दृष्ट्वारात्रिमुपागताम्।
रामस्यशयनं चक्रे सूतः सौमित्रिणा सह ॥

सायंकाल की सन्ध्या कर जब रात्रि हुई तो सुमित्र लक्ष्मण जी ने शयन करने के लिये स्थान बनाया। सर्ग ७४ श्लोक ४३ में भरत ने कहा—कि जिसकी अनुमति से बड़े भाई राम को वनोवास हुआ हो उसको वह पाप लगे जो प्रातःकाल और सायंकाल की सन्ध्या में शयन करनेवाले को लगता है।

देवी भागवत स्कन्ध १ अ० १७ श्लोक ६४ से प्रकट है कि व्यास जी के पुत्र शुक्राचार्य सायं सन्ध्या वन्दनान्तर शयन करते और फिर

प्रहर रात्रि रहे ईश्वर का ध्यान करते थे—"उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां ध्यान-मेवान्वपद्यत।" शिवपुराण विद्येश्वरी संहिता अ० ६ श्लोक ३७, ३८ और अ० १५ श्लोक १८ में भी दोनों काल सन्ध्या करने की आज्ञा है। देवी भागवत स्कन्ध १२ अ० १ में प्रातःकाल और सायंकाल संध्या करने की आज्ञा है और अ० ४ में लिखा है कि जो प्रातःकाल सायंकाल ईश्वर का ध्यान करता है मानों उसने सर्व तीर्थ में स्नान कर लिये—

संध्यामुपार्य्य दानं च गायत्री जपमेव च ॥

नरसिंहपुराण अ० ५८ में लिखा है कि जो मोह से सन्ध्या का उल्लङ्घन करता है वह नरक को जाता है। विष्णुपुराण अ० ३ भू० ११ श्लो० ६७ में लिखा है कि जो कोई दोनों काल की सन्ध्याओं में सोता है और सन्ध्योपासन नहीं करता वह पापी होता है और बिना प्रायश्चित्त किये छुट्टी नहीं पाता, जैसा कि—

सूर्येणाभ्युदितोयश्च त्यक्तः सूर्येण च स्वपन् ।
अन्यथातुरभावात्तु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥

पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अ० १३ के श्लोक ५५३ वा ५५४ वा ५५५ में 'वीरक' ने अपने मित्रों से कहा है कि सूर्य्य पश्चिम दिशा को चले जाते हैं, देखो संध्या हुआ चाहती है, ब्राह्मण लोग आराधना करने के लिये जलाशयों को जा रहे हैं, जब फिर प्रातःकाल सूर्य्य निकल कर संसार को प्रकाशित करेंगे तब फिर इसी प्रकार मुनि लोग सन्ध्या वन्दन करेंगे, जैसी अब कर रहे हैं। इससे भी दो काल सन्ध्या प्रकट होती है।

बृहन्नारदीय पुराण अ० ६ श्लोक ८ वा ६ से प्रकट होता है कि नित्य-कर्म प्रातः और सायंकाल करे पद्मपुराण सर्ग खण्ड अ० ४ के श्लोक ५३ से प्रकट होता है कि श्रीरामजी ने सायंकाल आने पर मुनियों के साथ सायंकाल की सन्ध्या की। नरसिंहपुराण अध्याय ५८ श्लोक ५६ में लिखा है प्रातः और सायं सन्ध्या का उल्लंघन न करे।

अ० १३ के श्लोक ४२२ से प्रकट होता है कि महादेव जी सन्ध्यो-पासन के लिये मन्दाकिनी नदी के तट पर गये थे। तुलसीकृत रामायण में भी लिखा है—

चौपाई ।

निशि प्रवेश मुनि आयसु दीना । तब ही सन्ध्या वन्दन कीना ।
सकल शौच करि जाय नहाये । नित्य निबाह-गुरुहि शिरनाये ॥

रघुवंश सर्ग २ श्लोक २३ में लिखा है कि राजा दिलीप ने वन में गौ की सेवा करते हुए भी सन्ध्या त्याग नहीं किया ।

गुरोःसदारस्य निपीड्यपादौ समाप्यसांध्यं च विधिंदिलीपः ।
दोहावसाने पुनरेवदोग्ध्रीं भेजे भुजोच्छिन्नरिपुर्निषण्णाम् ॥

अत्रिस्मृति श्लोक ३६ में 'सायं प्रातस्तु यः सन्ध्या ।' विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक १८, २३ से भी दो काल प्रकट है—

सावित्रींचजपंस्तिष्ठेदासूर्योदयनात्पुरा १८सायं संध्यामुपासीत ।

और अ० २ के श्लोक ३१ से ३७ और हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ७, ८ और अ० ४ श्लोक १४ संवर्त्तस्मृति श्लोक ८ बृहस्पति स्मृति के ७४ में कात्यायनस्मृति प्रपाठक २ श्लोक ११ में दो काल ही की आज्ञा है, जैसे 'सन्ध्याद्वये ।' ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है कि ब्राह्मण को दो काल सन्ध्या करनी चाहिये, जैसे—

तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्रह्मणः संध्यामुपासीत ।

शंखस्मृति अध्याय १० में भी द्विजातियों को दोनों काल संध्या करने की विधि बतलाई है, इससे भी दो ही काल सिद्ध होते हैं—

एष एव विधिः प्रोक्तो संध्यायाश्च द्विजातिषु ।
पूर्वां संध्यां जपंतिष्ठेदासीनः पश्चिमां तथा ॥

दक्षस्मृति अ० २ में भी दो सन्ध्या काल बतलाये हैं. बुद्धि से विचार करने से भी जाना जाता है कि यही दोनों समय सन्ध्या करने के उत्तम हैं क्योंकि विद्या प्राप्त करने और सांसारिक कार्य्यों के अर्थ भी बहुत से समय की आवश्यकता है, अतः सिवाय प्रातःकाल और सायङ्काल के मन का एकाग्र रहना कठिन है और बिना मन की एकाग्रता के बेगार टालने से कुछ लाभ नहीं होता ।

सन्ध्या शब्द के अर्थ मिलने के हैं, जैसा दिन रात या रात दिन, प्रातःकाल सायंकाल समय आपस में मिलते हैं, वैसे ही समय पर जीव और परमात्मा भी

आपस में मिलें और इन्हीं दोनों समयों पर एक विशेष गुण यह भी है कि स्वाभाविक रीति से मनुष्य को इन दोनों समयों पर ही प्रसन्नता और मन की एकाग्रता होती तथा पेट भी ख़ाली होता है कि जिसके कारण अच्छे प्रकार मन लगा कर परमेश्वर का ध्यान हो सकता है, जो और किसी प्रकार से नहीं हो सकता। शोक का स्थान है कि हमारे स्वदेशीय भाइयों ने अन्य देशीय लोगों की देखादेखी मध्यान्ह काल में भी सन्ध्या करने का समय नियत कर दिया। यदि मध्यान्ह काल के समय दोनों पहर मिलते हैं तो प्रत्येक घण्टे और प्रत्येक मिनट और सेकेंड और पल पर दो मिनट सेकेंड और दो पल भी मिलते हैं। यदि इनका मिलना भी संध्या शब्द के अर्थ में समझा जाय, तो फिर यही योग्य है कि प्रत्येक समय सन्ध्या के उपरान्त कोई सांसारिक कार्य न करना चाहिये। फिर विचारिये कि सांसारिक कार्य क्योंकर होंगे? इसी कारण हारीत-स्मृति अ० ४ में लिखा है कि जो द्विज प्रातःकाल तथा सायंकाल सन्ध्या का त्यागता है, वह नरक में जाता है—

तस्मान्नलंघयेत्सन्ध्यांसायंप्रातः समाहितः।
उल्लंघयति यो मोहात्य यातिनरकं ध्रुवम्॥

अत्रिस्मृति अ० १ श्लोक ६२ में लिखा है कि जो प्रमाद से प्रातःसायं-काल की सन्ध्या का त्याग करे वह स्नान कर एक हज़ार गायत्री के जप से शुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त प्रातः संध्या पूर्वाभिमुख और सायं सन्ध्या पश्चिमाभिमुख करने की आज्ञा है, परन्तु जिन पुराणों में तीन काल सन्ध्या करने की आज्ञा की है, उनमें मध्यान्ह काल में किसी दिशा का कोई विधान नहीं किया।

इस लिये सन्ध्या दो ही समय करना योग्य है हां यह बात ठीक है कि परमेश्वर को सर्वव्यापक जान कर किसी समय और किसी स्थान पर उनकी याद मन से दूर न करे, परन्तु यह उसी समय हो सकता है कि जब हम परमेश्वर के गुणों से जानकार हों, उसी के अनुसार अपने आचार को सुधारें। जैसे परमेश्वर सत्यरूप हैं वैसे ही मनुष्य को योग्य है कि किसी काल में सत्य को हाथ से न जाने दे, अर्थात् सत्य ही बोले, सत्य ही कहे, सत्य ही माने, यही परमेश्वर का प्रत्येक समय का जप है।

प्यारे सज्जन पुरुषो! इसका नाम जप नहीं है कि हाथ में गज भर

की माला और जिह्वा से प्रत्येक समय राम राम कृष्ण २ ओं ओं शिव २ आदि की रट लग रही है और मन में नाना भांति के रागद्वेष भरे हुये हैं। इस जप से कुछ भी लाभ नहीं होगा, जब तक उसके गुणों को जान कर उनको काम में न लाया जावे। जैसा कि मिश्री मिश्री कहने से कुछ लाभ नहीं हो सकता या इस बात के जान लेने से कि मिश्री मीठी होती है, जब तक मिश्री खाई न जाय वा मिश्री का नाम लेकर संखिया खा लिया जावे तो उससे मुंह मीठा न होगा, वरन् उलटा कडुआ हो जायगा जिसका अन्तिम फल मरण होगा, अर्थात् जब तक राम शिव ओं आदि शब्दों के अर्थ मालूम न हों और उन पर वर्ताव न हो तब तक कुछ लाभ नहीं हो सकता, जैसा कि कहा है—

माला तेरी काठ की, धागा दई पिरोय।
मन में गांठी पाप की, राम भजे क्या होय॥

ऐसा ही य० अ० ६ मं० ६ में लिखा है कि धर्म का मूल, आचार ही है जैसा कि—

स्वांकृतोऽसिविश्वेभ्यऽइन्द्रियेभ्यो दिव्येभ्यः पार्थिवेभ्यो मनस्त्वाष्टु। स्वाहा त्वा सुभव सूर्य्याय देवेभ्यस्त्वा मरीचिपेभ्यऽउदानाय त्वा॥

जब तक मनुष्य श्रेष्ठाचार करनेवाला नहीं होता तब तक ईश्वर भी उसको स्वीकार नहीं करता और जब तक जिसको ईश्वर स्वीकार नहीं करता तब तक उसका पूरा २ आत्मबल नहीं होता और बिना आत्मबल के पूर्ण सुख नहीं मिल सकता, और वसिष्टस्मृति में लिखा है—

आचारहीनस्य तु ब्राह्मणस्य वेदाः षडंगा अखिलाः सयज्ञाः।
न प्रीतिमुत्पादयितुं समर्था अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः॥

जैसे अन्धे मनुष्य को रूपवती स्त्री से सुख नहीं होता, वैसे ही जिन के आचार अच्छे नहीं उनको वेद, उनके अंग पढ़ने और यज्ञ करने से कुछ फल नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त और भी कहा है—

आचारः परमोधर्मः सर्वेषामिति निश्चयः।

अर्थात् आचार ही परमधर्म है, और पाराशर दत्त ने कहा है—

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालनम् ।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥

चारों वर्णों को आचार से रहना धर्म है और जो भ्रष्ट होते हैं वे धर्म नहीं जानते मनु जी ने कहा है—

दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।
दुःखभागी च सततं व्याधितोऽल्पायुरेव च ॥

जिसके कर्म अच्छे नहीं होते उसकी निन्दा होती है, वही सदा दुःखी रहता है, रोगादि उसका पीछा नहीं छोड़ते, उसकी आयु क्षीण हो जाती है। और भी कहा है—

वेदास्त्यागाश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रदुष्टभावस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

जिसका मन विषय भोग में लगा हुआ है उसको दान, यज्ञ, नियम, तप किसी का फल नहीं मिलता। मुख्य कथन यह है कि बिना शुद्ध आचरण के कुछ लाभ नहीं, इसी लिये य० अ० ६ मन्त्र २ में आज्ञा दी है कि गायत्री का जप करते हुए उसके ही अनुकूल आचरण सुधारते हुए उपासना करने से लाभ होता है, अन्यथा नहीं। इस लिये वेद के पढ़ने और उपकार के करने और पंचयज्ञों के करने में सदा तत्पर रहना चाहिये। जैसा मनुजी ने लिखा है—

वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चैव नैत्यके ।
नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि ॥

परन्तु आज कल के पण्डित सूतक पातक के ढकोसलों की टट्टी की आड़ में नित्यकर्म करने में पाप बतलाते हैं, यह अत्यन्त अज्ञानता की बात है। क्योंकि श्वास प्रश्वास प्रति दिन चलते रहते हैं, खाना पीना प्रति दिन होता है, फिर क्या कारण है अच्छे कर्म सूतक पातक के मिथ्या प्रपञ्चों के कारण छोड़ दिये जावें? देखिये अत्रिस्मृति श्लोक १०० जहां सूतक का वर्णन है वहां लिखा है कि वेद और स्मृतियों में कहे हुए नित्य कर्म (सन्ध्या आदि) नैमित्तिक कर्म, काम्य यज्ञादि जो स्वर्ग के साधन (दानादि) हैं उन्हें सदा करता रहे—

तस्माद्धर्मं सदा कुर्यात् श्रुतिस्मृत्युदित च यत् ।
नित्यं नैमित्तिक काम्यं यच्च स्वर्गस्य साधनम् ॥

देखो झूठ बोलने से सदा पाप होता है, उसी प्रकार सत्य बोलने से पुण्य होता है तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय पाप हो सकता है ? कदापि नहीं । दक्षस्मृति अ० ५ श्लोक ८ में लिखा है कि स्नान, आचमन, जप, दान और होम बिना किये जो भोजन करते हैं उन सब को जीवन पर्यन्त आशौच रहता है । जैसा कि—

न स्नात्वाचम्य जप्त्वा च दत्वा हुत्वा च भुञ्जतः ।
एवं विधस्यसर्वस्य यावज्जीवं हि सूतकम् ॥

तो फिर भला क्या अच्छे कर्म करने से किसी समय पाप हो सकता है ? कदापि नहीं ।

❁ कहानी ❁

एक योग्य पुरुष बहुत दिनों से बीमार थे, जिसके कारण उनसे चलना फिरना न होता था, रात्रि दिन चारपाई पर पड़े रहते थे परन्तु स्थिर स्वभाव और समय के बन्धायमान थे । प्रति दिन प्रातःकाल और सायंकाल चारपाई ही पर पड़े पड़े ईश्वर का ध्यान किया करते थे, एक दिन प्रातःकाल एक तरुण मित्र उनसे मिलने को गये तो देखा कि आप भजन में मग्न हो रहे हैं इसलिये चुप चाप बैठ गये । जब वह सज्जन पुरुष निश्चिन्त हुए तब उस मित्र ने उनसे कहा कि अजी साहिब ! चारपाई पर पड़े पड़े अशुद्ध दशा में भजन करना योग्य नहीं, ऐसे भजन से न करना भला है । तब सज्जन ने पूछा कि हे मित्र ! किस दशा में ईश्वर को भूलना चाहिये ? तो उसने उत्तर दिया कि जब ऐसी दशा हो जैसी आपकी । ऐसी बात के सुनते ही सज्जन पुरुष की आंख से आंसू निकल पड़े और चिल्ला उठे कि यदि इस अशुद्ध दशा में ईश्वर मुझे भूल जाता तो मेरी क्या दशा होती ?

नाम के पण्डितों ! तुम किस प्रमाण से कहते हो कि आज हम सूतक पातक के कारण भजन नहीं कर सकते । जब ईश्वर सब दशाओं में तुम्हारी सुध लेता है तो तुम्हें कब योग्य है कि उसके धन्यवाद करने से बन्द रहो ? इसके उपरांत शरीर भी अनित्य पदार्थ है, इसलिये धर्म करने में कभी किसी दशा में न रुकना चाहिये । क्या ऐसी दशा में परमेश्वर की प्रजा नहीं रहती

जो उसकी आज्ञा को उन दिनों में नहीं मानती ? क्या पवन पानी को ग्रहण नहीं करता ? क्या अन्न का भोग नहीं लगाते ? फिर बड़े शोक की बात है कि शरीर का नित्य कर्म किसी दशा में बन्द न हो और आत्मिक पञ्चयज्ञ बन्द कर दिये जावें ? यह अज्ञान नहीं है तो क्या है ? इस लिये किसी दशा में शुभ कर्मों को न त्यागना चाहिये। ऐसा ही यजुर्वेद अ० ४० मं० २ में लिखा है कि संसार में कर्मों को करता हुआ सौ वर्ष पर्यन्त अर्थात् जब तक जीवन हो तब तक कर्म करता हुआ जीने की इच्छा करे। क्योंकि सांसारिक फल-भोग की इच्छा से पृथक् होकर काम करते हुए मनुष्य में वैदिक कर्म नहीं लिप्त होते। जैसा कि—

कुर्व्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छत ँ समाः।
एवन्त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरः॥

नित्य और नैमित्तिक कर्मों को जो लोग त्याग कर, नगर को छोड़ जंगल चले जाते हैं वा नगर में रहते और कहते हैं कि हम निष्काम हो गये अर्थात् काम के बन्धन से छूट गये, उनको यह स्मरण रखना चाहिये कि जब तक स्थूल शरीर विद्यमान है तब तक कर्मों से छुटकारा नहीं हो सकता।

ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों में स्पष्ट लिखा है और मनुजी महाराज भी यही कहते हैं, गीता में भी इसकी साक्षी मिलती है, फिर भला कर्मों से कैसे कोई पृथक् हो सकता है ? जो मनुष्य ऐसा कहते हैं वह पुरुषार्थी नहीं, आलसी हैं और ईश्वरीय नियमों से या तो वह बिल्कुल अनजान हैं या अपने घमण्ड के कारण उस सच्चे नियम अर्थात् गायत्री मंत्र पर दृष्टि नहीं डालते, वह यह है—

ओं भूर्भुवः स्वः यत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात्।

अर्थ—(ओम् भूर्भुवः स्वः) जो अकार उकार और मकार के योग से (ओम्) यह अक्षर सिद्ध है, सो यह परमेश्वर के सब नामों से उत्तम नाम है, जिसमें सब नामों के अर्थ आ जाते हैं, जैसा पिता पुत्र का प्रेम सम्बन्ध है वैसा ही ओंकार के साथ परमात्मा का है, इससे सब नामों का बोध होता है। जैसे अकार से 'विराट्' जो विविध जगत् का प्रकाश करने वाला है। 'अग्नि' जो ज्ञान स्वरूप और सर्वत्र प्राप्त हो रहा है। 'विश्व' जिसमें

सब जगत् प्रवेश कर रहा है, जो सर्वत्र प्रविष्ट है इत्यादि नामार्थ अकार से जानना। 'हिरण्यगर्भः' जिसके गर्भ में प्रकाश करनेवाले सूर्यादि लोक हैं और जो सूर्यादि लोकों के प्रकाश करनेवाला है इससे ईश्वर को हिरण्यगर्भ कहते हैं। ज्योति के अर्थ हिरण्य, अमृत और कीर्ति हैं। वायु जो अनंत बलवाला और सब जगत् का धारण करनेवाला। 'तैजस' जो प्रकाश स्वरूप और सब जगत् का प्रकाशक है इत्यादि अर्थ उकार से जानना चाहिये।

'ईश्वर' जो सब जगत् का उत्पादक सर्वशक्तिमान् स्वामी और न्यायकारी है। आदित्य, जो नाश रहित है। 'प्राज्ञः' जो ज्ञान स्वरूप और सर्वज्ञ है इत्यादि अर्थ मकार से समझ लेना चाहिये।

यह संक्षेप से ओंकार का अर्थ किया। अब महाव्याहृतियों का अर्थ लिखते हैं-(भूरिति वै प्राणः) जो सब जगत् के जीवन का हेतु और प्राण से भी प्रिय है इससे परमेश्वर का नाम 'भूः' है। (भुवरित्यपानः) जो मुक्ति की इच्छा करनेवालों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःखों से अलग करके सर्वदा सुख में रखता है इसलिये परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। (स्वरिति व्यानः) जो सब जगत् में व्यापक हो के सबको नियम में रखता है और सबको ठहरने का स्थान तथा सुख स्वरूप है इससे परमेश्वर का नाम 'स्वः' है। यह व्याहृतियों का संक्षेप से अर्थ लिखा गया।

अब गायत्री मन्त्र का अर्थ लिखते हैं-(सवितुः) जो सब जगत् का उत्पन्न करनेहारा और ऐश्वर्य का देनेवाला। (देवस्य) जो सबके आत्माओं का प्रकाश करनेवाला सब सुखों का दाता। (वरेण्यम्) जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है। (भर्गः) जो शुद्ध विज्ञानस्वरूप है, (तत्) उस को, (धीमहि) हम लोग सदा प्रेम भक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा में धारण करें। किस प्रयोजन के लिये कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता देव परमेश्वर है वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) कृपा करके बुरे कर्मों से पृथक करके सदा उत्तम कर्मों में प्रवृत्त करे।

इसलिये सब मनुष्यों को योग्य है सच्चित् आनन्द स्वरूप, नित्य ज्ञानी, नित्यमुक्त, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, सर्वव्यापक, कृपालु, संसार को धारण करनेवाले परमेश्वर की यथाविधि सदाचार युक्त उपासना करें, तो फिर किसी प्रकार के पाप नहीं लगते अर्थात् ऐसे पुरुष किसी प्रकार के पाप कर्म का मन से भी विचार नहीं करते।

वेदपाठ

प्यारे सुजनों! संध्या करने के पश्चात् प्रति दिन वेदपाठ करने की आज्ञा है, देखो व्यासस्मृति अ० ३ श्लोक ९, १०, ११ दक्षस्मृति अ० २ श्लोक २०, विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३३ और मनु जी महाराज आज्ञा देते हैं कि जिस कार्य्य के करने से वेदपाठ करने में विघ्न हो और धन भी मिलता हो तो भी उस वेदपाठ को न छोड़े क्योंकि वेद के पढ़ने से सब कार्य सिद्ध होते हैं।

सर्वान् परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः।
यथा तथाध्यापयंस्तु साह्यस्य कृतकृत्यता॥

और अ० ४ श्लोक १९ में भी वेद पढ़ने की आज्ञा है, श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि होती है, याज्ञवल्क्यस्मृति में लिखा है कि जो द्विज प्रति दिन वेद पढ़ता है वह बड़े फल को पाता है, संवर्त्तस्मृति के ९ श्लोक में लिखा है कि गायत्री के जप के पीछे वेद पढ़ने का आरम्भ करे, लिंगपुराण पूर्वार्द्ध अध्याय २५ में लिखा है कि पितर, ब्रह्मा, विष्णु, शिव सब ब्रह्मयज्ञ से प्रसन्न होते हैं। प्यारे पाठकगण! इसी प्रकार बहुधा आज्ञायें पाई जाती हैं कि संध्या करने के पीछे वेदपाठ करना अभीष्ट है। यथार्थ में इससे अनेकान् लाभ हैं, प्रथम तो वेद उपस्थित रहते थे। द्वितीय कोई धोका नहीं दे सकता था तृतीय वेदानुकूल कर्म होते थे किसी प्रकार की भूल नहीं होती थी। चौथे सन्तानों के लिये दृष्टान्त होजाता था। पांचवें वेदपाठ से उनके पठन पाठन की प्रथा प्रचलित रहती थी कि जिसके कारण देश में आनन्द ही आनन्द दृष्टि आता था। अब यह प्रथा उठगई अर्थात् गायत्री मन्त्र के स्थान पर अनेकान मन्त्र हो गये। गायत्री भी एक नहीं वरन् २४ होगईं, जिनको आपके अवलोकनार्थ हम यहां लिखते हैं—

१—**गणेश गायत्री**—ओं तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो गणेशः प्रचोदयात्। २ **परमहंस गायत्री**—ओं सोहं हंसाय विद्महे परमहंसया धीमहि सोहतं तत्वमसी प्रचोदयात्। ३-**विष्णु गायत्री**—ओं नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्। ४-**शिवगायत्री**-ओं तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्राय प्रचोदयात्। ५-**नरसिंह गायत्री**—ओं वज्रकाय विद्महे दिवाकराय धीमहि तन्नो नृसिंहः प्रचोदयात्।

६--सूर्यगायत्री--ओं भास्कराय विद्महे दिवाकराय धीमहि तन्नो सूर्यः प्रचोदयात्। ७--अग्नि गायत्री--ओं वैश्वनराय विद्महे कपिलाय धीमहि तन्नो अग्निः प्रचोदयात् ८--ब्रह्मगायत्री--ओं भूः ओं भुवः ओं स्वः ओं महः ओं जनः ओं तपः ओं सत्यम् ओं तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ओं आपोज्योतिरसोमृतब्रह्म भूर्भुवः स्वरोंततः सूर्यश्चमेति ब्रह्मात्रऋषिर्गायत्रीछन्दः सूर्योदेवता अपामुपस्पर्शनेविनियोगः। ९--दुर्गा गा०--ओं कात्याय विद्महे कात्याकुमारी धीमहि तन्नो दुर्गा प्रचोदयात्। १०--बलभद्र गा०--ओं ताच पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो परामुख प्रचोदयात्, ११--गरुड़ गायत्री--ओं तत्पुरुषाय विद्महे महास्वधाय धीमहि तन्नो गरुड़ः, प्रचोदयात्। १२--दत्तात्रयी गायत्री--ओं दत्तात्रयाय विद्महे दिगम्बराय धीमहि तन्नो दत्तः प्रचोदयात्। १३--ब्रह्मा गा०--ओं चतुर्मुखाय विद्महे कमण्डलु धराय धीमहि तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्। १४--सरस्वती गा०--ओं सरस्वत्याय विद्महे शशुधराय धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्। १५--क्षत्रिय गा०--ओं तत्पुरुषाय विद्महे भूतधात्रै धीमहि तन्नो क्षत्री प्रचोदयात्। १६-वैश्य गा०--ओं तत्पुरुषाय विद्महे त्रयोदेवाय धीमहि तन्नो वैश्य प्रचोदयात्। १७--शूद्र गा०--ओं तत्पुरुषाय विद्महे महासेनाय धीमहि तन्नो शूद्रा प्रचोदयात्। १८--भाट गा०--ओं चन्द्रेश्वराय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो चन्द्र प्रचोदयात्। १९--पशु गा०--ओं पशुपताय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो पशु प्रचोदयात्। २०--निरञ्जन गा०-ओं सूर्याय सोमाय निरञ्जनाय निराभापायते प्रचोदयात्। २१--वनस्पति गा०--ओं स्थावराय विद्महे महा वनस्पतये तन्नो वृक्ष प्रचोदयात्। २२-सोम गा०--ओं सोमाय विद्महे निरञ्जनाय धीमहि तन्नो मे प्रचोदयात्। २३--जल गा०--ओं जलेश्वराय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो जल प्रचोदयात्। २४--पृथ्वी गा०--ओं वसुधराय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो भूमि प्रचोदयात्।

मान्यवरो! जिस प्रकार एक गायत्री के स्थान पर चौबीस गायत्री हो गई वैसे ही वेदपाठ के स्थान पर सूर्यमाहात्म्य, गंगालहरी, हनुमानचालीसा, विष्णुसहस्र नाम, गोपाल सहस्रनाम, पञ्चरत्न इत्यादि पुस्तकों का पाठ होने लगा, इस लिये आप मिथ्या प्रपञ्चों को छोड़ वेदानुकूल गायत्री मंत्र से दोनों

समय शुद्ध आचरण करते हुए वेदादि सत्यशास्त्रों के पाठ का नियम प्रति दिन कीजिये तब ही हमारा और आपका कल्याण होगा।

❋ देवयज्ञ ❋

प्रकट हो कि वेदादि सत्य शास्त्रों में दोनों ही काल हवन करने की आज्ञा है, इसी को देवयज्ञ कहते हैं, देखिये य० अ० ३६ मन्त्र १२ में कहा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र से जलादि पदार्थों को शुद्ध सेवन करते हैं अर्थात् सुख रूप अमृत की वर्षा निरन्तर होती है। जैसा कि—

शन्नो देवी रभिष्टय आपोभवन्तु पीतये। शंयोरभिश्रवन्तुनः ॥

और य० अ० १८ मं० ४२ में लिखा है कि जो मनुष्य अग्निहोत्र आदि यज्ञों को प्रति दिन करते हैं वे समस्त संसार के सुखों को बढ़ाते अर्थात् आप सुखी होकर औरों को भी सुख देते हैं। जैसा कि—

भुज्युः सुपर्णायज्ञो गन्धतस्व दक्षिणा अप्सरसस्तावा नाम।
सन इदं ब्रह्मक्षत्रं पातु तस्मै स्वाहाः वाट् ताभ्यः स्वाहाः ॥

और भी कहा है—

सायं सायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमस्य।
धाता वसोर्वसोर्वसुदान एधिवयं स्वन्धानास्तन्वं पुषेम् ॥

वह हमारा गृहपति अर्थात् घर और आत्मा का रक्षक यज्ञ प्रतिदिन सायंकाल और प्रातःकाल अच्छे प्रकार से किया जावे। यह यज्ञ जिस प्रकार आरोग्यता आनन्द को देनेवाला है इसी प्रकार उत्तम से उत्तम वस्तुओं का देनेवाला है, अतएव यह (यज्ञ वसुदान) धन का देनेवाला तथा धन का बढ़ानेवाला प्रसिद्ध है इस लिये ईश्वर आज्ञा करते हैं कि हे मनुष्यो! इस यज्ञ को करते हुये अपने शरीर और आत्मा को पुष्ट करो।

इसी के अनुसार छान्दोग्य उपनिषद् में लिखते हैं '(त्रयोधर्मस्कन्धाः यज्ञाध्ययन दानादि इति प्रथमस्तेय) इत्यादि। धर्म के उत्तम अंग तीन हैं, यज्ञ अध्ययन और दान, इन सबमें भी सबसे पूर्व यज्ञ आवश्यकीय बतलाया गया है।

और सम्वर्त्तस्मृति अ० १ श्लोक ८ में लिखा है 'अग्निकार्यश्च कुर्वीत' और व्याासस्मृति अ० १ में आज्ञा है 'मन्त्रहुति क्रिया' कात्यायन स्मृति खंड ३१७ में भी दोनों काल अग्निहोत्र की आज्ञा है। दक्षस्मृति अ० २ श्लोक २३, ३८में भी यही उपदेश है 'सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयं होमो विधीयते।' विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३३, ३७ हारीतस्मृति अ० १ श्लोक २८

'कृतहोमस्तु भुंजीत सायं प्रातरुदारधी' और अ० ४ श्लोक २० शङ्खस्मृति अध्याय श्लोक १५ 'सायं प्रातश्च जुहुयादग्निहोत्रं यथा विधि।' याज्ञवल्क्य स्मृति अ० २ श्लोक २५ 'अग्निकार्यं ततः कुर्यात्।' गीता अ० ३ श्लोक १४ में उपदेश है कि सकल प्राणियों का जीवन अन्न से होता है और अन्न वर्षा से होता है और वर्षा यज्ञ से होती है, यथा—

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्न संभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्म समुद्भवः॥

और ऐसाही विष्णु पुराण अ० १ अ० ६ श्लोक ८ में लिखा है-

यज्ञै राप्ता पितादेवा वृष्ट्यत्सर्गेण वैप्रजाः।

और य० अ० ३ मं० ४९ में लिखा है—

पूर्णा दर्वि परापत सुपूर्णा पुनरापत।
वस्नेव विक्रीणावहाऽइष मूर्ज ँ शतक्रतो॥

पद्मपुराण अ० ३ में कहा है कि यज्ञ करने से देवता प्रसन्न होकर जल बरसाते हैं जिससे मनुष्यों की उन्नति होती है, इसी कारण यज्ञ ही सब धर्मों की जड़ है और कल्याण का हेतु है। ऐसा ही विष्णु पुराण अ० १ अ० ६ में भी लिखा है।

नरसिंह पुराण अ० ५८ से स्पष्ट प्रकट होता है कि सन्ध्या करने के पश्चात् अग्निहोत्र करे। अ० १३ में लिखा है कि जब राजा बेन ने यज्ञादि कर्मों को बन्द कर दिया तब ऋषिजनों ने उससे जाकर कहा, कि हे राजन्! यज्ञादि कर्म करने की आज्ञा दीजिये जिससे धर्म का नाश न हो, यह सब संसार यज्ञ करने से ही चला जाता है और धर्म के क्षीण होने से जगत् भी क्षीण हो जाता है। देवीभागवत स्कन्ध ३ अ० ६ श्लोक ४२ में लिखा है कि जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य यज्ञों को करते हैं उनको सुख प्राप्त होते हैं।

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्या नाना यज्ञैः सदक्षिणैः।
यजिष्यन्ति विधानेन सर्वान्वः सुसमाहिताः॥

पद्मपुराण तृतीय खण्ड अध्याय १६ में ब्राह्माजी ने नारद जी से कहा है कि जो मनुष्य ब्राह्मणों की पूजा कर विप्रों से श्रद्धापूर्वक यज्ञादि कर्म

कराते हैं उनकी आयु, यश, विद्या और धन की वृद्धि होती है। पद्मपुराण द्वितीय भूमिखण्ड अ० ५१ में गोभिल ने कहा है कि जो ब्राह्मण अग्निहोत्र का कभी त्याग नहीं करता वह ब्रह्मलोक को जाता है—

चाणक्यनीति में लिखा है "अग्निहोत्र फलोवेदः" अर्थात् वेद पढ़ने का फल उसी समय होता है जब मनुष्य अग्निहोत्र करता है। इसी प्रकार विदुरनीति में आज्ञा है और ऐसा ही नारद जी ने युधिष्ठिर से कहा है। शान्तिपर्व में नकुल महाराज का वचन है कि यज्ञ करने से ज्ञान की वृद्धि होती है। देवस्थानी महर्षि का वचन है कि यज्ञ करने से मनुष्य की सम्पूर्ण कामनायें सिद्ध होती हैं। यम ने गौतम से कहा है कि अश्वमेध यज्ञ करने से उत्तम लोक मिलता है। राजा ययाति का वचन है कि यज्ञ करने से दीर्घायु होती है। विदुर महाराज कहते हैं कि यज्ञ करना धर्म का एक लक्षण है भीष्म जी कहते हैं कि अग्निहोत्र करने से ब्रह्मलोक मिलता है। और मयूरश्मिक का कथन है कि यज्ञ करने से स्वर्ग मिलता है। इस पर्व के अ० ५२ से प्रकट है कि श्रीकृष्ण महाराज प्रति दिन हवन किया करते थे और ऐसा ही श्रीमद्भागवत स्कन्ध १० उत्तरार्द्ध अ० १ श्लोक २४, २५ में लिखा है। अयोध्याकाण्ड सर्ग ३२ श्लोक ७ से प्रकट होता है कि लक्ष्मण महाराज अपने गुरु पुत्र के यहाँ गये थे तो उस समय वह वहाँ अग्निहोत्र करने के लिये अग्नि स्थापन कर रहे थे। सर्ग ९९ से स्पष्टरूप से विदित हो रहा है कि जब भरत जी रामचन्द्र जी से मिलने चित्रकूट पर गये तो वहाँ श्रीरामचन्द्रजी अग्निहोत्र कर चुके थे। सर्ग १०० श्लोक २ से प्रकट है कि जब भरत जी रामचन्द्र जी से मिले तो श्रीराम जी ने पूछा कि तुमने अग्निहोत्रादि कर्मों को विधि से जाननेवाले मतिमान सरल स्वभाव पुरोहित को नियत किया है? सर्ग १०५ भरत आदि प्रातः अग्निहोत्र जपादि कर श्रीराम के पास गये थे।

लङ्काकाण्ड सर्ग ३५ में माल्यवान ने रावण से कहा है कि श्रीराम जी विधिपूर्वक नित्य अग्नि में आहुति देते हैं।

अयोध्याकाण्ड सर्ग २० श्लोक १५ वा १६ से विदित है कि जब रामचन्द्रजी महाराज वन जाने के लिये उद्यत हुए थे उस समय जब वह माता कौशिल्या से आज्ञा लेने गये थे, माता जी रेशमी वस्त्र धारण किये परमानन्द के साथ नित्य व्रत में लगी हुई मंत्र पढ़ कर अग्नि में आहुति दे रही थी।

साक्षौमवसनाहृष्टा नित्यं व्रत परायणा ।
अग्निंजुहोतिस्मतदा मन्त्रवत्कृतमंगला ॥ १५ ॥
प्रविश्यतु तदारामो मातुरन्तःपुरं शुभम् ।
ददर्श मातरं तत्रहा यजन्तीं हुताशनम् ॥ १६ ॥

सर्ग ५८ से प्रकट है कि श्रीरामचन्द्र जी महाराज ने सुमन्त मन्त्री के द्वारा माता कौशिल्या जी से कहला भेजा था, जिस प्रकार तुम सदा नित्य धर्म में लगी रहती थीं उसी भांति अब भी अग्निहोत्रादि करती रहना ।

उत्तरकाण्ड सर्ग ४२ से विदित होता है कि सीताजी प्रातःकाल से मध्यान्ह समय तक देव कार्य करती थीं ।

पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय २४ श्लोक १२ से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि अहिल्या अपने पति के बाहर जाने पर अग्निहोत्रादि सब क्रिया आप करती थी । पुराणों के पाठ करने से प्रकट होता है कि जब पुराणों की कथा को सुने तब प्रथम यज्ञ करावे और जब समाप्त हो तो यज्ञ करे पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अध्याय २२ में लिखा है कि जो नित्य हवन करता है वही वैष्णव है । बामन पुराण अध्याय ११ में लिखा है, यज्ञ करना देवताओं का धर्म है ।

इसके उपरान्त गंगा के तट पर दक्ष प्रजापति ने, पुष्कर में ब्रह्मा ने, यमुना के तट पर इन्द्र ने विस्तृत यज्ञ किया था जिस में ब्रह्मा, शिव, विष्णु के अतिरिक्त अन्य देवता भी पधारे थे । स्वयंभुव मनु ने पूर्व समय में मन्दर पर्वत पर यज्ञ किया था, राजा दशरथ ने पुत्रेष्ठी और अश्वमेध यज्ञ किये थे और इनके राज्य में प्रतिदिन हवन करनेवाली प्रजा थी । राजा अम्बरीष और श्रीरामचन्द्र जी ने अश्वमेध और राजा युधिष्ठिर ने राजसूय, पाञ्चाल देश के राजा ने पुत्र के निमित्त यज्ञ किया कि जिससे धृष्टद्युम्न पुत्र, द्रौपदी सी सुकन्या उत्पन्न हुई थीं । राजा बलि ने सिद्धाश्रम पर एक बड़ा भारी यज्ञ किया था । आर्य्यवर्त्त देश में राजा जनक ने मिथिला देश में बड़ा भारी यज्ञ किया था । श्रीरामचन्द्र को विश्वामित्र महाराज यज्ञ की रक्षा के निमित्त लेगये थे और उन्होंने रावण को मार अयोध्या में राजसूय यज्ञ किया था । शिवपुराण ज्ञान खण्ड अ० ७ श्लोक २ में लिखा

है कि जब शिव और दक्ष का विरोध होगया था तब दक्ष ने देवताओं के समीप जाकर यज्ञ किया था। नरसिंहपुराण अ० १७ में लिखा है कि कुरुक्षेत्र में परशुरामजी ने यज्ञ किया था।

इसके उपरांत प्राकृतिक नियमों के देखने से ज्ञात होता है कि वायु शुद्धि के दो ही मुख्य उपाय हैं, प्रथम आँधियों का चलना, द्वितीय वायु में सुगन्धित पदार्थ मिलना। आंधी आने का मूल कारण अग्नि है, सूर्य की गर्मी का हवा पर बहुत असर होता है इससे आंधी चलती है अर्थात् सूर्य की उष्ण किरणें वायु के परमाणुओं को स्थूल से सूक्ष्म कर देती हैं जिससे एक स्थान की हवा हलकी होकर दूसरे स्थान में जाती है और उसके स्थान पर दूसरी हवा आती है और इस परस्पर की टक्कर से हवा बहने लगती है और अग्नि का यह स्वाभाविक गुण है कि जिस पर बल करती है उसके परमाणुओं को छिन्न भिन्न कर देती है। इसके प्रभाव से हवा का परिचालन हो अधिक टक्कर से आंधियां आतीं कि जिनसे बहुत दिनों का बसा हुआ दुर्गन्धित वायु प्रचण्ड वेग के कारण सब बाहर निकल जाता तथा स्वच्छ वायु आ जाता है। इसके उपरान्त वृक्षों से भी सदा सुगन्धित वायु जिसको प्राणप्रद वायु कहते हैं निकला करता है, मानों परमेश्वर जगत् रक्षक स्वयं वायु की शुद्धि के लिये सूर्य की अग्नि और वृक्षों के साकल्य द्वारा हवन कर जीवों को उपदेश करता है कि तुम लोग भी इसी भांति करो, बस इस शिक्षा और लाभदायक कार्य के अर्थ सुगन्धित रोगनाशक पुष्टिकारक पदार्थ जलाये जाते हैं।

क्योंकि वायु की दुर्गन्ध दूर करने से आरोग्यता मिलती है। यह तो सब मनुष्य जानते हैं कि पवन पानी के बिगड़ने से रोगों की बहुधा उत्पत्ति होती है और उसी के अधिक बिगड़ने से विशूचिका आदि बड़े बड़े रोगों की उत्पत्ति होजाती है कि जिससे सहस्रों जीवों की हानियां होजाती हैं। डाक्टर बर्मन ने कपूर अर्क को बना कर हज़ारों हैज़े के रोगियों को अच्छा किया है, लाखों शीशियां उनकी प्रति वर्ष बिकती हैं, वही कपूर हवन में पड़ता है, इसी भांति और पदार्थों के गुणों को जानों जो हवन में पड़ते हैं। यदि उन पदार्थों के अलग अलग गुणों की व्याख्या की जाय तो एक पुस्तक बन जायगी, इसलिये प्रत्येक के गुण नहीं लिखे। अग्नि में जो वस्तु पड़ती है उसके परमाणु भिन्न भिन्न होकर वायुमण्डल में

मिल जाते हैं क्योंकि प्राकृतिक नियम है कि हलकी वस्तु ऊपर को जाती है और भारी नीचे को आती है, जैसे तेल पानी से हलका होने के कारण ऊपर रहता है और घी आंच पर रख कर देखिये कि पिघल कर पतला हो जाता है और भाप उड़ने लगती है, थोड़ी देर पीछे देखिये तो कुछ नहीं रहता। क्या वह नष्ट हो गया। नहीं वह सूक्ष्म होकर हवा में मिल गया। इसी लिये प्रत्येक प्राणी को हवन करना अभीष्ट है।

पितृयज्ञ

अनृणो भवाम्यहं तौ पितरो मया स्थ मद्रेण पृङ्क्त विपृचस्थ विमा पाप्मना पृङ्क्त।

अनुशासन पर्व अ० ६ में लिखा है कि जिसने माता पिता गुरु को प्रसन्न कर लिया मानों उसने सर्व धर्मों को सन्तुष्ट कर दिया। मनुस्मृति अ० २ श्लोक २२ में लिखा है कि उत्पत्ति के समय जो क्लेश माता पिता सहते हैं उससे मनुष्य सौ वर्ष में भी उऋण नहीं हो सकता। परन्तु माता इन सब से बड़ी है, जैसा कि—

यंमाता पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

हारीतस्मृति अध्याय ३ श्लोक ११ में भी यही उपदेश है कि इन तीनों की सेवा करने से सब देवता प्रसन्न होते हैं। शंखस्मृति अध्याय २ श्लोक ४ में लिखा है कि माता पिता और गुरु की सदा पूजा करे, जो इन तीनों का आदर सत्कार नहीं करता उसकी सब क्रिया निष्फल जाती हैं, जैसा कि—

माता पिता गुरुश्चैव पूजनीयस्सदा नृणाम्।
क्रियास्तस्याऽफलाः सर्वा यस्यैतेनादृतास्त्रयः॥

वनपर्व अ० २१४ में धर्मव्याध ने एक उत्तम ब्राह्मण को उपदेश किया है कि मैं माता, पिता को परम देवता समझता हूं। और इन्द्र के समान मैं इनका सम्मान करता हूं। गृहस्थ का परमधर्म यही है कि इनकी सेवा टहल करता रहे—यही शान्तिपर्व अ० ११६ में गौतम ऋषि ने यम से और अ०२१- में इन्द्र से प्रह्लाद ने, कुन्ती ने कर्ण से और श्रीरामचन्द्र से कौशिल्या ने कहा है कि माता पिता की आज्ञा मानना पुत्र का धर्म है।

श्रीकृष्ण महाराज ने श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अ० ४५ में कहा है कि माता पिता धर्म अर्थ काम मोक्ष देनेवाले शरीर को उत्पन्न करते हैं इसलिये सौ वष तक सेवा करने पर भी उद्धार नहीं, जो पुत्र समर्थ होने पर शरीर अथवा धन से माता पिता की सेवा नहीं करते उनको परलोक में यमदूत उनका मांस काट काट उसी को भोजन कराते हैं।

प्रियवरो ! इस पितृयज्ञ के दो भेद हैं -एक श्राद्ध, दूसरा तर्पण श्राद्ध अर्थात् श्रत् नाम सत्य का है "श्रत्सत्यं दधाति या क्रिया श्रद्धा श्रद्धया यत् क्रियते तच्छ्राद्धम् ।" जिस क्रिया से सत्यका ग्रहण किया जाय उसको श्रद्धा और जो श्रद्धा से किया जाय उसका नाम श्राद्ध है। और 'तृप्यन्ति तर्पयन्ति येन पितॄन तत्तर्पणम् ' जिस कर्म से तृप्त अर्थात् विद्यमान माता पितादि पितर तृप्त हों उसको तर्पण कहते हैं। सच तो यह है कि बालक और बालिकायें अपने माता पिता की सेवा और आज्ञा पालन कर पितृऋण से उद्धार पाते हैं। उनको सब प्रकार के आनन्द और सुख मिलते हैं अन्यथा प्रतिदिन क्लेशों ही में फँसे रहते हैं हे प्यारे बालको ! माता पिता कैसे ही क्यों न हों परन्तु उनकी सेवा टहल यथायोग्य करना तुम्हारा परम धर्म है। क्योंकि तुम्हारे माता पिता ही ने तुमको सर्वगुणालंकृत किया है, उन्हीं ने तुम्हारे अर्थ अपना तन मन धन लगा कर तुमको इस पद पर पहुंचाया है फिर तुम उनको विद्या आदि गुणहीन होने से तुच्छदृष्टि से देखते हो। धिक्कार तुम्हारे विद्यादि गुणों पर, क्योंकि यदि वह अपना आत्मावत् तुमको न जानते और न मानते तो तुम आज क्या इस पद पर होते ? नहीं, सच पूंछो तो ह सब उन्हीं का प्रभाव है। इसलिये तुम उनकी सेवा टहल सदा नम्रतापूर्वक करते रहो और धर्म सम्बन्धी आज्ञाओं को मानो। देखो प्राचीन समय में श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने अपनी सौतेली माता की आज्ञा मान धन सम्पत्ति राज्य त्यागन कर १४ वर्ष जङ्गल में व्यतीत किये, जहां उनको नाना भांति के क्लेश और दुःख उठाने पड़े परन्तु अपनी माता की आज्ञा को यथार्थ पालन किया। सचमुच वीरता, भाग्यशीलता के यही लक्षण हैं जिनके कारण श्रीमान का नाम इस जगत् में सदा ही बना रहेगा। परन्तु वर्त्तमान समय को देखिये कि जहां पुत्र को होश आया और बाहर भीतर आने जाने लगे और प्राणप्यारी के दर्शन हुए फिर तो हरदम तिउरी चढ़ी हुई बात सीधी करना कठिन हो गया। माता पिता प्रेमके कारण अपने प्राण

तक न्योछावर किये हुए फूले नहीं समाते, परन्तु उनको बात करना ही बुरा जान पड़ता है। प्रथम तो मुखारविन्द से बात करते ही नहीं यदि कुछ कहा भी तो उस समय इस प्रकार से वार्तालाप करते हैं मानों किसी सेवक को शिक्षा कर रहे हों। धन्य आपकी विद्या और बुद्धि को! क्या आपको वह समय स्मरण नहीं रहा जब माता अपने ही दूध से तुम्हारे प्राणों की रक्षा करती थी प्रत्येक समय छाती से लगाये रहती थी, सोने उठने बैठने खाने पीने का समय सदा स्मरण कर तुम्हारा पालन करती थी। हाय शोक कि उसी माता की बात तक नहीं सुहाती! धिक्कार है।

जब माता पिता की यह कुदशा है फिर गुरु और पाठक के ऊपर कृपा दृष्टि का क्या कहना। आप तो सदा प्राणप्यारी के साथ वा किसी और मित्र के सङ्ग प्रतिदिन हलुवा पूरी उड़ाते, पान चबाते, स्वच्छ वस्त्रों पर शयन करते, गर्मियों में खश की टट्टियां लगाते, नौकर चाकर सेवकाई में उपस्थित रहते, परन्तु माता पिता दो दो दानों को तरसते हैं, कोई यह भी नहीं पूछता कि तुम कौन हो? सचमुच उन्होंने ऐसा ही अपराध किया है। आप तो गर्मियों में आले का शरबत पीते हैं। परन्तु माता पिता को शीरा तक नहीं मिलता। प्रतिदिन स्वच्छ वस्त्र धारण किये इतर फुलेल लगाये हुए अपने मित्रों के साथ बाज़ारों में फिरते हैं परन्तु माता पिता मैले कुचैले कपड़े पहिने लज्जा के कारण घर ही में छिपे हुए बैठे रहते हैं और बाहर आने में लज्जित होते हैं कि कोई हमारी यह कुदशा देख हमारे पुत्र की निन्दा न करे! देखिये और विचारिये कि माता पिता इस दशा में भी प्रेम के वशीभूत हो पुत्र की निंदा कराना भला नहीं मानते, चाहे आप मर तक जायें। धन्य है २! मुख्य यह है कि वर्त्तमान समय में मिथ्या कार्यों में हज़ारों फूंक देते हैं, परन्तु माता पिता को फूटी कौड़ी देना मानों हलाहल पीना है। परमेश्वर जगत् का कर्त्ता हमारे प्यारों को सुबुद्ध दे और इस पाप से बचावे।

हे मेरे प्यारो! इस कथन से आपको अत्यन्त क्लेश हुआ होगा और मेरे लिये भी मन में कटु वचन उच्चारण करते होंगे, परन्तु यदि ध्यान लगा कर विचार करोगे तो मैं आपको सच्चा हितैषी जान पड़ूंगा क्योंकि मित्र वही है जो अपने मित्र के गुण को जान कर उनका यथार्थ प्रकाश कर शुभ गुणों के धारण करने के अर्थ प्रयत्न करे और वैरी वह है जो उसके अवगुणों को प्रकाश न करे इस लिये विचारपूर्वक माता पिता गुरु

इत्यादि की तनमन धन से सेवा टहल करो कि जिससे संसार में यश और सुख तथा परलोक में आनन्द प्राप्त हो, नहीं तो इसी पाप में आपको नाना भांति के क्लेश उठाने पड़ेंगे, संसार में अपयश होगा, परलोक में भी घोर नरक के दर्शन करने पड़ेंगे।

इसके उपरांत कनागतों में कैसा पानी देते हो और ब्राह्मणोंको नाना भांति के भोजनों से परिपूर्ण कर देते हो अर्थात् उत्तम से उत्तम वस्तु हलुवा पूरी, खस्ता कचौरी, दूधतपसी, मोहनभोग, लड्डू, पेड़े, भांति २ की तरकारियां, अचार, मुरब्बा, सोंठ, पापर इत्यादि खिलाते हो और कहते जाते हो कि महाराज जी दो पूरी और खा लीजिये और दूध पी लीजिये तो अच्छा हो, अब आप से मैं यह पूंछता हूं कि क्या अपने विद्यमान माता पिता की भी इस प्रकार सेवा टहल की थी? या मरने पर ही आपको प्रेम अधिक आ गया? यदि आप उनके रहते इस भांति आदर सत्कार करते तो क्या भारत का गारत हो जाता?

इसके उपरांत वर्षी चौबर्षी इत्यादि में कैसे पदार्थ ब्राह्मणों को देते हो, आगे, चलकर गयाजी का सामान करते हो, सौ दो सौ रुपये वहां इस प्रयोजन के अर्थ देते हो कि हमारे पिता इत्यादि वैकुण्ठ चले जावें और प्रेतयोनि से छूट जावें। हाय! कैसे शोक का स्थान है कि इन मिथ्या कामों के लिये तो आप तन मन धन सब अर्पण कर दो परन्तु जीते माता पिता के नाम एक कौड़ी देना भी कठिन हो जाता है। जैसा किसी ने कहा है—

जियत न देहौं कौरा, मरे, ढुलैहौं चौरा।
जियत पिता से जंगी जंगा, मरे पिता पहुंचावें गंगा।
जियत पिता की पूंछ न बात, मरे पिता को दाल और भात।

इस लिये जीते माता पिता आदि की यथावत् सेवा टहल करना योग्य है। देखो गीता के अनुसार जीव एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धर लेता है, फिर भला तुम जो नाना लीला रचकर हज़ारों रुपयों पर भी पानी फेर देते हो, कहीं यह भी सुना है कि हमारे पिता जी अमुक स्थान पर बैठे हैं, आप तो कभी रुपये की रसीद भी नहीं चाहते, वैसे तो एक रुपये के लिये अच्छे प्रकार लिखा पढ़ी करा लेते हो परन्तु यहां टस्स से मस्स भी नहीं करते!

प्यारे भाइयो ! जीते माता पिता की सेवा टहल का ही नाम श्राद्ध और तर्पण है, फिर भला ब्राह्मणों को भोजनादि का कराना और नाना भांति से द्रव्य भेट करना आदि श्राद्ध कहां से जाना ? यदि ऐसा ही मान लिया जावे तो विचारिये कि जब वह विद्यमान थे उस समय में वे रात्रि दिन में दो तीन बार भोजन करते और चार पांच दफ़े पानी भी पीते थे और अब मरने के पीछे उनको साल में एक बार भोजन करने और कनागतों में पन्द्रह दिन पानी पीने की आवश्यकता होती है, साल भर तक बिना भोजनों और पानी के व्यतीत कर देते हैं, भूंख प्यास नहीं लग सकती, भला यह आपने कैसे ठीक जान लिया और एक दिन के भोजन पर एक वर्ष भूंख न लगना कैसे माना ? इसके उपरन्त जब आवागमन ठीक है तो फिर मरे हुओं का श्राद्ध और तर्पण कैसा ? वह तो दूसरी जगह तुरन्त ही चले जाते हैं, इसके अतिरिक्त पितृ के अर्थ संस्कृत में पालन करनेवाले के हैं और आप पितृ से मरे हुए बाप दादे को समझते हैं।

देखिये पितृ शब्द निघण्टु ४ मं० १ में पिता पद आया है। पिता का बहुवचन पितरः है, निरुक्त ४ । ११ । में पिता पद के व्याख्यान में नीचे लिखा मन्त्र ऋग्वेद १ । १६४ । ३३ का प्रमाण दिया है।

द्यौर्मे पिता जनिता नाभिरत्र० इत्यादि।

फिर निरुक्तकार इसके अर्थ करते हुए पिता पद का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

पिता माता वा पालयित्वा वा।

अर्थात् पिता पालन वा रक्षा करने से कहा जाता है, ऐसा ही स्वामी जी ऋग्वेद भाष्य में लिखते हैं। तात्पर्य यह है कि रक्षा वा पालनेवाले जनकादि मनुष्य वर्ग राजा, सूर्य, चन्द्र किरणें वायु भेद जिसका राजा यम कहाता है इत्यादि रक्षकों और पालन करनेवालों का नाम पितर है। वेदों में बहुत स्थानों में पितरों को राजा लिखा है, जैसे मनुष्यों का राजा मनुष्य, मृगों का राजा मृगराज सिंह, औषधियों का राजा सोम नामक औषधि, ऋतुओं का राजा ऋतुराज बसन्त है, इसी प्रकार वायु भेद जो हमारे पालक हैं उनका राजा 'यम' वायु ही है।

इसके अतिरिक्त वेद की शिक्षा है कि प्रत्येक लिंग शरीर जीवात्मा स्थूल शरीर को छोड़कर आकाश में १२ दिन तक १२ आकाशी पदार्थों से (देव-

लप) होता है, तब इसे किसी लोक में कर्मानुसार जन्म मिलता है, हां जिन-का लिंग शरीर छूट जाता है उन पुरुषों की यह अवस्था नहीं होती।

हे मनुष्यो ? इस जीव को (प्रथमे) पहिले (अहन्) दिन (सविता) सूर्य (द्वितीय) दूसरे दिन (अग्नि) अग्नि तीसरे वायु, चौथे वा ५ वें दिन चन्द्रमा। छठे वसन्तादि ऋतु, सातवें मरुत आठवें सूत्रात्मा, नवें प्राण, दसवें उदान, ग्यारहवें विजुली, और बारहवें दिन सब दिव्य प्राण प्राप्त होते हैं।

इससे भी जाना जाता है कि सूर्य, अग्नि, वायु, चन्द्र, प्राण, उदान, विजुली और आकाशवत् अन्य सब दिव्य पदार्थों का (जो देवता कहाते हैं) हवन करने से सुधार होता है इसी को तृप्ति और अनुकूलता भी कहते हैं, इस से अग्नि में होम द्वारा पृथ्वी अन्तरिक्ष और भूलोक इन तीनों की शुद्धि बुद्धि और तृप्ति होने से आकाशवत् पितरों और वायु, (वायु विशेष) का भी उपकार सम्भव है। परन्तु मरण प्राप्त प्राणी किसी प्रकार परमात्मा की व्यवस्थानुकूल १२ दिन में भिन्न २ नियत पदार्थों को छोड़ अन्यत्र कहीं नहीं जा सकते और इसके अनन्तर स्थूल शरीर पाय, जन्म लेकर भी एक लोक से दूसरे लोक में नहीं जा आ सकते, इस लिये प्रचलित श्राद्ध दानादि कार्यों के पदार्थों की प्राप्ति ब्राह्मणों द्वारा पितरों को सर्वथा असम्भव है।

इस के लिये हम भविष्योत्तर पुराणान्तर्गत ऋषि पंचमी व्रतोद्यापन विधि में एक ब्राह्मण का किया श्राद्ध उसके माता पिता को जो उसी के घर में कर्मानुसार कुतिया और बैल की योनि पाकर रहते थे उनको नहीं पहुंचा, यह सब मूल और उसका हिन्दी अनुवाद मुरादाबादी पं० ब्रज रत्न (महर्षि कुमार भट्टाचार्य) के हिंदी अनुवाद से जो बम्बई गणपति कृष्ण जी के प्रेस में छपा है उससे लिखते हैं, देखिये विचार कीजिये।

अत्रार्थे यत्पुरा वृत्तं प्रवक्ष्यामि कथानकम्। पुरा कृतयुगे राजा विदर्भाया बभूव ह ॥१६॥ श्येनजिन्नाम राजर्षिश्चातुर्वर्ण्यानुपालकः। तस्यदेशेऽभ-वद्विप्रो वेदवेदांगपारगः ॥१७॥ सुमित्रो नाम राजेन्द्र सर्वभूतहितेरतः। कृषि-वृत्त्या सदायुक्तः कुटुम्बस्य पालकः ॥१८॥ तस्य भार्या सुसाध्वी च पतिशुश्रू-षणे रता। जयश्रीर्नाम विख्याता बहुभृत्य सुहृज्जना ॥१९॥ अविच्छिन्नतानि-तासा च प्रावृट्कालेसुपस्थया। क्षेत्रादिषुरता साध्वी व्याकुलाकृतमानसा ॥२०॥ एकदासात्मानः प्राप्तमृतु कालं व्यलोकयत्। रजस्वलापि साराजन्। गृहकर्म च-

का ह ॥२१॥ भाण्डादीन्यस्पृशद्रजस्त्रौ पापेऽविभाविनी कालेन बहुना साध्वी पंचत्वमगमत्तदा॥ २॥ तस्या भर्तापि विप्रोऽसौ कालधर्ममुपेयिवान्। एवं तौ दम्पतीराजन्! स्वकर्म वशगौ तदा ॥२३॥ भार्यानस्य जयश्रीः सा-कृनसंपर्कदोषतः शुनीयोनिमनुप्राप्ता सुमित्रोऽपि नरेश्वर! ॥२४॥ तस्याः सम्पर्क दोषेण बलीवर्दो बभूवह। एवं तौ दम्पतीराजन्! स्वकर्म वशगौ तदा ॥२५॥ ऋतुसम्पर्के दोषेण तिर्यग्योनिमुपागतौ। स्वधर्माचरणाज्जाता वुभौ जातिस्मरौ तथा ॥२६ सुतस्यैव गृहे राजन्! स्मरन्तौ पूर्व पातकम्। सुमित्रस्य च पुत्रोऽभूद् गुरुशुश्रूषणे रतः ॥२७॥ सुमतिर्नाम धर्मज्ञो देवताति-थिपूजकः। अथ तथाहे संप्राप्ते पितुस्तु सुमतिस्तदा ॥२८॥ भार्यां चन्द्रवतीं प्राह सुमतिः श्रद्धयान्वितः। अद्यसांवत्स दिन पितुर्मे चारुहासिनि! ॥२९॥ भोजनीया द्विजा भीरु! पाकसिद्धिर्विधीयताम्। तया कृता पाकसिद्धिः सुम-तेर्भर्तुराज्ञया ॥३०॥ मुक्तं पायसभाण्डे वै सर्पेण गरलं ततः। दृष्ट्वा ब्रह्मवधा-द्भीता शुनीं भाण्डादिसाऽस्पृशत् ॥ ३१ ॥ भार्या च तांदृष्ट्वा उल्मुकेन जघान ह। भाण्डादीनि च प्रक्षाल्य त्यक्त्व पाकं सुमध्यमा ॥३२॥ पुनः पाकश्च कृत्वा तु श्राद्धं कृत्वा विधानतः। ततो भुक्तेषु विप्रेषु नोच्छिष्टं च ददौवहिः ॥३३॥ भूमौक्षिप्तं तया शुन्या उपवासस्तदाभवत्। ततोरात्र्यां प्रवृत्तायां साशुनी क्षुधिता भृशम् ॥३४॥ बलीवर्दमुपागत्य भर्त्तारमिदमब्र-वीत्। बभुक्षिताद्य हे भर्ते न दत्तं भोजनादिकम् ॥३५॥ ग्रासादिकं च न प्राप्तं क्षुधामां बाधतेभृशम्। अन्यस्मिन्दिवसे पुत्रो मम लेहं ददात्यसौ ॥३६॥ अद्य मद्य किमप्येष उच्छिष्टमपि नाददौ। पायसान्ने पपानाद्य गरलं सर्प-सम्भवम् ॥३७॥ मयाविचिन्त्य मनसा परिष्यन्ति द्विजोत्तमाः। सम्पृष्टं पायसं गत्वा बद्ध्वाहं ताड़िता भृशम् ॥३८॥ दुःखितेन मे गात्रं कटिभग्न-करोमि किम्। ततः प्राह स चानड्वान् भद्रे ते पाप संग्रहात् ॥३९॥ किं करोमि ह्यशक्तोऽहं भारवाह त्वमागतः। अद्याहमात्मनः क्षेत्रेवाहितः सकलं दिनम् ॥४०॥ मारितश्चात्मजेनाहं मुखं बद्ध्वाबुभुक्षितः। वृथा श्राद्धंकृते न जाताद्य मम कष्टता ॥४१॥ कृष्णउवाच॥ तयोः संवदतोरेव माता पित्रोश्च भारत!। श्रुत्वा पुत्रस्तथा वाक्यं यदुक्तं च तदोभयोः ॥ ४२ ॥ पितरौ तौ विदित्वा तु दत्तवान्सुमतिस्तदा। तस्यां रजन्यां तत्कालं ददौ तस्यै च भोजनम् ॥ ४३ ॥

भाषार्थ—इसी बीच में जो प्राचीन कथा का वृत्तान्त है सो मैं कहता हूं, पहिले सत्युग में विदर्भ नागरी में चारों वर्णों को पालनेवाले राजाओं

में ऋषि के समान एक राजा श्येनजित् हुए थे, उनके देशमें अंगों सहित वेदों का जाननेवाला ॥१६, १७॥ सम्पूर्ण प्राणियों के हित का करनेवाला, खेती के कर्म से कुटुम्ब का पालन करनेवाला, एक सुमित्र नामक ब्राह्मण रहता था ॥१८॥ बड़ी पतिव्रता, पति की सेवा में तत्पर, अनेक भृत्य (नौकर) और कुटुम्बियों से युक्त जयश्री नामवाली उस ब्राह्मण की एक स्त्री थी ॥१६॥ एक समय वर्षाकाल में अत्यंत चिन्ता से युक्त सुन्दर कमरवाली खेत के काम में लगी हुई उस पतिव्रता का चित्त अत्यन्त व्याकुल हुआ ॥२०॥ एक समय उस स्त्री ने अपने ऋतुकाल को आता देखा और हे राजन् ! वह रजस्वला होकर भी घर के काम को करती रही ॥ २१ ॥ हे राजन् ! ऋतुकाल प्राप्त होने पर भी उसने भाण्डादिक सब छुये और वह स्त्री थोड़े ही समय में मृत्यु को प्राप्त हुई ॥२२॥ और उसका पति भी समयानुसार मृत्यु के वश हुआ । इस प्रकार वे दोनों स्त्री पुरुष अपने कर्मो के वश हुए ॥२३॥ उसकी वह स्त्री जयश्री ऋतु काल की संगति के दोष से कुतिया की योनि को प्राप्त हुई और हे राजन् ! वह सुमित्र ब्राह्मण भी ॥२४॥ उस स्त्री के संग के दोष से उस समय बलीवर्द (बैल) हुआ । हे राजन् ! तब वे दोनों स्त्री पुरुष इस प्रकार अपने कर्मों के वशीभूत हुए ॥२५॥ ऋतुकाल की संगति के दोष से वे दोनों पशु योनि को प्राप्त होकर अपने धर्म के प्रताप से अपने पूर्व जन्म को याद करते हुए ॥२६॥ हे राजन् ! उसी प्रकार अपने किये हुये पहिले पाप को भी याद करते हुए पुत्र के ही घर उत्पन्न हुए । गुरु की अत्यन्त शुश्रूषा करनेवाला, धर्म का जाननेवाला, देवता और अभ्यागतों की पूजा करनेवाला सुमति नाम सुमित्रा का पुत्र था, फिर पिता के क्षयाह के प्राप्त होने पर उस समय वह सुमति ॥२७, २८॥ श्रद्धा से युक्त होकर अपनी चन्द्रवती स्त्री से बोला कि हे मनोहर हास्य करनेवाली ! आज मेरे पिता की वर्षी का दिन है ॥२६॥ हे अधिक भय करनेवाली ! आज ब्राह्मणों को भोजन कराना उचित है, सो तू जाकर पाक (भोजन) तयार कर । अपने पति सुमति की आज्ञा से उस चन्द्रवती ने सब भोजन बनाये ॥३०॥ तदनन्तर खीर के पात्र में सर्प ने विष छोड़ दिया, उसको देखकर ब्राह्मणों के मरजाने के भय से खीर के पात्र को उस कुतिया ने छू दिया ॥३१॥ पात्र को छूती हुई उस कुतिया को देख कर उस ब्राह्मण की चन्द्रवती स्त्री ने उसे जलती लकड़ी से मारा और उस सुन्दर कमरवाली चन्द्रवती ने भोजन को छोड सब बर्त्तनों

को धोकर ॥३२॥ फिर दूसरा पाक बना कर विधि से श्राद्ध करके ब्राह्मणों के जीम जाने पर उसने ज़मीन में पड़ी हुई ब्राह्मणों की जूठन बाहर नहीं दी, तब वह कुत्ती भूखी ही रही, फिर रात होने पर अत्यन्त क्षुधा (भूख) लगी ॥३३ । ३४॥ तब अपने पति उस बलीवर्द के पास आकर वह बोली कि हे नाथ ! आज मैं बहुत भूखी हूं । किसीने मुझे भोजनादि कुछ भी नहीं दिया ॥३५॥ आज तो एक ग्रास तक भी मैंने नहीं पाया इस कारण भूख मुझे अधिक बाधती है । अन्य दिन तो यह हमारा पुत्र मुझे भोजन देता था ॥३६॥ आज तो इसने मुझे ज़रा जूंठन तक भी नहीं दी । आज खीर में सर्प का विष गिरगया था ॥३७॥ सो यह बड़े बड़े ब्राह्मण मर जायँगे ऐसा मैंने विचार कर जाके खीर को छू दिया, इस कारण बांधकर मुझे बहुत मारा ॥३८॥ उस मारने से मेरा शरीर बहुत दुःखित हुआ और मेरी कमर टूटगई, सो मैं क्या करूँ ? यह सुन कर वह बलीवर्द बोला, कि हे सुभगे ! तेरे पाप के संग्रह से ॥३९॥ मैं भी असक्त हूं सो क्या करूँ ? बोझ के उठाने को प्राप्त हूं, आज के दिन मैं अपने पुत्र के खेत में सारा दिन चलाया गया ॥४०॥ और इस मेरे पुत्र ने भूख प्राप्त हुए मेरे मुख को बांध कर मुझे बहुत मारा, इससे आज श्राद्ध वृथा ही किया क्योंकि मुझे तो आज बड़ा कष्ट हुआ ॥४१॥ इतनी कथा सुनाय श्रीकृष्णजी बोले हे युधिष्ठिर ! उन दोनों माता पिता के इस प्रकार कथन करते समय जो कुछ उन दोनों ने कहा उसको उनके पुत्र सुमति ने सुनकर अपने माता पिता जान कर उसी रात्रि में उसी समय अपने उन माता पिता को भोजन दिया ॥४२॥ इसलिये इस मिथ्या लीला को छोड़ जीते माता पिता का प्रतिदिन श्राद्ध और तर्पण कीजिये । इसके उपरान्त भला यह तो बतलाइये कि मरे हुए माता पिता आपका किस प्रकार पालन कर सकते हैं ? कैसे शोक का स्थान है कि जीते माता पिता जो हमारा सब प्रकार से पालन करते हैं उनको पितृवत् समझ कर नाना प्रकार के क्लेश देते हैं और मरने के पीछे पितृयज्ञ की आशा पर कठिन कठिन कार्य करते हैं और कुछ भी विचार नहीं करते । अब तो आप समझ गये होंगे कि पितर जीते ही माता पिता को कहते हैं और श्राद्ध तर्पण भी जीते माता पिता का सम्भव है और मरे हुओं का असम्भव तथा बुद्धि के विपरीत है । अब मेरे प्यारे भाइयो ! इसी प्रकार पिण्ड देना और एकादशाह करना महाब्राह्मण को माल असबाब इत्यादि देना, बर्षी चौबर्षी करना, गया जाना इत्यादि सब मिथ्या

और धोखे की टट्टी है। जैसा कि मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण और पिण्ड देना। शब्द के अर्थ शरीर के हैं और शरीर बनाना माता पिता का काम है, किसी और का नहीं और वह भी रीत्यानुसार, तो फिर जब माता पिता का काम पिण्ड देना है तो बड़े शोक की बात है कि लड़का बाप और मां के पिण्ड देता है और उसको अपने लिये योग्य समझता है और जानता है कि मैं उनके हक़ से अदा होगया, क्या इसका नाम बुद्धि है ? टुक तो विचार कीजिये कि आप अपने माता के कौन ठहरे, अपने ही जी में समझ जाइये मुझे कहते लाज आती है यदि कोई आपसे ऐसी बात कहे तो आशा है कि आप बहुत अप्रसन्न होवें परन्तु पिण्ड देने के समय बुद्धि से कुछ काम नहीं लेते। इसके उपरांत जब जीव दूसरे शरीर में चला गया तो फिर आपके पिण्ड देने की क्या आवश्यकता है, वह तो बिदून आपके पिण्ड दिये पिण्ड पाता है। अब वर्षी चौवर्षी पर दृष्टि डालिये, यह सब झूंठी बातें हैं क्योंकि जो जीव तुरन्त दूसरे शरीर में चला जाता है और एक पलमात्र भी नहीं ठहरता वह किस प्रकार से एक वर्ष तक ठहर सकता है कि जिसके लिये आप वर्षी चौवर्षी करते हैं। अब गया जाने के विषय में विचार कीजिये तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि वेदादि सत्यशास्त्रों में लिखा है कि जीव अपने कर्मानुकूल शरीर धारण करता है और अन्यत्र भी ऐसी ही लिखा है।

अब बतलाइये कि गया जाने से आपके माता पिता आदि क्या अपने कर्मों के फल से पृथक् हो सकते हैं ? कदापि नहीं, हां एकादशाह इत्यादि छोटे छोटे उस्तादों की उस्तादी है और यह बड़े उस्तादों के बड़े हथकँडे हैं। यदि गया जाने का फल ठीक है तो वेद और शास्त्रों में आवागमन झूंठ है, फिर मनुष्य के अच्छे कर्मों की क्या आवश्यकता है ? यह तो बहुत ही सहल गुटका हाथ आगया कि सौ दो सौ रुपये में पाप से छट जाता है। भाई टुक तो विचारो, क्या आप यहां बुद्धि से भी काम नहीं लेते ? और कामों में तो आप सब प्रमाणों की छान बीन करते हैं परन्तु यहां कुछ भी नहीं ? इसके उपरान्त गया के पंडे जो धन आपका लेते हैं वह सब मिथ्या कामों में व्यय कर पापभागी बनते है, यह सब पाप आपके सिर पर है देखिये इन कर्मों के करने से आपका धन व्यर्थ जाता है और परिश्रम भी होता है और पाप भागी भी बनना पड़ता है, फिर बुद्धिमान ऐसे कार्यों को क्यों कर करें जिसमें अन्त को कुछ लाभ न हो। इसी भांति 'कट्टहा' के देने

में पाप होता है क्योंकि यह कर्म वेद विरुद्ध होने से प्रामाणिक नहीं, तिस पर प्रसन्न होकर हाथ जोड़ अपने मरे हुओं को बैकुण्ठ जाने की आशा करते हैं मानों बैकुण्ठ का ठेका महाब्राह्मणों के हाथ में समझ लिया है और यह भी विचार न किया कि नरक स्वर्ग किसका नाम है और उसका दाता कौन है ?

सुनिये, संसार में वेदानुकूल फल मोक्ष प्राप्त करने ही का नाम बैकुण्ठ और उसके विरुद्ध ही नरक और दुःख। दुःख सुख के देनेवाले मनुष्य के कर्म हैं। अब बतलाइये कि 'कट्टहा' जी किस प्रकार से बैकुण्ठ को भेज सकते हैं कि जिसके लि नाना भांति से भेंट चढ़ाते हो। और जहां उसने प्रसन्न चित्त होकर आपकी पीठ पर हाथ फेर दिया और सुफल बोली उसी समय आप फूले नहीं समाते, मानों स्वर्ग में भेज ही दिया, क्या ही सोच की बात है।

प्यारे सज्जन जनों ! स्वर्ग और नरक कोई विशेष स्थान नहीं है, वरन् पूर्ण सुख का नाम स्वर्ग और विपरीत दशा को नरक कहते हैं जो कर्मानुकूल प्राप्त होते हैं, देखिये—

विष्णुपुराण अंश १ अध्याय ३ में लिखा है, धर्मात्माओं के लिये स्वर्ग पृथ्वी पर ही है ; चाणक्यनीति अध्याय २ श्लोक ३ में लिखा है कि जिसका पुत्र वश में रहता है, स्त्री इच्छानुसार चलती है, जो विभव में सन्तोष रखता है, उसका स्वर्ग यहां ही है।

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्याछन्दानुगामिनी।
विभवेयश्च सन्तुष्टस्तस्य स्वर्गइहैवहि॥

और अध्याय ६ में लिखा है कि जिस कार्य के करने से मन प्रसन्न हो और कोई निन्दा न करे उसी का नाम स्वर्ग है।

इसलिये स्वर्ग के सुख भोगने के लिये बाल्मीकीय रामायण अयोध्या कांड सर्ग १०९ श्लो० ३१ में रामचन्द्र जी ने कहा है कि सत्य, धर्म और प्राणियों के ऊपर दया, प्रिय वचन बोलना, ब्राह्मण देवता अतिथि की पूजा करना, पण्डित लोग इन्हीं को स्वर्ग में जाने का मार्ग बताते हैं।

मत्स्यपुराण अध्याय ३८ श्लोक २२ में राजा ययाति ने कहा है कि तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता और सब भूतों पर दया, ये सात बातें स्वर्ग के जाने के बड़े द्वार हैं।

तपश्च दानश्च शमो दमश्च ह्रीरार्जवंसर्वभूतानुकम्पा ।
स्वर्गस्य लोकस्य वदंति सन्तो द्वाराणि सप्तैव शुभानिपुंसाम् ॥

वामन पुराण अध्याय ६१ में ब्रह्मा ने कहा है कि पराई स्त्रियों में गमन, अति पापियों का उपसेवन, सब प्राणियों की निन्दा करनी यह प्रथम नरक है। फलों की चोरी और अग्रपाप, फल से हीन वृथा गमन और वृत्तों के समूह को काटना, यह दूसरा नरक है। वर्जित पदार्थों को ग्रहण करना, दुष्टता, और अध्याय अर्थात् विना मारने योग्य को मारना, बन्धन, विवाद और झूंठ का बोलना, यह तीसरा नरक है। सब प्राणियों को भय देना, धन का नाश, धर्वों का त्याग, यह चौथा नरक है। प्राणियों का मारना, मित्र से कुटिलता, झूठी शपथ खाना और मिष्ट पदार्थों को अकेला खाना, यह पांचवां नरक है। पुर का नाश, मिथ्या पत्र का बनाना, और विना अपराध के दण्ड देना, और योग का नाश करन, सवारी का पहिया वा जुआ आदि का चुराना, यह छठा नरक है। छिपाकर राजा के भाग को हरना, राजा की भार्या से भोग करना, राज्य में अहित करना, यह सातवां नरक है। लोभपन और चंचलता, और लम्पट धर्म धनको नाश करना, देव ब्राह्मण के द्रव्य को हरना और ब्राह्मणों की निन्दा करनी, बन्धुओं के साथ उग्र विरोध करना, यह आठवां नरक कहा है। शिष्टों के आचार का विनाश, औ शिष्ट पुरुष से वैर भाव, बालक को मारना, शास्त्र की चोरी, धर्म का नास यह नवां नरक है। राज्य सम्बन्धी छः अंगों का नाश करना, छः गुणों को प्रतिषेध करना, यह सत्पुरुषों ने दसवां नरक कहा है। सब काल में सत्पुरुषों में वैर करना, अनाचार निषिद्ध क्रिया और संस्कार से हीनपना, यह ग्यारहवां नरक कहा है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनका नाश करना बारहवां नरक कहा है। कृपणता, धर्म से हीनता, आग का लगाना, यह सत्पुरुषों ने निन्दित रूप तेरहवां नरक कहा है। अज्ञान और पराये गुणों में दोष का आरोपण करना, मलिनपना और अशुद्ध वाणी और झूठा वचन बोलना, यह चौदहवां नरक है। आलस्य, और विशेष कर क्रोध करना, और सबों के मारने में उद्यत रहना, और बसने योग्य स्थानों में आग लगाना पर स्त्री में इच्छा करनी, और सब जीवों में ईर्षा करनी, यह निन्दित व्रत पन्द्रहवां नरक है।

अब तो आपको प्रत्यक्ष प्रकट हो गया कि नरक दुःखों को और

स्वर्ग सुख को कहते हैं—इसलिये स्वर्ग और नरक का विशेष ज्ञान मनुष्य-जीवन में प्रतीत होता है और यही शरीर उसके प्राप्त करने का साधन है। इस कारण उत्तम कर्मों को कर इसी पृथ्वी पर जिस स्थान पर आप उत्पन्न हुए हैं वहां ही वेदोक्त कार्य को कर स्वर्ग के सुखों को भोगिये। देखिये चाणक्यनीति अ० २ श्लो० २ में इसका अच्छे प्रकार उत्तर दे दिया है, इसके उपरान्त अध्याय ७ श्लोक १६ में कहा है—

स्वर्गस्थितानामिहजीवलोके चत्वारि चिन्हानि वसन्ति देहे।

संसार में आने पर स्वर्गवासियों के शरीर में चार चिन्ह होते हैं—दान का स्वभाव, मीठा वचन, देव अर्थात् विद्वान् की पूजा और ब्राह्मणों को तृप्त करना। श्रीमद्भागवत् स्कन्ध ११ अ० ४६ में अक्रूरजी महाराज ने धृतराष्ट्र जी से कहा है कि जीव अकेला ही जन्मा लेता है, अकेला ही पाप पुण्य को भोगता है, जैसा—

एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते।
एकोनु भुंक्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥

इस से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि जिस मनुष्य ने अपने जीवन में धर्म का सञ्चय किया उसको अवश्य ही सुख मिलेगा, वरन् मरने पर अन्य सम्बन्धी किसी कार्य को कर उसको सुख नहीं पहुंचा सकते। इसके उपरान्त पौराणिक मतानुसार मां बाप के मरने के पश्चात् गया को जाते हैं और वहां श्राद्ध करते हैं तत्पश्चात् फिर श्राद्ध करने की आज्ञा नहीं है। इससे श्राद्ध नित्यकर्म नहीं हो सकता, परन्तु वेदादि सत्शास्त्रों में नित्य श्राद्ध करने की आज्ञा पाई जाती है। इसके उपरान्त जहाँ वस्तु और सुख का भोक्ता होता है वहीं सुख होता है, अन्यथा नहीं। जहां जल होता है प्यास वहीं शान्ति होती है जहां दीपक होता है वहीं उजाला होता है। फिर भला यदि आपने पुरुषाओं के सुख पहुंचाने के लिये ब्राह्मणों को भोजन भी कराये, तो क्या उनको सुख मिल सकता है? कदापि नहीं, क्या मैं खा कर आपकी तृप्ति कर सकता हूं? यदि ऐसा हो सकता है तो अति ही सुन्दर है, इससे हमारे परदेश में रहनेवालों को भोजनादि बनाने और खाने पीने का भी कष्ट दूर होना सम्भव था, परन्तु ऐसा नहीं होता। यदि मरों ही का श्राद्ध करना सनातन समझा जावे तो महाशय बतलाइये कि सृष्टि की आदि में जो ब्रह्मादि उत्पन्न हुए थे उन्होंने किसका श्राद्ध किया होगा?

दि इन असम्भव बातों को मान भी लें तो बतलाइये जो मरते हैं कहां जाते हैं ? यदि पृथ्वी पर जन्म लेते हैं तो श्राद्ध में बुलाते समय कैसे पहुंचते हैं ? यदि जीव ही श्राद्ध में जाते हैं तो जब तक वह वहां रहे उसका शरीर मरजाना चाहिये । परन्तु यह हमको दृष्टिगोचर नहीं होता । यह प्राणी अन्य ही लोक में उत्पन्न होते हैं तो पृथ्वी पर यह नये आत्मा कहां से आते हैं ? यदि आत्मा असंख्य माने जावें तो भी इस दशा में उनका अन्त होना सम्भव हुआ, क्योंकि जिस मनुष्य के पास धन हो और आमदनी कुछ भी न हो वरन् व्यय ही होता रहे तो कभी उसके धन का अन्त अवश्य होगा।

यदि जीवात्मा नया उत्पन्न होता है तो उसका शरीर के तुल्य मरना भी सम्भव होगा, फिर कर्मों का भोगनेवाला कौन रहा कि जिसको वेदादि शास्त्र पुकार पुकार कर कह रहे हैं, क्या यह सब झूठे हैं और धर्म अधर्म क्यों माना, क्या यह झूठे हैं ? नहीं नहीं नहीं, यदि जीवात्मा नया ही शरीर के साथ उत्पन्न हुआ तो उसको विशेष दुःख सुख क्यों हुआ क्योंकि वह पहिले कभी उत्पन्न नहीं हुआ था और बुरा भला कर्म भी नहीं किया था, यदि ऐसा माना जावेगा तो मनु आदि ऋषियों के वाक्य झूठे हो जावेंगे कि सत्वगुणी लोग देवता होते हैं, रजोगुणी मनुष्य और तमोगुणी पशु आदि योनियों में होते हैं। जैसा कि—

देवत्वं सात्विकायान्ति मनुष्यत्वञ्च राजसाः ।
तिर्यक्त्वं तामसा नित्यमित्येषा त्रिविधागतिः ॥

चाणक्यजी ने कहा है—

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी दरिद्रता च स्वजनेषुवैरम् ।
नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा चिन्हानि देहे नरकस्थितानाम् ॥

अत्यन्त कोप, कटु वचन, दरिद्रता, अपने जनों में वैर, नीच संग, कुलहीन की सेवा, यह नरकवासियों की देह में रहते हैं।

इसलिये हे मेरे भाइयो ! झूंठी और मिथ्या बातों को छोड़ कर जितना रुपया मरे पितरों के श्राद्ध और तर्पण में व्यय करते हो वह विद्यमान पितरों के आदर सत्कार में व्यय कर वेदोक्त आज्ञाओं को पूर्ण कर स्वर्ग के सुखों को भोगिये। बहुधा जन ऐसा कहते हैं कि राजा कर्ण जो बड़ा दानी था जब मरा तो मुक्त होकर स्वर्ग में पहुंचा, उसने रुपया और जवाहरात

बहुत यत से पुण्य किये परन्तु अन्न बहुत कम, इसी लिये उसके आगे स्वर्ग में सोने और जवाहर के ढेर लग गये, परन्तु भोजनों को कुछ नहीं, तब राजा साहब ने इसका वृत्तान्त पूछा तो जाना कि तूने अन्न बहुत कम पुण्य किया है, तब उन्होंने पन्द्रह दिन की और भी आज्ञा मांगी कि मैं जाकर अच्छे प्रकार दान कर लूं। यह प्रार्थना उसकी स्वीकृत हुई और उसने आकर पन्द्रह दिन तक अच्छे प्रकार के भोजन कराये, यहां तक कि उसको इतना छुटकारा न मिला कि बाल बनवाता, वस्त्र धुलवाता। देखना चाहिये कि मोक्ष सब दुःखों के छूटने को कहते हैं अर्थात् सदा परमानन्द में रहने का नाम मोक्ष है, फिर जब वह मुक्त हो गए फिर भी खाने का दुःख ही बना रहा और स्वर्ग के अर्थ ही नहीं समझे। इसके अतिरिक्त और भी विचार करो कि जब उसकी यह प्रार्थना स्वीकृत हुई तो बतलाइये राजा ऊपर से किस प्रकार से आया अर्थात् गर्भाधान की रीति से या ऊपर से गिर पड़ा? और आते समय उसकी अवस्था क्या थी, लड़कपन, तरुणाई वा बुढ़ापा? यदि कहो गर्भाधान के द्वारा उत्पन्न हुआ तो राज्याधिकारी होना कठिन है और इस कार्य के अर्थ बहुत समय की आवश्यकता है, क्योंकि ९ महीने गर्भ में रहना, फिर उत्पन्न होकर बड़ा होगा, तब ब्राह्मण खिलाने योग्य होगा। और उसको आज्ञा पंद्रह दिन तक रहने ही की थी? यदि कहो कि ऊपर से गिर पड़ा तो वह वार्त्ता सृष्टिक्रम के विपरीत है, न कभी ऐसा हुआ, न होगा। दूसरे यह कि जीव तो मुक्त होकर स्वर्ग को गया था और शरीर यहां जला दिया गया था तो बताओ वह जीव दूसरा शरीर धारण करके ऊपर से आया था, नहीं तो विना जीव संसार को पहचानना अत्यन्त कठिन है। इसके उपरांत कर्ण कलियुग के आदि में हुए हैं, इससे ज्ञात होता है कि दान देना तो उचित है वह किसी प्रकार से दिया जाय तो, हम कहते हैं दान देना अत्यन्त ही योग्य है, परन्तु जब लोग गपोड़े मारकर माता पिता आदि के नाम से धोखा देकर ठगई का बाज़ार गर्म करके लूटते चले जावें, यह पुण्य नहीं कहावेगा। इस लिये इस प्रकार कदापि पुण्य न करना चाहिये। इसके उपरान्त इन दिनों में वर्षा के अन्त होने से वायु बिगड़ जाती है और भोजनों में पूरी, कचौड़ी, घुइयां इत्यादि बराबर पन्द्रह दिन तक समय और कुसमय पर खाने में आती हैं, इस लिये विशेष कर हैज़ा आदि रोग उत्पन्न कर नाना भांति से दुःख देते हैं और अनेकान् यमपुर को भी चले जाते हैं, तो

बतलाइये कि इसका अपराध यजमानों के सिर पर है या ब्राह्मणों या पुरुषाओं या राजा कर्ण के ?

हे प्यारे सुजनों ! यह बातें मिथ्या हैं और स्वार्थियों ने अपने पेट भरने के लिये राजा कर्ण का नाम लेकर अपना प्रयोजन निकाला है। यदि राजा कर्ण की मोक्ष होगई तो फिर उनको किसी बात की भी कमी नहीं हुई तो नहीं मालूम कि उन्होंने किस प्रकार किस योनि में जन्म लिया ? यहां आवागमन चला आता है जो पन्द्रह दिन में यह सब होना असम्भव है। इस लिये राजा कर्ण से पहिले जैसे हमारे और आपके पुरुषे जिस रीति पर चलते थे उसी रीति अर्थात् वेदानुकूल ही चलना चाहिये, जैसा कि यजुर्वेद अ० २० मं० ३४ में।

ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिश्रुतम्।
स्वाधास्थ तर्पयत मे पितॄन्॥

ईश्वर आज्ञा देता है कि सब मनुष्यों को पुत्र और नौकर आदि को आज्ञा दे के कहना चाहिये कि हमारे पितर अर्थात् पिता माता आदि वा विद्या के देनेवाले प्रीति से सेवा करने योग्य हैं, जैसा कि उन्होंने बाल्यावस्था वा विद्या दान के समय हम और तुमको पाला है, वैसे ही हम लोगों को भी वे सब काल में उनका सत्कार करने योग्य हैं, जिससे हम लोगों के बीच से विद्या का नाश और कृतघ्नता आदि दोष कभी न प्राप्त हों।

इसके उपरांत गरुड़पुराण में लिखा है कि जीव एक अंगूठे के समान या प्रेत होकर भ्रमता रहता है और इसी लिये दस दिन तक एक २ पिंड आटे का इसको खिलाते हैं, दसवें दिन जब वह पिंड खाकर मोटा ताज़ा हो जाता है तब ग्यारहवें दिन एक बड़ा भारी पिंड जिसको सपिंडी कहते हैं, बनाते हैं फिर मन्त्रों के बल से उसमें प्रेत को बुलाते हैं, फिर एक कुश के तिनके से महाब्राह्मण सपिंडी के तीन बराबर भाग करता है और प्रत्येक भाग को ऊपर के पितरों में मिला देता है अर्थात् एक भाग को बाप में दूसरे को दादा में और तीसरे को परदादा में, इसी भांति स्त्रियों को, मानों एक प्रेतको काटकर तीन स्थानों में मिलाते हैं तब वह प्रेत से पितर हो जाते हैं। इसके उपरांत जानना चाहिये कि गरुड़पुराण में जो गरुड़ एक प्रकार का पक्षी है इसके और परमात्मा के प्रश्नोत्तर हैं और उस परब्रह्म ने गरुड़ से सब वृत्तान्त कहा है। अब आप तुक तो विचार कीजिये कि यदि ईश्वर को वर्णन

करना ही आवश्यक था तो क्या कोई मनुष्य इस योग्य न मिला कि जिससे सब वृत्तान्त कहते ? दूसरे गरुड़ से मनुष्य के मृतक संस्कार का हाल कहने से क्या लाभ ? यदि गरुड़ का हाल बताना ही था तो सांपों का बताना था कि अमुक स्थान पर सांप हैं और अमुक समय पर तुमको मिल सकते हैं तो आशा है कि वह अपना भक्षण पाकर प्रसन्न होता। यह मिथ्या और बुद्धि के विरुद्ध बातें हैं, केवल प्रत्येक प्रकार से अपना ही प्रयोजन निकाला है। मान्यवरो ! यदि आप मरे हुओं का श्राद्ध तर्पण मानेंगे तो बहुत सी शंकायें इस विषय में ऐसी उत्पन्न होंगी कि जिनका समाधान होना बिल्कुल असम्भव हो जायगा। प्रथम तनिक ध्यान दीजिये कि श्राद्ध क्यों किया जाता है ? तो ज्ञात होता है कि अपने २ पुरुषाओं को आराम देने के अर्थ। क्या महाशय ! आप किसी प्रकार अपने मरे हुए पुरुषाओं को आराम पहुंचा सकते हैं ? कभी नहीं क्योंकि वेदादि सत्य शास्त्र पुकार २ कर कह रहे हैं कि मनुष्यों को अपने ही किये हुए कर्मों का फल मिलता है, मरने पर माता पिता पुत्रादि कुछ नहीं कर सकते। देखिये, य० अ० २ मं २८ में लिखा है—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकम्।
तन्मेराधीदमहं य एवास्मि सास्मि ॥

जैसा प्राणिमात्र कर्म करते हैं वैसे ही फल को पाते हैं, प्राणी मात्र अपने कर्म के विरुद्ध फल को कभी नहीं प्राप्त होते इस लिये सुख भोगने के लिये धर्मयुक्त कार्यों को करे जिससे कभी दुःख न हो। और मनु० अ० ४ श्लोक २३८ में भी ऐसा ही लिखा है, जैसा कि—

नामुत्रहि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः।
न पुत्र दारं न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ॥

प्रत्यक्ष भी जान पड़ता है कि जो मनुष्य भोजन करता है उसी की भूख जाती है और जो औषधि पान करता है उसी का रोग नाश होता है, इसके अतिरिक्त कभी दृष्टिगोचर नहीं हुआ, फिर भला आपके कर्म आपके पुरुषाओं को क्योंकर आराम पहुंचा सकते हैं ? तुलसीदास ने भी कहा है—

कर्म प्रधान विश्व कर राखा जो जस करै सो तस फल चाखा।

क्या कोई कार्य संसार में ईश्वरीय नियम के विरुद्ध भी हो सकता है ?

कदापि नहीं । गीता में श्रीकृष्ण महाराज ने कहा है धर्मयुक्त कार्य करने से किसी की दुर्गति नहीं होती । महाभारत में लिखा है एक ही मनुष्य पाप करता है वही भोगता है । श्रीमद्भागवत् स्कन्ध १० अ० २४ पूर्वार्द्ध श्लोक १४ में लिखा है कि कर्म का फल कर्त्ता ही को मिलता है, अन्य को नहीं ।

इन उपरोक्त बातों से सिद्ध हुआ कि मरों का श्राद्ध करना वेद और बुद्धि के विपरीत है, इस लिये इसका कारण यही जान पड़ता है कि पहले समय में मनुष्य विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण और अपने पुरुषाओं को भोजनादि से तृप्त करते थे परन्तु जब ब्राह्मणों ने अपने कर्म धर्मों को त्याग दिया और अविद्यारूपी अन्धकार छा गया तो इन्होंने जाना कि अब हमारा श्राद्ध (अर्थात् सेवा सत्कार) न होगा, इस लिये उन्होंने यह परिपाटी चलाई होगी कि जो तुम हमको खिलाओगे तो तुम्हारे बाप दादे को मिलेगा, क्योंकि संसार में प्रत्येक मनुष्य अपने लिये मांगना बहुत बुरा मानता है ।

प्यारे भाइयो ! इन सब बातों से सिद्ध होता है कि जीते माता पिता की सेवा टहल ही का नाम श्राद्ध और तर्पण है, फिर भला ब्राह्मणों को खिलाने गयादि जाने और महाब्राह्मण (कट्टहा) के देने से क्या लाभ हो सकता है ? वरन् पाप ही होता है क्योंकि उपरोक्त जन इस प्रकार पाये हुए धन को बुरे कर्मों में व्यय करते हैं जिनका पाप दाता ही के सिर होता है । इसके अतिरिक्त इन कर्मों के करने से सत्यग्रन्थों की आज्ञायें भंग होती हैं, देखिये श्रीमद्भागवत् स्कन्ध १० पूर्वार्द्ध अध्याय १ श्लोक ३६, ४० में लिखा है कि जिस समय शरीर का अन्त होता है उस समय जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार परवश हो, देह को प्राप्त हो, पूर्व देह को त्यागता है जैसे चलते समय मनुष्य अगले पांव को धर लेता है तब पिछले पांव को उठाता है और जोंक भी इसी भाँति अगले तृण पकड़ कर पिछले को छोड़ती है उसी भांति जीवात्मा, जैसा कि—

देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ।
देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥
व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ।
यथा तृणजलौकेवं देही कर्मगतिं गतः ॥

फिर आपकी बर्षी चौबर्षी और कनागत में धनादि व्यय करने से क्या लाभ? पाठकगणों! कैसे अन्याय की बात है कि आप केवल अपने मा बाप दादा दादी के अर्थ तो कनागतों में ब्राह्मणों को नाना प्रकार के उत्तम २ भोजन खिलाते हैं और उनके बाप दादों आदि का ध्यान नहीं करते, क्या वह आपके पूज्य नहीं थे? क्या आप उनके वंश में नहीं हैं? क्या यह आपके बाप दादों को प्रिय हो सकता है? जब कि उनके माता पिता उनके सन्मुख भूखे बैठे रहें जिनको वह भोजन कराकर आप भोजन करते थे। मान्यवरो! क्या यह बातें आपके धर्मशास्त्रों पर धब्बा नहीं लगातीं? अवश्य ही यह विषय वेदादि ग्रन्थों में नहीं है हां वेदों का वचन है कि मनुष्य को अपने माता पिता दादा दादी परदादा परदादी की धन्यवाद पूर्वक आयु पर्यन्त नित्यप्रति सेवा करनी चाहिये, क्योंकि इस असार संसार में सम्भव नहीं है कि कोई मनुष्य अपने दादे के पिता की भी सेवा कर सके, इस लिये विद्यमान माता पिता आदि का शिष्टाचार नम्रतापूर्वक करना योग्य है। क्योंकि शिष्टाचार मनुष्यों को सत् स्वभाव का दर्पण स्वरूप निर्मल और प्रशान्त नदी के तट पर वृक्षलतादिकों का प्रतिबिम्ब जिस प्रकार परिलक्षित होता है इसी प्रकार बोल चाल आचार व्यवहार के देखने से भीतरी भाव का अनुभव होता है, चाहे कोई किसी अवस्था में क्यों न हो शिष्टाचार के द्वारा अवश्य वे प्रशंसा लाभ कर सकते हैं क्योंकि मधुर वचन के बोलने से सम्पूर्ण जीव सन्तुष्ट होते हैं, जैसा कि कहा है—

मधुर वचन से जात मिट, उत्तम जन अभिमान।
तनक शीत जल सों मिटै, जैसे दूध उफान॥

इस कारण जो कोई इसका त्याग करता है मानो वह अपनी जड़ आप काटता है, क्योंकि वह ऐसा मन्त्र है कि जिसके धारण करने से सब जीव वश में हो जाते हैं। देखिये जो शिष्टाचार सहित प्रिय वचन बोलते हैं वह बड़ी २ आपदाओं को सुगमता से टाल देते हैं और जिन पुरुषों में यह शक्ति होती है वही देश का नाना भांति से उपकार कर सकते हैं, क्योंकि शीतलता से कार्य सिद्ध होते हैं, इसी के द्वारा सहस्रों जनों को अपना बना, राज्य कर लेते हैं। यह वह पदार्थ है कि जिससे सिंह से घातक जीव आधीन हो जाते हैं, शत्रु के मन में शीतलता दया आ जाती है, सच पूछो तो वशीकरण मन्त्र यही है, जैसा कि कहा है—

तुलसी मीठे वचन स, सुख उपजत चहुं ओर।
वशीकरण यह मंत्र है, तज देउ वचन कठोर ॥

प्यारे भाइयो! जो संसार में सुख की इच्छा हो तो कदापि कटु वचन और व्यङ्ग शब्द न उच्चारण करो यह विदेश मे भी अपमान करता है और विदुरजी ने भी कहा है कि सुन्दर वाणी के बोलने से संसार में अनेकान सुख मिलते हैं। देखो श्रीरामचन्द्रजी ने अपने मधुर और शीतल वचनों से परशुराम के क्रोध को ऐसा शान्त किया कि वह मारने के पलटे आशीर्वाद देकर वन को चले गये?

सत्य तो यह है कि जिन मनुष्यों में यह शक्ति है वही यथार्थ मनुष्य हैं, वह अपने सेवकों और टहलुओं से भी ऐसा काम ले सकते हैं कि अन्य की सामर्थ्य नहीं हो सकती, इसके अतिरिक्त राजाओं में प्रतिष्ठा मिलती है, सामान्य जन उनका सत्कार करते हैं।

इस लिये सर्वशास्त्र और बुद्धिमानों की यही शिक्षा है कि अपने बड़ों का शिष्टाचार नम्रतापूर्वक प्रिय वाक्यों से करे क्योंकि इसी से सर्वजीवों को आनन्द प्राप्त होता है, जैसा चाणक्य ऋषि ने कहा है—

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता ॥

इस लिये माता पिता के उपरांत मामा, चाचा, श्वसुर, ऋत्विज और गुरु को जो अपनी अवस्था से छोटे भी हों तो भी उनको शिष्टता से युक्त अभिवादन (नमस्ते) करना योग्य है।

नमस्ते

शोक है कि वर्त्तमान समय में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने के कारण देष-भाषा के शब्द प्रतिदिन छूटते जाते हैं और दूसरी भाषा के शब्द प्रसन्नचित्त होकर बोलते और अनेकान् पुरुष कुछ का कुछ अर्थ समझा देते हैं कि जिसके कारण बहुधा हानि हो रही है 'नमस्ते' शब्द की दुर्दशा कर दी है।

प्यारे सुजनो! 'नमस्ते' यह शब्द यौगिक है, 'नम+ते' 'नमः' का अर्थ

झुकना, नवना, मान करना, सत्कार करना। 'ते' युष्मद् शब्द की चौथी विभक्ति है, जिसके अर्थ तुमको तुम्हारे लिये। जब यह दोनों शब्द मिलते हैं तो व्याकरण-रीति से नमः के विसर्ग का 'स' हो जाने से 'नमस्ते' वाक्य बन जाता है, जिसका अर्थ है कि आपके सम्मुख झुकता हूं, आपका मान करता हूं, बड़ा समझता हूं, इत्यादि। मुख्य अभिप्राय छोटों को बड़ों का शिष्टाचार करने का है और शिष्टाचार के अर्थ सत्कार के हैं। जैसा कि बड़ों के आने पर उठकर खड़ा होना, शिर झुकाना वा शिर नवाना अर्थात् 'नमस्ते' करना, ऊंचे स्थान पर बिठाना, प्रियभाषण करना आदि शिष्टाचार कहलाता है, जैसा वर्तमान समय में प्रचलित है अर्थात् जब कोई मनुष्य छोटे के स्थान पर जाता है वा अन्य स्थान पर मिलता है तो नवता है और नाना भांति से आदर सत्कार करता है। आज कल जो नमस्ते कहना अच्छा नहीं जानते परन्तु उसके अर्थों पर प्रतिदिन चलते हैं उसी का कारण अविद्या ही है।

पौराणिक महाशय कहते हैं कि गद्य में तव को ते आदेश नहीं होता किन्तु पद्य में ही-तथा-' आशास्त्वावतुमापीह।' अच्छा जब पद्य में ही ते आदेश होता है तो सिद्धान्तकौमुदीकार ने-'शालीनां ते ओदनं दास्यामि' यहाँ गद्य में तव को ते आदेश क्यों किया? कारण यह है कि पौराणिक महाशयों ने भली भाँति सिद्धान्तकौमुदी को नहीं देखा, उसमें स्पष्ट 'समान वाक्ये निघातयुष्मदस्मदादेशा वक्तव्याः' 'अपि च एतेवांनावादयो अन्वादेशे वावक्तव्याः' इन दोनों वार्त्तिकों से कार्य किया है और 'सुप्तिङन्तपदम् १-४-१४ के सूत्र से सुबन्त की और तिङन्त दोनों पद संज्ञा है, अतएव यह कहना कि पद्य में पद्य सम्बन्धी कार्य नहीं तो केवल साहसमात्र है। नमस्ते तो 'पदात्' ८, ११७ से तो सर्वथा सुगमता से ही सिद्ध है।

दूसरे यह कहना कि (मेरे लिये) ऐसा अर्थ कहने से बड़ों का अनादर होता है तो क्या प्राचीनकाल के सब ऋषि अपने से बड़ों का अनादर ही करते थे, नहीं नहीं, वे सब आदर वा प्यार से 'त्वं, 'ते' आदि शब्दों का प्रयोग करते थे। देखिये, कठोपनिषद् में नचिकेता यम से कहता है—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किलत्वंच मृत्योयन्नसुविज्ञेयमात्थ वक्ताचास्य त्वादृगन्यो नलभ्यो नान्योवरस्तुल्य एतस्यक-

श्चित् पुनः न वित्ते न तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तम द्राक्ष्म चेत्वा। जीविष्यामोयावदीशिष्व सित्वं वरस्तुमे वरणीयः स एव।

इन श्लोकों में स्पष्टरूप से 'त्वम्' 'त्वादृग्' 'त्वा' इत्यादि शब्द पड़े हैं और ऐसे वाल्मीकीय में यह पेत्व समर्थोऽपि, 'स्वागतं ते महामुने, किंनते 'परमकाम्यम्, प्रश्नोपनिषद् में 'तं त्वा पृच्छामि, 'ततमर्चयन्त त्वं, इत्यादि बहुत स्थान पर तू तुम का प्रयोग किया है। इससे पौराणिक का कथन महामिथ्या प्रतीत होता है।

इसके उपरांत स्वार्थीजनों ने नमस्ते, के अर्थ इस प्रकार सुना दिये हैं कि 'मस्ते, माथे अर्थात् मस्तक को कहते हैं, न निषेध का चिन्ह है, अर्थात् नमस्ते के अर्थ 'बे सिर, के हैं, हा शोक! ३।

प्यारे सुजनो! यह संस्कृत विद्या के त्यागने ही का कारण है। यदि हम व्याकरण जानते तो पण्डित जी के ऐसे अनगढ़ बे जोड़ अर्थ को न सुनते, परन्तु सत्य छिपाये से भी नहीं छिपता। यदि आप कुछ भी बुद्धि से विचारें तो स्पष्ट सिद्ध हो जावेगा कि नमस्ते के अर्थ बे सिर के नहीं है क्योंकि बहुधा ग्रन्थों में नमस्ते पद आया है, जिन पुस्तकों का प्रायः नित्यप्रति पाठ करते वा उनकी कथा सुना करते हैं, तिस पर भी यह अन्धेर! देखिये—

विष्णुसहस्रनाम श्लो० १३४, १३५ में लिखा है—

वासनाद्वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयं। सर्व भूता निवासाना वासुदेव नमस्तुते॥१३४॥नमोब्रह्मण्य देवाय गोब्राह्मणहिताय च। जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमोनमः॥ १३५॥

और भी लिखा है—

ओं नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः

नमः कमलनाभाय नमस्ते जलशायिने!

नमस्ते केशवानन्त वासुदेव नमोस्तुते!

पार्थिव-पूजन में लिखा है—

नमस्ते भगवन् रुद्र देवाय रमानां पतये नमः।
सर्वोपासितरूपाय सुरासुर पतये नमः॥

श्रीमद्भागवत में नमः, नमो, नमस्ते पद आया है। और पाण्डव गीता में लिखा है कि 'गोविन्द गोविन्द नमोनमस्ते।'

या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धा रूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः॥

देवीभागवत् में लिखा है—

नमस्ते शरण्ये शिवे सानुकम्पे नमस्ते जगद्व्यापिके चित्स्वरूपे। नमस्ते सदानन्दरूपे नमस्ते जगत् तारिणि त्राहि दुर्गे नमस्ते॥

सारस्वत सूत्र २८५ में लिखा है—

नमस्ते भगवन्भूयो देहि मे मोक्षमव्ययम्।

सत्यनारायण में लिखा है—

नमस्ते वाङ्मनोतीतरूपायानन्तशक्तये।
आदि मध्यान्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने॥

दुर्गापाठ के ५ अ० के श्लोक १६ से लेकर ७६ तक अनेक स्थनों पर नमस्ते शब्द आया है। शिवपुराण उत्तरखण्ड अ० १४ श्लोक २४, २८, २६

तवाववोधो भगवन भूतानामुदयाय च प्रलयाय भवेंद्रार्चिर्नमस्ते कालरूपिणे॥२४॥ जगदीशस्त्वमेवासि त्वतो नास्तीव ईश्वरः जगदादिरनादिस्त्वं नमस्ते स्वात्मवेदिने॥२८॥ नमस्समुद्ररूपाय सद्या वकठिनाय च। स्थूलायजुरुवेतुभ्यं रूपात्मायलघवे नमः॥२६॥

इसी भांति और और पुस्तकों में भी यह शब्द पाया जाता है। अब तो स्पष्ट प्रकट होगया होगा कि नमस्ते के अर्थ 'बेसिर' के नहीं हैं। और भी सुनिये कि आजकल के पण्डित और अनपढ़ ब्राह्मण जब आपस में मिलते तो नमस्कार करते हैं। जो इसी नमस्ते शब्द का अपभ्रंश स्वरूप है।

क्या इसके भी बेसिरवाले के अर्थ हैं ? कदापि नहीं, कदापि नहीं, कदापि नहीं। हां इतना अन्तर अवश्य है कि 'नमस्कार' ब्राह्मणों ने इस समय अपने लिये बना लिया है और अन्य वर्ण के लिये 'राम राम' बता दी है। इसी कारण 'नमस्ते' के अर्थ उलटे समझते हैं, धन्य पण्डितजी ! आपने तो वेदमन्त्रों के 'नमस्ते' पद का अर्थ पलट दिया। क्यों न हो, पंडिताई तो इसी का नाम है ! देखिये वेद में लिखा है—

नमस्ते अस्तु विद्युते नमस्ते स्तनयित्नवे। य० अ० १६ मं० २१

नमस्ते भगवन्नस्तु यतः स्वः समीहसे ॥

नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इति ॥ य० अ० १६ मं० १

नमस्ते आयुधायानाततायेति ॥ य० अ० १६ मं० १४

नमः कपर्दिनेचव्युप्तकेशाय चेति ॥ य० अ० १६ मं० २१

भ्रातृगणों ! वैद्यकग्रन्थ के कर्ता वाग्भट्टाजी ने इस विद्या के पूर्व आचार्यों को नमस्ते किया है। देखो सूत्रस्थान श्लोक २—'नमोस्तु'—

क्या यहां भी 'नमस्ते' के अर्थ बेसिर के हैं ? कदापि नहीं।

प्रिय सज्जन पुरुषों ! उपरोक्त कथन से प्रत्यक्ष प्रकट हो गया कि अनादि काल से नमस्ते पद चला आता है, यही कारण है कि प्राचीन पुरुष मिलने के समय नमः, नमस्ते करते थे, देखो श्रीमद्भागवत स्कन्ध १ अध्याय ४६ श्लोक १३ में कुन्ती ने श्रीकृष्ण महाराज को (नमः) अर्थात् नमस्ते किया--

नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥

ऐसा ही प्रश्नोपनिषद् अध्याय ६ श्लोक ८ में पिप्पलादि ऋषियों को सुकेशादि ऋषियों ने (नमः) ही पद उच्चारण किया है श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय ५२ श्रीकृष्ण महाराज ने उत्तम ब्राह्मणों को 'नमस्ते' किया है।

विप्रन् स्वलाभसन्तुष्टान् साधून् भूतसुहृत्तमान्।

निरहंकारिणः शान्तान् नमस्ते सिरसाऽसकृत् ॥

कर्मविपाक ग्रन्थारम्भ श्लोक १० अ० १ में लिखा है कि शिष्य आचार्य के लिये नमः अर्थात् नमस्ते करे।

प्रजापते महाबाहो वेद वेदांग पारग ।
पुत्रकामससमृद्धर्थं पूजांगृहणाप्वते नमः ।

देखो वृहदारण्यक उपनिषद में लिखा है कि राजा जनक ने आसन से उठकर याज्ञवल्क्य को नमस्ते कर कहा है कि हे भगवन ! मेरे को पढ़ाओ।

जनको ह वैदेहः कूर्च्चादुपापसर्पन्नुवाच नमस्ते ।
याज्ञवल्क्यानुमाशाधीति वृ० अ० ६ ब्र० २ ॥

गीता अध्याय ११ श्लोक ३६ से स्पष्ट प्रकट होता है कि अर्जुन ने श्रीकृष्ण महाराज को नमस्ते किया था ।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च ।
नमोनमस्तेऽस्तु सहस्रकत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमोनमस्ते ॥३८॥

वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड सर्ग ५० श्लोक १७ में लिखा है—

सर्वथा च महाप्राज्ञः पूजोर्हणसुपूजितः ।
नमस्तेस्तु गमिष्यामि मैत्रेणत्वचक्षुषा ॥

अर्थात् विश्वामित्र जी वसिष्ठ जी से बोले कि हे महाप्राज्ञ ! आप मेरे पूजनीय हैं, मेरा जैसा आदर होना चाहिये वैसा आपने, किया अब मैं आपको 'नमस्ते' अभिवादन करके जाता हूं, मुझ पर कृपादृष्टि रखिये ।

प्यारे सुजनो ! जब हमारे प्राचीन पुरुष नमस्ते करते थे, फिर हमको क्या सन्देह ! क्योंकि इतर जनों को वही कर्म करने चाहियें जिनको श्रेष्ठ पुरुषों ने किया हो । यही सत्य शास्त्रों की आज्ञा है । इसके उपरान्त सीता महारानी ने बिराध नाम राक्षस से कहा कि हे राक्षसों में उत्तम ! मैं तुमको नमस्ते करती हूं, मुझे इस वन में शार्दूल और रीछ खा जांयगे, तू मुझ को हर ले और राम लक्ष्मण को छोड़ दे ! देखो वाल्मीकि रामायण आरण्यकाण्ड सर्ग ४ श्लोक ३—

मामृक्षा भक्षयिष्यन्ति शार्दूलद्वीपिनस्तथा ।
मांहरोत्सृज काकुत्स्थं नमस्ते राक्षसोत्तम ॥

और अथर्व वेद १० । १० । १ में भी स्त्री के प्रति नमः पद आया है जैसा 'नमस्ते जायमानाय जाताये उतते नमः ।' और अथर्व वेद ६ । ५६ ।

२ में पुत्र के प्रति नमः शब्द आया है अर्थात् पिता पुत्र के लिये नमः शब्द का प्रयोग करे। जैसा—

नमस्त्वसिताय नमति राष्ट्र राजये।
स्व जाय बभ्रवे नमो नमो देव जनेभ्यः॥

इसके उपरान्त य० अ० १६ म० २६ में वरहा कुम्हार, खड्ग, बन्दूक और तोप आदि के बनानेवाले, निषाद वनादि पर्वत के रहनेवाले कुत्तों की शिक्षा देनेवालों को नमः करने की आज्ञा है तो फिर हम सबको आपस में नमस्ते करना क्या अनुचित है? और हम राम राम कहने को बुरा नहीं समझते, क्योंकि जो सब में रमा हो उसको राम कहते हैं और इस कारण राम नाम परमेश्वर का है, इसका स्मरण रखना अच्छा भी है। परन्तु शिष्टाचार के समय राम राम कहने से आदर सत्कार का कोई अर्थ नहीं निकलता, इसलिये प्रत्येक शब्द के अर्थ को समयानुकूल बोलना सभ्यता का काम है, अन्यथा यह लक्षण मूर्खों का ही है। इसके उपरान्त जब हम किसी ब्राह्मण वा पंडित से मिलें तो कहते हैं कि महाराज पालागें, अर्थात् मैं पैर छूता हूं वा पांव पकड़ता हूं, तब वह उत्तर देते हैं, कि प्रसन्न रहो, आनन्द रहो। और जब वह आपस में मिलें तो एक दूसरे से कहते हैं 'नमस्कार।' कैसे शोक की बात है कि जब हम आपस में अपने बड़ों से मिलें तो उनका शिष्टाचार न करें और परमेश्वर का स्मरण करें, यह हमारे पूज्य ब्राह्मण जब आपस में मिलें तो दूसरे का शिष्टाचार करें। क्या अपने लिये राम राम उत्तम पद का स्मरण करना उत्तम नहीं समझते? इसी स्वार्थ ने तो देश को साफ़ कर दिया। इसलिये मान्यवरो! अब इन उपरोक्त बातों को स्मरण कर शिष्टाचार के समय प्रत्येक स्त्री पुरुषों को नमस्ते शब्द का प्रचार करना अभीष्ट है क्योंकि परमात्मा वेद में हमको आज्ञा देते हैं।

यजुर्वेद अ० १६ मन्त्र ३२ में लिखा है कि जब परस्पर मिलते समय सत्कार करना हो तब 'नमस्ते' इस वाक्य का उच्चारण करके छोटे बड़ों, बड़ों छोटों, नीच उत्तमों, उत्तम नीचों और क्षत्रियादि ब्राह्मणादिकों वा ब्राह्मणादि क्षत्रियादिकों का निरन्तर सत्कार करें, जैसा कि—

नमो ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजाय चापरजाय च
नमो मध्यमाय चापगल्भाय च नमो जघन्याय च बुध्न्याय च

नमः ज्येष्ठाय च कनिष्ठाय च नमः पूर्वजायेनि पूर्वऽजाय च अपर जायेत्यपरऽजाय च नमः मध्यमाय च अपगल्भायत्यपगल्भाय च नमः जघन्याय च बुध्न्याय च ॥

इसके उपरान्त मौसी, सास, फूफी, भी गुरु की स्त्री के समान है, इसलिये उनकी भी सेवा टहल गुरु जी की भाँति करना चाहिये और फूफी और बड़ी मौसी को माता के तुल्य समझना उचित है, शिष्टाचार करने के समय और अन्य स्थानों पर भी शील को न त्यागना चाहिये। देखिये, मनुजी ने लिखा है कि जो मनुष्य सदा नम्रतायुक्त शील सहित प्रतिदिन विद्वान् और वृद्धों को अभिवादन और उनकी सेवा करते हैं उनकी आयु, विद्या, कीर्ति और बल ये चार पदार्थ बढ़ते हैं, जैसा कि—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥

फिर भला ऐसी सेवा से उपरोक्त फल मिलते हैं कि जिनका प्रत्यक्ष प्रमाण भी है तो कैसे शोक और पश्चात्ताप का स्थान है कि किसी प्रकार के घमण्ड में आदर शिष्टाचार को त्याग अप्रिय, कठोर और असत्य वचन बोल कर चारों पदार्थों को खो दें?

इन बातों के उपरांत यह भी स्मरण रखना योग्य है कि जिस आसन पर बड़े मनुष्य बैठे हों उस पर आप न बैठे, यदि आप आसन पर बैठा हो तो उठ कर आसन छोड़ कर उनको प्रणाम करे और स्थान दे, और कभी ऐसे परोपकारी सज्जन पुरुषों के सम्मुख पैर फैला कर अथवा सहारा देकर न बैठे और न प्रश्न के अतिरिक्त अधिक उत्तर दे, और उनके पीछे गमन, भाषणादि की नक़ल न करे।

बलिवैश्वदेव

यह चतुर्थ नित्य कर्म है, देखो मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ४८ में स्पष्ट आज्ञा है कि यथावत् प्रतिदिन बलिवैश्वदेव करना चाहिये—

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृहेऽग्नौ विधिपूर्वकम्।
आभ्यः कुर्यादेवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥

और गीता अ०४ श्लो० ३१ में लिखा है कि जो यज्ञ करने के पीछे अमृतरूपी अन्न भोजन करते हैं वह सनातन ब्रह्म को पाते हैं और जो इन यज्ञों को नहीं करते उनको इस लोक और परलोक में सुख नहीं मिलता और अ०३श्लो०१३ में भी इस कार्य की बहुत प्रशंसा की है, जैसा कि—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्मसनातनम् ।
नायं लोकोस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।४। ३१ ।
यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते तेत्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ३ । १३ ।

ऐसा ही याज्ञवल्क्यस्मृति अ० ५ में भी लिखा है। इनके अतिरिक्त व्यासस्मृति अध्याय २ श्लोक २८ । विष्णुस्मृति अध्याय २ श्लोक २५ । हारीतस्मृति अध्याय १ श्लोक २६ में भी प्रति दिन बलिवैश्वदेव करने की आज्ञा है।

आरण्य काण्ड सर्ग १२ श्लोक २७ से प्रकट है कि महर्षि अगस्त के आश्रम पर जब रामचन्द्र गये थे तब उन्होंने बलिवैश्वदेव विधि से अग्नि में आहुति देकर भोजन किया था। देवीभागवत स्कन्ध ११ अध्याय २२ में लिखा है कि जो विप्र बिना बलिवैश्वदेव के भोजन करते हैं वह महारौरव नरक को जाते हैं।

वैश्वदेवकृतं दोषं शक्तोभिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
नतुभिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥

अतिथि-सेवा

मान्यवरो! गृहस्थ पुरुषों के उद्धार के अर्थ अतिथि ही देवता स्वरूप है, जैसा तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है-"अतिथि देवोभव" और यथार्थ में यही साक्षात् मूर्त्तिपूजा है क्योंकि अतिथि की यथावत् सेवा करने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है, अर्थात् इन्हीं के सत्संग से मनुष्य दोनों लोकों में आनन्द उठाता है. प्रियवरो! इस असार संसार के पार करने के लिये अतिथि ही नावरूप है, इसी कारण प्रतिदिन अतिथि-सेवा करने की आज्ञा वेदादि सत्य शास्त्रों में पाई जाती है. देखिये, य० अ० ३ म० ४२ में लिखा है कि जो

परोपकार करनेवाले विद्वान् अतिथि लोग हैं उनकी सेवा गृहस्थों को निरन्तर करना चाहिये, औरों की नहीं। जैसा कि—

येषामध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः।
गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः॥

मनुस्मृति अ० ३ श्लोक ९४ में मनुजी ने स्पष्ट आज्ञा दी है कि बलिवैश्वदेव के पश्चात् अतिथि को भोजन कराये और विधिपूर्वक संन्यासी और ब्रह्मचारी को भिक्षा दे—

कृत्वैतद्बलिकर्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत्।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे॥

और ऐसा ही व्याससमृति अ० ३ श्लोक ३९, ४० और विष्णुस्मृति अ० २ श्लोक ३८, ३९ हारीतस्मृति अ० ४ के श्लोक ५७ और शंखस्मृति अ० ५ के श्लोक १३ और याज्ञवल्क्य स्मृति अ० ५ श्लोक १०७ में भी लिखा है—

वृहन्नारदीय पुराण अध्याय १३ में लिखा है जो भक्ति से अतिथि के पैर धोवे वह सुख को पाता है।

इन सब श्लोकों का तात्पर्य्य यह है कि जब गृह पर अतिथि पधारे तब उठकर नम्रतापूर्वक उसको आसन दे, पैर धोवे, उत्तम भोजन करावे, फिर विद्या का विचार करे। यही अतिथि यज्ञ स्वर्ग की प्राप्ति का द्वारा है। इसी से गृहस्थ की उन्नति होती है। और कात्यायनस्मृति खं० १२ में लिखा है कि अतिथिपूजन को ही मनुष्य-यज्ञ कहते हैं। लिंगपुराण अ० २९ श्लोक ४८ में लिखा है कि अतिथि का अपमान न करे क्योंकि अतिथि साक्षात् शिव का स्वरूप है, इस लिये अतिथि सेवा में अपने शरीर को अर्पण करने में कुछ सन्देह न करे अर्थात् अच्छे प्रकार सेवा करे। जैसा कि—

त्वया वै नावमन्तव्यागृहे ह्यतिथयः सदा।
सर्व्वएव स्वयं साक्षादतिथिर्यत् पिनाकधृक्॥
तस्मादतिथये दत्वा आत्मानमपि पूजयेत्।

विदुरजी ने कहा है कि जो अतिथियों का यथायोग्य सत्कार करता है उसका इस संसार में यश होता है। वनपर्व अ० २ में युधिष्ठर महा-

राज ने कहा है कि अतिथि-सेवा करना परम धर्म है और अध्याय १८४ में महात्मा 'चरु' ने इन्द्र को उपदेश किया है कि अतिथि के आदर सत्कार से गौदान के समान फल होता है। शान्ति पर्व अ० १२१ में भी भीष्मपितामह ने कहा है कि जो मनुष्य अतिथियों को प्रतिदिन भोजन कराते हैं उनको 'अमृताशी' कहते हैं और अ० २४२ में लिखा है कि अतिथि की यथावत् सेवा करने से चद्रलोक मिलता है अनुशासनपर्व के अध्याय २ में गृहस्थ का परम श्रेष्ठ धर्म अतिथि-सत्कार कहा है। आरण्यकाण्ड में अगस्त्य मुनि का वचन है कि—हे रामचन्द्र! जो तपस्वी होकर अतिथियों का सत्कार नहीं करता वह झूंठी साक्षी देनेवाले के समान परलोक में जाकर अपना मांस आप भोजन करता है। प्रियवरो! जब तपस्वियों की यह दशा होगी तो फिर गृहस्थों की दुर्दशा का क्या ठीक। मनुजी ने कहा है कि जो गृहस्थ अतिथि से प्रथम आप भोजन करता है उसको दूसरे जन्म में कुत्ते और गिद्ध खाते हैं। श्रीमद्भागवत् स्कन्ध ५ अ० २६ श्लोक ३५ में लिखा है जो गृहस्थ अतिथि को बारम्बार क्रोध दृष्टि से देखते हैं उनकी आंखे गिद्ध, कौआ, बटेर मरने इत्यादि पर निकालते हैं। पराशर स्मृति श्लोक ४६ में लिखा है कि जो अतिथि का सत्कार नहीं करता उसको हज़ारों घड़े घृत के होम से कुछ लाभ नहीं होता और श्लोक ५८ में लिखा है कि जो बलिवैश्वदेव और अतिथि का सत्कार नहीं करते वे नरक या कौवे की योनि में जाते हैं।

भ्रातृगणों! वैदिक समय में ब्रह्मचारियों, संन्यासियों और वानप्रस्थों की अतिथियों में गणना की गई थी जो अपनी आयु के दो या तीन भाग सांसारिक आनन्दों में व्यतीत करके सब प्रकार सन्तुष्ट हो जाते थे। जिससे उनका मन फिर सांसारिक वस्तुओं की ओर कभी स्वप्न में भी न झुकता था। संसार के सम्पूर्ण भेदों को जान कर नियमपूर्वक संन्यासी होते थे, जिनकी कहीं भी नियत कुटी नहीं होती थी, जो प्रत्येक नगरों में जाकर भयरहित होकर वेद-रूपी सद्धर्म को करते थे। इसी कारण उनकी सब प्रकार से सेवा करना हमारा परमधर्म था, हम उनका सेवा के अर्थ तन मन धन से उद्यत रहते थे। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इस उत्तम परिपाटी का कहीं पता भी नहीं चलता, जिधर दृष्टि उठा कर देखते हैं एक झुण्ड अनपढ़ नाममात्र के संन्यासियों का देख पड़ता है, जिनकी शारीरिक दशा का कुछ वर्णन नहीं हो सकता। कोई भुस खाता है, कोई

बड़े २ लकड़ी के गट्टों की माला पहिने होते हैं, बड़े २ बाल बढ़ायेहुए हैं, कोई हाथी आदि उत्तम सवारियों पर चलते हैं। कोई दिन और रात चरस की दम लगाया करते हैं। सचमुच यह भी सांसारिक मनुष्यों की भांति नाना प्रकार के सुखों के अभिलाषी होते हैं। जैसे हमारी आपकी स्त्रियां होती हैं उनके साथ भी स्त्रियां होती हैं जिनको बाइ जी कहते हैं। हम अपने निवास स्थान को गृह कहते हैं और इनका निवासस्थान कुटी कहलाता है. जिसमें सब प्रकार की वस्तु जिनकी गृहस्थीमें आवश्यकता होती है, भरी हुई पाई जाती हैं। सचमुच ये गृहस्थी हैं, परन्तु जीविका के अर्थ हुये भेष धारण कर लेते हैं और नाना प्रकार से धन उत्पन्न कर कुकर्म्मों में व्यय करते हैं। किसी के साथ एक झुण्ड आठ २ दस २ वर्ष के बालकों का (जो इससंसार के तृणमात्र से भी निपट अज्ञानी होते हैं) होता है। ये सब सन्यासियों के भेषमें रहते हैं। मान्यवरो! ये कदापि संन्यासी नहीं कहे जा सकते। देखिये, शातातप जी कहते हैं कि संन्यासी वही हैं जिनकी सब सांसारिक पदार्थों में अप्रीति हो, जैसा कि—

सदा सर्व पदार्थेषु वैराग्यं यस्य जायते।
अधिकारी स विज्ञेय इति शातातपोऽब्रवीत् ॥

इनका तो केवल यही उद्देश्य है कि प्रातःकाल होते ही नगर की ओर जाते हैं, घर पर जाकर घण्टों खड़े होकर मांगते फिरते हैं जिसकी निन्दा बहुत प्रकार से की गई है, देखिये—

आहार मात्रेपि ना निस्पृहा कार्तासंन्यासिनेति।
भिक्षाप्रकरणवाक्यात् प्रतीयते।
नेक्षयेद्द्वाररन्ध्रेण भिक्षालिप्सुः क्वचिद्यतिः।
न कुलाद्दै कचिद् घोषं न द्वारं ताडयेत् कचित् ॥
देहीति यो ब्रूयाल्लवणव्यञ्जनादिकम्।
गोमांस तुल्यं तद्दैदयं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥

अर्थ—संन्यासियों को आहार मात्र में भी बहुत इच्छा न करनी चाहिये यहां तक कि भिक्षा की इच्छा करता हुआ द्वार में न देखे, न मांगे, न दरवाज़े को खटखटावे। लाओ २ ऐसा शब्द कहता, लवण या व्यञ्जनादि भोजन

मांगता है वह गोमांस तुल्य होता है, उसको खाकर चान्द्रायण व्रत करने से शुद्ध होता है। फिर कहिये कि यह संन्यासी कैसे ? यह तो केवल अपनी स्त्री माता पितादि से लड़ झगड़ वा साँसारिक आनन्दों से निराश होकर देश देशान्तरों में भ्रमण कर देश की रेढ़ मार रहे हैं। इस लिये आप जान बूझ कर कार्य कीजिये। देखिये, लिखा है कि वेद-विरुद्ध कार्य करने वाले, झूंठ बकनेवाले, तथा बगुला और बिलाव की वृत्ति रखने वाले दुष्टों का वाणीमात्र से भी न सत्कार करना चाहिये—

पाषण्डिनो विकर्मस्थानवैडालव्रतिकान् शठान् ।
हैतुकान्बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥

इस लिये मान्यवगे ! केवल उन्हीं पुरुषों का सत्कार कीजिये जो अपने २ वर्णों के धर्मों को पूर्ण रूप से करने में उद्यत हैं अन्यथा कुछ लाभ नहीं वरन् जितने पाप कर्म ऐसे जन आपका धन पाकर करते हैं उनके पाप के भी आप भागी होते हैं। इसके उपरान्त यह जन आप ही की लड़ैती सन्तान को स्वप्नवत् सुख दिखला कर रंगे स्यार बना कर ले जाते हैं कि जिनके दुःखों में आप प्राण गमाने तक उद्यत होजाते हैं। इसलिये शास्त्रानुसार अतिथियों की परीक्षा करके वेदानुकूल अतिथि-सेवा का प्रचार कीजिये। देखिये य० अ० २१ मं० १४ में लिखा है कि धर्मात्मा और विद्वान् अतिथियों की सेवा करे। सचमुच ऐसी ही आज्ञाओं पर चलने से इस अभागे भारत की सुदशा हो सकती है।

पुराण—परीक्षा

इसी विषय को मैंने योग्य पंडितों द्वारा बड़े परिश्रम से तीन भागों में पुराणतत्त्वप्रकाश नामक ग्रन्थ में मुद्रित कराया है। जो पबलिक की क़दरदानी से हाथों हाथ बिक रहा है। कदाचित् आपने अभी तक आद्योपान्त न पढ़ा हो तो आप कृपाकर एक प्रति वी. पी. द्वारा मंगा स्वयं विलोकन कर अपने गृह के स्त्री पुरुषों को सुनाइये और विचारिये कि उपरोक्त पुराण महर्षि व्यास प्रणीत हैं या नहीं ? इन के लेख वेदानुकूल हैं वा नहीं ? उनके विषय में ईसाई मुसल्मानादि क्या २ शंकायें करते हैं। यथार्थ में यह पुराणों की सैरबीन और कच्चा चिट्ठा है। चमत्कार वा तिलस्मातों का भण्डार है।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव और देवीमहाराणी की करतूत अर्थात् महादेव का विष्णु की तपस्या कर वर मांगना, उनका कपाली होना, और नाम महात्मा का महादेव को शाप देना, फिर उनका पाप मोचन करना, महादेव को युद्ध में जीतना, पार्वती की प्रार्थना पर उनका मुक्त होना। विष्णु की आज्ञा से शिवजी का भस्म, हाड़, चर्म का धारण करना ; तामस पुराणों का रचना, जिनके अनुसार कार्य करनेवाले को नरक में जाना। कृष्ण का शिवपूजन कर, मंगल और पुत्र की प्राप्ति करना। ब्रह्मा और विष्णु को महादेव का वर देना। विष्णु का नेत्र उखाड़ शिव पर चढ़ाना रामचन्द्र जी का ब्रह्महत्या दूर करने के लिये शिव की उपासना करना। महादेव का अतिथि रूप में चमत्कार दिखाना, । विष्णु जी की निन्दा दूर करने के लिये ब्रह्मा जी का चमरी को उत्पन्न कर, उनके शिर का लवण-समुद्र में गिराना और घोड़े का शिर जोड़ना । **ब्रह्मा विष्णु शिव** का स्त्री होना। विष्णु के कान के मैल से मधुकैटभ का उत्पन्न होना। **इन्द्र, चन्द्र सूर्य, वसिष्ठ, विश्वामित्र, वृहस्पति, शुक्र की** अपार लीला, **विदव अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव** के अनोखे कर्त्तव्यों का फोटो। कलिमाहात्म्य और उसके दूर करने का सरल उपाय। तीर्थ व्रत के मुख्य अभिप्राय बताने का मन्त्र। गंगा महाराणी की विचित्र उत्पत्ति। गंगा महाराणी का स्वपाप मोचन करना। राजा वेन के मरने पर उसकी भुजाओं से निषाद और पृथु का उत्पन्न करना, वृत्तों से मरीषा का जन्म, रेवती के छोटे करने की अजीब तरकीब, राजा निमि का मरना फिर उससे पुत्र का उत्पन्न करना, बलदेव जी का मदिरापान कर यमुनाजी को खींचना, बल के शरीर से सोना चांदी आदि का उत्पन्न होना, राजा सगर की रानी के साठ हज़ार पुत्रों का उत्पन्न होना, देवताओं से वृत्तों की उत्पत्ति, ब्रह्मा जी के कान से दिशाओं की उत्पत्ति, एक राजा का हिरणी के साथ वार्त्तालाप, मनु की पुत्री का पुत्र होजाना, 'कच' का टुकड़े कर राक्षसों का खाना फिर उसे जीवित निकालना, हरणी के पेट से शृंगी ऋषि का उत्पन्न होना, राजा की कोख से पुत्र का जन्म, जन्तु नाम पुत्र को चर्बी से हवन कर उस से रानी के पुत्र का होना इत्यादि बातों के उपरान्त गणेश महाराज की अद्भुत उत्पत्ति और मृतक श्राद्ध का भी वर्णन है।

प्यारे सज्जन पुरुषों ! कहां तक वर्णन करूं इसमें सैकड़ों अद्भुत २

बातों का उल्लेख है, जिनके पढ़ते २ व्यास महाराज की अनोखी सृष्टि-रचना पर हंसी आती है। कृपा कर एक बार अपनी गृहणियों को अवश्य सुनाइये जो इन पर तन, मन, धन का न्योछावर करती हैं। इसको सुन सत्यासत्य, धर्माधर्म, का निर्णय कर अपने जीवन को सुफल करें। प्यारे भाइयो! आपके हितार्थ ऐसी अमूल्य पुस्तक का (५८२ पृष्ठ होने पर भी) मूल्य १॥-) है। अब किञ्चित् यहां भी दिखलाते हैं।

मान्यवरो! सनातनी भाई बड़े दावेके साथ कहते हैं कि **अष्टादश-पुराणानां कर्त्ता सत्यवतीसुतः।** अर्थात् इन अठारह पुराणों को व्यासजी ने बनाया है। मान्यवरो! इस विषय के जानने के लिये यह भी जानना आवश्यक है कि व्यास जी महाराज कब उत्पन्न हुए और किस धर्म के मानने वाले थे? फिर इन पुराणों में जो कुछ लिखा है वह उनके धर्म के अनुकूल है या प्रतिकूल?

(१) इसके उपरान्त यह भी देखना चाहिये जो विषय इसमें एक स्थान पर वर्णन किया है उसके विरुद्ध तो किसी स्थानपर नहीं लिखा? जिन सज्जनों ने महाभारत का अवलोकन किया होगा वह जानते होंगे कि व्यास जी महाराज महर्षि पराशर के पुत्र थे, उनके बहुधा अमूल्य वचन भिन्न भिन्न स्थानों पर पाये जाते हैं। उसी समय से कलियुग का आरम्भ होता है जिसको अब तक ४६६६ वर्ष हुए अर्थात् व्यासजी को हुए ४६६६ वर्ष व्यतीत हुए। अब ध्यान देना चाहिये यदि व्यास जी इन पुराणों के कर्त्ता हैं तो वह उसी समय बने होंगे, परन्तु ऐसा नहीं जान पड़ता, क्योंकि पुराणों के विषय अपने २ समय को पृथक् पृथक् बतला रहे हैं। श्रीमद्भागवत के एक स्थान पर लिखा है, एक समय श्री नारद जी महाराज व्याकुल होकर विष्णु के पास गये जो कि बदरिकाश्रम पर तपस्या कर रहे थे। विष्णु ने नारद जी को व्याकुल देख कर पूंछा कि आप कैसे आये? नारद जी महाराज कहने लगे कि म्लेच्छों ने महादेव का मन्दिर तोड़ डाला और महादेव जी कुएंमें गिरकर डूब गए। इतिहास के जाननेवाले इस विषय को खूब जानते होंगे, यह वृत्तान्त औरंगज़ेब के समय में हुआ था, जिसने १६५७ ई० से १७०७ ई० तक राज्य किया। इससे ज्ञात होता है कि भागवत को बने केवल १८७ वर्ष हुए जिसकी पुष्टि देवीभागवत का टीकाकार भी करता है।

(२) बहुधा पुराणों में बुध को अवतार माना है और इतिहासों से ज्ञात होता है कि बुद्ध विक्रमी सम्वत् से ६१४ वर्ष पूर्व हुए थे और ८० वर्ष की आयु में मर गये, जिसको आज तक केवल २५६७ वर्ष हुए, फिर व्यास जी ने पुराणों को क्यों कर बनाया ?

(३) ब्रह्माण्ड पुराण में लिखा है कि इस घोर कलियुग में जो तम्बाकू पीता है वह नरक को जाता है और पद्मपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य तम्बाकू पीनेवाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है, और ब्राह्मण गाँव के सुअर का जन्म लेता है।

सम्पूर्ण इतिहास ज्ञाता इस विषय को एक सम्मत होकर कह रहे हैं कि तम्बाकू अमेरिका से अकबर के समय में भारतवर्ष में आया। इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्माण्ड और पद्मपुराण अकबर के समय में या उसके पश्चात् बनाये गये।

(४) राधाबल्लभीय सम्प्रदाय सं० १६४१ में प्रचलित हुआ है और संस्कृत के किसी प्राचीन पुस्तक में राधा का नाम नहीं पाया जाता है, परन्तु ब्रह्मवैवर्त्तपुराण में इसका बहुत कुछ माहात्म्य वर्णन किया है जिससे प्रकट है कि ब्रह्मवैवर्त्त पुराण सं० १६४१ के पश्चात् बना है। इसके अतिरिक्त जो महाशय जगन्नाथजी को गये होंगे उनको ज्ञात होगा कि उस मन्दिर पर विक्रमीय सं० १२३१ पड़ा है और स्कन्धपुराण में इसका बहुत माहात्म्य वर्णन किया है, इससे ज्ञात होता है कि वह पुराण १२३१ वि० के पश्चात् बनाया गया। इसी प्रकार अन्य पुराण अपने २ विषय से अपने २ समय को बतला रहे हैं, जिसको हम विस्तार भय से नहीं लिखते।

(५) व्यासजी महाराज ने अनेकान स्थानों पर उपदेश किया है कि जो महाभारत से प्रकट है उससे उनकी विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रकाश होता है इसके अतिरिक्त उन्होंने वेदान्त सूत्र और मीमांसा की व्याख्या और योगभाष्य निर्मित किया है, जिनमें बड़े २ वेदोक्त विषय भरे हुये हैं जिसके समझनेवाले इस समय बहुत कम हैं, जो सब प्रकार बुद्धि और सृष्टिक्रम के अनुसार है जिन पर चलने से मोक्ष प्राप्त होती है और पुराणों के कर्त्ताओं ने भी श्रीमान् को त्रिकालदर्शी माना है, परन्तु शोक का विषय है की इन्हीं पुराणों में उनके नाम से ऐसी२ लीला भरी हैं जिनको मूर्ख भी ठीक नहीं कह सकता। देखिये, श्रीमद्भागवत् स्कन्ध ५ अ० १ श्लोक २१ में लिखा है कि राजा प्रियव्रत ने इस जगत् में ११ अरब वर्ष तक राज्य किया।

(६) एक महापापी अजामिल नामक ब्राह्मण ने कि जिसने अपनी सम्पूर्ण आयु केवल कुकर्मों के करने में व्यय की थी, अन्त को अपने दासी पुत्र 'नारायण' का नाम लेने से स्वर्ग पाया।

(७) शुकदेवजी महाराज दो अरणी की लकड़ियों में से बिना गर्भाशय के व्यास जी का वीर्य गिरने से उत्पन्न हुए।

(८) एक समय श्रीवेदव्यासजी महाराज ने जो त्रिकालदर्शी थे, मनुष्यों की कुगति देख कर एक वेद के चार वेद किये और शूद्रों के लिये महाभारत बनाया।

(नोट) मान्यवरो! चारों वेद सृष्टि की आदि ही से चले आते हैं, जिसको हमारे मुनि व्यासजी महाराज भी मानते थे, फिर यह कब सत्य हो सकता है?

(९ श्रीकृष्ण और उनके दासों की सेवा से मनुष्य पापों से छूटता है वैसा तप, ब्रह्मचर्य, सम, दम, दान, सत्य, शौच, यम, नियम आदि से नहीं।

(१०) और बाल्मीकि रामायण में लिखा है कि जब महादेवजी के वीर्य को अग्नि और पार्वती की बहिन गंगा अत्यन्त उष्णता के कारण न झेल सकीं, तो अशक्त होकर छोड़ दिया, उसके भूमि पर पात होने से उस वीर्य से सोना, चांदी, तांबा, लोहा, रांगा सीसा आदि नाना प्रकार की धातु उत्पन्न हुईं।

(११) एक समय दिति नामक राक्षसी ने तीनों लोकों के जीतनेवाला पुत्र उत्पन्न करने के अर्थ तपस्या की। एक दिन दुपहर को वह नींद के कारण बहुत अशक्त होकर तपस्या के नियम के विरुद्ध दिन में सो रही, बस इन्द्र ने उस स्थान से जिसका लिखना सभ्यता के विपरीत है दिति के गर्भ में प्रवेश किया। भीतर जाकर बज्र से गर्भ के सात टुकड़े कर दिये, परन्तु अब तक उस बेचारी को कुछ खबर न हुई। रोने पीटने का शब्द सुन कर दिति जाग उठी और मत मारो, मत मारो, ऐसा कहा है।

इसके अतिरिक्त तुलसीदासजी ने अपनी तुलसीकृत रामायण में भी लिखा है।

सुधावृष्टि भई दोउ दल माहीं। जिये भालु कपि निश्चर नाहीं

मान्यवरो! क्या यह बातें सत्य और व्यासजी वा बाल्मीकिजी की कही हो सकती हैं? कदापि नहीं, कदापि नहीं। यह तो बिल्कुल सृष्टिक्रम, शास्त्र और बुद्धि के विरुद्ध हैं, इसी कारण अत्रिजी महाराज ने कहा है कि—

वेदविहीनाः पठन्ति शास्त्रं शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः।
पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति॥

वेद से हीन लोग शास्त्र पढ़ते हैं, शास्त्र से हीन पुराण बांचते हैं, पुराणों से हीन हल जोतते हैं और सब से पतित भागवत पुराण बांचते हैं, फिर भला, आपको मुक्ति इनके द्वारा क्योंकर मिल सकती है! बहुधा हमारे भाई शंका करते हैं कि बाल्यमीकीय रामायण महात्मा बाल्मीकि ने रामचन्द्र की उत्पत्ति से कई हज़ार वर्ष पहिले लिखी थी, परन्तु यह बात भी उसी रामायण के बालकांड के आदि दूसरे श्लोक में नारद ने बाल्मीकि से पूंछा कि इस लोक में अब इस समय कौन गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, दृढ़व्रत और सत्यवादी राजा है, जैसा कि—

कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः॥

इसके उत्तर में बाल्मीकिजी ने रामचन्द्र का नाम लिया है। इस पर आगे कथा चली है जिसको बहुधा लोग दश हज़ार वर्ष पहिले रामचन्द्र जी से रामायण बनाई हुई बताते हैं, यह कैसे सोच की बात है। इसी रामायण के उत्तरकाण्ड में यह भी प्रसंग आया है कि एक ब्राह्मण का पुत्र आठ वा नौ वर्ष की आयु में कालवश हो गया, तब ब्राह्मण ने जाना कि किसी पापी राजा का राज्य है, इस कारण प्रजा में इस प्रकार के अत्याचार हो रहे हैं। देखो पिता के होते पुत्र की मृत्यु कभी नहीं हुई और अब ऐसा हो रहा है। बस, ऐसा सोच शव को लेकर अयोध्या पहुंचा और श्रीरामचन्द्र के सम्मुख रखकर कहा कि हे राजन्! यह मेरे पुत्र की लोथ है, यह अति न्यून आयु में पिता के होते कालवश हो गया है। यह बड़े पाप का कारण है जो आपके राज्य में हो रहा है! मुझको बड़ा ही खेद हो रहा है इस लिये लोथ को आपके पास छोड़कर मैं रोता हुआ जाता हूं। उसके जाने पर श्रीरामचन्द्रजी ने वशिष्ठादि ऋषियों को बुलाकर सब वृत्तान्त सुनाया तो यह निश्चय हुआ कि आपके राज्य में कोई शूद्र तपस्या कर रहा है, जिसके कारण ऐसे विघ्न आपके राज्य में हो रहे हैं। रामचन्द्र यह सुन पुष्पक विमान में बैठ कर वहां पहुंचे जहां वह शूद्र तपस्या कर रहा था और पूंछा तू कौन है? उसने उत्तर दिया कि हे राम! मैं शूद्र योनि में उत्पन्न हुआ हूं और उग्र तप कर रहा हूं कि जिससे इसी शरीर से देवत्व

को प्राप्त हो जाऊँ। हे राम, देवलोक के विषय की इच्छा से मैं मिथ्या नहीं बोलता, मुझको आप शूद्र जानें और नाम मेरा शम्बूक है जैसा कि—

शूद्रयोन्यां प्रजातोस्मि तप उग्रं समास्थितः।
देवत्व प्रार्थये राम सशरीरा महायशाः॥
नमिथ्याहं वदे राम देवलोक जिगीषया।
शूद्रं मांविद्धि काकुत्स्थ शम्बूकानामनामतः॥

इस प्रकार उसके कहने पर श्रीराम ने दीप्यमान जैविमल खड्ग को म्यान से निकाल कर शूद्र के सिर को काट डाला, जैसा कि—

भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गंसुरुचिरप्रभम्।
निष्कृष्य कोशाद्विमलं शिरश्चिच्छेदराघवः॥

इसके पीछे वहां लिखा है कि देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की और वह बालक जी उठा।

प्यारे मित्रो! इससे पूर्व जब हम रामायण पर विचार करते हैं तो यह मिथ्या प्रतीत होती है, देखिये कि रामचन्द्र वन में शबरी के स्थान पर गये थे जिसके विषय में उसी रामायण में लिखा है कि वह सकल धर्मों के अनुष्ठान करनेवाली तपस्विनी थी, जैसा कि—

शबरीं धर्म्म चारिणीम्। श्रवणां धर्म्मनिपुणामभिगच्छेति राघवः इत्यादि॥

अब आपको यह भी ज्ञान होना चाहिये कि वह किस जाति की थी? देखिये अमरकोष में लिखा है—

भेदाः किरात शबर पुलिन्दाम्लेच्छजातयः।

अर्थात् किरात और शबर पुलिन्द और म्लेच्छ जाति यह सब चांडाल के भेद हैं, इससे प्रकट हुआ कि शबरी एक अधम शूद्रा थी।

अब उपरोक्त कथा से शूद्रों को तप करना पाप होना कथन किया है और यहां शबरी के तप और धर्म अनुष्ठान को देख कर श्रीराम ने उसकी प्रशंसा की है, वह अनेक शास्त्रों को पढ़ी थी जिससे धर्म के तत्वों को भी जानती थी क्योंकि बिना पढ़े धर्म कर्म का जानना महान् दुर्लभ है।

जब वन में विचरते हुए दोनों भाई शवरी के स्थान पर पहुंचे तब वह उठ कर खड़ी हो गई और दोनों के चरण पकड़ कर प्रणाम किया, फिर विधि-पूर्वक पैर धोने और आचमन के लिये जल दिया, जैसा —

सरम्यमभिवीक्षन्तौ शवरीमभ्ययेयुनः ।
तौदृष्ट्वातु तदासिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः ॥
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः ।
पाद्यमाचमनीयञ्च सर्वं प्रादाद्यथाविधि ॥

इससे यह भी प्रकट होता है कि रामचन्द्र महाराज ने शवरी के हाथ से जल लेकर आचमन किया था।

इसी रामायण में यह भी लिखा है कि वह शवरी मुनियों की सेवा किया करती थी। अतिथि मुनि लोग भी उससे कुछ छूत छात का विचार नहीं करते थे। फिर श्रीराम ने शवरी से पूंछा कि हे तपस्विनी! क्या तेरी तपस्या की वृद्धि होती है? इसके उत्तर में शवरी ने कहा कि हे राम, आपके दर्शन से मेरी तपस्या हुई।

अब आप विचार कर बतलाइये कि जब शूद्रों को तपस्या करने की मनाही होती तो श्रीरामचन्द्र उससे पूंछते अथवा उपरोक्त शूद्र की भांति इसको खड्ग से क्यों नहीं मारा। शवरी के यहां उन फलों को भी खाया जो पंपापुर में होते थे।

अब और भी सुनिये, एक दिन रात को राजा दशरथ शिकार को गये उसी समय सरयू तट पर एक मनुष्य पानी भरने आया। घट भरते समय महाराज को जान पड़ा कि हाथी पानी पी रहा है उन्होंने तुरन्त शब्दबेधी बाण छोड़ा जो उस मनुष्य के छाती में लगा जो घड़ा भर रहा था और वह मर गया। अब विचार यह है कि वह कौन था और उसके माता पिता कौन थे? रामायण में लिखा है कि उसकी माता शूद्र थी और पिता वैश्य थे। शास्त्र में ऐसे को 'करण' नाम शूद्र कहते हैं, तो वह पुरुष करण नाम का शूद्र था, मरते समय उसने दशरथ से भी कहा राजन् आपको ब्रह्महत्या का भय न हो क्योंकि मैं ब्राह्मण नहीं हूं, जैसा कि—

शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप।

इसके उपरान्त वह तपस्वी का वेष धारण किये हुए था और शास्त्र भी अध्ययन करता था, यथा—

जटाभारधरस्यैव वल्कलाजिनवाससः ॥

इसके पश्चात् उसके पिता अन्धे ऋषि विलाप कर कहते हैं कि मधुर स्वर से शास्त्रों और पुराणों आदि को पढ़ता हुआ अब मैं किसका शब्द सुनूँगा, जैसा कि—

कस्यवापररात्रेहं श्रोष्यामि हृदयंगमम् ।
अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद्विशेषतः ॥

कौन मनुष्य मुझको स्नान, सन्ध्या, होम करने के पीछे स्नान करावेगा, जैसा कि—

को मां सन्ध्यामुपास्यैव स्नात्वां हुतहुताशनः ।
श्लाघयिष्यत्युपासीन पुत्रशोकभयार्दितम् ॥

अब आप ही बतलाइये रामायण की कौन सी बात ठीक मानें, महाशय ऐसी पूर्वापर विरुद्ध हज़ारों बातें भरी हैं, हम कहाँ तक दिखलावें ।

इसके अतिरिक्त इन पुराणों का कथन एक दूसरे के विरुद्ध है । देखिये पद्मपुराण में लिखा है कि—

व्यामोहाय चराचरस्य जगतश्चैते पुराणागमास्तांतामेवहि देवतां परमिकां जल्पन्ति कल्पावधि । सिद्धांते पुनरेक एव भगवान् विष्णुस्समस्तागम व्यापारेषु विवेचने व्यतिकरं नित्येषु निश्चीयते ॥

इसका तात्पर्य यह है कि सब पुराण मनुष्य को भ्रम में डालनेवाले हैं, उनमें अनेक देव ठहराये गये हैं, एक ईश्वर का निश्चय नहीं होता, केवल एक भगवान् विष्णु ही पूजने योग्य हैं । अब देखिये शिवपुराण में शिव को परमेश्वर मान कर विष्णु, ब्रह्मा, गणेशादि को उनका सेवक ठहराया है और विष्णुपुराण में विष्णु को परमात्मा मान शिवादि को उनका दास और देवी भागवत् में लिखा है कि ब्रह्मा, विष्णु महेश आदि शक्ति श्री नाप की स्त्री से उत्पन्न हुए और वह उनकी माता इन पर मोहित होगई और तीनों से

भोग करने को कहा कि जिसमें महादेव ने भोग किया और मार्कण्डेय पुराण दुर्गापाठ में लिखा है कि विष्णु के नाभि कमल से ब्रह्मा उत्पन्न हुए, जैसा कि—

स नाभिकमले विष्णोः स्थितो ब्रह्मा प्रजापतिः ।

मत्स्यपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा से शिव उत्पन्न हुए यथा—

ततोऽसृजद्वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम् ॥

नारदीय पुराण में लिखा है कि नारायण के दाहिनी ओर से ब्रह्मा, बांई ओर से विष्णु और मध्यम भाग से शिव भी उत्पन्न हुए, और मार्कण्डेय पुराण में लिखा है कि महालक्ष्मी से विष्णु महाकाली से महादेव और महासरस्वती से ब्रह्मा पैदा हुए और अनुशासन पर्व में लिखा है कि महादेवजी श्रीकृष्ण के शिर से उत्पन्न हुए और ब्रह्मा महादेव के पेट से उत्पन्न हुए हैं और उसी अनुशासन पर्व अ० १४ में लिखा है कि विष्णु को महादेव जी ने उत्पन्न किया, इससे ज्ञात होता है कि ब्रह्मा और विष्णु के जन्मदाता महादेव जी हैं ।

इसके अतिरिक्त पाण्डव लोग जब विराट नगर में प्रवेश करने लगे हैं तब महाराज युधिष्ठिर ने जो देवी की स्तुति की है उसके पढ़ने से मालूम होता है कि देवी ने विष्णु आदि को बनाया, अब बतलाइये कि हम किसका कथन ठीक जानें, किसको व्यास जी मानते थे ?

प्यारो ! इन पुराणों के मानने से ही फूंट का बाज़ार गर्म होगया है । देखिये । जब ४ पुराणों के श्रोता इकट्ठे होते हैं वहां सब अपनी २ सुनी कथा कहते हैं, एक कहता है कि विष्णु बड़े, दूसरा कहता नहीं ब्रह्मा, तीसरा कहता महादेव, चौथा कहता कि तुम सब भूलते हो आदि शक्ति माया बड़ी है, इन बातों के प्रामाणिक होने के अर्थ इन्हीं पुराणों के प्रमाण भी देते हैं । हां जो भक्तिपक्ष में रँगे हुए हैं कि यह तीनों ब्रह्मा, विष्णु, महेश एक ही हैं, इनमें भेद न मानना चाहिये, परन्तु प्रमाण इनके भोलेपन का खण्डन करते हैं । शिव के मन्दिर में श्री लगा के जाने का निषेध है, देखिये भागवत में लिखा है—

भवव्रतधरा ये च ये च तत् समनुव्रताः ।
पाषण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः ॥
मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ।

नारायणकलाः शान्ताभजन्तिह्यनसूयवः ॥

अर्थ शिवजी की सेवा करें और उसके मत पर चलनेवालों की बात मानें अर्थात् शैव मत पर चलें वे सच्छास्त्र के शत्रु और पाखण्डी हैं, मुमुक्षुओं को भयानक भूतपति को छोड़ शान्तरूप नारायण को भजना चाहिये और पद्मपुराण को सुनिये—

उर्ध्वपुण्ड्रविहीनस्य श्मशानसदृशं मुखम् ।
अवलोक्य मुखं तेषामादित्यमवलोकयेत् ॥
ब्राह्मणः कुलजो विद्वान् भस्मधारी भवेद्यदि ।
वर्जयेत्तादृशं देवी मद्योच्छिष्टं घटं यथा ॥

जो तिलक (वैष्णवी मार्क) धारण नहीं करता उसका मुख श्मशान के तुल्य है इसलिये देखने योग्य नहीं, कदाचित् देख पड़े तो इसका प्रायश्चित करे अर्थात् तुरन्त सूर्य का दर्शन कर लेवे ब्राह्मण कुल में जो विद्वान् होकर भस्म धारण करे उसको शराब के जूठे बासन की नाईं त्याग देवे। शिवपुराण को देखिये—

विभूतिर्यस्य ना भाले नाङ्गे रुद्राक्ष धारणम् ।
नहि शिवमयी वाणी त त्यजेदन्त्यजं यथा ॥

अर्थात् विभूति (भस्म) जिसके माथे पर नहीं, और अंग में रुद्राक्ष नहीं पहिने, मुँह से शिव २ ऐसा नहीं कहा, वह चाण्डाल की नाईं त्याज्य है, ब्रह्मपुराण में लिखा है—

कर्म्मादौ तिलकं कुर्यात् रूपं तद्वैष्णवं परम् ।
गोप्रदानं तपो होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् ॥ १ ॥
भस्मीभवति तत्सर्वमूर्द्ध्व पुण्ड्रं विना कृतम् ।
पुनः—ऊर्ध्वपुण्ड्रं मृदा कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं भस्मना यथा ।
तिलकं वै द्विजः कुर्यात् चन्दनेन यदृच्छया ॥ २ ॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं द्विजः कुर्यात् क्षत्रियस्य त्रिपुण्ड्रकम् ।
अर्धचन्द्रन्तु वैश्यस्य वर्तुलं शूद्रजातिषु ॥ ३ ॥

अशुचिर्वाप्यनाचारो मनसा पापमाचरन् ।
शुचिरेव भवेन्नित्यमूर्ध्वपुण्ड्राङ्कितो नरः ॥ ४ ॥

ऐसा ही—ऊर्ध्वपुण्ड्रधरो मर्त्यो म्रियते यत्र कुत्रचित् ।
श्वपचोऽपि विमानस्थो मम लोके महीयते ॥ ५ ॥

सब कर्मों के आदि में तिलक लगाना चाहिये, जो वैष्णवों का परम-रूप है बिना ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाये गोदान, तप, होम, स्वाध्याय, पितृ तर्पण सब भस्म (नष्ट) हो जाते हैं ॥ १ ॥ मट्टी से ऊर्ध्वपुण्ड्र भस्म से त्रिपुण्ड और चन्दन से यदृच्छा तिलक लगावे ॥२॥ ब्राह्मण ऊर्ध्वपुण्ड्र से, क्षत्रिय त्रिपुण्ड्र, वैश्य अर्धचन्द्राकार और शूद्र गोल तिलक लगावे ॥ ३ ॥ भ्रष्ट अनाचारी मनसापापी भी ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाने से नित्य शुद्ध ही होजाता है ॥४॥ ऊर्ध्वपुण्ड्रधारी चाहे जहां मरे, भङ्गी भी विमान में बैठ कर मेरे विष्णुलोक में महिमा पाता है ॥ ५ ॥

यो मृत्तिकां द्वारवतीसमुद्भवां करे समादाय ललाटपट्टे ।
करोतिनित्यंत्वथचोर्ध्वपुण्ड्रं क्रियाफलं कोटिगुणं सदाभवेत ॥

गुरुड़ पुराणीय वाक्य हरभक्ति विलास में है ॥ ६ ॥

जो द्वारिका की मट्टी हाथ में लेकर ऊर्ध्वपुण्ड्र लगाते हैं, उनको क्रिया फल करोड़ गुणा होता है । ७ ॥

सूतसंहिता—शिवागमे दीक्षितैस्तु धार्यं तिर्यक् त्रिपुंड्रकम् ।
विष्णवागमे दीक्षितस्तु ऊर्ध्वपुण्ड्रं विधारयेत् ॥८॥

दीक्षित लोग शिवागम में तिरछा त्रिपुण्ड्र लगावें और विष्णु के आगम में ऊर्ध्वपुण्ड्र लगावें ॥ ८ ॥

लिंगपुराण—विना भस्मत्रिपुंड्रेण बिना रुद्राक्षमालया ।
बिना मालूरपत्रेण नार्चयेत् शिवलिंगकम् ॥९॥

भस्म, त्रिपुण्ड्र रुद्राक्षमाला, मालूर पत्र के बिना शिवपूजा न करे ।

इस सब लेख से स्पष्ट है कि पुराणों में ऊर्ध्वपुण्ड्रादि तिलक हैं वेदों में नहीं, प्रत्युत वैदिकों को ऐसे तिलक वर्जित हैं ।

हां पुराणों के कर्त्ताओं ने स्वयं ही वैदिक धर्मानुरागियों को तिलक

का भी निषेध किया है, इससे पुराणों का स्वयं स्वीकृत है कि यह वैदिक धर्म नहीं है किन्तु पुराणों की हा खैंचतान है।

निर्णय सिंधु में लिखा है—

ऊर्ध्वपुण्ड्रो द्विजातीनामग्निहोत्रसमो विधिः।
श्राद्धकाले च सम्प्राप्ते कर्ता भोक्ता च वर्जयेत् ॥१०॥
वामहस्ते च ये दर्भा गृहे रंगवलिं तथा।
ललाटे तिलकं दृष्ट्वा निराशाः पितरोगताः ॥११॥
ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिपुण्ड्रं वा चन्द्राकारमथापिवा।
श्राद्धकर्त्ता न कुर्वीत यावत् पिण्डान्न निर्वपेत ॥१२॥
ललाटेपुण्ड्रकं दृष्ट्वा स्कन्धे माल्यं तथैव च।
निराशाः पितरो यान्ति दृष्ट्वा च वृषलीपतिम् ॥१३॥

अर्थात् ऊर्ध्वपुण्ड्र को श्राद्ध समय कर्ता भोक्ता दोनों न लगावें। बायें हाथ के कुश, घर में रङ्ग विंध नृत्यशाला (थयेटर) माथे पर तिलक देख निराश हो पितर चले जाते हैं ॥११॥ श्राद्धकर्त्ता पुरुष जब तक पिंडदान न करे तब तक ऊर्ध्वपुण्ड्र त्रिपुण्ड्र चन्द्राकार कैसा भी तिलक न लगावें ॥१२॥ माथे पर तिलक, गले में माला और वेश्यागामी पुरुष को देख पितर निराश हो चले जाते हैं ॥१३॥ देवीभागवते नारायण वाक्यम्—

ऊर्ध्वपुण्ड्रं त्रिशूलं च वर्तुलं चतुरस्रकम्।
अर्द्धचन्द्रादि वा लिंगं वेदनिष्ठो न धारयेत् ॥१४॥

ऊर्ध्वपुण्ड्र, त्रिपुंड्र, गोल, चौखुंटा, अर्धचन्द्राकार आदि तिलक वेदनिष्ठ पुरुष न लगावे ॥१४। पुनः सूतसंहिता में लिखा है--

विष्णवागमेषु तन्त्रेषु दीक्षितानां विधीयते।
शंखचक्रगदापद्मै रङ्कनं नान्यदेहिनाम् ॥१५॥
वेदमार्गैकनिष्ठस्तु मोहेनाप्यंकितो यदि।
पतत्येव न सन्देहस्तथा पुण्ड्रान्तरादपि ॥१६॥
शंखचक्रे मृदा यस्तु कुर्यात् तप्तायसेन वा।
स शूद्रवद्वहिष्कार्यःसर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥१७॥

शंख चक्रादि का वैष्णवों के तन्त्र में दीक्षितों ही को विधान है, सब को नहीं ॥ १५ ॥ वेदमार्गनिष्ठ पुरुष भूल से भी अंकित हो जावे वा तिलक लगावे तो निस्सन्देह 'पतित' हो जाता है ॥ १६ ॥ जो मिट्टी से वा तपे लोहे से शंख चक्र लगाता है समस्त द्विजकर्मों से शूद्रवत् पृथक् करने योग्य है ॥ १७ ॥ बृहन्नारदीय पुराण अ० १४ में लिखा है—

यस्तुसन्तप्तशंखादि लिंगचिन्हित तनुर्नरः ।
स सर्वयातना भोगी चाण्डालः कोटिजन्मसु ॥

अर्थ—जो आदमी तप्त शंख, चक्र आदि मुद्रा से अपने देह को दगा कर चिन्हित करता है वह आदमी नरक में दुःखों को भोग कर पश्चात् कोटि जन्म चाण्डाल होता है । वायु पुराण में लिखा है—

ब्राह्मणो यदिमोहेन तापयेद् वन्हिमुद्रया ।
न कर्माहि भवेदत्र स वै पाखण्ड संज्ञकः ॥

यदि मोहवश ब्राह्मण तप्त मुद्रा से अपने देह को दगावे तो वह ब्राह्मण किसी कर्म के योग्य नहीं होगा और पाखंडी कहलावेगा । पुनः लिंग पु० में—

शंख चक्रे तापयित्वा यस्य देहः प्रदह्यते ।
स जीवन कुणपस्त्याज्यः सर्वकर्मवहिष्कृतः ॥

शंख चक्र को तपा कर जिसका देह जलाया जाता है वह जीता हुआ मुरदा, क्योंकि वह किसी कार्य के योग्य नहीं है अर्थात् वह सब कर्मों से रहित है । अग्निपुराण में लिखा है—

पूर्वजस्य तनुर्दग्धा शखचक्रादिभिः पृथक् ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा स्नानदानजपादिभिः ॥

जिस ब्राह्मण का शरीर तप्त शङ्ख चक्र आदि से पृथक् दग्ध हुआ अर्थात् जिस ब्राह्मण ने अपने देह को तप्त शङ्ख, चक्र आदि से दगाया है उस ब्राह्मण की शुद्धि स्नान, दान, जप आदि से भी नहीं हो सकती ।

अब विचारिये कि पूर्वापर विरुद्ध पुराणों का लेख किस प्रकार माननीय हो सकता है ? इसके उपरान्त पुराणों के कर्त्ताओं ने ईश्वर को निराकार और साकार दोनों प्रकार का माना है, वह वेद के बिलकुल ही विरुद्ध है, क्योंकि वेद में ईश्वर को केवल निराकार ही माना है, जैसा कि—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमित्यादि ॥

देखो भविष्यपुराण आदि अध्याय ८३ में लिखा है कि एक दिन राजा युधिष्ठिर जी श्रीकृष्णचन्द्रजी से पूछते हैं कि हे श्रीकृष्ण चन्द्रजी ! पूर्व काल में जब अग्नि नष्ट हो गया था और देवताओं को अग्नि का काम करना पड़ा उस समय अग्नि का काम किसने किया, यह आप वर्णन करें, आप सब कुछ जानते हैं। इसके उत्तर में श्रीव्यासजी बोले कि हे राजन् ! जब तारकासुर ने देवताओं को पराजय कर स्वर्ग से निकाल दिया उस समय सब देवता मिल के ब्रह्माजी के पास गये और श्रीब्रह्मा जी से प्रार्थना की कि हे महाराज, तारकासुर ने हमको बहुत सताया है, उसके नाश का कोई उपाय कल्पना कीजिये तब ब्रह्माजी ने कहा है कि हे देवताओं ! पार्वती और शिव जी के वीर्य से उत्पन्न इस दैत्य को जो मारेगा इत्यादि। ब्रह्माजी का वह वचन सुनके देवता शिवजी के पास गये और शिवजी से निवेदन किया। शिवजी ने भी स्वीकार कर लिया, तब देवता लोग स्वस्थान को चले गए और शिवजी पार्वती के साथ······ में प्रवृत्त हुए इसमें उनको एक दिव्य सहस्र वर्ष से भी अधिक व्यतीत हो गये, परन्तु······ समाप्त न हुआ। तब देवताओं को बड़ा भय हुआ, देवता आपस में विचार करने लगे कि कब बालक उत्पन्न होगा और कब तारकासुर का बध होगा, अभी तो भोग ही समाप्त नहीं हुआ है, इत्यादि बातें विचार करके देवताओं ने कहा कि महादेव जी के भोग को समाप्त करना चाहिये। ऐसा विचार करके अग्नि और वायु को महादेव जी जहां भोग कर रहे थे वहां भेजा। अग्नि को देख कर श्री पार्वतीजी लज्जित हो खड़ी हो गईं, परन्तु महादेव जी शान्त न हुए और अग्नि के पीछे दौड़े और पकड़कर अग्नि से······ करने लगे। उनका वीर्य अग्नि में गिरा वह जलने लगा, तब उसने इस वीर्य को गंगा में फेंक दिया, जब वह जलने लगी तब उसने उसको अपने किनारे के पास घास में फेंक दिया, जिससे कार्तकेय उत्पन्न हुए। जिसने तारकासुर को मारा इत्यादि महादेव की निन्दा लिखी है। और भी सुनिये—

श्रीमद्भागवत के ८ स्कन्ध के १५ अध्याय के ११ श्लोक में लिखा है कि महादेव जी विष्णु भगवान से कहते हैं कि हे देव ! आपके गुणों सहित क्रीड़ा करते २ जिन २ अवतारों को स्वीकार किया है उन सबको

हमने देखा है, अतएव आपने जो स्त्री रूप धारण किया था उसके देखने की मेरी इच्छा है जैसा कि—

अवतारो मया दृष्टा रममाणस्य ते गुणैः ।
सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामियत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥
येन संमोहितादैत्याः पायिताश्चामृतंसुराः ।
तद्दिदृत्तव आयाताः परं कौतूहलंहिनः ॥

इस पर श्री शुकदेव जी बोले कि हे राजन ! महादेव जी की ऐसी प्रार्थना करने पर भगवान् विष्णु ने गम्भीर भाव से हँस कर उनसे कहा कि अमृत का कलश रह जाने पर मैंने देखा कि स्त्री का रूप धारण करने पर ही देवताओं का कार्य सिद्ध होगा, अतः मैंने दैत्यों को मोहित करने के निमित्त स्त्री का रूप धारण किया था, हे देव ! आपके देखने की इच्छा है तो मैं आपको दिखलाऊँगा, वह रूप काम का बढ़ानेवाला है, इसी से कामी जन उसका अति मान करते हैं ।

इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ।
सर्वतश्चारयन् चत्तुर्भव आस्ते सहो मया ॥ इत्यादि—

श्री शुकदेवजी बोले हे नरनाथ ! भगवान् ऐसा कह अन्तर्ध्यान होगये, महादेवजी ने पार्वती के समीप बैठे हुए चारों ओर को दृष्टि डालते २ थोड़ी देर के उपरान्त देखा कि विचित्र फूल वृत्तों से शोभित उपवन में एक परम सुन्दरी स्त्री गेंद खेल रही है, जिसके रेशमी वस्त्रों से सम्पूर्ण शरीर शोभायमान होरहा है, वह सुन्दरी इस प्रकार से चलती मानों उसकी कमर टूटी जाती है, गेंद उसकी नाना दशाओं में भ्रमण कर रहीहै, इस कारण उसके विशाल नेत्रों के तारे चंचल होरहे थे, दोनों कानों में स्वर्ण के कुण्डल शोभायमान होरहे थे, ऐसा मोहनी रूप देख कर महादेवजी पार्वती के पास से उठ उस मोहनी के पीछे हो लिगे, मोहनी विचित्र स्त्री थी, वह वृत्तों की आड़ में छिप गई, महादेवजी निर्लज्ज हो उस कामिनी से विलास करने की चेष्टा करने लगे, कामिनी वश में न आई, महादेवजी ने उसके केश पकड़ लिये, परन्तु कामिनी युक्ति से केश छुटा कर भागी, महादेव जी पीछे भागे, मार्ग में जाते न रहा गया और उनका······ गिर गया, वह जिस

स्थान पर गिरा सोना चांदी की खान होगई, इसी प्रकार ······ पूजा का वर्णन है जिसके लिखने में लज्जा आती है।

भागवत के १० स्कंध में श्रीकृष्ण महाराज की रासलीला, चीरहरणलीला का अच्छे प्रकार वर्णन किया है, जिससे श्रीकृष्ण महाराज की अच्छे प्रकार कलई खोली गई है और उसी स्कन्ध के अ० २९ में लिखा है—

कृष्णं विदुः परंकान्तं नतु ब्रह्मतया मुने।

राजा परीक्षित कहते हैं कि हे मुने! श्रीकृष्णजी को गोपियां उपपति (जार) समझती थीं न कि परब्रह्म।

तमेवपरमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः

उसही परमात्मा को जार बुद्धि से प्राप्त हुई।

मत्स्यपुराण के ३ अध्याय में तथा भागवत में ब्रह्माजी को पुत्री गमन तक का दोष लगाया है!

चन्द्रमा को गुरुपत्नी के साथ ······ करना तथा स्त्री का न लौटना ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के ५९ अध्याय पृष्ठ ५९१ में लिखा है और ऐसा ही देवीभागवत में लिखा है।

ब्रह्मपुराण के गणेश खण्ड के २ अ० में महादेवजी भोग कर रहे थे, पार्वतीजी उससे प्रसन्न न हुईं, अन्त में देवता लोग आये, पार्वती उनसे रोकर महादेवजी को कहने लगीं और देवताओं को शाप दिया, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण के कृष्ण जन्म खं० ४८७ पृष्ठ में इन्द्र ने गौतम के वेश में अहिल्या से ······ किया और पृष्ठ ६२५ में कुब्जा के साथ श्रीकृष्णजी का भोग ······ विलास करना लिखा है, इसी प्रकार ब्रह्मपुराण ९२ अ० में धृतव्रत की स्त्री को मही ने अपने पुत्र सूर्यनिभ से ······ किया।

निर्णयसिंधु द्वितीय परिच्छेद कार्तिक शुक्ला प्रतिपदा निर्णय में हेमाद्रि ब्राह्म के प्रमाण में लिखा है—

तस्मिंद्यूतं प्रकर्त्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः।
तस्मिंद्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः॥
पराजयो विरुद्धश्च लाभनाशकरो भवेत्।
दयिताभिश्च सहितैर्नेया सा च भवेन्निशा॥ इति॥

अर्थात् प्रातःकाल जुवा खेले उस जुवे में जिनकी जीत हो वर्ष भर तक जीत रहे गी । हारवाले की हार भी रहेगी : स्त्री के साथ रात्रि व्यतीत करें । यही स्कन्द पुराण का प्रमाण—

प्रातर्गोवर्द्धनः पूज्यः द्यूतं चापि समाचरेत् ।

प्रातःकाल गोवर्धन की पूजा करके जुवा भी खेले । भला, कहां तो पूजा और कहां जुवा खेलना ! दोनों बातों में कितना अन्तर है ।

इससे सिद्ध होता है कि लोगों को जुवा खेलना पुराण सिखाते हैं । जिस जुवे ने राजा नल का नाश किया, युधिष्ठिर जैसे महाराज की रानी को भरी सभा में नग्न करने की नौबत कराई । हाय ! उसी जुवा को पुराण सिखावे, कैसा अनर्थ है । जिस क़ौम को जुवा जैसा महा पाप धर्म वा कर्त्तव्य कर्म कह कर सिखाया जाने लगा था, उस क़ौम के बेड़ा डूबने में क्या देर थी ?

विष्णुसहस्रनाम में लिखा है—

विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभांगम् ।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यम् ॥

जो गगन सदृश अदृश्य सूक्ष्म है, वह मेघवर्ण कमल नयन कैसे हुये ? जो विश्व का आधार सर्वदर्शी है वह लक्ष्मीकान्त क्योंकर हुआ ?

वेदान्तगोब्राह्मणः स्यात्क्षत्रियो विजयी भवेत् ।
वैश्यो धनसमृद्धः स्यात् शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ॥

(माहात्म्य ३)

ब्राह्मण वेदान्ती, क्षत्री विजयी, वैश्य धनी हो जाता है । आज बीसों ब्राह्मण विष्णुसहस्रनाम जपते जपते बूढ़े होगये परन्तु वेद को वेद बोल कर अपनी विद्या की बहार खोरहे हैं । और वैश्य भी वाणिज्य करनेवाले बोझा कन्धे धरे धरे घर घर फिरते हैं परन्तु विष्णुसहस्रनाम पाठ रोज़ करते रहते हैं, और कुछ नहीं होता । इसी प्रकार कामियों के लिये भी इसकी आवश्यकता दिखलाकर वशीकरण आदि की सिद्धि की है, जैसा—

कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाम् ।

ऐसे ही गरुड़पुराण में नाना प्रकार से पोपलीला गाई गई है जैसा कि 'यमराज' जिनके मन्त्री चित्रगुप्त जी हैं, उनके गण जिनके शरीर पहाड़ के तुल्य होते हैं, जीव को पकड़ ले जाते हैं, और पाप पुण्य के अनुकूल नरक स्वर्ग पाते हैं, इसके लिये दान, पुण्य, श्राद्ध, तर्पण गोदानादि वैतरणी उतारने के अर्थ लिखी है, यह सब मिथ्या है, क्योंकि 'यमेन वायुना सत्यराजन' यम नाम वायु का है, शरीर छोड़ वायु के साथ अन्तरिक्ष में जीव रहते हैं और पक्षपात से रहित न्यायकारी परमेश्वर, 'धर्मराज' है, वही न्यायकर्ता है, और मरने के पीछे जीव को कुछ नहीं मिलता।

मान्यवरो ! प्रचलित ग्रन्थ वह नहीं हैं जिनको "पुराण नाम" से पाणिनि आदि ने अपने अपने ग्रन्थों में लिखा है, जो व्यास जी से बहुत पूर्व हुये हैं, जैसे—

इतिहासमधीतेऽसौ ऐतिहासिकः। तथा पुराणमधीतेऽसौ पौराणिकः॥

इतिहास के पढ़नेवाले ऐतिहासिक और पुराण के पढ़नेवाले पौराणिक कहाते हैं, क्या कोई पंडित वा साधारण भी यह कह सकता है कि जब तक व्यासजी ने पुराण नहीं बनाये थे तब तक ऐतिहासिक पौराणिक शब्द ही नहीं थे, यदि थे तो किन पुराणों के पढ़नेवाले पौराणिक कहाते थे ? इससे यह सिद्ध हुआ कि जो पुराण पहिले से वर्णाश्रम धर्म के वेदानुकूल प्रतिपादन करनेवाले थे उन्हींका वात्स्यायन ऋषि ने प्रामाणिक कहा है. क्योंकि इस समय प्रकृत पुराणाभास के तो बनानेवाले कोई नहीं जन्मे थे तो प्रामाणिक किसको कहते ? और भी देखिये महर्षियों का सिद्धान्त है कि—**दशमेऽन्हि किंचित् पुराणमाचक्षीत।**

अश्वमेध यज्ञ में दशवें दिन थोड़ी कथा कहे। आप लोगों के विचारानुसार अश्वमेध यज्ञ अब कलियुग में वर्जित है और पुराण कलियुग के आरम्भ में बने तो यह वचन सर्वथा व्यर्थ हुआ क्योंकि जब अश्वमेध होते थे तब तो पुराण ही न थे, कथा किसकी कहते। और जब से पुराण बनाये गये तबसे अश्वमेध करना ही रोकदिया इसलिये यह जो आज्ञा है कि अश्वमेध में दशवें दिन थोड़ी पुराण की कथा कहे, यह जब ही ठीक होगा जब कि व्यासजी से पहिले भी पुराण माने जावें। यह बात अनेक प्राचीन ग्रन्थों से सिद्ध है कि पुराण बहुत प्राचीन काल से चले आते हैं।

ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुधा इतिहास पुराण के नाम से आये हैं, और ब्राह्मणों को अपौरुषेय वेद मानते हो तो कहिये कि व्यासजी जब नहीं थे तब कौन से ग्रन्थ पुराण शब्द से लिये जाते थे ? वा जब तक आपके पुराण बने तब तक ब्राह्मण ग्रंथों का यह लेख है कि इतिहास पुराण वेद में पांचवां वेद है व्यर्थ हो रहा, और जैसे रघुवंशी आदि अनेक राजाओं ने अनेक अश्वमेध यज्ञ किये तब व्यासजी कृत पुराण न होने से किसकी कथा उन्होंने सुनी ? इस वास्ते आवश्यकता हुई कि इतिहास पुराण वही माने जावें जिनको वात्स्यायन ऋषि ने प्रामाणिक माना है। हम यह नहीं कहते कि पुराणों के मानने की आज्ञा सद्ग्रन्थों में नहीं है ? अवश्य ही है। परन्तु भागवत् आदि नवीन ग्रन्थों का नाम पुराण ही नहीं, वरन् पुराण नाम ब्राह्मण ग्रन्थों का है। इस बातको केवल हम ही नहीं कहते, भागवत् आदि को जिन लोगों ने बनाया है वह भी इस बातको अपने ग्रन्थों में लिख गये हैं। परन्तु आश्चर्य का विषय है कि आज कल के हिन्दू ग्रन्थों को श्रद्धा और विचार के साथ नहीं पढ़ते। देखिये, पद्मपुराण में लिखा है कि—

ब्रह्मणा सर्वशास्त्राणां पुराणं प्रथमं स्मृतम्।

इसी के अनुकूल वायु पुराण अ० १ श्लो० ५६ में भी लिखा है—

प्रथमं सर्वशास्त्राणां पुराणं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥

ब्रह्मा ने पहिले पुराण को बनाया पश्चात् उसके मुख से वेद निकले, ऐसा ही मत्स्यपुराण में भी लिखा है—

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणास्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिस्सृताः।
मीमांसा न्यायविद्या च प्रमाणाष्टकसंयुता॥

इन प्रमाणों से सिद्ध होता है कि ब्रह्मवैवर्त्त के बनानेवाले भी ब्राह्मण ग्रन्थों ही को पुराण मानते थे, क्योंकि यदि ब्रह्मवैवर्त्त को वह लोग पुराण मानते तो ब्रह्मा के मुख में उनकी उत्पत्ति न लिखते। पुराण नाम धारी नवीन ग्रन्थोंको ब्रह्मा का बनाता हुआ कोई नहीं मानता, इस कारण ब्राह्मण

ही पुराण शब्दवाच्य हैं। ऋग्वेद के उपोद्घात में हिन्दुओं के परम मान्य सायणाचार्य भी लिख गये हैं—

देवासुरा संयत्ता आसन्नित्यादय इतिहासाः।
इदं वा अग्रे नैव किञ्चिदासीदित्यादिजगतः॥
प्रागवस्थामुपक्रम्यसर्गप्रतिपादकंवाक्यजातंपुराणम्॥

जिन शंकराचार्य को हिन्दू लोग महादेव का अवतार मानते हैं। बृहदारण्यकोपनिषद् (चतुर्थ ब्राह्मण) के भाष्य में लिखा हैं—

इतिहासइत्युर्वशीपुरूरवसोःसंवाददिरुर्वशीहाप्सरा।
इत्यादि ब्राह्मणमेव पुराणम्॥

अर्थात् ब्राह्मण ग्रन्थ में उर्वशी और पुरूरवा का संम्वादरूप इतिहास है, इस कारण ब्राह्मण ही पुराण है।

पुराण नामधारी नवीन पुस्तकों में पुराणों के पांच लक्षण लिखे हैं वे भी ब्राह्मण ग्रन्थों में ही घटते हैं, भागवत आदि में नहीं पाये जाते, वह पांच लक्षण ये हैं—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥

सृष्टि, प्रलय, वंश, मन्वन्तर, वंशो का चरित्र, इन पाँचों का जिनमें वर्णन हो उसे पुराण कहते हैं। ब्राह्मण ग्रन्थों में सृष्टि का वर्णन तो स्पष्ट ही लिखा है, देखिये तैत्तिरीय ब्राह्मण प्रथम अष्टक के प्रथम अध्याय तृतीय अनुवाक में लिखा है—

आपो वा इदमग्रे सलिलमासीत्। तेन प्रजापतिश्चारम्यत्। कथमिदꣳस्यादिति। सोऽपश्यत् पुष्करपर्णन्ष्ठित सोमन्यत॥ अस्ति वै तावत। यस्मिन्निदमधिष्ठतितीति। स वराहो रूपं कत्वोपन्यमज्जत्। स पृथ्वीमध आर्च्छत। तस्याउपहत्यो दमज्जत। तत्पुष्करपर्णे प्रथयत तत पृथिव्यै पृथिवीत्वम्॥

इस ब्राह्मण वाक्य में जो सृष्टि क्रम का वर्णन है वह तैत्तिरीय संहिता के एक मन्त्र का अर्थ है, इससे ब्राह्मण ग्रन्थ वेद भी नहीं हैं वरन वेदों की

व्याख्या और पुराण शब्द वाच्य हैं। गाथा वा वंशानुचरित ब्राह्मण ग्रन्थों में स्पष्ट ही लिखे हुए हैं, देखिये ऐतरेय ब्राह्मण में लिखा है—

एतेन ह वा ऐन्द्रेण महाभिषेकेन दीर्घतमा मामतेयो भरतं दौष्यन्तिमभिषिषेच तस्यसुतो दौष्यन्तिः समन्तं सर्वतः पृथिवीं जयन् परिपाय ॥

अर्थात्—ममता के पुत्र दीर्घतमा ऋषि ने इस ऐन्द्र अभिषेक द्वारा महाराज दुष्यन्त के पुत्र भरत का अभिषेक किया था, इसी कारण दुष्यन्तनन्दन भरत ने सम्पूर्ण पृथिवी को जीत के भ्रमण किया। इसके अतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण (१२ । ५४ । १) में लिखा है—

एतेन हैन्द्रतो देवा यः शौनकः जनमेजय पारीक्षितं याजयाञ्चकार तेनष्ट्वा सर्वां पापकृत्यां सर्वां ब्रह्महत्यामपजघान ॥

शतपथादि ब्राह्मणों में मिथिलाधिपति महाराज जनक तथा महाराज दुष्यन्त और अनेक ऋषियों की कथा लिखी हुई है, इस कारण वेदार्थों को जाननेवाले प्राचीन महर्षियों के बनाये हुए ब्राह्मण ग्रन्थों की पुराण संज्ञा है। यह सबको स्वीकार करना उचित है। इसलिये प्यारे भाइयो! भागवतादि नवीन अठारह पुराणों को जो व्यास जी के नाम से स्वार्थियों ने बनाये हैं कि जिनमें बहुत हानिकारक बातें भरी हुई हैं उनको त्याग कर वेदोक्त ही कार्य कीजिये। क्योंकि वेद ही सनातन ईश्वर रचित पुस्तक है, पुराणादि कदापि नहीं हो सकते।

ईश्वरकृत वेदों का होना

मान्यवरो! ईश्वरकृत वही पुस्तकें हो सकती हैं जिन में निम्नलिखित बातें पाई जावें।

(१) यह कि वह किसी देश की भाषा न हो, क्योंकि अगर अरबी होगी तो अरबवालों को, फ़ारसी होगी तो फ़ारसीवालों को, अँग्रेज़ी होगी तो इङ्गलिस्तानवालों को, हिन्दी होगी तो हिन्दवालों को सुगम होगी, पस ऐसी विद्या सिवाय संस्कृत के कोई नहीं है, क्योंकि वह किसी देश की भाषा

नहीं है, इसमें सम्पूर्ण देश निवासियों को एकसा परिश्रम करना पड़ता है। यदि किसी देश की भाषा होती तो उससे परमेश्वर में पक्षपात अर्थात् विकार पाया जाता, और वह निर्विकार है, इस लिये ऐसी भाषा में वेदों को प्रकट किया कि वह किसी देश की भाषा नहीं है। २—किसी क़ौम की तरफ़दारी न हो। ३ सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही प्रकट हुई हो, न कि थोड़ा या बहुत समय व्यतीत होने पर। ४—उसकी आज्ञा सब जगह एकसी ही हो, ऐसा न हो कि एक आज्ञा उसकी दूसरी आज्ञा को काट सके। ५—सृष्टि नियम जो उसीका रचा हुआ है उसके विपरीत न हो। ६ न्याय और खगोल भी उसको झूंठा न कर सके। ७—किसी ख़ास मनुष्य पर ईमान लाने की आज्ञा न हो बरन् उसमें केवल एक ईश्वर ही माननीय पूजनीय हो ८—मनुष्यों की बुद्धि को उन्नत करनेवाली हो। ६—उसमें क़िस्सा कहानियां न हों। १० जितनी विद्या दुनियां में प्रचलित हैं उन सबका कोष हो। इन गुणों से परिपूर्ण जो कोई पुस्तक इस संसार में हो वह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकती है।

इन वेदों के पूर्ण ज्ञान होने के लिये हमारे प्राचीन ऋषियों ने ४ उपवेद ६ अंग और ६ उपांग बनाये, इसलिये जो इनको प्रथम अच्छे प्रकार नहीं पढ़ते तब तक उनको वेदों का यथावत् तत्वज्ञान नहीं होता। यही कारण है वर्त्तमान में वेदों के तत्व के जाननेवाले बहुत ही न्यून हैं।

उपवेद—१ आयुर्वेद (वैद्यकशास्त्र), २ धनुर्वेद (युद्धशास्त्र), ३ गन्धर्ववेद (गानविद्या), ४ अथर्ववेद (शिल्पशास्त्र)।

अंग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष, छन्द।

उपांग—वैशेषिक, न्याय, और सांख्यशास्त्र, पूर्वमीमांसा, उत्तर-मीमांसा, तथा वेदान्त।

मूर्तिपूजा-विचार

सबसे प्रथम यह जानना चाहिये कि मूर्ति किसको कहते हैं? देखिये बृहदारण्यकोपनिषद् में लिखा है कि—

द्वेवा ब्रह्मणोरूपे मूर्त्तंचैवामूर्त्तं च तदेतन्मूर्त्तं यदन्यद्वायोश्चान्तरिक्षाच। अथामूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चेत्यादि॥

ईश्वर की सृष्टि में दो प्रकार के पदार्थ हैं—एक मूर्त, दूसरे अमूर्त। इनमें आकाश वायु से भिन्न सब मूर्त और आकाश वायु अमूर्त हैं। अर्थात् पञ्चभूतों में पहिले दो अमूर्त और अन्त में तीन स्थूल हैं और इन तीनों भूतों के विकार भूत सभी पदार्थ स्थूल (मूर्त) हैं और इसी को आकृति कहते हैं. अर्थात् जो नेत्रद्वारा प्रत्यक्ष हो उसीको मूर्त वा मूर्त्ति कहते हैं। और कोष के अनुसार मूर्त्ति शब्द के दो अर्थ हैं—

'मूर्तिः काठिन्यकाययोः ।'

अर्थात् कठिनाई और शरीर का नाम मूर्ति और इसी से मूर्तिमान् शब्द भी बनता है। इससे प्रत्यक्ष प्रकट है कि पाषाणादि से बनी हुई मूर्तियों ही का नाम मूर्ति नहीं है, जिनको सम्प्रति मन्दिरों और ठाकुरद्वारों में ताले के भीतर बन्द रखते हैं।

अब यह विचार करना चाहिये कि मूर्ति शब्द के साथ जो 'पूजा' शब्द लगा है उसका क्या अर्थ है, तो प्रत्यक्ष प्रकट है कि सत्कार करने का नाम पूजा है। किसी प्रकार के कोष वा व्याकरण के प्रमाण से पूजा शब्द का अर्थ धूप, दीप, नैवेद्य वा चन्दनादि पदार्थ जड़ वस्तु पर चढ़ाने का प्रसिद्ध नहीं है। हां पूजा शब्द का अर्थ चेतन वस्तुओं के प्रसंग में आता है। अमरकोष में जहां पूजा शब्द आया है उस प्रकरण को देखने से निश्चय होता है कि इस पूजा शब्द का अर्थ चेतनों ही से सम्बन्ध रखता है। देखो अमरकोष के द्वितीय खण्ड के सप्तम ब्रह्म वर्ग में पूजा शब्द आया है. वहां उससे पहिले अतिथि और पाहुन का प्रसंग है, इसलिये ठीक सिद्ध है पूजा शब्द चेतन सम्बन्धी है और सर्व चेतनों के बीच में मनुष्य ही बुद्धिमान् है, इसलिये इसकी ही पूजा करना योग्य है। जैसा कि मनुजी महाराज ने कहा है—

आचार्य्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्रातास्वोमूर्तिरात्मनः ॥

आचार्य्य गुरु ब्रह्म की मूर्ति है अर्थात् जिस भावना से आचार्य्य की पूर्ण सेवा करेगा वही अभीष्ट सिद्ध होगा। ब्रह्म नाम वेद वा परमेश्वर का यथावत् ज्ञान गुरु की पूजा के अधीन है, जब गुरु सन्तुष्ट होगा तो उसको सुगमता पूर्वक वेद वा ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करा देगा। ईश्वर और शब्दार्थ सम्बन्ध रूप वेद दोनों अमूर्त हैं, परन्तु आचार्य के अन्तःकरण में स्थित

हैं, इस कारण आचार्य को ब्रह्म की मूर्ति कहा है। जिसको ब्रह्म की पूजा करना अभीष्ट हो वह आचार्य की पूजा करे, क्योंकि धर्मशास्त्र आज्ञा देता है कि ब्रह्म की मूर्त्ति आचार्य है। और ऐसा किसी ने नहीं कहा कि 'पाषाणो ब्रह्मणोमूर्ति' क्योंकि 'ऋतेज्ञानान्न मुक्तः' अर्थात् ज्ञान के विना मुक्ति नहीं होती और पाषाणादि जड़ पदार्थ ज्ञान होने में सहायता नहीं दे सकते, क्योंकि वह स्वयं ज्ञान रहित हैं। इसलिये आचार्य गुरु की ठीक ठीक सेवा किये विना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती, और पिता सृष्टिकर्त्ता की मूर्ति है, उसीसे शरीर रूप पुत्र होता है, अर्थात् पिता उस पुत्र रूप शरीर का बनानेवाला है इसलिये जहां सृष्टिकर्त्ता की मूर्ति पूजना हो वहाँ साक्षात् पिता की मूर्ति को पूजे जिससे ऋण का उद्धार हो जावे। माता पृथ्वी की मूर्ति है, क्योंकि 'इयं भूमिर्हि भूतानांशाश्वती योनि रुच्यते' अन्नादि की उत्पत्ति के समान प्राणियों की उत्पत्ति का स्थान भूमिस्थानी माना है। जिसने सब प्रकार के क्लेश सह के उत्पन्न कर पालन पोषण कर बड़ा किया है उसकी साक्षात् मूर्त्ति पूजनी चाहिये और सहोदर भाई अपनी मूर्त्ति है अर्थात् एक स्थान और एक पिता से उत्पन्न होने के कारण सब भ्राता एक ही मूर्ति हैं, इसलिये जितनी सेवा भ्राता की करे वह जानो अपनी मूर्ति की पूजा है, जैसा कि—

आचार्यश्चपिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्तेनाप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेषतः॥

आचार्य, माता, पिता और ज्येष्ट भाई ये यदि किसी प्रकार का दुःख भी दें तथापि इनका अपमान कदापि न करे, यह उपदेश सब वर्णों के लिये है परन्तु ब्राह्मण के लिये विशेष है क्योंकि वह धर्म की मर्यादा को अधिक जानता है।

प्यारे भाइयो! इसी प्रकार मूर्त्तिपूजा प्राचीन काल से आर्यों में चली आती है और इसी प्रकार की पूजा का आर्यग्रन्थों में बहुत उपदेश है जैसा इन तीनों की सेवा से तप की समाप्ति मनुस्मृति में लिखी है वैसे पाषाणादि मूर्त्तियों के पूजने से तप का पूर्ण होना किसी ऋषिकृत ग्रन्थ में नहीं लिखा। अब बहुधा लोग मूर्त्ति-पूजन को ईश्वर की उपासना के सम्बन्ध में लगाते हैं कि ईश्वर के अवतारों की प्रतिमा बना कर पूजने से ईश्वर में भक्ति और उसका ज्ञान होगा। उनको विचार करना चाहिये कि जब न्यायादि शास्त्र के अनुसार रूपादि गुण जीवात्मा के भी नहीं मानते

अर्थात् जड़स्वरूप पाञ्चभौतिक गुणों के रूपादि हैं किन्तु चेतन में रूपादि का अभाव होने से उसको इन्द्रिय गोचर नहीं कह सकते तो उस परमात्मा की प्रतिमा कैसे बनी। यद्यपि अवतार शब्द और उसके वाच्यार्थ का विचार करना इस प्रसंग में अभीष्ट नहीं है तथापि जो जो लोग श्रीरामचन्द्रादि को ईश्वर का अवतार मानते हैं उनसे केवल इतना ही निवेदन है कि आप यदि चिदात्मवाद को लेकर रामचन्द्रजी आदि को ईश्वर मानें तो चेतन वस्तु उनके शरीर में भी गुणरहित ही था, कोई कदापि त्रिकाल में भी सिद्ध नहीं कर सकता था, अमुक चेतन की मूर्ति में निरूपत्वादि गुणयुक्त देखी तो अवतारों के शरीरों की (कि जो पृथ्वी का विकार है) ही प्रतिमा बन सकती है किन्तु उनके शरीरों में जो आत्मा है उसकी प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है और यदि देहात्मवाद को मानते हो अर्थात् भौतिक शरीर को आत्मा मानते हो तो अविद्या का फल है, क्योंकि योगशास्त्र में कहा है कि अनात्मा शरीरादि में आत्मा बुद्धि करना अविद्या का लक्षण है और किसी शास्त्र का सिद्धान्त नहीं कि शरीर को आत्मा माना जावे, इसलिये परमेश्वर की प्रतिमा बनाना सर्वथा असम्भव है। यदि मनुष्यों की स्वाभाविक वृत्ति पर ध्यान दिया जावे कि वे अपना उपास्य देव कैसा मानना चाहते हैं तो यही सिद्ध होगा कि हमारा उपास्यदेव वही होना चाहिये जिससे ऊपर कोई न हो। यदि हमारे उपास्य देव के ऊपर उसको दबानेवाला कोई अन्य भी हुआ तो हमारा उपास्य देव छोटा होजायगा, फिर हम यथावत् उसकी भक्ति न कर सकेंगे और यही चित्त में आवेगा कि अपना उपास्य उसी को मानें जो सर्वोपरि है। तात्पर्य यह है कि जब हम किसी पुरुष विशेष पर दृष्टि देवें तो शास्त्रों के अनुसार उन उन पुरुषों के ऊपर भी ऐश्वर्यवान् प्रतीत होते हैं क्योंकि जिन लोगों ने अवतार माने हैं उनका यही सिद्धान्त है कि नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव ब्रह्म का अवतार नहीं होता तो उसकी प्रतिमा कैसे बन सकेगी। रहे ब्रह्मादि सो सर्वतन्त्र सिद्धान्त से संसारान्तर्गत हैं, क्योंकि ब्रह्मा से लेकर स्थावरान्त जगत् कहाता है। जब संसार में हैं तो विशेष विभूतिवाले होकर भी कर्मानुसार शुभाशुभ कर्म फल के भागी होते हैं। जैसा हमारा राजा विशेष विभूति और ईश्वर है पर भोग उसको प्रतिमा कर्मानुसार भी मिले हैं तो जिनको ऐश्वर्य मान कर उनकी प्रतिमा बनाना चाहते हैं और वे साक्षात् परमेश्वर नहीं तो उन प्रतिमाओं से परमेश्वर की पूजा क्योंकर कही जावेगी।

यदि अस्मदादि की अपेक्षा विशेष ऐश्वर्यवान् होने से वे ईश्वर मानेजावें तो आज कल राजा लोग क्यों नहीं माने जाते, और राजादि का ईश्वर नाम केवल ऐश्वर्य ही के कारण है किन्तु उपास्यदेव की दृष्टि से नहीं है तो जिनका अवतार होना मानते हैं वे उपास्य प्रकरण में ईश्वर ही नहीं, फिर उनकी प्रकृति (तस्वीरों) के बनाने और पूजने से किस प्रकार अभीष्ट सिद्ध हो सकता है ? और अवतार माननेवालों से यह भी निवेदन है कि जब चौबीस अवतार हुए मानते हो तो सब अवतारों की प्रतिमा क्यों नहीं बनाई गई और पांच ही प्रकार की मूर्तियां क्यों बनाईं यदि शूकर देव वा कच्छपादि की मूर्ति बना कर पूजी जाती तो लोग क्याही प्रसन्न होते कि बहुत अच्छे अवतार की प्रतिमा है ! कदाचित् शूकरादि की प्रतिमा इसी लज्जा से पूजा में न ली गई हो। सो यदि लज्जा है तो क्या ऐसे अवतार मानने में लज्जित न होना चाहिये ? हां श्रीमान् राजा रामचन्द्रादि की प्रतिकृति किसी ने प्रचरित की तो बहुत अच्छे विचार से की होगी, किन्तु ईश्वर का अवतार समझ कर नहीं की। यदि अवतारों की ही प्रतिमा बनने का कोई नियम किया चाहे सो ठीक नहीं, क्योंकि महादेवादि कई की प्रतिमा बनती हैं और वे अवतारों में नहीं गिने जाते, तो यह कहना भी नहीं बनता कि जिन जिन ने मनुष्यादि योनि में शरीर धारण किया उन्हीं की प्रतिमा पूजनार्थ बनाई गई और यह भी विचारणीय है कि कैसे महादेव जी शरीरधारी नहीं थे तो उनके……… की प्रतिमा कैसे बनी, यदि साकार मानें तो उनके……की प्रतिमा जैसे बन गई वैसे ही विष्णु भी साकार हो सकते हैं और उनकी विना शरीर धारण किये भी प्रतिमा बन सकती है, फिर शरीर धारण अर्थात् विष्णु का अवतार लेना व्यर्थ है क्योंकि जब पहिले ही साकार थे तो शरीरधारी के तुल्य दैत्यवध आदि काम कर सकते थे।

अब इसके तत्त्व पर दृष्टि डालिये कि प्रतिमापूजन की जड़ क्या है तो यह प्रतीत होता है कि प्रतिकृति (तसवीर वा फोटो) के बनाने की परिपाटी तो सदा से है और होनी भी चाहिये क्योंकि इससे अनेक प्रयोजन की सिद्धि समझी गई है। जब किसी के साथ अधिक प्रीति होती है तो देशान्तर होने के समय वा शरीरान्त होने के पश्चात् उसकी प्रतिकृति सामने रहने से उसके गुणों का स्मरण करते और उससे चित्त को सन्तोष पहुंचता है तथा

अनेक भद्र पुरुषों की तस्वीर देख उनके सुने गुण कर्मों का स्मरण होता है, इससे मनुष्य को गुणवान् होने में सहायता मिलती है और यह भी विचार होता है कि जब ऐसे २ गुणी लोग संसार में न रहे तो क्या हम रह सकते हैं? हमको भी कभी न कभी यह सब छोड़ना ही है, इससे विषयासक्ति कम होती हो इत्यादि अनेक प्रयोजन हैं जिनके लिये तो प्रतिकृति प्रचार बहुत ही उत्तम है। परन्तु मुख्य प्रयोजन जो उससे निकलते हैं उनसे यथावत् काम लेना विद्वानों का काम है। जब समय के हेर फेर से विद्या और शिक्षाप्रणाली आर्यावर्त्त में घटती गई तो सामर्थ्य-हीन होने से उन प्रतिमाओं को ईश्वर की प्रतिमा मानने लगे। क्योंकि जिन दिनों अपने सामने श्रीरामचन्द्रजी आदि ऐसे गुणी, पराक्रमी कोई नहीं हुए तो उन्हीं को ईश्वर मानने लगे, सो सब अविद्या देवी का प्रताप है। क्योंकि जिसने अच्छे विद्वानों की विद्वत्ता को नहीं जाना वह यदि लालबुझक्कड़ को बड़ा पण्डित कहे तो कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। जैसा आज कल भी बहुत से ग्रामीण मनुष्य रेल के इञ्जन को कालीदेवी की साक्षात् मूर्ति मान कर घी गुड़ से पूजते हैं अर्थात् जिसने विद्या, शिक्षा वा सत्संग के यथावत् न होने से परमेश्वर के गुण, कर्म, स्वभावों को यथावत् नहीं सुना वह विशेष ऐश्वर्यवाले शरीरधारियों के गुण कर्मों को सुन के उनको ईश्वर माने वा उनकी प्रतिकृत को ईश्वर की प्रतिकृत समझे तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। इस से यही प्रतीत होता है कि जो जो महात्मा सज्जन धार्मिक विद्वान् पराक्रमी हुए उनकी प्रतिकृति बनी तो देखने आदि के लिये थी, पर अविद्या के प्रताप से उनका अभिप्राय लौट कर कुछ का कुछ हो गया और अब यह भी निश्चय नहीं कि जो जो प्रतिमा प्रचलित हैं वे वे उन २ महात्माओं की आकृति के अनुसार हैं? हमको कदापि प्रतीत नहीं होता कि राजा रामचन्द्रजी वा श्रीकृष्णचन्द्रजी की आकृति ऐसी ही हों कि जैसी भयानक प्रतिमा अक्खड़दासी वैरागियों ने त्रिवेणी आदि पर रक्खी हैं। यदि उन महात्माओं की ठीक २ प्रतिमा जैसी उन की आकृति थी मिले और कोई अनेक प्रकारों से निश्चय करा देवे कि अमुक महात्मा ऐसे ही थे तो अभी प्रायः लोग ऐसी प्रतिकृतियों को अपने पास रखने की अवश्य चेष्टा करेंगे और उनकी प्रतिकृतियां को देख २ आर्यों को बड़ा सन्तोष होगा। जब लोगों ने मनमानी आकृति बना ली तो प्रतिकृति से जो लाभ होना सम्भव था सो भी होना कठिन हो गया। और प्रतिमा बनाने का प्रकार प्रथम प्रायः ऐसा है कि शरीर के अन्त

अवयवों की प्रतिमा नहीं बनाते अर्थात् कटिभाग से ऊपर की तस्वीर प्रायः बनाई जाती है। यदि कोई सर्वांग भी बनावे तो उसका अभिप्राय भी ऊपर के भाग पर ही अधिक होता है और यही होना भी चाहिये, क्योंकि मुख का नाम उत्तमांग है, मुख की पहिचान ही मुख्य समझी जाती है। यदि किसी का शिर न हो तो उसी मदिरा से पहिचान लेना भी कठिन है और विषयासक्त लोगों की विषयों में रुचि बढ़ने के लिये उन २ अवयवों की स्पष्ट और शृंगारादि सहित भी शिल्पी लोग प्रतिमा बनाते हैं, परन्तु केवल ······ की कोई तस्वीर नहीं बनाता, क्योंकि यह तो मूत्र का मार्ग है उसकी तस्वीर से क्या प्रयोजन होगा। अब यदि कोई प्रश्न करे कि महादेवजी कि जिनको योगिराज मानते हैं उनके ······ की प्रतिमा क्यों बनाई गई? क्या उनके मुख नहीं था? जब जटाजूट में गंगा फिरती रही और उसका पार नहीं मिला तो हज़ारों कोश वन के समान केश होंगे, उसमें शिर भी बड़ा भारी होगा, तीन नेत्र के कहने से भी शिर का होना सिद्ध होता है, कण्ठ में विष पी लिया इस से भी कण्ठ और शिर का होना सिद्ध होता है तो सब शरीर वा उत्तमांग की तस्वीर क्यों न बनाई गई? क्या कारण है जो महादेव जी के ······ की तस्वीर बनाई गई? अवश्य इसमें कोई विशेष कारण है। जिसको अपना पूज्य वा बड़ा मानते हैं उसके पग पूजा करते हैं, यही शिष्टों का व्यवहार है। महादेव जी को ऐसा पूज्य मानकर उनके ······ की पूजा चलाई गई, इसमें यही कारण प्रतीत होता है कि विषयी लोगों ने वाममार्ग चलाने के लिये यही जड़ रक्खी है। यदि विरक्त से तात्पर्य था तो पद्मासनस्थ विभूति रमाये समाधिस्थ महादेवजी की प्रतिमा बनाते जिससे सज्जनों को हर्ष होता।

ऐसे प्रश्न सब के अन्तःकरण में नहीं उठते, अनेक लोग तो यह भी नहीं जानते कि महादेव जी के ······ की यह आकृति है, किन्तु जो पूजना उनको बताया गया है सो करते जाना उनका काम है, इसमें उनका क्या दोष है। जो लोग आग्रही वा पक्षपाती हैं उनसे ऐसा प्रश्न किया जाय तो वे नास्तिकादि कह कर गालियां प्रदान के बिना अन्य कुछ भी उत्तर नहीं देते। इसलिये वेदानुकूल माता पिता आचार्य्य आदि मूर्त्तिमान् देवों का सदा आदर सत्कार करना अभीष्ट है।

अनेक लोग यह कहते हैं कि यह पाषाणादि मूर्त्तियों का पूजन मूर्खों के लिये है क्योंकि वे ईश्वर की भक्ति वेद मन्त्रादि द्वारा नहीं कर सकते

और जब उनके चित्त में प्रेम बढ़ते २ ज्ञान हो जायगा तो आप ही उसको छोड़ देंगे। जैसे छोटी २ लड़कियाँ पहिले गुड़ियों के द्वारा खेला करती हैं और जब उनको सच्चे पति का ज्ञान हो जाता है तब वह इस खेल को आप ही छोड़ देती हैं, उसी भांति मूर्ख लोग ज्ञान होने पर इसको त्याग कर देते हैं। यदि ऐसा ही हो तो अभी तक ऐसा देखने में नहीं आया कि किसी मूर्ख मण्डली को पाषाणादि मूर्त्तियों की पूजा करते २ ईश्वर का ज्ञान हुआ हो और उन्होंने मूर्त्ति-पूजन छोड़ दिया हो। हां यह तो देखने में आया है कि सहस्र मूर्ख जन्म जन्मान्तरों तक मूर्त्ति पूजन करते २ मर जाते हैं परन्तु किसी को ज्ञान नहीं होता। इसका कारण यही है कि वहां उन मूर्त्तियों में स्वयमेव ज्ञान का लेशमात्र भी नहीं होता तो भला फिर सेवकों को कहां से आ जावेगा? क्योंकि जो पदार्थ जिसके पास होता है वही दूसरों को दे सकता है। हां जैसा मूर्त्ति-पूजन वेदादि शास्त्रानुकूल है अर्थात् चेतन मूर्त्तियों की यथावत् सेवा करना उससे अवश्य ज्ञान हो सकता है। इसके उपरांत यह भी विचार करना योग्य है कि यदि मूर्खों के लिये पाषाणादि पूजन हो तो किन मूर्खों के लिये? अर्थात् एक तो जन्म से, बाल्यावस्था से सभी मूर्ख होते हैं तथा एक मूर्ख वे हैं कि जिन को बड़ी अवस्था में किसी प्रकार की विद्या वा सत्संग से ज्ञान हुआ। यदि बालकों के लिये है तो उनको सन्ध्योपासनादि का विधान जैसा ब्रह्मचर्य आश्रम से ही धर्मशास्त्रों में किया गया है वैसा धर्मशास्त्र का उपदेश क्यों नहीं किया गया और उन बालकों को सन्ध्योपासनादि वा विद्याभ्यास से जब ज्ञान हो जाय तो उनके लिये पाषाण पूजन का उपदेश निरर्थक है। दूसरे प्रकार के मूर्खों को इस मूर्त्ति-पूजा से ज्ञान होना ही असम्भव है। कदाचित् मान भी लिया जावे कि मूर्खों के लिये है, तो फिर विद्वान् लोग क्यों करते हैं? यदि कोई कहे यह सब पूजन शूद्रों के लिये है तो भी उनको कालान्तर में ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। हां विद्वान् माहात्माओं की सेवा उन शूद्रों और मर्खों से कराई जावे कि जिससे उनको भी सत्संगरूपी गन्ध पहुंच कर उनके अन्तःकरण की धीरे २ शुद्धि होने लगे। शूद्रों को तीनों वर्णों की सेवा करना बतलाया गया है, बहुधा जन यह भी कहते हैं कि प्रतिमा में मन लग जाता है परन्तु उपासना प्रकरण में वेद वा किसी सत्य शास्त्रकार ने प्रतिमा में मन को ठहरा कर उपासना करना नहीं लिखा। फिर किस प्रकार से माना जावे? देखिये

अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज से कहा है कि मन बड़ा चंचल है, इसका रोकना अत्यन्त कठिन है, जैसा कि—

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥

इस पर श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज ने उत्तर दिया कि सचमुच मन ऐसा ही चंचल है उसका ठहरना बहुत कठिन है, तथापि अभ्यास और वैराग्य से ठहराया जाता है । ऐसा ही योगसूत्र में भी लिखा है—

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

अर्थात् चित्त का निरोध अभ्यास और वैराग्य से करना चाहिये । मन को स्थिर करने के लिये प्रति दिन अभ्यास और जिन वस्तुओं के लिये मन अधिक चलता है उनसे वैराग्य करके रोकना चाहिये, क्योंकि जिसकी उपासना करना चाहते हैं उस आत्मा में चित्त को स्थित करने के लिये बार २ यत्न करने को अभ्यास कहते हैं, तथा सांसारिक वा पारमार्थिक सम्बन्धी सुखों के भोग की तृष्णा को छोड़ना वैराग्य कहाता है । और ऐसा ही भगवद्गीता में लिखा है—

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

स्थिरता रहित चंचल मन जिधर को निकले उधर से बार बार रोक कर अन्तःकरण के वशीभूत करे इत्यादि प्रकार से मन के अर्थ अनेक उपाय शास्त्रकारों ने लिखे हैं, पर यह किसी ने नहीं लिखा कि ईश्वर की प्रतिमा पाषाणादि की बना कर उसमें चित्त को ठहरावे तो किस प्रकार मान लिया जावे कि चित्त को स्थिर करने के लिये प्रतिमा होनी चाहिये ? और यह बात युक्ति से भी सिद्ध नहीं कि जो विषय भौतिक इन्द्रियों के द्वारा प्रत्यक्ष करें उसी को हम जान सकें । यदि ऐसा हो तो भूंख प्यास दुःख हानि लाभ आदि अनेक विषय हैं जिनको हमने कभी इन्द्रियों के द्वारा न प्रत्यक्ष किया और न कर सकेंगे कि भूंख इतनी लम्बी चौड़ी मोटी पतली काली पीली आदि है, परन्तु अवश्य जानते हैं कि यह भूंख प्यास आदि है, किन्तु उस निराकार भूख प्यास आदि के जानने के लिये किसी पाषाणादि की प्रतिमा बनाने की आवश्यकता नहीं पड़ती और मूर्ख पण्डित सभी

उस को जानते हैं, तो निराकार ईश्वर को जानने के लिये पाषाणादि निर्मित प्रतिमा की क्या आवश्यकता ? देखिये श्रीमद्भागवत् दशमस्कन्ध उत्तरार्द्ध अ० ८४ श्लोक १३ में लिखा है—

यस्मात्मबुद्धिः कुणपे त्रिधातुकेस्वधीः कलत्रादिषु भौमइज्यधीः ।
यस्तीर्थबुद्धिः सलिलेनकर्हिचित् जनेष्वभिज्ञेषु सएव गोखरः ॥

अर्थात् जो धातु आदि में आत्मबुद्धि करते हैं और नदी नाले पहाड़ आदि स्थान में तीर्थबुद्धि और स्त्री पुत्रादि में ममता रखते हैं वे मनुष्यों के बीच में गधे वा बैल हैं। महाभारत में लिखाहै —

तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्टपाषाण मृरमये ।
प्रतिमादौ मनो येषां ते नरा मूढ़चेतसः ॥

तीर्थ और पशुओं के यज्ञ, काष्ठ, पाषाण मिट्टी की प्रतिमा अर्थात् तसवीरों में जिनका मन है वे मनुष्य मूर्ख हैं, और भी कहा है—

मृच्छिलाधातुदार्वादि मूर्त्तावीश्वरबुद्धयः ।
क्लिश्यन्ति तपसा मूढ़ा परां शान्ति न यान्ति ते ॥

जो जीव सर्वव्यापक परमात्मा न्यायकारी की धातु, पत्थर, लोहा, पीतल चांदी, सोना आदि किसी भांति की मूर्ति बनाते हैं वे अज्ञानी हैं। और गीता में लिखा है—

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।
परं भावमजानन्तो ममाव्यक्तमनुत्तमम् ॥

अविवेकी, विचार-रहित, मुझ निराकार को मूर्तिमान मानते हैं, मेरे परम भाव अर्थात् मुख्य प्रयोजन को नहीं जानते। यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र ३ में लिखा है—

नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः । हिरण्यगर्भ इत्येष मा माहिंसीदित्येषा यस्मान्नजात इत्येषा ॥

जो परमेश्वर न कभी माता के संयोग से उत्पन्न हुआ न होता है न वह होगा न शरीर धारण करके बालक तरुण और वृद्ध होता है उस की प्रतिमा अर्थात् माप का साधन प्रतिविम्ब और उसके सदृश चित्र किसी प्रकार का नहीं है, क्योंकि वह मूर्ति-रहित, अनन्त, सबसे रहित और

सब में व्यापक है, जो तेजवाले सूर्य्यादिकों की उत्पत्ति का कारण है उसी की उपासना करनी योग्य है अन्य की नहीं। यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र १८ में यह बात प्रकाशित की है कि पदार्थ को जान के मनुष्य ज्ञानी होता है (वेद कहता है) कि परमेश्वर को ही यथार्थ जान के ठीक ठीक ज्ञानी होता है जो सबसे बड़ा, सबका प्रकाश करनेवाला है, अविद्या अन्धकार और अज्ञानादि दोषों से पृथक् है वही परमेश्वर सबका इष्टदेव है जिसको जाने बिना कोई मनुष्य पूर्णज्ञानी नहीं होता उस परमात्मा को जान और प्राप्त होकर निःसन्देह मरणादि क्लेशों के समुद्र से पार होकर परमानन्द अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। परमात्मा के उपरान्त मुक्ति का कोई मार्ग नहीं।

श्वेताश्वेतर उपनिषद् अध्याय ६ अनु० ११ में लिखा है, कि—

एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षीचेतः केवलो निर्गुणश्च॥

ईश्वर एक है, वह सबका प्रकाश करनेवाला, चेतनस्वरूप, सब जगत् के भूत प्राणियों में व्यापक, अन्तर्यामी, कर्मों का अधिपति, स्वामी सबका आधारभूत सबका साखी, सहायता देनेवाला है, (परन्तु वह आप किसी की सहायता कभी नहीं लेता), और वह जगत् के गुणों से रहित (अर्थात् कभी साकार नहीं होता) है। बृहन्नारदीय पुराण अध्याय ११ श्लोक ३३ में लिखा है कि जो आप ही सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, अजन्मा, पर से अत्यन्त पर प्रभु हो उसको मैं किस प्रकार धारण करूं।

इसके उपारन्त फिर लिखा है कि परमात्मा का जगत् में कोई पति नहीं और न कोई उसको जानता है, वह सबका कारण है और जीवों का वह पति भी है, उसका न कोई उत्पत्तिकर्त्ता और न अधिपति है। केन उपनिषद् में लिखा है कि जो वाणी का साधन नहीं अर्थात् अविद्या युक्त वाणियों से प्रसिद्ध नहीं हो सकता, जो सबकी वाणियों को जानता है उसी को परमेश्वर जानो. और को नहीं।

योगशास्त्र में लिखा है कि अविद्यादि क्लेशों से रहित है, फलदायक कर्मों की वासना से भी पृथक्, सब जीवों से श्रेष्ठ और व्यापक है।

तैत्तिरीय उपनिषद् में लिखा है कि ब्रह्म सत्स्वरूप, ज्ञानस्वरूप, अनन्तस्वरूप है, जो वेद के द्वारा योग से प्राप्त होता है।

देवी भागवत् स्कन्ध ३ अध्याय ६ श्लोक ७० में लिखा है कि जितने पदार्थ संसार में दृष्टिगोचर होंगे वे सब त्रिगुणयुक्त होंगे क्योंकि निर्गुण तो संसार में न हुआ न होगा, निर्गुण तो वही परमात्मा है जो कभी भी क्षय नहीं होता।

दृश्यं च निर्गुणं लोके न भूतं नो भविष्यति ।
निर्गुणः परमात्माऽसौ न तु दृश्यः कदाचन ॥७०॥

स्कन्ध ३ अ० ७ श्लोक ६ में ब्रह्मा जी ने कहा है कि निर्गुण का रूप नहीं होता, जो कि दृष्टिगोचर होसके क्योंकि जो पदार्थ दीख पड़ता है उसका नाश अवश्य होता है और अरूप दृष्टि में नहीं आता।

निर्गुणस्य मुने रूपं भवेद्दृष्टिगोचरम् ।
दृश्यं च नश्वरं यस्मादरूपं दृश्यते कथम् ॥ ६ ॥

बृहन्नारदीयपुराण अ० ३ श्लोक २२ में लिखा है कि जो परब्रह्म है सो तो निर्मल, तेजस्वी, मन वाणी का अगोचर अर्थात् जो कहने समझने में न आवे, ऐसा है।

पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अ० में एक बार लक्ष्मी जी ने भगवान् से पूंछा कि आप किस हेतु दुग्ध के समुद्र में शयन करते और लोकों में उदासीन की नाईं ऐश्वर्य को स्थापित सा करते हो, तब लक्ष्मी का यह अभिमान से भरा हुआ वचन सुन भगवान् विष्णु जी ने कहा कि हे सुन्दर मुखवाली ! मैं सोता नहीं हूं। अपने माहेश्वर शरीर को तत्व के अनुवर्तिनि भीतर डूबी हुई दृष्टि से देखता हूं।

हे देवी ! कुशाग्रबुद्धि से जिसको योगी जन हृदय के भीतर देखते हैं और वेदों के सार को बारम्बार विचारते हैं।

वही अक्षर ज्योति, आत्मरूप, रोगरहित, अखण्ड, आनन्द के समूह को निष्पादन करनेवाली द्वैत से वर्जित है।

जिसके आश्रय संसार की वृत्ति है जो हम भी धारण करते हैं वह संसार का तत्व स्थावर जंगम नीति से रहित है। विष्णुपुराण अंश २ अध्याय १४ श्लोक २६ में लिखा है कि वह एक सर्वव्यापक, समानरूप, शुद्ध, निर्गुण, प्रकृति से परे, जन्म वृद्धि मरणादि से रहित, सब में गत, अव्यय आत्मा है।

एको व्यापीसमः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः ॥२६॥

पद्मपुराण प्रथम सृष्टि खण्ड द्वितीय अ० में पुलस्त्यजी ने ब्रह्मा से कहा है कि सब परों से परे हैं इसलिये परमात्मा कहाते हैं, वे रूप वर्णादिकों से रहित हैं वा महत्वादि से विवर्जित हैं।

वृद्धि वा नाश से भी रहित हैं, इससे उनका अन्त कभी होता ही नहीं; वह सत, रज, तम तीनों गुणों से भी रहित हैं, वे केवल सदा प्रकाशित रहते हैं। और इसी के तीसरे खण्ड में लिखा है कि वह पद-हीन कर रहित, अकर्ण वा मुख वर्जित है; परन्तु तीनों लोकों के रहनेवालों के क्षण क्षण के सब कर्मों को देखता रहता है वा लोगों के कहे हुए वा अन्तःकरण के सब वचनों को अच्छे प्रकार सुन लेता है, गतिहीन होने पर सब कहीं चला जाता है वा उसका कुछ रूप नहीं वा पदार्थों को अच्छे प्रकार ग्रहण करता है। वह पद हीन है पर अति वेग से दौड़ता है। वह सब कहीं दिखलाई देता है और बिना पैरों के सब कहीं पहुंचता है वा जिनको सब देवेन्द्र तथा मुनि लोग भी नहीं देखते परन्तु वह उन सबों को प्रत्यक्ष देखता है, चाहे इसी लोक में रहे वा अन्य लोक में। गीता अध्याय ९ श्लोक ११ में लिखा है कि मूर्ख लोग परमेश्वर को मनुष्य का शरीर धारण करनेवाला और उत्पन्न हुआ जानते हैं परन्तु वह सब का महेश्वर अर्थात् स्वामी है और सर्वव्यापक होने से एक स्थान पर मूर्तिमान नहीं हो सकता बृहन्नारदीयपुराण अध्याय ३३ में लिखा है कि जो स्वयं प्रकाश नित्य परमात्मा है और हे विप्र, जो अंगरहित है तिसके जन्म कर्म कैसे हो सकते हैं, जो केवल ज्ञान ही से जानने योग्य, अजर, अमर, सनातन परब्रह्म है और जो परिपूर्ण अरु सच्चिदानन्द ऐसे तिससे परे और कुछ नहीं।

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳ शुद्धमपापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

उक्त मन्त्र में अकाय, अव्रण, अस्नाविर जो ईश्वर के विशेषण दिये हैं इससे स्पष्ट जाना जाता है कि ईश्वर निराकार है, क्योंकि काय नाम शरीर का है जिसके 'काय' शरीर नहीं वह अकाय कहाता है तथा वेदों में

और भी बहुत मन्त्र हैं जिनमें ईश्वर को निराकार कहा है तथा उपनिषदों में भी लेखा है—

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः
स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥

अर्थात् वह ईश्वर हाथ पैरों से रहित है पर वेगवान् और ग्रहण करने-वाला है, वह नेत्रवान् नहीं पर देखता है, वह कानों से रहित है पर सुनता है, वह सबको जानता है परन्तु उसका जाननेवाला कोई नहीं, उसको अग्र पुरुष पुराण परमात्मा कहते हैं।

अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथारसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं विचार्य्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥

दिव्योह्यमूर्त्तः पुरुषः स वाह्याभ्यान्तरोह्यजः।
अप्राणोह्यमनः शुभ्रोह्यक्षरात् परतः परः ॥

इत्यादि वाक्यों में जो अशब्द, अस्पर्श, अरूप तथा अनादि, अनन्त अमूर्त्ति और नित्य आदि विशेषण ईश्वर के लिये दिये हैं, इससे निश्चय है तथा वेदों में अन्य भी अनेक मन्त्र हैं जो ईश्वर को निराकार प्रतिपादन करते हैं, और युक्ति से भी ईश्वर निराकार है, क्योंकि जो पदार्थ साकार है वह एक देश में रह सकता है सर्वव्यापक कभी नहीं हो सकता, ईश्वर सर्वव्यापक है तो फिर वह साकार कैसे हो सकता है ? हां अन्तर्यामी सर्वोपरि विराजमान सनातन आदि गुण सहित परमेश्वर की उपासना करने को सगुण और 'अकाय' अर्थात् काया से रहित, पापाचरण कभी नहीं करता, सुख दुःख कभी नहीं होता इत्यादि गुणों से पृथक् मानकर जो उपासना करते हैं वह निर्गुण उपासना कहलाती है। देखिये य० अ० १० मन्त्र २५ में परमात्मा आज्ञा देते हैं कि जो मनुष्य अपने हृदय में ईश्वर की उपासना करते हैं वे सुन्दर जीवनादि के सुखों को भोगते हैं और कोई भी पुरुष ईश्वर के आश्रय के विना पूर्ण बल और पराक्रम को प्राप्त नहीं हो सकता। जैसा कि—

इयदस्यायुरस्यायुर्मयि धेहि युङ्ङसि वर्चोऽसि वर्चो मयि धेह्यूर्गस्यूर्जं मयि धेहि इन्द्रस्य वां वीर्यकृतो बाहू अभ्युपावहरामि ॥

और ऐसा ही इसी अ० के २४ वें मं० में भी लिखा है, इस लिये प्यारे सांसारिक भाइयो! आओ, हम सब मिलकर उस परमेश्वर को वेद द्वारा जान कर नाना प्रकार से उसकी स्तुति, प्रार्थना, उपासना सदा करें और कभी किसी समय में भी उस परम पिता अन्तर्यामी का क्षणमात्र के लिये भी त्याग न करें, क्योंकि वही हमारे आत्मिक रोगों का नाश करनेवाला डाक्टर है, वही हमारा पालन करनेवाला, हमें ज्ञान देनेवाला और हमको दुःखों से छुड़ा कर सुख प्रदान करनेवाला है, उसके उपरांत कोई दूसरा नहीं।

त्यौहार

इस समय भारतखण्ड में त्यौहारों की भी धूम धाम है, कोई महीना ऐसा न होगा कि जिसमें कोई त्यौहार न होता हो, बरन् दो दो चार २ त्यौहार एक २ महीने में आन पड़ते हैं जिनके नियत करने के कारण भी पृथक् २ हैं, परन्तु अब कुछ के कुछ समझे जाते हैं और प्राचीन समय में इतने त्यौहार न थे। हां जब से भारत में विद्या का प्रकाश कम हुआ और अविद्या ने अपना राज्य किया, तब से स्वार्थियों ने नाना लीला रचकर अपने २ मतलब गांठने के अर्थ अनेकान् त्यौहार नियत कर लिये जिनका यदि ब्यौरेवार वर्णन किया जावे तो एक बड़ी पुस्तक बन जावे, इस कारण हम श्रावणी, दशहरा, दिवाली, देवोत्थान, बसन्त, होली जो सबसे प्राचीन त्यौहार हैं उनका संक्षेप से वृत्तान्त और मुख्य प्रयोजन लिखते हैं कि जिस कारण यह त्यौहार नियत किये गये हैं। और ऐसा गड़बड़ कर लिया है उसका भी सज्जनों के सम्मुख प्रकाश करता हूं। अब निष्पक्ष हो विचारपूर्वक प्रत्येक त्यौहार के मुख्य कारण को जान यथार्थ व्यवहार करना उचित है और इन सम्पूर्ण त्यौहारों में जो जो मिथ्या बातें हैं उनका त्यागना अभीष्ट है कि जिससे आगे को सुख हो।

ऋषितर्पण वा श्रावणी

अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां च व्यतिक्रमः।
त्रीणि तत्र भविष्यन्ति दुर्भिक्षं मरणं भयम्॥

इस श्लोक के अर्थों से प्रकट होता है कि इसी ऋषितर्पण का अशुद्ध नाम 'सलोना' प्रसिद्ध है, अब हम इसके तात्पर्य का प्रकाश करते हैं कि मुख्य प्रयोजन इसका क्या है और हमको क्या करना चाहिये? प्यारे सुजनो! यह बात स्पष्टरूप से प्रकट है कि संसार में विद्वानों और महात्माओं की प्रतिष्ठा करना ही सुख का हेतु और भलाइयों का मूल है और जिस स्थान पर ऐसे गुणी और सत्पुरुषों का अच्छे प्रकार से आदर सत्कार नहीं होता, वहीं नाना प्रकार के उपद्रव मचते हैं जैसा कि उपरोक्त श्लोक के अर्थों से प्रकट होता है। जहां अपूज्य अर्थात् मूर्खों की पूजा और ज्ञानी महात्माओं का असत्कार होता है वहां तीन बातें होती हैं—अकाल, मरी और व्यथा, जो अधर्म के फैलने से प्रकट होती हैं। हमारे प्राचीन सत्यशास्त्रों में भी तीन प्रकार के क्लेश लिखे हैं। पहिला 'आध्यात्मिक' जो कि ज्वरादि रोगों से शरीर में पीड़ा होती है। दूसरा 'आधिभौतिक' जो प्राणियों से होता है। तीसरा 'आधिदैविक' जो मन और इन्द्रियों के विकार और अशुद्धि और चंचलता से क्लेश होता है। यदि ध्यान लगा कर देखा जावे तो ये तीनों दुःख विद्वान और महात्माओं के निरादर करने से उत्पन्न होते हैं, क्योंकि अध्यात्मिक जो अन्तःकरण के दोषों से होता है और उसकी शुद्धि और अन्तःकरण की शुद्धि सत्योपदेश से होती है, सत्योपदेश विद्वानों का (जो ऋषिमुनि वा देवता के नाम से पुकारे जाते हैं) काम है। इसके उदाहरण उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रन्थों में बहुत से पाये जाते हैं कि मन की शांति के लिये बड़े बड़े विद्वान् भी सत्योपदेश सुनने को आत्मतत्वज्ञानियों के निकट जाया करते थे। 'आधिभौतिक' शारीरिक रोगों वा घातक जन्तुओं से होता है जिससे आराम पाना वैद्यक विद्या के आधीन है, जो पूर्ण विद्वानों के सत्संग से आता है। तीसरा 'आधिदैविक' जो सर्दी गर्मी वर्षा के न्यूनाधिकत्व से होता है, उसका उपाय और दूर होना भी महात्माओं के हाथ है, क्योंकि यह सज्जन सदा हर एक ऋतु और मौसम के अनुकूल योग्य पदार्थों से हवन यज्ञ करते थे जिसके प्रभाव से वायु शुद्ध और स्वच्छ हो कर समय समय पर यथावत् वर्षा होती थी, और कभी मरी, वबा और हैज़ा का नाम न सुना जाता था। और जो दुःख चोर डांकू और घातक जन्तुओं से होते हैं उनका प्रबन्ध राजऋषि करते थे। इस उपरोक्त व्याख्यान से स्पष्ट प्रकट हो गया कि सब प्रकार के दुःख विद्वान और महात्माओं के परिश्रम से दूर हो सकते हैं,

जहां उनकी प्रतिष्ठा नहीं, वहां उनका मिलना दुर्लभ है। ऐसा ही वेदों में भी पाया जाता है जैसा कि अथर्ववेद के प्रपाठक ३५ कांड १९ अनुवाक १ मं० १४ में लिखा है—

शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिः सर्वे मे देवाः।

अर्थ—सम्पूर्ण देवता (विद्वान् लोग) प्रत्येक प्रकार के दुःख दूर कर के शान्ति करनेवाले हों।

इसी प्रकार और भी अथर्ववेद में लिखा है कि जो विद्वानों में श्रेष्ठ यज्ञ करानेवाले हैं और जो यज्ञ में सत्कार करने योग्य हैं जिनके लिये 'हव्य' अर्थात् उत्तम सामग्री से भाग किये जाते हैं और वह सर्व विद्वान् (देवता) अपनी स्त्रियों के साथ आकर इस यज्ञ को उत्तम बुद्धि से पूर्ण करें।

ये देवानामृत्विजो ये च यज्ञियायेभ्यो हव्यं क्रियते भागधेयम्।
इमं यज्ञं सह पत्नीभिरेत्यावावन्तोदेवा समिषा मादयन्ताम्॥

अ० प्र० १९ कां० ५७ मं० १०।

इन मन्त्रों से स्पष्ट प्रकट है कि हमारे सम्पूर्ण कार्य विद्वान् महात्मा ऋषियों के द्वारा ही हो सकते हैं, यही कारण था कि प्राचीन राजा महाराजा विद्वानों और ज्ञानियों का आदर सत्कार तन मन धन से करते थे। देखिये महाराजा दशरथ ने श्रीविश्वामित्रजी महाराज जो वन के रहनेवाले एक ऋषि थे, जब महाराजा के निकट आये तब उन्होंने उनका यहां तक मान और सत्कार किया कि अपने प्यारे कुलभूषण श्रीरामचन्द्रजी को यज्ञ की रक्षा और उनकी सेवा सहायता के अर्थ साथ कर दिया। इसी प्रकार राजा और प्रजा अपनी शक्ति के अनुकूल इन सत्पुरुषों की सहायता और सेवा करते रहे हैं, परन्तु वर्षा के इन चार महीनों में विशेष कर सेवा और सत्कार का अधिक प्रचार था, क्योंकि इन्हीं दिनों में वर्षा की अधिकता के कारण व्यापार कम होता था, व्यापारी जन अपने घरों पर निवास करते थे और ऋषि महात्मा विद्वान् लोग जंगल पहाड़ों से आकर नगरों या उन के समीप में निवास करते थे। इस लिये यह समय सत्संग के लिये अत्यन्त उचित और योग्य था। घर से मनुष्य उनके पास जाकर उनके सत्संग से नाना लाभ उठाते थे। आषाढ़ और सावन दो महीने के सत्संग से गृहस्थ और राजपुरुष लोग विचारते थे कि अमुक ऋषि वा महात्मा इस सत्कार वा सम्मान के योग्य हैं, वैसा ही इस पूर्णमासी के दिन जो श्रावण महीने

का अन्त दिवस है, प्रत्येक ऋषि महात्मा विद्वान् के साथ यथायोग्य वित्त समान दान देते थे, और जो मनुष्य यज्ञोपवीत से भ्रष्ट होते थे उनको यज्ञोपवीत दिये जाते थे, और जो कुसंग के कारण पतित होजाते थे उनको भी इस समय मर शुद्ध किया जाता था। वह सम्पूर्ण महात्मा इन गृहस्थी और राजपुरुषों से सम्मान पाकर धर्मोपदेश किया करते थे और राजा प्रजा को हवन यज्ञ की ओर रुचि दिलाते और अपने हाथों से भी करते कराते थे। यज्ञ के लाभ अनेक हैं जिनका वर्णन पंचयज्ञों में किया गया है।

इस ऋतु में अधिक यज्ञ करने की प्रेरणा इस कारण है कि इन दिनों में स्थान स्थान पर पानी रुक कर वायु को बिगाड़ देता है कि जिससे नाना रोगों के उत्पन्न होने का भय होता है, इस कारण प्राचीन समय के ऋषि मुनियों ने इन सब बुराइयों के मेटने का उपाय एक यज्ञ करना ही विचारा था और वह आप इन परोपकारी यज्ञों में वेद मन्त्रों को उच्चारण करते थे जिनमें यज्ञ की रीति और फल, परमात्मा की उपासना और प्रार्थना होती है, करते कराते थे। कैसा शुभ समय वह होता होगा क्योंकि प्रथम तो वर्षा ऋतु के कारण हरे हरे पौदों की हरियाली आंखों को आनन्द देती होगी, दूसरे 'यज्ञ' के होने से उसकी सुगन्धों की लपटें सब स्थानों और शरीर को सुगन्धित कर देती होंगी, तीसरे ऋषि और महात्माओं के सत्योपदेश से अन्तःकरण के मल दूर होते होंगे, तदनन्तर वह सर्वजन उन सत्पुरुषों और ऋषि मुनि महात्माओं को आदर सत्कार कर विदा करते थे, उसी समय वे महात्मा जन उनको आशीर्वाद देते थे, जिसको ऋषितर्पण कहते हैं। आर्यों में जो देवयज्ञ करने की शिक्षा है वे विशेष कर उन्हीं महानों में पूर्ण होते थे, राखी वा कलावा हाथ में बांधने की रीति जो अब तक प्रचलित है यह उनका चिन्ह था। जो मनुष्य इन दिनों में महात्माओं के सत्संग और उपदेश से लाभ उठाते, उनके हाथ में यह शुभ चिन्ह बांधा जाता था।

❀ दशहरा ❀

यह हमारे देश का प्रसिद्ध त्यौहार है जो श्रीरामचन्द्र धर्मात्मा परोपकारी के स्मरण का दिन है कि जिनके नाम का स्मरण प्रत्येक की जिह्वा पर है। जिनको मरे हुए लाखों वर्ष हो गये परन्तु उनके गुणों की प्रशंसा प्रत्येक जन करता है। ये महात्मा उस समय के मनुष्यों में सर्वोपरि

थे जिनके समान इस समय तक पृथ्वी पर श्रीकृष्णचन्द्र महाराज के सिवाय और कोई नहीं हुआ । देखिये अपने पिता की आज्ञा को मान राज्य के सुखों को त्याग कर चौदह वर्ष बन में रहना स्वीकृत किया और वहां सेना के न होने पर भी वनवासियों के दुःख को दूर किया । चौदह वर्ष की आयु में विश्वामित्र ऋषि की सेवा ग्रहण कर अनेक दुष्टों को मारा और सदा सत्य को ही सम्पूर्ण कार्यों में प्रधान समझ कर उसका कभी त्याग न किया । इसी कारण सम्पूर्ण प्रजा जन उनको अधिक चाहते थे । आप ही ने राजा जनक का प्रण पूरा कर जानकी के साथ विवाह किया था, यह आप ही की सामर्थ्य थी कि वन के बीच में होने पर भी दुष्ट राक्षसों को मार कर वनवासियों को आराम दिया । क्या कोई नहीं जानता कि इन्हीं प्रतापी महात्मा ने लंका के राजा रावण को मारा था । यह राजा भी महाबली और बलवान् था । जिस दिन इस दुष्ट को मारा वह दिन कुआर सुदी १० थी जिसको विजय दशमी कहते हैं । जो श्री महाराज के स्मरणार्थ आज दिन तक इसी दिन पर त्यौहार मनाया जाता है । दूसरे वर्षा के दिनों में सम्पूर्ण असबाब राजाओं का पड़ा रहता है, क्योंकि वर्षा के दिनों में चढ़ाई आदि बहुत कम होती हैं और हथियारों पर भी मैल जम जाता है, इसलिये वर्षा के अन्त में एक दिन नियत किया गया कि उस तारीख़ को सम्पूर्ण माल असबाब ठीक होजावे और बड़ी धूमधाम कीजावे और वर्ष भर का हिसाब किया जावे इत्यादि बातों के लिये यह त्यौहार किया जाता है ।

परन्तु कैसे शोक का स्थान है कि वर्तमान समय में मुख्य अभिप्राय को छोड़ कर ऐसा आश्चर्ययुक्त रंग रचा है जो बुद्धि के अत्यन्त विरुद्ध है, क्योंकि ऐसे सच्चे परोपकारी धर्मात्मा के स्थान पर ऐसे ऐसे मूर्ख लड़कों के स्वांग बना कर दिखलाते हैं जिनको किसी प्रकार का ज्ञान नहीं. तिसपर उनके चाल चलन ऐसे ख़राब होते हैं कि जिसके कथन मात्र से लाज आती है । जो लुच्चों की गोद में सोते हैं, उन्हीं का नाम राम लक्ष्मण इत्यादि होता है ? तिसपर दूसरे की नक़ल बनाना बहुत बुरा है जैसा मनुजी ने लिखा है-

दशसूनासमश्चक्रं दशचक्रसमोध्वजः ।
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥

अर्थात् किसी की नक़ल बनाने में मनुजी ने १००० गौहत्या का पाप लिखा है, भाट भँड़ैले बहुरूपिये आदि तो इस पाप कर्म से सदा अपना जवीन

ही करते हैं परन्तु स्वांग, रामलीला तथा कृष्णलीला बनानेवाले अपना धन व्यय करके नक़ल बना कर इस पाप में क्यों पड़ते हैं।

❀ दिवाली ❀

इसके विषय में पुराणों के वचन सुनाते हैं देखिये कार्तिक माहात्म्य में लिखा है कि प्राचीन समय में एक ब्राह्मण था जो धन की लालसा में विष्णु महाराजजी की सेवा करने लगा, थोड़े दिनों में जब विष्णु महाराज उसके तप से प्रसन्न हुए तो उसके निकट पहुंचे और पूंछा कि तुम क्या चाहते हो ? उसने धन (लक्ष्मी) के मिलने की प्रार्थना की उन्होंने कहा कि तुम अपने स्थान पर जाकर राजा से यह मांगो कि मिती कार्तिक बदी अमावस की रात्रि को कोई नगर में दिया न जलाने पावे। जब यह प्रार्थना अंगीकृत हो जावे तो तू अपने घर में अच्छे प्रकार से दियों को जलाना. उस दिन लक्ष्मी उस नगर में आवेगी और सब नगर में अँधेरा होने के कारण घबड़ा कर तेरे घर में घुस पड़ेगी। इस बरदान को पाकर घर आ विष्णु की आज्ञानुसार उसने राजा से प्रार्थना की जो तुरन्त स्वीकार हुई। तब उस ब्राह्मण ने वैसाही किया जब आधीरात का समय हुआ और लक्ष्मी जी आईं तो चारों ओर नगर भर में अँधेरा फैला हुआ देख कर उस ब्राह्मण के घर में कि जो नाना भांति से सजा हुआ प्रकाशित होरहा था घुस गई, तब ब्राह्मण डण्डा लेकर पीछे पड़ा कि तू मेरे घर से निकल तू बड़ी चञ्चल विष्णु की स्त्री है. तू कहीं नहीं ठहरती मेरे घर में भी नहीं ठहरेगी. इसलिये मैं तेरी अपने घर में रक्षा न करूँगा, लक्ष्मी ने अत्यन्त विनती की और प्रण किया कि मैं तेरे घर से कभी न जाऊँगी। वह ब्राह्मण लक्ष्मी के कारण धनाढ्य होगया, लोगों ने उसे धनवान् देख कर लक्ष्मी की चाहना में उसी के अनुसार उस दिन सब घरों को स्वच्छ और सुथरा कर दीपमालिका की। उसी दिन से यह रीति चली आती है जिससे इसके कार्यकर्त्ता धन दौलत से भरे पुरे रहते हैं।

अब इस उपरोक्त लेख पर दृष्टि डालने से प्रत्यक्ष प्रकट होता है कि ब्राह्मण ने दुःखी होकर धन (दौलत) की प्रार्थना की थी न कि विष्णु महाराज की स्त्री की, फिर श्रीविष्णु जी ने लक्ष्मी प्राप्ति का यह अनोखा उपाय ब्राह्मण को क्यों बतलाया ? ऐसे विष्णु को आप क्या कहेंगे कि जिसने अपनी स्त्री के मिलने का उपाय दूसरे को बताया और आपने

सदा के लिये अपनी स्त्री की प्रथकता स्वीकार की। यदि उस शहर वा नगर में राजा के हुक्म से अँधेरा था तो और आस पास के नगर गांव में तो आधीरात थी वहाँ क्यों न चली गई। तिस पर भी उस ब्राह्मण के कटु वचन सुन कर उसके गृह में सदा के लिये रहना स्वीकार किया पर यही नहीं लिखा कि वह क्यों कर लक्ष्मी की बदौलत धनवान् होगया क्योंकि वह अपने साथ कुछ लाई न थी उपाय क्या किया कि जिससे वह ब्राह्मण द्रव्यवान् हो गया?

अब देखिये कि इसके विरुद्ध शिवपुराण में दिवाली के विषय में इस प्रकार लिखा है—

श्रीकृष्ण महाराज ने युधिष्ठिर से कहा कि हे राजन्! प्राचीन समय में विष्णु महाराज ने बामन अवतार राजा बलि के फुसलाने के अर्थ लिया और इन्द्र को राज्य दिला कर बलि को पाताल में नियत किया और केवल एक दिन इस पृथ्वी पर राजा बलि के राज्य के अर्थ नियत किया इसलिये कार्तिक बदी अमावस को पृथ्वी पर दैत्यों का राज्य होता है और वह अपने स्वभाव के अनुकूल कार्य करते हैं, इसी से उस दिन जुआ खेलने की आज्ञा है।

प्यारे सुजनो! अब विचारिये कि 'दिवाली' कि जिसके अर्थ दो, वह भी एक दूसरे के विरुद्ध, तो बताइये किसको सच कहें और किसको झूठ, यदि उस दिन दैत्यों का राज्य मानते हो तो दत्यों के कार्य में शामिल होना और त्यौहार मान कर खुशी करना भी वृथा और अनुचित है।

अब हम आपको ठीक ठीक वृत्तान्त इस त्योहार का सुनाते हैं उसको विचारिये और सच को मानिये।

यह त्योहार वर्षा के समाप्त होने पर होता है। अत्यन्त वर्षा होने के कारण सम्पूर्ण मकानों की सकल सूरत बुरी और भोंड़ी हो जाती है। हमारे बड़े बड़े ऋषि, महात्मा, जो पदार्थ विद्या को यथावत् जानते थे और शौच को धर्म का एक लक्षण मानते थे, यह एक दिन इसी लिये नियत किया था, उसी दिन तक प्रजा के सब मकानों की सफ़ाई ठीक ठीक होजावे कि जिससे उनकी सुन्दरता में अन्तर न हो जावे और वायु अशुद्ध न होने पाये, इस कारण इस कार्य को आवश्यक समझ कर इस दिन त्योहार मान लिया कि जिससे सम्पूर्ण स्थानों में यह कार्य हो जावे।

अब रहा दीपमालिका का होना, यह भी प्रयोजन से पृथक् नहीं है, क्योंकि बुद्धि से ऐसा जाना जाता है कि श्रीरामचन्द्रजी विजयदशमी को रावण को मार कर कार्तिक बदी अमावस्या को अयोध्या में पधारे थे। क्योंकि राजा रामचन्द्रजी महाराज चौदह वर्ष पश्चात् वन से आये थे जो प्रजा के अत्यन्त प्यारे थे, इस प्रसन्नता को प्रकट करने के लिये दीपमालिका की थी और नवीन अन्न इत्यादि का हवन परमेश्वर का धन्यवाद मान कर प्रसन्नता मनाई थी। यह यादगार अब तक चली आती है और ऐसे ही चली जायगी।

❀ देवोत्थान अर्थात् ड्याठान ❀

यह त्यौहार मिती कार्तिक शुदी ११ को होता है। पूर्वकाल में ऋषि मुनि, देवता, विद्वान् महात्मा जो कि वर्षा ऋतु में शहरों में आ जाते थे इस तिथि से फिर अपना दौरा आरम्भ करते थे। इस समय तक ज्वार बाजरा आदि अन्न और गन्ना भी तय्यार होजाता था। इसलिये इसदिन सम्पूर्ण जन हवन करके अनेक प्रकार के पदार्थ विद्वानों को अर्पण करके प्रार्थना करते थे कि हे विद्वानों! आप संसार के भिन्न भिन्न भागों में जाकर अपने सदुपदेश से मनुष्यों को धर्मात्मा बनाइये। बहुधा मनुष्य ऋतु की नई नई वस्तुयें भी इस कारण इस तिथि तक नहीं खाते थे क्योंकि वे अपक्व रहती हैं, इसलिये आज हवन करके विद्वानों को खिला कर गन्ना आदि खाते थ। वर्त्तमान समय में भी स्त्रियां एक पड्डे के नीचे दिये और ऋतु पदार्थ रख कर सम्पूर्ण गृह के स्त्री पुरुष कहते हैं कि ' उठो देव बैठो देव, पामरिया चटिकावो देव" आदि। इससे भी वही अभिप्राय पाया जाता है, जो ऊपर वर्णन हुआ। इससे ज्ञात होता है कि मनुष्यमात्र मुख्य अभिप्राय को भूल गये, मगर लीक पीटते चले जाते हैं।

❀ हिमेष्टि अर्थात् वसन्त ❀

यह त्यौहार मिती माघ शुदी ५ को होता है, क्योंकि इस ऋतु में नई नई कोंपलें और हरे हरे पत्ते दरख्तों से निकलते हैं, पुष्प भी खिलते हैं और वसन्त ऋतु आरम्भ होजाता है और फस्ल रबी भी फूलने लगती है जिससे प्रजा का पालन होता है इसलिये सब मनुष्य मिल कर यज्ञ करके परमात्मा से धन्यवादपूर्वक प्रार्थना करते थे कि यह फस्ल अच्छे प्रकार से निर्विघ्न समाप्त हो, परन्तु अब तो केवल गेहूं, जौ की बाल और

लाखों राई आम के फूलों को ब्राह्मण लोग लाते हैं, और धनिक लोगों को प्रसन्न करने के अर्थ देकर कुछ प्राप्त करते हैं।

❋ होली ❋

यह त्यौहार फसल रबी का उत्सव है, इस वसन्तऋतु में वह अन्न फल फूल उत्पन्न होते हैं कि जिनसे मनुष्यों का जीवन आधार है। होली पर सब अन्न आधे पक जाते हैं इसलिये इस त्यौहार का नाम होलिका रक्खा है। क्योंकि संस्कृत में 'अर्द्धपक्वमन्नम् होलिका' अर्थात् आधे पके अन्न को होलिका कहते हैं। यह बात प्रत्यक्ष प्रकट है कि चनों के बूटा जो बहुधा गांव के लोग भून लेते हैं उनको होले कहते हैं, जो कुछ पके और कचे होते हैं। इससे जाना जाता है कि होलिका अर्थात् आधे पके नाज का पूजन, इसके सिवाय और कुछ नहीं हो सकता कि उसको आग में भूना वा पकाया जाय क्योंकि पूजा शब्द का यही अर्थ है कि जो पदार्थ जैसा है उसके साथ उसी प्रकार का वर्त्ताव किया जावे। इसलिये होली का जलाना अर्थात् नाज का भूनना उसकी पूजा है परन्तु बड़े शोक की बात है कि जिसको हम देवी मान कर त्यौहार मनायें फिर उसी को जला कर राख की ढेरी बना कर प्रसन्न हों।

हमारे देश में होली के विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि प्रह्लाद परमेश्वर का भक्त था, उसका बाप हिरण्यकशिपु नास्तिक था और प्रह्लाद को ईश्वराराधन करने को मना करता था, परन्तु वह इसको नहीं मानता था। इससे उसको नाना भांति से कष्ट देता था। यहाँ तक कि उसको आग में डाल दिया। यह भी प्रसिद्ध है कि हिरण्यकशिपु की बहिन कि जिसको यह आशीर्वाद था कि वह आग में न जलेगी, उसके साथ बिठाई गई, परन्तु वह तो जल गई और प्रह्लाद को परमेश्वर की कृपा से आंच भी न आई। इस पर जो हरिभक्त थे उन्होंने अधिक प्रसन्नता की और कहा कि प्रह्लाद तू बच गया और वह (होली) जल गई। निदान यह वही होली है, इसी कारण इसका वही नाम पड़ गया है।

प्यारे सुजनों! यह बात महा मिथ्या है क्योंकि आग में डालने से कोई बच नहीं सकता, चाहे कैसा ही भक्त हो, यह कभी हो नहीं सकता कि दो मनुष्य आग में बैठें, एक उनमें से मरजाय और दूसरे को कुछ आंच न आये। यदि परमेश्वर अपने भक्त को भक्ति करने के कारण जलने

न दे तो वह न्यायकारी नहीं रहता अर्थात् जो नियम और सृष्टिक्रम रचा है वह जाता रहे, सो यह असम्भव है। इसलिये परमेश्वर के प्रतिकूल कोई कार्य हो नहीं सकता। यदि ऐसा ही मान लिया जावे तो हरिभक्त के बचने की प्रसन्नता में जो आनन्द मनाया जावे उसमें शराब, भंग पीना, माजून नशे खाना, ख़ाक उड़ाना, कीच फेंकना आदि मिथ्या प्रपञ्च क्यों रचे जाँय? ऐसे समयों पर तो परमेश्वर के गुणानुवाद गाना और हवन आदि यज्ञ करके जगदीश्वर का धन्यवाद गाना चाहिये कि जिसने ऐसी कृपा की थी। भला बताओ तो सही यह कौन सी नीति और धर्म की बात है कि परमेश्वर तो ऐसी असम्भव कृपा करें और हम तुम उसके पलटे में और अशुभ कार्य करें। इसके उपरान्त इसी त्यौहार के साथ एक त्यौहार धुरहड़ी का भी है। यदि होली की व्युत्पत्ति यही मानी जाय तो धुरहड़ी की वजह क्या है? इसका सबब यों वर्णन करते हैं कि धुरहड़ी के दिन जो राख उड़ाई जाती है यह उसी आग की राख का चिन्ह है। परन्तु हम नहीं जानते कि इससे क्या उत्तम बात प्राप्त होती है। यदि राख उड़ाते तो राक्षस उड़ाते कि जिनके अफ़सर की बेटी आग में जल गई थी। हरिभक्तों को ख़ाक उड़ाने से क्या प्रयोजन? इसके सिवाय प्रह्लाद रात्रि के समय आग में डाला गया था, चुनाचे होली भी रात को ही फूंकी जाती है, इससे प्रकट है कि होली फूंकने की रात्रि से पहिले दिन खुशी करने का समय नहीं है, वरन् उस दिन रञ्ज करने का समय है, क्योंकि उस दिन प्रह्लाद के जल जाने का संदेह था, फिर इसका क्या कारण है कि रञ्ज के दिन खुशी मनावें और उस से अगले दिन ख़ाक उड़ावें? योग्य तो यह था कि धुरहड़ी के दिन खुशी मनाई जाती और होली के दिन रञ्ज किया जाता। इसको भी जाने दीजिये। अब ज़रा विचार कीजिये कि जिस आग को जला कर हम और आप पूजते हैं, वह सचमुच राक्षसी की चिता है, मानों आप होली की पूजा नहीं करते वरन् राक्षसी की कबर अर्थात् चिता पूजते हो। इसी प्रकार की और भी हज़ारों शंकायें उत्पन्न होती हैं कि जिनका उत्तर कुछ नहीं, इससे प्रत्यक्ष प्रकट है कि होली और धुरहड़ी की व्युत्पत्ति महामिथ्या है। और होली का मुख्य वही प्रयोजन है जो हमने ऊपर वर्णन किया और धुरहड़ी की व्युत्पत्ति यह है कि यह त्यौहार चैत बदी अमावस को होता था जैसा कि वर्त्तमान समय में दक्षिण में अब भी होता है और उसके अगले दिन

चैत्र सुदी प्रतिपाद को महाराजा विक्रमादित्य के गद्दी पर बैठने का दिन है। पस श्रीमहाराज के गद्दी पर विराजमान होने के पीछे होली के बाद यह दूसरा त्यौहार बढ़ाया गया है।

इन सबके सिवाय अबीर गुलाब उड़ाने, रंगपोशी करने की जो रीति प्रचलित है, यदि पौराणिकों से उसका कारण पूछा जावे तो वे कुछ नहीं बताते सिवाय इसके कि कृष्णचन्द्र महाराज ने गोपियों के साथ रंग खेला है कि जिसका किसी पुस्तक में प्रमाण नहीं। इससे यह कहना मिथ्या जान पड़ता है बुद्धि से विचार करने से जाना जाता है कि यह केसर कस्तूरी आदि सुगन्धित वस्तुयें हवन यज्ञ करते समय गुलाब आदि में पीस कर केवड़ा गुलाब की भांति गुलाबपाशी में भर कर जैसा कि विवाह आदि में छिड़के जाते हैं, छिड़के जाते होंगे।

ज्योतिष

प्रकट हो कि ज्योतिष शास्त्र का नाम लेकर वर्त्तमान समय में नाम मात्र के पण्डित लोग जातकर्म, नामकरण, विवाह और व्यापरादि में ग्रहों की दूकान खोल नाना भांति से धन हरण करते हैं। यह केवल हमारे और आपके संस्कृत विद्या के न जानने ही का कारण है। प्यारे भाइयो! ज्योतिष शास्त्र छः शास्त्रों में से एक शास्त्र है, उसमें गणित मरूर है, शेष फलित अनुमान मात्र है। परन्तु आज कल इस फलित के द्वारा लाखों के धन हरण करते चलेजाते हैं जिसके मुहूर्त्तचिन्तामणि, लघुजातक, नीलकण्ठी, जातकाभरण आदि नवीन ग्रन्थ बनते चलेजाते हैं। शोक तो हमको अपने देशीय भाइयों पर है जो यह भी विचार नहीं करते कि भूत, भविष्य, वर्त्तमान इन तीनों कालों का जाननेवाला सिवाय उस परमात्मा सर्वव्यापक के कोई नहीं हो सकता। फिर भाषा के जाननेवाले पत्रापांड़े कैसे जान लेते हैं, जैसा कि उत्पन्न होने के समय और अन्य अन्य समयों पर जन्मपत्री बना कर सुनाते कि इस लड़के को चौथे आठवें महीने बड़ी कठिनता से व्यतीत होंगे, इसके ग्रह ननसाल के लिये उत्तम हैं, परन्तु माता के लिये उत्तम नहीं हैं, धन स्थान में इसके ऐसा ग्रह पड़ा है जो बाप के धन को भी सोख लेगा, मृत्यु स्थान में सौम्य ग्रह बैठा है इसलिये इसके जीवन में खटका है इत्यादि बातें महामिथ्या हैं कि जिनके सुनने से हानि के अतिरिक्त और कुछ भी लाभ नहीं होता। हां

जन्मपत्री अवश्य बनाना चाहिये, क्योंकि सर्कार दर्बार विवाह आदि में अवस्था तिथि आदि की आवश्यकता पड़ती है, इसमें वार, तिथि, मास संवत्, बाप दादे का नाम ही लिखना योग्य है।

इसीलिये हमारे पुरुषों ने इसको बनवाया था। इसके उपरांत ग्रह इत्यादि लिखे जाते हैं यह सब अनुमानमात्र हैं जिनसे हानि के अतिरिक्त कोई लाभ नहीं जान पड़ता। प्यारो! ज्यों २ इन जन्मपत्रियों की दक्षिणा अधिक मिलती गई त्यों २ यह भी अपनी दशा पलटती गईं अर्थात् बहुत बड़ी, नाना प्रकार के रंगों और चित्रों समेत बनने लगीं जिसमें अष्टोत्तरी विंशोत्तरी जन्मकुण्डली, चन्द्रकुण्डली आदि नवग्रहों, तिथि, वार, लग्न इत्यादि के भाव लम्बे चौड़े लिख कर यजमान को देते हैं। बीमारी के समय तो यह अच्छे प्रकार हाथ मारते हैं अर्थात् पत्रा और जन्मपत्री को खोल कुम्भ, मीन मेष कह मुंह बिगाड़ अपने चेलों से यों कहते हैं कि सूर्य और चन्द्र अरिष्ट पड़े हैं और इस वर्ष जन्मलग्न भी एक ही है। इतनी बात के सुनते ही मुखड़े का प्रकाश फीका हो गया, अति गिड़गिड़ाय पंडित जी के पैरों पर गिर पड़ते हैं और कहते हैं कि गुरुजी! अब आप हमारे ऊपर कृपा कीजिये और इसमें छूटने का कोई उपाय बतलाइये। सच तो यह है कि हमारे सीधे भोले भाले भाई उन पंडितों को परमेश्वर ही मानते हैं और पंडितजी भी परमेश्वर का भय न कर परमेश्वरीय नियमों को तोड़ यजमान से कहते हैं कि दश लक्ष दुर्गाजी का पाठ और सूर्य चन्द्र इत्यादि का दान करा दो तो कष्ट दूर हो जावेगा और यदि बहुत बड़े साहूकार हुए तो उनको गोसठ तुलसी सालिग्राम का विवाह, ब्रह्मभोज महामृत्युञ्जय आदि का जप बता कर हज़ारों रुपये चट कर जाते हैं! हमारे प्यारे भाई बहनें पंडितजी के भरोसे पर रहते हैं यहां तक कि जप होते ही होते दम निकल जाता है और मुख्य उपाय अर्थात् चिकित्सा कराने से वे सुध रहते हैं या उधर पूरा ध्यान नहीं देते और कोई पंडितजी से कहता है कि यह जप आपने कैसा किया? तब अति क्रोधित होकर कहते हैं कि "कर्म गति कौन जाने" हम क्या परमेश्वर से बड़े हैं जो मृत्यु से बचा सकें उसकी मृत्यु ही बदी थी।

पस सोचने का स्थान है, जब उनके कहने के अनुसार मरनेवाले को कोई नहीं बचा सकता, फिर ग्रहों के नाम पर दान और उनके जप का क्या लाभ? क्योंकि जिसका जीवन होगा वह अवश्य ही बच जावेगा, इस

लिये बीमारी के समय औषध करना योग्य है और यथायोग्य रीति पर दान करना उत्तम है न कि धोखे की टट्टी में शिकार मारना।

इसके उपरांत जब यह पत्रापएडे आप वा उनके घरां में कोई बीमारी होती है तब वह क्यों वैद्य की चिकित्सा कराते हैं? यह आप उस समय जप और ग्रहों के दान करा कर क्यों नहीं बीमारी को दूर कर लेते? यह प्रत्यक्ष प्रकट है कुछ कहने की बात नहीं क्योंकि हमारे भाई प्रति दिन देखते हैं कि पंडित साहिब शीशी में मूत्र लिये वैद्यों औ अत्तारों के यहां मारे २ फिरते हैं, कैसे शोक का स्थान है कि यह ज्योतिषी हमको तो जप और ग्रहों के दान में फंसाकर सत्यानाश करा देवें और आप अपनी और अपने बच्चों की औषधि कराकर जान बचा लेवें। हाय! क्या ही अचम्भे की बात है कि अपने घर के तरुण बच्चे को तो मर जान दें और हमारे घर के लोगों को जप आह दान से बचाने का उपाय रचें! हाय मूर्खता, तेरा मुंह काला हो!!

इसी प्रकार जब कोई मुक़दमा होता है तो एक पण्डित मुद्दई और दूसरा मुद्दालेह को जाकर घेरता है और दो चार बातें इधर से कह सुन कर मुक़द्दमे की चर्चा छेड़ते हैं और उपदेश देते हैं यदि आप शिवजी इत्यादि किसी देवता का जप करा देवें तो आपकी जय हो जायगी और हमारी आपकी एक बात है जो कुछ आप दे देंगे वह हम ले लेंगे, क्योंकि आप हमारे यजमान हैं। इसमें बड़ी २ मिहनत करनी पड़ेगी, रात्रि में जप जंगल में जा करना होगा, जिसकी दक्षिणा इतनी है परन्तु आपके मन में आवे सो दे देना, क्योंकि आपके घर से हमको प्रति वर्ष मिलता ही रहता है, लेकिन इतने रुपये की सामग्री आप आज ही घर पर भेज दें और दो पंडितों के भोजनों का आपप्रबन्ध करादें। अब विचार करने का स्थान है कि दोनों में एक की जीत तो अवश्य ही होगी। पण्डित जी के ठहराये हुये रुपये चित्त हो गये और उसके घर में, मित्रों में ज्योतिष की प्रतिष्ठा सदा के लिये हो गई। भाइयो! मुक़द्दमे का मन्त्र क़ानून सर्कारी सुबूत आदि हैं न कि ग्रहों का जप और दान, यदि आपको ग्रहों पर ही ऐसा विश्वास है तो वकील आदि की सम्मत्यनुसार सुबूत आदि न दीजिये फिर हम देखें कि ज्योतिषी का जप किस प्रकार डिगरी कराता है, और जब आप दानों बातें करते हो मानों डिगरी हो भी गई तो आपको यह कैसे ज्ञात हुआ कि आपकी जीत ग्रहों के दान से हुई या सुबूत आदि से?

इसके उपरांत ज्योतिषियों पर भी डिगरी होती है क्यों अप से डिसमिस नहीं करा देते। हाय अन्धेर ! यही हाल प्रश्नों का है क्योंकि हमने और हमारे मित्रों ने बहुधा निश्चय किया तो प्रश्न का उत्तर कभी ठीक नहीं आया। हाँ वह प्रश्न कुछ २ ठीक होते हैं कि जिनके वृत्तान्त से वह कुछ जानकार होते हैं, बहुधा देखा गया है कि जब बाहर के पण्डित किसी नगर में आते हैं तब वहां के पण्डित उनसे मिल कर अनेक वृत्तान्त सेठ साहूकारों नौकर चाकरों का बता देते हैं, वे ही पण्डित नगर में उनकी ज्योतिष की प्रशंसा अपने यजमानों से करते हैं और उनको लेजा कर उनका मान कराते हैं और भेट दिलाते हैं और प्राप्ति में अपनी चौथियाई ठहरा लेते हैं। अनेकों को पण्डित जी जप के बहाने से अपने पास लगा लेते हैं और यजमानों से मुद्रा दिलाते हैं और हमारे ज्योतिषी पण्डित प्रकट लक्षणों को देख कर जन्मपत्री का फल वर्णन करते हैं, जैसा कि किसी को दुबला पतला देख कर कहेंगे कि तुमको कोई धातु की बीमारी है। दूसरे वह बातें जो प्रत्येक को अच्छी जान पड़ती हैं जैसे कि तुम जिस किसी के साथ भलाई करते हो वह तुम्हारे साथ बुराई करता है तुम्हारी भलाई वृथा जाती है, जितना रुपया पैदा करते हो तुम्हारे हाथ में नहीं ठहरता. तुम्हारा मन किसी से लगा है वह किसी उपाय से मिल सकता है, इस पर तुर्रा यह वहां नगर के दो चार पण्डित भी होते ही हैं जो ज्योतिषी जी के मुंह से यह निकलते ही रजिस्टरी कर देते हैं, चाहे यजमान के जी में कुछ ही हो, यथार्थ में हमारे ज्योतिषी जी का कहना बहुत ही ठीक है क्योंकि वह समय की दशा देख कर धातु की बीमारी बतलाते हैं जो प्रत्यक्ष प्रकट है कि वर्त्तमान में न्यून अवस्था का विवाह प्रचलित है, तिस पर गुदा......वेश्यागमन आदि की अधिक चर्चा है, इस कारण भारत में बहुत ही न्यून मनुष्य निकलेंगे जिनको धातुक्षीण की बीमारी न हो।

दूसरे हमारे देश में अविद्या के कारण लालच में आकर बहुधा मित्र बन जाते हैं और प्रयोजन निकलने पर बात भी नहीं करते फिर उपकार मानना किसको कहते हैं, क्या पण्डित साहिब प्रतिदिन अपने प्रयोजन के लिये ऐसी बातें नहीं मिलाते ? तीसरे हमारे देश में रुपया उत्पन्न करने का उपाय केवल नौकरी रह गई है, तिसपर विवाह मरण आदि में मिथ्या व्यय, इसके उपरांत नशा पीना, मांस खाना, लौंडेबाज़ी, रण्डीबाज़ी, आदि नाना

लीलाओं में धन व्यय होना है जिसको पण्डित साहिब आंखों से देखते हैं, यथार्थ में ज्योतिषी इसी का नाम है।

वर्त्तमान समय में जैसी इश्क हुसन की चर्चा है, ऐसे बहुत थोड़े मनुष्य हैं जो इस बला से बचे हों वरन कोई किसी स्त्री पर मरता है कोई लौंडे पर, यह बात बताना भी तो ज्योतिषी जी का ही काम है, उपाय ग्रहों के जप और दान पंडितजी जानते ही होंगे।

सच पूंछो तो हमारे भाइयों को ग्रहों में इन पंडितों ने ऐसा फांसा है कि बिना सायत पूंछे जाना आना भी नहीं होता, चाहे कैसा ही काम क्यों न बिगड़े पर बिना मुहूर्त पूछे जाना कैसा ?

हमारे पंडितजी कहते हैं कि नीचे लिखे के प्रतिकूल जो कहीं को यात्रा करेगा वह अवश्य ही आपत्ति में पड़ेगा, जैसा कि —

सोम शनिश्चर पूर्व काला, रवि शुक्र पश्चिम में वासा।
मंगल बुद्ध उत्तर में रहहो, रहे वृहस्पति दक्षिण माही॥

इसी भांति और २ बातों का भी विचार सुनाते हैं, प्यारे भाइयो! हज़ारों मनुष्य शनैश्चर और सोम्बार को रेलगाड़ी में पूर्व को जाते हैं इसी भांति शुक्र और इतवार को पश्चिम को जाते हैं जिन पर दिशाशूल का कुछ भी प्रभाव नहीं होता इसके उपरांत ईसाई और मुसल्मान तो इन ग्रहों को मानते ही नहीं, ये ग्रह उन पर अपना प्रभाव क्यों नहीं करते यदि कहो कि वह म्लेच्छ हैं इस लिये उन पर कुछ प्रभाव नहीं होता। कैसे आश्चर्य की बात है कि उत्तमों को दण्ड मिले और दुष्ट चैन करें, क्या इसी का नाम न्याय है? देखिये जब कोई धूप में खड़ा होता है तो सबको गर्मी एक सी जान पड़ती है, यही दशा सर्दी की है, क्योंकि यह ग्रह आर्य जो अपने को हिन्दू बोलते हैं उन्हें दंड देते हैं? अतः यह सब मिथ्या है, कौन नहीं जानता कि जब मुहम्मद ग़ज़नवी ने मन्दिर सोमनाथ पर चढ़ाई की थी उस समय इन ग्रहों की दुकान राजा के समीप खुली हुई थी और वह पंडित लोग कहते थे कि लड़ने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि आपके फलां २ ग्रह बड़े अच्छे पड़े हैं और हम सब जप करते हैं तीसरे दिन शत्रु अपने आप आके आपके चरणों में गिरेगा वा फिर के चला जायगा। अन्त को ऐसा हुआ कि यह सब पंडित अपने २ ग्रहों की शूरवीरता सुनाते रहे कि वह मन्दिर में घुस

आया और मूर्ति को तोड़ दस करोड़ का माल लेकर चला गया! इसके उपरांत अब ये लोग अपनी पुत्रियों का विवाह करते हैं तो सब प्रकार से विधि मिला लेते हैं परन्तु फिर भी इन्हीं लोगों में विधवा अधिक देखी जाती हैं। यदि यह पगासरी की रीति ठीक हो तो पंडितों अर्थात् ज्योतिषियों की पुत्रियां रांड़ न होतीं। इस पर भी तो आपको ज्ञान नहीं होता कि यह सब मिथ्या है, इनका मुख्य प्रयोजन टकाही है। बहुधा जन यह भी कहते हैं कि तुम ज्योतिषियों के फलित को ग़लत बताते हो, देखो वह कितने दिन पहिले ग्रहण बतादेते हैं कि फलां तिथिको ग्रहण होगा और वैसा ही होता है। प्यारे सुजनो! हम प्रथम ही कह चुके हैं कि ज्योतिष में गणित बहुत ठीक है परन्तु फलित का फल अत्यन्त ठीक नहीं मिलता और ग्रहण का बताना हिसाब का काम है देखो **गोल प्रकाश** * में दो सौ वर्ष तक के ग्रहण निकाल रख दिये हैं. हां यदि कोई ज्योतिषी यह कहे कि फलां ग्रहण के होने का यह फल होगा तो मैं कह सकता हूं कि फल अवश्यमेव ग़लत पड़ता है और पड़ेगा।

इन्हीं कारणों से हमारे पुराने पुरुषा फलादेश को मानते न थे। इसमें किसी को सन्देह नहीं कि प्राचीन समय में विद्या की बड़ा चर्चा थी और प्रत्येक विद्या के बड़े २ महात्मा, ऋषि, मुनि, विद्वान् विद्यमान थे, परन्तु उस समय में किसी ने ग्रहों का जप दान करके किसी के दिल को क्यों नहीं फेर दिया वा आपस में क्यों नहीं मिला दिया वा एक को क्यों नहीं मार डाला वा अपने आधीन कर लिया? यदि ऐसा होता तो अयोध्यापुरी के सुजन अवश्य कैकेयी के मन को फिरवा देते और बनवास न होता। इस के उपरांत सीता हर जाने पर भी रामचन्द्र ने बहुत विचारांश किये और हनुमान् आदि को सुध लेने के लिये भेजा, क्यों नहीं एकाध रुपया देकर ज्योतिषी ही से पूंछ लिया होता कि जिससे उनको ज्ञात हो जाता कि रावण हर ले गया है सुग्रीव ने अपने भाई बालि को जप कराकर क्यों नहीं प्रसन्न कर लिया? इसी प्रकार बिभीषण को रावण ने क्यों नहीं मिला लिया कि जिसने सम्पूर्ण वंश का खोज मारदिया। लक्ष्मण जी के शक्ति लगने पर श्रीमहाराज रामचन्द्रजी ने संजीवनी नाम बूंटी को क्यों मंगवाया? क्यों नहीं ग्रहों का जप कराकर आराम कर लिया?

इसके उपरान्त युधिष्ठिर और दुर्योधन कि जिनकी लड़ाई होने से

* एक पुस्तक जिसे डी एफ अंग्रेज़ ने लिखा है।

भारत का गारत हो गया, क्यों नहीं ग्रहों के जप से सम्पति करा दी ? इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण जी महाराज ने कंस को क्यों मारा ? क्या उस समय के ज्योतिषी उपस्थित न थे जो आपसे काम कर देते।

वर्त्तमान समय में जब कोई कहीं को चला जाता है तो हमारे ज्योतिषी जी यह बताते हैं कि वह पूर्व को गया है और अभी इतना अन्तर है यदि यह वार्त्ता सच होती तो क्यों दमयन्ती नल के मिलने को नाना प्रकार के उपाय करती ? झट ज्योतिषियों से पूछ कर ढूंढ लेती, इत्यादि अनेक प्रकार की गपशप ज्ञात होती है !

रसायन मन्त्र और तन्त्र

इसके उपरांत रसायनियों के धोके में न आओ जो तुम्हारा माल मार अपनी रसायन बना लेते हैं। यदि उनको आती तो पहिले अपने भाई, बन्धु लड़के आदि को करोड़ों रुपये बना कर साहूकार कर देते, सो तो कुछ न हुआ वरन ऐसा गुण, और फिरें मारे २। इसलिये यह सब मिथ्या है। वह भी एक प्रकार के ठग हैं। सच पूछो तो वह अपनी रसायन बना ले जाते हैं और तुम लालच में जो कुछ होता है दे देते हो। इसी धन को हर देश में जाकर दो तीन रुपये रोज़ खर्च करते हैं, रुपये को कुछ नहीं गिनते। हमारे भाई लोग उनको रसायनी जानकर उनकी सेवा करते हैं। किसी २ को यह हाथ की चालाकी से बनाकर दिखला देते हैं फिर उन्हीं के हाथ से बिक जाते हैं। वे विचारे सीधे सादे लोभी अक्ल के दुश्मन झट स्त्री तक का माल उतार कर दे देते हैं, फिर बाबाजी के पते तक नहीं मिलते, सिर पीटते रह जाते हैं। भला अब बताओ कि किस की रसायन बनी ?

इसके उपरांत भूत, शाकिनी डाकिनी आदि जो भ्रमजाल है और नाना भांति के रोगों में आप औषध नहीं कराते और उन धूर्त्त, महामूर्ख, कुकर्मी, भंगी, चमार आदि के भरोसे पर जो अनेक प्रकार से छल, कपट डोरा धागा बांध धन हरण करते हैं, उनमें मिथ्या धन व्यय न करो, और इन सब बातों के सत्य २ जानने के अर्थ सत्य ग्रंथों को देखो, तब प्रत्यक्ष प्रकट हो जायगा कि ये सब ठगई के जाल हैं। क्योंकि जो उत्पन्न हो कर वर्त्तमान समय में न रहे सो भूतस्थ होने से भूत कहाता है, जैसा कि सृष्टि की आदि से लेकर आज तक लाखों करोड़ों मर गये और फिर कर्मानुसार

जन्म लेते गये, वे सब उन नामों से न रहने के कारण भूल हैं। इसी भांति मृतक शरीर को प्रेत और दाह करनेवाले को प्रेतहार कहते हैं परन्तु जैसा इस समय में गोलमाल हो रहा है, यह सब मिथ्या है। इस कारण इन मिथ्या विचारों को छोड़ कर सन्तानों को भी सत्योपदेश करते रहो। इसके अतिरिक्त मन्त्र यन्त्र इत्यादि प्रकट फैले हुए हैं कि जिसके कारण यह देश और भी अधोगति को पहुंच रहा है। 'मन्त्र' शब्द का अर्थ गुप्त भाषण का है, परन्तु वर्त्तमान काल में उससे यह प्रयोजन लेते हैं कि कोई मनुष्य मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण के अर्थ जप करे। इसी भांति 'यन्त्र' शब्द के अर्थ युक्त क्रियाओं के करने के लिये कोई कोष्ठ बनाकर उनमें कुछ संख्या वा शब्द वा वाक्य लिखो, इसी प्रकार 'तन्त्र' शब्द के अर्थ यह लेते हैं कि औषध्यादि के मेल से कुछ आश्चर्यजनक क्रिया दिखलाना।

जिधर हम देखते हैं उधर ही पण्डित ब्रह्मचारी जती (यती) काजी पीरज़ादे इत्यादि सभी मन्त्रादिक के सहारे से शिकार मारते दृष्टि आते हैं, विद्वान् से तो यह मनुष्य दृष्टि तक नहीं मिलाते परन्तु मूर्ख पुरुषों की सभा वा इस देश की अनपढ़ी स्त्रियों के पांव फैलाते हैं। जब वहां से कुछ मिल जाता तब उसका पीछा छोड़ते हैं और जो स्त्री पुरुष उनको कुछ नहीं देते तो यह कह के कि देखना हम तो जाते हैं परन्तु भगवती हनुमान, भैरव, वैताल, नरसिंह वा पीर ने जब कुछ किया तो पछताओगी। फिर पैरों पड़ोगी, इसी प्रकार बहुत बातें बनाते हैं कि जिनको वह भोले भाले मनुष्य सुन कर फिर कुछ दे दिला कर राजी करते हैं।

मन्त्र संस्कृत, अरबी, फ़ारसी, उर्दू, ब्रजभाषा, पञ्जाबी, महाराष्ट्र इत्यादि भाषाओं में हैं और प्रतिदिन नवीन बनते जाते हैं। इस देश में यह बात प्रसिद्ध है कि कामरू देश में 'कमाक्षा देवी' और 'इस्माइल' योगी सिद्ध है। योगी के प्रताप से मन्त्र तत्काल सिद्ध होता है और मूर्खजन ऐसा निश्चय रखते हैं कि अन्य देश का मनुष्य कामरू देश में जाय तो वहां की स्त्रियां उसको मन्त्रों से बांध सदैव रात्रि को पुरुष और दिन में हल आदि में जोतने के लिये बैल बना लिया करती हैं। लाखों मन्त्रों में 'कामरू देश कामाक्षा देवी जहां बसे असमायल (इस्माईल) योगी' यही पाया जाता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि कामरू प्रदेश में सहस्रों मनुष्य आते जाते हैं परन्तु तब भी हमारे भोले भाई वैसा ही निश्चय किये बैठे हैं।

इन मन्त्र बनानेवालों और जप करनेवालों ने एक बड़ी आड़ यह भी बना रक्खी है कि इनके देवता ३३ करोड़ हैं, जब एक के नाम से काम नहीं होता तो दूसरे के आश्रय, फिर तीसरे चौथे आदि के मुख्य यह है कि सारी उमर जप करते २ मर जांय पर इनकी कभी हार नहीं होती है, धन्य है इन पुरुषों को !

वेदों में तेंतीस देवता व्यवहार प्रयोजन के अर्थ माने हैं और वह तेंतीस देव ये हैं—आठ वसु ११ रुद्र, १२ आदित्य, एक इन्द्र, एक प्रजापति। इनमें से आठ वसु ये हैं अग्नि, पृथ्वी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्यौ, चन्द्रमा और नक्षत्र। इनका नाम वसु इस लिये है कि सब पदार्थ इन्हीं से बसते हैं और यही सबके निवास करने के स्थान हैं। ११ रुद्र ये कहाते हैं जो शरीर में दश प्राण हैं अर्थात् प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त, धनंजय, और ११वां जीवात्मा, क्यों कि मरण होने के समय जब ये शरीर से निकलते हैं तब उसके सम्बन्धी लोग रोते हैं और वे निकलते हुए उनको रुलाते हैं इससे इनका नाम रुद्र है। इसी प्रकार आदित्य बारह महीने को कहते हैं, क्योंकि वे सब जगत् के पदार्थों का आदान अर्थात् सब की आयु को ग्रहण करते चले जाते हैं इसीसे इन का नाम आदित्य है। ऐसे ही इन्द्र नाम बिजली का है क्योंकि वह उत्तम ऐश्वर्य की विद्या का मुख्य है और यज्ञ को प्रजापति इस लिये कहते हैं कि उससे वायु वृष्टि जल की शुद्धि द्वारा प्रजा पालन होता है तथा पशुओं की यज्ञ संज्ञा होने का कारण यह है कि उनसे भी प्रजा का पालन होता है। सब मिला कर अपने अपने गुणों से तेंतीस देव कहाते हैं।

प्यारे सुजनों ! ये सब व्यवहार के अर्थ हैं और उपासना के अर्थ केवल एक परमेश्वर ही है, जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में लिखा है—

योऽन्यां देवतामुपासते पशुरेवꣳसदेवानाम्।

अर्थात् जो मनुष्य ईश्वर को छोड़कर अन्य की उपासना करता है वह पशु के समान है।

परन्तु अब तो लोगों को तेंतीस कोटि से भी तृप्ति न हुई तब मरे हुए क़ब्र निवासी मुसलमान पीर औलिया, मियां आदि को भी मानने लगे,

हाय ! लज्जा भी नहीं आई। इसी कारण इनके पूजनेवालों की भी कुगती हो गई कि जिससे भारत के ऐश्वर्य को खो दिया।

इसलिये हे गृहस्थो ! इन मिथ्या बातों में न फंसो और कृपा कर वेदादि सत्यशास्त्र पढ़ो वा सुनो और पूर्ण विद्वान् और सत्यवक्ताओं का सत्संग करो तो यह मिथ्या पोल स्वयमेव खुल जावें।

पाठकगणों को दिखलाने के अर्थ कुछ उदाहरण लिखता हूं—

(कृत्रिम सोना चांदी बनाने का मन्त्र)

ओं नमो हरिहराय रसायन सिद्धिं कुरु २ स्वाहा।

इस मन्त्र को २१ दिन तक १०८ बार जपने से सोना चांदी बनता है।

(चौकी मट्टी पीर की)

बिस्मिल्ला अर्रहमान अर्रहीम सोहचक्र की बावड़ी
गल मोतियन का हार लंकासी कोट समुद्रसी खाई
जहां फिरै मुहम्दा बीर की दुहाई कौन बीर आगे
चले सुलेमान बीर चले दुर्रानी बीर चले नादिरशाह
बीर चले मूठो चले नहीं चले तो हज़रत सुलेमान
की सात दोहाई शब्दसांचा चलो मन्त्रो ईश्वरवाचा

इस मन्त्र का ४० दिन तक १०००० मन्त्र जपे तो बीर हाज़िर हो कर काम करे।

(मार्ग में बाघ (सिंह) के प्रबन्ध का मन्त्र)

बघ बांधु बघायन बांधु बघ के सातों बच्चे बांधु राहबाट मैदान बांधु बासुदेव की दुहाई लोना चमारी की।

इसको सात बार सात मंगल जपे तो सिंह पर फूंक दो वा सोते समय अपने ऊपर फूंक लो तो सिंह अधीन हो जावेगा।

(बवासीर दूर करने का मन्त्र)

सम्मुन बुकमुन उपयुन फहुम लापर ज़ठना।

(मन्त्र)

५३	५६	२	७		तं	तं	त	तं
६	३	५६	५३		पं	पं	प	पं
५८	५३	८	१		द	दं	द	द
४	५	५५	५७		लं	ल	ल	लं

(१) इस मन्त्र के लिये लिखा है कि पीपल के पात में घर के पीछे लिखे तो दिन से रात में दिखलाई देने लगे।

(२) इसके विषय में लिखा है कि सिरस के वृक्ष के नीचे बैठ के लिखे तो भूत प्रेत देवी यक्ष आदि सब प्रसन्न हों।

इसी प्रकार अनेक मन्त्र तन्त्र कपोल कल्पित और मिथ्या फैल रहे हैं।

मैं पहिले लिख चुका हूं कि आधुनिक लोग औषधादि के मेल से आश्चर्यजनक क्रिया कर दिखलाने को तन्त्र कहते हैं, अब मैं इस विषय में लिखता हूं।

हम स्वीकार करते हैं कि औषधादि ईश्वरकृत अनेक पदार्थ हैं उनको परस्पर मिलाने से बहुत आश्चर्यजनक क्रिया हो सकती हैं। हम नित्य देखते हैं कि रोग के निवारणार्थ सब लोग नाना प्रकार की औषधियों का सेवन करते हैं और उनके यथायोग्य सेवन से रोगों की निवृत्ति होती है रेल तारादिक इन्हीं पदार्थों के सेवन से चलते हैं परन्तु इनको सदैव देखते हैं इस कारण से आश्चर्य नहीं होता, हां जो लोग प्रथम देखते हैं उनको आश्चर्य होता है।

इस वर्णन से यह सिद्ध हुआ कि पदार्थों के मिलाने से उनके गुणानुसार चमत्कारिक बातें हो सकती हैं परन्तु वे भी ऐसी होती हैं कि जिनको बुद्धिमान् लोग सम्भव जानते हैं। कुछ ऐसा ही नहीं है कि पदार्थों के नाम लिख कर उनके मेलनादि क्रियाओं से जो अण्ड बण्ड फल लिख दिये सो हो जायें जैसा कि 'तन्त्र महार्णव' नामक तन्त्र ग्रन्थ के वशीकरण प्रकरण में लिखा है—

तुलसीरसंगृहीत्वा धात्रीरससमन्वितं।
तुलसीबीजसंयुक्तं हरतालमनः शिलम्॥
देहान्ते तिलकं कृत्वा यमदूतो वशीभवेत्।
पापीचैव महापापी बैकुण्ठं गच्छते नरः॥

अर्थ—तुलसी और आंवले का रस बराबर लेकर उसमें तुलसी के बीज हड़ताल और मैनसिल मिला कर मरण समय में उसके तिलक करने से यम के दूत मृतक के वश में हो जाते हैं, इस कारण से पापी भी बैकुण्ठ को चला जाता है।

प्यारे सुजनों ! इन लेखों को ज्ञान दृष्टि से विचारो तो स्पष्ट प्रकट होगा कि मन्त्र तन्त्र आदि मिथ्या बातों ने ईश्वर की आज्ञा को भी तोड़ कर अपना दखल कर लिया । भला आपकी समझ में आता है कि परमेश्वर की आज्ञा को कोई भंग कर सके ? ये सब इनके मिथ्या प्रपंच हैं । सच पूछो तो वर्त्तमान समय में नाना प्रकार के ढंग ठगने के हैं । जैसा कि कोई कोई इन मन्त्र यन्त्रादि के तावीज़ बना कर बाज़ारों में पैसा दो दो पैसे में बेचते हैं और भूत पलीत बीमारी आदि खोते फिरते हैं । हे अबोध भारतवासियों ! तुम कदापि इन मिथ्या प्रपंचों में न फँसो, सदा वेदादि में लिखे सत्यगुणों का अवलोकन करो तो आपको इन सबका भेद यथावत् प्रकाश हो जावेगा ।

देखिये बीमारियों के अर्थ परमेश्वर ने वैद्यक विद्या को बनाया है । यदि मारण मोहन वशीकरण उच्चाटनादि मन्त्र वेद में पाये जांय तो सच हो सकते है, सो इनका कहीं पता तक भी नहीं । इसके उपरान्त कुछ बुद्धि से विचारना भी योग्य है कि ऐसे मन्त्र वेदोक्त हैं या नहीं ? यदि ऐसे मन्त्र वेद में हों कि जिनके पढ़ने आदि से मनुष्य मर जावें तो बतलाइये यह पाप परमेश्वर को होगा वा मारनेवाले को ? उत्तर यही होगा कि परमेश्वर को, तो इन मन्त्रादिकों के माननेवालों ने परमेश्वर को भी पापी बना दिया । सो वह पापी नहीं हो सकता । यथार्थ में पापी यही हैं । क्योंकि कोई मन्त्र ऐसे नहीं कि जिनसे मनुष्य मर जावें, हाँ कई प्रकार की औषधि ऐसी हैं कि जिनके खिलाने से मनुष्य मर जाते हैं । सो यह पापी उनके नौकर आदि को लालच देकर खाने पीने आदि में ज़हर दिलवा देते हैं कि जिनसे मनुष्य मर जाते हैं, फिर अपनी सिद्धि प्रकट करते हैं । यदि उनको ऐसे ही मन्त्र आते हैं तो क्यों नहीं महमूद, गज़नवी, नादिरशाह तैमूरलङ्ग आदि को मार डाला कि जिन्होंने भारत के मनुष्यों को क़त्ल कराया । यदि आपको इतने पर भी विश्वास न हो तो आप एक शीशी में कि जिसमें वायु आती हो मक्खी बन्द करके अपने पास रख लीजिये और उनसे कहिये कि इसको मन्त्रों से मारिये, यदि वह मर जावे तो सच, नहीं तो मिथ्या ।

प्यारे भाई बहिनो ! यदि इनको मारण आता होता तो स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी को कि जिन्होंने भारत के पण्डित और वर्त्तमान धर्म की कलई खोल दी, क्यों नहीं मार डाला ? इसके अतिरिक्त समस्त आर्यों पर जो

सम्पूर्ण देश में कोलाहल मचा रहे हैं, जिससे नाम मात्र के पण्डितों की प्रतिष्ठा भंग हो रही है क्यों मारण मन्त्र नहीं चलाते वा मोहन मन्त्र से मोहित और वशीकरण से वश में नहीं कर लेते, जो इन मिथ्या मन्त्रों की पोल खोल मन्त्रादिक के करनेवालों की आमदनी का नाश मार रहे हैं सो कुछ भी न हुआ मैं नहीं जानता कि इन गपोड़ों में आप पड़ कर क्यों अपने देश का सत्यानाश मारते चले जाते हैं। इसलिये अब विचार कर प्रत्येक कार्य का करना अभीष्ट है। प्यारे सुजनो! इन्हीं कार्य्यों के करने से हमारे देश का नाम आर्य्यावर्त्त से हिन्दुस्तान रख दिया गया, आप विचार कीजिये।

'आर्य्य' शब्द

यह शब्द ऋगतौ धातु से 'ऋहलोर्ण्यत्' इस सूत्र द्वारा 'ण्यत्' प्रत्यय लगाने से सिद्ध होता है और ऋग्वेद मंडल १ सू० १०२ मन्त्र ३ तथा ऋग्वेद मंडल १५ सू० ६ मं० ८ में—

विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते। रन्धया शासदव्रतान्॥

सत्यमहं गम्भीरः काव्येन सत्यं जातेनास्मि जातवेदाः॥

और अथर्व० का० ५ अ० २ व० ११ में मनुष्य की गणना आर्य्य और दास नामों से की है।

नमे दासो नमे आर्यो महित्वाव्रतंभीमाययदहंधरिष्ये॥

य० अ० १६ मं० ४२ और य० अ० ३३ मं० ८२ में लिखा है कि जिस राजा के सब आर्य्य रक्षक और आज्ञापालक हैं वहां सब प्रकार के आनन्द रहते हैं—

यस्यायं विश्व आर्यो दास।

वशिष्ठस्मृति में वशिष्ठ जी महाराज ने लिखा है कि जो कर्त्तव्यकर्मों का सेवन करता है और अकर्त्तव्यकर्मों का परित्याग करता है वह आर्य्य है, यथा—

कर्त्तव्यमाचरन्काममकर्त्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारो यः स आर्य्य इतिस्मृतः॥

उद्योग पर्व में कहा है—

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा।
असंभिन्नार्य्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभते सः॥

तथा अध्याय २ श्लोक २ में श्रीकृष्ण महाराज ने अर्जुन से कहा है कि आर्य्य पुरुषों को मोह-वश हो कर अनार्य्यों की भांति कार्य्य न करना चाहिये, जैसा कि—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमेसमुपस्थिम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीतकरमर्जुन ! ॥

ऐसाही विदुर जी ने विदुरनीति में कहा है और मनुजी ने अ० ४ श्लोक १७५ में अध्यापकों को उपदेश किया है कि आर्य पुरुषों की भांति सदाचार कर उसी प्रकार अपने शिष्यों को सिखलाओ ।

सत्यधर्मार्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदरसंयतः ॥

हितोपदेश के सन्धि प्रकरण में राजा को शिक्षा की है यह विजय पाने के अर्थ अनार्य और आर्य से सन्धि कर ले जैसा कि—'सत्यार्योऽधार्मिकोऽनार्यो' न्यायदर्शन अ० १ सूत्र १० वात्स्यायन भाष्य 'ऋष्यार्य्य' इत्यादि अष्टाध्यायी अध्याय ४ पाद १ सूत्र ३० ।

केवलमामक भागधेय पापापर समानार्यकृतसुमंगलभेषजाच्च ।

महाभारत आदिपर्व अ० १५४ वा १५८ सभापर्व अ० ६४ वा ७३ तथा उद्योगपर्व अ० ३१ श्लो०११३ वा ११४ में लिखा है कि जो शान्त चित्त रहते हैं, बैर को नहीं बढ़ाते, घमण्ड नहीं करते, उद्योग से कार्य्यों को करते हैं, जो गिरी दशा में भी चोरी आदि अकार्य नहीं करते और अपने सुख में हर्ष और दूसरे के दुःख में आनन्दित नहीं होते वही आर्य हैं, जैसा कि—

नवैरमुद्दापयतिप्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।
न दुर्गतोस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ।
नस्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्यदुःखे भवतिप्रहृष्टः ।
दत्वानपश्चात्कुरुतेऽनुतापं सकथ्यते सत्पुषार्यशीलः ॥

वनपर्व अ० २६७ वा १७६, शान्तिपर्व अ०६३, ६४, ६५ वा १४० वा २६२ इत्यादि स्थानों पर 'आर्य' शब्द का प्रयोग किया है और ऐसा ही भीष्म पर्व अ० २५ में लिखा है । वाल्मीकि रामायण बालकांड सर्ग १० श्लोक १६ वा ३५ ।

सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्रइव सिन्धुभिः ।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः ॥

अयोध्या कांड सर्ग ७४ श्लोक २० में भरत जी ने कौशिल्या से कहा है कि हे आर्ये ! हमारी प्रीति श्रीराम में कितनी है सुन्दरकाण्ड सर्ग २८ श्लोक १० में सीता ने रामचन्द्र लक्ष्मण को आर्यपुत्र कहा है, सर्ग ३५ श्लोक ४४ में सर्ग ३६ श्लोक ३७ में हनुमान जी ने सीताके लिये कहा है कि हे आर्ये। किष्किन्धाकांड सर्ग १९ श्लोक २८ में तारा ने अपने मरे पति को देख कर कहा है कि आर्यपुत्र। सर्ग ४३ में सीता ने लक्ष्मण जी से बार बार आर्यपत्र कहा, और श्लोक १८ में सीता जी ने फिर कहा है कि इस मृग को पकड़ कर लाइये क्योंकि यह आर्यपुत्र भरत और सासुओं को विस्मित करेगा, लङ्काकांड सर्ग ३२ श्लोक २९ ।

अहं दाशरथे नोढाभोहात्स्वकुल पांसिनी ।
आर्य्यपुत्रस्य रामस्य भार्य्या मृत्युरजायत ॥

इसके अतिरिक्त अयोध्याकाण्ड सर्ग में राजा दशरथ ने कैकेयी से कहा है कि लोग मुझको बड़ा कामी और अनार्य कहेंगे, और सर्ग ६६ में कौशिल्या ने कैकेयी से भी कहा है, सर्ग १०९ श्लोक ४ में अनार्य शब्द आया है, सुन्दरकाण्ड सर्ग ९ में हनुमान् ने और सर्ग २२ में सीता ने रावण से अनार्य कहा है। इसके उपरान्त बहुधा स्थानों पर आर्य और अनार्य शब्द आये हैं, देखो सर्ग ९९ श्लोक ३७ वा ३८ में भरतमहाराज ने चित्रकूट पर श्रीराम को आर्य कहा है और सर्ग ११२ श्लोक २१ में भरत ने फिर राम से कहा है कि हे आर्य इन खड़ाउओं पर चरण रख दीजिये। इन सब बातों के अतिरिक्त भरत जी ने महात्मा भरद्वाज जी को अपनी माताओं को बताते हुए सर्ग ९२ श्लोक २६ में कहा है कि जो क्रोध ही सदा किये रहती, बुद्धि नहीं रखती, अहंकार युक्त अपने को सदा सुभगा ही मानती है, सदा अपना ही ऐश्वर्य चाहती, बड़ी अनारिन है पर अपने को आर्य्यरूप मानती है जिसका नाम कैकेयी है। नरसिंह-पुराण अध्याय सैंतालिस में विश्वामित्र जी ने राजा दशरथ जी से कहा है कि हे नृपश्रेष्ठ ! रामचन्द्र अनार्य नहीं हैं। इसके उपरान्त बाबा तुलसीदास जी ने भी आर्य्य (आरज) पद प्रयोग किया है—

आरज सुत पद कमल विनु ।

विष्णुपुराण तृतीय अध्याय ७ श्लोक ३१ में यमराज ने विष्णुभक्तों के लक्षण वर्णन किये हैं वहां पर लिखा है कि जो मनुष्य अशुभमति असत्कार्यों और अनार्यों के साथ निरन्तर रहता है वह विष्णु का भक्त नहीं है ।

अशुभमति रसत्प्रवृत्तिसक्तः सततमनार्यविशालसंगमत्तः ।
अनुदिनकृतपापवन्धयत्नः पुरुषपशुर्नहि वासुदेवभक्तः ॥

अर्थात् विष्णु के भक्त वही जन हैं जो प्रति दिन शुभ कर्मों को कर आर्य पुरुषों का सत्संग करते हैं । पद्मपुराण तृतीय सर्ग खण्ड अध्याय ५ श्लोक ४८ में लक्ष्मीजी ने सावित्री जी से कहा है कि हे आर्ये ! तुम शीघ्र उठ कर चलो । मत्स्यपु ाण अध्याय ४६ श्लोक ३ में लिखा है कि जो सरल मार्ग पर चलता है वह आर्य कहाता है । इसके अनन्तर नया गुटका जो मिडिल क्लास में पढ़ाया जाता है जिसमें 'मुद्रा राक्षस' नाम नाटक जिसको कवि विशाखदत्त ने (जो महाराज पृथु का बेटा है) बनाया है जिसकी भाषा बाबू हरिश्चन्द्र जी ने की है । उसके सफ़े ६६, ७०, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ८४, ८६, ६०, ७६१ में भी आर्य्य शब्द आ । है ।

इसी कारण इस देश का नाम भी आर्यावर्त्त कहलाया, देखिये अमरकोश प्रथम काण्ड भूमिवर्ग अष्टमपद्य में लिखा है 'आर्यावर्त्तः पुण्य भूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयो' अर्थात् उस पवित्र भूमि को आर्यावर्त्त कहते हैं जो हिमालिया और विन्ध्याचल के बीच में है और जैनकृत अमरकोश द्वितीय काण्ड के भीतर 'ब्रह्मवर्गस्य' तृतीय श्लोक को देखिये महाकुल, कुलीन, आर्य, सभ्य, सज्जन, साधु ये छः नाम श्रेष्ठ पुरुष के हैं । इसके उपरान्त मनुस्मृति अ० २ श्लोक २२ में और अ० १० श्लोक ४५ में लिखा है—

आसमुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात्त पश्चिमात् ।
तयोरेवान्तर गिर्य्योरार्य्य वर्त्त विदुर्बुधाः ॥
मुख वाहूरुपज्जानां या लोके जातयो वहिः ।
म्लेच्छवाचश्चार्यवाचः सर्वेते दस्यवः स्मृताः ॥

हिन्दू

यह शब्द हमारे देशवासियों का नहीं, क्योंकि किसी संस्कृत की पुस्तक वेदों को छोड़ शास्त्र और पुराणों तथा सत्यनारायण की कथा जिसको बने हुये थोड़े ही दिन हुए उसमें भी कहीं नहीं लिखा। द्वितीय प्रतिदिन के लेखे बही तिथिपत्रा और जन्मपत्री आदि में भी हिन्दू वा हिन्दी और हिन्दुस्तान नहीं लिखा। तृतीय जो पुस्तकें मुसलमानी राज्य से प्रथम भाषा में बनीं उनमें वरन जो मुसलमानी राज्य में लिखी गईं उनमें भी यह शब्द नहीं आया और न अब तक किसी धर्म सम्बन्धी कार्य में हिन्दू शब्द का उच्चारण होता है, इसलिये किसी प्रकार से हमारा नाम हिन्दू नहीं है।

पादरी लोग यह कहते हैं हिन्दू शब्द सिन्ध नदी से बना है, क्योंकि बहुधा शब्द संस्कृत से जो फ़ारसी में लिये गए हैं वे इसी प्रकार से हैं। जैसा सप्ताह से हफ्ता, दशम से दहम, सहस्र से हज़ार—इसी भांति सिन्धू से हिंदू होगया जान पड़ता है जिससे प्रयोजन सिन्ध नदी के तटस्थ वासियों का है, इससे इतना तो प्रकट ही है कि पादरी लोग यह तो मानते हैं कि यह शब्द फ़ारसी का है परन्तु संस्कृत से आया हुआ अर्थात् संस्कृत के सिन्धू से हिन्दू बना है। मित्रो! यह भी मिथ्या है क्योंकि यूनानी लोग रूम, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान के मार्ग से आर्य्यावर्त्त में आये और मार्ग में जैसा किसी देश का नाम सुना वैसा ही लिखा, अक्षर 'स' का 'ह' से पलटना हमने माना, परन्तु फ़ारसी में। संस्कृत में किसी प्रकार नहीं हो सकता। देखो निघण्टु १-१३ उणादिकोष १-११ दोनों नाम नदी के हैं, परन्तु सिन्धु कभी आर्यावर्त्त के निवासियों के लिये नहीं कहा गया और न ठीक है। कोई कोई पादरी आदि यह भी कहते हैं कि हिन्दू नाम इंदू से बना है, हम जानते हैं कि इन्दु चन्द्रमा को कहते हैं अब यह बतलाइये कि संस्कृत में यह किस प्रकार से बन गया। इसके उपरान्त सम्पूर्ण हिन्दू चन्द्रवंशी या सूर्यवंशी हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र नहीं हैं, इंदु केवल चन्द्रमा को कहते हैं 'वंशी' कहां से आया? किसी संस्कृत पुस्तक में तो आज तक नहीं लिखा गया और क्या चन्द्रवंशी के उपरान्त अन्य जन अपने आपको हिन्दू नहीं कहते वा सूर्यवंशी से कोई नाम निकला है। क्या आपके अतिरिक्त संसार भर में और किसी को यह नाम मालूम

नहीं, इस लिये यह भी ठीक नहीं। वर्त्तमान समय में जो हमारे सनातनी पण्डित संकल्प पढ़ते हैं उसमें साफ़ इस देश का आर्य्यावर्त्त, तथा हमारा नाम आर्य्य प्रतीत होता है, जैसा—

ओं विष्णुर्विष्णुर्विष्णुः अद्येत्यादि परमात्मने श्रीपुराण पुरुषोत्तमाय द्वितीय परार्धे श्रीश्वेत बाराह कल्पे वैवस्वत मन्वन्तरे अष्टाविंशतितमे कलौयुगे कलि प्रथम चरणे जम्बूद्वीपे भारतखण्डे(आर्यावर्ते पुण्यक्षेत्रे वर्त्तमान नाम सम्बत्सरः प्रवर्तते तत्र अमुकायने अमुक ऋतौ मासानांमासोत्तमेमासे अमुकपक्षे अमुक तिथौ अमुक वासरान्वितायाम् अमुक गोत्रोत्पन्नोमुक नामा धर्मार्थमहं करिष्ये।

इसके अनन्तर रघुवंश सर्ग २ श्लोक ३३ सिंह और दलीप की कथा में सिंह ने दलीप से आर्य्य सखा कहा है। जैसा—

तमार्य गृह्यं निगृहसीतधेनुर्मनुष्यवाचामनुवंशकेतुम्।
विस्माययन्विस्मितमात्मवृत्तौसिंहोरुसत्वं निजगादसिंहः॥

इसके उपरान्त बहुधा पुस्तक रचना करनेवाले पण्डित जन आर्य्य शब्द का प्रयोग करते हैं, और महात्मा हंसस्वरूप जी ने जो धर्मसभा के महोपदेशक हैं अपनी त्रिकुटी विलास नाम पुस्तक के सफ़ा १४ वा १५ में इस देश वासियों को आर्य्य नाम से सूचित किया है। फिर हम नहीं जानते कि क्योंकर हिन्दू कहलाते चले जाते हैं जिसके अर्थ गुलाम, काफिर चोर और लुटेरे के हैं जो 'ग़यासुल्लुग़ात' के सफ़े ५०० में लिखे हैं। हा शोक, हा शोक, हा शोक! कि क्या समय आया जो जान बूझ कर भी हम कुएं में गिरते चले जाते हैं और प्रसन्नता प्रकट करते हैं। प्यारे भाइयो! यह शब्द प्राचीन नहीं है और न किसी प्राचीन पुस्तक में लिखा है। हां मुसलमानों ने इस देश को विजय किया तो पक्षपात के कारण इस देश का नाम हिन्दुस्तान रख दिया जो हिन्दुस्थान से बना है जिसके अर्थ काफ़िर आदि की जगह के हैं क्योंकि फ़ारसी में 'स्तान' कल्माज़र्फ़ अर्थात् स्थान का है, यथा गुलिस्तां, बास्तां, अफ़ग़ानिस्तान। इसलिये प्यारे सुजनों! एक सम्मत हो शीघ्र इस अपवित्र नाम को त्याग दो और

वेदानुकूल प्राचीन पुरुषों की भांति आर्य शब्द का प्रचार करो। अब विद्या का प्रकाश होरहा है जिससे हिन्दू शब्द के अर्थ भी जानते हैं और फिर उसी क़ौम में जिससे हम प्रत्येक प्रकार से प्रधानता रखते हैं उन्हीं में बैठे हुए हिन्दू कहलाने पर प्रसन्न रहें। प्यारे! विचारो और इस कलङ्क को जहां तक हो सके शीघ्र मेट आर्य शब्द और उसकी सनातन परिपाटी का प्रचार करो जिससे तुम्हारा यश हो और सभ्य मण्डलियों में तुम्हारी सभ्यता का परिचय हो!

व्रत और तपस्या

मन्यवरो! जब देश से वेदरूपी सूर्य छुप गया और ऋषि मुनि आदि ने धर्म की धुनि से अज्ञान से पड़े हुए मनुष्यों को चिताना त्याग दिया तब से अधर्मरूप अन्धकार ने संसारको आ घेरा पुराणरूपी नाना सितारे अपने धुंधले प्रकाश से चमकने लगे। काम, लोभ, अज्ञान रूप चोरों ने बरसाती मेंढक की भांति समय पाकर अपनी कमर बांधी और अधर्म की घोर निद्रा में सोते हुए मनुष्यों के गृह में घुस कर उनकी धर्म रूपी माया को यहां तक लूटा कि उनके पास कुछ भी न रहा और जैसे धनादि के जाने से मनुष्य निर्बुद्धि हो जाता है जिससे वह अंटसंट बकता है, मार्ग अमार्ग को नहीं पहचानता, इसी प्रकार धर्मरूप माया के जाने से मनुष्य-मात्र अपने पुरुषों के उत्तम नियमों को यहां तक भूल गये कि उनके मुख्य अभिप्राय को भी नहीं मानते। एक परमदेव परमात्मा के स्थान पर तेंतीस करोड़ देवता मानने लगे जो कि भारतवासियों की मनुष्य गणना से भी अधिक हैं इसके उपरान्त नाना मत मतान्तर रूप मार्गों को इस घोर अन्धकार में उत्तम समझ स्वर्ग रूप फल पाने की आशा से चलने लगे। व्रत के अभिप्राय ही को भूल गये, इतने व्रत बढ़ा दिये कि साल के दिनों से भी दुचन्द हो गये। देखिये आदित्य पुराण के अनुसार रविवार को, शिवपुराण के अनुसार सोमवार और तेरस, चन्द्रखण्ड के अनुसार मंगल बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनैश्चर को व्रत रहना आवश्यक है और यही सप्ताह में सात दिन होते हैं।

अर्थात् सम्पूर्ण साल व्रती रहने की यहा आज्ञा दे रहे हैं। और भी सुनिये कि विष्णु की एकादशी, बामन की द्वादशी, नृसिंह की अनन्तचौदस

चन्द्रमा की पूर्णमासी, दिक्पाल की दशमी, दुर्गा की नौमी, वसुओं की अष्टमी, मुनियों की सप्तमी, स्वामिकार्तिक की छठ, नाग की पंचमी, गणेश की चौथ, गौरी की तीज, अश्वनीकुमार की दोज, आद्यादेवी की परेवा, भैरव की अमावस, और २६ एकादशियों को भी व्रत रहे इसके अतिरिक्त प्रत्येक माह में भी दो चार ऐसे त्यौहार माने हैं जिनमें स्त्री पुरुष दोनों वा केवल स्त्रियां ही वा केवल पुरुष ही व्रत रहते हैं। जैसा—

चैत्र के कृष्णपक्ष में शीतला की अष्टमी और वारुणी स्नान।

चैत्र के शुक्लपक्ष में परिवा से नवमी तक नवरात्रि का, अष्टमी को देवी की तीज की (गनगौर)।

वैशाख के कृष्ण पक्ष में सप्तमी और अष्टमी।

वैशाख के शुक्लपक्ष में तीज (अक्षय तृतीया)।

ज्येष्ठ में वरसात (वटसावित्री) शीतला की अष्टमी, सप्तमी।

आषाढ़ में सप्तमी और दहबैठौनी अष्टमी।

सावन में सलूनो।

भादों कृष्णपक्ष चौथ (बगुला चौथ) छठ (हरछठ) कन्हैया अष्टमी।

भादों शुक्लपक्ष तीज (गौरी) चौथ (सिद्धविनायक) ऋषिपंचमी और बड़ा इतवार।

कुआर शुक्लपक्ष परिवा से नवमी तक नवरात्रि व्रत, दशहरा चौदस (ढिढिया)।

कातिक कृष्ण पक्ष चौथ (करवाचौथ) अहोई अष्टमी दिवाली द्वादशी (बछवाल)।

कातिक शुक्लपक्ष दोज (भाईदोज) चिरया गौर नवमी से एकादशी तक दशमी से पूर्णमासी तक (भीष्मपंचक)।

अगहन शुक्लपक्ष पंचमी, छठ और अष्टमी।

माघ कृष्णपक्ष चौथ (गणेश चौथ) पंचमी, एकादशी।

फाल्गुन कृष्णपक्ष अष्टमी, तेरस (शिवतेरस)।

फाल्गुन शुक्लपक्ष होली आदि दिन भी व्रत के हैं।

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से व्रतों की आज्ञा धर्मसिन्धु और निर्णयसिन्धु में पाई जाती है। इन सब दिवसों में सम्पूर्ण दिन या किसी भाग तक सम्पूर्ण स्त्री पुरुष बालक भूखे रहते हैं और तत्पश्चात् अन्न को

छोड़कर घुइयां, सकरकन्दी, फाफड़ा, सिंघाड़ा आदि वस्तुयें खाते हैं, परन्तु इन सब में निर्जल रहना अर्थात् दिन और रात कुछ न खाना सब से उत्तम माना गया है, क्योंकि अन्न में पाप एकादशी आदि को होता है। भूखे रहने से कहते हैं कि आत्मा को मारकर एकाग्र चित्त होकर परमेश्वर का भजन करते हैं। जबसे इस देश में व्रतों का प्रचार हुआ, तभी से नाम मात्र के पण्डितों ने बहुत सी कथायें भी लिख मारीं जो इन्हीं व्रतों के दिन सुनाई जाती हैं, जिनमें बहुधा उत्तम भी हैं और बहुतों में केवल गपोड़ पन्थ ही भरा हुआ है और बतला दिया कि इन व्रतों के रहने से और इन कथाओं के सुनने से वही फल प्राप्त होता है जो सहस्र अश्वमेध, सहस्र गोदान, सौ कन्यादान और सहस्र उपकारादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है और ऐसे पुरुषों को संसार में धन धान्य सन्तानादि से सर्व प्रकार के आनन्द मिलते हैं। इन फलों को सुन कर वर्त्तमान समय में निर्धन धन के, बीमार आरोग्यता के, बेऔलाद सन्तान के और स्त्रियां पति-व्रत धर्म पूर्ण करने के अर्थ भेड़चाल की भांति बिना सोचे समझे व्रत रहती चली जाती हैं। बहुधा निमक और आग छोड़ देती हैं अर्थात् आग से बना हुआ भोजन न कर केवल ऋतु आदि के फलों पर निर्वाह करती हैं।

परन्तु जब हम धर्मशास्त्र पर दृष्टि डालकर इन उपरोक्त व्रतों की जांच करते हैं तो कहीं बिना अजीर्ण के भूखे रहने की आज्ञा नहीं पाई जाती, क्योंकि भूख के मारने से मन्दाग्नि हो जाती है, मनुष्य निर्बल हो जाते हैं, किसी की बात अच्छी नहीं लगती, अच्छी को बुरी समझते हैं, सूरत भयावनी हो जाती है। बहुत लिखने की क्या आवश्यकता है आप नित्य प्रति देख सकते हैं कि जो स्त्रियां अन्नादि छोड़ देती हैं उनकी क्या दशा हो जाती है, जिसके कारण वह गृहस्थी के कार्यों को नहीं कर सकतीं, गर्भाशय में अन्तर पड़ जाता है जिससे आनेवाली सन्तानों में नाना प्रकार के दोष हो जाते हैं पुत्र पुत्री आदि को पूर्णरूप से लालन पालन नहीं कर सकतीं।

अब रही चित्त की एकाग्रता और ईश्वर का भजन। यदि यह दोनों कार्य भूखे रहने से होते तो आज कल बहुधा जन बिना अन्न के मारे मारे फिरते हैं, फिर उनका एकाग्रचित्त क्यों नहीं होता और वह ईश्वर के भजन में लिप्त क्यों नहीं रहते? आप जानते हैं कि एक दिन भोजन न मिलने से मनुष्य व्याकुल हो जाता है, उसको दुनियां और दीन दोनों [illegible] पड़ते हैं, बुद्धि में

अन्तर आता है, कुछका कुछ सुनता और समझता है, दिल भटकता रहता है, फिर ईश्वर का भजन कैसा? यही कारण है कि बहुधा जन व्रती रह कर नाना कथायें वर्षों तक सुनते रहते हैं परन्तु सौ में दो मनुष्य भी ऐसे न निकलेंगे जो उन कथाओं को सुना सकें, फिर उन कथाओं पर चलना कैसा?

यदि भूखे रहने से ही चित्त की एकाग्रता होती तो हमारे ऋषि मुनि क्यों इतना कष्ट उठाते, जंगलों में रह यम और नियमों का सेवन कर योगाभ्यास करते। इन सब हानियों के अतिरिक्त एक बड़ी हानि इन व्रतों से यह हो रही है कि स्त्रियों ने इनको ही मुक्ति का द्वार समझ कर पति-सेवा को बिलकुल त्याग कर दिया, पति कुछ कहता है वह कुछ करती हैं जिससे गृहस्थाश्रम में प्रेम नहीं आता, दिन और रात झगड़े पड़े रहते हैं। हे प्यारी बहिनो! तुम कदापि इन व्रतों के रहने से स्वर्ग नहीं पा सकतीं वरन् नाना प्रकार के कष्ट उठाती हो। तुम्हारा तो परमदेव पति है, व ही तुम्हारा तीर्थ है, उसी की सेवा टहल से तुम आनन्द उठा सकती हो। जो फल यज्ञादि उत्तम कर्मों के करने से प्राप्त होता है वह तुमको केवल पति सेवा से ही मिल सकता है, जैसा कि मनु अध्याय ५ श्लोक १३५ और शंखस्मृति अ० ५ श्लोक ८ में लिखा है—

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषितम्।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते॥
न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारीस्वर्गमवाप्नोति प्राप्नोति पतिपूजनात्॥ शंख०॥

मारकण्डेय जी महाराज ने युधिष्ठिर से कहा है कि स्त्रियों को केवल पति-सेवा ही से स्वर्ग मिलता है। परन्तु शोक है कि वर्त्तमान समय में इन उक्त वचनों पर कोई ध्यान नहीं, और अधर्म में पड़कर अपने पति की आयु को हरती हैं और आप नरक को जाती हैं। जैसा कि विष्णुस्मृति अ० २५ श्लोक १६ और अत्रिस्मृति श्लोक १३४, १३५ में लिखा है—

पत्यौ जीवति या योषिदुपवासव्रतञ्चरेत।
आयुः सा हरते भर्त्तु र्नरकंचैव गच्छति॥
जीवद्भर्त्तरि या नारी उपोष्यव्रतचारिणी।

आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥

मान्यवरो ! जब यह अहङ्कार बहुत बढ़ा और सबको अत्यन्त दुःखदाई हुआ तो बहुत सज्जनों ने धर्मात्मा कोतवालों की भाँति संसार के हितार्थ उद्योगरूपी घोड़े पर चढ़कर धर्म रूप तलवार अपने हाथ में लेकर जीवन के भय को छोड़कर काम लोभ और अज्ञानरूपी शत्रुओं के मारने को सारे संसार में फिरते डोले और भिन्न २ स्थानों पर ज्ञानरूप दियासलाई के बन्द शास्त्ररूप मसाले फिर जलाए । उन्हीं के प्रकाश से आज हम जान गये हैं कि पूर्व समय में ये व्रत प्रचलित न थे । वरन् और ही थे और उनसे हमको नाना प्रकार के सुख मिलते थे जिनको मैं भी आपके हितार्थ वर्णन करता हूं । देखिये व्रत के अर्थ नियम के हैं अर्थात् वेदादि सत्य विद्याओं को पालन करना व्रत कहाता है, जैसा कि य० अ० १९ मं० ३० में लिखा है—

व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ॥

दक्षस्मृति अ०१ श्लोक ७ हारीतस्मृति अ० ३ श्लोक ५ में लिखा है कि जब वेद आरम्भ करे तो उसकी सिद्धि के लिये गुरुकुल में वेदोक्त व्रतों को करे । जैसाकि—

स्वीकरोति यदा वेदं चरवद व्रतानि च । दक्ष० ॥
तस्माद वेद व्रतानीह चरेत्स्वाध्याय सिद्धये ॥हारीत०॥

और ऐसा ही शंखस्मृति अ०३ श्लोक १५ तथा विष्णुस्मृति अ० १ श्लोक २१ में लिखा है कि यज्ञोपवीत संस्कार होने के पश्चात् गायत्री मन्त्र से लेकर वेद तक जिस २ ग्रन्थ को पढ़े उस उसका व्रत करे अर्थात् ब्रह्मचर्य रहकर वेद विद्या पढ़ने का नाम व्रत है । अनुशासन पर्व अ० १४३ में महेश्वर ने उमा से कहा है कि वेद व्रतों को धारण करना अति उत्तम है । सब से उत्तम और शारीरिक वा आत्मिक बल का देनेवाला व्रत ब्रह्मचर्य ही है जिसकी प्रशंसा प्रथम हो चुकी है, इसी को परमोत्तम व्रत वेदादि सद्‌शास्त्रों में माना है, जैसा कि अथर्व० २ का० ११ प्रपा० २४ वा १६ मन्त्र २६ में लिखा है कि—

तानि कल्पद्ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपोऽतिष्ठत्तप्यमानः।

समुद्रसस्त्रोतोवभ्रुः पिंगलः पृथिव्यां बहु रोचत॥

जो ब्रह्मचारी समुद्र के समान गम्भीर बड़े उत्तम ब्रह्मचर्य में निवास करता है वह महा तप को करता हुआ वेदपठन वीर्य निग्रह आचार्य के प्रियाचरणादि कर्मों को पूरा कर स्नानादि करके विद्याओं के धरता तथा सुन्दर वर्णयुक्त हो कर पृथ्वी पर अनेक शुभ गुण कर्म स्वभाव से प्रकाशमान् होता है, वही धन्यवाद के योग्य है, और याज्ञवल्क्य स्मृति अ० ५१ में लिखा है—

गुरवेतु वरं दत्वा स्नायीत तदनुज्ञया।

वेदं व्रतानि वा पारं पीत्वाह्युभयमेव वा।

गुरु को दक्षिणा देकर उसकी आज्ञा से वा वेद समाप्त या व्रत को पूरा करवा दोनों को पूर्ण कर समावर्त्तन संस्कार करे। व्यासस्मृति अ० १ श्लोक ४० में लिखा है कि जो ब्रह्मचर्य व्रत को पूरा करता है वह स्वर्ग को जाता है।

यस्तूपनैनादेतत्दातु मृत्योर्व्रतं चरेत।

सनैष्ठिकोब्रह्मचारी ब्रह्म सायुज्यमाप्नुयात्॥

शांतिपर्व अ० १६० में भीष्मपितामह का वचन है कि चारों आश्रमों के लिये इन्द्रिय-निग्रह ही उत्तम व्रत है। महाभारत उद्योगपर्व अ० ४४ में लिखा है कि जो मनुष्य ब्रह्मचर्य व्रत को पूर्ण रूप से पालन करता है वह इस लोक में शास्त्रकार होता है और अन्त को मोक्ष पाता है। इन्हीं कारणों से मनुजी ने अ० ११ श्लोक १२१ में लिखा है कि जो द्विज अपनी इच्छा से अपने ब्रह्मचर्य को गिरा देता है उसका व्रत नष्ट होता है, जैसा कि—

मारुतं तुरुहूतं च गुरुं पावकमेव च।

चतुरो व्रतिनोऽभ्येति ब्रह्मतेजोऽवकीर्णिनः॥

और श्रीमद्भागवत स्कन्ध ११ अध्याय १७ में लिखा है कि ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहकर विषय भोग से बचकर जब तक विद्या पूर्ण हो तब तक अखण्डित व्रत धारण करे, जैसा कि—

एत वृत्ता गुरुकुले वसेद्रोगनिर्वर्जितः ।
विद्यासमाप्यते यावद्भिद्वृतमखण्डितम् ॥३०॥

मार्कण्डेय पुराण अ० ४१ में लिखा है कि ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य में स्थित रहकर चोरी, लोभ और हिंसाका त्याग करे ये ब्रह्मचारीकी वृत हैं, जैसा—

अस्तेय ब्रह्मचर्यं च त्यागोऽलोभस्तथैव च ।
वृतानि पंच भित्तणामहिंसापरमाणिवै ॥

ऐसा ही लिंगपुराण अ० ८९ श्लोक २४ में लिखा है, जसा कि—

अस्तेयं ब्रह्मचर्य्यं च अलोभस्त्याग एव च ।
वृतानि पंच भित्तूणामहिंसापरमात्विह ॥

वाल्मीकि रामायण आरण्यकांड सर्ग ४७ में जब रावण संन्यासी का रूप धारण कर सीता के पास भित्तार्थ आया और उनका वृतान्त पूंछा तब उन्होंने कहा कि हमारे स्वामी श्रीरामचन्द्र जो पिता की आज्ञा में दृढ़ वृत थे, १४ वर्ष वन में रहने के लिये उद्यत हो गये, क्योंकि उन्होंने दो बातों की प्रतिज्ञा की थी प्रथम तो दान दें पर लें न और सदा सत्य बोलें झूंठ कभी नहीं । हे ब्राह्मण ! श्रीरामचन्द्र जी ने ये उत्तम वृत धारण किये हैं ।

सर्वलत्तण सम्पन्नं न्यग्रोधपरिमण्डलम् ।
सत्यसन्धं महाभागमहं राममनुवृता ॥ ३४ ॥

पद्मपुराण द्वितीय खण्ड अध्याय ६६ में सुकर्मा ने पिप्पल से कहा है कि हम तो माता पिता की सेवा करना ही एक व्रत जानते हैं ।

नरसिंहपुराण अ० ५८ श्लोक २१ में लिखा है कि ब्रह्मचारी वेदपाठ की सिद्धि के लिये नियमित व्रतों को करे । पद्मपुराण सृष्टि खं० अ० १६ में कश्यपजी ने कहा है कि सब अश्वमेधादी यज्ञों में एक यम अर्थात् इन्द्रियों को सब विषयों से निवृत्त करना ही उत्तम वृत है, इससे अब हम वे चिन्ह बताते हैं जिनके शान्त होने से हित होता है ।

मत्सरता, नम्रता, मधुरता, सन्तोष, शास्त्र पढ़ना, किसी की निन्दा न करनी, गुरु का पूजन करना, सब प्राणियों पर दया रखना, अपमान

से कोप न करना सम्मान में बहुत हर्षित न होना, सदा सुख दुःख में सम रहना ही शान्ति कहाता है। ऐसे ही पुरुष सुख को भोगते हैं क्योंकि शास्त्र के पढ़ने का मुख्य अभिप्राय इन्द्रियों का दमन करना ही है। यही सनातनधर्म है, इस लिये सब व्रतों में भी परायण दमन ही है, इससे इन्द्रियों का दमन करना आवश्यक है। पद्मपुराण षष्ठ उत्तर खण्ड अ० ७४ में महादेवजी ने पार्वती जी से कहा है कि सात्त्विक तपस्या से स्वर्ग मिलता है और राजस्वभाव से राजस उत्पन्न होता है और क्रूर कर्म करने वाला निष्ठुर मनुष्य तामस भाव से जो तपस्या करता है वह राक्षसों का तप कहाता है।

जो मनुष्य पांचों इन्द्रियों का निग्रह रूप तप करता और बुरे कर्मों में जी नहीं देता तो राग से निवृत्त मनुष्य को घर ही तपोवन है।

महाभारत उद्योग पर्व में सनत्सुजात मुनि का वचन है कि (१) अपने वर्ण और आश्रम के अनुसार कर्म करना, (२) सत्य बोलना, (३) इन्द्रियों को वश में रखना, (४) किसी की उन्नति देख कर न जलना, (५) निन्दा न करना, (६) यज्ञ, (७) दान, (८) अर्थ समेत वेद को पढ़ना (९) क्रोध को रोकना, (१०) आपत्ति के समय में भी सत्य को न त्यागना ये ही व्रत हैं। जो इन व्रतों को धारण करता है वह सम्पूर्ण पृथ्वी को अपने अधीन कर सकता है। जो मनुष्य ब्रह्मचर्य रख कर विद्या को प्राप्त कर उपरोक्त गुणों को धारण करता है वह मनुष्य ऋषि, देवता, मुनि और महात्मा कहाता है, और यही मोक्ष का उपाय है।

इसके अतिरिक्त शान्तिपर्व अध्याय २२१ में युधिष्ठिर महाराज ने भीष्मपितामह से प्रश्न किया है कि साधारण लोग जो देहपीड़ा कर उपवास को तपस्या कहा करते हैं, क्या यही तपस्या है ? तब भीष्म ने उत्तर दिया कि साधारण लोग जो ऐसा समझते हैं एक महीना वा एक पक्ष उपवास करने से तपस्या होती है सो यह आत्मविद्या की विघ्न स्वरूप तपस्या है। इसलिये यह व्रत अच्छे पुरुषों की सम्मति के विपरीत है। हां जो गृहस्थ होकर ऋतुगामी होते और न्यास व्रत को धारण करते, अतिथि की सेवा, प्राणीमात्र पर दया करते हैं वे सच्चे व्रती हैं, जो दिन रात में एक बार भोजन करते हैं, सदा उपवासी होते हैं। और ऐसा ही

शान्ति पर्व अ० ७८ में कहा है। और अत्रिस्मृति में भी यही उपदेश मिलता है कि आश्रमों के धर्मों को यथावत् करना परम व्रत है।

अनुशासन पर्व अ० १४३ में महेश्वर ने व्रत किया है, श्रीमद्भागवत् स्कन्ध ६ अ० १८ में कश्यपजी ने दिति को पुंसवन व्रत बताया है, उस में लिखा है (१) अहिंसा, (२) दुर्जनों से वार्त्ता न करे, (३) झूंठ न बोले, (४) क्रोध न करे, (५) मांस न खाय, (६) सत्य और प्रिय भाषण करे, (७) दिन में न सोवे, (८) सदा पवित्र रहे और पति का पूजन आदि नियम पालन की आज्ञा है। और अ०११ में इसकी विधि का विस्तार किया है, जहाँ प्रति दिन हवन करने की भी आज्ञा दी है और यह भी लिखा है कि जो इन व्रतों को धारण नहीं करते उनके व्रत नष्ट हो जाते हैं और धारण करनेवालों को सर्व प्रकार के सुख मिलते हैं।

प्रियवर्गो ! जैसी दुर्दशा वर्त्तमान समय में व्रतों की हो रही है, उससे अधिक तपस्या की है, कोई एक पैरसे वा हाथ उठा कर खड़े रहने को तपस्या कहते हैं, कोई झूलना में पड़े रहने को उग्र तप कहते हैं और कोई अन्न छोड़ने आदि को। परन्तु यह सब मिथ्या है, देखिये श्रीकृष्ण महाराज ने गीता में कहा है कि तपस्या तीन प्रकार की हैं—शारीरिक, वाचिक और मानसिक; और जब ये तीनों प्रकार की तपस्या इकट्ठी हो जावें तब वह मनुष्य तपस्वी कहलाता है। इन तीनों की व्याख्या इस भांति की है जो मनुष्य देव, ब्राह्मण, गुरु, तत्वज्ञानी इनकी पूजा करे और बाहर भीतर से पवित्र रहे और नम्रता पूर्वक रहे, ब्रह्मचर्य का साधन करे और हिंसा न करे तो उसको शारीरिक तप कहते हैं, जैसा कि—

देव द्विज गुरुप्राज्ञ पूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

ऐसा वचन कहे जिससे किसी को किसी प्रकार का भय न हो सत्य प्रिय हो, अन्त के विषय हितकारक हो, ऐसे वचन वेद शास्त्र के अभ्यास से होते हैं, यही वाचिक तप है, जैसा कि—

अनुद्वेगकरंवाक्यं सत्यंप्रिय हितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते॥

मन प्रसन्न और निर्मल रहे, क्रूर न हो, मन में ईश्वर स्वरूप की भावना हो, विषय से निवृत्त होय और लोकव्यवहार में कपट से रहित हो, उसको मानस तप कहते हैं।

व्यासजी महाराज ने कहा है कि मन को एकाग्र करके इन्द्रियों को वश में रखना यही तप कहाता है, क्योंकि मन बड़ा चंचल है, इसको अधीन कर लेना ही परम तप है। मनुस्मृति अ० २ श्लोक १६५ में कहा है कि यदि तप करना हो तो वेद का सदा अभ्यास करे क्योंकि यही परमतप है और श्लोक १६७ में कहा है कि जो ब्रह्मचर्य पूर्ण कर प्रति दिन द्विज गृहस्थ हो कर वेदाध्ययन करता है वह नख से शिख तक परमतप करता है और श्लोक २२७ से २२९ तक में कहा है कि माता पिता और आचार्य इन तीनों के प्रसन्न होने पर सम्पूर्ण तप पूर्ण होजाते हैं क्योंकि इन तीनों की सुश्रुषा परम तप कहाती है।

पद्मपुराण भूमि खण्ड अध्याय १४ में सुमना ने सोमदत्त को उपदेश किया है कि सदा आचार से रहे, काम, क्रोध से वर्जित प्राणियों के हित का उद्यम करे उसको तप कहते हैं तृतीय सर्ग खण्ड में श्रीरामचन्द्रजी ने कहा है कि स्वर्ग पाने के लिये सत्य बोलना परम तप है।

नरसिंह पुराण अध्याय ५४ में लिखा है कि सत्य तप से रहित होने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य शूद्र के समान होंगे और वनपर्व अध्याय २०० में मार्कण्डेय ने युधिष्ठिर से कहा है कि अन्न न खाना सहज है परन्तु अन्न खाकर इन छः चंचल इन्द्रियों का रोकना कठिन है, इसलिये इन्द्रियों का वश में रखना उग्र तप है। और मनु० अध्याय ११ श्लोक २३५ में ब्राह्मण का तप धर्मशास्त्र का पढ़ना, क्षत्रिय का तप प्रजा की रक्षा करना, वैश्य का तप नित्य व्यापार और शूद्र का तप नित्य सेवा करना है। अर्थात् वर्णाश्रम धर्मों को करना यथार्थ में तप है, जैसा कि—

ब्राह्मणस्य तपोज्ञानं तपः क्षत्रस्य रक्षणम्।
वैश्यस्य तु तपो वार्त्ता तप शूद्रस्य सेवनम्॥

और इसी अ० के २४६ श्लोक में नित्य वेद पढ़ना और यथाशक्ति यज्ञ करना और धैर्य्य रखना और श्लोक २४७ में बारम्बार वेद पढ़ने को ही परम तप कहा है और याज्ञवल्क्यजी महाराज ने अध्याय ३ श्लोक १०६ में स्पष्ट कह दिया है कि सम्पूर्ण बातों को छोड़ कर आत्मा में लिप्त रहने को तप कहते हैं। इसलिये, मान्यवरो ! आप इन मिथ्या व्रत और तप को छोड़ वेदानुकूल उपरोक्त व्रतों को वेद द्वारा जान उनके पूर्ण करने के अर्थ सत्य प्रतिज्ञा कीजिये जब ही आनन्द मिलेगा, अन्यथा नहीं।

तीर्थ और मोक्ष

मान्यवरो ! प्रत्येक ऋषि-ग्रन्थों में उनके जीवन-चरित्र और उनके नितय किये हुए नियम प्रत्यक्ष प्रकट कर रहे हैं कि इस संसार में उनका मुख्य कर्त्तव्य क्या था। न वह धन के अभिलाषी अन्य सांसारिक वस्तुओं में अपने चित्त को लगने देते थे, उनका सच्चा प्रेम परमात्मा को प्राप्त करना ही था। इस अभिलाषा के सिद्ध करने के अर्थ उन्होंने कठिन २ नियमों को अति सुगम समझा, इसलिये उन्होंने अपनी आयु का अधिक भाग इसी अभिप्राय के सिद्ध करने के लिये नियत किया था और यह आयु के प्रथम अमूल्य भाग में सबसे प्रथम नियमपूर्वक विद्याध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य को पूर्ण करते थे. इसका समय ४८ वर्ष तक था। विद्या से आत्मिक और ब्रह्मचर्य से शारीरिक बल प्राप्त होता था। जिनकी अति आवश्यकता है। आत्मिक बल से सत्य और असत्य का निर्णय और शारीरिक बल से उसके पूर्ण करने को कटिबद्ध रहते थे, तत्पश्चात् गृहस्थ होते थे। यद्यपि यह समय गृहस्थी के भोग विलास और सन्तान उत्पादनार्थ था परन्तु इन आनन्दों में पड़ कर भी वह अपने पवित्र आशय को न भूलते थे। वरन् नाना प्रकार के तप, व्रत और तीर्थ यज्ञादि नित्य करते थे। परन्तु शोक कि वर्त्तमान समय में इनके मुख्य आशय को बहुधा जन नहीं जानते और नाना प्रकार के प्रपंच रचते हैं कि जिनको अन्य देशीय जन जान कर नाना दोष बतलाते हैं। मान्यवरो ! ये परिपाटियां अति विचार और बुद्धिमानी से नियत की गई थीं, क्या कोई जन ऐसा संसार में जान पड़ता है जो उनके मुख्य आशय को जान उनमें शंका उत्पन्न कर सके ? व्रत और तपस्या का मुख्य अभिप्राय मैं आपको बतला चुका हूं, अब आपको संक्षेप से

ऋषि-तीर्थों का वृत्तान्त सुनाता हूं, देखिये तीर्थ शब्द 'तृप्लवनसंतरणयोः' इस धातु से औणादिक 'थक्' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है, 'तरन्ति येन यस्मिन् वा तत्तीर्थम्' अर्थात् जिससे जन तरते हैं वा जिस में जन तरते हैं उसको तीर्थ कहते हैं।

यजुर्वेद अध्याय १६ मंत्र ६१ में लिखा है कि मनुष्यों के दो प्रकार के तीर्थ हैं, उनमें पहिले तो वे हैं जो ब्रह्मचर्य, गुरु की सेवा, वेदादि शास्त्रों का पढ़ना पढ़ाना, सत्संग, ईश्वर की उपासना, सत्य सम्भाषण आदि दुःख-सागर से मनुष्यों को पार करते हैं और दूसरे वे जो समुद्रादि जलाशयों के पार आने जाने में समर्थ होते हैं, जैसा कि—

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्तानिषङ्गिणः।
तथाꣳसहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥

किसी महात्मा का वचन है—

सत्यं तीर्थं क्षमा तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं सर्वत्रार्जवमेव च ॥
दानं तीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परम तीर्थं तीर्थं च प्रियवादिता ॥
ज्ञानं तीर्थं घृतिस्तीर्थं पुण्यं तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि सततं निशुद्धिर्मनसः परा ॥

सत्य–जो कुछ देखा सुना हो और जानता हो वही विना कुछ अपनी ओर से मिलाये वर्णन करना तीर्थ है।

क्षमा–समर्थ होने पर भी क्षमा करना तीर्थ है।

इन्द्रियनिग्रह—पांच कर्म इन्द्रिय और पांच ज्ञान इन्द्रिय को अपने अपने विषयों से रोकना तीर्थ है।

दया अपने आत्मा के सदृश औरों के आत्मा को जानना तीर्थ है।

दान–पुस्तकालय, विद्यालयादि को खोलना और विद्यार्थियों और अनाथों आदि भूखों की यथायोग्य सहायता करना तीर्थ है।

दम—पंच कर्मेन्द्रियों को बाह्य विषयों से रोकना और दुःख सुख को समान जानना तीर्थ है।

सन्तोष—सत्य कार्यों के द्वारा जो कुछ प्राप्त हो उसमें जीवनाधार करना तीर्थ है।

ब्रह्मचर्य-सब प्रकार से वीर्य की यथावत् रक्षा करना परम तीर्थ है।

ज्ञान-सूत अमूत वस्तुओं का जानना तीर्थ है।

धृतिः सत्य प्रतिज्ञाओं का पालन करना तीर्थ है।

पुण्य-जो ब्राह्मणादि देश की उन्नति में बाधक नहीं हैं और न देश की उन्नति कर सकते हैं इनको अन्नजल से तृप्त करना तीर्थ है।

मन का शुद्ध करना-मन सत्य बोलने से शुद्ध होता है, यह परम तीर्थ है। और भी कहा है—

मनोविशुद्धं पुरतस्तु तीर्थं वाचा यमस्त्विन्द्रियनिग्रहस्तपः।
एतानि तीर्थानि शरीरजानि स्वर्गस्य मार्गं प्रतिवेदयन्ति॥

मन की पवित्रता, सत्य और विषयों को वश में रखना मनुष्यों के तीर्थ हैं और यही सुख के दाता हैं। मनुस्मृति अध्याय १२ श्लोक १२३ में लिखा है कि—

एतमेके वदन्त्यग्निं मनुमन्ये प्रजापतिम्।
इन्द्रमेके परेप्राणमपरे ब्रह्मशाश्वतम्॥

इस परमेश्वर को कोई अग्नि, कोई मनु, कोई इन्द्र और कोई प्राण और कोई तीर्थ कहते हैं।

और वृद्ध गौतमसंहिता में भी कहा है कि "क्षमावांस्तीर्थमुच्यते" कि क्षमावान् ही तीर्थ स्वरूप है। शांतिपर्व अ० १२३ में देवता, ऋषि, पितर, अतिथि आदि की पूजा करने को तीर्थस्वरूप वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त हमारे पूज्य विद्वान होने पर भी इस विषय को अच्छे प्रकार जानते थे कि संसार में रहना अति दुर्लभ है, गृहस्थी अति अगाध समुद्र है, इसमें कभी मनुष्य लोभ के कारण ऐसा हो जाता है कि जिससे वह सत्य असत्य को कुछ नहीं जानता, प्रति समय धन ही की लालसा में लगा रहता है, न धर्म को जानता है न अधर्म को, बहुतों को कष्ट देता है, कभी मोह अपना प्रचंड बल दिखलाता है जिससे वह स्त्री पुत्र आदि सम्बन्धियों के झूठे प्रेम में ऐसा फंस जाता है कि परमेश्वर को भूलने लगता है। अन्याय से बहुधा वस्तुयें

अपने कुटुम्ब के अर्थ सञ्चय करता रहता है, कभी काम में आकर अपना राज्य करता है कि जिसके कारण मनुष्य धन और धर्म को भूलकर नाना प्रकार के अत्याचार करता रहता है, कभी क्रोध में ऐसा लिप्त हो जाता है कि उस समय किसी का ध्यान नहीं करता, चाहे सर्वस्व नष्ट हो जावे। परन्तु वह अच्छे प्रकार से जानते थे कि यह मनुष्य के महाशत्रु हैं और सदा धर्म से हटाकर अधर्म की ओर उनका ध्यान लगाया करते हैं, इस लिये इनको सदा वश में करने का वे उद्योग करते रहते थे, क्योंकि बिना इनके वश किये आत्मज्ञान नहीं हो सकता और यह वेदादि शास्त्रों के उपदेश से अपने आधीन हो जाता है। इस कारण कभी २ वह नियमपूर्वक उन ऋषि मुनियों के समीप जाया करते थे जो अति विद्वान् थे, सांसारिक सुखों के त्यागी हो परमात्मा के भजन में लगे रहते थे और जो मनुष्यों को सत्योपदेश देने को उद्यत रहते थे और जो उनकी शंकाओं का समाधान कर अनेक प्रकार के सुखों का उपाय बतलाते थे।

इतिहासों से ज्ञात होता है कि यह ऋषि मुनि सदा ऐसे स्थानों पर कुटी बना कर रहा करते थे जहां का जल वायु आरोग्यदायक होता था, जहाँ बड़े २ वन उपवन होते थे और जहां उनके भोजनादि की सम्पूर्ण वस्तुमें सुगमता से मिलती थीं, ऐसे स्थानों को वह तीर्थ कहा करते थे क्योंकि उनका सत्योपदेश उनके चित्त को सांसारिक विकारों से हटाकर परमात्मा की ओर लगा देता था जिससे वह सर्व प्रकार के आनन्द भोगते हुए मोक्ष को प्राप्त करते थे। देखिये मार्कण्डेय जी महाराज ने कहा है कि वेद के जाननेवाले, व्रत करनेवाले, ज्ञानी, तपस्वी, ऋषि, मुनि, ब्राह्मण जहाँ रहते हैं वह भी तीर्थ है चाहे गांव और जङ्गल क्यों न हो। और श्रीमद्भागवत स्कन्ध ३ अ० १ श्लोक १६ में विदुर जी के चरणों और ऋषियों के निवासस्थान को तीर्थ कहा है, जैसा कि---

सनिर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात्तीर्थपदः पदानि।

और एक स्थान पर श्रीकृष्ण के चरणों को तीर्थ बतलाया है क्योंकि वह ज्ञानमय मूर्ति और योगिराज थे। इसके अतिरिक्त जब श्रीकृष्णचन्द्र और बलदेव जी महाराज रानियों समेत कुरुक्षेत्र को गये तब वेदव्यास, नारद, देवल, विश्वामित्र, भरद्वाज, गौतम, भृगु, कश्यप, अत्रि, बृहस्पति, याज्ञवल्क्य आदि अनेक ऋषि वहां पधारे, बहुत आदर सत्कार करने के पश्चात् श्रीकृष्ण

महाराज जी बोले कि आज हमको इन ऋषियों के दर्शनों से अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ, यही सच्चा तीर्थ और तप है ।

वनपर्व अ० ८५ में नारद मुनि ने बहुत से तीर्थों का वर्णन करके अन्त को कहा है कि तीर्थों के जाने का प्रधान फल यही है कि वहां पर वाल्मीकि, देवल, गौतम आदि अनेक ऋषियों के दर्शन होते हैं । देखिये श्रीरामचन्द्र महाराज ने भी वनवास के समय उन्हीं स्थानों पर निवास किया था जहाँ ऋषि मुनि निवास करते थे । रामायण से प्रकट होता है कि श्रीराम ने सुगन्धित धुआं को देख प्रयाग तीर्थ की परीक्षा की थी, जहां भरद्वाज मुनि रहते थे वहां उनकी भेंट की, जिन्होंने नाना प्रकार के उपदेश श्रीमान् को किये । वहां से चल कर चित्रकूट पर जहां अनेक ऋषि रहते थे तत्पश्चात् वाल्मीकि के आश्रम को सिधारे, फिर वहां से अत्रि के आश्रम को गये जिनकी स्त्री अनुसुइया जी ने महारानी सीता को अति उत्तम पतिव्रत धर्म का उपदेश किया था, तत्पश्चात् शरभङ्ग, सुतीक्ष्ण, अगस्त आदि महात्माओं से मिले और सत्यापदेश सुने जिससे उनको वन में बड़ा आनन्द प्राप्त होता था ।

मान्यवरो ! प्राचीन पुस्तकों से जाना जाता है कि विद्वान् से विद्वान् पुरुष भी इन तीर्थों में जाने से प्रथम बहुत प्रकार के नियमों का पालन करते, तत्पश्चात् बहुत थोड़े मनुष्यों के साथ जाते थे, क्योंकि उत्तम से उत्तम परीक्षित औषधियां कुछ भी लाभ नहीं देतीं यदि उनके सेवनीय नियमों पर न चला जावे, इसी भांति ऋषियों का उपदेश मोक्ष-सुख का देने वाला होता था, परन्तु यदि कोई मनुष्य सावधान चित्त होकर न सुने तो किस प्रकार स्मरण रह सकता है, फिर उनके अनुसार कार्य करना कैसा और सुख कहाँ ? इसीलिये महाभारत में शौनक मुनि ने युधिष्ठिर महाराज से कहा है कि तीर्थयात्रा का फल उन्हीं मनुष्यों को मिलता है जो अपने हाथ पांव और मन को आधीन कर लेते हैं और निरभिमानी, युक्ताहार और शीलवान् होते हैं । और लोमषमुनि ने महाभारत वनपर्व अ० ९२ में युधिष्ठिर जी से कहा है कि तीर्थों में बड़े ऋषि निवास करते हैं जो सब प्रकार के आनंद देनेवाले हैं, परन्तु पापी अबुद्धि इनके फलों को नहीं पाते । तीर्थ-यात्रा को सदा थोड़े मनुष्यों के साथ जाना चाहिये । जब युधिष्ठिर महाराज तीर्थ-यात्रा को जाने के लिये उपस्थित हुए तब व्यास जी ने उनको शिक्षा की

हे पाण्डव! मन को शुद्ध कर शान्ति-सहित तीर्थों को जाइये। मन के शुद्ध होने से बुद्धि पवित्र होती है जिससे आप शारीरिक नियमों और व्रतों को अच्छे प्रकार धारण कर सकते हैं। और अगस्त मुनि ने कहा है कि जिनकी सब इन्द्रियां वश में होती हैं, जो सब प्राणियों को समान जान कर सत्य का आचरण करते हैं और किसी प्रकार का अभिमान नहीं करते, स्वल्पाहारी होते हैं उन्हीं को तीर्थों का फल मिलता है। और व्यासस्मृति अ० ८ श्लोक ८५ में लिखा है कि पराई स्त्री और पराये धन का चुरानेवाला मनुष्य तीर्थों को भी जावे तो भी उसका किया हुआ पाप नष्ट नहीं होता। जैसा कि—

परदारान् परद्रव्यं हरते यो दिने दिने।
सर्वतीर्थाभिषेकेण पापं तस्य न मुच्यते॥

और शंखस्मृति अ० ८ श्लोक १५ में कहा है जिनके हाथ, पैर, मन, विद्या, तप, कीर्ति अपने वश में हैं वही तीर्थ के फल को भोगते हैं। परन्तु शोक कि वर्त्तमान समय में हमारे अनपढ़ अज्ञानी भाइयों ने काशी, प्रयाग, मथुरा, बदरीनाथ, केदारनाथ, जगन्नाथ, नैमिषारण्य और अनेक गंगातटों को तीर्थ मान रक्खा है कि जिनके माहात्म्य भी वर्त्तमान समय के नाम मात्र के पण्डितों ने लोभवश हो कर किसी न किसी पुराण के अन्तर्गत करदिये हैं जिनको बहुधा जन अनेक अवसरों पर सुनते रहते हैं। प्रत्येक माहात्म्य बतला रहा है कि इसी एक तीर्थ विशेष वा गंगा-स्नान से वह फल होगा जो संसार में किसी सत्क्रिया से नहीं होसकता! देखिये पद्मपुराण में यमुना-माहात्म्य है, उसमें लिखा है कि यमुना जी सर्व सुखों की दाता हैं, श्री यमुना जी के जल बिना गति नहीं हो सकती, जो श्रद्धादि उत्तम कर्म फल देनेवाले हैं, वह यमुना के स्नान मात्र से ही प्राप्त होते हैं। सतयुग में तप, त्रेता में यज्ञ, द्वापर में पूजा और कलियुग में यमुना स्नान सब सुखों का दाता है। व्रत, दान, तप से हरि प्रसन्न नहीं होते श्री यमुना जी के स्नान से प्रसन्न होते हैं। और गंगा के दर्शन करने से सौ जन्म के, पीने से तीन सौ जन्म के और स्नान करने से हज़ारों जन्म के पाप कलियुग में नाश होते हैं, जैसा कि—

दृष्ट्वा जन्मशतं पापं पीत्वाजन्मशतत्रयम्।
स्नात्वा जन्म सहस्राणि हरति गंगा कलौयुगे॥

और भी लिखा है कि गंगा का नाम सौ योजन से भी ले, ले तो पाप का नाश हो जाता है और विष्णुलोक को पाता है, जैसा कि—

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् यो जनानां शतैरपि ।
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णुलोकं सगच्छति ॥

गया के माहात्म्य में कहते हैं कि "ना गया न गया सो भया न भया" और बद्रीनारायण के जानेवाले कहते हैं "जो जावे बदरी, न आवे उद्री । जो आवे उद्री, कभी न होय दरिद्री ।" सुदामापुर में ८४ कुठरियों में फिरने से ८४ योनियों से छुटकारा होता है । इसी प्रकार अनेक श्लोक और कथायें लिखी हुई हैं जिनसे प्रकट है कि महा पापी मनुष्य भी एक बार गंगा, यमुना, बद्रीनारायण आदि के दर्शन से मुक्त होजाते हैं !

मान्यवरो ! जहां तक मैं जानता हूं इसके दर्शन या स्नान से कदापि मोक्ष नहीं हो सकती और यदि हो सकती है तो अब तक जिन जिन मनुष्यों ने स्नान दर्शनादि निरन्तर किये हैं और उनकी मुक्ति हो जानी चाहिये थी सो क्यों न हुई ? यदि कहो कि शरीर त्याग के पश्चात् मुक्ति होगी, तो उनमें जीवन्मुक्त के लक्षण राग, द्वेष, लोभ, मोह, क्रोध का त्याग, वैराग्य, ध्यान, समाधि के लक्षण होने चाहियें, जिससे निश्चय हो जाय कि इनकी मुक्ति शरीरान्त समय हो जायगी । यदि कहो कि पापों से मुक्ति होने का अभिप्राय है तो विचारना चाहिये कि पाप क्या वस्तु है. क्या शरीर के ऊपर मैल के समान है, जो गंगा में धोये जांयगे ! संचित्त पापों का अन्तःकरण स्थान है, जिसमें दुष्ट वासनारूप से पाप रहते हैं, उनका पूरा पूरा शोधन तप करने ही से हो सकता है, जलादि से नहीं । मनु० अ० ५ श्लोक १०९ में लिखा है—

अद्भिर्गात्राणि शुद्ध्यन्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति ॥

जल से केवल शरीर शुद्ध होता है, मन सत्य से शुद्ध होता है, आत्मा विद्या और तप से शुद्ध होता है, बुद्धि ज्ञान से पवित्र होती है । और भी लिखा है कि—

क्षान्त्या शुद्ध्यन्ति विद्वांसो दानेनाकार्य्यकारिणः ।
प्रच्छन्नपापाजप्येन तपसा वेदवित्तमाः

विद्वान् लोग शान्ति से शुद्ध होते, न करने योग्य कामों के करनेवाले

दान अर्थात् विद्यादि के देने वा अनाथ दीन वा सुपात्र विद्वानों को अन्नादि उत्तम पदार्थ देने से शुद्ध होते हैं, जिनके पाप छिपे हुए हैं वे गायत्री आदि वेदमन्त्रों को निरन्तर विधिपूर्वक जप करने से और वेद के ज्ञाता निरन्तर विधिपूर्वक तप करने से शुद्ध होते हैं।

बृहन्नारदीयपुराण अध्याय ३१ में लिखा है बाह्य और अभ्यन्तर भेद से दो प्रकार का शौच है। सो मृत्तिका और जल से तो बाहिर की शुद्धि और भाव शुद्धि से भीतर की पवित्रता होती है हे ऋषियो! अन्तःकरण की शुद्धि बिना जो यज्ञ आरम्भ किये जाते हैं वे फलित नहीं होते जैसे भस्म में होम क्रिया निष्फल है, इसलिये जिनकी भाव शुद्धि नहीं है उनकी सम्पूर्ण क्रिया निष्फल है, इसलिये स्नेहादिकों का परित्याग करके सुखी होना अभीष्ट है। हे ऋषियो! दुष्ट चित्त जन हजार भार मृतिका और करोड़ कलशों के जलों से शौच कर पर वह चाण्डाल ही कहलाता है। जो मनुष्य अन्तःकरण की शुद्धि के बिना बाहर की शुद्धि करता है वह सजाये हुए मदिरा के घड़े के समान है, इसलिये जो कोई बिना चित्त शुद्ध किये तीर्थयात्रा करते हैं तो उनको तीर्थ पवित्र नहीं करते, जैसे मदिरा के पात्र को नदियां पवित्र नहीं करसक्तीं॥

हे पाठकगणों! तनिक ध्यान दीजिये यदि जल में स्नान करने वा दर्शन या रेणुका के मुँह में डालने से ही मुक्ति और पापों की निवृत्ति होती तो फिर वेदों के वह उपदेश कि वेदादि विद्या पढ़ो, ब्रह्मचर्य धारण करो, धर्मानुसार धन का उपार्जन करो, सत्पुरुषों का संग करो, सत्पुरुषों को दान दो, यम नियम का पालन करो, योग में चित्त लगाओ इत्यादि सब मिथ्या ही हो जांयगे।

इसके उपरान्त जब स्नान करने ही से मोक्ष मिलनी है तो फिर यह कहना भी मिथ्या हुआ जाता है कि 'ऋतेज्ञानान्नमुक्तिः।' यदि स्नान ही मुक्ति का कारण है तो पयाग में भरद्वाज, हरिद्वार में मैत्रेय जी आदि ऋषि मुनि हवनादि यम नियम योगाभ्यास में नाना प्रकार के कष्ट निष्फल ही उठाया करते थे? वर्त्तमान समय में भी देखा जाता है कि जब दर्शन से ही मुक्ति होती है फिर स्नान करने की क्या आवश्यकता? इससे यदि स्नान भी किये फिर नाना प्रकार दान करने की क्या आवश्यकता? इससे भी विदित हुआ कि स्नान होने के पीछे भी दानादि उत्तम कर्म करने की

आवश्यकता है । हम देखते हैं कि कोई कोई गंगा पर बैठ कर जपादि भी करते हैं, यदि यही मुक्ति का कारण होता है तो जपादि की क्या आवश्यकता है ?

इसके उपरान्त श्रीरामचन्द्र महाराज ने रामायण में निज मुख से वर्णन किया है कि वेदोक्त कर्मों के करने से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होती है, इसकी क्या आवश्यकता थी ? राजा दशरथ जी महाराज ने राजसूय यज्ञ किये थे, श्रीकृष्ण महाराज ने भी अर्जुन को गीता में वेदोक्त कर्मों के करने का माहात्म्य वर्णन किया है । इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण महाराज ने कुरुक्षेत्र में महर्षियों के बीच वर्णन किया है कि महात्माओं के दर्शन करने से मनुष्यों को नाना प्रकार के लाभ होते हैं । इसके उपरान्त जब गंगा-स्नान से ही मुक्ति होती है तो फिर श्रीमद्भागवत में नाना कर्मों का व्याख्यान व्यास जी महाराज ने संसार को भ्रम में डालने के लिये क्यों किया ? इनके अतिरिक्त देखिये पुराण भी पुकार कर कह रहे हैं कि चाहे पर्वत के बराबर मिट्टी मिले और गंगा के सारे जल से मृत्युपर्यन्त स्नान करता रहे तो भी दुष्ट स्वभाव और दुष्ट विचारवाला मनुष्य शुद्ध नहीं हो सकता, जैसा कि—

गंगातोयेन कृत्स्नेन मृद्भारश्च नगोपमैः ।
आमृत्योः स्नातकश्चैव भावदुष्टो न शुद्धयति ॥

भागवत स्कन्ध १० अ० ५४ श्लोक ७ में लिखा है कि जलमय स्थान को तीर्थ तथा मृण्मय पाषाण मूर्ति को देवता नहीं कहते हैं, जैसा कि—

नह्यम्भमयानि तीर्थानि नदेवामृच्छिलामयाः ॥

लिंगपुराण अ० २५ में लिखा है कि जिसका अन्तःकरण शुद्ध न हो वह चाहे जितने जल से स्नान करे परन्तु शुद्ध नहीं होता, अर्थात् दुष्ट स्वभाव पुरुष का किसी नदी वा सरोवर में स्नान करने से शुद्ध होना अति कठिन है । मनुष्यों का चित्त कमल अज्ञानरूपी रात्रि से संकुचित हो रहा है इसको ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से विकसित करना उचित है, जैसा—

भावदुष्टोऽम्भसिस्नात्वा भस्मना च न शुद्धयति ।
भावशुद्धश्चरेच्छौचमन्यथा न समाचरेत् ॥ १० ॥

सरित्सरस्तडागेषु सर्वेष्वाप्रलयं नरः ।
स्नात्वापि भावदुष्टश्चेन्न शुद्ध्यति न संशयः ॥११॥
नृणां हि चित्तकमलम्प्रबुद्धमभवद्यदा ।
प्रसुप्तं तमसाज्ञानं भानोर्भासा तदा शुचि ॥१२॥

अर्थात् वार्ता यह है कि जल के स्नान करने से मुक्ति नहीं होती वरन् आत्मिक ज्ञान ही मुक्ति का कारण है, जैसा यजुर्वेद अध्याय ३१ मन्त्र १८ में लिखा है—

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।

उसी एक सर्वसाक्षी परमात्मा को जान कर जन्म मरण से छूट सकता है, अन्य कोई भी मुक्ति का मार्ग नहीं है । और मनु अध्याय १२ श्लोक ८३ में लिखा है कि वेद का पढ़ना और उसके लेखानुसार तप करना, आत्मज्ञान, इन्द्रियों को वश में करना, किसी को दुःख न देना और गुरु की सेवा करना इन छः कर्मों से मोक्ष होती है ।

वेदाभ्यासस्तपो ज्ञानमिंद्रियाणां च संयमः ।
अहिंसागुरुसेवा च निःश्रेयसकरं परम् ॥

परन्तु इनमें भी आत्मज्ञान को मुख्य माना है जैसा इसी अध्याय के ८५ श्लोक में लिखा है—

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परंस्मृतम् ।
तद्ध्याग्रयं सर्वविद्यानां प्राप्यतेह्यमृतं ततः ॥

नरसिंहपुराण अध्याय ६७ में मनु जी ने भरद्वाज से कहा है कि पृथ्वी तीर्थ जो मैंने ऊपर वर्णन किये हैं उनसे मानसी तीर्थ विशेष फलदायक हैं, उनको सुनिये । मन का निर्मल रखना, रोगादिकों से व्याकुल न होना, सत्य, सबके ऊपर दया करना, इन्द्रियों को जीतना, गुरु की माता पिता की सेवा करना, अपने धर्म का करना, अग्नि की उपासना अर्थात् होम करना, यह सब प्रत्येक तीर्थ हैं, इनको ही पुण्य तीर्थ कहा है ।

शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० ३५ में लिखा है जो माता पिता को छोड़ कर तीर्थ को जाता है उसको माता पिता के मारने की हत्या होती है,

पुत्र को पिता के चरणों की ही सेवा करना महा तीर्थ है, स्त्री का तीर्थ उसका स्वामी है।

और श्लोक ३४५ में स्पष्ट कहा है कि दम से हीन पुरुषों को वेद पवित्र नहीं कर सकते, चाहे उसने षडंग सहित वेद पढ़ा हो. उसी भांति सांख्ययोग उत्तम कुल में जन्म, तीर्थों में स्नान करना सब निरर्थक है। बृहन्नारदीय पुराण अ० ३१ में लिखा है जो निर्मल मन से धर्म करते हैं उनका फल अक्षय सुखदायक होता है।

देवीभागवत स्कन्ध ४ अ० ८ श्लोक २८ से ३४ तक। जिसके मन वाणी शुद्ध हैं उन्हें तीर्थ पद पद पर हैं, मलिन चित्त को गंगा कुछ नहीं कर सकती अर्थात् जब मन शुद्ध होजाता है तब तीर्थ भी पवित्र करते हैं नहीं तो गंगा के तीर पर मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सब ही गंगाजल पीते हैं परन्तु एक भी शुद्ध नहीं होता। जिनका मन विषय-वासना से हटगया है उन्हें तीर्थ क्या कर सकता है, इसलिये है, प्रथम मन की शुद्धि जिसके शुद्ध होने से द्रव्य शुद्धि तत्श्चात् शौचादि आचार शुद्ध ठीक करके तीर्थ में जाय तो अवश्य तीर्थ-फल यथायोग्य प्राप्त होता है। अर्थात् मनकी पवित्रता और शुद्धाचरण ही सच्चा तीर्थ है।

मनोवाक्याय शुद्धानां राजस्तीर्थं पदे पदे।
तथा मलिन चित्तानां गंगापि कीकटाऽधिका ॥२८॥
प्रथमंचेन्मनः शुद्धं जातं पाप विवर्जितम्।
तदा तीर्थाणि सर्वाणि पावनानि भवंतिवै ॥२९॥
गंगानीर हि सर्वत्र वसन्ति नगराणि च।
ब्रजाश्चैवाकरग्रामाः सर्वे खेटास्तथापरे ॥३०॥
निषादानां निवासाश्च कैवर्त्तानां तथापरे।
हूणवंग खसानां च म्लेच्छानां दैत्यसत्तम ॥३१॥

देवीभागवत् स्कन्ध ३ अ०८ में ब्रह्मा जी ने कहा है कि जब तक काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा, द्वेष, राग, मद, निन्दा, ईर्षा, अक्षमा और अशान्ति ये नहीं गए तब तक पापयुक्त समझना चाहिये, अर्थात् तीर्थ करने पर ये दोष शरीर से न गए तो श्रम वृथा ही जानना चाहिये।

पाप देह विकाराये कामक्रोधादयः परे।

लोभो माहस्तथा तृष्णा द्वेषो रागस्तथा मदः ॥ २३ ॥

असूर्य्या क्षमा शान्तिः पापान्येतानि नारद।

न निर्गतानि देहात्तु तावत्पापयुतोनरः ॥ २४ ॥

कृते तीर्थपदेतानि देहान्ननिर्गतानिचेत्।

निष्फलः श्रमएवैकः कर्षकस्य यथा तथा ॥ २५ ॥

अर्थात् इन दोषों का न होना ही तीर्थ का फल देता है, इससे इनका त्यागना सच्चा तीर्थ है।

और वशिष्ठस्मृति अ० ३० श्लोक ८ में लिखा है कि मानस यज्ञ करने से मोक्ष होती है जिसमें ध्यान को यज्ञ का अग्नि और सत्य को यज्ञ का इन्धन, धैर्य को यज्ञ, अभिमान के त्याग को यज्ञ का श्रुवा, अहिंसा को यज्ञ की सामग्री, सन्तोष को यज्ञस्थान और सम्पूर्ण जीव की रक्षा करने की प्रतिज्ञा को जो बहुत कठिन है यज्ञ करानेवाले की दक्षिणा समझना माना है, जैसा कि—

मानसिकयज्ञकरणान्मोक्षो भवति।

मानसिकयज्ञे ध्यानं यज्ञोग्निः सत्यमिन्धनम् ॥

धैर्य्यं यज्ञः अभिमानत्यागो यज्ञश्रुवः।

अहिंसायज्ञसामग्री। सन्तोषोयज्ञस्थानम् ॥

सम्पूर्णजीवरक्षाकारक प्रतिज्ञादक्षिणा च उच्यते ॥

और ज्ञानसंकलिनी तन्त्र श्लोक ४८ और ४९ में भगवान् शङ्कर ने कहा है—

इदं तीर्थमिद तीर्थं भ्रमन्ति तामसाजनः।

आत्मतीर्थं न जानन्ति कथं मोक्षो वरानाने ॥

हे पार्वती! तमोगुण युक्त लोग मन को, कहीं शिव को, कहीं अन्य स्थान और शक्ति को, कहीं अन्यत्र जान कर 'यही तीर्थ है, यही तीर्थ है' ऐसे भ्रम में पड़ कर सर्वत्र घूम रहे हैं। हे वरानने! आत्मतीर्थ के ज्ञान बिना जीव को किसी प्रकार मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकती।

प्रियवर्गो ! हाँ यह सम्भव हो सकता है कि जिन तीर्थस्थानों को आप नाना प्रकार के कष्ट और धन व्यय करके जाते ये हैं वही स्थान हों जहां पर आपके ऋषि मुनि पूर्व समय में रहते हों और जहां पर हमारे आपके पुरुषाओं ने जाकर सत्य उपदेश सुनके आनन्द उठाये हों, परन्तु अब आप उन स्थानों को बुद्धि की दृष्टि से देखिये कि वहां की क्या अवस्थायें हैं ? क्या प्रयागराज में कोई ऋषि इस समय भरद्वाज के समान उपस्थित है जिनके आश्रम को श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने वेदोक्त चिन्ह पाकर दूर से जान लिया था और जिन्होंने उक्त महाराज को नाना प्रकार की शिक्षायें कीं ? क्या हरिद्वार पर मैत्रेय के समतुल्य ऋषि हैं ? जिनसे हमारे परम नीतिज्ञ विदुरजी ने अपनी शंकाओं का निवारण किया था । क्या सोमतीर्थ पर कोई ऋषि उपस्थित है ? जहां पर हमारे ज्ञान-परिपूर्ण कण्वजी महाराज आनन्द उठाने के लिये गये थे । क्या अनुसूया के समान कहीं स्त्रियां हैं ? जिन्होंने सीताजी को पतिव्रत धर्म पूर्ण करने के अर्थ शिक्षा दी क्या हमको उन स्थानों में अत्रि, वशिष्ठ, बाल्मीकि, शरभंग, सुतीक्ष्ण, अगस्त के समान ऋषि मिल सकते हैं ? कदापि नहीं, कदापि नहीं । सच तो यह है कि इस समय ही ने हमको बड़ा धक्का दिया । इस ने हमारे बने बनाये कार्य को बिगाड़ दिया उन ऋषि मुनियों को कि जिन्होंने सारे संसार को अपने ज्ञान से प्रकाशित कर रक्खा था ऐसे विनष्ट होगये कि उनका कहीं पता नहीं चलता । इस भारत को जो कि एक समय में उन्नति की ऊँची सीढ़ी पर चढ़ा हुआ था, ऐसा गिराया कि कुछ भी ठीक न रहा । हमारे पवित्र नियमों को ऐसा बिगाड़ा कि हम पर अन्य देशी जन हँसते हैं । तीर्थों की वह दुर्दशा की है कि जहां ऋषिगण यज्ञ करते थे वहां भंग चरस उड़ता है ? जहां उनके वेदोक्त सत्योपदेश से आत्मिक उन्नति होती थी वहां सण्डे मुसण्डे नानारूप धारण कर अनेक प्रकार से ठगते हैं । लड़कों के नाच दिखलाये जाते हैं, पण्डों की स्त्रियाँ भी यात्रियों को खबर लेती रहती हैं, रण्डियों के समूह के समूह वहां जाते हैं और तबला खड़कता है अर्थात् इसी प्रकार के अनेक उपाय दर्शाये जाते हैं जिनका मैं विस्तारभय से वर्णन नहीं करता, आप प्रत्यक्ष विलोकन कर रहे हैं ।

मान्यवरो ! संस्कृत विद्या के न जानने से या यों कहिये कि जिन प्रयोजन के साधन के लिये लोभी गुरुओं ने वेदादि सत् शास्त्रों के शब्दों

के मुख्य अर्थ को छोड़ इन शब्दों से मनमाना अर्थ निकालकर संसार को भ्रमजाल में डाल दिया जो अब तक भेड़िया धसान की भांति एक दूसरे के पीछे बिना देखभाल किये चले जाते हैं। जैसा कि वेदों में तीर्थ, व्रत, श्राद्ध तर्पण इत्यादि शब्दों के मुख्य अभिप्राय को हमने वेदादि सच्छास्त्रों के प्रमाणों से सिद्ध किया है, इसे उड़ाकर निज प्रयोजन निकाला। इस के अतिरिक्त और भी देखिये 'शन्नो देवी०, गणानां त्वा०' इत्यादि में देवी शब्द से कालिका की मृत्तिकादि पूजा करवाते हैं, द्वितीय में 'गण' शब्द से मिट्टी के गणेश जी बनाकर पुजवाते हैं। ऐसाही बृहत्सामब्राह्मण के गंगा और यमुनादि शब्दों के मुख्य अभिप्राय को न समझ कर पृथ्वी पर की बहती हुई गंगा और यमुनादि नदियों में नहाने से मुक्ति मानने लगे, देखिये बृहत्सामब्राह्मण में लिखा है—

इडा भगवती गंगा पिंगला यमुना नदी।
तयोर्मध्ये प्रयागस्तु यस्तं वेद स वेदवित्॥

इडा नाड़ी गंगा के नाम से और पिंगला नाड़ी यमुना के नाम से प्रसिद्ध है, इन दोनों के बीच में जो हृदय आकाश है उसको प्रयाग कहते हैं, जो मनुष्य इनको जानता है वह वेद का जाननेवाला है। और 'याज्ञवल्क्य शिक्षा, में लिखा है:—

कालिन्दी संहिता ज्ञेया पदयुक्ता सरस्वती।
क्रमेण कीर्तिता गंगा शम्भोर्वाणीतु नान्यथा।

अर्थात् कालिन्दी वेदसंहिता का नाम है और यदि वेदमन्त्रों के पदों को पृथक् २ पढ़ा जावे उसका नाम सरस्वती है और जो वेद मन्त्रों को क्रम से पढ़ा जाय उसको विद्वान् गंगा के नाम से निरूपण करते हैं, यही शंभु अर्थात् महादेव जी की वाणी है, और महाभारत में लिखा है—

आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था सत्योदका शीलतटादयोर्मिः।
तत्राभिषेकं कुरुपाण्डुपुत्र ! न वारिणा शुध्यतिचान्तरात्मा॥

यह रूपकालंकार है, जो परमेश्वर सर्वव्यापक है वही एक नदी है, उस नदी में अपने मन इन्द्रियों का लगाना वही पुण्य तीर्थ है अर्थात् किनारा तरना है, उस नदी में जो सत्य है वही जल है, उस नदी का किनारा

शील और दया उसकी लहरें हैं, सो हे युधिष्ठिर ! तुम आकर ऐसी नदी में स्नान करो क्योंकि वारि अर्थात् धरती पर की नदियों के पानी में स्नान करने से आत्मा शुद्ध नहीं होता । इस लिये, आओ सज्जन पुरुषो ! हम भी इन उपरोक्त प्रकार की गंगा, यमुना और सरस्वती में योगाभ्यास द्वारा स्नान करने का उद्योग करें कि जिसके प्रताप से मोक्षरूपी अमृतफल मिलता है, क्योंकि बाईं ओर पिंगला और दाहिनी ओर इड़ा और बीच में प्रयाग है और प्रयाग के अर्थ योग के हैं अर्थात् जिस स्थान पर जीव को सर्वव्यापक परमेश्वर के दर्शन होते हैं उसी को प्रयाग कहते हैं ।

योग का वर्णन

प्यारे सुजनों ! चित्त की वृत्तियों के निरोध का नाम योग है जिसके बिना जीवात्मा नाना क्लेशों को भोगता तथा धर्म अर्थ काम और मोक्षरूपी पदार्थों को खोता है, इस लिये श्रेष्ठ पुरुषों को चित्त के निरोध करने के निमित्त योगरूपी मार्ग में पूर्ण सामर्थ से पग रखना योग्य है । परन्तु वर्त्तमान समय में 'योग' शब्द के अर्थ ऐसे समझ रक्खे हैं कि जो भिक्षुक गेरुये कपड़े पहन कर किसी विद्या न जानने के कारण बिना परिश्रम किये आलस्य में चूर होकर उदर पोषण के अर्थ घर २ भीख मांगते हैं उनको ही योगीजी कहते हैं, कोई ऐसा भी सुनाते हैं कि जो परिवार छोड़ जंगल में चला जाय वही योगी है । हे भाइयो ! यह सब मिथ्या बातें हैं । योग के अर्थ जंगल में जाने, कपड़े रँगने, और कनफटे बनने की कुछ आवश्यकता नहीं । क्योंकि योग का सम्बन्ध चित्त से है न कि जंगल वा कपड़ों से । हे बान्धवों ! यदि कोई जंगल में जावे और उसकी इन्द्रियां उसके आधीन न हों तो वह वन में जाकर क्या खाक न छानेगा ? इस लिये यह सब मिथ्या बातें हैं क्योंकि चित्त की स्थिर वृत्तियों का नाम योग है न कि इस प्रकार की दिखावट और दूकानदारी का । इसके उपरांत जब हम प्रतिदिन देखते हैं कि बहुधा औरतें सिर पर घड़े पर घड़ा ले जाती हैं, नट रस्से पर डोल आता है, निशानची निशाना मार देता है तो फिर संसार में योग न होने का क्या कारण है, प्यारे बन्धुवर्गो ! यह भी तो योग ही के लक्षण हैं अर्थात् बिना चित्त को स्थिर किये कभी ऐसा नहीं कर सकते तो फिर योग से डरने और जँगलों में जाने की कौन आवश्यकता है ? प्यारे सुजनो ! प्राचीन काल में इसी भारतवर्ष में अनेक

जन इस विद्या में पूरी योग्यता रखते थे, क्या आप राजा जनक को नाम जो मिथिलापुरी में राज्य करते थे नहीं जानते, जिन्होंने योग विद्या में ऐसी योग्यता प्राप्त की थी कि उस समय के ऋषि लोग उनकी प्रतिष्ठा करते थे और श्रीकृष्ण जी महाराज योग विद्या में पूर्ण निपुणता रखते थे। इनके उपरांत अनेक स्वजनों ने इस विद्या में अच्छी योग्यता प्राप्त की थी और उन्होंने इसी योगबल से नाना भांति की युक्तियें और गुण निकाले थे जिनको इस समय में नाम मात्र भी नहीं जानते। प्यारे सुजन पुरुषो! इस समय में रेल तारादि को देख कर आश्चर्य करते हैं परन्तु प्राचीन समय में योगविद्या के जाननेवाले ज्ञाता जन हज़ार कोस पर बैठ कर आपस में बातें करते थे। इसकी आठ सीढ़ी हैं जिनका वर्णन पतञ्जलि महर्षि ने अपने बनाये हुए योगशास्त्र में अच्छे प्रकार लिखा है। याथार्थ में प्राणायाम करने से प्रतिदिन अज्ञान का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता है, इस लिये जब तक मुक्ति न हो तब तक इस क्रिया को सदा करता रहे—

प्राणायामशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिरविवेकख्याते।

इस विषय में मनुजी ने भी लिखा है—

दह्यते ध्मायमानानांधातूनां च यथा मलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्॥

अर्थात् जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं के मल नष्ट हो जाते हैं वैसे ही प्राणायाम करने से यम आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण हो कर निर्मल हो जाते हैं अर्थात् मन एकाग्र हो जाता है जो उपासना के समय किसी सांसारिक कार्य में नहीं जाता, जो उपासना का मुख्य काम है, इस लिये प्राणायाम प्रतिदिन करना चाहिये, ऐसा ही गीता में भी लिखा है—

अपानेजुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।
प्राणापानगतीरुध्वा प्राणायामपरायणाः॥

अर्थात् जो अपान में प्राण को और प्राण में अपान को हवन करते वा लय करते वा मिलाते हैं, उनके प्राण की गति रुकने से मन उसके साथ रुक जाता है, इस लिये प्राणायाम करना उचित है।

मुख्य प्रयोजन इस कथन का यह है कि जब प्राणायाम के करने से

प्राण अपने वश में हो जाता है, तो मन और इन्द्रियां भी स्वाधीन हो जाती हैं जिससे पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र होती है जो कठिन से कठिन और सूक्ष्म विषय को शीघ्र ग्रहण कर लेती है। इसी से वीर्यवृद्धि होकर शरीर बल-पराक्रम युक्त हो जाता है और भय का उसके चित्त में अंश भी नहीं रहता। वही निर्भय होकर संसार का सर्व प्रकार उपकार करता है और उपासना के समय उसका मन इधर उधर को नहीं जाता, वरन् परमेश्वर के ध्यान में मग्न हो कर आनन्द तथा मोक्ष सुख को पाता है, इस लिये अवश्यमेव थोड़ा २ अभ्यास करना परम आवश्यक है। परन्तु योग उन्हीं सज्जनों को सिद्ध होता है जो संयम नियम का यथावत् सेवन करते हैं। इसके उपरान्त इस वृत्ति में शीघ्रता करने की आवश्यकता नहीं और प्रथम इसमें कठिनता भी जान पड़ती है परन्तु जब अन्तःकरण की रजोगुणी और तमोगुणी वृत्ति कम हो जाती है और मुक्ति की इच्छा, विवेक, वैराग्यादि वृत्ति जब प्रधान होती है तब यह सुगम जान पड़ती है और जब यथार्थ में अन्तःकरण का रजोतम दूर हो जाता तब वह सुख प्रकट होता है कि जिस सुख का पारावार नहीं और उसका कोई वर्णन नहीं कर सकता।

य० अ० १२ मन्त्र ६७ में लिखा है—

सीरायुञ्जन्ति कवयोयुगावितन्वते पृथक् धीरा देवेषुसुम्न्या

अर्थात् योगी पुरुष अपने ज्ञान के बढ़ाने में तन मन लगा कर लगातार पुरुषार्थ से ऐसे ज्ञान को प्राप्त होते हैं जहाँ किसी प्रकार का संशय और भ्रम नहीं रहता, उनके लिये सीधा और स्वच्छ मार्ग है, ऐसी दशा में पहुंचे हुए महात्माओं की वे ही मनुष्य प्रतिष्ठा करते हैं जो विद्वान् होते हैं और अविद्वान् मनुष्य योगियों की बात और उनके मर्म समझ ही नहीं सकते, उन के विचार ही में नहीं आते, क्योंकि धर्मचक्षु नहीं, इस लिये वह योगियों के गुणों को देख नहीं सकते, हां विद्वान् मनुष्य जानते हैं कि योगी ने जिस ज्ञान की प्राप्ति की है वह अति कठिन है, संसार भर की विद्या उसकी समानता नहीं कर सकती, जो जड़ पदार्थों से सम्बन्ध नहीं रखती वरन् उसका सम्बन्ध सूक्ष्म पदार्थ से है, इसलिये विद्वान् मनुष्य योगियों का आदर सत्कार करते और उनके चरणों के सेवक होते हैं।

धन्य हैं वे सुजन जिनका विद्वान् आदर सत्कार करते हैं परन्तु वह ब्रह्मज्ञान योगियों को सहज ही में नहीं मिलता वरन् विद्वान् योगी महात्मा

और धीर पुरुष योनि विभाग से नाड़ियों द्वारा अपने आत्मा में धारण करते हैं अर्थात् बड़े २ साधनों से अमूल्यरत्न मिलता है जिनकी व्याख्या पतञ्जलि महर्षि ने की है जिनका हम संक्षेप से वर्णन करेंगे।

इसलिये सज्जन पुरुषों को आलस्य त्याग प्रतिदिन आठों अंगों का सेवन युक्तिपूर्वक करना चाहिये, क्योंकि यह सब यज्ञों से श्रेष्ठ है, इस बात को श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज ने गीता में बारह प्रकार के यज्ञों में प्राणायाम अर्थात् प्राणनिरोध करना सबसे श्रेष्ठ कहा है।

(अष्टांग योग के आठों अंगों का वर्णन)

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारध्यानधारणासमाधयोष्टावङ्गानि।

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, ये योग के आठ अंग हैं।

(यम का वर्णन)

तथाहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहायमाः। योगसूत्र॥

अर्थात् (१) अहिंसा, (२) सत्य, (३) अस्तेय, (४) ब्रह्मचर्य, (५) अपरिग्रह।

१–अहिंसा, किसी से वैर भाव न करना, अर्थात् सुख सम्भोगयुक्त प्राणियों में मैत्री और दुःखियों पर दया पुण्यात्माओं में मुदितता और पापियों में उपेक्षा करना चाहिये।

२–सत्य, जैसा अपनी आत्मा में हो वैसा कहे और माने, जो मनुष्य ऐसा करते हैं उनकी वाणी से जो निकलता है वैसा ही होता है।

३–अस्तेय, किसी प्रकार की चोरी न करना, जो इसको यथावत् सेवन करता है उसको सब पदार्थ मिल जाते हैं।

४–ब्रह्मचर्य २५, ३०, ४०, ४८ वर्ष वा इससे आगे वीर्य को स्खलित न होने देना, अर्थात् जो वीर्य की पूर्ण रक्षा करता है वह पूर्ण ज्ञानी और महात्मा होने के योग्य होता है।

५. अपरिग्रह, जब मनुष्य यथावत् इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है तब उसके मन में यह विचार आता है कि मैं कौन हूं और कहां से आया हूं और क्या करता हूं, मुझको क्या करना चाहिये और मेरी किस बात में भलाई है इत्यादि बातों के विचार का नाम अपरिग्रह है।

(नियम)

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधाना नियमाः ।

(१) शौच, (२) सन्तोष, (३) तप, (४) स्वाध्याय, (५) ईश्वरप्रणिधान, ये पांच प्रकार के नियम हैं ।

१—शौच, यह दो प्रकार का है, एक शारीरिक दूसरा आत्मिक। शारीरिक शुद्धि जल और खान पान आदि से होती है और आत्मिक वेदादि विद्या पढ़ने और धर्म पर चलने और सत्संग से होती है ।

२—सन्तोष, उसको कहते हैं जो सदा धर्मानुकूल कार्यों को करता हुआ नाना प्रकार के क्लेश होने पर भी धैर्य को नहीं छोड़ता, आलस्य का नाम सन्तोष नहीं है ।

३—तप, जैसे सोना चांदी आदि अग्निमें तपाने से स्वच्छ हो जाते हैं वैसे ही आत्मा और मन के धर्माचरणरूपी शुभ गुणों को तपा कर निर्मल करने का नाम तप है। जिसके मुख्य तीन भेद हैं मनसा, वाचा, कर्मणा । इन तीनों को धर्माचरण में लगाना ही तप कहाता है, अग्नि जलाकर बीच में बैठने का नाम तप नहीं है ।

४—ईश्वरप्रणिधान, सर्व सामर्थ्य, सर्व गुण, प्राण, आत्मा और मन के प्रेमभाव से आत्मादि सत्य द्रव्यों को ईश्वर के लिये समर्पण करने को कहते हैं ।

(आसन)

आसन उसको कहते हैं कि जिसमें शरीर और आत्मा सुखपूर्वक स्थिर हों, इसलिये जैसी रुचि हो वैसा आसन करे, जब आसन दृढ़ हो जाता है, तब उपासना करने में परिश्रम जान नहीं पड़ता और सरदी गरमी आदि नहीं व्यापती, यह उपासना का तीसरा अंग अर्थात् सीढ़ी है ।

प्रकट हो कि आसनों के भेद अनन्त हैं और वे आसन सम्पूर्ण योग विषय के ज्ञाता मनुष्य को उपकारी होते हैं । कुछ आसनों का संक्षेप से वर्णन यहां किया जाता है ।

योग शास्त्र में ८४ आसन लिखे हैं उनमें से स्वस्तिक, गोमुखवीर पद्म· कुक्कुट, उत्तान, कूर्मक, धनुष, मत्स्य, मयूर, सर्प, सिंह, भद्र, सिद्ध दण्डासन पन्द्रह के नाम ये हैं, इनमें से बहुधा आसनों से शरीर का रोग निवृत्त होता है और कईएक ब्रह्मानन्द समाधि में उपयोगी हैं । इन उपरोक्त लिखे आसनों

में सिंह, भद्र, पद्म, सिद्ध ये चार ही मुख्य ठहराये गये हैं और इनमें से भी पद्म और सिद्ध विशेष हैं और सिद्ध आसन को वृत्तासन, मुक्तासन और गुप्त आसन भी कहते हैं। इस विषय में गीता में लिखा है—

शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः।
नात्युच्छ्रितंनातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम्॥

अर्थात् आसन पवित्र भूमि में अचल लगाकर अभ्यास करे, आसन न बहुत ऊँचा हो, न बहुत नीचा, छत और मुड़ेरी पर आसन न लगाना चाहिये, जो मनुष्य आसन सिद्ध नहीं करता उसको द्वन्द्व दुःख देते हैं और आसन सिद्ध होने से यह उसको दुःख नहीं देते, इस लिये आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिये।

(पद्मासन)

चौ०—पहिले बामा पैर उठावे। दहिनी जंघा ऊपर लावे॥
विधि इमि दक्षिण पैर उठाना। बामि जंघा परिधरि आना॥
बामा कर पीछे पुनि लावे। बाम अंगूठा गहि तनु तावे॥
योंही दक्षिण कर को लावे। दहना दृढ़ अंगुष्ट करावे॥
ग्रीवलटकिचिबुकहियकरिये। नासा आगे दृष्टि सुधरिये॥

(सिंहासन)

दोहा—गुदामध्य धरि बामपद, दक्षिण लिंग दबाय।
दृष्टि धरे भृकुटी विषे, चिदानन्द चितलाय॥

इन आसनों के अभ्यास से सम्पूर्ण नाड़ियों के मल नष्ट हो जाते हैं, यह चौरासी आसनों में श्रेष्ठ हैं।

(प्राणायाम)

स्थिर होने से जो प्राण की गति का अवरोध होता है उसे प्राणायाम कहते हैं, यही चौथा अँग अर्थात् सीढ़ी है।

आसन सिद्ध होने पर जो बाहर से वायु भीतर को जाता है उसको श्वास कहते हैं और जो भीतर से बाहर जाता उसे प्रश्वास कहते हैं और इन दोनों की गति के अवरोध को प्राणायाम कहते हैं। वह चार प्रकार का है—
(१) बाह्य, (२) अभ्यन्तर, (३) स्तम्भवृत्ति, (४) बाह्याभ्यन्तराक्षेपी।

(१) बाह्य, वह है कि जब भीतर से वायु बाहर को निकले उसको बाहर ही रोक दे।

(२) अभ्यन्तर, उसे कहते हैं कि जब बाहर का वायु भीतर जावे तब जितना हो सके भीतर रोके।

(३) स्तम्भवृत्ति, उसको कहते हैं न प्राण को बाहर निकाले न बाहर से भीतर को ले, वरन् जितनी देर हो सके सुखपूर्वक जहां का तहां ज्यों का त्यों रोक दे।

(४) बाह्याभ्यन्तराक्षेपी—जब श्वास भीतर से बाहर को आवे तब बाहर ही थोड़ा २ रोकता रहे और जब बाहर से भीतर को जावे तब उस को भीतर ही थोड़ा २ रोके।

(प्राणायाम करने की विधि)

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

जिस प्रकार कै होती है जिसको लौटा या वमन कहते हैं, जिसके होने से भीतर पेट के अन्न और जल बाहर निकल आते हैं, उसी प्रकार प्राण को बल से बाहर फेंक के बाहर ही यथाशक्ति रोक देवे और जब बाहर निकालना चाहे तो मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रक्खे। जब तक प्राण बाहर निकले और जब घबराहट हो तब धीरे २ भीतर ले जाय और जितना हो सके रोके, इसी प्रकार जितनी सामर्थ्य हो धीरे २ बढ़ावे।

प्रकट हो कि उदरस्थ प्राण वायु को नासिका के नथुनों से प्रयत्न पूर्वक निकालने को 'प्रच्छर्दन' खींचने को 'विधारण' कहते हैं।

(प्रत्याहार)

'प्रत्याहार' उसको कहते हैं कि जब मनुष्य अपने मन को जीत लेता है तब सब इन्द्रियां अपने अधीन कर लेता है क्योंकि मन ही इन्द्रियों का चलानेवाला है, जैसा कि य० अ० ३४ मन्त्र १ में लिखा है—

यज्जाग्रतो दूरमुदैतिदैवं तदुसुप्तस्य तथैवेति।
दूरंगमंज्योतिषांज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥

अर्थात् जो जागता हुआ दूर २ जाता है और सुषुप्ति में भी उसके दूर जाने का स्वभाव है, जो प्रकाशित पदार्थों का भी प्रकाश करनेवाला है

वह मेरा मन, हे परमात्मन् ! बड़ा शीघ्रगामी है, आपकी कृपा से मुझे कल्याणकारी हो।

सचमुच मन ही इन्द्रियों का चलानेवाला है, इन्द्रियां कभी काम नहीं करतीं जब तक कि मन इन्हें प्रेरणा नहीं करता। निश्चय जानो कि जितने विकार और दुष्टभाव इन्द्रियों के द्वारा प्रकट होते हैं सब मन के ही उत्पन्न किये हुए होते हैं। महात्माओं ने मनुष्य के शरीर की बनावट को एक रथ के समान माना है, बुद्धिरूपी रथवान् मन की रासों से इन्द्रियां के घोड़ों को अपने अधीन रख सकता है, पर जिस प्रकार रासों के घुमाने से जिधर को चाहो घोड़ों को फेर सकते हो उसी प्रकार मन जिधर चाहता है उधर इन्द्रियों को घुमाता है। इस प्रकार कर्म ठीक करने के अर्थ मन को निर्दोष किया जावे। यह मन बड़ी बड़ी दूर जाता है, जो देश और काल की रुकावट में नहीं आता, इससे अधिक प्रबल चालवाला कोई नहीं, सो यह मन जीवात्मा के अधीन है। परन्तु जीवात्मा उसको अपने अधीन न रख कर किन्तु उसके अधीन होकर नाना प्रकार के दुःखों को झेलता है। इसलिये ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि इस मन को हमारे अधीन सदा बनाये रहें न कि हमको उसके। सो मन की चंचलता प्राणायाम साधन से जाती रहती है, इसलिये शान्ति ढूँढनेवालो ! इस विद्या को जान मन को अधीन कर आनन्द को भोगो।

(धारणा)

धारणा उसको कहते हैं कि मन को चंचलता से छुड़ा कर जिस स्थान पर जिस विषय में चित्त को लगावें वहीं चित्त ठहर जावे अर्थात् जिस विषय में चित्त लगाना हो उसको छोड़ कर कहीं न जावे।

प्रकट हो कि उस समय मन में 'ओं' का जप करता जाय क्योंकि 'ओं' परमेश्वर के सब नामों में उत्तम है कि जिसमें परमेश्वर के सब नामों के अर्थ आ जाते हैं जैसा हमने गायत्री के अर्थों में लिखा है, और ऐसा ही गीता अ० ८ श्लोक १३ में लिखा है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं सयाति परमांगतिम्॥

अर्थात् ध्यान समय 'ओं' के अर्थों को विचारने और उसके अनुकूल आचरण होने से परमगति मिलती है, क्योंकि—

ओंकारः सर्ववेदानां सारस्तत्त्वप्रकाशकः ।
तेन चित्तसमाधानं मुमुक्षूणां प्रकाश्यते ॥

ध्यान—धारणा के पीछे उसी देश में ध्यान करे, आश्रय देने के योग्य जो अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है उसी के प्रकाश आनन्द में अत्यन्त विचार और प्रेम भक्ति के साथ इस प्रकार प्रवेश करना जैसे समुद्र के बीच में नदी प्रवेश करती है, उसमें ईश्वर को छोड़ किसी अन्य पदार्थ का स्मरण नहीं करना, उसी परमेश्वर के ज्ञान में मग्न होने को ध्यान कहते हैं, शिवपुराण ज्ञानसंहिता अ० २६ श्लोक १० में लिखा है कि ध्यान से परे कुछ नहीं, ध्यान ही ज्ञान का साधन है, ध्यान से ही योगी ब्रह्म को अपने निकट देखता है ।

समाधि—जैसे अग्नि के बीच में लोहा भी अग्नि हो जाता है उसी प्रकार परमेश्वर के साथ में प्रकाशमय होके अपने शरीर को भूले हुए के समान जान आत्मा को परमेश्वर के प्रकाशस्वरूप आनन्द और ज्ञान से परिपूर्ण करने को 'समाधि' कहते हैं ।

ध्यान और समाधि में इतना अन्तर है कि ध्यान में तो करनेवाला और मन और जिसका ध्यान करता है ये तीनों विद्यमान रहते हैं, परन्तु समाधि में केवल परमेश्वर ही अनन्तस्वरूप ज्ञान में मग्न हो जाता है । वहां तीनों का भेदभाव नहीं रहता, जैसे मनुष्य जल में डुबकी मार के थोड़ा समय भीतर ही रुका रहता है वैसे ही जीवात्मा परमेश्वर के बीच में मग्न होकर फिर बाहर को आ जाता है और जिस देश में धारणा की जाय उसी में ध्यान और उसी में समाधि अर्थात् ध्यान करने के योग्य परमेश्वर में मग्न होजाने को 'संयम' कहते हैं, जो एक ही काल में तीनों का मेल होता है अर्थात् धारणा से संयुक्त ध्यान और ध्यान से संयुक्त समाधि होती है । उनमें बहुत सूक्ष्म काल का भेद रहता है परन्तु जब समाधि होती है तब आनन्द के बीच में तीनों का फल एक ही हो जाता है । उस काल के आनन्द की महिमा अकथनीय है । ऐसा ही अन्य शास्त्रकारों ने लिखा है—

समाधिनिधूतमलस्यचेतसो, निवेशितस्यात्मनि यत्सुखंभवेत् ।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा, स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते ॥

अर्थात् समाधि रूप नदी में ग़ोता लगाने से जिसका मैल धोया गया ऐसा चित्त जब आत्मा में लगाया जाता है तब जो सुख होता है उसका वर्णन वाणी से नहीं हो सकता. किन्तु उसका स्वयमेव अन्तःकरण से ग्रहण होता है और भगवद्गीता में श्रीकृष्णचन्द्रजी ने भी कहा है—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्वतः ॥

अर्थात् समाधि अवस्था का जो अनन्त सुख है उसका इन्द्रियों से ग्रहण नहीं होता किन्तु उसी उपासक को इन्द्रिय द्वारा पहुंचनेवाले विषयों की चञ्चलता से रहित अर्थात् वायु विषयों से उठनेवाली वृत्तिरूपी जल तरंगों से रहित अधिकारिणी सूक्ष्म बुद्धि से ही ग्राह्य है, उस समाधि अवस्था में न कुछ बाह्य विषय जानता और विषयादि के साथ अपने स्वरूप को डिगाता है, जितने देखे हुए और सुने हुए विषयों में से जो आनन्द के देनेवाले हैं किसी की चाहना न करना वैराग्य कहाता है।

प्यारे सुजनों! जो मनुष्य धर्माचरण परमेश्वर और उसकी आज्ञा में अत्यन्त प्रेम करके आचरण अर्थात् शुद्ध हृदयरूपी वन में स्थिरता के साथ निवास करते हैं वे परमेश्वर के समीप वास करते हैं, और जो लोग अधर्म के छोड़ने और धर्म के करने में दृढ़ तथा वेदादि सत्य विद्याओं में विद्वान् हैं, जो भिक्षाचर्य आदि कर्म करके संन्यास वा किसी अन्य आश्रम में हैं, इस प्रकार के गुणवाले मनुष्य प्राण द्वार से परमेश्वर के सत्य राज्य में प्रवेश करके सब दोषों से छूट के परमानन्द मोक्ष को प्राप्त होते हैं। जहां कि पूर्ण पुरुष सब में भरपूर सब से सूक्ष्म अविनाशी जिसमें हानि लाभ कभी नहीं होता, ऐसे परमेश्वर को प्राप्त होके सदा आनन्द में रहता है, जिस समय इन उपरोक्त साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उसमें प्रवेश किया चाहे उस समय इस रीति से करे।

कण्ठ के नीचे दोनों स्थानों के बीच में और हृदय के ऊपर जो हृदय देश है कि जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् परमेश्वर का नगर कहते हैं उसके बीच में जो गर्त्त है उसमें जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर भर रहा है वह आनन्दस्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है, दूसरा उसके मिलने का और कोई

उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं क्योंकि इस हृदय आकाश में सूर्य आदि प्रकाशक तथा पृथ्वीलोक अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, बिजुली और सब नक्षत्रलोक भी ठहरे हैं। जितने देखनेवाले और न देखनेवाले पदार्थ हैं वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर होरहे हैं और इस ब्रह्मपुर में जो परिपूर्ण परमेश्वर है उसको न तो कभी वृद्धावस्था होती है और न कभी नाश होता है। उसका नाम सत्य ब्रह्मपुर है कि जिसमें सब काम परिपूर्ण हो जाते हैं। वह सब पापों से रहित, शुद्ध स्वभाव, जरा अवस्था रहित, शोक रहित, जो खाने पीने की कभी इच्छा नहीं करता, जिसके सब काम तथा सम्पूर्ण संकल्प भी सत्य हैं उसी प्रकाश में प्रलय होने के समय सब प्रजा समा जाती है और उसी के रचने से उत्पत्ति के समय फिर प्रकाश होती है।

इस उपरोक्त उपासना से उपासक लोग जिस जिस काम, जिस जिस देश और जिस जिस क्षेत्र भाग अर्थात् सावकाश की इच्छा करते हैं उन सबको वे सब यथार्थ प्राप्त होते हैं।

इसलिये उपासको! मोक्ष की इच्छा रखनेवालो! शुद्धाचरण पूर्वक योग-द्वारा परमात्मा के जानने की इच्छा करो, तभी मुक्ति मिलसकती है, अन्यथा कदापि नहीं। हे परमात्मन्! आप त्रिकालदर्शी, सर्व सामर्थ्यवान् हैं, आपसे हमारी दुर्दशा छिपी नहीं है। अपने सामर्थ्य के कोष से कुछ सामर्थ्य हम भारतवासियों को प्रदान कीजिये, हमको आप उद्योगी बनायें, अब हम सब आपकी शरण हैं, इस विपत्ति के समय में शुद्ध बुद्धि का हमको दान कीजिये, इस अपार दुःख के बीच साहस प्रदान कर हमारी रक्षा कीजिये। हे तेजःस्वरूप परमात्मन्! हमको शान्ति अर्पण कीजिये। आप हमारे पिता, बन्धु सहोदर और स्वामी आप ही हैं। बल, वीर्य तेज का प्रसाद देकर हमारे सब संकट निवारण कीजिये॥

ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

लीजिये हिन्दी भाषाकी सर्वोपयोगी पुस्तकें जिन से दोनों लोकों में सुखकी प्राप्ति होती है देखिये

* ओ३म् *

॥ विज्ञापन ॥

प्रिय पाठकगणों ! तथा महिलाओं !!

मैं आपके सन्मुख अपने मुंह अपनी पुस्कों की प्रशंसा न कर केवल इतना ही कहना आवश्यक समझता हूं कि यदि आपको बाल युवा और वृद्ध स्त्री पुरुषों के जीवनों को आदर्श-जीवन बनाना है, यदि उनके हृदय में गम्भीर गम्भीर विषयों का प्रवेश सरलता से कराना है तो हमारी सम्पूर्ण पुस्तकों का पाठ एक बार तो अवश्य ही अपने समस्त परिवार को करा दीजिये।

हमारी सम्पूर्ण पुस्तकों ने अपने रूप, लिखने के ढंग आदि गुणों की उत्तमता से भारतवर्ष में ही नहीं किन्तु ब्रह्मा, मारीशस, जावा सौथ अफ्रीका आदि कितने ही प्रसिद्ध नगरों में नाम पाया है। पबलिक की कदरदानी के कारण ही कई कई पुस्तकोंके बारह बारह तक एडीशन निकलचुके हैं। कितनेही महाशयों ने उनकी काट छांट कर बीसियों पुस्तकें रच अपनी मनोकामना सिद्ध करनी चाही, पर आप जानते हैं कि असल असल ही है और नक़ली की वही दशा होती है जैसे हाँडी काठ की चढ़े न दूजी बार। अतएव आप हमारी बात, हमारे विज्ञापन की सत्यता जानने के लिये एक बार अवश्य मंगाइये, अपने इष्ट मित्रों को दिखाइये और यदि हमारे लेखानुसार ही आप उन में गुण पावें तो अपने स्कूल और कन्या-पाठशालाओं में (जैसा कि कतिपय प्रान्तों में सज्जनों ने किया है) पारतोषिक देने एवं उनका पाठ-विधि में रखने का उद्योग कीजिये जिससे भारत सन्तान विद्यारूपी भूषण से सुशोभित हो सुख का अनुभव करें। और साहित्य की दशा अच्छी हो।

पुराणतत्वप्रकाश तीनोंभाग ।

जो हाथोंहाथ बिक रहा है, यदि आपने इसमें देरी की तो दूसरे एडीशन की बाट देखनी होगी।

पु० त० प्र० क्या है ?

यह ५०० पृष्ठ की पुस्तक सनातन धर्म सभा के माननीय अठारह पुराणों की मीमांसा है जिसके पाठ मात्र से पुराणों का रहस्य खुल जाता है, उसके भीतरी तिलस्मातों का भयानक दृश्य स्पष्ट दृष्टि आने लगता है। इसके लिखने का ढंग इतना प्रिय और रोचक है कि यदि एक बार हाथ में लीतो बिना समाप्त किये आप कभी न

छोड़ेंगे। स्त्रियों और पुत्रियों के यह बड़े काम की है क्योंकि स्त्रियां ही पुराणों के लेखों पर मोहित होकर तन, मन, धन न्योछावर कर पुरुषों को भी वैदिक सिद्धान्तों से गिरा देती हैं, अतएव युवतियों तथा बहिनों को अवश्य पाठ कराइये जिससे उनका हृदय ज्ञान से पूरित होजावे। इसके अतिरिक्त इसमें बड़ा मज़ा यह है कि आप इस अमूल्य पुस्तक को बग़ल में दबा सनातनी भाइयों एवं पण्डितों से धड़ाधड़ शंका समाधान कर अपने चित्त को शान्त कीजिये, इसमें मालूमात का ख़ज़ाना बहुत है, इसलिये हमारे सनातनी भाइयों के लिये भी यह बड़ी उपयोगी है क्योंकि जिन्होंने अठारह पुराणों के कभी दर्शन नहीं किये उनको इससे सनातन महिमा का यथार्थ ज्ञान होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को पाठ कर सत्यासत्य का विचार करना चाहिये कि क्या अठारह पुराण महर्षि व्यास के बनाये हुए हैं? किताब क्या है पुराणों का पूरा ख़ाका इसके अन्दर है। ब्रह्मा, विष्णु शिव, देवीमहरानी की करतूत, तामस पुराणों की रचना, ब्रह्मा, विष्णु, शिव का स्त्री होना, विष्णु के कान के मैल से मधुकैटभ का उत्पन्न होना, इन्द्र चन्द्र सूर्य वशिष्ठ विश्वामित्र बृहस्पति तथा शुक्र की अपार लीला, त्रिदेव, के अनोखे कर्तव्यों का फोटो, कलि महात्म्य और उसके दूर होने का सरल उपाय, गंगामहारानी की विचित्र उत्पत्ति, गंगा महारानी का स्वपापमोचन करना, राजा बेन के मरने पर उसकी भुजाओं से निषाद और पृथु का उत्पन्न होना करना, वृक्षों से मरीषा का जन्म, रेवती के छोटे करने की अजीब तर्कीब, राजा निमि से पुत्र का उत्पन्न होना, बलदेवजी का मदिरापान कर यमुना जी का खींचना, बल के शरीर से सोना चांदी आदि का उत्पन्न होना, राजा सगर की रानी के साठ हज़ार पुत्रों का उत्पन्न होना, देवताओं से वृक्षों, ब्रह्माजी के कान से दिशाओं की उत्पत्ति, राजा का हिरणी के साथ वार्त्तालाप, मनु की पुत्री का पुत्र हो जाना, कच का टुकड़े कर राक्षसों का खाना फिर उसे जीवित निकालना, हरिणी के पेट से शृंगी ऋषि का, राजा की कोख से पुत्र का जन्म, जन्तु नाम पुत्र की चर्बी से हवन कर उस से रानी के पुत्र का होना इत्यादि बातों के उपरान्त गणेश महाराज की अद्भुत उत्पत्ति और मृतकश्राद्ध आदि आदि का बड़ी खूबी से वर्णन है, प्यारे पाठको! एक बार अवश्य ही इसका पाठ कर अक्षय सुख का अनुभव कीजिये, तिस पर तीनों भागों का मूल्य १॥।-) मात्र है।

सरस्वतीन्द्र जीवन।

अथात्

श्री १०८ महर्षि श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वतीजी का जीवन-चरित्र।

जो द्वितीयवार छपकर आगया।

महाशय! जीवन तो आपने बहुत ही देखे होंगे पर यह जीवन अपने ढंग का निराला है। इसमें सड़ा-गला काग़ज़ नहीं लगाया गया, उर्दू शब्दों की नक़ल नहीं कीगई, बारीक टाइप में नहीं छपाया गया किन्तु सफ़ेद मोटे काग़ज़ पर बम्बई

अक्षरों में बढ़िया स्याही से छपाया गया है, अठपेजी ४०० पृष्ठ और ब्लाक के ३ उत्तम चित्रों के होने पर भी मूल्य १=) इस जीवन में पं० लेखराम संग्रहीत उर्दू जीवन के अतिरिक्त कई एक मान्यवरों के लिखित जीवनचरित्रों से सहायता ली गई है और इसमें बहुत से उपयोगी वृत्तान्त जो अभी तक किसी हिन्दी जीवन में नहीं छपे, लिखे गये हैं। भाषा इसकी सरल प्रिय जिसको पुत्र, पुत्रियां, महिलायें तथा पुरुष सभी अच्छी प्रकार समझ सकते हैं। अतः आप भी एक कापी अवश्य मंगा कर महर्षि के जीवन से शिक्षा ग्रहण कर स्त्रियों और संतानों में महर्षि के गुणों का प्रवेश कीजिये।

नवीन नये ढंग के देखने योग्य जीवन।

महाराजा दशरथ आप प्रजा का पालन पोषण, गुरु अतिथि-सेवा, दान यज्ञादि किस रीति से करते थे तथा आप ने श्रीराम और रानियों को समय २ पर जो सार गर्भित उपदेश किये हैं उन सब उपयोगी शिक्षाओं से यह पुस्तक परिपूर्ण है, मूल्य केवल ।)॥

आज्ञापालक श्रीराम प्रातःकाल में राज्याधिकारी होनेवाले थे पर उसी समय विपरीत समाचार को सुनकर आपके चित्त की दशा क्या हुई? धैर्य धारण कर विमाता को किन ग्राही वचनों से समझाया, जननी मैथिली कुमार लक्ष्मण को किस योग्यता से धैर्य्य बंधाया जननी का उपदेश देते हुए शान्ति और स्वस्ति वाचन द्वारा वनयात्रा की आज्ञा देना आदि २ अनेक शिक्षाप्रद घटनाओं का वर्णन किया गया है मूल्य =)

भ्रातृस्नेही लक्ष्मण राजकुमार के हृदय में भ्राताओं के प्रति कितना असीम प्रेम और निश्चल भक्ति थी कठिन वनयात्रा में भाई का संग देना, उन के दुःख को दुःख और सुख को सुख समझना वीर कुमार लक्ष्मण ही का काम था। आप के जीवन के प्रत्येक काम से भ्रातृ भक्ति झलकती है, उन्हीं घटनाओं से यह पुस्तक चित्रित हैं। मूल्य ।)

तपस्वी भरत श्रीराम के वन-गमन पर आप का विलाप करना, निज जननी को धिक्कारना, माता कौशिल्या को स्वार्थ त्याग का विश्वास दिलाना, राज-सभा की धर्म-विरुद्ध आज्ञा का पालन न करना किन्तु धर्मानुसार ही अपने जीवन को धार्मिक एवं आदर्श जीवन बना सच्चे स्वार्थत्यागी बने। मूल्य ।)॥

धर्मराज युधिष्ठर धर्मराजों का जीवन जिस प्रकार शिक्षा का भण्डार होता है वह सब जानते ही हैं, आप ने स्वधर्म रक्षा तथा सत्य द्वारा किस प्रकार शत्रु-सेना से विजय प्राप्त की, सचमुच आप की जीवन-घटनाओं से सत्यतापूर्ण धर्मयुक्त कितनी ही शिक्षायें मिल सकती हैं। मूल्य =)

नीतिज्ञ विदुर आप किस उच्चकोटि के राजनीतज्ञ थे। महाराजा धृतराष्ट्र को युद्ध से पूर्व वा पश्चात् कैसा हृदयग्राही अमृत रसयुक्त शान्तिदायक उपदेश दिया, वह पढ़ने पर ही मालूम होगा। मूल्य ≡)

महाराजा धृतराष्ट्र मोह में फंस कर सुधर्मयुक्त कार्य करने और अपने पूज्यों के हितकारी वचनों का अनादर करने से क्या फल होता है, वह इसके पाठ से भली भांति ज्ञात हो सकता है। मूल्य ≡)

महाराजा दुर्योधन आपका जीवन पढ़ने ही योग्य है, वास्तव में यदि इस जीवन को आद्योपान्त पढ़ लिया तो आप का हृदय अवश्य इस बात को स्वीकार कर लेगा कि धर्म-युक्त व्यवहार करनेसे ही हम सुखी हो सकते हैं, हमें शान्ति का राज मिल सकता है। मूल्य ≡)॥

वीरेश्वर अर्जुन अर्जुन की वीरता प्रसिद्ध है भाइयों के लिये उन्हों ने किन कष्टों का सामना किया, युद्ध भूमि में क्या २ घटनायें हुईं सो सब आपको मालूम होवेंगी। मूल्य ≡)

द्रोणाचार्य आहा! गुरु जी की विद्या कुशलता और शिक्षा देने की विधि तथा रण चातुर्यता कौन नहीं जानता देखिये मंगाकर पढ़िये, मूल्य =) मात्र।

भरतोपदेश श्रीराम ने चित्रकूट पर भाई भरत को उपदेश दिया है उस शिक्षाप्रद उपदेश का वर्णन इस में किया गया है। मूल्य -)॥

पाठकों ! महिलाओं !

रामायण और महाभारत जैसे बड़े २ पोथों को पढ़ना और प्रत्येक की जीवन घटनायें याद रखना बड़ा कठिन काम है, परन्तु इन जीवनों के पास रखने पर कठिनाई नहीं, थोड़े परिश्रम तथा व्यय से ही दोनों के सारांश को जानसकते हैं।

क्या हम रामायण पढ़ते हैं—आप ने अब तक अनेकों तरह की रामायणें पढ़ीं परन्तु जब आप एक बार इसे पढ़िये तब आपको मालूम होगा कि यथार्थ में आप रामायण पढ़ते हैं या नहीं? मूल्य केवल =) शीघ्रता कीजिये थोड़ी प्रतियां रह गई हैं।

गर्भाधान-विधि—यह तेरहवीं बार छपचुकी है। इस में धातु और उसके गुण, स्त्री प्रसंग, गर्भविधान, उत्तम सन्तान की विधि, गर्भ परीक्षा, उसकी रक्षा, गर्भ में पुत्र और पुत्री की पहिचान, गर्भवती का कर्त्तव्य, गर्भपात के लक्षण और उनकी चिकित्सा, प्रसवकाल प्रसूत की रक्षा, स्त्री पुरुषों में सन्तान होने के कारण के अतिरिक्त शिशुपालन और अनेक कठिन रोगों की चिकित्सा का वर्णन है। मूल्य ≡)

वीर्य्यरक्षा—यह पुस्तक सुख की खानि है, अवश्य आप देख कर सन्तानों को दिखाइये और उनको भयानक रोगों से बचाइये क्योंकि वीर्य्यरक्षा करना ही सुखों का मूल है। शोक कि सन्तानें इसके लाभों को न जान कर कुमार्गियों के सङ्ग पड़ कर कुसमय कुरीतों से वीर्य्य का सत्यानाश कर भारत को गारत करते चले जाते हैं। मूल्य =) यह ६ वीं बार छपी है।

हम शीघ्र क्यों मरते हैं ?—वर्त्तमान समय में मौत का औसत ३३ वर्ष पर आगया है जिसके कारण भारत में रात दिन रुदन मचा रहता है। अनेकान पुरुष इसके लिये ज्योतिषियों से जप कराते और गंडे तावीज़ बाँधते हैं परन्तु फिर भी अल्पायु में मरते चले जाते हैं। इस दुःख से बचने के लिये मैंने चरक सुश्रुत और वेद के अनुसार सच्चे नुसख़े और पथ्यापथ्य लिखा है। देखिये, अमल कीजिये, ताकि भारत से ये दुःख चले जावें। मूल्य =)॥

सत्यनारायण की प्राचीन कथा--मित्रों सहित सुनिये। देखिये, कैसी अच्छी और उपयोगी कथा है। सातवीं बार छपी है। मूल्य =)

यथाथ शान्ति निरूपण--यह पुस्तक स्त्री, पुरुषों, पुत्र पुत्रियों और प्रत्येक मतमतान्तर के लोगों को शान्ति देनेवाली है। इसके पाठ और विचार से आत्मा में इस प्रकार की शान्ति आती है जो सब सुखों की दाता है। यथार्थ में इसके आशय बड़े गम्भीर हैं। मूल्य ≡)

शान्तिशतक--इसमें प्राचीन कवि शल्हण मिश्रकविकृत श्लोक हैं, नीचे भाषा में अनुवाद है। इसके श्लोक पुत्र पुत्रियों को कण्ठ करानेयोग्य हैं, क्योंकि सभा समाजों में बोलने से बड़े ही मनोहर प्रतीत होते हैं। एक एक श्लोक का आशय प्रत्येक मनुष्य को धार्मिक बनाने के लिये उत्तेजित करता है मूल्य =)

संध्यादर्पण--इसमें वेदादि सत्य शास्त्रों से द्विकाल संध्या का प्रतिपादन पूर्ण रीति से किया गया है और प्रमाणों से यह बतलाया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णों की एक ही गायत्री है। मूल्य =) छोटी संध्या)। हवन विधिः)।

द्वैतप्रकाश—आज कल के नाम मात्र के वेदान्ती अल्प बुद्धि पुरुषों को (अहं ब्रह्म) की भ्रान्ति में डाल दोनों लोकों से भ्रष्ट करते हैं, अतः इसमें अद्वैत मत का पूर्ण रीति से खण्डन और द्वैत मत का प्रतिपादन कियागया है जिससे यथार्थ प्रभु को पहचान उसकी आराधना में लगना चाहिये।

नीत्युक्त स्त्रीधर्म--इसमें नीति शास्त्र द्वारा स्त्रियों के धर्म्म का वर्णन किया गया है मूल्य ≡)

स्मृतियुक्त स्त्रीधर्म—इसमें स्मृति शास्त्र द्वारा स्त्रियों का धर्म बताया गया है मूल्य −)॥

चित्रशाला--जिन लोगों का म ा है कि कन्याओं को नहीं पढ़ाना चाहिये वे इस पु-तक को मंगा कर देखें मूल्य)॥

संसारफल--यदि संसार की अनित्यता का दृश्य देखना हो तो इसको जरूर मगाना चाहिये मूल्य)॥। **ईश्वर सिद्धि**——

शिष्टाचार--बड़ों की सेवा किस रीति से करनी चाहिये, शास्त्र इस विषय में क्या कहता है ? मूल्य)॥

प्रेमपुष्पावली--इसमें एकता के विषय में सार गर्भित मनोरञ्जक व्याख्यान हैं। मूल्य -)॥ महात्मा पर्ण की कथा—इसमें सच्चे ब्रह्मचारी महात्मा की अद्भुत कथा का वर्णन है मू० -)॥ भजन सार संग्रह -)॥ स्त्री ज्ञान गजरा प्रथम भाग)॥ दूसरा -)॥ भजन पचासा -)

उपन्यास स्वरूप में स्त्री-शिक्षा की अनूठी पुस्तक

नारीभूषण अर्थात् प्रेमधारा

जिसकी प्रशंसा में अनेकान् पत्र सुयोग्य स्त्री पुरुषों के आ चुके हैं।

जो दूसरी बार छप कर आई है।

प्रिय पाठक पाठिकाओ ! यह किताब क्या है मानो शिक्षा की कुंजी, प्रेम की पुड़िया, अपने ढंग की निराली और अजीब है, भाषा इसकी सरल रोचक है, उपन्यासी ढंग पर लिखी गई है। अपनी सुन्दरता में तो अनूठी ही है ! यदि आप अपनी सन्तानों को धनवान्, बुद्धिमान्, धर्मात्मा, सुशील, सदाचारी, आज्ञाकारी आदि गुणों से विभूषित करना चाहते हैं तो एक बार **प्रेमधारा** का अवश्य पाठ कराइये। देखिये प्रियंवदा देवी ने किस सरल रीति से कटुभाषिणी यशोदा और उसके पुत्र बहुओं को समझाया है, कैसी २ उत्तम कहानियाँ सुनाई हैं जिनके सुनते ही सास बहुओं का वैमनस्य दूर हो प्रेम का अंकुर उनके हृदयों में जम गया जिसके कारण सम्पूर्ण गृह स्वर्ग के सदृश प्रतीत होने लगा। तदुपरान्त सुयोग्य प्रियंवदा ने गृहस्थाश्रम की आवश्यकीय बातों को बता कर देश देशान्तरों के वृत्तान्त सुना एक विवाह पर नगर की मूर्ख स्त्रियों के आक्षेपों का उत्तम रीति से समाधान कर कुरीतियों का संशोधन किया है। प्रिय सज्जन पुरुषो ! यह पुस्तक क्या है मानो पुत्र पुत्रियों का पथ-दर्शक है। यदि आप अपनी स्त्रियों के हृदयस्थल में ऐक्यता आदि सद्गुणों का बीज बोना चाहते हैं तो अवश्य एक बार वी. पी. मँगा स्वयं पढ़ एक एक प्रति प्रत्येक गृहों में पहुंचा दीजिये। २०० पृष्ठ होने पर भी आप सब के सुभीते के लिये मूल्य ॥।) मात्र है।

यदि आप संसार को स्वर्गधाम बनाना चाहते हैं तो शिक्षा के सर्वोत्तम और प्रसिद्ध ग्रन्थ नारायणीशिक्षा अर्थात् गृहस्थाश्रमको पढ़िये ।

अब तक २६२०० प्रतियां बिक चुकी हैं।
अब इसका १२ वां एडीशन नये ढंग और नये रूप में छप कर तय्यार है।

इसकी उत्तमता इतनी संख्या एवं इतने एडीशन के निकलने से ही विदित है, अब तक स्त्री-शिक्षा का कोई ग्रन्थ इतनी संख्या में नहीं निकला। विशेष रूप से इसकी स्वयं प्रशंसा न कर केवल इतना कहना ही उचित समझते हैं कि यह एक पुस्तक ही गृहस्थी में रखने योग्य है। इस में ५०० विषय और लगभग २००० बातों का वर्णन, अनेकान् सुयोग्य पवित्र जीवन एवं विदुषी आदि गुणों से सुभूषित स्त्रियों के जीवनचरित्र भी हैं। गृह सम्बन्धी कोई ऐसा विषय नहीं जिस का इस में आन्दोलन न किया गया हो। इसी से हम कहतेहैं कि इससे नक़ल एवं काट छांट कर लिखी गई अन्य पुस्तकों में व्यर्थ धन व्यय न कर इस असली और संसारोपयोगी पुस्तक का ही स्वयं पाठ कर अपने मित्रों और कुटुम्बियों को दिखलाइये। ६०० रायल अठपेजी पृष्ठ होने पर भी मूल्य १॥) डाकव्यय सहित १॥।–)

नारायणीशिक्षा अर्थात् नारायणीशिक्षा की बाबत विदेशियों की सम्मति ।

श्री, एन निरञ्जनस्वामी फाइफमेजर बूशायर—

इसके पढ़ने से मेरी आत्मा को जितना आनन्द मिला वह किसी प्रकार नहीं लिख सकता, वास्तव में आप ने गागर में सागर को भरने का यत्न किया है, योग्य गृहस्थ आपकी इस पुस्तक को पढ़ बिना धन्यवाद दिये नहीं रहसकता।

श्री. पं० विदेशीलाल जी शर्मा—दर्बन (नेटाल अफ्रीका)

जिस तरह धातु में सुवर्ण, वृक्षों में आम, रसों में मिश्री, दुग्ध में घृत, मीठे में शहद, जीवों में मनुष्य, पुष्टियों में ब्रह्मचर्य, प्रकाश में सूर्य श्रेष्ठ हैं वैसे

ही आप की पुस्तक **नारायणीशिक्षा** सम्पूर्ण स्त्रियों के लिये उपयोगी है। मैं आशा करता हूं कि विचारशील पुरुष अवश्य इस अमूल्य पुस्तक से लाभ उठा कुटुम्बियों-सहित आनन्द भोगने की चेष्टा करेंगे।

इसी प्रकार और भी प्रशंसा-पत्र आये हैं पर स्थानाभाव से प्रकाशित नहीं कर सकते।

भारत के गण्य मान्य सज्जन क्या कहते हैं--

श्रीमान् पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी, सम्पादक सरस्वती, प्रयाग।

सरस्वती भाग १० संख्या ७ में प्रकाशित करते हैं कि "नारायणीशिक्षा—सम्पादक बाबू चिम्मनलाल वैश्य, पृष्ठ संख्या ६१२। साचा बड़ा, कागज़ अच्छा, छपाई बम्बई के टाईप की, मूल्य सिर्फ १।)" इस इतनी सस्ती परन्तु उपयोगी पुस्तक का दूसरा नाम गृहस्थाश्रम शिक्षा है। पुस्तक कोई ३० भागों में विभक्त है। गृहस्थाश्रम से सम्बन्ध रखनेवाली शिशुपालन, शरीररक्षा, ब्रह्मचर्य, विवाह, पति पत्नी धर्म, नित्यकर्मादि कितनी ही बातों का इसमें वर्णन और विचार है। श्रुति, स्मृति, उपनिषद्, पुराणादि से जगह जगह पर विषयोपयोगी प्रमाण उद्धृत किये गये हैं। पुस्तक में सैकड़ों बातें ऐसी हैं जिनका जानना गृहस्थ के लिये बहुत ज़रूरी है। इस पुस्तक को लोगों ने इतना पसन्द किया है कि आज तक इसके ६ संस्करण हो चुके हैं।

श्रीमान् पं० विष्णुलालजी साहब शर्मा सबजज—

MY DEAR MUNSHI CHIMMAN LALL JI,

The **Narayani Siksha** is a library in itself, being a work of Cyclopedia information. No subject Theoretical or Practical which is useful to a house holder has been left untouched. The style is simple, yet impressive. I am not aware of a better book for females in Hindi, and am of opinion that no Hindu family should be without a copy of your book.

श्रीमान् बाबू रामनारायण साहब तिवारी—

Dear Sir,

I have read the Narayani Siksha or Grihasta-Ashram compiled by you I do not know of any other book in Hindi which gives in such a short compass everything that a Grihastha or a house-holder. should know besides, I find you book a valuable additeruinn to the literature for Hindu women. It is a pleasure to see that the book is so cheap a lesson that other authors on popular subjects might well learn from you: I think a book on vedic principles should be as cheap as possible and no one will I am sure grumble to spend one rupee and four annas more for the large and useful marters contained in your book.

स्वर्गीय श्रीब्रह्मचारी नित्यानन्द जी सरस्वती—

मैंने आपकी बनाई हुई पुस्तकों को अच्छे प्रकार से देखा। ये सब किताबें पबलिक की शारीरिक, सामाजिक और आत्मिक उन्नति करनेवाली हैं। विशेष खूबी यह है कि प्रत्येक विषय के साबित करने के लिये वेद, स्मृति, पुराण इत्यादि के प्रमाण अच्छे प्रकार से दिये हैं, जिसके कारण इन पुस्तकों के पढ़नेवाले पूर्ण लाभ उठाते हैं। दौरे में मुझसे आपकी पुस्तकों की अनेक‌ान पुरुषों ने प्रशंसा की, वास्तव में वह प्रशंसा ठीक है, क्योंकि आपने इनके लिखने में बड़ा परिश्रम किया है। इसलिये मेरा चित्त आपसे बहुत प्रसन्न है। मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि आप अपने जीवन भर इस उपयोगी कार्य्य को सदा करते रहें जिससे देश में वैदिक विचार की उन्नति होकर सब प्रकार आनन्द हो।

बा० नन्दलालसिंह जी बी. ए., बी. एससी., एल एल. बी.
उपमंत्री आर्य्यप्रतिनिधि सभा यू० पी०—

तिलहर के·········जी ने यह पुस्तक लिख कर स्त्री-जाति का बड़ा उपकार किया है। हम मुं० जी को इस सफलता के लिये बधाई देते हैं। इसमें प्रायः उन सब बातों का समावेश है जो बालिका, युवति और वृद्धा तीनों के लिये विशेष उपयोगी हैं। यदि इस शिक्षा को स्त्री-उपयोगी बातों का विश्वकोष (Cyclopedia) कहें तो उचित है। प्रत्येक को अवश्य रखनी चाहिये।

सम्पादक इन्दु मासिक पत्र, बनारस—

इसमें गृहस्थाश्रम के प्रायः सभी ज्ञातव्य विषयों पर विशद रूप से निबन्ध लिखे गये हैं, हम निःसंकोच कहते हैं कि यह निबन्ध विज्ञता के साथ लिखे गये हैं। पुस्तक का मूल्य सिर्फ १।) है।

श्रीमहाराजा महेन्द्रपालसिंहजू देवबहादुर छुरी बिलासपुर-

बेशक आपने इस पुस्तक से सम्पूर्ण गृहस्थियों का बड़ा उपकार किया है।

स्वर्गीय श्री० पं० तुलसीराम वेदभाष्यकार, मेरठ--

मुं० ··········जी कृत यह ग्रन्थ प्रसिद्ध है, स्त्री वर्ग के उपयोग में इससे उपकारक पुस्तक कोई ही होंगे। ऐसी उपयोगी पुस्तक होने पर मूल्य १।) मात्र है। एक एक प्रति प्रत्येक गृहस्थ को देखने योग्य है।

बाबू गोरूतामिलजी हेडमास्टर, आर्य्य स्कूल, होशियारपुर--

मेरी स्त्री ने आरम्भ से लेकर आखीर तक भली भांति पढ़ा और मैं ने भी कहीं कहीं देखा, सचमुच स्त्री और पुरुषों के लिये बड़ी लाभदायक है, मैं ने और मेरी धर्मपत्नी ने स्त्री-शिक्षा की अनेक पुस्तकों को पढ़ा है परन्तु ऐसी उत्तम और लाभदायक किसी पुस्तक को नहीं पाया। आपने यथार्थ में आर्य्य-जाति पर महान् उपकार किया है जो ऐसी उत्तम और धार्मिक आकर्षण और चित्त पर प्रभाव डालनेवाली पुस्तक निर्माण की, तिस पर लुत्फ़ यह है कि मूल्य भी बड़ा

ही स्वल्प यानी ६०० पृष्ठ की पुस्तक १।) को देते हैं यह और सुगंध है। कृपा कर अपनी लेखनी को इस कार्य्य में लगा यश के पात्र बनिये।

श्रीयुत गोविंदजी मिश्र ६५। ३ बड़ाबाज़ार, कलकत्ता—

आपकी पुस्तक को पढ़ कर मेरी आत्मा को जितना आनन्द मिला है, वह किसी प्रकार से लिख कर नहीं बता सकता। वास्तव में आपने सागर को गागर में भरनेका साहस किया है। गृहस्थाश्रम के आवश्यकीय प्रायः समस्त विषयों का संग्रह किसी पुस्तक में सिवाय नारायणीशिक्षा के नहीं देखा। इस एक ही पुस्तक से मनुष्य अपना प्रयोजन पूर्णरूप से गठन कर सकता है। ऐसा ऐसी पुस्तकों की रचना प्रायः उस कक्षा की धार्मिक आत्माओं के द्वारा ही हुआ करती हैं।

श्री प्रतापनारायण सिंहजी, ग़ाज़ीपुर—

यह एक अति उत्तम पुस्तक है और प्रत्येक घरों में रहने लायक़ है। मेरा ऐसा विचार है कि हमारे भारतवासी स्त्री-पुरुषों के लिये जो कि इसको एक बार भी पढ़ लेंगे तो अति लाभदायक और उपयोगी होगी। मैं आपके इस परिश्रम और आपके उस अमूल्य समय के व्यतीत करने के लिये जो आपने हम भारतवासियों के लाभार्थ उठाया है, शुद्धचित्त से प्रशंसा करता हूं।

इसके अतिरिक्त श्रीमान् राजा फतेहसिंह साहब बहादुर पुवायां, श्री पण्डित शीतलप्रसादजी डिप्टी कलेक्टर, म० रामचरणजी साहिब हास्पिटल असिस्टेन्ट सर्जन सरधना, बाबू कृपालसिंहजी डिप्टी इन्सपेक्टर इन्दौर, बाबू बल्देवप्रसाद वकील व प्रधान कायस्थ कान्फ्रेन्स, बाबू मथुराप्रसाद साहिब सब इंजिनियर सीतापुर, बाबू जगदीश नारायणजी गहलोत हाउस जोधपुर, श्रीभागवरदासवीर शर्म्मा जोधपुर, पं० देवदत्तजी शर्म्मा आमघाट गाजीपुर, श्रीरामदयालुजी शाहपुर, श्री० विद्याधरजी गुप्त राजा का रामपुर, श्रीराजेन्द्रनाथजी स्कूल फ़ीरोज़ाबाद, बाबू शालिग्रामजी सुपरवाईज़र दफ़्तर मर्दुमशुमारी मिर्ज़ापुर, श्रीयुत गंगाप्रसाद जगन्नाथजी हलद्वानी, श्रीयुत शम्भुनारायणजी शर्मा झरिया मानभूमि, बा० उदयनारायण वल्देवप्रसादजी मैथिल दालसाह प्रांत इटावा, श्रीयुत मास्टर शिवप्रसाद जी वर्म्मा मुरादाबाद, मुंशीलाल माझी छपरा, बाबू मोहनसिंहजी आगूसिंहजी देहरादून, श्रीमहाशय वीरवर्मा स्वामी यन्त्रालय देहरादून, श्रीकालिकाप्रसादजी कनाईघाट (सिलहट), श्रीयुत नत्थूरामजी आचार्य तलवारा (होशियारपुर), श्रीयुत लाला रामप्रसादजी बड़ा बाज़ार भरतपुर, श्रीयुत मंगलदेव शर्मा कोटला (आगरा) एवं सम्पादक श्रीमहात्मा मुंशीरामजी 'सद्धर्मप्रचारक', म० एडीटर आर्यावर्त्त दानापुर, म० सम्पादक गोधर्मप्रकाश, म० सम्पादक भारतसुदशाप्रवर्त्तक आदि अनेक सभ्य पुरुषों के प्रशंसायुक्त पत्र आ चुके हैं।

पुराणतत्वप्रकाश

इसके लिये लोगों की सम्मति।

श्री १०८ स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी और स्वर्गवासी

श्रीब्रह्मचारी नित्यानन्द जी सरस्वती—

इस पुस्तक के नाम से ही इसका रहस्य विज्ञ पाठकों को ज्ञात हो सकता है। महाशय ... जी की लेखशैली कैसी उत्तम होती है, इसका परिज्ञान इनके बनाये नारायणी शिक्षादि ग्रन्थों से पाठकों को अवश्य हो ही चुका है। पुराणों के पर-ताल की आवश्यकता थी, इस शुभकार्य्य का आरम्भ भी उक्त महोदय द्वारा हो गया है। हम वाचकवृन्द से सानुनय साग्रह निवेदन करते हैं कि इस पुरा-णतत्व को मंगा कर इससे लाभ उठायें और ग्रन्थकर्ता महानुभाव के श्रम को सफल करें ताकि ग्रन्थकर्ता का उत्साह बढ़े और अन्य उत्तमोत्तम ग्रन्थ निर्माण द्वारा ग्रन्थकर्ता वाचकवृन्द की सेवा कर सकें।

बा० फूलचंद जी बेङ्कर वा मंत्री आ० स० नीमच—

आपका पु० त० प्र० नामक पुस्तक जैसा सुनते थे, वैसा ही पाया। इस बहुमूल्य पुस्तक में आपने पुराणों का खण्डन ही नहीं किया किन्तु इसमें 'वेदप्रतिपादक' प्रकरण देकर पुस्तक को परमोपयोगी बना दिया है। पुस्तक क्या है मानों १८ पुराण के स्वरूप देखने का दर्पण है। मू० १॥-) अधिक नहीं है। मैं आपके इस परोपकारी कार्य्य की प्रशंसा करता हुआ अनेकशः धन्यवाद देता हूं।

सर्दारनी सदाकौर रसूलपुर ज़िला बहरायच—

यह बहुत उत्तम तरीके में लिखी गई है। १८ पुराणों का निचोड़ इसमें लिख दिया है। चूंकि लोगों को पौराणिक भाइयों से बहुत वास्ता पड़ता है, इस लिये सर्व साधारण वा आर्य भाइयों को एक एक पुस्तक अवश्य ही अपने पास रखनी चाहिये।

इसके अतिरिक्त बाबू गुजरमल जी गुप्त भारतीभवन फ़ीरोज़ाबाद, श्री दुलीचन्द बिशनपुर गोरखपुर, श्री कन्हैयालाल जी पटवारी राजलपुर मैनपुरी, आदि आदि अनेक महाशयों के प्रशंसायुक्त पत्र आ चुके हैं।

सरस्वतीन्द्र जीवन।

पढ़िये! लोग क्या कहते हैं?

श्री पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी, सम्पादक सरस्वती. प्रयाग।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के जितने जीवनचरित्र प्रकाशित हो चुके हैं उनमें से श्रीयुत लेखराम जी का उर्दू में लिखा हुआ जीवनचरित्र सर्वश्रेष्ठ है। उसी के आधार पर यह सरस्वतीन्द्र जीवन लिखा गया है आपने लेखराम जी की पुस्तक से प्रायः सारी मुख्य २ घटनाओं की सामग्री उद्धृत करके इस पुस्तक की रचना की है। इसके सिवाय मास्टर आत्मारामजी तथा

लाला राधाकृष्णजी के लेखों से भी आपने सहायता ली है। पुस्तक में स्वामी जी के साधारण चरित्र के अतिरिक्त उनके शास्त्रार्थ, उनके धर्मोपदेश और उनके ग्रन्थ-निर्माण आदि की भी बातें हैं। पुस्तक बड़े २ कोई ४०० पृष्ठों में समाप्त हुई है। टाईप अच्छा, काग़ज़ मोटा है। स्वामी जी, पं० लेखराम जी और पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी के हाफ़टोन चित्र भी पुस्तक में हैं। इस पर भी इतनी बड़ी पुस्तक का मूल्य सिर्फ १=) है। महात्मा जन चाहे जिस देश, जाति, धर्म और सम्प्रदाय के हों उनका चरित्र पढ़ने से कुछ न कुछ लाभ अवश्य ही होता है। जो ऐसा समझते हैं उन्हें स्वामी जी का चरित्र भी पढ़ना और अपने संग्रह में रखना चाहिये।"

श्री पं० विष्णुलाल जी एम० ए० सबजज—

मैंने आपके छपाये सरस्वतीन्द्र जीवन को पढ़ा। पं० लेखराम जी स्वर्गवासी के संगृहीत चरित्रों को छोड़ शेष अब तक जितने छपे हैं उनसे इसमें अधिक हाल पाये। वास्तव में आपने उर्दू के सारगर्भित लेखों की (जिनके आनन्द से बिना उर्दू जाननेवाले वञ्चित रहते थे) भाषा करके बड़ा उपकार किया है। मैं समझता हूं कि आपने इस इतिहास के लिखने में श्रीस्वामी जी के कार्यकाल को यथाक्रम रक्खा है। पुस्तक की छपाई अति सुन्दर है और चित्र भी सर्वाङ्ग उत्तम हैं। मूल्य १=) अधिक नहीं हैं। मैं आपको इस कार्य्यपूर्ति का धन्यवाद देता हूं।

श्रीमान् ठाकुर गिरवरसिंह साहिब पूर्वोक्त अवैतनिक उपदेशक श्रीमती आ०प्र०सभा संयुक्तप्रदेश आगरा व अवध—

मैंने मु० चिम्मनलाल जी वैश्य लिखित सरस्वतीन्द्र जीवन को देखा और ध्यान से पढ़ा और बहुधा स्थानों पर धर्मेन्द्रजीवन से मिलान किया तो जान पड़ा कि इसमें निम्नलिखित बातें अधिक हैं जो बड़ी उपयोगी और लाभदायक हैं—

(१) काशी शास्त्रार्थ पर कई एक समाचार पत्रों की सम्मतियां।

(२) कलकत्ता, हुगली, डुमरांव, सहारनपुर और शाहजहांपुर में योग्य पुरुषों के प्रश्नों के यथावत् उत्तर।

(३) उदयपुर में स्वामी दयानन्द जी की दिनचर्य्या।

(४) महाराज उदयपुर की दिनचर्य्या का उपदेश।

(५) जैनियों के सुप्रसिद्ध पं० आत्मारामजी साधू सिद्धकरण जी के प्रश्नों का भले प्रकार समाधान।

(६) पादरी ग्रे साहिब अजमेर और बम्बई में एक पादरी साहिब से धर्मचर्चा मसौदा में बा० बिहारीलाल जी ईसाई से प्रश्नोत्तर।

(७) आर्य्यसंमार्गसंदर्शनीसभा का सविस्तर वर्णन और उसके प्रश्नों के उत्तर।

(८) मौलवी मुहम्मदअहसन साहिब जालन्धरी मौलवी मुहम्मद क़ासिम साहिब, मौलवी मुहम्मद अब्दुलरहमान साहिब जज उदयपुर के शास्त्रार्थ।

(९) स्वामी जी की शिक्षा का क्या क्या फल हुआ।

इसकी भाषा सरल, प्रिय, चित्तको लुभानेवाली है जिसको स्त्रियां भी समझ सकती हैं। काग़ज़ उत्तम, स्याही और छापा श्रेष्ठ। तिस पर भी मुन्शी जी ने सर्व साधारण के सुभीते के लिये ४०० पृष्ठ होने पर भी मूल्य अत्यन्त स्वल्प १≈) सजिल्द १॥) ही रक्खा है।

श्रीमान् परिडत निरंजनदेव शर्मा उप श्रीमती प्रतिनिधिसभा-

मैंने इस जीवन को विचारपूर्वक पढ़ा, बड़ा ही रोचक है। इस पर भी भाषा सरल, अनेकाम विषय इस में ऐसे हैं जो अभी तक नागरी के जीवन चरित्रों में नहीं छपे। कम पढ़े मनुष्य और स्त्रियां भी भले प्रकार समझ सकती हैं। इसकी उत्तमता वास्तव में पढ़ने से ही प्रतीत होगी। सच तो यह है कि अनेक प्रकार से उत्तम और तीन मनोहर चित्रों सहित होने पर भी इस पुस्तक का मूल्य १=) सजिल्द १॥) है। अतः मैं आर्य्य पबलिक तथा अन्यान्य श्रेष्ठ पुरुषों से सिफारिश करता हूं कि एक एक जिल्द मँगा कर आप देख अपनी पुत्रियों, स्त्रियों, पुत्रों को अवश्य दिखलावें।

हमारे छोटे छोटे जीवनों की बाबत देखिये लोग क्या कहते हैं

बाबू नन्दलालसिंह जी बी. एस. सी. एल एल, बी.

उपमन्त्री आर्य्य प्रतिनिधि सभा, यू० पी०—

दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत ये चारों जीवनचरित्र रूप से श्रीयुत मु० चिम्मनलाल गुप्त जी ने प्रकाशित किये हैं, आर्य्य भाषा की सेवा जिस प्रकार मुन्शी जी कर रहे हैं उसे प्रत्येक भाषाभाषी जानते है।

लाला जी के पुस्तक का उद्देश्य मुख्यतया बालक और बालिका एवं स्त्रियों का हित होता है, ये भी इसी विचार से लिखी गई हैं, इँगलिश में इस प्रकार की पुस्तकें निकालने का क्रम प्रचलित ही था परन्तु अब आर्य्य-भाषा में भी वही बात देख कर प्रसन्नता होती है। वास्तव में आदर्श पुरुषों के चरित्र का पाठकों के हृदयों पर बहुत प्रभाव है। विदुर, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, दुर्योधन, ये चारों महाभारत के पात्रों के सम्बन्ध में लिखी गई हैं। महाभारत विस्तृत ग्रन्थ को सम्पूर्णतया देखे बिना किसी भी व्यक्ति का पूरा हाल ज्ञात नहीं हो सकता, परन्तु उक्त ग्रन्थ को सम्पूर्ण देखना सहज काम नहीं, लेकिन यह कठिनता इन से दूर हो गई। चरित्र लेखक ने जहाँ अपने "नायकों" की प्रशंसा की है वहाँ तत्सम्बन्धी प्रत्येक घटना को ठीक एवं स्पष्ट भी बहुत कुछ करने का ध्यान रक्खा है जो लेखक के लिये आवश्यक है। छपाई खासी, मूल्य स्वल्प है।

श्रीयुत सम्पादक आर्य्य-मित्र, आगरा—

तिलहर के महाशय........जी वैश्य ने महात्मा विदुर, युधिष्ठिर, तपस्वी भरत जी के जीवनचरित्र लिखकर प्रकाशित किये हैं। इस प्रकार के ऐतिहासिक

चरित्रों से आर्य्य-साहित्य को बहुत लाभ पहुंच सकता है। इनकी भाषा सरल और रोचक है, तिस पर मूल्य भी अति स्वल्प है। वास्तव में आपका यह प्रयत्न अत्यन्त प्रशंसनीय है।

श्रीयुत सम्पादक भास्कर मेरठ, भाद्रपद ३—

तिलहर निवासी महाशय.........ने इन जीवनों को लिख कर प्रकाशित किया है। इस तरह के ऐतिहासिक चरित्रों से आर्य्यभाषा के साहित्य को बहुत कुछ लाभ पहुंचने की सम्भावना है। आपका यह प्रयत्न श्लाघनीय है।

श्रीमान् सम्पादक भारतोदय, ज्वालापुर।

तिलहर के मुन्शी...... ...जी को प्रायः आर्य्यसमाज में सब ही जानते हैं। आपने अनेक उपयोगी सामयिक पुस्तकों को प्रकाशित कर अच्छा 'मान' पाया है। आपकी नारायणी शिक्षा आदि प्रसिद्ध पुस्तकें ही हैं। अब आपने छोटे २ जीवन-चरित्रों के प्रकाशित करने का क्रम बांधा है। इन छोटी और स्वल्प मूल्य वाली पुस्तकों से सर्व साधारण को अच्छा लाभ पहुंच सकता है। अतः यह प्रत्येक हिन्दू और आर्य घरों में अवश्य होनी चाहिये। लेकिन आपको विज्ञापन की सचाई जब ही मालूम होगी जब आप स्वयं इनकी प्रतियां मंगाकर देखेंगे।

ज़रा ग़ौर से पढ़िये।

माननीय सज्जन प्रेमधारा के विषय में क्या कहते हैं।

सम्पादक भारत सुदशा प्रवर्तक-फ़र्रुख़ाबाद।

यह पुस्तक नाविल के ढंग पर लिखी गई है—इसके सारे लेख देश की कुरीतियों के नष्ट करनेवाले होने से पुस्तक बहुत ही उपयोगी और लाभ दायक है—मू०।।।) आने मात्र है।

श्री सम्पादक भास्कर—मेरठ

प्रेमधारा स्त्री शिक्षा की अत्युत्तम पुस्तक है जिसके...ने प्रकाशित किया है—इसमें संवाद रूप से उत्तम २ शिक्षायें दी गई हैं—प्रत्येक नर नारी को अवश्य ही देखना चाहिये।

श्रीयुत सम्पादक नागरीप्रचारक, लखनऊ—

प्रेमधारा स्त्रीजाति के उपकारार्थ कासगञ्ज निवासी बाबू...... ने प्रकाशित की है वा नर नारियों के लाभार्थ अनेकान उपदेश ग्रन्थ के रोचक तथा प्रबन्ध में दिये गये हैं, अवश्य ही इस को पढ़ कर बालिका और महिलाओं का विशेष उपकार होगा। धर्म-मार्ग सिखाने के निमित्त इस प्रकार के ग्रन्थों का प्रचार करना सरल उपाय है। ईश्वर प्रार्थना के दस श्लोक बहुत ही ललित दिये गये हैं। हम ग्रन्थकर्त्ता को, उनके उत्तम और समाज सुधार के लिये यत्न करने के निमित्त बारम्बार प्रशंसा करते हैं।

श्रीमती हरदेवी जी धर्मपत्नी बा० रोशनलालजी—

बैरिस्टर ऐटला—लाहौर—तथा सम्पादिका भारतभगिनी—

मैंने इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा, स्त्री और कन्याओं को बड़े धार्मिक उपदेश मिलेंगे। यह पुस्तक बहुत ही प्रशंसा के योग्य है और विशेष कर आर्य्य कन्याओं के लिये तो पथ दर्शक तथा अमूल्य रत्न है।

बा० भूरालालस्वामी असिस्टेण्ट स्टेशनमास्टर, निम्बाहेड़ा—

मैंने आपकी बनाई हुई प्रेमधारा को पढ़ा, पढ़ कर बड़ा चित्त प्रसन्न हुआ। ईश्वर ने आप के इसी योग्य बनाया है कि आप अपनी अमृतरूपी लेखनी से मनुष्यों की अज्ञानरूपी निद्रा को छिन्न कर रहे हैं। आप के उक्त निबन्ध को पढ़ कर मुझ सा अज्ञानी इस के महत्व जानने व वर्णन करने में असमर्थ है। तौ भी इतना ही कहूंगा कि यह मूर्खा नर नारियों की फूट व लड़ाइयों के दूर करने की एक मात्र औषधी है। प्रत्येक गृह में रहने योग्य है।

लीजिये—

आपको यही पुतस्कें ऐसी मिलगी जो चित्त को लुभानेवाली और शिक्षा रस से भरी हुई हैं।

प्रियम्वदादेवीरचितसर्वोपयोगीपुस्तकें

कलियुगी परिवार का एक दृश्य।

वर्त्तमान समय में गृहस्थाश्रम के अन्दर रंगबिरंगे चमत्कारिक दृश्य देखने में आते हैं, उनका खाका इस पुस्तक में विचित्रता से खींचा गया है, जिसके पढ़ने पढ़ते ही गृहस्थाश्रम की वास्तविक दशा का चित्र आपके हृदय पटल पर अंकित हो जावेगा। आपको मालूम होगा कि धन, धान्य, पुत्र, पौत्र होते हुए भी इस समय गृहस्थाश्रम में कितना सुख मिल रहा है। इसका ढंग उपन्यासी है। भाषा की उत्तमता भाव की गम्भीरता और सरलता देखने से ही विदित हो सकती है। मूल्य केवल ॥)

धर्मात्मा चाची और अभागा भतीजा।

यह पुस्तक भी उपन्यास के ढंग पर लिखी गई है। इसकी नायिका ने अपने कुटुम्बियों को नाना उपयोगी और आवश्यक विषयों की शिक्षायें दी हैं जिससे यह भली भांति प्रकट हो जाता है कि संसार-यात्रा करनेवाले गृहस्थों को गृहस्थाश्रम में सुख के सच्चे उपाय क्या क्या हैं? विशेष उपयोगिता देखने पर ही मालूम होगी। मू० ।-)

आनन्दमयी रात्रि का एक स्वप्न।

इसमें स्वर्गीय विदुषी महिलाओं की सभा के अधिवेशन में कितनी ही स्त्रियों द्वारा यह भले प्रकार विचार किया गया है कि स्त्री जाति की अवनति का क्या कारण है? अब उन्नति कैसे हो सकती है और गृहस्थाश्रम स्वर्गमय कैसे बन सकता है, इत्यादि कई विषयों का आन्दोलन किया गया है। मूल्य =)

एक आवश्यकीय निवेदन ।

प्रिय पाठक पाठिकाओ ! लगभग तीन वर्ष से होने वाले विश्वव्यापी महा समर के प्रभाव से हमारी प्रत्येक दशा पर कितना व्यापक असर हुआ वह आज आप से छिपा नहीं है, व्यवहार में आने वाली क्या छोटी क्या बड़ी सभी वस्तुएं दुगुने और तिगुने से भी अधिक मूल्य पर मिलने लगी हैं इतने पर भी तुर्रा यह है कि दर बराबर चढ़ती जाने पर भी वस्तुएं सरलता से बाज़ार में नहीं मिलतीं इस लिये सभी व्यवसाइयों को अपने २ माल की दर बढ़ाना और कमीशन रेट कम करना पड़ा, परन्तु हम ने युद्ध आज बन्द होता है कल होता है इसी प्रतीक्षा में ढाई गुने और तिगुने मूल्य पर कागज तथा स्याही आदि वस्तुओं की तेजी को झेलते एवं आर्थिक हानि सहते हुए भी अपने यहां की छपी हुई पुस्तकों के मूल्यादि में अब तक किसी प्रकार की घट बढ़ नहीं की परन्तु अब बाज़ार की दिनों दिन चढ़ती हुई दर से विवश होकर उसी मार्ग का अनुसरण करना पड़ा है । आशा है कि पाठक, मूल्य वृद्धि का ख्याल न कर पूर्व की भांति ही हमारी प्रसिद्ध एवं रोचक पुस्तकों का प्रचार कर हमें अनुग्रहीत करेंगे । साथ ही हमारी प्रार्थना है कि पुस्तकों का आर्डर देने से प्रथम मूल्य और दीगर खर्च को विचार लेंगे ता कि वी० पी० पार्सल की वापिसी से कारखाने को व्यर्थ की हानि न उठानी पड़ा करे,-इस असभ्य व्यवहार में कोई लाभ नहीं है ।

मूल्य बढ़ीहुई पुस्तकों की सूची ।

पुस्तकों का नाम	एडीशन	पहला मूल्य	बढ़ाहुआ मूल्य	विशेष सूचना
नारायणीशिक्षा-गृहस्थाश्रम	१२ वां	१।)	१॥)	हमारे किसी विज्ञापनों में इन्हीं पुस्तकों का मूल्य कुछ घट बढ़ छप गया है इस लिये हमने यहां ठीक कर दिया है, अन्य पुस्तकों का मूल्य पूर्ववत ही है ।
नारीभूषण उर्फ प्रेमधारा	२ सरा	॥=)	॥।)	
गर्भाधानविधी	१३ वां	=)	≡)	
सत्यनारायण की कथा	७ वां	-)॥	=)	
युधिष्ठिर जीवन	२ सरा	=)॥	≡)	
विदुर जीवन	२ सरा	=)	≡)	
भरत जीवन	२ सरा	-)॥	-)॥	
द्रोणाचार्य जीवन	१ हला	≡)	=)	

चिम्मनलाल भद्रगुप्त वैश्य, तिलहर ज़िला शाहजहांपुर

कर्मकाण्डचन्द्रिका

उत्तिष्ठतावपश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम् ॥ ऋग्०

अर्थ

उठो, सन्ध्याकाल में ईश्वर का ध्यान और ऋतु २ में उसकी महिमा का गान करो।

देवदत्तशर्मा

ओ३म्

कर्मकाण्डचन्द्रिका

जिसको

श्रीमान् सेठ जयनारायण रामचन्द्र पोद्दार

ने

वैदिककर्मकाण्ड के प्रचारार्थ

श्रीयुत पण्डित देवदत्तशर्म्मा

द्वारा

संग्रह कराके

प्रकाशित किया

श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, काशी

सम्वत १९७४ वि० सन् १९१७ ई०

प्रथम संस्करण १०००] [मूल्य ।) आना

श्रीयुत् गणपति कृष्ण गुर्जर द्वारा श्रीलक्ष्मीनारायण प्रेस, जतनबड़, बनारस सिटी में मुद्रित, और पं० देवदत्तशर्मा पो० कर्णवास, ज़िला बुलन्दशहर द्वारा प्रकाशित।

भूमिका

प्राचीन समय में वेद और आर्य्यजाति का ऐसा सम्बन्ध था जैसा जीव तथा शरीर का है, वेद इस जाति का आत्मा और यह उसके कर्मकाण्ड का साधनभूत शरीर और शरीर शरीरीभाव से दोनों में एकात्मता थी ॥

"विजानीह्यार्य्यान्ये च दस्यवः" ऋग्० १ । ५१ । ८ इस वेदवाक्य के अनुसार वैदिक लोग ही आर्य्य कहलाते थे, इनसे भिन्न दस्यु=अनार्य थे, इसी आशय से गीता में कृष्णजी ने कहा है कि "अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन"= हे अर्जुन ! तू अनार्यता को छोड़, यह अनार्यता नरकपात का हेतु और अकीर्ति के देने वाली है, अस्तु—

इस अनार्यता रूपी नरक से निकालने का सौभाग्य महर्षि स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी को ही प्राप्त है जिन्होंने ऐसे विकट समय में भारतीय सन्तान के निर्जीव शरीर में फिर वेदरूप जीवात्मा का संचार और भूमण्डल में वेद भगवान् का प्रचार किया, उक्त वेद प्रचार के लिये मनु भगवान् ने यह लिखा है कि:—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वयः ॥

मनु० २ । १६८

अर्थ—जो वेद को न पढ़कर अन्यत्र श्रम करता है वह अपने जीवन में ही पुत्र पौत्र सहित शूद्रभाव को शीघ्र ही प्राप्त होजाता है, "शुचाद्रवतीति शूद्रः"=जो शोक से डरकर भागे अर्थात् भयभीत रहे उसका नाम "शूद्र" है, वास्तव में जब स आर्य जाति ने वेद के अध्ययन को छोड़दिया तभी से उसमें शूद्रत्व का भाव आगया, आजकल जितनी पद्धतियें पाई जाती हैं वह प्रायः वेदों से भिन्न ग्रन्थों का आश्रय करती हैं और प्राचीन समय में मनु आदि धर्मशास्त्र केवल एकमात्र वेद को अवलंबन करते थे, जैसाकि मनुजी एक स्थल में लिखते हैं कि:—

या वेदबाह्या स्मृतयो याश्च काश्च कुदृष्टयः ।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य तमो निष्ठा हि ताः स्मृताः ॥

मनु० १२ । ९५

अर्थ-जो वेद से बाह्य अर्थात् वेदविरुद्ध स्मृति अथवा अन्य ग्रन्थ हैं वे सब निष्फल, असत्य=अन्धकार रूप इस लोक और परलोक म दुःखदायक

हैं, ऐसे ग्रन्थ सदा अप्रमाण माने जाते थे परन्तु आज वह समय आगया कि जो लोग बड़े २ कर्मकाण्डी कहलाते हैं वे जब अपनी श्रद्धा भक्ति से उपासना और पूजा पाठ करते हैं तो उनमें स्यात् ही कोई मन्त्र वेद का आता हो, इसी कारण नित्य प्रातः पठनीय पुरुषसूक्त तथा विष्णुसूक्तादि सूक्तों का भी लोग अर्थ नहीं जानते, यदि कोई वेद का श्रद्धालु वेद के पुरुषसूक्तादि सूक्तों का प्रातःकाल उठकर पाठ भी करता है तो वह उनके अर्थ नहीं जानता, इसलिये इस बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि नित्यकर्म में आने वाले वेद के सूक्तों का कोई सरल हिन्दी में सुन्दर भाष्य हो, जिसको पढ़कर सर्वसाधारण लाभ उठावें ॥

यद्यपि आह्निकचन्द्रिका, गायत्रीव्याख्या तथा संस्कारचन्द्रिका आदि ग्रन्थों में कई एक सूक्तों के भाष्य संस्कृत तथा भाषा में पाये जाते हैं तथापि इन में उनका विनियोग यथावस्थित नहीं, संस्कारचन्द्रिका में विनियोग ठीक है परन्तु उपासना योग्य सूक्तों तथा कर्मकाण्डोपयोगी सूक्तों का विस्तृत भाष्य नहीं, इसलिये इस ग्रन्थ में हमने स्तुतिप्रार्थनोपासना, स्वस्तिवाचन, शान्तिप्रकरण, पुरुषसूक्त, विष्णुसूक्त और नित्यकर्तव्य पांचो यज्ञों की विधि सहित भाषा कराके सर्वसाधारण के हितार्थ ऐसा सुगम करदिया है कि प्रत्येक वेदधर्मानुयायी इसको पढ़कर लाभ उठा सकता है, विशेष कर मारवाड़ी भाइयों से हमारी प्रार्थना है कि वे अपने नित्यकर्मों में वेदमन्त्रों का पाठ अवश्य किया करें, क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि वेदपाठ से अपूर्व पुण्यों की प्राप्ति होती और इससे अविद्यारूपी पङ्क कलंक निवृत्त होता है ॥

आजकल जब हम वेदानुयायी हिन्दूमात्र के आचार व्यवहार पर दृष्टि डालते हैं तो उनमें वेद का पठन-पाठन बहुत ही न्यून पाते हैं, बहुत क्या यहां तक वेद की न्यूनता पाई जाती है कि बहुत से हिन्दू प्रातःकाल उठकर एक वेद मंत्र का भी पाठ नहीं करते, और न सन्ध्या अग्निहोत्रादि नित्य कर्तव्य कर्मों का अनुष्ठान करते हैं जिनका न करना पाप और करने में सर्वत्र पुण्य विधान किया है, जिसकी विधि आगे ब्रह्मयज्ञ के साथ विस्तार पूर्वक लिखी है और वहीं यह भी भलेप्रकार दर्शाया है कि मनुष्य प्रातःकाल ब्रह्ममुहूर्त्त में जागे और उस समय उठकर अपने धर्म का चिन्तन करे, तदनन्तर इस शरीर को पीड़ा देने वाले अविद्यादि पांच क्लेशों का चिन्तन करे, तथा उन क्लेशों का मूल जो पूर्वजन्मकृत अशुभ कर्म हैं उनका भी अनुसंधान करे और वेद का तत्त्व जो एकमात्र ईश्वर है उसकी उपासना करता हुआ वेद का सार जो "ओ३म्" है उसका ध्यान करे, वेद में "प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे" और "सायं सायं नो ग्रहपति" इत्यादि अनेक मंत्र पाये जाते

हैं जिनमें प्रातः और सायंकाल की सन्ध्या का भलेप्रकार विधान किया है, अस्तु हमारा मुख्य प्रयोजन ईश्वर को वर्णन करने वाले सूक्तों की ओर दृष्टि दिलाना है, इसी अभिप्राय से हमने इस ग्रन्थ में प्रातः सायं पठनीय वेदसूक्तों तथा नित्यकर्तव्य कर्मों का संग्रह कराके प्रकाशित किया है ॥

आजकल आर्य्यजाति का प्रवाह प्रायः काव्य, नाटक, कथा, कहानी, अलंकार, शृङ्गार तथा उपन्यास ग्रन्थों की ओर बह रहा है, इसलिये हमने इस प्रवाह से चित्तवृत्ति हटाकर पुरुषों को भगवत्परायण बनाने के लिये इस कर्मकाण्डप्रधान ग्रन्थ का संग्रह कराया है ॥

इसमें केवल उपासना और ईश्वर का ध्यान ही नहीं किन्तु पुरुष को उद्योगी और कर्मयोगी बनाने के लिये वेद के उत्तमोत्तम उपदेशरत्नों का संग्रह कराया है, जैसाकि "मोषु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमं। मृळा सुक्षत्र मृळय" ऋग्० ७।९०।९ इस मन्त्रमें परमात्मा से यह प्रार्थना कीगई है कि हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! आप हमें मिट्टी के घर मत दें किन्तु हमको ऐश्वर्य वाले घर दें ताकि हम ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर आपके ऐश्वर्य को प्राप्त हों ॥

इस मन्त्र का आशय यह है कि दरिद्र पुरुष उस परमात्मा के परमैश्वर्य को प्राप्त नहीं होते वे अपने दरिद्र से आलसी बनकर प्रतिदिन परमात्मैश्वर्य से विमुख रहते हैं, इसलिये परमात्मा से परम ऐश्वर्य की प्रार्थना अवश्य करनी चाहिये, इसी अभिप्राय से दारिद्र्य की निन्दा करते हुए महाभारत वनपर्व में युधिष्ठिर ने यह कथन किया है कि "मुझे राज्य से च्युत होने का इतना शोक नहीं जितना निर्धन होने के कारण मेरे घर से अर्थियों के निराश होकर लौट जाने का शोक है अर्थात् जब ब्राह्मण, साधु तथा संन्यासियों को मैं भोजन नहीं करासकता और नाही उनके विद्याविषयक मनोरथ पूर्ण करने में समर्थ हूँ तो मेरे जीने का क्या फल ॥

इस स्थल में धर्म्मराज युधिष्ठिर ने दरिद्र की अत्यन्त निन्दा की है कि जो पुरुष दरिद्र है वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन मनुष्यजन्म के चारो फलों से वञ्चित रहता है, इसलिये मनुष्य को दरिद्र के दूर करने का उद्योग सदैव करना चाहिये और वह उद्योग वेदपाठ तथा वेद के स्वाध्याय के विना कदापि नहीं होसकता ॥

या यों कहो कि कर्मयोगी पुरुष से विना दरिद्रता की जड़ को कोई नहीं काट सकता और वह दरिद्रता की जड़ महामोह है अर्थात् मोह के वशीभूत होकर जो पुरुष अपने क्षुद्र ग्रामों में वा निर्जल प्रदेशों में पड़े रहते हैं वे कदापि उन्नति नहीं करसकते, इसलिये कर्मयोगी पुरुष को चाहिये कि सबसे पहिले ज्ञानरूपी खड्ग से मोहजालरूपी लता को छेदन करे अर्थात् इस लता की

जड़ को ज्ञानरूपी शस्त्र से काटे, यहां ज्ञान और कर्मरूपी शस्त्र दोनों की आवश्यकता है, इसीलिये हमने इस "कर्म्मकाण्डचन्द्रिका" में कर्म्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड दोनों का संग्रह कराया है, जिससे पुरुष ज्ञानयोगी और कर्मयोगी बनकर उद्योगी बने ॥

अधिक क्या कृष्णजी गीता में यह कथन करते हैं कि "नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम" गी० ४। ३६

हे अर्जुन ! जो पुरुष पंचयज्ञ नहीं करता और अमावस्या तथा पूर्णमासी को भी यज्ञ नहीं करता वह इस लोक के भी सुखों को नहीं भोग सकता परलोक की तो कथा ही क्या ॥

इसी अभिप्राय से आन्हिकचन्द्रिका, संस्कारचन्द्रिका तथा संस्कारविधि आदि वैदिक ग्रन्थों के आधार पर श्रीयुत पं०देवदत्तशर्मा ने हमारी प्रेरणा से इस ग्रन्थ को संग्रह किया और हमने वेदानुयायी मनुष्यमात्र के लिये इसको प्रकाशित कराया है, यह कोई साम्प्रदायिक ग्रन्थ नहीं किन्तु यह वैदिक ग्रन्थ है इसलिये प्रत्येक वैदिकधर्म्मी का इसके पठन-पाठन में पूर्ण अधिकार है, अतएव हमारी प्रत्येक वैदिकधर्मी से विनय है कि रागद्वेष को छोड़कर इसका अध्ययन करें ॥

विशेषकर मारवाड़ी भाइयों से यह विनय है कि वह अपने नित्यकर्म के लिये इस पुस्तक को अपना पाठ्य पुस्तक बनायें ॥

विनीत—

जयनारायण रामचन्द्र पोद्दार

कलकत्ता

॥ अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासना: ॥

माहं ब्रह्म निराकुर्यां मामा ब्रह्म-
निराकरोदनिराकरणमस्तु ॥

हे संसार के यात्रीलोगो ! उपरोक्त ऋषि वाक्य हम सबको उपदेश करता है कि परमात्मा ने मेरा त्याग नहीं किया, मैं भी उनका परित्याग नहीं करूंगा, अर्थात् परम पिता परमात्मा मेरा निरन्तर अन्नवस्त्रादि द्वारा पालन पोषण तथा रक्षण करते हैं, मैं भी उनकी आज्ञा निरन्तर पालन करता हुआ संसार में यात्रा करूँगा—

इसलिये प्यारे भाइयो ! आओ, हम सब मिलकर उस परम पिता परमात्मा के गुण कीर्त्तन करते हुए उनकी शरण में जाँय और उनसे प्रार्थना करें कि हे प्राणनाथ प्रभो ! तुम्हारी कैसी अद्भुत महिमा है, तुम्हारे अनन्त ऐश्वर्य्य को कौन जान सकता है, तुम्हारे शासन में असंख्यातब्रह्माण्ड अपनी २ मर्यादा में चलकर तुम्हारी महिमा को महान् कर रहे हैं, और इस ब्रह्माण्ड में असंख्यात जीव जन्तु आपके आश्रित जीवन निर्वाह कर रहे हैं, तुम सबको अन्न और जल देते हो, क्षणभर भी किसी को नहीं भुलाते, तुम स्वयं अनन्त हो, तुम्हारा प्रेम अनन्त है, तुम्हारी दया अनन्त है, तुम्हारी महिमा अनन्त है, तुम सबके स्वामी और अन्तर्यामी हो।

हे सच्चिदानन्द अन्तर्यामिन् प्रभो ! हम सब पतित दीन दु:खी तुम्हारे द्वार पर आये हैं, हमारे हृदयरूपी नेत्र खोल दो, कि हम तुम्हारे प्रेममय स्वरूप को अवलोकन कर तृप्त हों। हे दयामय ! हम अपने दुष्ट संकल्पों को संसार से

छिपाये रहते हैं परन्तु आप से छिपे हुए नहीं हैं, तुम उन सबको देखते हुए भी हमारा त्याग नहीं करते, हमारे उन सब पापों को जानकर भी हमको अपनी शरण में लेते हो, धन्य हो, धन्य हो, धन्य हो प्रभो ! तुम्हारी दया अपरम्पार है ।

हे दयामय ! हम अपने अज्ञान से पापी बनकर तुम्हारी शरण में आन पड़े हैं, तुम्हारे विना कौन है जो हमको इस पापपिशाच से बचाकर पुण्य का मार्ग दिखलावे, तुम्हारा नाम पतितपावन है, तुम गिरे हुओं का सहारा हो, तुम्हारी शरण लेकर पापी पुण्यात्मा बन जाता, निर्बल बलवान् हो जाता, और संतप्त हृदय शान्त होता है, इस आशा से हम अपना मलिन हृदय लेकर तुम्हारे द्वार पर आये हैं । हमारा मलिन हृदय तुम्हारे सामने है, तुम शुद्ध स्वरूप हो हमारे हृदय का मैल दूर करो और अपनी प्रकाशमयी ज्योति का प्रकाश करो कि हम जहाँ और जिस अवस्था में रहें तुम्हारे होकर रहें, तुम्हारी महिमा का विस्तार करें, तुम्हारा ही नाम उच्चारण करें, तुम्हारी आज्ञा का पालन करें, तुम्हीं को प्रणाम करें, तुम्हारी ही पूजा, भक्ति और तुम्हारा विश्वास तथा प्रेम हमारे जीवन का लक्ष्य हो, हम हाथ जोड़ कर यही भिक्षा मांगते हैं यही दान दो, तुम्हारे यहाँ से कोई ख़ाली हाथ नहीं फिरता, क्योंकि तुम्हारा भाण्डार अटूट है ।

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव ।
यद्भद्रं तन्न आसुव ॥ १ । यजु० ३० । ३

पदा०—(सवितः) हे सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, समग्र ऐश्वर्य्य युक्त (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर, आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन तथा दुःखों को (परासुव) दूर कर दीजिये, और (यत्) जो (भद्रं) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव तथा पदार्थ हैं (तत्) वह सब हमको (आसुव) प्राप्त कीजिये ।

भावा०—हे दिव्यशक्ति सम्पन्न परमेश्वर ! आप हमारे सम्पूर्ण पाप कर्मों को दूर करके पुण्य कर्मों में हमारा प्रवेश करें अर्थात् हमको पाप कर्मों से छुड़ाकर शुभ कर्मों के करने की सामर्थ्य प्रदान कीजिये ।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

२ । यजु० १३।४

पदा०—(हिरण्यगर्भः) जो प्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करने हारे सूर्य्य चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हुए हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतन स्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान था (सः) सो (इमाम्) इस (पृथिवीं) पृथिवी (उत) और (द्यां) सूर्यादिक को (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुख स्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिये (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अति प्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ।

भावा०—जो जगत्पिता परमात्मा सृष्टि से प्रथम एक था और जिसने इस सम्पूर्ण जगत् को अपनी सामर्थ्य से उत्पन्न करके धारण किया हुआ है वही परमात्मा हम सब को वेदविहित कर्मों द्वारा मन, वाणी से पूजनीय है ।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

३ । यजु० २५ । १३

पदा०—(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता (बलदाः) शरीर, आत्मा तथा समाज के बल का देने हारा (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषं) प्रत्यक्ष सत्यस्वरूप शासन तथा न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं (यस्य) जिसका (छाया) आश्रय ही (अमृतं) मोक्ष सुखदायक है (यस्य) जिसका न मानना अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ज्ञान के देने हारे परमात्मा की प्राप्ति के लिये (हविषा) आत्मा तथा अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञा पालन करने में तत्पर रहें ।

भावा०—जो परमात्मा सबका जीवनदाता, बुद्धिबल, बाहुबल तथा धनबल, इन तीनों बलों का देने वाला, जिसकी आज्ञा में सब जड़ चेतन पदार्थ हैं और जिसके अधीन सबकी मुक्ति तथा मृत्यु है, वही परमात्मा हम सब को वेदविहित कर्मों द्वारा, तथा मन, वाणी से पूजनीय है ।

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

४ । यजु० २३ । ३

पदा०—(यः) जो (प्राणतः) प्राण वाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपनी अनन्त महिमा से (एकः इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईश) रचना करता है, हम उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकल ऐश्वर्य्य के देने हारे परमात्मा के लिये (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री से (विधेम) विशेष भक्ति करें ।

भावा०--इस मन्त्र का आशय यह है कि, जो अपनी अनन्त महिमा से इस चराचर जगत् का एक ही स्वामी है और जिसने द्विपद=मनुष्यादि प्राणी तथा चतुष्पद=गौ आदि प्राणियों को उत्पन्न किया है वही सकल ऐश्वर्य्यसम्पन्न परमात्मा हमारा पूजनीय इष्ट देव है ।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः ।
यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

५ । यजु० ३२।६

पदा०—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाव वाले (द्यौः) सूर्य्यादि (च) और (पृथिवी) भूमि का (दृढा) धारण (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है (यः) जो (अन्तरिक्ष) आकाश में (रजसः) सब लोकलोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिये (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ।

भावा०—जिस परमात्मा ने अपनी महत्ता से इस बड़े द्युलोक तथा पृथिवी लोक को धारण किया हुआ है, जो मोक्ष तथा सुख का स्वामी है और जो आकाश में अनेक लोकलोकान्तरों को निर्माण करके नियम में रखता है वही हमारा पूजनीय पिता उपासना करने योग्य है ।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव ।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥

६ । ऋग्० १० । १२१ । १०

पदा०—(प्रजापते) हे सब प्रजा के स्वामी परमात्मा (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न दूसरा कोई (ता) उन (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़चेतनादिकों को (न) नहीं (परि, बभूव) तिरस्कार करता अर्थात् आप सर्वोपरि हैं (यत्कामाः) जिस २ पदार्थ की कामना वाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें (तत्) उस २ की कामना (नः) हमारी सिद्ध (अस्तु) होवे, जिससे (वयं) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥

भावा०—हे प्रजापते ! आप ही इस जगत् के स्वामी हैं, आपके विना अन्य कोई नहीं है, आप ऐसी कृपा करें कि हम सब आपकी प्रजा आपकी आज्ञानुसार जिस २ फल की कामना से काम करते हैं वह २ हमारी कामनायें पूर्ण हों और हम स्वाधीन धनों के स्वामी बनें ।

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीयेधामन्नध्यैरयन्त॥७यजु०३२।१०

पदा०—हे मनुष्यो ! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों को (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करने हारा (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान तथा जन्मों को (वेद) जानता है, और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूपधारण करने हारे परमात्मा में (अमृतं) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य्य, राजा और न्यायाधीश है, अपने लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें ।

भावा०—हे मनुष्यों ! वह परमात्मा हमारा बन्धु, पिता, हमारे सब कामों को पूर्ण करने वाला, सम्पूर्ण लोक लोकान्तर तथा स्थानों को जानने वाला, वह दिव्य स्वरूप, नित्यानन्दयुक्त, विद्वानों को प्राप्त होने योग्य और जो सदा मोक्षस्वरूप है, वही हमारा गुरु, आचार्य्य, राजा तथा न्यायाधीश है, हम सबको उसी की उपासना करनी योग्य है ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देववयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥

८ । यजु० ४० । १६

पदा०—(अग्ने) हे स्वप्रकाश ज्ञानस्वरूप सब जगत् के प्रकाश करने हारे (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्या-युक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विद्वान् वा राज्यादि ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये (सुपथा) अच्छे धर्मयुक्त आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइये और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणं) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिये, इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नम उक्तिं) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ॥

भावा०—हे सर्वशक्तिसम्पन्नप्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप हमारे सब कर्मों तथा मनोरथों को जानते हुए हम सबको देशात्मोन्नति के लिये शुभमार्ग से चलायें और हमसे सम्पूर्ण पापों को दूर करें, हम आपको वारंवार मन, वाणी तथा शरीर से प्रणाम करते हैं ॥

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ।



अथ स्वस्तिवाचनम् ।

अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ॥ १ ॥ ऋग् । १ । १ । १

पदा०—(पुरोहितं) पूर्व से ही जगत् को धारण करने वाले (यज्ञस्य) हवन, विद्यादि दान तथा शिल्प क्रिया के (देवं) प्रकाशक (ऋत्विजम्) प्रत्येक ऋतु में पूजनीय (होतारं) जगत् के सुन्दर पदार्थों को देने वाले (रत्नधातमम्) उत्तम रत्नादिकों के धारण करने वाले (अग्निं) प्रकाशस्वरूप परमात्मा की मैं उपासक (ईडे) स्तुति करता हूँ ।

भावा०—हे ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप सृष्टि के आरम्भ से ही इस सम्पूर्ण जगत् को धारण करके पालन पोषण कर रहे हैं, आप यज्ञादि क्रियाओं-के प्रकाशक तथा जगत् के उत्तमोत्तम पदार्थों के दाता हो मनुष्यमात्र के पूजनीय अर्थात् उपासना करने योग्य हो ॥

स नःपितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव ।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥ २ ॥ ऋग् । १ । १ । ९

पदा०—(अग्ने) हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (सः) लोकवेद प्रसिद्ध आप (सूनवे, पिता, इव) पिता पुत्र के लिये जैसे, (नः) हमारे लिये (सूपायनो, भव) सुख के हेतु पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हों, और (नः) हम लोगों का (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सचस्व) मेल करायें ॥

भाव०—हे हमारे परम पिता परमात्मन् ! जैसे पिता पुत्र को शिक्षा करता हुआ, उसके लिये आवश्यक पदार्थों का संग्रह करता है उसी प्रकार आप भी हमारे सुख के साधक पदार्थों को उपलब्ध करायें और ऐसी कृपा करें कि हम सब परस्पर एक दूसरे को मित्रता की दृष्टि से देखें जिससे हम शीघ्र ही कल्याण को प्राप्त हों ।

स्वस्तिनो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥
ऋग् । ५ । ५२ । ११

पदा०—(अश्विना) अध्यापक तथा उपदेशक (नः) हमारे लिये (स्वस्ति, मिमीतां) कल्याणकारी हों (भगः) ऐश्वर्य्यसम्पन्न आप वा वायु (स्वस्ति) सुखकारक हों (अदितिः) अखण्डित (देवी) दिव्यगुण युक्त विद्युतविद्या (अनर्वणः) ऐश्वर्य्यरहित हम लोगों के लिये कल्याणकारी हो (पूषा) पुष्टिकारक (असुरः) प्राणों के देने वाले मेघादि (स्वस्ति, दधातु) कल्याण को देवें (द्यावा पृथिवी) अन्तरिक्ष तथा पृथिवी (सुचेतुना) विज्ञान से युक्त हो कर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुखदायक हों।

भावा०—हे हमारे परम पिता जगदीश्वर ! आप ऐसी कृपा करें कि हमारे अध्यापक तथा उपदेशक महात्मा अपने सदुपदेश द्वारा हमारी आत्मा को बलवान् बनावें। हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न पिता ! यह आपके रचे हुए वायु, जल तथा अग्नि आदि दिव्य पदार्थ हमारे लिये सुखकारक हों, आप मेघों द्वारा सदा हमारे प्राणों की रक्षा करें और हमारा निवास स्थान पृथिवी तथा महान् आकाश जिसमें हम अपनी क्रिया करते हैं यह हमारे लिये सुखदायक हों।

स्वस्तये वायुमुपब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः।
बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः॥

ऋग्। ५। ५२। १२

पदा०—हे परमात्मन् ! आप की कृपा से (आदित्यासः) ४८ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य धारण करने वाले ब्रह्मचारी (नः) हम लोगों के मध्य में (स्वस्तये, भवन्तु) कल्याणार्थ उत्पन्न हों (यः) जो (स्वस्तये) शान्ति के लिये हमें (वायुं) वायुविद्या का (उप, ब्रवाम) भले प्रकार उपदेश करें (सोमं) ऐश्वर्य हमारे लिये कल्याणकारी हो ! आप भुवनस्य, पतिः) सम्पूर्ण संसार की रक्षा करने-वाले तथा (बृहस्पतिं) वेदवाणी के स्वामी होने से (सर्वगणं) सम्पूर्ण गण= समूह आप का (स्वस्तये) कल्याण के लिये आश्रयण करते हैं।

भावा०—हे सकल विद्याओं के निधि भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग ब्रह्मचर्यादि आश्रमों का पूर्णतया पालन करते हुए शारीरिक तथा आत्मिक उन्नति द्वारा संसार का उपकार करने वाले हों, जो जल तथा वायु आदि तत्वों की विद्या को पूर्णतया जानकर हमारे लिये उनका उपदेश करें ताकि हम उनको उपयोग में लाकर ऐश्वर्य्यसम्पन्न हों, हे हमारे पिता परमेश्वर ! आप की कृपा से हम लोग वेदविद्या का अध्ययन करते हुए शान्त्यादि गुणों वाले हों, हे प्रभो ! संसार के सम्पूर्ण प्राणी आपही से कल्याणकी आशा करते हैं, क्योंकि आप कल्याणस्वरूप हैं।

विश्वेदेवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।
देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥५॥

पदा०—हे परमात्मन् ! (अद्य) आज=यज्ञ के दिन (नः) हमारे (स्वस्तये) आनन्द के लिये (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् लोग हों, और (वैश्वानरः) सब मनुष्यों को उपयोगी तथा सर्वत्र व्यापक (अग्निः) अग्नि (स्वस्तये) मंगल के लिये हो, (ऋभवः) विशिष्ट मेधावी (देवाः) विद्वान् लोग (अवन्तु) हमारी रक्षा करें, और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाले आप (अंहसः) पापरूप अपराध से (स्वस्ति, पातु) शान्तिपूर्वक हमारी रक्षा करें ॥

भावा०—हे यज्ञपति परमेश्वर ! आपकी कृपा से हम सब यज्ञों के करने वाले हों, सम्पूर्ण याज्ञिक विद्वान् हमारे यज्ञ में सम्मिलित होकर हमें नाना विद्याओं का उपदेश करें जिससे हम आनन्दित हों, और यह भौतिकाग्नि जो यज्ञ का मुख्यसाधन है वह हमारे लिये कल्याणकारी हो, मेधावी विद्वान् पुरुष अपने सदुपदेश द्वारा दुष्कर्मों से हमको सदा बचावें। और हे रुद्ररूप परमेश्वर ! आप हमारे पापरूप अपराधों से हमारा सर्वनाश न करें किन्तु पाप फल देकर भी हमारी रक्षा करें ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥६॥

पदा०—(अदिते) हे अखण्डितविद्यायुक्त परमेश्वर ! (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण (कृधि) करो (च) और (इन्द्रः) वायु (च) और (अग्निः) विद्युत् (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण दायक हों (पथ्ये, रेवति) धनादि-सम्पन्नशुभमार्ग में हमारे लिये (स्वति) कल्याण हो, और (मित्रावरुणा) प्राण तथा उदानवायु (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) सुखकारी हों ।

भावा०—हे सर्वविद्याओं के निधि परमात्मन् ! आप हमारे लिये सुखदायक हों और वायु, विद्युत् तथा धनादि ऐश्वर्य्य हमारे लिये कल्याण दायक हों । हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि प्राणवायु तथा उदानवायु हमारे शरीर में यथावस्थित वर्तें जिससे हमें कोई क्लेश प्राप्त न हो ॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्गमेमहि ॥ ७ ॥

ऋग् ५।५१

पदा०—हे परमेश्वर ! हम लोग (पन्थां) मार्ग में (स्वस्ति) आनन्द-पूर्वक (अनुचरेम) विचरें (सूर्याचन्द्रमसाविव) जैसे सूर्य्य तथा चन्द्रमा बिना किसी उपद्रव के विचरते हैं, (पुनः) फिर (ददता) सहायता देने वाले (अघ्नता) किसी को दुःख न देने वाले (जानता) ज्ञानसम्पन्न बन्धु आदिकों के साथ (संगमेमहि) मिलकर वर्त्तें ॥

भावा०—हे परमपिता परमेश्वर ! जैसे सूर्य्य तथा चन्द्रमा निरुपद्रव अपने नियम का पालन करते हुए विचरते हैं इसी प्रकार हम लोग भी निर्विघ्न शुभ मार्ग में चलकर अपनी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त हों। और हे भगवन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग एक दूसरे को मित्रता की दृष्टि से देखते हुए परस्पर सहायक हों॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
तेनो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदा०—(ये) जो (यज्ञियानां, देवानां) यज्ञ के योग्य विद्वानों के बीच में (यज्ञियाः) यज्ञोपयोगी हैं, और (मनोर्यजत्राः) मननशील पुरुषों के साथ संगति करने वाले (अमृताः) जीवन्मुक्त जैसे (ऋतज्ञाः) सत्य-ज्ञानी हैं (ते) वे आप लोग (अद्य) आज याग दिन में (उरु गायं) बहुत कीर्त्तिवाले विद्याबोध को (नः) हमारे लिये (रासन्तां) देवें। और (यूयं) आप सब (स्वस्तिभिः) कल्याणकारी पदार्थों से (सदा) सब काल में (नः) हमारी (पात) रक्षा करें ॥

भावा०—परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे याज्ञिक पुरुषो ! तुम अपने यज्ञों में मननशील, सत्यवादी तथा ब्रह्मज्ञानसम्पन्न पुरुषों को सत्कारपूर्वक बुलाओ, और उनसे प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश करें जिससे सब काल में हमारी रक्षा हो ॥

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान्वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँअनु मदास्वस्तये।

पदा०—(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (माता) सब को निर्माण करने वाली पृथिवी (मधुमत्, पयः) माधुर्ययुक्त दुग्धादि पदार्थ (पिन्वते) देती है। और (अदितिः) अखण्डनीय (अद्रिवर्हाः) मेघों से बढ़ा हुआ (द्यौः) अन्तरिक्ष लोक (पीयूष) सुन्दर जलादि सेचन करता है, उन (उक्थशुष्मान्) अत्यन्त बलवाले (वृषभरान्) यज्ञ द्वारा वृष्टि करने वाले

(स्वप्नसः) शोभन कर्मवाले (तान्, आदित्यान्) उन आदित्यब्रह्मचारियों को (स्वस्तये) उपद्रव न होने के लिये (अनुमद) प्राप्त कराइये ॥

भावा०--इस मंत्र में परमात्मा से यह प्रार्थना की गई है कि हे भगवन् ! जिन आदित्य ब्रह्मचारियों को मातारूप पृथिवी अनेक पुष्टिकारक पदार्थ खाने को देती और अन्तरिक्ष लोक पवित्र जलों की वर्षा द्वारा जिन्हें तृप्त करता है उन वेदोक्त कर्म करने वाले ब्रह्मचारियों की आप सब उपद्रवों से रक्षा करें ताकि वह ब्रह्मविद्या के उपदेश द्वारा हमारे जीवन को उच्च बनावें ।

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिविक्षयम् ।
तां आविवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये

पदा०—(सम्राजः) अपने तेज से भले प्रकार विराजमान (सुवृधः) ज्ञानादि से सम्पन्न (ये, देवाः) जो विद्वान् लोग (यज्ञं) यज्ञ को (माययुः) प्राप्त होते, और जो (अपरिह्वृताः) किसीसे भी पीड़ित न होने वाले देवता लोग (दिवि) द्युलोकवर्ती बड़े २ स्थानों में (क्षयं) निवास (दधिरे) करते हैं (तान्) उन (महो, आदित्यान्) गुणों से अधिक आदित्य ब्रह्मचारियों और (अदिति) अखण्डीय आत्मविद्या को (नमसा) हव्यान्न के साथ और (सुवृक्तिभिः) उत्तम स्तुतियों के साथ (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आ, विवास) सेवन कराओ ।

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः ।
ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥

पदा०—(नृचक्षसः) कर्मकारी मनुष्यों के द्रष्टा (अनिमिषन्तः) आलस्यरहित (अर्हणः) लोगों के पूजनीय (देवासः) विद्वान् लोग जो (बृहत्) बड़े (अमृतत्वं) अमृत को (आनशुः) प्राप्त, और (ज्योतीरथाः) सुन्दर प्रकाशमय यानों से युक्त हैं (अहिमायाः) जिनकी बुद्धि को कोई दबा नहीं सकता, ऐसे (अनागसः) पापरहित वह आदित्य ब्रह्मचारी जो (दिवः) अंतरिक्ष लोक के (वर्ष्माणं) ऊंचे देश को (वसते) ज्ञानादि द्वारा व्याप्त करते हैं वह (स्वस्तये) हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

भावा०—हे सर्वद्रष्टा तथा सबके पूजनीय परमात्मन् ! जीवन्मुक्त विद्वान् लोग, जिनकी बुद्धि को कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता, ऐसे पाप रहित आदित्य ब्रह्मचारी, जो अपने ज्ञान द्वारा अंतरिक्ष लोकपर्यन्त व्याप्त हो रहे हैं अर्थात् विद्या द्वारा लोक लोकान्तरों में जिनका यश विस्तृत हो रहा है वे

अपने सदुपदेशों से हमें पवित्र करें अर्थात् हमारे लिये विद्या तथा धर्म का उपदेश करते हुए हमें सदाचारी बनावें ताकि हम सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें ॥

भावा०—हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डपति परमात्मन् ! आपकी इस सृष्टि में ज्ञानसम्पन्न बड़े २ विद्वान् यज्ञों द्वारा आपका पूजन करते और आपके इस विस्तृत राज्य में पृथिवी से लेकर द्युलोक पर्य्यन्त दिव्य गुणों से सुभूषित अनेक मनुष्य तथा सूर्य्य चन्द्रमादि निवास करते हुए आपकी महिमा को दर्शाते और आप नियमपूर्वक सबका रक्षण तथा पालन पोषण करते हैं, हे दयामय ! हम पर ऐसी दया करो कि हव्यान्न के साथ आदित्य ब्रह्मचारी हमें प्राप्त हों और वे वेदविद्या के उपदेशों द्वारा हमारा सदा कल्याण करें ॥

कोवः स्तोमं राधति यंजुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।
को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ॥१२॥

पदा०—(विश्वे, देवासः) हे सम्पूर्ण विद्वानो ! (यं, जुजोषथ) जिस स्तुति समूह का तुम सेवन करते हो उस (स्तोमं) सामवेदोक्त स्तुतिसमूह को (वः) तुम लोगों के मध्य में (कः) कौन (राधति) बनाता, और (तुविजाताः) हे अनेक प्रकार के जन्म वाले (मनुषः) मननशील विद्वान् लोगो ! (यतिष्ठन) जितने तुम लोग स्थित हो (वः) तुम सब के बीच में (कः) कौन (अध्वरं) यज्ञ को (अरम्, करत) अलंकृत करता है, (यः) जो यज्ञ (नः) हमारे (अंहः) पाप को (अति) हटाकर (स्वस्तये) कल्याण के लिये (पर्षत्) प्रवृत्त होता है ।

भावा०—इस मंत्र में पूर्वपक्ष विधि से प्रश्नोत्तर की रीति पर परमात्मा ने यह भाव भरा है कि हे विद्वानो ! जिन स्तुति विधायक वाक्यों से तुम परमात्मा की स्तुति करते हो उन स्तुतिवाक्यों को तुम में से कौन बनाता और यज्ञ को कौन अलंकृत करता है, जो यज्ञ तुम्हारे पापों को निवृत करके तुम्हें कल्याण का मार्ग दिखलाता है । अर्थात् सामवेदोक्त स्तुति वाक्यों का कर्त्ता और यज्ञ की विधि बतलाने वाला कौन है ? (इसका उत्तर वेद में यथास्थान यह दिया है कि यह दोनों भाव उसी परमात्मा से आते हैं जो हमारा पूज्य-पिता तथा हमारे कर्मों का द्रष्टा है)

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः ।
त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ॥

पदा०—(येभ्यः) जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के लिये (समिद्धाग्निः)

अग्निहोत्री (मनुः) मननशील विद्वान् (मनसा) मन से (सप्तहोतृभिः) सातहोताओंसे (प्रथमां) मुख्य (होत्रां) यज्ञ को (आयेज) करता है (ते, आदित्याः) वे आदित्य ब्रह्मचारी (अभयं, शर्म्म) भय रहित सुख को (यच्छत) देवें, और (नः) हमारे (स्वस्तये) कल्याण के लिये (सुपथा) शोभन वैदिक मार्गों को (सुगा) भले प्रकार प्राप्तव्य (कर्त) करें।

भावा०—इस मंत्र का आशय यह है कि जिन आदित्य ब्रह्मचारियों के सन्मानार्थ मनस्वी विद्वान् बड़े २ यज्ञ करते हैं वह ब्रह्मचारी हमारे कल्याण के लिये उस पवित्र वैदिक धर्म का उपदेश करें जिससे मनुष्य जन्म के फल चतुष्टय की प्राप्ति होती है, या यों कहो कि वह ब्रह्मचारी हमें उस परंज्योति तथा दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मा का उपदेश करें जिसको प्राप्त होकर पुरुष निर्भय हुआ स्वेच्छाचारी होकर विचरता है।

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः ।
ते नः कृतादकृतादेन सस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ॥१४॥

पदा०-(ये, देवासः) जो विद्वान् लोग (प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान वाले (मन्तवः) सब के जानने वाले (स्थातुः) स्थावर (च) और (जगतः) जंगम (विश्वस्य, भुवनस्य) सब लोक के (ईशिरे) स्वामी बनते हैं, (ते) वे (अद्य) आज (स्वस्तये) कल्याण के लिये (कृतात्) किये हुए और (अकृतात्) नहीं किये हुए (एनसः) पाप से (परि, पिपृत) पार करें।

भावा०—हमारे विचार में यदि यह मंत्र ईश्वरपरक लगाया जाय तो बड़े उच्चादर्श का बोधक प्रतीत होता है, जैसा कि हे दिव्यज्योति परमात्मन् ! आप अपने उत्तम ज्ञान से सबके जाननेवाले और स्थावर तथा जंगम सब विश्ववर्ग के स्वामी हैं। हे भगवन् ! आप हमें सब प्रकार के पापों से बचाकर कल्याण की ओर ले जायें अर्थात् जिन पापों के करने की सम्भावना है उनसे आप हमारी रक्षा करें।

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽंहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।
अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये ॥१५॥

पदा०—हे ईश्वर ! (अंहोमुचं) पाप के हटाने वाले (सुहवं) जिसका बुलाना अच्छा हो ऐसे (इन्द्रम्) शक्तिशाली विद्वान् को (भरेषु) संग्रामों में (हवामहे) अपनी रक्षा के लिये बुलावें, और (सुकृतम्) श्रेष्ठ कर्म वाले (दैव्यं) आस्तिक (जनम्) पुरुष को बुलावें, और (सातये) अन्नादि लाभ

के लिये (स्वस्तये) अनुपद्रव के लिये (अग्निं) अग्निविद्या को (मित्रं) प्राणविद्या को (भगम्, वरुणम्) सेवनीय जल विद्या को, और (द्यावापृथिवी) अन्तरिक्ष तथा पृथिवी की विद्या को (मरुतः) वायुविद्या को (हम सेवन करें)।

भावा०—हे परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि बड़े २ शक्तिसम्पन्न विद्वान् पुरुष जो पाप से सर्वथा पृथक् हैं वे इस संसार रूप संग्राम में आकर हमारी रक्षा करें, और शान्तिपूर्वक जीवन निर्वाह के लिये अग्नि तथा जल आदिकों की विद्याओं को भलेप्रकार जानें, अर्थात् प्राण, अपानादिकों की विद्या को जानकर सदा नीरोग रहें। और जल, वायु आदिकों की विद्या द्वारा यानादिकों को रचकर ऐश्वर्य्य सम्पन्न हों।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्।
दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये॥१६॥

पदा०—(सुत्रामाणं) भले प्रकार रक्षा करने वाली (पृथिवीं) लम्बी चौड़ी (अनेहसं) उपद्रवरहित (सुशर्माणं) अच्छा सुख देने वाली (अदितिं) जो न टूट सके (सुप्रणीतिम्) जो भले प्रकार बनाई गई है (द्याम्) अन्तरिक्षलोकस्थ (स्वरित्राम्) सुन्दर यन्त्रों से युक्त (अस्रवन्तीम्) दृढ़ (दैवीं, नावं) विद्युत्सम्बन्धी नौका के ऊपर अर्थात् विमान के ऊपर हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (आरुहेम) चढ़ें।

भावा०—इस मंत्र में आकाशयान का वर्णन किया गया है। परमात्मा उपदेश करते हैं कि तुम लोग जो यान बनाओ वह कैसा हो ? भले प्रकार रक्षा करने वाला, विस्तृत, सब उपद्रवों से रहित, सुखपूर्वक वैठने योग्य, जिस में सब कला यंत्र सुन्दर तथा ऐसे दृढ़ लगे हों जो टूट न सकें, इत्यादि सुरक्षित विमान में बैठकर तुम लोग सुखपूर्वक विचरो।

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः॥
सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये॥१७॥

पदा०—(विश्वे, यजत्राः) हे पूजनीय विद्वानो ! (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (अधिवोचत) आप उपदेश करें, और (अभिह्रुतः) पीड़ा देने वाली (दुरेवायाः) दुर्गति से (नः) हमारी (त्रायध्वं) रक्षा करो। (देवाः) हे विद्वान् लोगो ! (शृण्वतः) हमारी स्तुति सुनने वाले आपको (सत्यया) सच्ची (वः) तुम्हारी (देवहूत्या) देवताओं के योग्य स्तुति से हम (अवसे) शत्रुओं से रक्षा करने के लिये और (स्वस्तये) सुख के लिये (हुवेम) बुलाया करें।

भावा०—हे वेदविद्या के ज्ञाता विद्वानो ! आप वेदों के उपदेश द्वारा हमारी रक्षा करें अर्थात् हमको दुष्कर्मों से हटाकर शुभकर्मों में लगावें जिससे हम पीड़ा देने वाली दुर्गति को प्राप्त न हों। हे स्तुति के योग्य विद्वानो ! हम आपका आह्वान करते हैं, कृपा करके आप आइये, और आकर हमें सदुपदेश कीजिये जिससे हम वेदानुकूल आचरण करते हुए सुख को प्राप्त हों।

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः।
आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ॥

पदा०—(देवाः) हे विद्वान् लोगो ! (अपामीवां) रोगादिकों को (अप) पृथक् करो (विश्वाम्) सब (अनाहुतिं) मनुष्यों की देवताओं के न बुलाने की बुद्धि को (अप) पृथक् करो (अरातिम्) लोभ बुद्धि को (अप) पृथक् करो (अघायतः) पाप की इच्छा करने वाले शत्रु की (दुर्विदत्राम्) दुष्ट बुद्धि को दूर करो (द्वेषः) द्वेष करने वाले सबों को (अस्मत्) हमसे (आरे) दूर (युयोतन) पृथक् करो (नः) हमारे लिये (उरु, शर्म) बहुत सुख [स्वस्तये] कल्याण के लिये [यच्छत] देओ।

भावा०—हे वेदविद्या के अनुशीलन करने वाले विद्वानो ! आप अपने उपदेशों द्वारा हमें शारीरक उन्नति का प्रकार बतलावें जिससे हम रोगादिकों से रहित होकर स्वस्थ रह सकें, हमें विद्वानों के सत्कार करने का उपदेश करें, हम लोग मोह से पृथक् रहें, हमसे द्वेष करने वाले शत्रुओं की बुद्धियों को सन्मार्ग में लगाओ, ताकि वह हमको शत्रु की दृष्टि से न देखे। हे विद्वज्जनो ! हम प्रार्थना करते हैं आप अपनी कृपा से हमें कल्याण का मार्ग बतलावें जिसका अवलम्बन कर सुख से जीवन व्यतीत करें।

अरिष्टः स मर्त्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि।
यमादित्यासोनयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये

पदा०—(आदित्यासः) हे आदित्य ब्रह्मचारियो ! (यम्) जिन पुरुषों को (सुनीतिभिः) अच्छी नीतियों से (विश्वानि, दुरिता) सब पापों को (अति) उल्लङ्घन करके (नयथ) सन्मार्ग में प्रवृत्त करते हो (सः, विश्वः मर्तः) वे सब पुरुष (अरिष्टः) किसी से पीड़ित न होकर (एधते) बढ़ते हैं, और (धर्मणः) धर्मानुष्ठान के (परि) पीछे (प्रजाभिः) पुत्रपौत्रादिकों से [प्र, जायते] भले प्रकार प्रकट होते हैं।

भावा०—परमात्मा उपदेश करते हैं कि ब्रह्मचारियो ! तुम प्रजाजनों को

सदुपदेश करो जिससे वे पापों से निवृत्त होकर सन्मार्ग में प्रवृत्त हों, वे धर्मानुष्ठान करते हुए पुत्र पौत्रादिकों से वृद्धि को प्राप्त हों और उनमें वह शक्ति उत्पन्न करो जिससे वे सब क्लेशों से पृथक् रहकर सुख से अपना जीवन व्यतीत करें ।

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने।
प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ॥

पदा०—(मरुतो, देवासः) हे मितभाषी देवता=विद्वान् लोगो ! (वाजसातौ) अन्न के लाभ के लिये (यं, रथम्) जिस रमणीय गमनसाधन=वाष्पयानादि की (अवथ) रक्षा करते हो, और (हिते, धने) रखे हुए धन के कारण (शूरसाता) संग्राम में जिस रथ की रक्षा करते हो (इन्द्रसानसिम्] बड़े यन्त्रकला के विद्वानों से भी सेवनीय (प्रातर्यावाणम्) प्रातःकाल से ही गमन करने वाले उसी रथ पर हम (स्वस्तये) कल्याण के लिये (आरुहेम) चढ़ें ।

भावा०--परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे उपयुक्त भाषण करने वाले विद्वानो ! तुम लोग पदार्थविद्या=साइंस का उपदेश करते हुए वाष्पयान तथा जलादि यानों के निर्माण का प्रकार वर्णन करो जिससे पदार्थविद्या की रक्षा द्वारा कलाकौशल के निर्माण में सुगमता हो । हे युद्धविद्या के ज्ञाता विद्वानो ! तुम युद्ध के लिये बड़े २ कला यंत्रों से सुदृढ़ यान निर्माण कराओ, जो बैठने में कष्टदायक न हों और जिनपर चढ़कर सुगमता से शत्रुओं को विजय कर सकें।

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसुस्वस्त्यप्सुवृजने स्वर्वति ।
स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ॥२१॥

पदा०—(मरुतः) मितभाषी विद्वान् लोगो ! (नः) हमारे लिये (पथ्यासु) मार्ग के योग्य अर्थात् जलसहित देशों में (स्वस्ति) कल्याण करो, और (धन्वसु) जलरहित देशों में (स्वस्ति) जल की उत्पत्तिरूप कल्याण करो, और (अप्सु) जलों में कल्याण करो और (स्वर्वति) सब आयुधों से युक्त (वृजने) शत्रुओं को दबाने वाली सेना में (स्वस्ति) कल्याण करो, और (नः) हमारे (पुत्रकृथेषु) पुत्रों के करने वाले (योनिषु) उत्पत्ति स्थानों में (स्वस्ति) कल्याण करो, और (राये) गवादि धन के लिये कल्याण को (दधातन) धारण करो।

भावा०—परमात्मा आज्ञा देते हैं कि हे प्रजाजनो ! तुम लोग उपर्युक्त विद्वानों से इस प्रकार प्रार्थना करो कि हे भगवन् ! आप हमें ऐसे उपाय तथा वह

विद्या सिखलावें जिससे जलीयप्रदेशों, जलरहित देशों तथा जलों में अपना कल्याण देखें, और सब अस्त्रशस्त्र सहित शत्रुओं की सेना का विजय कर सकें, हे सब विद्याओं के जानने वाले विद्वानों ! आप हमें बलवान् पुत्रों के उत्पन्न करने और धनादि ऐश्वर्य्यसम्पन्न होने का उपदेश करें जिससे हम लोग समर्थ होकर अपने कार्यों को विधिवत् कर सकें ।

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठारेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।
सा नो अमा सो अरणे निपातु स्वावेशा भवतु देवगोपा॥२२॥

ऋग्० १० । ६३ ।

पदा०—(या) जो पृथिवी, जाने वालों के (प्रपथे) अच्छे मार्ग के लिये (स्वस्तिः, इत्, हि) कल्याणकारी ही होती है, और जो (श्रेष्ठा) अति सुन्दर (रेक्णस्वती) धन वाली है तथा (वामम्) सेवन के योग्य यज्ञ को (अभि, एति) प्राप्त होती है (सा) वही पृथिवी (नः) हमारे (अमा) गृह की (नि, पातु) रक्षा करे (सा, उ) वह पृथिवी (अरणे) वनादि देशों में हमारी रक्षिका हो, और (देवगोपा) विद्वान् लोग जिसके रक्षक हैं ऐसी वह पृथिवी हमारे लिये (स्वावेशा) अच्छे स्थान वाली (भवतु) हो ।

भावा०—हे परमात्मन् ! आप कृपा करके हमारे लिये विस्तृत सुन्दर मार्गोंवाली, अन्नादि विविध प्रकार के धन उत्पन्न करनेवाली, यज्ञ के सेवन करने योग्य, वनादि में जिसका सुप्रबन्ध हो, जिसमें विद्वानों द्वारा उत्तम गृह बनाये जा सकें और जो सब प्रकार से निर्विघ्न हो, ऐसी भूमि हमें प्राप्त करायें, यह हमारी प्रार्थना है ।

इषे त्वोर्जेत्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्ते न ईशत माघश॑ँसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि ॥ २३ ॥ यजु० १ । १

पदा०—हे ईश्वर ! (इषे) अन्नादि इष्ट पदार्थों के लिये (त्वा) तुमको (आश्रयाम इतिशेषः) आश्रयण करते हैं, और (ऊर्जे) बलादि के लिये (त्वा) तुमको आश्रयण करते हैं । हे वत्स जीवो ! तुम (वायवः) वायु सदृश पराक्रम करनेवाले (स्थ) हो (सविता, देवः) सब जगत् का उत्पादक देव (श्रेष्ठतमाय, कर्मणे) यज्ञरूप श्रेष्ठ कर्मों के लिये (वः) तुम सबों को (प्रार्पयतु) सम्बद्ध करे, उस यज्ञ द्वारा (इन्द्राय, भागं) अपने ऐश्वर्य्य के भाग को (आप्यायध्वम्)

बढ़ाओ, यज्ञ सम्पादन के लिये (अघ्न्याः) न मारने योग्य (प्रजावतीः) बछड़ों सहित (अनमीवाः) व्याधिविशेषों से रहित (अयक्ष्माः) यक्ष्म, तपेदिक आदि बड़े रोगों से शून्य "गौयें सम्पादन करो" (वः) तुम लोगों के बीच जो (स्तेनः) चौर्यादि दुष्टगुण सम्पन्न हो, वह उन गौवों का (मा, ईशत) मालिक न बने, और (अघ शंसः) अन्य पापी भी (मा) उनका रक्षक न हो, ऐसा यत्न करो जिससे (बह्वीः, ध्रुवाः) बहुत सी चिरकाल पर्यन्त रहने वाली गौयें (अस्मिन् गोपतौ) निर्दुष्ट गोरक्षक के पास (स्यात्) बनी रहें, और परमात्मा से प्रार्थना करो कि (यजमानस्य) यज्ञ करने वाले के पशुओं की हे ईश्वर ! तू (पाहि) रक्षा कर ।

भावा०—हे परमपिता परमात्मन् ! आप हमारा पालन पोषण करते हुए हमें शारीरिक, आत्मिक तथा सामाजिक बल प्रदान करें जिससे हम निरालस होकर यज्ञादि कर्मों में प्रवृत रहें, अपने ऐश्वर्य्य को बढ़ावें, और सदा पूजनीय तथा नीरोग गौयें आपकी कृपा से हमें प्राप्त हों जिनके दुग्ध तथा घृतादि द्वारा हम लोग यज्ञ का सम्पादन करें । हे भगवन् ! ऐसी कृपा करो कि हमारा यज्ञ का साधक पश्वादि धन नाश न हो, और दुष्ट पापी तथा हिंसक लोग कदापि इस धन के स्वामी न हों जिससे यह धन चिरकाल पर्य्यन्त स्थिर रहे ।

आनोभद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽपरीतास उद्भिदः देवानो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवे दिवे ॥

पदा०—हे ईश्वर ! (नः) हमको (भद्राः) स्तुति के योग्य (क्रतवः) संकल्प (आ, यान्तु) प्राप्त हों (विश्वतः) सब ओर से (अदब्धासः) किसी से अविघ्नित (अपरीतासः) सर्वोत्तम (उद्भिदः) दुःखनाशक (देवाः) विद्वान् लोग (यथा) जैसे (नः) हमारी (सदम्) सभा में वा सर्वदा (वृधे, एव) वृद्धि के लिये ही (असन्) हों, वैसे ही (दिवे दिवे) प्रतिदिन (अप्रायुवो, रक्षितारः) प्रमादशून्य रक्षा करने वाले बनाओ ।

भावा०—हे जगदीश्वर ! आप ऐसी कृपा करें कि हमारे संकल्प सदा भद्र हों अर्थात् हम लोग किसी का अनिष्ट चिन्तन न करते हुए सदैव परोपकार में प्रवृत रहें । हम सर्वकाल विद्वानों का सत्संग करें, वे विद्वान् हमारे शुभचिन्तक हों, और प्रमाद रहित होकर हमें वैदिक पथ पर चलावें जिससे हमारा मनुष्य जन्म सफल हो, यह हमारी आप से प्राथंना है ।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभिनो निवर्त्तताम् । देवानां ँसख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुःप्रतिरन्तु जीवसे

पदा०—हे भगवन् ! (ऋजूयतां) सरलतया आचरण करने वाले (देवानाम्) विद्वानों की (भद्रा) कल्याण करने वाली (सुमतिः) अच्छी बुद्धि (नः) हमको (अभि, निवर्तताम्) प्राप्त हो, और (देवानां, रातिः) विद्वानों का विद्यादि पदार्थों का दान "प्राप्त हो" (देवानां) विद्वानों के (सख्यम्) मित्र भाव को (वयं) हम लोग (उपसेदिम) प्राप्त हों, जिससे वे (देवाः) विद्वान् लोग (नः) हमारी (आयुः) अवस्था को (जीवसे) दीर्घकालपर्य्यंत जीने के लिये (प्र, तिरन्तु) बढ़ावें ।

भावा०—इस मंत्र में विद्वानों के सत्संग द्वारा आयुवृद्धि की प्रार्थना की गई है कि हे परमपिता परमात्मा ! आप ऐसी कृपा करें कि सदाचारी विद्वानों की कल्याणकारक शुभबुद्धि हमें प्राप्त हो अर्थात् हम लोग कर्मकाण्डी, अनुष्ठानी तथा परमात्मपरायण विद्वानों के अनुगामी हों, और उनसे सदा मैत्री भाव से वर्तें जिससे वे प्रसन्न हो दीर्घजीवी होने का उपदेश करें या यों कहो कि वे हमें ब्रह्मचर्य्य पालन करने की विधि बतलावें जिससे हम पूर्ण आयु वाले हों ।

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियं जिन्वमवसे हूमहेवयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधेरक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥२६॥

पदा०—(वयं) हम लोग (ईशानम्) ऐश्वर्य्यवाले (जगतस्तस्थुषस्पतिं) चर और अचर जगत् के पति (धियं, जिन्वम्) बुद्धि से प्रसन्न करने वाले परमात्मा की (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (हूमहे) स्तुति करते हैं, (यथा) जैसे कि वह (पूषा) पुष्टिकर्ता (वेदसाम्) धनों की (वृधे) वृद्धि के लिये (असत्) हो, (रक्षिता) सामान्यतया रक्षक, और (पायुः) विशेषतया रक्षक (अदब्धः) कार्यों का साधक परमात्मा (स्वस्तये) कल्याण के लिये हो "वैसे ही हम स्तुति करते हैं" ।

भावा०—हम लोग ऐश्वर्य्य सम्पन्न, चराचर जगत् के स्वामी तथा मेधाबुद्धि द्वारा प्राप्त होने योग्य परमात्मा की स्तुति करते हैं, ताकि वह पुष्टिकारक पदार्थों से हमारी रक्षा करें, और सब कालों में रक्षक परमात्मा विशेषतया हमारे कार्यों को सिद्ध करते हुए सदा कल्याणकारी हों ।

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिःस्वस्तिनोबृहस्पतिर्दधातु ॥

पदा०—(वृद्धश्रवाः) बहुत कीर्ति वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्ययुक्त ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को (दधातु) स्थापन करे, और

(पूषा) पुष्टि करने वाला (विश्ववेदाः) सर्वज्ञाता ईश्वर (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को धारण करे, (तार्क्ष्यः) तीक्ष्ण तेजस्वी (अरिष्टनेमिः) दुःखहर्ता ईश्वर (नः) हमारा (स्वस्ति) कल्याण करे, (बृहस्पतिः) बड़े २ पदार्थों का पति (नः) हमारे लिये (स्वस्ति) कल्याण को धारण करे ॥

भावा०—अतुलकीर्तिवाला, परमैश्वर्य्यसम्पन्न, सर्व चराचर जगत् को पुष्ट करने वाला, सर्वज्ञाता, तेजस्वी, सब दुःखों को दूर करके सुख देने वाला और सब पदार्थों का स्वामी परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो ।

भद्रं कर्णेभिःश्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाᳪसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥२८॥

यजु० २५।१४।—१५।१८।१९।२८।

पदा०—हे (यजत्राः) संग करने योग्य (देवाः) विद्वान् लोगो ! हम (कर्णेभिः) कानों से (भद्रम्) अनुकूल ही (श्रृणुयाम) सुनें (अक्षभिः) नेत्रों से (भद्रम्) अच्छी वस्तुओं को (पश्येम) देखें, (स्थिरैरङ्गैः) दृढ़ अंगों से (तुष्टुवांसः) आपकी स्तुति करने वाले हम लोग (तनूभिः) शरीरों से या भार्यादि के साथ (देवहितम्) विद्वानों के लिये कल्याणकारी (यद्, आयुः) जो आयु है उस को (व्यशेमहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ।

भावा०—हे सर्वरक्षक परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम लोग विद्वानों का संग करते हुए प्रतिदिन भद्र ही सुनें, और भद्र ही देखें, अर्थात् कोई अनिष्ट श्रवण तथा दर्शन हमें न हो, हमलोग ब्रह्मचर्य्य का पालन करते हुए दृढ़ अंगों वाले हों, और पूर्ण आयु प्राप्त कर अपने अभीष्ट फलों को उपलब्ध करें ॥

२ ३ १ १ २१ २ ३ २ ३ १ २
अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।
१ २ २ ३ १ २
निहोता सत्सि बर्हिषि ॥ २९ ॥

पदा०—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप परमात्मन् ! (वीतये) कान्ति=तेजोविशेष के लिये (गृणानः) प्रशंसित हुए आप (हव्यदातये) देवताओं के लिये हव्य देने को (आयाहि) प्राप्त हूजिये (होता) सब पदार्थों के ग्रहण करने वाले आप (बर्हिषि) यज्ञादि शुभ कार्यों में स्मरणादि द्वारा हमारे हृदयों में (नि, सत्सि) स्थित हूजिये ।

भावा०—हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप दिव्यज्योतिर्मय होने से सबके उपासनीय तथा देवताओं के पालन पोषण करने योग्य हो, आप ही

सब पदार्थों के स्वामी और आप ही यज्ञादि शुभ कार्यों में पूजन करने योग्य हो, कृपा करके आप हमारे शुभ कार्यों में सहायक हों ताकि हम सम्पूर्ण वैदिक कर्मों को निर्विघ्नता पूर्वक करते हुए आपको प्राप्त हों ।

१ २ ३ २ ३ २ ३ १ २ ३ २ ३२ ३ १ २ ३ १ २
त्वमग्ने यज्ञानाँ होता विश्वेषाँ हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥

सा० छन्द० आ० प्रपा० १ म० १ । २

पदा०—हे (अग्ने) पूजनीयेश्वर ! (त्वं) तू (विश्वेषां यज्ञानाम्) छोटे बड़े सब यज्ञों का (होता) उपदेष्टा है, (देवेभिः) विद्वान् पुरुषों से (मानुषे, जने) विचार शील पुरुषों में भक्त्युत्पादन द्वारा तुम (हितः) स्थित किये जाते हो ।

भावा०—सबके पूजनीय परमात्मन् ! आप सब यज्ञों के उपदेष्टा होने से विद्वान् पुरुषों द्वारा सेवनीय तथा सत्काराई हो, आपके भक्तजन वैदिक वाणियों द्वारा आपका कीर्तन करते हुए संसारी जनों में आपकी महिमा प्रकट करते हैं ।

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥ ३१ ॥

अथर्व० का० १ वर्ग० १ अनु० १ प्रपा० १ मं० १

पदा०—(त्रिषप्ताः) तीन रजस्, तमस् और सत्त्वगुण तथा सात-ग्रह; अथवा तीन-सात अर्थात् ५ महाभूत, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ प्राण, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण (ये) जो (विश्वा, रूपाणि) सब चराचरात्मक वस्तुओं को (बिभ्रतः) अभिमत फल देकर पोषण करते हुए (परि, यन्ति) यथोचित लौटपौट होते रहते हैं (तेषाम्) उनके सम्बन्धी (मे, तन्वः) मेरे शरीर में (बला) बलों को (अद्या) आज (वाचस्पतिः) वेदात्मकवाणी का पति परमेश्वर (दधातु) करे ।

भावा०—हे वेदवाणी के पति परमेश्वर ! ये ऊपर कथन किये हुए इक्कीस सब चराचर संसार का पोषण करते हुए अपने व्यापार में सदा प्रवृत्त रहकर शारीरक यात्रा में सहायक होते हैं, इसलिये आपसे प्रार्थना है कि कृपा करके आप हमारे शरीरों में बल प्रदान करें ताकि हम अपने कार्यों को विधिवत् करते हुए अंततः आपको प्राप्त हों ।

इति स्वस्ति वाचनम् ।

अथ शान्ति प्रकरणम् ।

शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शंयोः शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ।१।

पदा०—(इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि (अवेभिः) रक्षणादि द्वारा (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवताम् हों (रातहव्या) ग्रहणयोग्य वस्तु जिन्होंने दी हैं ऐसे (इन्द्रावरुणा) बिजली तथा जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हों (इन्द्रासोमा) विद्युत् और ओषधिगण (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये और (शंयोः) शान्तिहेतुक तथा विषयहेतुक सुख के लिये (शम्) प्रसन्नतादायक हों (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और वायु (नः) हमारे लिये (वाजसातौ) युद्ध में वा अन्नलाभ विषय में (शम्) कल्याणकारक हों ।

भावा०—इस मंत्र में शान्ति की प्रार्थना की गई है कि हे परमपिता परमात्मन् ! आपके दिये हुए पदार्थ हमें शान्तिदायक और सुखवर्द्धक हों अर्थात् विद्युत्, अग्नि, जल, ओषधियों का समूह और वायु जिनके आश्रित हमारा जीवन निर्भर है ये सब हमें शान्ति और सुख के देने वाले हों ।

शन्नो भगः शमुनः शंसो अस्तु शन्नः पुरन्धि शमु सन्तु रायः ।
शन्नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शन्नो अर्य्यमा पुरुजातो अस्तु ।२।

पदा०—(नः) हमारे लिये (भगः) ऐश्वर्य्य (शम्) सुखदायक हो, और (नः) हमारे लिये (शंसः) प्रशंसा (शम् , उ) शान्ति के लिये ही (अस्तु) हो, हमारे लिये (पुरन्धि) बहुत बुद्धि (शम्) सुखकारक हो, (रायः) धन (शम् , उ) शान्ति के लिये ही (सन्तु) हों, (सुयमस्य) अच्छे नियम से युक्त (सत्यस्य) सत्य का (शंसः) कथन (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो, (नः) हमारे लिये (पुरुजातः) बहुत पुरुषों में प्रसिद्ध (अर्य्यमा) न्यायाधीश (शम्) सुख देने वाला (अस्तु) हो ।

भावा०—हे भगवन् ! आपका दिया हुआ ऐश्वर्य्य हमारे लिये सुखदायक हो, आपकी कृपा से हमें प्राप्त हुई प्रतिष्ठा तथा सब पदार्थों को यथावत् जानने का ज्ञान, अनेक प्रकार का धन और सत्यभाषण हमारे लिये शान्तिदायक

हो । हे न्यायकारी जगदीश्वर ! सब प्रजा पर शासन करने वाला न्यायाधीश आपकी कृपा से हमारे लिये सुखदायक हो ।

शन्नोधाता शमुधर्त्ता नो अस्तु शन्न उरूची भवतु स्वधाभिः । शं रोदसी बृहती शंनो अद्रिः शंनो देवानां सुहवानि सन्तु ॥

पदा०--(नः) हमको (धाता) पोषक सब वस्तु (शम्) शान्तिकारक हों (धर्ता) धारक सब वस्तु (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (नः) हमारे लिये (अस्तु) हों (नः) हमारे लिये ही (उरूची) पृथिवी (स्वधाभिः) अन्नादि पदार्थों से (शम्) कल्याण कारक (भवतु) हो (बृहती) बड़ी (रोदसी) अन्तरिक्ष सहित पृथिवी वा प्रकाशसहित अन्तरिक्ष (शम्) शान्ति देने वाला हो (अद्रिः) मेघ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हों, और (नः) हमारे लिये (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) शोभन आह्वान (शम्) सुखकारक (सन्तु) हों ।

भावा०--हे परमात्मन् ! हमारे पालक, पोषक तथा धारक पदार्थ हमें शान्तिदायक हों, अन्नादि पदार्थों को उत्पन्न करनेवाली यह पृथिवी, अन्तरिक्ष और प्रकाशयुक्त द्युलोक हमारे लिये सुखदायक हों, सब ओषधियों को पुष्ट करनेवाली वृष्टि हमारेलिये शान्ति देने वाली हो, और हमें सदुपदेश कर वैदिकमर्यादा पर स्थित रखनेवाले विद्वानों का हमारे यहां सदा आगमन होता रहे जिस से हम सुख ही सुख अनुभव करें ॥

शन्नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शन्नो मित्रावरुणावश्विना शम् शन्नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शन्न इषिरो अभिवातु वातः ॥

पदा०--(ज्योतिरनीकः) प्रकाश ही है अनीक मुख वा सेना की नाईं जिसका ऐसा (अग्निः) अग्नि (नः) हमको (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो (मित्रावरुणौ) प्राण तथा उदान वायु (नः) हम को (शम्) सुखकारक हों (अश्विना) उपदेशक और अध्यापक (शम्) सुख पहुंचाने वाले हों (सुकृतानि) धर्माचरण (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले (सन्तु) हों (नः) हमारे लिये (इषिरः) गमनशील (वातः) वायु (शम्) सुख देता हुआ (अभि, वातु) बहे ।

भावा०--हे सुखस्वरूप तथा हमको सुख देने वाले जगदीश्वर ! यह सेना की नाईं विस्तृत ज्योति वाली अग्नि यज्ञों द्वारा हमें सुखदायक हो, प्राण तथा उदानादि वायुओं का हम पर कभी कोप न हो अर्थात् वे हमारे सदा

अनुकूल हों, हमारे उपदेशक तथा अध्यापक अपने सदुपदेश द्वारा हमें सुख पहुंचावें, हम सदा धर्मात्माओं के धर्माचरण ग्रहण करते हुए धार्मिक बनें, और बहता हुआ वायु हमारे लिये शान्तिदायक हो ।

शन्नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शंन ओषधीर्वनिनो भवन्तु शंनो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ।५॥

पदा०—(द्यावापृथिवी) विद्युत् और भूमि [पूर्वहूतौ] पूर्व पुरुषों की प्रशंसा जिसमें हो ऐसी क्रिया में [नः] हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक हों (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष लोक (दृशये) ज्ञानसम्पत्ति के लिये (नः) हमारे लिये (शम्) शान्तिदायक (अस्तु) हो (ओषधीः) ओषधियां और (वनिनः) वृक्ष (शम्) सुखकारक (नः) हमारे लिये (भवन्तु) हों (रजसस्पतिः) रजोलोक का पति (जिष्णुः) जयशील महापुरुष (नः) हमारे लिये (शम्) सुख देनेवाला (अस्तु) हो ।

भावा०—द्युलोक, पृथिवीलोक तथा अन्तरिक्षलोक ज्ञानसम्पत्ति के लिये हमें सुखदायक हों, अर्थात् जैसे हमारे पूर्व पुरुषा इन लोकों का ज्ञान सम्पादन करते हुए ऐश्वर्य्य सम्पन्न हो सुख को प्राप्त हुए, इसी प्रकार हम भी इनका ज्ञान उपलब्ध करते हुए सुखी हों, हम प्रत्येक ओषधि तथा वृक्षों के गुण-ज्ञाता हों ताकि वह हमारे लिये शान्ति दें, और हमारे रज वीर्य्य को पुष्ट करते हुए हमें सुखकारक हों ।

शन्न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शन्नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शंनस्त्वष्टाग्नाभिरिह शृणोतु ॥६॥

पदा०—(देवः) दिव्यगुणयुक्त (इन्द्रः) सूर्य्य (वसुभिः) धनादि पदार्थों के साथ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो (आदित्येभिः) संवत्सरीय मासों के साथ (सुशंसः) शोभन प्रशंसा वाला (वरुणः) जलस-मुदाय (शम्) सुखकारक हो (जलाषः) शान्तिस्वरूप (रुद्रः) परमात्मा (रुद्रेभिः) दुष्टों को दण्ड देने वाले अपने गुणों के साथ (नः) हमारे लिये (शम्) सुख देने वाला हो (त्वष्टा) विवेचक विद्वान् (ग्नाभिः) वाणियों से "ग्नेति वाङ्नाम निघण्टौ० १ । ११" (इह) इस संसार में (शम्) सुखमय उपदेशों को (नः) हमारे लिये (शृणोतु) सुनावें, "अन्तर्भावितण्यर्थः" ।

भावा०—दिव्यगुणयुक्त सबका प्रकाशक अन्नादि धनों का उत्पन्न करने वाला सूर्य्य, और अन्नादि पदार्थ हमारे लिये सुखदायक हों, जल समुदाय

हमारेलिये सुखकारी हो, संवत्सर, मास, दिन शान्तिकारक हों, दुष्टों को दण्ड देने और श्रेष्ठों का पालन करने वाला परमात्मा सब ओर से हमारी रक्षा करे, और प्रत्येक पदार्थ की विवेचना करने वाले विद्वान् अपनी मनोहर वाणियों से हमको सदुपदेश श्रवण कराते हुए हमारी आत्मा को शान्ति प्रदान करें ।

शंनः सोमो भवतु ब्रह्म शंनः शंनो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शंनः स्वरूणां मितयो भवन्तु शंनः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥

पदा०—(नः) हमारेलिये (सोमः) चन्द्रमा (शम्) सुखकारक (भवतु) हो (नः) हमारे लिये (ब्रह्म) अन्नादि रूप तत्त्व (शम्) शान्ति दायक हो (ग्रावाणः) शुभ कार्यों के साधनभूत प्रस्तर=पत्थर (नः) हमको (शम्) सुख देने वाले हों (यज्ञाः (सब प्रकार के यज्ञ (शम्, उ) शान्ति ही के लिये (सन्तु) हों (स्वरूणां) यज्ञस्तम्भों के(मितयः) परिमाण (नः) हमको (शम्) सुखदायक (भवन्तु) हों (नः) हमको (प्रस्वः) ओषधियां (शम्) सुख देने वाली हों (वेदिः) यज्ञ की वेदि=कुण्डादिक (शम्, उ) शान्ति ही के लिये (अस्तु) हों ।

भावा० सौम्यगुण सम्पन्न तथा अन्नादि पदार्थों के उत्पन्न करने और उनमें रसों का संचार करने वाला चन्द्रमा हमारे लिये सुखकारक हो। हेपरमात्मन् ! हमारे कार्यों के साधक पत्थर आदि काठिन्यप्रधान पदार्थ हमें सुखदायक हों और सर्वाङ्गों सहित यज्ञ हमारेलिये शान्तिदायक हो ।

शंनः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शंनश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शंनः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शंनः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ८

पदा०—(उरुचक्षाः) बहुत तेज हैं जिसके ऐसा (सूर्यः) सूर्य्य (नः) हमारेलिये (शम्) सुखपूर्वक (उद्, एतु) उदय को प्राप्त हो (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) पूर्वादि बड़ी दिशायें वा ऐशानी आदि प्रदिशायें (नः) हमारेलिये (शम्) सुख करने वाली (भवन्तु) हों (पर्वताः) पर्वत (ध्रुवयः) स्थिर और (शम्) सुखदायक (नः) हमारे लिये (भवन्तु) हों, और (नः) हमारे लिये (सिन्धवः) नदियां वा समुद्र (शम्) शान्तिदायक हों (आपः) जल मात्र वा प्राण (शम्, उ) शान्ति के लिये ही [सन्तु] हों ।

भावा०— हे हमारे रक्षक परमात्मन् ! इस तेजोपुंज सूर्य्य का उदय होना हमारे लिये शान्तिदायक हो, दिशा, उपदिशा, स्थिर पर्वत, समुद्र तथा नदियां अर्थात् जलपात्र हमारे लिये सुखदायक तथा शान्ति देने वाले हों ।

शंनो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शंनो भवन्तु मरुतः स्वर्काः । शंनो विष्णुः शमु पूषानो अस्तु शंनो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ९

पदा०—(व्रतेभिः) सत्कर्मों के साथ (अदितिः) विदुषी मातायें (नः) हमारेलिये (शम्) शान्तिदायक (भवन्तु) हों (स्वर्काः) शोभन विचार वाले (मरुतः) मितभाषी विद्वान् लोग (नः) हमारे लिये (शम्) शान्ति देने वाले (भवन्तु) हों (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (नः) हमको (शम्) शान्त्याधायक हो (पूषा) पुष्टिकारक ब्रह्मचर्यादि व्यवहार (नः) हमको (शम्, उ) शान्ति के लिये ही (अस्तु) हो (भवित्रम्) अन्तरिक्ष वा जल अथवा भवितव्य (नः) हमको (शम्) सुखकारक हो (वायुः) पवन (शम्,उ) शान्ति ही के लिये (अस्तु) हो ।

भावा०—हे सारे संसार को शान्ति देने वाले भगवन् ! सत्कर्मों वाली हमारी विदुषी मातायें तथा विचारशील विद्वान् पुरुष हमारे लिये सुख उत्पन्न करने वाले हों, हमारे आत्मा तथा शरीर को पुष्ट करने वाला ब्रह्मचर्य्य हमको शान्तिदायक हो और अन्तरिक्षस्थ जल तथा पवन सदा ही हमारे स्वास्थ्य के रक्षक हों ताकि हम अपना अभीष्टफल प्राप्त कर सकें ।

शंनो देवः सविता त्रायमाणः शंनो भवन्तूषसो विभातीः । शंनः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शंनः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः १०

पदा०—(सविता) सर्वोत्पादक (देवः) परमेश्वर (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हो (उषसः) प्रभात वेलायें (विभातीः) विशेष दीप्ति वाली (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवन्तु) हों (पर्जन्यः) मेघ (नः) हमको और (प्रजाभ्यः) संसार के लिये (शम्, भवतु) कल्याणकारी हो (क्षेत्रस्य) जगत्रूप क्षेत्रका (पतिः) स्वामी (शम्भुः) सब को सुख देने वाला (नः) हमारेलिये (शम्) शान्तिकारी (अस्तु) हो ।

भावा०—सबको उत्पन्न करने वाला, सबका स्वामी तथा सबको सुख देने वाला प्रभु ! हमें सुख देता हुआ हमारे लिये शान्तिकारक हो, देदीप्यमान प्रभातवेलायें हमारे लिये सुखकारक हों और मेघमालायें सम्पूर्ण संसार का कल्याण करती हुई हमारे लिये शान्तिदायक हों ।

शंनो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।

शमभिषाचः शमु रातिषाचः शंनो दिव्याः पार्थिवाः शन्नो अप्याः ॥११॥

पदा०—(देवाः) दिव्यगुणयुक्त (विश्वदेवाः) समस्त विद्वान् (नः) हमारे लिये (शम् , भवन्तु) सुख देने वाले हों (सरस्वती) विद्या, सुशिक्षा-युक्त वाणी (धीभिः) उत्तम बुद्धियों के (सह) साथ (शम् , अस्तु) सुखकारिणी हो (अभिषाचः) यज्ञके सेवक वा आत्मदर्शी (शम्) शान्तिदायक हों (रातिषाचः) विद्याधनादि के दान का सेवन करने वाले (शम् , उ) शान्ति ही के लिये हों (दिव्याः) सुन्दर (पार्थिवाः) पृथिवी के पदार्थ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखद हों (अप्याः) जल में पैदा होने वाले (नः) हमारे लिये (शम्) सुखद हों ।

भावा०—हे सर्वनियन्ता जगदीश्वर ! वेदविद्या से सुभूषित विद्वान् पुरुष हमारे लिये उत्तम उपदेशों द्वारा सुखप्रद हों, सदाचार सम्पन्न तथा बुद्धि सम्पत्ति वाले पुरुषों को प्राप्त हुई वेदवाणी हमें शान्तिदायक हो, आत्मदर्शी याज्ञिक महात्मा हममें शान्ति का संचार करें, दान के महत्व को जान कर अनुष्ठान करने वाले पुरुष शान्तिदायक हों, और पृथिवीस्थ तथा जलीय पदार्थ हमारे लिये सुख देने वाले हों ।

शंनः सत्यस्य पतयो भवन्तु शंनो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शनं ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शंनो भवन्तु पितरो हवेषु १२

पदा०—(सत्यस्य, पतयः) सत्यभाषणादि व्यवहार के पालक (नः) हमारे लिये (शम् , भवन्तु) सुखकारी हों (अर्वन्तः) उत्तम घोड़े (नः) हमको (शम्) सुखद हों (गावः) गौयें (शम् , उ) शान्ति ही के लिये (सन्तु) हों (ऋभवः) श्रेष्ठबुद्धिवाले (सुकृतः) धर्मात्मा (सुहस्ताः) अच्छे कामों में हाथ देने वाले (नः) हमारे लिये (शम्) सुखद हों (हवेषु) हवनादिसत्कर्मों में (पितरः) माता पिता आदि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक [भवन्तु] हों ।

भावा०—हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से सत्यवक्ता पुरुष सत्य का उपदेश करते हुए हमारे लिये शान्तिदायक हों, घोड़े तथा दुग्धस्रावित गौयें हमें सुखकारी हों, वेदविहित कर्म करने वाले धार्मिक पुरुष और हमारे माता, पिता तथा आचार्य्यादि वृद्ध पुरुष हमारे यज्ञादि सत्कर्मों में सम्मिलित होकर हमें सुखप्रद उपदेश करें, जिस से हमारे हृदय में शान्ति विराजमान हो अर्थात् उनका आगमन हमारे लिये शान्तिदायक हो ।

शंनो अजएकपाद्देवो अस्तु शंनोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शंनो अपांनपात्पेरुरस्तु शंनः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१३॥

ऋग्० मं० ७ सू० ३५ मं० १–१३

पदा०—(एकपात्) जगत्रूप एक पादवाला अर्थात् जिस के एक अंश में सब जगत् है वह अनन्तस्वरूप (अजः) अजन्मा (देवः) ईश्वर (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिये (अस्तु) हो (बुध्न्यः, अहिः) अन्तरिक्ष में पैदा होने वाला मेघ (नः) हमारे (शम्) कल्याण के लिये हो (समुद्रः) सागर (शम्) सुखकारी हो (अपाम्) जलों की (नपात्) नौका (नः) हमको (शम्, पेरुः) सुखपूर्वक पार लगाने वाली (अस्तु) हो (देवगोपाः) देव रक्षक हैं जिस में ऐसा (पृश्निः) अन्तरिक्षस्थल (नः) हमको (शम्, भवतु) सुख कारक हो ।

भावा०—यह सम्पूर्ण जगत् जिस के एक पाद=भाग में स्थित है और तीन पाद अमृत हैं, वह अनन्तस्वरूप तथा अजन्मा ईश्वर हमारा कल्याण करे, अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाला मेघ, महान् समुद्र, जलों से पार करने वाली नौका, और यह अन्तरिक्षस्थल, हे भगवन् ! आपकी कृपा से सुखदायक तथा शान्तिप्रद हों ।

इन्द्रो विश्वस्य राजति शंनो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१४॥

पदा०—हे जगदीश्वर ! जो आप (इन्द्रः) बिजली के तुल्य (विश्वस्य) संसार के बीच (राजति) प्रकाशमान हैं, उन आपकी कृपा से (नः) हमारे (द्विपदः) पुत्रादि के लिये (शम्) सुख (अस्तु) होवे, और हमारे (चतुष्पदे) गौ आदि के लिये (शम्) सुख होवे ।

भावा०—हे विद्युत् समान सारे ब्रह्माण्ड में प्रकाशमान परमात्मन् ! आपकी कृपा से पुत्र पौत्रादि हमारा परिवार सुखपूर्वक हो, अर्थात् वह सदा शान्ति द्वारा ही अपना जीवन व्यतीत करे । और हमारा गौ आदि धन सदा सुखपूर्वक रहे, ऐसी कृपा करो ।

शंनो वातः पवतां शंनस्तपतु सूर्य्यः । शं नः
कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभिवर्षतु ॥ १५ ॥

पदा०—हे परमेश्वर ! (वातः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (पवताम्) चले (सूर्यः) सूर्य (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (तपतु) तपे (कनिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता हुआ (देवः)

उत्तमगुणयुक्त विद्युत्‌रूप अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) कल्याणकारी हो, और (पर्जन्यः) मेघ हमारे लिये (अभि,वर्षतु) भले प्रकार वर्षा करे ।

भावा०—हे दीनों पर दया करने वाले जगदीश्वर ! आप ऐसी कृपा करें कि पवन हमारे लिये शान्तिदायक चले, तपता हुआ सूर्य्य सुख दे, अग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हो और भले प्रकार वर्षा करते हुए मेघ हमें शान्तिदायक हों ।

अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रतिधीयताम् । शंन इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शंन इन्द्रावरुणा रातहव्या । शंन इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा सोमा सुविताय शंयोः १६

पदा०—हे परमेश्वर ! (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (शंयोः) सुख को (सुविताय) प्रेरणा के लिये (नः) हमारे अर्थ (अहानि) दिन (शम्) सुखकारी (भवन्तु] हों (रात्रीः) रातें (शम्) कल्याण के (प्रति) प्रति (धीयताम्) हमको धारण करें । (इन्द्राग्नी) विजली और प्रत्यक्ष अग्नि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी (भवताम्) होवें । (रातहव्या) ग्रहण करने योग्य सुख जिन से प्राप्त हुआ वे (इन्द्रावरुणा) विद्युत् और जल (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों । (वाजसातौ) अन्नों के सेवन के हेतु संग्राम में (इन्द्रापूषणा) विद्युत् और पृथिवी (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारी हों । (इन्द्रासोमा) बिजली और औषधियां (शम्) सुखकारिणी हों ।

भावा०—हे हमारी रक्षा करने वाले पिता परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि यह दिन और रात्रि हमारे लिये सुखदायक हों; अर्थात् दिन और रातों में भी हम आप ही की आज्ञा का पालन करते हुए बिचरें; दुःख के देने वाला कोई पाप कर्म हमसे न हो । विद्युत्, भौतिकाग्नि; और पदार्थविद्या द्वारा सिद्ध किया हुआ विद्युत्, तथा जल; अन्नों को सेवन करने योग्य बनाने वाला विद्युत्, तथा पृथिवी; और हमारे जीवन का आधार बिजली तथा औषधियां हमारे लिये सुख तथा शान्तिदायक हों ।

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥ १७ ॥

पदा०—हे जगदीश्वर ! (अभिष्टये) इष्टसुख की सिद्धि के लिये, (पीतये) पीने के अर्थ, (देवीः) दिव्य उत्तम (आपः) जल (नः) हमको (शम्)

सुखकारी (भवन्तु) होवें । और वे (नः) हमारे लिये (शंयोः) सुख की वृष्टि (अभिस्रवन्तु) सब ओर से करें ।

भावा०—हे दिव्यगुणसम्पन्न परमात्मन् ! आप हमारे लिये सुखकारी हों, और हमको इष्टसुख प्राप्त करायें । हे सर्वव्यापक जगदीश्वर ! आप अपनी कृपा से हमें पूर्णानन्द का भागी बनायें, और हम सब ओर से शान्ति ही देखें, हमारा चित्त कभी अशान्त न हो ।

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति-रोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि॥

पदा०—हे परमेश्वर ! (द्यौः) प्रकाशयुक्तसूर्यादि, (अन्तरिक्षम्) सूर्य्य और पृथिवी के बीच का लोक, (पृथिवी) भूमि, (आपः) जल, (ओषधयः) सोमलता आदि औषधियां, वनस्पति = वट आदि वृक्ष, (विश्वेदेवाः) सब विद्वान् लोग (ब्रह्म) वेद (सर्वम्) सब वस्तु (शान्तिः) शान्ति = सुखकारी, निरुपद्रव हों। शान्ति शब्द का प्रत्येक शब्द के साथ मन्त्र में अन्वय है। (शान्तिरेव, शान्तिः) स्वयँ शान्ति भी सुखदायिनी हो, और (सा) वह (शान्तिः) (मा) मुझको (एधि) हो प्राप्त हो ।

भावा०—हे शान्तिस्वरूप परमात्मन् ! प्रकाशमान सूर्य्य चन्द्रमादि अथवा द्युलोक, अन्तरिक्षलोक और पृथिवीलोक, जल, औषधियाँ, वनस्पति, सब विद्वान् पुरुष, ब्रह्म = प्रकृति और हमसे सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण पदार्थ हमारे लिये सुखदायक हों । वह शान्ति भी शान्तिदायक हो । और हे भगवन् ! वह शान्ति मुझे प्राप्त हो ।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतंभूयश्च शरदः शतात् ॥१९॥

यजु० अ० ३६ मं० २४

०—हे सूर्य्यवत् प्रकाशक परमेश्वर ! आप (देवहितम्) विद्वानों के हितकारी (शुक्रम्) शुद्ध (चक्षुः) नेत्रतुल्य सब के दिखाने वाले (पुरस्तात्) अनादि काल से (उद्, चरत्) अच्छी तरह सबके ज्ञाता हैं, (तत्) उन आपको हम (शतं, शरदः) सौ वर्ष तक (पश्येम) ज्ञान द्वारा देखें; और आपकी कृपा से (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (जीवेम) हम जीवें, (शतं शरदः) सौ वर्ष तक

(शृणुयाम) सच्छास्त्रों को सुनें, (शतं शरदः) सौ वर्ष पर्यन्त (प्रब्रवाम) पढ़ावें वा उपदेश करें; और (शतं शरदः) सौ वर्ष तक (अदीनाः) दीनता रहित (स्याम) हों, (च) और (शतात्, शरदः) सौ वर्ष से (भूयः) अधिक भी देखें, जीवें, सुनें और अदीन रहें" ।

भावा०—हे हमारे द्रष्टा परमेश्वर ! आप विद्वानों के हितकारी, शुद्ध स्वरूप, उत्कृष्टता से सर्वत्र परिपूर्ण, और अनादि काल से आप हमारे सब कर्मों के ज्ञाता हैं, आप ऐसी कृपा करें कि हम सौ वर्ष तक आपको ज्ञानदृष्टि से मनन करते रहें; आपकी आज्ञा का पालन करते हुए सौ वर्ष तक जीवें, सौ वर्ष तक आपका गुणकीर्तन सुनें, सौ वर्ष पर्य्यन्त वेदों के सदुपदेश सुनें और करें। हे भगवन् ! ऐसी कृपा करो कि हम सौ वर्ष तक अदीन हों, और यदि सौ वर्ष से अधिक भी जीवें तो इसी प्रकार देखें, सुनें और अदीन रहें ।

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति । दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २० ॥

पदा०—हे जगदीश्वर ! आपकी कृपा से (यत्) जो (दैवम्) दिव्य गुणों से युक्त, (दूरं गमम्) दूर दूर जाने वाला वा पदार्थों को ग्रहण करने वाला, (ज्योतिषाम्) विषयों के प्रकाशक चक्षुरादि इन्द्रियों का (ज्योतिः) प्रकाश करने वाला, (एकम्) अकेला (जाग्रतः) जागने वाले के (दूरम्) दूर २ (उत् एति] अधिकतया भागता है । (उ) और (तत्) वह (सुप्तस्य) सोते हुए को (तथा, एव) उसी प्रकार (एति) प्राप्त होता है । (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) अच्छे अच्छे विचार वाला (अस्तु) हो ।

भावा०—हे हमारे मन तथा इन्द्रियों के स्वामी परमात्मन् ! हमारा चंचल मन दूर २ जाकर पदार्थों को ग्रहण करने वाला, चक्षुरादि इन्द्रियों का प्रकाशक जो संयम करते हुए भी दूर २ भागता और असंयमी पुरुषों को भी उसी प्रकार प्राप्त होता है; वह मेरा मन आपकी कृपा से शुभसंकल्पोंवाला हो, अर्थात् उसमें कोई पापमय विकार उत्पन्न न हो !

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः । यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥

पदा०—हे जगत्पते ! जिस मन से (अपसः) सत्कर्मनिष्ठ (मनीषिणः) मन को दमन करने वाले, (धीराः) ध्यान करने वाले बुद्धिमान् लोग, (यज्ञे) अग्निहोत्रादि धार्मिक कार्यों में, और (विदथेषु) वैज्ञानिक तथा युद्धादि व्यव-

हारों में (कर्माणि) इष्टकर्मों को (कुरावन्ति) करते हैं; और (यत्) जो (अपूर्वम्) अद्भुत (प्रजानां) प्राणिमात्र के (अन्तः) भीतर [यक्षम्] मिला हुआ है । (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन [शिवसंकल्प) श्रेष्ठसंकल्पवाला [अस्तु] हो ।

भावा०—हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर ! मन को दमन करते हुए ध्यान करने वाले सत्कर्मी पुरुष जिस मनसे यज्ञादि इष्टकर्म करके प्राणी मात्र को सुख पहुंचाते, और जिससे वैज्ञानिक लोग कलाकौशल द्वारा अनेक व्यवहारों में प्रवृत्त होते हैं, वह हमारा विचित्र मन जो प्राणीमात्र के भीतर रमा हुआ है, उत्तम संकल्प वाला हो ।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्चयज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु । यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२२॥

पदा०—हे प्रभो ! (यत्) जो (प्रज्ञानम्) बुद्धिका उत्पादक, (उत] और (चेतः) स्मृति का साधन, (धृतिः) धैर्य्यस्वरुप, (च) और (प्रजासु) मनुष्यो के (अन्तः) भीतर (अमृतं) नाशरहित (ज्योतिः) प्रकाशस्वरुप है, (यस्मात्) जिसके (ऋते) बिना (किम्, चन) कोई भी (कर्म) काम (न, क्रियते) नहीं किया जाता, (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शुद्धविचार वाला (अस्तु) हो ।

भावा०—हे अन्तर्यामी परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हमारा मन जो ज्ञान को सदा स्फूर्ति देने वाला, स्मृतिरूप ज्ञान का उत्पादक, धीरता का साधक, और जो हमारे भीतर नित्य प्रकाशमान है, जिसकी प्रेरणा के बिना मनुष्य किसी काम में प्रवृत्त नहीं हो सकता, वह मेरा मन पवित्र भावों वाला हो ।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेनसर्वम् । येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २३ ॥

पदा०—हे सर्वेश्वर ! (येन, अमृतेन) नाशरहित परमात्मा से मिले हुए जिस मन से (भूतं, भुवनं, भविष्यत्, सर्वमिदं, परिगृहीतम्) भूत, वर्तमान, भविष्यत् यह सब जाना जाता है, और (येन) जिस से (सप्त होता) सात होता वाला (यज्ञः) अग्निष्टोमादि यज्ञ " अग्निष्टोम में सात होता बैठते हैं " (तायते) विस्तृत किया जाता है, (तत्) वह मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) मुक्ति आदि शुभ पदार्थों के विचार वाला (अस्तु) हो ।

भावा०—हे परमात्मन् ! आपकी कृपा से यह नाशरहित=अविनाशी मन जो तीनों कालों का ज्ञापक अर्थात् भूत, वर्त्तमान तथा भविष्यत् का जनाने वाला, और सातहोताओं वाले अग्निष्टोमादि विस्तृत यज्ञों, तथा अन्य बड़े २ शुभ कार्यों का चिन्तन करने वाला है, वह मेरा मन सदा उत्तम विचारों में ही प्रवृत्त रहे जिस से मनुष्यजन्म के फलचतुष्टय की प्राप्ति हो ।

यस्मिन्नृचः सामयजूꣳषि यस्मिन्प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः यस्मिंश्चित्तꣳसर्वमोतं प्रजानां तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु २४

पदा०—हे अखिलोत्पादक ! (यस्मिन्) जिस शुद्ध मन में (ऋचा, साम) ऋग्वेद और सामवेद तथा (यस्मिन्) जिस में (यजूꣳषि) यजुर्वेद और "अथर्ववेद भी" (रथनाभाविवाराः) रथ की नाभि—पहिये के बीच के काष्ठ में अरा जैसे (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं । और (यस्मिन्) जिसमें (प्रजानाम्) प्राणियों का (सर्वम्) समग्र (चित्तम्) ज्ञान (ओतम्) सूत में मणियों के समान सम्बद्ध है, (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पं) वेदादि सत्यशास्त्रों के प्रचाररूप संकल्प वाला (अस्तु) हो ।

भावा०—हे ज्ञानदाता परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हमारा वह पवित्र मन जिसमें ऋग्० यजु० साम तथा अथर्व० चारों वेद रथ की नाभि में अरा के समान स्थित हैं; और जिस में प्रजाओं का सम्पूर्ण ज्ञान सूत्र में पुरोये हुए माणिकाओं के समान ओत प्रोत होरहा है; वह मेरा मन शुभसंकल्प वाला, अर्थात् वैदिकमर्यादानुसार चलने वाला हो ।

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनइव । हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥२५॥

यजु० अ० ३४ मं० १—६

पदा०—(यत्) जो मन (मनुष्यान्) मनुष्यों को, (सुषारथिः अश्वानिव) अच्छा सारथि घोड़ों को जैसे, (नेनीयते) अतिशय करके "इधर उधर" ले जाता है, और जो मन, अच्छा सारथि (अभी शुभिः) रस्सियों से (वाजिन इव) वेग वाले घोड़ों को जैसे, (यमयतीतिशेषः) मनुष्यों को नियम में रखता है; और (यत्) जो (हृत्, प्रतिष्ठं) हृदय में स्थित है, (अजिरम्) जरा रहित है, (जविष्ठम्) अतिशय गमनशीलहै, (तत्) वह (मे) मेरा (मनः) मन (शिवसंकल्पम्) शुद्धसंकल्पवाला (अस्तु) हो ।

भावा०—हे भगवन् ! जैसे उत्तम सारथि वलवान् घोड़ों को निगृह करता हुआ अपने पथ में स्थिर रखता है, अर्थात् वेगवान् घोड़ों को रासों

द्वारा स्वाधीन रखता हुआ इधर उधर विचलित नहीं होने देता, इसी प्रकार मन मनुष्यों को नियम में रखता है, अर्थात् इन्द्रियरूप रासों को नियम में रखता हुआ मनुष्य को शुभमार्ग पर चलाता है; जो हृदय में स्थित, जरावस्था से रहित, और जो अतिशय गमनशील है, वह मेरा मन वैदिकभावों में स्थिर शुभसंकल्प वाला हो ।

१ २ ३ २ ३ ३ १ २ ८/३ १ २ ८ १ २ ३ १ २

स नः पवस्व शङ्गवे शंजनाय शमर्वते। श८राजन्नोषधीभ्यः

सामं० उत्तरार्चिके० प्रपा० १ मं० ३ ।

पदा०—(राजन्) हे सर्वत्र प्रकाशमान परमात्मन् ! (सः) प्रसिद्ध आप (नः) हमारे (गवे) गौआदि दूध देने वाले पशुओं के लिये (शम्) सुखकारक हों; (जनाय) मनुष्यमात्र के लिये (शम्) शान्ति देने वाले हों; (अर्वते) घोड़े आदि सवारी के काम में आने वाले पशुओं के लिये (शम्) सुखकारक हों, (ओषधीभ्यः) गेहूं आदि ओषधियों के लिये हमें (शम् , पवस्व) शान्ति दीजिये ।

भावा०—हे सर्वव्यापक सर्वेश्वर परमात्मन् ! आप हमारे दूध देनेवाले गौ आदि पशुओं तथा घोड़े आदि वाहनों के लिये सुखकारक हों, अर्थात् हमारे सुख के साधन उक्त पशुओं की वृद्धि करते हुए हमें आनन्दित करें । गेहूं आदि हमारे खाद्य पदार्थ अधिकता से उत्पन्न हों, जो शुद्ध और नीरोग रखने वाले हों । हे भगवन् ! आप मनुष्यमात्र को शान्ति प्रदान करें जिस से हम आप के दिये हुए वैदिकज्ञान का सदा अनुष्ठान करते हुए अपने जीवन को उच्च बनावें ।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे ।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥२७॥

पदा०—हे भगवन् ! (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष लोक (नः) हमारेलिये (अभयम्)निर्भयता को (करति) करे; (उभे, इमे) ये दोनों (द्यावापृथिवी) विद्युत् और पृथिवी (अभयम्) निर्भयता करे, (पश्चात्) पीछे से (अभयम्) भय न हो, (पुरस्तात्) आगे से (अभयम्) भय न हो, (उत्तरात्, अधरात्) ऊंचे और नीचे से (नः) हमको (अभयम्, अस्तु) भय न हो ।

भावा०—हे अभयप्रद परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि द्युलोक, अन्तक्षिलोक तथा पृथिवीलोक हमारेलिये भयरहित हों; और आगे पीछे तथा ऊपर, नीचे से हम निर्भय होकर आपके ज्ञान का अनुसन्धान करते हुए शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करें ।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।२८।

अथर्व० कां० १९ सू० १५ मं० ५–६

पदा०—हे जगत्पते ! हमें (मित्रात्) मित्र से (अभयम्) भय न हो, (अमित्रात्) शत्रु से (अभयम्) भय न हो, (ज्ञातात्) जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो, (परोक्षात्) न जाने हुए पदार्थ से (अभयम्) भय न हो; (नः) हमें (नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) भय न हो, (दिवा) दिन में (अभयम्) भय न हो, (सर्वाः) सब (आशाः) दिशायें (मम, मित्रं) मेरी मित्र (भवन्तु) हों ।

भावा०—हे सर्वनियन्ता जगत्पते परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि मित्र, उदासीन तथा शत्रु से हमें कभी भय न हो, ज्ञात तथा अज्ञात पदार्थ से भयरहित हों, दिन और रात्रि हमें अभयप्रद हों । और हे भगवन् ! आप की कृपा से दशों दिशायें हमें अभय देने वाली और शान्तिदायक हों ।

इति शान्तिप्रकरणम्



ओ३म्

पुरुषसूक्तम् ।

अब परमात्मा के विराट् स्वरूप का वर्णन और सृष्टिविद्या का कथन करते हैं ।

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिꣳ सर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १ ॥"

यजु० ३१।१

हे परमात्मन् ! सम्पूर्ण संसारस्थ मनुष्यों के शिर आप ही के अभ्यन्तर होने से आप सहस्र शिरों वाले कहलाते हैं। एवं आप सहस्राक्ष हैं, अर्थात् सब प्राणियों के चक्षु आपकी सत्ता से ही निमेष, उन्मेष को प्राप्त होते हैं। आप सहस्रपात् हैं, अर्थात् सहस्र प्रकार से गतिशील हैं । आप सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों को अपने स्वरूप में धारण करते हुए सूक्ष्म और स्थूल संसार को एक देश में रख कर सर्वत्र व्यापक हैं। आप सब को पूर्ण करते हैं इसलिये आप पूर्णपुरुष हैं। हे परमात्मन् ! आप अपने विराट् स्वरूप का ज्ञान हम को दीजिये। ताकि हम आपके विराट् स्वरूप को जान कर ब्रह्मपद को प्राप्त हों।

इस मन्त्र में पुरुष और पुरुष के अङ्गों का रूपक अलङ्कार बांध कर विराट् स्वरूप का वर्णन किया गया है। इस से कोई पुरुषविशेष अभिप्रेत नहीं।

पुरुष एवेदꣳसर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥२॥

यजुः ३१।२

हे परमात्मन् ! जो कुछ इस ब्रह्माण्ड में हुआ, व होगा, व है, वह सब आपके पूर्णस्वरूप से बाहर नहीं। इस संसार के सब जीव, जो भौतिक पदार्थों के आधार पर अपने प्राणों को स्थिर करते हैं, उनको अमृत दान देने

वाले आप ही हैं । हे परमात्मन् ! आप अपने अमृतरूप का ज्ञान देकर हमको भी अमृत कीजिये ।

अविद्या आदि क्लेशों से जीव वारवार इस संसार में जन्मता और मरता है । आपके अमृतपद को प्राप्त हो कर ही जीव अमर हो सकता है । हे परमात्मन् ! आप अपने अमृतपद से हमको मृत्यु के भयों से बचाइये । आप "अमृततत्व" मुक्तिपद के ईश्वर हैं, हम तुच्छ जीव अन्नादि पदार्थों से प्राण धारण करते हैं । आप हमको मुक्तिरूपफल प्रदान कर के अमृतभाव को प्राप्त कीजिये ।

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतंदिवि ॥

यजुः ३१।३

हे परमात्मन् ! जो कुछ यह चराचर ब्रह्माण्ड है । अर्थात् कोटानकोटि सूर्य्य, चन्द्र, तारागण आदि लोकलोकान्तर हैं; ये सब आपकी महिमा हैं । पर आप इस महिमा से बहुत बड़े हैं । इस द्युलोक में आपका अमृतस्वरूप सर्वत्र परिपूर्ण हो रहा है । और ये ब्रह्माण्ड उसके एक देश हैं । जिस प्रकार इस विस्तृत आकाश में एक तृण एकदेशी होता है, उसी प्रकार आपके स्वरूप के एक देश में कोटानकोटि ब्रह्माण्ड स्थिर हैं ।

तात्पर्य यह है कि प्रकृति तथा जीव यें दोनों ही परमात्मा क एकदेश में स्थिर हैं । जीवात्मा सूक्ष्मस्वरूप से चेतनसत्ता से स्थिर है, और प्रकृति सूक्ष्मरूप से जड़सत्ता से स्थिर हैं । ये दोनों परमात्मा के स्वरूप में अंशरूप है । इन अंशों को लेकर परमात्मा को अंशी भी कहा जाता है । इसी अभिप्राय से जीव को परमात्मा का अंश कथन किया है । इसी मन्त्र के आधार पर गीता में श्रीकृष्ण जी कथन करते हैं कि, "**ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।**" अर्थात् अनादि जीव ईश्वर का अंश है ।

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः ।
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभि ॥ ९ ॥

यजुः ३१।४

परमात्मा संसाररूपी तीनों पादों से ऊपर है । उसका पाद अमृत और संसार मरणधर्म्मा है, अर्थात् मरने जन्मने वाला है । सजीव तथा निर्जीव दोनों प्रकार के प्राकृत पदार्थ और तीसरा जीवात्मा ये तीनों पाद परमात्मा के एकदेश में स्थित हैं । परमात्मा उक्त मायिक भावों से रहित, सदा एकरस, नित्य

शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव है । इसलिये हे जिज्ञासु जनो ! तुम उसके जानने की इच्छा करो, और एकमात्र उसी की उपासना करो ।

इस वेद मन्त्र के आशय को कृष्ण जी ने गीता में यों वर्णन किया है **"विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्"** भगवद्गीता १०।४२ । इस सम्पूर्ण संसार को परमात्मा ने अपने एकदेश में स्तम्भन किया हुआ है। इसी का नाम सर्वात्मवाद है; अर्थात् सोलह कला सम्पूर्ण परमात्मा उक्त तीनों पादों से कहलाता है । क्यों कि पाँच भूत और पाँच प्राण ये मिल कर दश हुए, चतुष्टय अन्तःकरणचौदह । इच्छा और श्रद्धासोलह । इन सोलह कलाओं से सम्पूर्ण परमात्मा कहलाता है । कोई साकार वा मूर्त्तिमान् होकर परमात्मा सोलह कला सम्पूर्ण नहीं होता, किन्तु वह सदैव सोलह कला सम्पूर्ण रहता है । इसका वर्णन षोडश कला वाले पुरुष के निरूपण में प्रश्नोपनिषद् में भली भाँति किया गया है । और इसके वर्णन में यजुर्वेद का यह मन्त्र है—

यस्मान्नजातः परो अन्योऽअस्ति य आविवेशभुवनानिविश्वा प्रजापतिःप्रजया सꣳरराणस्त्रीणिज्योतीꣳषि सचतेसषोडशी

यजुः ८।३६

जिस परमात्मा के सदृश कोई अन्य नहीं है, वह परमात्मा सम्पूर्ण ब्रह्माण्डों में व्यापक है । उसी को सोलह कला सम्पूर्ण कहते हैं ।

कृष्णजी ने इस वेदमन्त्र के आधार पर यह कहा है कि **"एकांशेन स्थितो जगत्"** परमात्मा के एक अंश में सम्पूर्ण संसार स्थिर है ।

अब उक्त परमात्मा से वेदों की उत्पत्ति कथन करते हैं ।

"तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दाँऽसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥"

ऋग् । मं० १० । सू । ९० ।

उस परमात्मा से ऋग्, यजुः, साम, अथर्व ये चारों वेद प्रकट हुए । यहाँ यज्ञ नाम परमात्मा का है, क्योंकि परमात्मा सब के पूजा योग्य है । इसलिये उसको यज्ञ कहा गया है । जो कई एक लोग यह कहते हैं कि 'ऋग्वेद ही सब से प्रथम बना । अन्य वेद ऋग्वेद के समय में न थे ।' उनको इस मन्त्र से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि यदि ऋग्वेद के समय में साम यजुः न

थे तो ऋग्वेद में साम यजुः का नाम कैसे आया । इस युक्ति से स्पष्ट सिद्ध है कि चारों वेद एक ही काल में परमात्मा ने प्रकट किये, भिन्न काल में नहीं ।

हे वेदानुयायी पुरुषो ! जिस परमात्मा ने मनुष्यजन्म के फल चतुष्टय की सिद्धि के लिये, अर्थात् धर्म्म, अर्थ, काम, मोक्ष के लिये चारों वेदों का प्रकाश किया है, उस परमात्मा का सायं प्रातः सदैव स्मरण करना चाहिये ।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात्तस्माज्जाता अजावयः ॥

यजुः ३१।८

उक्त परमात्मा से गतिशील प्राणी उत्पन्न हुए । और उसी परमात्मा से अन्य गौ आदि पशु उत्पन्न हुए । अर्थात् जिस परमात्मा ने सर्वोत्तम वेदरूपी ज्ञान प्रदान किया है, उसी ने इस संसार को भी उत्पन्न किया है । इसलिये उस परमात्मा की आज्ञा के विरुद्ध इस संसार में आचार व्यवहार करना उचित नहीं ।

कई एक लोग इसमें यह आशंका करते हैं कि वेद में मनुष्यों की उत्पत्ति का कथन नहीं, उनको यह स्मरण रखना चाहिये कि "जज्ञिरेस्वधया दिवोनरः" । ऋग्वेद । । ।" में मनुष्यों की उत्पत्ति स्पष्ट वर्णन की गई है । इसलिये यहां उनकी उत्पति का वर्णन नहीं किया । अन्य युक्ति यह है कि चौथे मन्त्र में सामान्यरूप से प्राणीमात्र की उत्पत्ति कथन की है । यहां विशेषरूप से गौ आदि पूज्य पशुओं की उत्पत्ति इसलिये वर्णन की है कि इनके घृत दुग्धादि पदार्थ यज्ञ में विशेष रूप से उपयोगी हैं । इसलिये इनका यहां विशेषरूप से वर्णन किया ।

अब यज्ञ करने का प्रकार कथन करते हैं ।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन्पुरुषं जातमग्रतः ।
तेन देवा अयजन्त साध्याऋषयश्च ये ॥

यजुः ३१।९

उस उक्त परमात्मा को, जो परमात्मा सब से प्रथम सिद्ध, अर्थात् अनादि अनन्त है, अपने हृदयरूपी (बर्हिषि) आसन पर स्थान देते हुए, (देवाः) विद्वान् पुरुष, (अयजन्त) ज्ञानरूपी यज्ञ करते हैं । और साध्यासाध्यसाधन

सम्पन्न योगी लोग, और वेदार्थवेत्ता ऋषि लोग उक्त ज्ञानयज्ञ द्वारा ही परपरमात्मा का उपासन करते हैं। इसका नाम शास्त्र में ज्ञानयज्ञ है ।

इसी वेद मन्त्र के आधार पर कृष्ण जी कथन करते हैं कि, "श्रेयान् द्रव्यमयाद्यज्ञाद् ज्ञानयज्ञः परंतप । सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञानेपरिसमाप्यते ॥" भगवद्गी. । ४ । ३३ ।

ओ३म्

अब उक्त विराट्पुरुष के रूपकालंकार से मुखादि अवयव वर्णन करते हैं ।

" यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन् ।
मुखं किमस्यासीत्किंबाहू किमूरूपादा उच्येते ॥"

यजुः।३१-१०

जो इस चराचर ब्रह्माण्ड के धारण करने वाला विराट् पुरुष है, उसकी कल्पना इस प्रकार से की जा सकती है । अर्थात उसका मुख क्या है ? और बाहू, ऊरु तथा पाद क्या हैं ? इस मन्त्र में उसके मूर्तिमान् होने का प्रश्न किया गया है । जब वह मूर्तिमान् है तो उसके मुख, भुजा, जंघा तथा पैर कौन से हैं? इस प्रश्न का उत्तर इस मन्त्र में दिया है ।

" ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरूतदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यांꣳशूद्रो अजायत ॥"

यजुः ३१,११

ब्राह्मण इस विराट्पुरुष का मुख है, और राजा लोग भुजाएं तथा ऊरू वैश्य हैं और शूद्र पादस्थानीय हैं । अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चारों वर्णों को मिलाकर यह विराट् पुरुष है । अथवा यों कहो कि इन चारों वर्णों से भिन्न उसकी और कोई मूर्ति नहीं,

तात्पर्य्य यह है कि जिस देश में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, तथा शूद्र ये चारों वर्ण मुखादि अवयवों के समान मिले रहते हैं, उस देश और धर्म्म की रक्षा परमात्मा अवश्यमेव करता है । इस मन्त्र में परमात्मा का यह उपदेश है कि हे मनुष्यो ! तुम उक्त चार अंगो के समान एक दूसरे के रक्षक बनो ।

जिसप्रकार मुख का काम ज्ञानेन्द्रियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर की रक्षा करना है और भुजाओं का काम बलद्वारा अपने आपको बचाना तथा दुष्टों का निग्रह करना है, एवं ऊरू अर्थात् जांघों का काम अपने बल से देशदेशान्तरों में जाकर धनरूप बल को उपार्जन करना है और शूद्रों का काम पैरों के समान तीनों वर्णों को सेवा धर्म्म से सहारा देना है, इस प्रकार चारो वर्ण परस्पर सहायक बनें, इस रूपक से परमात्मा ने चारो वर्णों का वर्णन किया है, या यों कहो कि इस विराट् पुरुष के मुख आदि सामर्थ्यों से वर्णों की उत्पत्ति का रूपक बांधा है, इस विषय को आगे के मन्त्र में इस प्रकार वर्णन किया है कि:-

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य्यो अजायत ।
श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥

यजु० ३१ । १२

परमात्मा के (मनसः) ज्ञानेन्द्रिय प्रधान सामर्थ्य से (चन्द्रमा) आल्हादक पदार्थ उत्पन्न हुए (चक्षोः) अभिव्यक्त करने वाले सामर्थ्य से सूर्य्य (श्रोत्रात्) आकाशरूप सामर्थ्य से वायु और प्राण उत्पन्न हुए और मुख से अग्नि उत्पन्न हुई ।

इस मन्त्र से परमात्मा के प्रकृतिरूप सामर्थ्य को कारण बताकर उसके सत्त्वादि गुणों से चन्द्रमा, सूर्य आदि आह्लादक पदार्थों की उत्पत्ति कथन की है, इसका यह भी तात्पर्य्य है कि उसके मुखादि अवयव कल्पित हैं वास्तविक नहीं, यदि वास्तविक होते तो मुख से अग्नि की उत्पत्ति के अर्थ यह होते कि ब्राह्मण से अग्नि उत्पन्न हुई, क्योंकि पूर्व मन्त्र में ब्राह्मण को मुख कथन किया है ।

तात्पर्य्य यह है कि परमात्मा ने इस चराचर ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया और उसके स्वरूप में भौतिक सब वस्तुओं का कारण प्रकृतिरूप सामर्थ्य है उसी से सब पदार्थ उत्पन्न होते हैं, इसमें परमात्मा ने विराट्पुरुष के ज्ञान के लिये ज्ञानयज्ञ का उपदेश किया है कि हे जिज्ञासु पुरुषो। तुम सूर्य्य, चन्द्रमा, वायु, आकाशादि सब बृहत् वस्तुओं को बृहस्पति परमात्मा की विभूति समझो ।

अब उस विभूति को प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं :-

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष ँ शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यांभूमिर्दिशःश्रोत्रात्तथालोकाँ २॥अकल्पयन् ॥

यजु० ३१।१३

उसके (नाभ्याः) बन्धनरूप सामर्थ्य से अन्तरिक्षलोक उत्पन्न हुआ, शिर से देवलोक, पैरों से भूमि और श्रोत्र से दिशाओं तथा लोक लोकान्तरों की कल्पना कीगई।

परमात्मा उपदेश करते हैं कि हे मनुष्यो ! तुम यह समझो कि अन्तरिक्ष लोक जिसमें सूर्य्य, चन्द्र आदि ग्रह, उपग्रह विद्यमान हैं यह अन्तरिक्ष लोक परमात्मा के आकर्षणरूप सामर्थ्य से उत्पन्न हुआ है, इसलिये यह लोक लोकान्तरों को आकर्षित करता है, एवं शिररूप सामर्थ्य से द्युलोक, इसी प्रकार भूमि आदि लोकों की उत्पत्ति हुई, यहां भी रूपकालङ्कार द्वारा सब प्राकृत पदार्थों का अङ्गप्रत्यङ्गरूप से वर्णन किया है॥

अब उक्त ज्ञानयज्ञ की सामग्री वर्णन करते हैं :—

यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत ।
वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥१४॥

जब विद्वान् लोग ज्ञानयज्ञ करते हैं तो पुरुष=परमात्मा को हवि कल्पना करते हैं, और वसन्त ऋतु को (आज्यम्) घी, एवं ग्रीष्म ऋतु को इन्धन स्थानीय कल्पना करके वर्ष को यज्ञमण्डप बनाकर ज्ञानयज्ञ करते हैं।

भाव यह है कि काल को यज्ञ का मण्डप बनाकर और वसन्त आदि ऋतुओं को यज्ञ के साधन की सामग्री बनाकर और पुरुष परमात्मा को विषय रखकर ज्ञानी लोग यज्ञ करते हैं, इसी का नाम ज्ञानयज्ञ है॥

अब उक्त यज्ञ का प्रकारान्तर से वर्णन करते हैं :—

सप्तास्यासन् परिधयस्त्रिः सप्तसमिधः कृताः ।
देवा यद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥१५॥

इस यज्ञ के गायत्र्यादि सात छन्द सूत्र के समान हैं और महत्तत्व से लेकर विंशति प्रकृति के विकार, महत्तत्व १ अहङ्कार २, ५ सूक्ष्म भूत, ५ स्थूल भूत=१२, पांच ज्ञानेन्द्रिय १७ और विकृतावस्थापन्न सत्त्व, रज, तम ये तीनों प्रकृति के गुण और एक इन सबका कारण प्रकृति यह सब मिलकर इक्कीस हुए, जो इस ज्ञानयज्ञ की समिध हैं, इस यज्ञ में (देवाः) विद्वान् लोग (पुरुषं) परमात्मा पुरुष को (अबध्नन्) ज्ञान का विषय बनाते हैं॥

इसका नाम पुरुषयज्ञ है अर्थात् परमात्मारूपी पुरुष जो सम्पूर्ण लोकलोकान्तरों का अधिष्ठान है उसको द्रष्टव्य बनाकर इस यज्ञ में एकमात्र पूर्णपुरुष की उपासना कीजाती है, यहां द्रष्टव्य के अर्थ आखों से देखने के नहीं किन्तु ज्ञानदृष्टि से देखने के है, जैसाकि **"एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम्"** बृहदा० ४।४।२० **"मनसैवानुद्रष्टव्यंनेहनानास्तिकिञ्चन"** कठ० ४।११ इत्यादि वाक्यों में परमात्मा को ज्ञानगोचर करना वर्णन किया है ॥

कई एक लोग इसके यह अर्थ करते हैं कि इस यज्ञ में परमात्मा को पशुरूप कल्पना करके (अबध्नन्) बध किया जाता है, इस अर्थ में असंगति यह है कि विराट् पुरुष का बध क्या ? और उसको कौन बध करसकता है ? और जब बध न हुआ तो पशु के साथ रूपकालङ्कार कैसे ? क्योंकि पशु के साथ परमात्मा का हननादि क्रियाओं में कोई सादृश्य नहीं पाया जाता, इसलिये पशु के अर्थ यहां द्रष्टव्य के हैं किसी पशुविशेष के नहीं ॥

अब इस यज्ञरूपी पुरुष को सम्पूर्ण धर्मों का आधार कथन करते हैंः—

यज्ञेन यज्ञमयजन्तदेवास्तानिधर्म्माणिप्रथमान्यासन् ।
तेहनाकं महिमानसचन्तयत्रपूर्वेसाध्याःसन्तिदेवाः ॥१६॥

(यज्ञेन) ज्ञानरूपी यज्ञ से विद्वान् लोग (यज्ञं) यज्ञ=परमात्मा की उपासना करते हैं, सब से मुख्यधर्म्म यही है, अनुष्ठानी विद्वान् लोग इसी धर्म का सेवन करते हैं, इसी धर्म्म से सर्वोपरि सुख को लाभ करते हैं, पूर्व काल के योगी लोग इसी का सेवन करते थे ।

इस मन्त्र में परमात्मा ने प्राचीन और नवीन विद्वानों का दृष्टान्त देकर इस बात को स्पष्ट किया है कि सब से मुख्य धर्म्म ज्ञानयज्ञ है, जो पुरुष ज्ञानयज्ञ नहीं करता वह धर्म्म के मर्म को नहीं जानसकता ।

हे जिज्ञासु जनो ! तुमको चाहिये कि तुम ज्ञानयज्ञ के याजक बनकर धार्मिक बनो, पुरुषसूक्त में परमात्मा ने धार्मिक बनने का विस्तृत उपदेश किया है और इस उपदेश में इस बात को स्पष्ट किया है कि तुम सर्वव्यापक पूर्णपुरुष को ध्यान का विषय बनाकर पुरुषयज्ञ करो, इसी का नाम ब्रह्मयज्ञ, ज्ञानयज्ञ वा ब्रह्मोपासना है ॥

जो लोग इन मन्त्रों से पशुयज्ञ का प्रतिनिधि नरमेधयज्ञ निकालते हैं वह अत्यन्त भूल करते हैं, क्योंकि इस सूक्त में पशुयज्ञ का कहीं नाम तक नहीं पाया जाता और इस सूक्त में ब्रह्मविद्या का विस्तारपूर्वक वर्णन है **"सहस्रशीर्षा पुरुषः"** यह वाक्य सर्वशक्तिमान् परमात्मा का वर्णन करता है, जिस प्रकार **"सहस्रश्रृङ्गोवृषभः यः समुद्रादुदाचरत्"** ऋग्० ७।५६।७ यह वाक्य सूर्य्य को अनन्त किरणों वाला वर्णन करता है, सिर के अर्थ उक्त वाक्य में अङ्ग के नहीं किन्तु ब्रह्माश्रित शक्ति के हैं इसी प्रकार 'सहस्रशीर्षा०' इसके अर्थ भी ब्रह्म की अनन्त शक्तियों के हैं किसी अङ्गविशेष के नहीं ।

बहुत क्या इस सूक्त को किसी ने अङ्गप्रत्यङ्ग के वर्णन में लगाया है, किसी ने नरमेध में लगाया और कई एक लोगों ने बहुत नवीन समय में आकर इसका अर्घ्य, और आचमनीय जड़ वस्तुओं में विनियोग किया है, वास्तव में इस सूक्त का विनियोग परमात्मा के महत्व वर्णन में है, जैसाकि—

"एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः" यजु० ३१।३

इत्यादि वाक्यों द्वारा पूर्व वर्णन कर आये हैं ।

यह बात सर्वसम्मत है कि पुरुषसूक्तादि सूक्त वेद के महत्व को वर्णन करते हैं, इन सूक्तों के पढ़ने से बड़े से बड़ा प्रतिपक्षी भी वेदों के महत्व के आगे शिर झुका देता है, और यह कहता है कि जिस वेद में इस प्रकार दार्शनिक भावों का वर्णन है उसको प्राकृत लोगों की पुस्तक अर्थात् अबोध लोगों की पुस्तक कौन कहसकता है ।

दुराग्रह के वशीभूत होकर कई एक लोग पुरुषसूक्त पर यह प्रश्न करते हैं कि इस सूक्त में जो ब्राह्मण आदि वर्णों का वर्णन है, इससे प्रतीत होता है कि यह सूक्त पीछे से मिलाया गया है ? ॥

इसका हम इतना ही उत्तर देते हैं कि यह सूक्त चारो वेदों में पाया जाता है, यदि कोई मिलाता तो एक में या दो में मिलाता सब में कैसे ? ॥

अन्य युक्ति यह है कि इस सूक्त की संस्कृत की बनावट वैदिक समय की पाई जाती है, इसलिये इसके मिले हुए होने का कोई नाम भी नहीं ले सकता, यदि कोई यही कहे कि ब्राह्मणादि वर्णों का वर्णन मन्वादिस्मृतिप्रतिपाद्य ही है अतएव मिला हुआ प्रतीत होता है, उसका उत्तर यह है कि स्मृतियों के समय से पूर्व वेद के कई एक स्थलों में ब्राह्मणादि वर्णों का वर्णन स्पष्ट पाया जाता है ।

अन्य युक्ति यह है कि **"न मृत्युरासीदमृतंनतर्हि"** ऋग्० १०।१२९।२ इत्यादि सूक्ष्म विषयों का वर्णन जिन सूक्तों में पाया जाता है उन सूक्तों

के साथ पुरुषसूक्त का मिलान है अर्थात् इस सूक्त में भी सूक्ष्म भावों का वर्णन है ।

जो लोग वेदों को जंगली समय के मनुष्यों की कृति कहा करते हैं अथवा बहुत से दिव्यशक्तिवाले देवों की कृति कहा करते हैं, उनको इन सूक्तों से शिक्षा लेनी चाहिये कि जब इन सूक्तों में ऐसे साहित्य का वर्णन है जो मनुष्य की शक्ति से सर्वथा बाहर है तो फिर वेदों के मनुष्यकृत होने की शङ्का ही कैसे होसकती है, और तो क्या सायण आदि भाष्यकार जो प्रायः वेदों को देवतापरक बतलाते हैं वे भी इन सूक्तों में आकर इनका देवता परमात्मा वर्णन करते और मुक्तकण्ठ से कहते हैं कि **"नासदासीन्नो सदासीत्"** ऋग्० १०।१२९।१ आदिसृष्टि में प्रकृति की अवस्था ऐसी थी कि न उसे सत् कहा जाता था और न असत् कहा जाता था, इस साइंस का वर्णन परमात्मा से भिन्न अन्य कोई नहीं करसकता, यह कहकर उन्होंने भी परमात्मा को ही वेद की रचना करने वाला कथन किया है ॥

सच भी यही प्रतीत होता है कि जब आज कल भी प्रकृति के निरूपण में लोग असमर्थ हैं, जब कि साइन्स फिलासफी और दार्शनिक विद्याओं का प्रबल प्रवाह बह रहा है तो कौन कह सकता है कि आदिसृष्टि में अशिक्षित लोगों ने ऐसे सूक्तों को रच लिया, इस तर्क से यही सिद्ध होता है कि आदि सृष्टि में परमात्मा ने ही वेदरूपी ब्रह्मविद्या को स्वयं अपने आप प्रकट किया, अस्तु—

अब वेद के महत्व निरूपण में सूक्त के अर्थ करते हैं:—

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परोयत्।
किमावरीवः कुहु कस्य शर्मन्नंभः किमासीद्गहनं गभीरम् ॥१॥

प्रलयकाल में प्रकृति सत् अर्थात् कार्य्यरूप में न थी और न उस समय अत्यन्त असत् थी अर्थात् अपनी कारणावस्था में विद्यमान थी, उस समय प्रकृति (रजः) रजोगुण के भाव में न थी और नाही शून्य के समान तीनों गुणों से रहित थी किन्तु एक ऐसी अवस्था में थी जिसको न किसी वस्तु के ढकने वाली कहा जाता था और न जलरूप कहा जाता था किन्तु कारण रूप एक सूक्ष्मावस्था में थी ॥

नमत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्नः आसीत्प्रकेतः ।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्नपरः किंचनास ।२।

न उस समय मृत्यु थी और न कोई अमर कहा जाता था और न दिन रात के चिन्ह रूप सूर्य्य चन्द्रमा थे, उस समय एक निश्चेष्ट स्वधा धारण करने वाली शक्ति के साथ अद्वितीय ब्रह्म था, उससे भिन्न अन्य कुछ भी न था ॥

तम आसीत्तमसागूढ़मग्रे प्रकेतं सलिलं सर्व मा इदं ।
तुच्छेनाभ्वपिहित यदासीत्तपसस्तन्माहिना जायतैकम् ॥३॥

उस प्रलयावस्था में सब कुछ अन्धकार से ढकाहुआ था, और सब कुछ परमात्मा के सामर्थ्य में विद्यमान था ।

कामस्तदग्रे समवर्त्तताधिमनसोरेतः प्रथमं यदासीत् ।
सतो बन्धुमसति निरविंदन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥४॥

जब परमात्मा की इच्छा सृष्टि रचने की हुई तो उसने अपनी प्रकृति रूपी सामर्थ्य से इस चराचर ब्रह्माण्ड को रचा और सब से प्रथम मनीषा अर्थात् महत्तत्व (प्रकृति के प्रथम विकार) को उत्पन्न किया, तदनन्तर उससे सर्वत्र फैलनेवाली रश्मिरूप प्रकृति की कार्य्यावस्था को उत्पन्न किया, तद-नन्तर स्थूल भूतों के सूक्ष्मकारण=शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध इन पाँच तन्मात्रों को रचा, जिस परमात्मा की रचना इस प्रकार गूढ़ है उसकी कृति को कौन जानसकता है, इस भाव को नीचे के मन्त्र में निरूपण करते हैं:—

को अद्धा वेद क इहप्रवोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः ।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा को वेद यत आबभूव ॥५॥

निश्चय से कौन कह सकता है कि जिस प्रकृति से यह ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है उसका वास्तविक रूप क्या है, क्योंकि ऋषि मुनि जितने विद्वान् हुए हैं वे सब इस सृष्टि की रचना के अनन्तर ही हुए हैं, इसलिये वे सब इसकी रचना के वर्णन में मूक हैं ।

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न ।
यो अस्याध्यक्षः परमेठ्योमन्त्सो अङ्गवेद यदि वा न वेद ॥६॥

यह सृष्टि जिस प्रकार उत्पन्न हुई है और जिस प्रकार स्थिर है तथा जिस प्रकार प्रलय को प्राप्त होगी, इसके तत्व को ईश्वर से भिन्न अन्य कोई नहीं जानता, इसी अभिप्राय से उपनिषत्कर्त्ता ऋषिओं ने कहा है कि "यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्वि-जिज्ञासस्व तद्ब्रह्म" तैत्ति० ।३।१ =जिससे इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और

प्रलय होता है वह ब्रह्म है, इस प्रकार ब्रह्म का निरूपण जो उपनिषदों में पाया जाता है तथा; "जन्माद्यस्य यतः" ब्रह्म सूत्र १।१।२ में जिस ब्रह्मविद्या का निरूपण किया है वह सब वेदों में पाई जाती है इसलिये ब्रह्म-विद्या का सर्वोपरि भाण्डार वेद ही है, कोई अन्य पुस्तक नहीं।

वेदों में शङ्का होने का कारण यह हुआ कि हिरण्यगर्भादि सूक्तों के अर्थ कई एक लोगों ने बिगाड़ कर लिख दिये हैं कि 'वेद उस समय का वर्णन करता है जिस समय (हिरण्य) सुवर्णधातु लोगों को ज्ञात हुई, यह अर्थ सर्वथा मिथ्या है, क्योंकि हिरण्यगर्भ के अर्थ ये हैं कि जिसके गर्भ में सूर्य, चन्द्रमा आदि सब पदार्थ विद्यमान हैं उसको हिरण्यगर्भ कहते हैं, क्योंकि हिरण्य नाम सूर्य, चन्द्रमा आदि पदार्थों का है अथवा हिरण्य नाम प्रकृति का है अर्थात् प्रकृति के ये चराचर कार्य्य कोटानकोटि ब्रह्माण्ड जिसके भीतर हों उसको हिरण्यगर्भ कहते हैं, इस प्रकार यह सूक्त ब्रह्मविद्या का निरूपण करता है किसी प्राकृतभाव का नहीं, इस सूक्त का प्रथम मन्त्र इस प्रकार है:—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

इस मंत्र और इस सूक्त के अन्य मंत्रों का अर्थ पूर्व कर आये हैं इसलिये यहां आवश्यकता नहीं॥

ओ३म्

विष्णुसूक्तम्

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥
ऋग्० ७।९९।१

(विष्णो देव) हे सर्वव्यापक दिव्यस्वरूप परमात्मन् ! तुम सूक्ष्म से सूक्ष्म परब्रह्म के स्वरूप को धारण किये हुए हो, तुम्हारे वास्तविक रूप को कोई ठीक ठीक जान नहीं सकता, तुम्हीं पृथिवीलोक तथा द्युलोक आदि सब भुवनों के स्वामी हो, तुम से भिन्न इस संसार को एकदेशी बनाकर स्थिर होने वाला कोई पदार्थ नहीं, केवल आप ही सर्वोपरि विष्णु अर्थात् व्यापक रूप ब्रह्म हैं ॥

इस मन्त्र में परमात्मा ने यह उपदेश किया है कि हे जिज्ञासु जनो ! तुम लोग उस परमपुरुष की उपासना तथा प्रार्थना करो जो एकमात्र सबका आधार है, अन्य कोई ऐसा देव नहीं जो सबका नियन्ता होसके, एक आप ही सबको नियम में रखने वाले हैं ॥

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमंतमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहंतं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः॥२॥

(विष्णो) हे व्यापक परमात्मन् ! (महिम्नः) तुम्हारे महत्व को कोई भी नहीं पासकता, न कोई ऐसी शक्ति उत्पन्न हुई, न है न होगी जो तुम्हारे महत्व को पासके, तुमने अपनी शक्ति से लोकलोकान्तरों को धारण किया हुआ है अर्थात् कोटानकोटि ब्रह्माण्ड आपकी आकर्षणशक्ति से भ्रमण करते हैं, और विकर्षणशक्ति से प्रलय को प्राप्त होते हैं, तुम सजातीय, विजातीय, स्वगतभेद से शून्य हो, और नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्तस्वभाव हो ।

इस मन्त्र में परमात्मा ने अपनी विभूति का महत्व दर्शाया है, आस्तिक लोग इस विभूति के महत्व को देखकर परमात्मा के महत्व के आगे सिर झुकाते हैं, और नास्तिक लोग अपने अज्ञान के कारण इस महत्व का दर्शन नहीं करसकते ॥

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।
समूढमस्य पांसुरे ॥ ऋग्० १।२२।१७

विष्णु=व्यापक परमात्मा ने इस जगत् को तीन प्रकार से रचा अर्थात् पृथिवी, अन्तरिक्ष और प्रकाशमय सूर्यमण्डल, इन तीनों प्रकारों में सब चराचर ब्रह्माण्ड आजाते हैं और उस ज्योतिस्वरूप परमात्मा ने अपने विष्णुपद को उक्त तीनों पदों में भलीभांति दर्शाया है परन्तु अज्ञानतिमिरान्ध लोग उसकी महिमा को नहीं देखते किन्तु विषयवासनासरित में बहकर अनर्थरूप सागर में जागिरते हैं, इसी अभिप्राय से परमात्मा ने कहा है कि **"समूढमस्य पांसुरे"**= रजोमय धूलि में यह पद गूढ है अर्थात् जिसप्रकार धूलि में मिली हुई वस्तु को कोई पुरुष ढूड़ नहीं सकता एवं परमात्मा का परमपद भी इस मायामय धूलि में मिला हुआ है, इसलिये विना साधनसम्पत्ति के कोई पुरुष इस विष्णुपद को नहीं पासकता, भाव यह है कि प्रकृति के तीनों गुण पुरुष को त्रिगुण रज्जु के समान अर्थात् तिगुनी करके बटीहुई दृढ़ रस्सी के समान बाँधते हैं और इन तीनो गुणों से बँधे हुए पुरुष ईश्वरीय राज्य की स्वतंत्रता को अनुभव नहीं करसकते किन्तु दिन रात इसी रज्जु से बँधे हुए प्रकृति रूप खूँटे के चहुँ ओर घूमते रहते हैं, ईश्वरदत्त स्वतन्त्रता को कदापि लाभ नहीं करसकते ॥

इस विषय में किसी विरक्तपुरुष की यह उक्ति है कि:—

पशवोऽपि पलायन्ते बन्धनान्मोचिता भुवि।
बन्धनं किं मनुष्यस्य यस्मान्नैष पलायते ॥

पशु भी खूँटे से खोल देने से भागजाते हैं पर पुरुष अपने मनोरथ रूप खूँटे से बँधा हुआ नहीं भाग सकता, या यों कहो कि रजोगुण से बँधा हुआ पुरुष स्वतन्त्रता का लाभ नहीं करसकता।

इसी अभिप्राय से श्रीकृष्णजी ने गीता में कहा है कि **"ममभायादुरत्यया"**= ईश्वर की माया का अतिक्रमण कराना अतिकठिन है, इसी माया के वशीभूत होकर पुरुष विष्णुपद को भूलजाते हैं ॥

"समूढमस्य पांसुरे" इसके यह भी अर्थ हैं कि अन्तरिक्षस्थ रेणुओं में कोटानकोटि ब्रह्माण्ड छिपे हुए हैं जिनको यथावत् जान लेना मनुष्य की शक्ति से सर्वथा बाहर है, इसलिये मनुष्य को चाहिये कि परमात्मपरायण होकर उसके महत्व का चिन्तन करे।

इसी अभिप्राय से **"उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागम्"** ऋग्० १०।१८०

इत्यादि मंत्रों में यह कथन किया है कि हे जिज्ञासु लोगो ! तुम उठो और परमात्मा के ऐश्वर्य्य को देखो, परमात्मा बार २ मनुष्य को बोधन करते हैं ताकि मनुष्य परमात्म-परायण होकर कल्याण को प्राप्त हों, इसी भाव को कठोपनिषद् में इस प्रकार वर्णन किया है कि:—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत । क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत् कवयो वदन्ति ॥

कठ० ३।१४

हे मुमुक्षु जनो ! उठो जागो और अपने श्रेष्ठ उपदेशकों को प्राप्त होकर तत्वज्ञान को प्राप्त होओ, क्योंकि जिस संसार में तुमने चलना है वह बड़ा दुर्गम है, फिर कैसा है, छुरे की धार के समान अति तीक्ष्ण है ॥

यह आशय उपनिषद्वेत्ता ऋषि ने उक्त मन्त्र से लिया है, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि ज्ञानकाण्डोपनिषद् वेदों से लिये गये हैं, किसी अन्य स्थान से नहीं ॥

अब धर्म को धारण करने का उपदेश करते हैं:—

**त्रीणि पदा विचक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥** ऋग्० १।२२।१८

(विष्णुः) जो सम्पूर्ण संसार में व्यापक, सब का रक्षक, जीवों के कर्म्मों को धारण करने वाला और जो सबको स्वकर्म्मानुसार फल देनेवाला है उस परमात्मा ने तीन प्रकार से इस सृष्टि को रचा, जैसाकि पूर्व वर्णन कर आये हैं।

इसके दूसरे अर्थ यह भी होते हैं कि भूत, भविष्यत्, वर्त्तमान। उत्तम, मध्यम, मन्द। कार्य्य, सूक्ष्म और स्थूल ये तीनों शरीर जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तथा भूः, भुवः और स्वः इत्यादि तीन २ वस्तुओं को परमात्मा ने ही निर्माण करके इन धर्मों को धारण किया है अर्थात् परमात्मा की रचना से भूत, भविष्यत् और वर्त्तमान इन तीनों कालों का व्यवहार हुआ, उसी ने जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति को रचा, और जब प्रलय होता है तो सुषुप्ति और सृष्टि समय जाग्रत् भी उसीसे होते हैं, इस भाव को मनु ने इस प्रकार वर्णन किया है, कि:—

**यदा स देवो जागर्त्ति तदेदं चेष्टते जगत् ।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलिति ॥**

मनु० १।४३

अर्थ—जब वह देव जागता है तब यह जगत् चेष्टा करता और जब वह शान्तरूप परमात्मा सोता है तब सब जगत् चेष्टारहित होता है, अधिक क्या

जाग्रत् तथा सुषुप्ति आदि अनेकविध धर्म्मों के धारण करने से परमात्मा को सब धर्म्मों का अधिकरण कथन किया गया है ॥

विष्णोः कर्म्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ ऋग्० १ । २२ । १९

हे पुरुषो ! तुम (विष्णोः) व्यापक परमात्मा के (कर्माणि) कार्य्यों को (पश्यत) देखो जिनके देखने से तुम में व्रतधारण की शक्ति उत्पन्न होगी, क्योंकि वही व्यापक परमात्मा ऐश्वर्य्य का योग्य-सखा अर्थात् ऐश्वर्य्य देने वाला है ॥

भाव यह है कि जो लोग परमात्मा की दृष्टि में किसी व्रत को धारण करते हैं वही ऐश्वर्य्यसम्पन्न होते हैं अन्य नहीं, जो ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण करते हैं वह वीर्य्यलाभ तथा विद्यारूपी बल को प्राप्त होते हैं, जो तपरूप व्रत धारण करते हैं वह तपस्वी और तेजस्वी बनते हैं, एवं अनन्त प्रकार के व्रत हैं जिनके धारण करने का विधान परमात्मा ने उक्त मन्त्र में किया है ॥

अब परमात्मा के स्वरूपज्ञान का वर्णन करते हैं:—

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ।
दिवीव चक्षुराततम् । ऋग्० १ । २२ । २०

उस व्यापक परमात्मा के स्वरूप को विद्वान् लोग देखते हैं, जिसप्रकार निर्मल आकाश में व्याप्त हुआ चक्षु सम्पूर्ण वस्तुओं को विषय करता है इसी प्रकार अपने विद्यारूपी चक्षुओं से विद्वान् लोग उसके स्वरूप का साक्षात्कार करते हैं ॥

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते ।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ ऋग्० १ । २२ । २१

बुद्धिमान् लोग जो परमात्मा के विषय में जागते हैं अर्थात् उसकी आज्ञा पालन करते हैं वह परमात्मा के परमपद को प्रकाशित वस्तु के समान प्रकाश करते हैं ॥

भाव यह है कि जिन्होंने विद्यारूपी प्रकाश से अज्ञानरूपी अन्धकार को निवृत्त किया है वही परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार करते हुए अन्य लोगों के लिये उसका उपदेश करते हैं ॥

इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितोमयूखैः ॥
ऋग्० ७ । ९९ । ३

हे परमात्मन् ! आपने नानाविध रत्नों के देने वाली पृथिवी को मनुष्यों के लिये उत्पन्न करके अपने ऐश्वर्य्य की ज्योतियों द्वारा इस ब्रह्माण्ड को नाना प्रकार से विभूषित किया हुआ है, हे भगवन् ! आप अपनी प्रकाशित ज्योतियों से हमारे हृदय रूपी मन्दिर के तिमिर को नाश करके हमारे लिये लोक तथा परलोक के ऐश्वर्य्यों को प्रदान करें ॥

अब परमात्मप्राप्ति का वर्णन करते हैं:—

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमाऽमृतात् ।

ऋग्० ७ । ५९ । १२

हम लोग उस सर्वशक्तिमत् परब्रह्म की उपासना करें जो (त्र्यम्बकं) इस संसार की उत्पात्ति, स्थिति तथा प्रलय का करने वाला (सुगन्धि) जिसका यश सुगन्ध के समान सर्वत्र फैला हुआ है जो (पुष्टिबर्द्धनं) इस संसार में प्रत्येक पदार्थ का पुष्ट करनेवाला और जिसके तत्त्वज्ञान से पुरुष इस संसाररूप स्नेहलता से (उर्वारुक) फल के समान पृथक् होजाता है अर्थात् जिसप्रकार खर्बूजा पककर अपनी बेल से स्वयं अलग होजाता है एवं भगवत् कृपा से ज्ञानी लोग इस संसाररूप स्नेहवल्ली से पृथक् होजाते हैं, इस अवस्था में न उनको कोई कष्ट होता और नाही उनके बन्धन के हेतु रूप सम्बन्धियों को कोई वेदना होती है, इसी का नाम मृत्यु को जीतना वा अमृतभाव और इसी का नाम जीवन्मुक्ति है ॥

इस मन्त्र के अर्थ यह भी हैं कि हे जगदीश्वर (माऽमृतात्) हमको अमृत-भाव से कदापि विरक्त न कर किन्तु हम सदैव अमृतभाव के जिज्ञासु बने रहें ॥
परमात्मा ने उक्त मन्त्र में मुक्ति और वैराग्य का उपदेश किया है कि मुक्त पुरुष सदाचार से सौवर्ष पर्य्यन्त जीवन धारण करते हुए विना किसी कष्ट से खर्बूजे के समान परिपक्व अवस्था को प्राप्त होकर इस संसार को छोड़ें और अपरिपक्व अवस्था अर्थात् अकालमृत्यु को कदापि प्राप्त न हों ।

इस मन्त्र में परमात्मा ने अकालमृत्यु के जीतने का उपदेश किया है कि जो लोग अमृतपद को समझकर अपने अमृतभाव को नहीं त्यागते उनकी अकालमृत्यु कदापि नहीं होती ॥

" त्र्यम्बक " के अर्थ यहां टीकाकारों ने भिन्न २ प्रकार से किये हैं ।किसी ने तीन नेत्रों वाले रुद्र के किये हैं, किसी ने ब्रह्मा विष्णु शिव इन तीन देवों के उत्पन्न करनेवाले देव के किये हैं, किसी ने उत्पति, स्थिति, प्रलय इन तीनों

भावों के कर्त्ता परब्रह्म के किये हैं, वास्तव में त्र्यम्बक के अर्थ तीन प्रकार की शक्तिवाले परब्रह्म के ही हैं क्योंकि "तिस्रः अम्बा यस्य स त्र्यम्बकः"= जिसकी तीन शक्ति हों उसको "त्र्यम्बक" कहते हैं ॥

इस मन्त्र का मुक्त पुरुष की प्रार्थना में विनियोग है किसी अन्य कर्म्म में नहीं किन्तु व्यापक ब्रह्म की उपासना में इस मन्त्र को विनियुक्त करना चाहिये, या यों कहो कि भूः, भुवः, स्वः इन तीनो लोकों के निर्माता का नाम यहां "त्र्यम्बक" है ॥

कई एक लोग यहां यह आशंका करते हैं कि (मा अमृतात्) हमें अमृत=मुक्ति से पृथक् मत कर, इससे पाया जाता है कि परमात्मा मुक्त पुरुषों का भी स्वामी है, इसलिये यह कथन कियागया है कि तू मुक्ति अवस्था से हमें मत लौटा, इसका उत्तर यह है कि जब परमात्मा सर्वस्वामी है तो मुक्त पुरुष उसके ऐश्वर्य्य से बाहर नहीं, इसलिये मुक्त पुरुष का ऐश्वर्य्य सीमाबद्ध=अन्तवाला है ॥

कई एक टीकाकार इसके यह भी अर्थ करते हैं कि अमृत के अर्थ यहां स्वर्ग के हैं इसलिये स्वर्ग-सुख भोगने और मृत्यु से रहित होने की उक्त मंत्र में प्रार्थना है, और कोई इसके यह भी अर्थ करते हैं कि (आ अमृतात्) अमृत की अवस्था तक हमको परमात्मा मोक्ष सुख से वियुक्त न करें, यहाँ "आ" मर्य्यादा के अर्थों में है अर्थात् मुक्ति की सीमा पर्य्यन्त परमात्मा हमको अमृत सुख का भागी बनायें, पश्चात् हम योगी जनों के समान आकर फिर संसार का उद्धार करें, या यों कहो कि मर्य्यादा पुरुषोत्तम पुरुषों के समान जन्म लाभ करें, यह प्रार्थना है ॥

स्मरण रहे कि परमात्म आज्ञापालन तथा उसकी उपासना के विना मनुष्य कदापि अमृत सुख का लाभ नहीं करसकता और न इस संसार में सद्गति को प्राप्त होसकता है, अमृत पद उन्हीं पुरुषों को प्राप्त होता है जो शुद्ध हृदय से वेदप्रतिपादित कर्मों का अनुष्ठान करते हुए परमात्मज्ञान को उपलब्ध करते हैं ॥

या यों कहो कि वेदादि सत्यशास्त्रों का अध्ययन, उपासनारूप तपश्चर्या और धारणा, ध्यान तथा समाधि द्वारा परमात्मचिन्तन करने से पुरुष की आत्मा पवित्र होकर उस पद को प्राप्त होती है जिसको वेद ने अमृत कहा है, इसीलिये वेद और ऋषि महर्षियों ने आत्मा की पवित्रता के लिये सन्ध्या अग्निहोत्रादि पांच यज्ञों का विधान किया है अर्थात् इन यज्ञों का अनुष्ठान करना ही पुरुष को कृतकृत्य करता है, अतएव सुख की इच्छा वाले मनुष्यमात्र का कर्तव्य है कि वह वेदप्रतिपादित कर्मों का पालन करते हुए अभ्युदय=सांसारिक

ऐश्वर्य्य तथा निःश्रेयस=अमृत पद को प्राप्त हों, जैसाकि वेदभगवान उपदेश करते हैं किः—

प्रति त्वा स्तोमैरीलते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवांनेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥

ऋग्० ७ । ७६ । ६

अर्थ—हे मनुष्यो ! (सुभगे) सौभाग्य को प्राप्त करानेवाली (उषः) उषा समय में (बुधः) जागो, और (स्तोमैः) यज्ञों द्वारा (त्वा, प्रति) परमात्म प्रति (ईलते) स्तुति प्रार्थना करो, क्योंकि (गवां, नेत्री) यह उषाकाल इन्द्रियों को संयम में रखने के कारण (तुष्टुवांसः) स्तुति योग्य है, फिर कैसा है (वाजपत्नी) अन्नादि ऐश्वर्य्य का स्वामी और इसी के सेवन से पुरुष (उच्छ) देदीप्यमान होता तथा बल बुद्धि की वृद्धि और दीर्घायु होती है, यही मनुष्य को प्रथम सेवनीय है जो (स्वजाते) उच्चादर्श की ओर लेजाता, और (जरस्व) अवगुणों का नाशक है अर्थात् उषाकाल में जागने वाले अमृत सुख को प्राप्त होते हैं, इसी भाव को भगवान मनु ने इस प्रकार उद्धृत किया है किः—

ब्राह्मेमुहूर्त्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्वार्थमेव च ॥

मनु० ४।९२

अर्थ--हे मनुष्यो ! (ब्राह्मेमुहूर्त्ते) ब्रह्ममुहूर्त्त=उषाकाल में (बुध्येत) उठो=जागो (च) और (धर्मार्थौ) धर्म तथा अर्थ का (अनुचिन्तयेत्) चिन्तन करो और(कायक्लेशान्) शारीरक आधि व्याधि तथा (तन्मूलान्) उनके मूलभूत पुण्य पाप को सोचते हुए (वेदतत्वार्थ) वेद के तत्वार्थ को विचारो ॥

भाव यह है कि सुख की कामना वाला पुरुष रात्रि के चौथे पहर=दो घड़ी रात रहने पर उठे और उठकर धर्म=निश्रेयस की सिद्धि तथा अर्थ = ऐश्वर्य्यशाली होने का उपाय सोचता हुआ अपनी शारीरक अवस्था पर पूर्णतया ध्यान रखे, क्योंकि शारीरक व्याधि ग्रसित पुरुष कदापि तपस्वी नहीं होसकता और तप के विना ऐश्वर्य्य तथा निश्रेयस की प्राप्ति कदापि नहीं होती, इसीलिये मनु उपदेश करते हैं कि प्रथम शारीरक उन्नति करते हुए वेद के तत्व को विचारो अर्थात् अपने कर्तव्य का पालन करो, जिसकी विधि इस प्रकार है कि पुरुष प्रातःकाल में जागे और प्रथम शौच, दन्तधावन तथा स्नादि से निवृत्त होकर धर्म का चिन्तन करे अर्थात् सन्ध्या, अग्निहोत्र में प्रवृत्त हो, फिर अर्थ = धर्मपूर्वक धन उपार्जन करने का उपाय सोचे जो

परिवारपालन के लिये अत्यावश्यक है परन्तु धन का उपार्जन धर्मपूर्वक करे, क्योंकि अधर्म से कमाया हुआ धन कुल तथा कीर्ति का नाशक और दुःख का देनेवाला होता है, इसलिये अधर्म से धन कमाने की चेष्टा न करे ॥

अब प्रथम ब्रह्मयज्ञ = सन्ध्या का विधान करते हुए "सन्ध्या" शब्द पर विचार करते हैं अर्थात् "सम्" और "ध्यै" इन दो पदों के जोड़ने और उनके अंत में "अ" प्रत्यय लगाने से "सन्ध्या" शब्द बनता है, "सम्" का अर्थ भलीभांति तथा "ध्यै" का अर्थ ध्यान करना है और "अ" प्रत्यय यहां "में" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है सो भलीभांति ध्यान कियाजाय जिसमें उसका नाम "सन्ध्या" है अर्थात् रात्रि और दिन की जो सायं तथा प्रातः दो सन्धियां होती हैं इन्हीं दो सन्धियों में परमात्मा का ध्यान करना "सन्ध्या" कहाता है और वेदों में भी इन्हीं दोनों कालों में सन्ध्या करना लिखा है, जैसाकि:—

उपत्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्द्धिया वयम् ।
नमो भरंत एमसि ॥ साम० अ० १ खं० २ मं० ४

अर्थ--(अग्ने) मार्गदर्शक परमात्मन् ! (वयम्) हम लोग (धिया) मन से (नमः, भरन्तः) नमस्कार करते हुए (दिवे दिवे) प्रति दिन (दोषा-वस्तः) सायं तथा प्रातः (त्वा) आपकी (उप, एमसि) उपासना करें ॥

भाव यह है कि हे ज्ञानदाता परमात्मन् ! आप ऐसा दृढ़ ज्ञान और श्रद्धा भक्ति हमको प्रदान करें कि हम लोग प्रति दिन सायं प्रातः विनय से भर पूर होकर मन बुद्धि द्वारा आपकी समीपता प्राप्त करें अर्थात् हम लोग प्रति-दिन दोनों काल सन्ध्या करने में तत्पर रहें ॥

प्रातःकाल की सन्ध्या का समय कम से कम दो घड़ी रात रहे से सूर्योदय तक और सायंकाल की सन्ध्या का समय सूर्यास्त से तारों के दर्शन पर्य्यन्त है, क्योंकि मंत्रों के अर्थों पर भलेप्रकार विचार करके सन्ध्या करने में घण्टे से भी अधिक समय लगता है, इसलिये ब्रह्ममुहूर्त्तकाल में उठकर ही सन्ध्योपासन के लिये तैयार होना चाहिये ॥

सन्ध्या-विधि

सन्ध्या प्रारम्भ करने से पहिले शारीरक और मानसिक शुद्धि करनी चाहिये, शरीर की शुद्धि के लिये प्रातःकाल बस्ती से बाहर कुछ दूर निकल जावें और वहीं मलमूत्रादि का त्याग करके किसी कुएँ या नदी नाले पर दन्तधावन करने के पश्चात शरीर को भलेप्रकार मलकर स्नान करें और आँखों पर ताजा जल छिड़कें, यदि बाहर न जासकें तो घर में ही शौचादि से निवृत्त होकर स्नानादि द्वारा शरीर को शुद्ध करना चाहिये ॥

जब इस प्रकार शरीर की शुद्धि होचुके तब किसी एकान्त स्थान में बैठकर मन को रागद्वेषादि दूषित वृत्तियों से यत्नपूर्वक हटाकर ईश्वर के सत्यादि गुणों के चिन्तन में लगावें, इसी का नाम मानसिक शुद्धि है, जैसाकिः-

अद्भिर्गात्राणि शुद्धयन्ति मनः सत्येन शुद्धयति ।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्धयति ॥

मनु० ५-१०९

अर्थ—जल से शरीर शुद्ध होता, सत्य भाषण करने से मन शुद्ध होता, विद्या तथा तप से जीवात्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है ॥

शारीरिक शुद्धि की अपेक्षा मानसिक=अन्तःकरण की शुद्धि अत्यावश्यक है, क्योंकि यही परमेश्वर की प्राप्ति का मुख्य साधन है, यदि कभी शारीरिक शुद्धि न होसके तो भी सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि सन्ध्या न करने में पाप होता है ॥

"सन्ध्योपासन" प्रारम्भ करते समय सब से पहिले "आचमन मन्त्र" पढ़कर तीन बार आचमन करें अर्थात् दायें=दक्षिण हाथ की हथेली में जल लेकर तीनबार पीवें जो कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँच जाय, इससे कण्ठ में कफ और पित्त की निवृत्ति होती है ॥

फिर इन्द्रियस्पर्श मन्त्रों द्वारा इन्द्रियों का स्पर्श करके मार्जन-मन्त्र पढ़कर मध्यमा और अनामिका अँगुलियों के अग्रभाग से शिर आदि अङ्गों पर जल छिड़कें ताकि आलस्य दूर होकर प्राणायाम करने के लिये चित्त स्वस्थ होजाय ।

मार्जन करने के पश्चात् "प्राणायाम मन्त्र" पढ़कर प्राणायाम इस प्रकार करें कि प्रथम श्वास को बलपूर्वक बाहर निकालकर वहीं इतनी देर

ठहरायें कि मन्त्र का जप मन में एकबार अवश्य होजाय, फिर श्वास को धीरे२ भीतर खींचकर उसी प्रकार मन्त्र का एक बार जप करें, यह एक प्राणायाम हुआ, ऐसे न्यून से न्यून तीन प्राणायाम करने चाहियें, जब अभ्यास करते २ एक श्वास में एक बार जप सहज में होने लगे तब दो और फिर तीन चार बार मन्त्रों के जप का अभ्यास करें, इससे अधिक भी अभ्यास करते २ पुरुष समाधि तक पहुँच सकता है, परन्तु जितना सुगमता से होसके उतना ही करना चाहिये, क्योंकि हठात् अधिक करने से रोगग्रस्त होजाना सम्भव है ॥

विधिपूर्वक प्राणायाम करने से शारीरक तथा मानसिक अशुद्धि का नाश होकर ज्ञान का प्रकाश होता है, जैसाकि मनु महाराज ने भी वर्णन किया है कि:-

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥

अर्थ—जैसे सुवर्ण आदि धातु अग्नि में तपाने से शुद्ध होजाते हैं वैसे ही प्राणायाम करने से मन आदि इन्द्रियों के दोष नाश होकर निर्मल होजाती हैं ॥

प्राणायाम के उपरान्त "अघमर्षण" "मनसापरिक्रमा" तथा " उपस्थान" आदि के मन्त्रों से परमेश्वर की प्रार्थना उपासना करें और अन्त में अपने इस कर्तव्य को ईश्वरार्पण करके "नमः शम्भवाय०" यह "नमस्कार मंत्र" पढ़कर ईश्वर को प्रणाम करके सन्ध्या समाप्त करें ॥

अथ बृह्मयज्ञः प्रारभ्यते

आचमनमंत्रः

ओं शन्नोदेवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।
शंयोरभिस्त्रवन्तुनः ॥ १ ॥ यजु० ३६ ।१२

पदा०—(देवीः) दिव्यगुणस्वरूप परमात्मा (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक (भवन्तु) हो (अभिष्टये) हमारी इच्छायें पूर्ण हों और (नः) हम पर (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये (अभि) सब ओर से (शंयोः) सुख की (स्त्रवन्तु) वर्षा करे ॥

भावा०—हे सर्वव्यापक तथा सर्वप्रकाशक परमात्मन् ! आप मनोवांछित आनन्द की प्राप्ति के लिये कल्याणकारी हों और हम पर सब ओर से सुख की वृष्टि करें ॥

उक्त मंत्र के प्रारम्भ में जो "ओ३म्" पढ़ा गया है, यह परमात्मा के सब नामों में मुख्य नाम है, जिसके संक्षिप्त अर्थ यह हैं कि जो परमात्मा के ध्यान करने वालों की सब दुःखों से रक्षा करे उसको "ओ३म्" कहते हैं ॥

यह "ओ३म्" शब्द अ-उ-म, इन तीन अक्षरों से बना है "अकार" का अर्थ विराट्, अग्नि तथा विश्व है अर्थात् सब के प्रकाशक को "विराट्" ज्ञानस्वरूप तथा सर्वव्यापक को "अग्नि" और सब के आश्रय तथा सब ब्रह्माण्डों में प्रविष्ट को "विश्व" कहते हैं ॥

"उकार" का अर्थ हिरण्यगर्भ, वायु तथा तैजसादि हैं अर्थात् सूर्यादि ज्योति जिसके गर्भ = आश्रित हों उसको "हिरण्यगर्भ" अनन्त बलवान् तथा सबका धारण करने वाला होने से "वायु" और प्रकाशस्वरूप तथा सबका प्रकाशक होने से परमात्मा का नाम "तैजस" है ॥

"मकार" का अर्थ ईश्वर, आदित्य तथा प्राज्ञ हैं अर्थात् सर्वशक्तिमान् तथा न्यायकारी को "ईश्वर" नाशरहित को "आदित्य" और ज्ञानस्वरूप तथा सर्वज्ञ परमात्मा को "प्राज्ञ" कहते हैं ॥

इस एक नाम में परमात्मा के अनेक नाम आजाते हैं, इसलिये "ओ३म्" शब्दवाची परमात्मा के गुणों को सन्मुख रखकर "ओ३म्" नाम का जप करना विशेष फलदायक है ॥

इन्द्रियस्पर्शमंत्राः

ओं० वाक्वाक्, ओं० प्राणः प्राणः, ओं० चक्षुः चक्षुः, ओं० श्रोत्रं श्रोत्रम्, ओं० नाभिः, ओं० हृदयम्, ओं० कण्ठः, ओं० शिरः, ओं बाहुभ्यां यशोबलम्, ओं० करतलकरपृष्ठे ॥ २ ॥

पदा०—हे रक्षक परमात्मन् ! (वाक्, वाक्) वाणी और उसके अधिष्ठान को (प्राणः, प्राणः) प्राण और उसके अधिष्ठान को (चक्षुः, चक्षुः) नेत्र और उसके अधिष्ठान को (श्रोत्रं, श्रोत्रम्) कान और श्रवणशक्ति को (नाभिः) नाभि को (हृदयम्) हृदय को (कण्ठः) कण्ठ को (शिरः) शिर को (बाहुभ्यां) बाहों को (करतलकरपृष्ठे) ऊपर नीचे हाथों को (यशोबलम्) यश और बल दें ॥

भावा०—हे अन्तर्यामी परमात्मन् ! मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि वाक्, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, नाभि, हृदय, कण्ठ, शिर, बाहु और हाथ आदि से

कदापि पाप न करूँ, और आप कृपाकरके मेरे सब अङ्ग और उपाङ्गों को कीर्ति तथा बल प्रदान करें ॥

स्मरण रहे कि उक्त वाक्यों के पढ़ते समय जिस २ अंग का जिस क्रम से नाम आवे उसको उसी क्रम से छूते जावें ॥

मार्जनमंत्राः

ओं० भूः पुनातु शिरसि। ओं० भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं० स्वः पुनातु कण्ठे। ओं० महः पुनातु हृदये। ओं० जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं० तपः पुनातु पादयोः। ओं० सत्यं पुनातु पुनः शिरसि। ओं खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ॥३॥

पदा०—(भूः) सत्यस्वरूप तथा सबका जीवनाधार परमात्मा (शिरसि) शिर पर (पुनातु) पवित्र करे (भुवः) अपने सेवकों को सुखदाता प्रभु (नेत्रयोः, पुनातु) दोनों नेत्रों को पवित्र करे (स्वः) सर्वव्यापक, सबको नियम में रखने वाला तथा सबका आधार परमात्मा (कण्ठे, पुनातु) कण्ठ को पवित्र करे (महः) सब से बड़ा तथा सबका पूज्य देव (हृदये, पुनातु) हृदय को पवित्र करे (जनः) सर्व जगत् का उत्पादक पिता (नाभ्यां, पुनातु) नाभि को पवित्र करे (तपः) दुष्टों का दण्डदाता तथा ज्ञानस्वरूप परमेश्वर (पादयोः, पुनातु) पाओं को पवित्र करे (सत्यम्) अविनाशी प्रभु (पुनः शिरसि, पुनातु) फिर शिर को पवित्र करे (खं, ब्रह्म) आकाशवत् व्यापक, सब से बड़ा जगदीश्वर (सर्वत्र, पुनातु) सब स्थानों को पवित्र करे ॥

इन मंत्रों के पढ़ते समय जिस २ अङ्ग का नाम आवे उस २ अंग पर मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों से जल छिड़कते जावें जिससे आलस दूर होकर परमात्मा में चित्तवृत्ति का निरोध हो ॥

प्राणायाममन्त्राः

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम् ॥ ४ ॥

पदा०—हे भगवन्! आप (भूः) सद्रूप तथा चैतन्यस्वरूप (भुवः) सुखदायक (स्वः) आनन्दमय (महः) सब से बड़े तथा सर्वपूज्य (जनः) सबके जनक=पिता (तपः) दुष्टों को दण्डदाता और सब को जानने वाले (सत्यम्) अविनाशी हो ॥

इन मन्त्रों का जप और इनके अर्थों का विचार मन में करते हुए न्यून से न्यून तीन प्राणायाम करें, जिसका प्रकार पीछे सन्ध्याविधि में लिख आये हैं ॥

अघमर्षणमंत्राः

ओं ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥ ५ ॥

ऋग्० ८।८।४८। १

पदा०—(ऋतम्) वेद (च) और (सत्यम्) कार्य्यरूप प्रकृति (अभि, इद्धात्, तपसः) सब ओर से प्रकाशमान, ज्ञानस्वरूप परमात्मा से (अध्यजायत) उत्पन्न हुए (ततः) उसी प्रभु से (रात्री) रात्रि (अजायत) उत्पन्न हुई (ततः) उसी परमात्मा के अनन्त सामर्थ्य से (समुद्रः, अर्णवः) मेघमण्डल तथा समुद्र उत्पन्न हुआ ॥

ओं० समुद्रादर्णवादधि सम्बत्सरो अजायत ।
अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ ६ ॥

ऋग्० ८।८।४८।२

पदा०—(समुद्रात्, अर्णवात्, अधि) उस मेघमण्डल तथा समुद्र के पश्चात् (सम्बत्सरो, अजायत) सम्बत्सर=वर्ष उत्पन्न हुआ (विश्वस्य मिषतः) इस क्रियात्मक जगत् को (वशी) वश में रखने वाले प्रभु ने (अहोरात्राणि) दिन और रात को (विदधत्) बनाया ॥

ओं० सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्चपृथिवीञ्चान्तरिक्षमथोस्वः ॥ ७ ॥

ऋग्० ८।८।४८।३

पदा०—(धाता) सबके धारण पोषण करने वाले परमात्मा ने (सूर्याचन्द्रमसौ) सूर्य्य तथा चन्द्रमा को (यथा पूर्वम्) पहले जैसे (अकल्पयत्) बनाये (दिवम्) द्युलोक (पृथिवीं) पृथिवी लोक (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष लोक (अथो) और (स्वः) अन्य प्रकाशमान तथा प्रकाशरहित लोकलोकन्तरों को भी बनाया=रचा ॥

पूर्वोक्त तीनों अघमर्षण मन्त्रों का भावार्थ यह है कि सृष्टि की आदि में सदा जगत् को धारण करने वाले ईश्वर के सामर्थ्य और सहज स्वभाव से जगत् उत्पन्न होता, तत्पश्चात् अग्नि आदि चार ऋषियों द्वारा ऋगादि चार

वेदों का प्रकाश हुआ करता है और फिर प्रलय भी उसी ईश्वर के सामर्थ्य से होती है, उसी परमपिता सर्वान्तर्यामी परमात्मा की आज्ञापालन करने से पापों का क्षय होकर सुख की प्राप्ति होती है, इसी से इनका नाम "अघमर्षण" मंत्र है अर्थात् "अघ" नाम पापों से "मर्षण" मुक्त कर परमात्मा में श्रद्धा भक्ति उत्पन्न कराने वाले मंत्रों को "अघमर्षण" मंत्र कहते हैं ॥

बार २ सृष्टि उत्पन्न करने में ईश्वर का तात्पर्य्य जीवों के पापपुण्य का फल भुगाना है जो उसके स्वभाव से ही सदा होता रहता है, जैसाकि "स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च" इत्यादि वाक्यों में वर्णन किया है कि यह सब उसके स्वभाव से ही सदा होता रहता है, उसको किसी विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती ॥

स्मरण रहे कि परमेश्वर अपनी अन्तर्यामिता से सब के पाप पुण्य यथावत् देखता हुआ उनका फल ठीक२ न्यायपूर्वक देता है, इसलिये हमें उचित है कि हम मन, वाणि तथा कर्म से कभी भी कोई पाप न करें ॥

अब निम्नलिखित ६ परिक्रमा मंत्रों में परमात्मा को सब दिशाओं में उपस्थित मानकर यह प्रार्थना कीगई है कि हे परमपिता परमात्मन् ! आप हमारी सब ओर से रक्षा करें, जैसाकि :—

मनसापरिक्रमामन्त्राः

ओं प्राचीदिगग्निरधिपतिरसितोरक्षिताऽऽदित्या इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योऽ३ऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तंवो जम्भे दध्मः ॥ ८ ॥ अथर्व० ३।६।२७।१

पदा०—(प्राचीदिक्) पूर्वदिशा अथवा जिस ओर अपना मुख हो उस ओर (अग्निः) ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ परमात्मा (अधिपतिः) जो सब जगत् का स्वामी (असितः) बन्धनरहित (रक्षिता) हमारी रक्षा करने वाला है (आदित्या, इषवः) जिसके बाण सूर्य्य की किरण समान हैं (तेभ्यः, नमः, अधिपतिभ्यः) उन सब गुणों के अधिपति परमपिता परमात्मा को हम लोग बारंबार नमस्कार करते हैं (रक्षितृभ्यः, नमः, इषुभ्यः, नमः, एभ्यः, अस्तु) जो ईश्वर के गुण जगत् की रक्षा करने वाले और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं उनको हमारा नमस्कार हो (यः, अस्मान्, द्वेष्टि) जो प्राणी हमसे द्वेष करते हैं अथवा (यम्, वयम द्विष्मः) जिन धार्मिकों से

हम द्वेष करते हैं (तं, वो, जम्भे, दध्मः) उन सबके बुरे भावों को उन किरण समान बाणों के मुख में देकर दग्ध करते हैं, ताकि न हमसे कोई बैर करे और न हम किसी प्राणी से बैर करें किन्तु हम सब मिलकर परस्पर मित्रता-पूर्वक बर्तें।

ओं दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः॥९॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० ३।६।२७।२

पदा०—(दक्षिणा, दिक्) दक्षिण=दाहनी ओर (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य-वान् (अधिपतिः) राजा (तिरश्चि, राजी) तिरछे=वेदविरुद्ध चलने वाले दुष्ट-जनों के समूह से (पितरः, इषवः) ज्ञानी पुरुषों के सत्य उपदेशरूप बाणों द्वारा (रक्षिता) हमारी रक्षा करने वाला है अर्थात् उनके कुसंगरूप हानि से हमें बचाने वाला है, उसके लिये हमारा नमस्कार हो ॥ (शेष पूर्ववत्)

ओं प्रतीचीदिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्नमिषवः ॥१०॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० ३।६।२७।३

पदा०—(प्रतीची, दिक्) पश्चिम दिशा वा पीठ की ओर (वरुणः) ग्रहण करने योग्य, सर्वोत्तम (अधिपतिः) परमात्मा रूपी राजा (पृदाकू) विषधारी जीवों से (अन्नं, इषवः) औषधरूप बाणों द्वारा (रक्षिता) रक्षा करता है, उसके लिये हमारा नमस्कार हो ॥ (शेष पूर्ववत्)

ओं उदीचीदिक् सोमोऽधिपतिः स्वजोरक्षिता शनिरिषवः ॥ ११ ॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० ३।६।२७।४

पदा०—(उदीची, दिक्) उत्तर दिशा वा बाईं ओर (सोमः) शान्तिस्वरूप (अधिपतिः) राजा (स्वजः) सदा अजन्मा है जो (अशनिः, इषवः) बिजुली रूप बाणों द्वारा (रक्षिता) हमारी रक्षा करता है, उसके लिये हमारा नमस्कार हो ॥ (शेष पूर्ववत्)

ओं ध्रुवादिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः ॥१२॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० ३।६।२७।५

पदा०—(ध्रुवा, दिक्) नीचे पृथिवी की ओर (विष्णुः, अधिपतिः) व्यापक परमात्मा (कल्माष, ग्रीवः) हरित रंग वाले वृक्ष जिसकी ग्रीवा के समान और (वीरुध, इषवः) लतायें जिसके बाणों के समान हैं वह प्रभु (रक्षिता) हमारी रक्षा करता है, उस परमात्मदेव को हमारा नमस्कार हो ॥

(शेष पूर्ववत्)

ओं ऊर्ध्वादिग्बृहस्पतिरधिपतिःश्वित्रोरक्षिता वर्षमिषवः ॥१३॥ तेभ्यो० (शेष पूर्ववत्)

अथर्व० ३।६। २७ । ६

पदा०—(ऊर्ध्वा, दिक्) ऊपर आकाश की ओर (बृहस्पतिः, अधिपतिः) सबसे बड़ा परमात्मारूपी राजा (श्वित्रः) सब भयानक रोगों से (रक्षिता) हमारी रक्षा करने वाला और (वर्ष, इषवः) वर्षा जिसके बाणों के समान है, उस प्रभु को हमारा नमस्कार हो ॥ (शेष पूर्ववत्)

भावा०—(१) प्राचीदिक्=पूर्वदिशा को यहां प्रथम इसलिये गिना है कि ज्ञानेन्द्रियों का प्रायः इसी ओर प्रवाह है, प्राची के अर्थ केवल पूर्वदिशा के नहीं किन्तु मुख के ओर की दिशा के हैं इसी अभिप्राय से यहां अग्नि परमात्मा के तेजस्वी गुण को अधिपति माना गया है और उसको बन्धन रहित इसलिये कहा गया है कि परमात्मा का तेज किसी बन्धन में नहीं और वही सबकी रक्षा करने वाला है—आदित्य को इषुओं के समान इस अभिप्राय से कहा है कि परमात्मा के तेज का सूचक जैसा सूर्य्य है वैसा अन्य कोई पदार्थ नहीं और सूर्य्य अपनी किरणों रूप बाणों द्वारा दुष्कर्मी पुरुषों को दुःख प्रदान करता और सत्कर्मी पुरुषों के लिये सुख का प्रदाता है, अंत में अधिपति और इषुओं को नमः इसलिये कहा है कि परमात्मा और उसका ऐश्वर्य्य सत्कार के योग्य है, अधिक क्या जो पुरुष प्राचीदिक् प्रवाहिनी ज्ञानेन्द्रियों के प्रवाह को अपने वशीभूत करलेता है वही संसार में अभ्युदय तथा मोक्षसुख का भागी होता है ॥

(२) "दक्षिणादिक्" से तात्पर्य्य दक्षिण भुजा का है, इसका इन्द्र अधिपति इसलिये कथन किया गया है कि इस अंग में विद्युत्शक्ति वा बल अधिक होता है और इसीलिये यह सब प्रकार के विषमगति वाले विघ्न तथा शत्रुओं से रक्षा करता और यह अंग कर्मप्रधान है, इसलिये पितर=विज्ञानी पुरुषों को इसका रक्षक माना गया है, क्योंकि जहाँ ज्ञान के अधीन कर्म रहता है अर्थात् ज्ञानपूर्वक कर्म कियाजाता है वहाँ कोई विघ्न नहीं होता ॥

(३)—"प्रतीचीदिक्" के अर्थ मुख से पीछे के हैं अर्थात् शरीर के पृष्ठभागस्थ अंगप्रत्यङ्गों में जो नाड़ी नस हैं उनका अधिपति वरुण इसलिये माना गया है कि जिस प्रकार शरीरस्थ पृष्ठभाग के नाड़ी नसों ने सम्पूर्ण शरीर को सुदृढ़ किया हुआ है इसी प्रकार वरुण=परमात्मा सब प्रकार से हमको आच्छादन करता है ॥

"पृदाकूरक्षिता" का तात्पर्य यह है कि बड़े २ अजगररूप शत्रुओं के प्रहारों से भी उक्त अंग की परमात्मा सुदृढ़ता के कारण रक्षा करता है और अन्न को इषु इस दिशा की रक्षा के लिये इस अभिप्राय से माना है कि जो पुरुष अन्नाद हैं अर्थात् अन्न के भोगने में समर्थ हैं उनके लिये अन्न इस भाग की इषुओं के समान रक्षा करता है ॥

(४)—"उदीचीदिक्" जो उक्त तीनों अंगों से भिन्न अंग = वामाङ्ग है उसका सोमगुणप्रधान परमात्मा स्वामी है अर्थात् जिसप्रकार परमात्मा के सोमगुण में शान्ति विराजमान है इसी प्रकार इस अंग में भी स्वतः सिद्ध शान्ति विराजमान है "स्वजः" को रक्षिता इस अंग का इसलिये माना गया है कि शान्तगुण किसी कारण से अभिव्यक्ति में नहीं आता किन्तु वह परमात्मा का स्वरूपभूत गुण है, इसलिये उस गुण का रक्षक भी नैमित्तिक नहीं किन्तु स्वतःसिद्ध है ॥

तात्पर्य्य यह है कि एक परमात्मा का स्वरूपभूत गुण है और एक तटस्थ गुण है, तटस्थ वह कहलाता है जो किसी निमित्त से प्रकट होता है, यहाँ उस तटस्थ गुण से भिन्न रूपभूतगुण को रक्षक माना गया है, और अशनि=वज्र को यहां इषु इस अभिप्राय से कथन किया है कि जो कोई परमात्मा के स्वतःसिद्ध शान्तिगुण में आकर विघ्न डालता है उस पर इषुओं के समान वज्रपात होता है अर्थात् शान्ति को स्थापन करने वाली विद्युत्शक्ति उस दुष्ट का विनाश करती है ॥

(५)—"ध्रुवादिक्" से तात्पर्य्य शरीर के अधो अंग का है, इसका विष्णु अधिपति इसलिये माना गया है कि शरीर की नाड़ियों द्वारा रस इस अंग में पहुंचकर सर्वाधिकरण विष्णु परमात्मा की कृपा से अधिपतिरूप होकर आविराजमान होते हैं, और चित्रित विचित्रित ग्रीवा वाली नाड़ियों को रक्षिता इस अभिप्राय से माना है कि वह सब मिलकर पादप्रदेश में ऐसी दृढ़ता देती हैं कि मानो रक्षक के समान स्थिर होजाती हैं और वीरुध=लताओं के समान जो इनका तान वितान है वह मनुष्य की रक्षा के लिये इषुओं के समान

है अर्थात् जिस प्रकार इषु=वाण विघ्नों से रक्षा करते हैं इसी प्रकार पादप्रदेशस्थ नाड़ी नस के वन्धन भी विघ्नों से रक्षा करते हैं ॥

(६)—ऊर्ध्वादिक्" का तात्पर्य्य शरीर के सर्वोपरि उच्च प्रदेश शिर से है, इसका बृहस्पति अधिपति इसलिये माना गया है कि जिसप्रकार मनुष्य का शिर सब शारीरक ऐश्वर्य्यों का पति है इसी प्रकार बृहस्पति परमात्मा भी सब ऐश्वर्य्यों का स्वामी है और "श्वित्रः"=सब प्रकार के रोगों से रक्षा करने वाला परमात्मा इसका रक्षक है और वर्ष=वृष्टि के समान अन्नादि रसों को बहाने वाले नाड़ी नस शिर की रक्षा के लिये विराजमान हैं ॥

तात्पर्य्य यह है कि शिरोभाग से वृष्टि के समान बहते हुए रस सम्पूर्ण शरीर की रक्षा और पुष्टि करते हैं, भाव यह है कि शरीर के प्राच्यादि छओं अंगों की रक्षा इस मनसापरिक्रमा में अभिप्रेत है, इन मन्त्रों के पाठ-समय मनुष्य को अपने छओं अंगों की रक्षा पर दृष्टि डालनी चाहिये, जिसप्रकार शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छ अंग वेद की रक्षा करते हैं इसी प्रकार धर्म की रक्षा के लिये शरीर के छओं अंगों की रक्षा यहां वर्णन कीगई है और जिसप्रकार नीति के छ अंग राष्ट्र की रक्षा करते हैं इसी प्रकार यहां प्राच्यादि दिशाओं के अधिपति और रक्षक मिलकर इस बृहत्ब्रह्माण्ड की रक्षा करते हैं, इन मनसापरिक्रमा के मन्त्रों में शरीर की रक्षा तथा राष्ट्र की रक्षा, इत्यादि अनेक रक्षायें विराट् पुरुष के ध्यान द्वारा वर्णन कीगई हैं कि मनुष्य इन दिशा उपदिशाओं में चित्त की वृत्ति फेरकर सब ओर से अपनी रक्षा करे ॥

उपस्थानमन्त्राः

ओं उद्वयंतमसस्परिस्वः पश्यन्तउत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्य्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ॥ १४ ॥

यजु० ३५ । १४

पदा०—हे परमात्मदेव ! आप (तमसः, परि) अज्ञानरूप अन्धकार से परे (स्वः) आनन्दस्वरूप (पश्यन्त, उत्तरम्) प्रलय के पीछे भी सदा वर्त्तमान (देवं, देवत्रा) प्रकाशकों में प्रकाशक (सूर्य्यं) चराचर का आत्मा (ज्योतिः, उत्तमम्) स्वयंप्रकाश, सर्वोत्तम आपको (वयं) हम लोग (उत्, अगन्म) प्राप्त हों, आप हमारी रक्षा करें ॥

भावा०—जो परमात्मा अज्ञानरूप अन्धकार से परे, आनन्दस्वरूप, नित्य, परमानन्द दाता, परमदेव, चराचर का आत्मा, स्वयंप्रकाश और जो सर्वोत्तम है उसको हम श्रद्धापूर्वक ज्ञानचक्षु से देखते हुए प्राप्त हों ॥

ओं उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः ।
दृशे विश्वाय सूर्य्यम् ॥ १५ ॥ यजु० ३३ । ३१

पदा०—(उत्, उ, वहन्ति, केतवः) वेदश्रुति, जगत्रचना तथा सृष्टिनियमरूप किरणें (विश्वाय, दृशे) सबको दर्शाने के लिये (देवं) सब देवों के देव (सूर्य्यं) सर्वोत्पादक (त्यं) आपको प्रकाशित करते हैं, क्योंकि (जातवेदसं) ऋगादि चारो वेद आपसे ही प्रकट हुए हैं ॥

भावा०—इस मंत्र का भाव यह है कि वेदश्रुति, जगत्रचना और सृष्टिनियमरूप किरणें विश्वविद्या को दर्शाने के लिये उसी परमात्मा को प्रकाशित करती हैं जो जातवेदा है अर्थात् जिससे चारो वेद तथा प्रकृति प्रकाशित हुई और जो सब जगत् का उत्पादक है, वह देव हमारे लिये सुखकारी हो ॥

ओं चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्यवरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवीअन्तरिक्ष ँ सूर्य्यआत्माजगतस्तस्थुषश्चस्वाहा ॥ १६ ॥ यजु० १३ । २७

पदा०—हे भगवन् ! आप (चित्रं) अद्भुतस्वरूप हैं (देवानां) विद्वानों के हृदय में सदा (उत्,अगात्) विराजमान (अनीकं) बलस्वरूप हैं (मित्रस्य) मित्र-भक्त (वरुणस्य) श्रेष्ठ-पुरुष (अग्नेः) अग्नि, इन सबके (चक्षुः) प्रकाशक हैं (जगतः, तस्थुषः) जङ्गम तथा स्थावर संसार के (आत्मा) आत्मा (सूर्य्यः) प्रकाशक हैं (द्यावा, पथिवी, अन्तरिक्षं) द्युलोक, पृथिवीलोक तथा मध्यलोक को (आप्रा) सब ओर से व्याप्त कर रहे हैं ॥

भावा०—वह परमात्मदेव जो अद्भुत, बलस्वरूप तथा स्वयंप्रकाश, सर्वमित्र और श्रेष्ठ पुरुषों का प्रकाशक तथा बिजुली का भी प्रकाशक और जङ्गम तथा स्थावर जगत् में व्यापक तथा विद्वानों के हृदय में भलीभांति प्राप्त है, और जो प्रकाशमान तथा प्रकाशरहित लोकों और उनके मध्यस्थ लोकों का धारण तथा रक्षण करने वाला है वह प्रभु हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

ओं तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ।
पश्येम शरदः शतंजीवेम शरदः शत ँ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः
स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ १७ ॥

यजु० ३६ । २४

पदा०—(तत्) वह परमात्मा जो (चक्षुः) सर्वद्रष्टा (देव, हितं) विद्वानों का हितकारी (पुरस्तात्) सृष्टि से पहले भी वर्त्तमान (शुक्रं) शुद्धस्वरूप, और (उत्, चरत्) उत्कृष्टता से सर्वव्यापक है, उसकी कृपा से हमलोग (शतं, शरदः) सौ वर्ष (पश्येम) देखें (शतं, शरदः, जीवेम) सौ वर्ष जीवें (शतं, शरदः, शृणुयाम) सौ वर्ष सुनें (शतं, शरदः, प्रब्रवाम) सौ वर्ष उपदेश करें और सुनें (अदीनाः,स्याम) हम स्वतन्त्र होवें (च) और (भूयः, शरदः, शतात्) सौ वर्ष से अधिक भी देखें, सुनें, जीवें, स्वतन्त्र हों और उपदेश करें॥

भावा०—वह परमात्मा जो सबका द्रष्टा, विद्वानों का हितकारी, सृष्टि से पूर्व विद्यमान, पवित्र और उत्कृष्टता से व्यापक है उसकी कृपा से हमलोग सौ वर्ष तक स्वतन्त्र जीवें, सौ वर्ष तक सृष्टि रचना द्वारा उसका दर्शन करते रहें, सौ वर्ष तक उसके गुणकीर्तन करते तथा सुनते रहें, और जो सौ वर्ष से अधिक जीवें तो इसी प्रकार जीवें, ऐसी कृपा करो॥

गायत्री = गुरुमन्त्रः

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम्भर्गोदेवस्य-
धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ १८॥ यजु० ३६। ३

पदा०—(भूः) प्राणों से प्यारा (भुवः) दुःखविनाशक (स्वः) सुखस्वरूप। (सवितुः) सब जगत् को उत्पन्न करने वाले (तत्) उस (भर्गः) पापनाशक (वरेण्यं) पूजनीयतम = सर्वोपरि पूजनीय (देवस्य) देव का (धीमहि) हम ध्यान करते हैं (यः) जो (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) सदा उत्तम कामों में लगावे अर्थात् शुभमार्ग में चलावे॥

भावा०—जगत्पिता, सर्वोत्तम, उपासनीय, विज्ञानस्वरूप, दिव्यगुणयुक्त, सब के आत्माओं में प्रकाश करने वाला और सब सुखों का दाता जो परमात्मा है उसको हम प्रेमभक्ति से अपने हृदय में धारण करें ताकि वह हमारी बुद्धियों को उत्तम धर्मयुक्त कामों में लगावे॥

नमस्कार मंत्रः

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च। नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च॥१९॥

यजु० १६। ४१

पदा०—(शं-भवाय च, मयो-भवाय च) कल्याण तथा सुख के देने वाले परमात्मा को (नमः) नमस्कार है (शं-कराय च, मयस्कराय च) मंगलस्वरूप

तथा मंगलदाता आपको (नमः) नमस्कार है (शिवाय च, शिवतराय च) कल्याणस्वरूप और अत्यन्त कल्याणस्वरूप आपको (नमः) हमारा नमस्कार है ॥

भावा०--हे सुखस्वरूप तथा सुखदाता परमात्मन् ! आपको हमारा नमस्कार हो, हे मंगलस्वरूप तथा मंगलदाता परमेश्वर ! आपको हमारा नमस्कार हो, हे कल्याणस्वरूप और कल्याणदाता परमात्मन् ! आपको हमारा नमस्कार हो ॥

स्मरण रहे कि पूर्वोक्त मन्त्रों से परमेश्वर की उपासना करने के पश्चात् अपने शुभकर्मों को इस प्रार्थना के साथ ईश्वर समर्पण करें कि हे दयानिधे परमेश्वर ! जो २ उत्तम काम हम आपकी कृपा से करते हैं वह सब आपके अर्पण हैं, दया करो कि हम आपको प्राप्त होकर मनुष्यजीवन के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षरूप फलचतुष्टय को प्राप्त हों ॥

इति सन्ध्योपासनविधिः समाप्तः

अथ देवयज्ञः प्रारभ्यते

१—देवयज्ञ का नाम ही अग्निहोत्र है और इसी के पर्य्यायवाची होम तथा हवन शब्द हैं ।

२—अग्नि और होत्र इन दो शब्दों के मिलने से "अग्निहोत्र" शब्द बना है, अग्नि का अर्थ ज्ञानस्वरूप ईश्वर और होत्र का अर्थ दान है, अतएव जो दान ईश्वर=ईश्वरीय प्रजा के निमित्त दियाजाय उसका नाम "अग्निहोत्र" है, और यह प्रत्यक्ष है कि हवन में जिन पदार्थों की आहुतियां दीजाती हैं वह पदार्थ अग्नि के स्पर्श से छिन्न भिन्न होकर वायु को शुद्ध करते हुए मेघमण्डल तक पहुंचते और वर्षाजल को शुद्ध करते हैं जिससे पृथ्वी के सब पदार्थ शुद्ध उत्पन्न होकर प्राणीमात्र को सुख पहुंचाते हैं और यही ईश्वर के निमित्त दान देना कहाता है ॥

३—विद्वानों का संग और उनकी सेवा तथा दिव्यगुणों का धारण और सत्यविद्या की उन्नति करना भी "देवयज्ञ" कहाता है ॥

४—जैसे सन्ध्या का दोनों काल विधान है वैसे ही हवन भी दोनों काल अवश्य कर्तव्य है, जैसाकि :—

(१) ओं सायं सायं गृहपतिरनो अग्नि प्रातः

प्रातः सोमनस्य दाता । वसोर्वसोर्वसुदान एधी वयं त्वेन्धानास तनवं पुषेम् ॥ अथर्व० १९।७।३

अर्थ—हे घर की रक्षक अग्नि ! तू हमको प्रतिदिन सायंकाल से प्रातःकाल तक सुख देने वाली हो, हे सुखदाता अग्नि ! तू हमको उत्तम २ पदार्थों के प्राप्त कराने वाली हो, ताकि हम तुझको प्रज्वलित करते हुए शरीर को पुष्ट करें ॥

(२) प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायं सायं सोमनस्य दाता वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतहिमा ऋधेम ॥ अथर्व० १९।६।४

अर्थ—हे घर की रक्षक अग्नि ! तू हमको प्रातिदिन प्रातः से सायंकाल तक सुख देने वाली हो, हे सुखदाता अग्नि ! तू हमको उत्तम २ पदार्थ प्राप्त कराने वाली हो, हम तुझको प्रज्वलित करते हुए ऋद्धि सिद्धि को प्राप्त हों ॥

भाव यह है कि हे अग्ने=प्रकाशस्वरूप परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हमलोग अग्निहोत्र तथा उपासना करते हुए "शतहिमाः"=सौ हिम ऋतु अर्थात् सौ वर्ष पर्य्यन्त "ऋधेम"=धनादि पदार्थों से वृद्धि को प्राप्त हों ॥

या यों कहो कि हे परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि हम सौ वर्ष पर्य्यन्त अग्निहोत्रादि कर्म करते हुए सदा लाभ ही लाभ देखें हमारी हानि कभी न हो ॥

हवन करने का समय प्रातः सूर्य्योदय से पीछे और सायंकाल सूर्य्यास्त से पहिले २ है, हवन स्त्री पुरुष दोनों मिलकर करें, यदि किसी कारण से कभी दोनों न करसकें तो एकही दोनों की ओर से दुगुना हवन करे ॥

हवन पात्र

निम्नलिखित हवनपात्र घर में उपस्थित रहें:—

(१) चौकोन "हवन कुण्ड" जो किसी धातु वा मिट्टी का बारह या सोलह अंगुल लम्बा चौड़ा और उतना ही गहरा हो, परन्तु तला इससे चौथाई हो ॥

(२) "आज्यस्थाली"=घृत रखने का पात्र, जो चौड़े मुंहवाला बना हुआ हो जिसमें से घृताहुती सुगमता से देसकें ॥

(३) "चरुस्थाली"=सामग्री रखने का पात्र जो धातु अथवा लकड़ी का हो ॥

(४) "आचमनी" यह शुद्ध धातु का हो जिसमें एक घूंट जल आसके ॥

(५) एक "जलपात्र" जिसमें जल और आचमनी रखी जाती है ॥

(६) "स्रुवा" धातु अथवा लकड़ी का हो जिसकी लम्बाई १६ अंगुल और गहराई अंगूठे की गांठ के बराबर हो जिसमें ६ माशे घी आसके, क्योंकि कम से कम ६ माशे घी की एक आहुती देनी चाहिये ॥

(७) "प्रोक्षणी पात्र" जो तांबे आदि धातु का हो, इससे वेदी के चारो ओर जल छिड़का जाता है ॥

(८) "उदक पात्र" जो कांसी का हो, इसमें कुछ जल भरकर पास रखा जाता है ताकि घृताहुती का शेष "इदन्नमम" कहने के समय उसमें छोड़ते जावें, यह घृत हवन के समाप्त होने पर जल से पृथक् करके शरीर पर मालिश करने से अनेक रोगों का नाशक और खाने से सुखदायक होता है ॥

(९) एक "चिमटा" भी लोहे का पास रहे ॥

हवन के लिये कुछ इकट्ठा घृत शोधकर रख छोड़ें जिसमें १ सेर पीछे एक रत्ती कस्तूरी और एक माशा केसर पिसी हुई मिली हो ॥

समिधा

हवन के लिये पलाश, छोंकर, पीपल, बड़, गूलर और बेल आदि लकड़ी के छोटे बड़े टुकड़े हवनकुण्ड के परिमाण से कटवा रखें, परन्तु पहिले भलेप्रकार देख लें कि लकड़ी को कीड़ा न लगा हो और न मलिन हो, समिधाओं को यज्ञशाला के पूर्व में रखें ॥

सामग्री

हवन की सामग्री में केसर, कस्तुरी, लोंग, इलायची, जायफल, जावित्री, बादाम आदि के सिवाय और सब पदार्थ समभाग हों, एक सेर सामग्री में कस्तूरी १ रत्ती और केसर १ माशा डाली जाय और अन्य वस्तुयें चौथाई हों, सामग्री के सब पदार्थों को अच्छी तरह देख भाल कर कूटना चाहिये ताकि दुर्गन्धित वस्तु उनमें मिली न रहें, प्रत्येक आहुती में घी वा अन्य चरु न्यून से न्यून ६ माशे और अधिक से अधिक छटांक भर हो, अधिक चरु वा घृत की आहुति देने से वह भलेप्रकार नहीं जलता किन्तु कच्चा रहकर निष्फल जाता है ॥

सामग्री के पदार्थ

(१) सुगन्धित पदार्थ—कस्तूरी, केसर, कपूर, अगर, तगर, श्वेत-चन्दन, बालछड़, कपूरकचरी, छिलूरा, लौंग, इलायची, जायफल, जावित्री, धूपलकड़ आदि ॥

(२) पुष्टिकारक पदार्थ—घृत, दुग्ध, बादाम, गिरी, पिश्ता, छुहारा, दाख, चिरोंजी आदि ॥

(३) मिष्ट पदार्थ—खांड़, शहद आदि ॥

(४) रोगनाशक पदार्थ–गिलोय,तज,नीलोफर,मुलट्ठी,पित्तपापड़ाआदि॥

यह सब पदार्थ बुद्धि तथा बलवर्द्धक और नीरोगता प्राप्त करानेवाले हैं॥

हवनविधि

सायं प्रातः अग्निहोत्र करते समय पूर्वोक्त शुद्ध किये हुए घृत में से छटांक वा अधिक जितना सामर्थ्य हो लेकर किसी शुद्ध स्थान में पूर्व की ओर मुख करके बैठें और जल, सामग्री, सब हवनीय पदार्थ तथा स्रुवा आदि सब पात्र पास रखलें ॥

फिर घृत को तपाकर थोड़ासा सामग्री में मिलावें और शेष आहुतियों के लिये अलग रहने दें, जब इस प्रकार हवन करने के लिये तैयार होजायं तब निम्नलिखित तीन मन्त्रों से प्रथम तीन आचमन करें:—

(१) ओं अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा ।

अर्थ—अमृतस्वरूप परमात्मा जो मृत्यु के भयरूप समुद्र से तरने के लिये उत्तम नौका है वह हमारा कल्याणकारी हो ॥

(२) ओं अमृतापिधानमसि स्वाहा ।

अर्थ-अमृतरूप परमात्मा जो सबका धारण करनेवाला है वह हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

(३) ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा।

अर्थ—सत्यस्वरूप परमात्मा जो मेरा यश तथा ऐश्वर्य्य और जो सब ऐश्वर्य्यों का ऐश्वर्य्य है वह परमात्मा कल्याणकारी हो ॥

तत्पश्चात् बायें हाथ में जल लेकर दहने हाथ से निम्नलिखित सात मन्त्रों द्वारा अंग स्पर्श करें:—

(१) ओं वाङ्मऽआस्येऽस्तु ।

इससे मुख

(२) ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु ।

इससे नासिका के दोनों छिद्र

(३) ओं अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु ।

इससे दोनों आंखें

(४) ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु ।

इससे दोनों कान

(५) ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु ।

इससे दोनों बाहु

(६) ओं ऊर्वोर्मे ओजोऽस्तु ।

इससे दोनों जंघा

(७) ओं अरिष्टानि मे अङ्गानितनूस्तन्वा मे सहसन्तु ।

इससे सब अंगों पर जल छिड़कें

पुनः चन्दन, पलाश आदि श्रेष्ठ लकड़ी के छोटे २ टुकड़े करके हवन-कुण्ड में चिनकर फिर घृत का दीपक जलावें और "ओं भुर्भुवः स्वः" मन्त्र पढ़कर उस दीपक से एक टुकड़ा कपूर का जलाकर स्रुवा में रखें और निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर अग्न्याधान अर्थात् कुण्ड में अग्नि स्थापन करें:—

अग्न्याधानमन्त्राः

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव व्वरिम्णा ।
तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ॥

यजु० ३ । ५

अर्थ—जिसप्रकार सूर्य्य भूमि, अन्तरिक्ष तथा दिव्यलोकों में और पृथ्वी अपनी पीठ पर अपने २ ऐश्वर्य्य से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष पदार्थों का यज्ञ=हवन करते हैं उसी प्रकार मैं भी अन्न भक्षण करने वाली अग्नि के लिये भक्षण करने योग्य अन्न को देवयज्ञ स्थान में भलेप्रकार स्थापन करके सदा यज्ञ किया करूँ ॥

फिर नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर अग्नि प्रज्वलित करें:—

ओं उद्बुध्यस्वाग्नेप्रति जागृहित्वमिष्टापूर्ते सँसृजेथामयं च ।
अस्मिन्त्सधस्थेऽध्युत्तरस्मिन् विश्वेदेवा यजमानश्च सीदत ॥

यजु० १५ । ५४

अर्थ—हे अग्ने ! तू उत्तमता से प्रकाशित हो ताकि ये सब स्त्री पुरुष अविद्यारूप निद्रा से जागकर इष्ट और अपूर्त्त ❀ कर्मों को भलेप्रकार सिद्ध करें, और हे अग्ने = ज्ञानस्वरूप परमात्मन् ! आप ऐसी कृपा करें कि सब विद्वान् तथा यजमान इस स्थान पर अब और आगे भी उन्नति करते हुए स्थिर रहें ॥

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन, पलाश आदि लकड़ी के आठ २ अंगुल लम्बे तीन टुकड़े घी में भिगोकर प्रथम एक समिधा नीचे लिखे मन्त्र से प्रज्वलित अग्नि में चढ़ावें :—

समिधाधान मन्त्राः

(१) ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा ॥ इदमग्नये-इदन्नमम ॥ यजु० ३ । १ (इससे एक)

अर्थ—हे विद्वानो ! समिधा से अग्नि को प्रज्वलित करके जैसे अतिथि की सेवा करते हैं वैसे ही घृत से अग्नि की सेवा करो अर्थात् इसमें उत्तम हवि की आहुति दो ताकि वह हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

(२) ओं सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम ॥

यजु० ३ । २ (इससे दूसरी)

अर्थ—हे मनुष्यो ! अच्छे प्रकार प्रज्वलित होकर शुद्ध करने वाली अग्नि जो सब पदार्थों में विद्यमान तथा सम्पूर्ण रोगों के निवारण करने वाली है उसको समिधाओं से प्रज्वलित करके उसमें उत्तम गुणयुक्त घृत और मिष्टादि पदार्थों की आहुति दें ताकि वह हमारे लिये सुखदायक हो ॥

(३) ओं तन्त्वासमिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि । बृहच्छोचाय विष्ठय स्वाहा ॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे इदन्न मम ॥

यजु० ३ । ३ (इससे तीसरी)

❀ विद्वानों का सत्कार, ईश्वर का आराधन, सत्पुरुषों का संग तथा विद्यादि का दान देना "इष्टकर्म" और पूर्ण बल, ब्रह्मचर्य्य, विद्या की सफलता तथा पूर्णयुवावस्था होने के साधनों को उपलब्ध करना " अपूर्त्त " कर्म कहाते हैं ॥

अर्थ—सबको यथायोग्य भाग पहुँचाने वाली तथा पदार्थों के छेदन भेदन करने में अति बलवान् और जो बड़ी तेजवान् है उस अग्नि को हम लोग काष्ठ की समिधाओं और घृत से प्रदीप्त कर उसमें पवित्र हवि की आहुति दें ताकि वह हमारे लिये मंगलकारी हो ॥

ज्ञात होकि "स्वाहा" शब्द का अर्थ कल्याणकारी है अर्थात् प्रज्वलित अग्नि में उत्तम हवि की दीहुई आहुतियां हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

मन्त्रों के अन्त में "इदन्नमम" पदों का अर्थ यह है कि हम लोग जो हवनादि उत्तम कर्म करते हैं वह अपने लिये नहीं किन्तु सब संसार के लाभार्थ हैं, अधिक क्या यह हवन ही सच्चा दान है जो यजमान यज्ञकर्त्ता तथा प्रजा को कल्याण का देने वाला है ॥

पुनः इस मंत्र को एक २ वार पढ़कर पांच घृताहुति दें:—

ओं अयं त इध्मआत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध-वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा ॥ इदमग्नये जातवेदसे इदन्नमम

अर्थ—हे जातवेदाग्नि ! यह उपरोक्त इन्धन = समिधायें तेरी आत्मा = व्याप्ति का स्थान हैं, इस इन्धन से तू प्रदीप्त होकर बढ़ और हमको प्रजा, पशु, धार्मिक तेज तथा अन्नादि पदार्थों से समृद्ध कर, हम तुझमें हवन करते हैं, यह हवन " अग्नि " और " जातवेदा " = परमेश्वर के निमित्त है मेरे लिये नहीं ॥

फिर प्रोक्षणी पात्र में जल भरकर निम्नालिखित मन्त्रों से कुण्ड के चारो ओर जल सेचन करें:—

(१) ओं अदितेऽनुमन्यस्व ॥

(इससे पूर्व दिशा में)

(२) ओं अनुमतेऽनुमन्यस्व ॥

(इससे पश्चिम में)

(३) ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व ॥

(इससे उत्तर में)

(४) ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय । दिव्योगंधर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥

यजु० ३० । १

(इससे दक्षिण वा सब दिशाओं में)

अर्थ—हे दिव्यगुणयुक्त जगदुत्पादक परमात्मन्! आप दिव्य गुणों की प्राप्ति के लिये हमारे प्रेरक हों, हे यज्ञपति ईश्वर! ऐश्वर्य्य की प्राप्ति के लिये हमको यज्ञ की प्रेरणा करें, हे उत्तमगुणयुक्त औषधियों के रक्षक! हमारी आरोग्यता को पवित्र करें, हे गंधर्व = वाणी के पति परमात्मन्! हमारी वाणी को रसदायक करें जिससे हम संसार में सबके मित्र हों ॥

इसके पश्चात् अंगूठे और मध्यमा तथा अनामिका अंगुलियों से स्रुवा पकड़कर नीचे लिखे मन्त्रों से आहुति दें:—

प्रातःकाल के हवनमंत्र

(१) ओं सूर्य्योज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा ॥ यजु० ३।९

अर्थ—हे प्रकाशस्वरूप! हे प्रकाशमान् लोकों के प्रकाशक परमात्मन्! आप हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

(२) ओं सूर्य्योवर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ यजु० ३।९

अर्थ—हे विद्यास्वरूप, तेजस्वरूप तथा सर्वविद्याओं के प्रकाशक परमात्मदेव! आप हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

(३) ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥ यजु० ३।६

अर्थ—हे स्वयंप्रकाश, जगत्प्रकाशक परमात्मन्! आप मूर्तिमान सूर्य्यादिकों के भी प्रकाशक हैं, अतएव आप हमारे लिये कल्याणकारी हों ॥

(४) ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥

अर्थ—हे प्रकाशस्वरूप, जगत्पिता परमात्मन्! आप प्रातःकाल सूर्य्य की ज्योति का प्रकाश करके हमको विद्यादि सद्गुणों की प्राप्ति करायें और वह सूर्य्य हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

(५) ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा ॥

अर्थ—प्राणों से प्यारा परमात्मा ज्ञानप्रकाश और प्राणरक्षा ❀ के लिये हमारा कल्याणकारी हो ॥

❀ ज्ञात हो कि मनुष्य शरीर में पांच प्राण और पांच उपप्राण काम करते हैं जैसा कि:—

(१) "प्राण वायु"=जो हृदय में रहकर मुख से भीतर बाहर आता जाता और भोजन को भीतर लेजाता है ॥

(६) ओं भुवर्वायवे अपानाय स्वाहा ॥

अर्थ—दुःखनिवारक परमात्मा बलवृद्धि और अपानरक्षा के लिये कल्याणकारी हो ॥

(७) ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ॥

अर्थ—सुखस्वरूप परमात्मा ज्ञानवृद्धि और व्यानरक्षा के लिये कल्याणकारी हो ॥

(८) ओं भूर्भुवः स्वरग्निवायवादित्येभ्यः प्राणापान व्यानेभ्यः स्वाहा ॥

अर्थ—प्राणों से प्यारा, दुःखनिवारक, सुखस्वरूप परमात्मा बल और ज्ञानवृद्धि के लिये प्राण, अपान तथा व्यान की रक्षा करते हुए हमारे लिये कल्माणकारी हों ॥

(९) ओं आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥

अर्थ-शान्तस्वरूप, प्रकाशस्वरूप, रस तथा अमृतस्वरूप, महान्, प्राणों से प्यारा, दुःखनिवारक तथा सुखस्वरूप परमात्मा कल्याणकारी हो ॥

---

(२) "अपान वायु"=जो गुदा में रहता और मल मूत्र को बाहर निकालता है ॥

(३) "समान वायु"=जो नाभि में रहता और जठराग्नि की सहायता से खान पान के रस को फोक से पृथक् करता है ॥

(४) "उदान वायु"=जो कण्ठ में रहता और प्राण को बाहर निकालता है, बोलना तथा गाना भी इसीसे होता है ॥

(५) "व्यान वायु"=जो सर्वत्र शरीर में रहकर रसों को सब जगह पहुँचाता, पसीना लाता और रुधिर को घुमाता है, यह पांच प्राण, और:—

(१) "नाग वायु"=जो डकार लाता तथा वमन कराता है ॥

(२) "कूर्म वायु"=जिससे पलकों का झपकना और अंगों का सिकुड़ना तथा फैलना होता है ॥

(३) "क्रिकल वायु"=जो छींक लाता और क्षुधा लगाता है ॥

(४) "देवदत्त वायु"=जो जवाही लाता है ॥

(५) "धनञ्जय वायु"=जो जीवित अवस्था में स्फुरण कराता और मृत्यु पश्चात् शरीर को फुलाता है, यह पांच उपप्राण हैं ॥

(१०) ओं सर्वं वै पूर्णꣳस्वाहा ॥

अर्थ—अब यह यज्ञ पूर्ण हुआ, हे परमपिता परमात्मन्! आप हमें ऐसी शक्ति प्रदान करें कि हम लोग प्रतिदिन सायं प्रातः इसी प्रकार श्रद्धापूर्वक हवन समाप्त किया करें ॥

सायंकाल के हवन मन्त्र

(१) ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ यजु० ३।६

अर्थ—अग्नि परमात्मा, ज्योतिः परमात्मा, प्रकाशमय परमात्मा और ज्ञानस्वरूप परमात्मा हमारे लिये कल्याणकारी हो ॥

(२) ओं अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ यजु० ३।९

अर्थ—तेजस्वी तथा तेजोमय परमात्मा, ज्योतिर्मय परमात्मा और तेजस्वरूप परमात्मा हमारा कल्याणकारी हो ॥

(३) ओं अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ यजु० ३।९

अर्थ—इस मंत्र का अर्थ ऊपर लिख आये हैं, इसका मन से उच्चारण करके आहुति दें ॥

(४) ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या जुषाणो अग्निर्वेत्तु स्वाहा ॥ यजु० ३।१०

अर्थ—जो प्रकाशस्वरूप, जगत्पिता परमात्मा रात्रि के समय चन्द्रमा की ज्योतिः का प्रकाश करके हमको विद्यादि सद्गुणों में प्रेरता है वह परमात्मा हमारा कल्याणकारी हो ॥

(५) से (१०) तक वही पांच मन्त्र हैं जो प्रातःकाल के हवन मन्त्रों में लिख आये हैं ॥

इति देवयज्ञः समाप्तः

अथ पितृयज्ञः प्रारभ्यते

पितृयज्ञ को "श्राद्ध" और "तर्पण" भी कहते हैं, श्राद्ध शब्द श्रत् धातु से बना है जो सत्य का वाचक है, जिस कृत्य से सत्य का ग्रहण किया जाय वह "श्रद्धा" तथा श्रद्धापूर्वक सेवा करने का नाम "श्राद्ध" और जिस कर्म से माता पितादि जीवित पितरों को तृप्त=सुखयुक्त किया जाय वह "तर्पण" कहाता है ॥

तर्पण तथा श्राद्ध विद्यमान और प्रत्यक्ष पितरों का ही होसकता है मृतकों का नहीं, क्योंकि मिलाप हुए विना सेवा नहीं होसकती और मिलाप जीतों का ही होना सम्भव है मृतकों का नहीं, अतएव यहाँ "पितर" शब्द से जीवित माता पिता आदि पितरों का ही ग्रहण सार्थक होने से उन्हीं के लिये परमात्मा से प्रार्थना कीगई है कि:—

ओं ऊर्ज्जवहन्तिरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतं स्वधास्थ तर्प्पयत मे पितॄन् ॥ यजु० २।३४

अर्थ—हे परमात्मन् ! बल पराक्रम देनेवाले उत्तम रसयुक्त घृत, दुग्ध, पक्वान्न और रस चूते हुए पके फल मेरे पितॄन्=पिता आदि पितरों को प्राप्त कराके तर्प्पयत्=तृप्त करें जिससे वह सदा प्रसन्न होकर मुझको सत्योपदेश करते रहें ॥

"पितर" शब्द से पिता, माता, पितामह, मातामह आदि तथा आचार्य्य, विद्वान् और अवस्था तथा ज्ञानवृद्ध माननीय पुरुषों का ग्रहण है ॥

एक "महापितृयज्ञ" भी होता है जिसमें नीचे लिखे आठ प्रकार के पितरों की सेवा का विधान किया है, जैसाकि:—

(१) "सोमसद"=ब्रह्मविद्या के जानने वाले।

(२) "अग्निष्वात"=कलाकौशल विद्या के ज्ञाता।

(३) "बर्हिषद"=कृषि विद्या के वेत्ता।

(४) "सोमपा"=वनस्पतियों और औषधियों के गुणों को जानने वाले।

(५) "हविर्भुज"=हवन विधि के पूर्ण वेत्ता।

(६) "आज्यपा"=दूध देने और भार उठाने वाले पशुओं का पालन, पोषण और रोगनिवृत्ति की विद्या जानने वाले।

(७) "सुकालिन"=ब्रह्मविद्या का उपदेश करने वाले।

(८) "यमराज"=न्याय व्यवस्था बांधने, पक्षपात् छोड़कर न्याय करने वाले और आप शुद्धाचरण रखने वाले राजकीय पुरुष, इनकी सेवा तथा आज्ञापालन करना भी "पितृयज्ञ" कहाता है ॥

इति पितृयज्ञः समाप्तः

अथ भूतयज्ञः प्रारभ्यते

"भूतयज्ञ" का ही दूसरा नाम "बलिवैश्वदेव यज्ञ" है, इसमें (१) कुत्ते (२) पतित (३) भङ्गी आदि चाण्डाल (४) कुष्ठी आदि पाप रोगी (५) कौवे (६) चिऊंटी आदि कृमी कीटादिकों के लिये दाल, भात, रोटी आदि की छः बलि दीजाती हैं, जिसमें प्रमाण यह है कि:—

अहरहर्बलिमित्ते हरन्तोऽश्वायेव तिष्ठतेघासमग्ने ।
रायस्पोषेणसमिषा मदन्तोमाते अग्ने प्रतिवेशारिषाम् ॥

अथर्व० १९।७।७

अर्थ—हे अग्नि परमेश्वर ! जिस प्रकार शुभ इच्छा से हम लोग घोड़े के आगे खाने योग्य पदार्थ धरते हैं उसी प्रकार शुभ इच्छा से आपकी आज्ञानुसार नित्य प्रति बलिवैश्वदेव कर्म को प्राप्त होवें और आप ऐसी कृपा करें कि सब प्रकार का ऐश्वर्य्य, लक्ष्मी, घी, दूध आदि पुष्टिकारक पदार्थों से हम लोग सदा आनन्दित रहें, हे परम गुरो अग्ने परमेश्वर ! हम लोग आपकी आज्ञा के विरुद्ध कभी न चलें और न अन्याय से किसी प्राणी को पीड़ित करें किन्तु सबको अपना मित्र समझकर उनके साथ हित करते हुए उनके पालन पोषण में सदा तत्पर रहें ॥

(१) ओं श्वभ्यो नमः (२) ओं पतितेभ्यो नमः (३) ओं श्वपग्भ्यो नमः (४) ओं पापरोगिभ्यो नमः (५) ओं वायसेभ्यो नमः (६) ओं कृमिभ्यो नमः ॥

घर में बने हुए अन्न में से ऊपर लिखे मंत्रों द्वारा छः भाग निकालकर पूर्वोक्त चाण्डालादि को देदें, और घृत तथा मिष्टान्नमिश्रित भात, यदि भात न बना हो तो खारी और लवणान्न के सिवाय जो कुछ बना हो उसकी दश आहुतियां जो एक २ ग्रास के समान हों आगे लिखे दश मन्त्रों से अग्नि पर चढ़ावें जो चूल्हे से निकालकर अलग रखी हो:—

(१) ओं अग्नये स्वाहा ॥

(२) ओं सोमाय स्वाहा ॥

(३) ओं अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा ॥

(४) ओं विश्वेभ्योदेवेभ्यः स्वाहा ॥

(५) ओं धन्वन्तर्यै स्वाहा ॥

(६) ओं कुह्वै स्वाहा ॥

(७) ओंमनुमत्यै स्वाहा ॥

(८) ओं प्रजापतये स्वाहा ॥

(९) ओं सहद्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा ॥

(१०) ओं स्विष्टकृते स्वाहा ॥

तत्पश्चात् निम्नलिखित सोलह मन्त्रों से दिशायें आदि के लिये सोलह बलि पत्तल पर अथवा थाली में धरें, यदि बलि धरते समय कोई अतिथि आजाय तो उसी को वलि का अन्न खिलादें नहीं तो इसकी भी अग्नि में आहुतियां देदें ॥

ओं सानुगायेन्द्राय नमः ।

अर्थ–इन्द्र=ईश्वर के अनुयायी ऐश्वर्य्ययुक्त पुरुषों को नमस्कार हो। (पूर्व दिशा के लिये)

(२) ओं सानुगाय यमाय नमः ।

अर्थ–यम=ईश्वर अनुयायी सांसारिक न्यायाधीशों को नमस्कार हो। (दक्षिण दिशा के लिये) ।

(३) ओं सानुगाय वरुणाय नमः ।

अर्थ—ईश्वर भक्तों को नमस्कार हो (पश्चिम दिशा के लिये) ।

(४) ओं सानुगाय सोमाय नमः ।

अर्थ—पुण्यात्माओं को नमस्कार हो (उत्तर दिशा के लिये) ।

(५) ओं मरुद्भ्यो नमः ।

अर्थ—प्राणपति ईश्वर को नमस्कार हो (द्वार के लिये) ।

(६) ओं अद्भ्यो नमः ।

अर्थ—सर्वव्यापक ईश्वर को नमस्कार हो (जल के लिये) ।

(७) ओं वनस्पतिभ्यो नमः ।

अर्थ—वनस्पतियों के स्वामी ईश्वर को नमस्कार हो (मूसल और ऊखल के लिये)।

(८) ओं श्रियै नमः।

अर्थ—सर्व पूजनीय और ऐश्वर्य्ययुक्त ईश्वर को नमस्कार हो (ईशान= उत्तर पूर्व के बीच की दिशा के लिये)।

(९) ओं भद्रकाल्यै नमः।

अर्थ—कल्याणकारक ईश्वरीय शक्ति को नमस्कार हो (नैऋत=दक्षिण और पश्चिम के बीच की दिशा के लिये)।

(१०) ओं ब्रह्मपतये नमः।

अर्थ—वेद के स्वामी ईश्वर को नमस्कार हो।

(११) ओं वास्तुपतये नमः।

अर्थ—वास्तुपति ईश्वर को नमस्कार हो (इन दो मन्त्रों से मध्य के लिये)।

(१२) ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः नमः।

अर्थ—विश्वपति और स्वयंप्रकाश ईश्वर को नमस्कार हो।

(१३) ओं दिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः।

अर्थ—दिन में विचरने वाले प्राणियों का सत्कार हो।

(१४) ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः।

अर्थ—रात्रि को विचरने वाले प्राणियों का सत्कार हो (इन तीन मंत्रों से ऊपर के लिये)।

(१५) ओं सर्वात्मभूतये नमः।

अर्थ—सर्वव्यापक ईश्वरीय सत्ता को नमस्कार हो (इससे पीछे की ओर)।

(१६) ओं पितृभ्यःस्वधायिभ्यः नमः।

अर्थ—ज्ञानियों और स्वधा=हविदान के अधिकारियों को नमस्कार हो (इससे दक्षिण की ओर)।

इति भूतयज्ञः समाप्तः

अथ नृयज्ञः प्रारभ्यते

नृयज्ञ को ही "अतिथियज्ञ" कहते हैं, जो विद्वान्, परोपकारी, जितेन्द्रिय, सत्यवादी, छल कपट रहित, धार्मिक पुरुष देशाटन करता हुआ अकस्मात् घर आजाय उसको "अतिथि" कहते हैं, ऐसे अतिथि का सत्कार करके उससे सत्योपदेश ग्रहण करना "अतिथियज्ञ" कहाता है, इसमें अनेक वैदिक प्रमाण हैं, परन्तु यहां संक्षेप से अथर्व वेद के दो मन्त्र लिखते हैं:—

(१) ओं तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत ॥

अथर्व० १५ । ११ । २ । १

(२) ओं स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्यक्वावात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्प्पयन्तु । व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु, व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु । व्रात्य यथा ते निकामस्तथास्त्विति॥

अथर्व० १५।११।२।३

अर्थ०—इन मंत्रों का भाव यह है कि जब पूर्वोक्त उत्तम गुणयुक्त विद्वान् अकस्मात् अपने घर आजाय तब गृहस्थ स्वयं उठकर आदरपूर्वक उसको मिले और उत्तम आसन पर बिठाकर पूछे कि "हे व्रात्य=उत्तम पुरुष ! आपका निवासस्थान कहां है, हे व्रात्य ! जल लीजिये हाथ मुँह धोइये, हे व्रात्य ! हम लोग प्रेमभाव से आपको तृप्त करेंगे, हे व्रात्य ! जो पदार्थ आपको प्रिय हों वही हम उपस्थित करें, हे व्रात्य ! जैसी आपकी इच्छा हो वही हम पूर्ण करेंगे, हे व्रात्य ! जैसी आपकी कामना हो वैसा ही होगा ॥

ऐसे सतोगुणी और सत्कर्मी अतिथि आजकल दुर्लभ हैं, इनके अभाव में जो विद्वान् आर्य्य पुरुष घर में आजायं उनका श्रद्धापूर्वक यथायोग्य आदर सन्मान करके उनसे सत्य उपदेश ग्रहण करना "नृयज्ञ" जानना चाहिये ॥

इति नृयज्ञः समाप्तः

यह वैदिक पांच यज्ञ हैं जिनका विधिपूर्वक अनुष्ठान करने वाला पुरुष पवित्र होकर उस उच्चपद को प्राप्त होता है जिसको " त्र्यम्बकं यजामहे " मंत्र में वर्णन किया है, इन्हीं का अनुष्ठान करनेवाला सांसारिक ऐश्वर्य्य पाता और अन्ततः निःश्रेयस को प्राप्त करता है, इसलिये प्रत्येक वैदिकधर्मी का कर्त्तव्य है कि वह निरालस होकर उक्त यज्ञों का पालन करे ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

विशेष सूचना

प्रत्येक वैदिकधर्मावलम्बी को विदित होकि महर्षि श्री १०८ स्वामी दयानन्दसरस्वतीजी का ऋग्वेदभाष्य मण्डल० ७ सू० ६१ मं० २ तक है, यह भाष्य स्वामीजी ने सम्वत् १९३४ वि० में प्रारम्भ किया था जिसको आज ४० वर्ष पूर्ण होने वाले हैं, उनके पीछे कई कारणों से यह भाष्य पूर्ण नहीं होसका ॥

अब ईश्वर की अपार दया से शेष ऋग्वेद का भाष्य काशी में छपना प्रारम्भ होगया है और वेदप्रस्तावना सहित प्रथमखण्ड छप कर तैयार है जो भाष्य का एक प्रकार से नमूना है ॥

काशी
२०।१२।१७ } आर्य्यमुनिः